गोस्वामी तुलसीदास

व्यक्तित्व एवम साहित्य

गोस्वामी तुलसीदास

व्यक्तित्व दर्शन साहित्य

(आगरा विश्वविद्यालय से डी० लिट् उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

रामदत्त भारद्वाज
डी लिट्०(हिन्दी) पीएच डी (दर्शन) एम०ए०(अं) एलएल बी
प्राध्यापक देशबन्धु कालिज दिल्ली विश्वविद्यालय

१९६२
भारती साहित्य मन्दिर
फव्वारा दिल्ली

भारती साहित्य मन्दिर
(एस० चन्द एण्ड कम्पनी से सम्बद्ध)

रामनगर	नई दिल्ली
फव्वारा	दिल्ली
माई हीरां गेट	जालन्धर
लाल बाग	लखनऊ
लैमिंग्टन रोड	बम्बई

मूल्य : १८ रुपये

गौरीशंकर शर्मा मैनेजर, भारती साहित्य मन्दिर दिल्ली द्वारा प्रकाशित
एवं इण्डिया प्रिन्टर्स एस्प्लेनेड रोड दिल्ली में मुद्रित ।

काव्य-भास की सुषमा-प्रतिमा
अभिनव पद्म-रत्न के आकर
रस-रक्षा-रत श्री नगेन्द्र को
'तुलसीदास' समर्पित सादर

भूमिका

परम पूज्य पिता (अब स्वर्गीय) पण्डित चौहुरीलाल शर्मा से निरन्तर प्रेरित एवं प्रोत्साहित मैं लगभग पच्चीस वर्षों से गोस्वामी तुलसीदास-सम्बन्धी अनुसंधान में संलग्न रहा हूँ। इस दिशा में मेरी सर्वप्रथम रचना वह भूमिका है जो मैंने १९४७ ई० में 'रत्नावली लघु दोहा संग्रह' के लिए लिखी थी। तदनन्तर मेरे दो लेख १९४८ ई० के 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुए, जिन्हें पढ़कर कतिपय विद्वान् सोरों-सामग्री का अवलोकन करने के लिए सोरों-कासगंज पधारे थे। तब से और भी अनेक लेख नवीन सामग्री का परिचय देने के लिए अथवा आलोचन प्रत्यालोचन के निमित्त लिखे गये। यद्यपि द्वितीय महायुद्ध के कारण लेखों और पुस्तकों के प्रकाशन में मुझे कठिनता का अनुभव करना पड़ा तथापि साप्ताहिक 'नवीन भारत' के द्वारा इस विषय में प्रगति होती रही। 'तुलसी चर्चा' के प्रकाशन पर मुझे ऐसा लगा था कि तुलसी विषयक अनुसंधान की इति-श्री हो गयी पर डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने उत्साहवर्द्धक शब्दों में यह आशा प्रकट की थी कि भविष्य में इस विषय में और भी अधिक प्रयत्न होगा और आज मुझे प्रसन्नता है कि उनकी भविष्य-वाणी सफल हुई, क्योंकि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध आगरा विश्व-विद्यालय की डी० लिट्० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ है।

सोरों-सामग्री के तीव्रालोचकों में प्रमुख हैं श्री चन्द्रबली पांडे और डॉ० माताप्रसाद गुप्त। उनकी आलोचनाओं के कारण विद्वत्समाज में ऊहापोह उपस्थित हुआ तथा सोरों-सामग्री को स्वर्ण की भाँति तपने और शुद्ध होने का अवसर मिला। तुलसी-जगत् में ये दोनों साधुवाद के पात्र हैं, क्योंकि यदि उनकी आलोचनाएँ ध्वंसात्मक होतीं तो कदाचित् कुछ भ्रान्तियों का निराकरण सुचारु रूप से न हो पाता।

मेरे सम्मुख जो सामग्री उपस्थित होती है मैं तब तक उसे प्रामाणिक मानता हूँ जब तक उसके विरुद्ध कोई अन्तःसाक्ष्य अथवा प्रबल बहिःसाक्ष्य उपलब्ध न हो। जन-श्रुतियों में भी सत्य निगूढ़ रहता है, ऐसा मेरा विश्वास है। सोरों-सामग्री से मेरा कोई व्यक्तिगत साहित्येतर सम्बन्ध नहीं क्योंकि न मैं सनाढ्य ब्राह्मण हूँ और न एटा जिले का निवासी ही। मेरा लक्ष्य तो सर्वत्र सत्यानुसंधान रहा है। मैं इस दिशा में कहाँ तक सफल हुआ हूँ यह मेरे विज्ञ पाठक समझ सकते हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में यूरोपीय विद्वानों के (विशेषतः सर्वश्री ग्राउज ग्रिअर्सन और ग्रीव्ज के) अनुसंधानों की, तत्पश्चात् भारतीयों की (विशेषतः आदरणीय मिश्र-बन्धु, डॉ० श्यामसुन्दरदास एवं पं० रामचन्द्र शुक्ल की) गवेषणाओं की चर्चा की गयी है, जिससे यह आभास मिलता है कि उनकी रचनाओं में गोस्वामीजी के जीवन-वृत्त का समय-समय पर क्या रूप रहा। नवीन सामग्री की प्राप्ति पर धारणाओं में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। यद्यपि १८७४ ई० में प्रकाशित बुन्देलखण्ड गजेटियर में राजापुर की स्थापना गोस्वामीजी के द्वारा बतायी गयी और उन्हें स्पष्टतः सोरों का निवासी कहा गया था तथापि यह आश्चर्य है कि उक्त एवं अन्य सभी

अनुसंधाताओं की दृष्टि से तथ्य सर्वथा तिरोहित रहा।

द्वितीय अध्याय में प्राप्त साहित्य की आलोचना की गयी है। 'तुलसी चरित' 'मूल गोसाईं चरित' और 'घट रामायण' आदि रचनाएँ परीक्षा से शुद्ध नहीं उतरतीं। अब तक तुलसी चरित' की बाह्य परीक्षा ही होती रही किन्तु उसके अन्त परीक्षण का अवसर मुझे प्राप्त हुआ। 'घट रामायण' और 'गौतम चन्द्रिका' में मैंने कतिपय अन्यान्य इतिहास-व्यक्तियों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। 'तुलसी प्रकाश' सोरों-पक्ष का समर्थन करता है किन्तु परीक्षण के अनन्तर मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि यह भी सर्वथा शुद्ध नहीं क्योंकि इसमें कुछ साभिप्राय प्रक्षप विद्यमान हैं।

तृतीय अध्याय में सूकरक्षेत्र की सत्ता पर प्रकाश पड़ा है। गोस्वामीजी ने बाल्यकाल की अचेत अवस्था में यहाँ रामकथा सुनी थी जिसका उल्लेख उन्होंने राम चरितमानस' के प्रारम्भ में किया है। कुछ विद्वानों के अनुसार इसकी स्थिति गोंडा जिले में सरयू-घाघरा के संगम पर बतायी गयी किन्तु अन्य विद्वानों के विचार से यह एटा जिले में गंगा के उपकण्ठ पर विद्यमान है। मैंने दोनों मतों की पुष्टि में दिये गये प्रमाण-बाहुल्य पर विचार कर अपना स्पष्ट झुकाव तुलसी-पूर्व तुलसी-कालीन एवं तुलसी-परवर्ती बहुल साक्ष्य के आधार पर दूसरे मत की ओर प्रकट किया है।

चतुर्थ अध्याय में गोस्वामीजी के जन्म-स्थान की चर्चा है। इस विषय में राजापुर, काशी अयोध्या तारी, आदि अनेक स्थानों का उल्लेख किया जाता है। मैंने सभी स्थानों का पर उक्त स्थानों का विशेष विवेचन किया है। जन्म-स्थल-सम्बन्धी निर्णय के हेतु, मैं सोरों और रामपुर के मध्य डगमगाता था किन्तु जब से श्री चन्द्रबली पांडे ने इस सम्बन्ध में गोस्वामीजी का एक अन्त साक्ष्य उपस्थित किया तब से मेरी धारणा रामपुर के प्रति दृढ़तर हो गयी। अब तक गोस्वामीजी के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में मेरी प्रवृत्ति बाह्य साक्ष्य की ओर थी। अतएव पांडे जी से परोक्ष प्रेरणा प्राप्त कर मैं अन्तःसाक्ष्य की ओर झुका, और अब मैं इस साक्ष्य के आधार पर भी सूकर क्षेत्रान्तर्गत गंगोपकण्ठस्थ रामपुर को तुलसीदास की जन्म भूमि समझता हूँ।

पंचम अध्याय में गोस्वामीजी के जन्म-मरण से सम्बन्ध रखने वाली तिथियों पर विचार किया गया है। सम्भवतः 'तुलसी-प्रकाश'-प्रदत्त जन्म तिथि अधिक युक्ति-युक्त एवं अन्तःसाक्ष्य के निकटतर प्रतीत होती है। निधन-तिथि के सम्बन्ध में प्राचीन जन-श्रुति ही महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है।

षष्ठ अध्याय में गोस्वामीजी की वर्णाकृति चित्र प्रतिमा एवं स्वभाव प्रकृति का उल्लेख अन्तःसाक्ष्य पर आधृत एवं सोरों-सामग्री से समर्थित है। किशनगढ़ से गोस्वामीजी का जो चित्र मुझे प्राप्त हुआ उसका भी उल्लेख उनके अन्य चित्रों के विवरण के साथ किया गया है।

सप्तम अध्याय में सोरों-सामग्री का सचित्र परिचय एवं हस्तलिखित पुस्तकों का विवरण दिया गया है। इस सामग्री पर समय-समय पर आक्षेप होते रहे हैं यहाँ तक कि उसको जाली भी कह दिया गया है। मैंने सर्वप्रकार से इसका परीक्षण किया कराया, और विचाराधीन पुस्तकों में केवल एक प्रतिलिपि के अतिरिक्त सभी को प्रामाणिक समझा है। मैंने इस बात पर भी विचार करने का प्रयत्न किया है कि

यदि सोरों-सामग्री न होती तो गोस्वामीजी की जीवन-गाथा का क्या रूप होता ? मेरा निष्कर्ष है कि यह सामग्री गोस्वामीजी से सम्बद्ध विकीर्ण जन-श्रुतियों पर प्रचुर प्रकाश प्रदान करने के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

अष्टम अध्याय में गोस्वामीजी की पत्नी रत्नावली के आत्म-परिचय, काव्य कौशल, उपदेश और दर्शन पर विमर्श उपस्थित किया गया है तथा परिशिष्ट में यथावधि उपलब्ध उनकी रचना एवं जीवनी को प्रामाणिक रूप से पाठान्तर-सहित दे दिया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि रत्नावली के आत्म-परिचय से गोस्वामी जी के जन्म-स्थान गृह एवं परिवार का समुचित आभास मिलता है।

नवम अध्याय में गोस्वामीजी की जीवन-चर्चा उन्हीं के ग्रन्थों के आधार पर की गयी है जिस से उनके जन्म-स्थान मातृ-पितृ-नाम जाति एवं अन्य कतिपय विषयों पर अन्तःसाक्ष्य उपलब्ध होता है। तन्निमित्त कुछ छन्द और गूढ़ार्थ उक्तियों को भी प्रकाश में लाया गया है।

दशम अध्याय में गोस्वामीजी की साहित्यिकता का निरूपण है। उनके द्वारा उपस्थापित काव्य का स्वरूप श्लाघ्य है। उनका माध्यम मेरे विचार से प्रधानतः ब्रजी एवं अवधी भाषाएँ हैं। तुलनात्मक उद्धरणों के द्वारा मैंने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि उनके पितृव्यपुत्र महाकवि नन्ददास, भ्रातीय कवि कृष्णदास, पत्नी रत्नावली, तथा ब्रजमंडल के अन्य कवियों की रचना से 'रामचरितमानस' की भाषा-शैली का प्रचुर साम्य है। गोस्वामीजी के द्वारा प्रयुक्त कतिपय शब्दों को इधर-उधर का बताया जाता रहा है, जिनका प्रयोग उनके उक्त सम्बन्धियों ने मथुरा और सोरों में किया है। अब तक गोस्वामीजी की रचना-शैलियों का जो उल्लेख होता रहा है उसमें कूट-शैली का निर्देश नहीं है। यह शैली सोरों में भी विद्यमान रही है जिसका दर्शन उभरते कतिपय कवियों के संतों तथा पण्डितों की सूक्तियों में होता रहा है। कृतियों के काल और मूलपाठ के निर्णय में कवि की जन्म भूमि सहायक होती है, अतएव निरूपण के पश्चात् इन दोनों दिशाओं में प्रचलित धारणाओं का विपर्यास अप्रस्तावित नहीं।

एकादश अध्याय में मैंने गोस्वामीजी के प्रकीर्ण विचारों का सामञ्जस्य किया है। गोस्वामीजी को अब तक रामानन्दी माना जाता रहा है किन्तु सतर्क विवेचन पर वे रामानन्दजी के अनुयायी नहीं ठहरते। वे स्मार्त वैष्णव थे। यद्यपि वास्तव में वे किसी आचार्य के अनुगामी नहीं थे तथापि उनका स्थान श्री रामानुजाचार्य से सुदूर किन्तु जगद्गुरु श्री शंकराचार्य एवं महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य के निकट मध्य है। 'द फिलॉसफी ऑव तुलसीदास' नामक शोध प्रबन्ध में ब्रह्म जीव परमार्थ आदि विषयों पर मैं तुलनात्मक अध्ययन कर चुका हूँ, अतएव स्थान-संकोच से एवं विषयान्तर भय से मैंने प्रस्तुत प्रबन्ध में तुलनात्मक रूप को छोड़ दिया है। वल्लभाचार्यजी गोस्वामीजी के कैशोर में सोरों पधारे थे और वहाँ उनका पीठ आज तक विद्यमान है। नन्ददासजी वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये थे। यद्यपि गोस्वामीजी उस सम्प्रदाय में दीक्षित न थे, तथापि उसके कुछ सिद्धान्तों ने उन्हें प्रभावित अवश्य किया था। आध्यात्मिक विचारों की चर्चा करते समय मैं उनके राजनीतिक विचारों को न छोड़ सका क्योंकि

अनुसंधाताओं की दृष्टि से तथ्य सर्वथा तिरोहित रहा।

द्वितीय अध्याय में प्राप्त साहित्य की आलोचना की गयी है। 'तुलसी चरित' 'मूल गोसाईं चरित' और 'घट रामायन' आदि रचनाएँ परीक्षा से शुद्ध नहीं उतरतीं। अब तक 'तुलसी चरित' की बाह्य परीक्षा ही होती रही किन्तु उसके अन्तःपरीक्षण का अवसर मुझे प्राप्त हुआ। 'घट रामायन' और 'गौतम चन्द्रिका' में मैंने कतिपय अन्यान्य ऐतिहासिक व्यक्तियों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। 'तुलसी प्रकाश' सोरों-पक्ष का समर्थन करता है किन्तु परीक्षण के अनन्तर मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि यह भी सर्वथा शुद्ध नहीं क्योंकि इसमें कुछ साभिप्राय प्रक्षेप विद्यमान हैं।

तृतीय अध्याय में सूकरक्षेत्र की सत्ता पर प्रकाश पड़ा है। गोस्वामीजी ने बाल्यकाल की अचेत अवस्था में वहाँ रामकथा सुनी थी जिसका उल्लेख उन्होंने 'राम चरितमानस' के प्रारम्भ में किया है। कुछ विद्वानों के अनुसार इसकी स्थिति गोंडा जिले में सरयू-घाघरा के संगम पर बतायी गयी किन्तु अन्य विद्वानों के विचार से यह एटा जिले में गंगा के उपकण्ठ पर विद्यमान है। मैंने दोनों मतों की पुष्टि में दिये गये प्रमाण-बाहुल्य पर विचार कर अपना स्पष्ट झुकाव तुलसी-पूर्व तुलसी-कालीन एवं तुलसी-परवर्ती बहुल साक्ष्य के आधार पर दूसरे मत की ओर प्रकट किया है।

चतुर्थ अध्याय में गोस्वामीजी के जन्म-स्थान की चर्चा है। इस विषय में राजापुर, काशी, अयोध्या तारी, आदि अनेक स्थानों का उल्लेख किया जाता है। मैंने सभी स्थानों का पर उक्त स्थानों का विशेष विवेचन किया है। जन्म-स्थान-सम्बन्धी निर्णय के हेतु, मैं सोरों और रामपुर के मध्य डगमगाता था किन्तु जब से श्री चन्द्रबली पांडे ने इस सम्बन्ध में गोस्वामीजी का एक अन्तःसाक्ष्य उपस्थित किया तब से मेरी धारणा रामपुर के प्रति दृढ़तर हो गयी। अब तक गोस्वामीजी के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में मेरी प्रवृत्ति बाह्य साक्ष्य की ओर थी। अतएव पांडे जी से परोक्ष प्रेरणा प्राप्त कर मैं अन्तःसाक्ष्य की ओर झुका, और अब मैं इस साक्ष्य के आधार पर भी सूकर क्षेत्रान्तर्गत गंगोपकण्ठस्थ रामपुर को तुलसीदास की जन्म-भूमि समझता हूँ।

पंचम अध्याय में गोस्वामीजी के जन्म-मरण से सम्बन्ध रखने वाली तिथियों पर विचार किया गया है। सम्भवतः 'तुलसी-प्रकाश' प्रदत्त जन्म तिथि अधिक युक्ति-युक्त एवं अन्तःसाक्ष्य के निकटतर प्रतीत होती है। निधन तिथि के सम्बन्ध में प्राचीन जन-श्रुति ही महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है।

षष्ठ अध्याय में गोस्वामीजी की वर्णाकृति चित्र प्रतिमा एवं स्वभाव-प्रकृति *का उल्लेख अन्तःसाक्ष्य पर आधृत एवं सोरों-सामग्री से समर्थित है।* जिसतक से गोस्वामीजी का जो चित्र मुझे प्राप्त हुआ उसका भी उल्लेख उनके अन्य चित्रों के विवरण के साथ किया गया है।

सप्तम अध्याय में सोरों-सामग्री का सचित्र परिचय एवं हस्तलिखित पुस्तकों का विवरण दिया गया है। इस सामग्री पर समय-समय पर आक्षेप होते रहे हैं यहाँ तक कि इसको जाली भी कह दिया गया है। मैंने सर्वप्रकार से इसका परीक्षण किया कराया और विचाराधीन पुस्तकों में केवल एक प्रतिलिपि के अतिरिक्त सभी को प्रामाणिक समझा है। मैंने इस बात पर भी विचार करने का प्रयत्न किया है कि

यदि सोरों-सामग्री न होती तो गोस्वामीजी की जीवन-गाथा का क्या रूप होता ? मेरा निष्कर्ष है कि यह सामग्री गोस्वामीजी से सम्बद्ध विकीर्ण जन-श्रुतियों पर प्रचुर प्रकाश प्रदान करने के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

अष्टम अध्याय में गोस्वामीजी की पत्नी रत्नावली के आत्म-परिचय काव्य कौशल उपदेश और दर्शन पर विमर्श उपस्थित किया गया है तथा परिशिष्ट में यथावधि उपलब्ध उनकी रचना एवं जीवनी को अविकल रूप से पाठान्तर-सहित दे दिया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि रत्नावली के आत्म-परिचय से गोस्वामी जी के जन्म-स्थान, गृह एवं परिवार का समुचित आभास मिलता है।

नवम अध्याय में गोस्वामीजी की जीवन-चर्चा उन्हीं के ग्रन्थों के आधार पर की गयी है जिन से उनके जन्म-स्थान मातृ-पितृ-नाम आदि एवं अन्य कतिपय विषयों पर अन्तःसाक्ष्य उपलब्ध होता है। तन्निमित्त कुछ कूट और गूढार्थ उक्तियों को भी प्रकाश में लाया गया है।

दशम अध्याय में गोस्वामीजी की साहित्यिकता का निरूपण है। उनके द्वारा उपस्थापित काव्य का स्वरूप दसाम्य है। उनका माध्यम मेरे विचार से प्रधानतः ब्रजी एवं अवधी भाषाएँ हैं। तुलनात्मक उद्धरणों के द्वारा मैंने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि उनके पितृव्यपुत्र महाकवि नन्ददास, भ्रातृीय कवि कृष्णदास पत्नी रत्नावली तथा ब्रजमंडल के अन्य कवियों की रचना से 'रामचरितमानस' की भाषा-शैली का प्रचुर साम्य है। गोस्वामीजी के द्वारा प्रयुक्त कतिपय शब्दों को इधर-उधर का बताया जाता रहा है जिनका प्रयोग उनके उक्त सम्बन्धियों ने मथुरा और सोरों में किया है। अब तक गोस्वामीजी की रचना-शैलियों का जो उल्लेख होता रहा है उसमें कूट-शैली का निर्देश नहीं है। यह शैली सोरों में भी विद्यमान रही है जिसका वर्णन तत्रस्थ कतिपय कवियों के लेखों तथा पण्डितों की सूक्तियों में होता रहा है। कृतियों के काल और मूलपाठ के विषय में कवि की जन्म भूमि सहायक होगी है, अतएव निरूपण के पश्चात् इन दोनों विषयों में प्रचलित धारणाओं का विपर्यास अप्रस्तावित नहीं।

एकादश अध्याय में मैंने गोस्वामीजी के प्रकीर्ण विचारों का सामञ्जस्य किया है। गोस्वामीजी को अब तक रामानन्दी माना जाता रहा है किन्तु सतर्क विवेचन पर वे रामानन्दजी के अनुयायी नहीं ठहरते। वे स्मार्त वैष्णव थे। यद्यपि वास्तव में वे किसी आचार्य के अनुगामी नहीं थे तथापि उनका स्थान श्री रामानुजाचार्य से सुदूर किन्तु जगद्गुरु श्री शंकराचार्य एवं महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य के निकट-मध्य है। 'द फिलॉसफी ऑव तुलसीदास' नामक शोध प्रबन्ध में ब्रह्म जीव परमार्थ आदि विषयों पर मैं तुलनात्मक अध्ययन कर चुका हूँ अतएव स्थान-संकोच से एवं विषयान्तर भय से मैंने प्रस्तुत प्रबन्ध में तुलनात्मक रूप को छोड़ दिया है। वल्लभाचार्यजी गोस्वामीजी के कैशोर में सोरों पधारे थे और वहाँ उनका पीठ आज तक विद्यमान है। नन्ददासजी वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये थे। यद्यपि गोस्वामीजी उस सम्प्रदाय में दीक्षित न थे, तथापि उसके कुछ सिद्धान्तों ने उन्हें प्रभावित अवश्य किया था। आध्यात्मिक विचारों की चर्चा करते समय मैं उनके राजनीतिक विचारों को न छोड़ सका क्योंकि

आध्यात्मिक विचारों का प्रभाव राजनीति पर पड़ता ही है। उनका कर्तव्याकर्तव्य-परक अथवा आचार-परक विचार एवं उनका मनोविश्लेषण हिन्दी-काव्य-जगत् को नवीन अमूल्य और अप्रतिम देन है जो आधुनिकतम सिद्धान्तों से भी सर्वथा अनुमोदित है।

परिशिष्ट में कुछ महत्वपूर्ण एवं दुर्लभ सामग्री को मूलरूप में एवं उसके परीक्षण-विवरणों को, विद्वानों के अवलोकनार्थ उपस्थित किया गया है।

ज्ञाताज्ञात वे सभी महानुभाव साधुवाद के पात्र हैं जो स्रोतों-सामग्री के संरक्षण संग्रह अथवा सम्प्रदान से सम्बद्ध हैं। मैंने एतद्विषयक नामोल्लेख यथा-स्थान किया है; किन्तु स्व० प० गोविन्द वल्लभ भट्ट शास्त्री श्री पं० भद्रदत्त शर्मा शास्त्री और आचार्य देवव्रत शर्मा विशेष वन्दनीय हैं। मैं पं० भद्रदत्त जी का विशेष आभारी हूँ।

दिल्ली
वसन्त पंचमी सं० २०१८ वि० रामदत्त भारद्वाज

विषय सूची

प्रथम अध्याय अन्वेषण का उपक्रम १—६७

अष्टम अध्याय रत्नावली तुलसी की पत्नी २५७—२८१

नवम अध्याय जीवन गाथा २८२—३१८

अष्टम अध्याय रत्नावली तुलसी की पत्नी २५७—२८१

नवम अध्याय जीवन गाथा २८२—३१८

त्रयोदश अध्याय मनोविज्ञान ४०६—४२०

चतुर्दश अध्याय आचार-शास्त्र ४२१—४३६

चित्र

(क) पांडुलिपि

(ख) स्थान

संकेत

इस प्रबन्ध में गोस्वामी तुलसीदास के ग्रन्थों के संक्षिप्त नाम इस प्रकार हैं—

पा० =पार्वती मंगल जा० =जानकी मंगल रा० प्र० =रामाज्ञा प्रश्न रा० =रामलला नहछू, कृष्ण गी० =श्री कृष्ण गीतावली ब० रा० =बरवै रामायण क० =कवितावली ह० बा० =हनुमान बाहुक गी० =गीतावली वि० =विनय पत्रिका वै० सं० =वैराग्य संदीपनी दो० =दोहावली कुं० रा० =कुण्डलिया रामायण तु० स =तुलसी सतसई।

प्रथम से एकादश तक के अध्यायों में गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित 'रामचरित मानस' के गुटके का किन्तु द्वादश से पञ्चदश तक के अध्यायों में डा० श्यामसुन्दर दास द्वारा सम्पादित 'रामचरित मानस' के संस्करण का उपयोग हुआ है।

अन्वेषण का उपक्रम

(क) यूरोपीय विद्वानों का अनुसन्धान

प्राक्कथन—कुछ यूरोपीय विद्वानों ने गोस्वामी तुलसीदास के जीवनवृत्त पर जो प्रारम्भिक अनुसन्धान किया वह अधिकांश में विश्वसनीय और प्रशंसनीय है। इस दिशा में सर्वप्रथम प्रकाश डालने वाले एच० एच० विल्सन थे तत्पश्चात् गार्सां द तासी ने इस विषय में कार्य किया किन्तु उन्होंने विल्सन का ही अनुगमन किया। एफ० एस० ग्राउज ने विल्सन की कतिपय त्रुटियों का उल्लेख किया। किन्तु सब से महत्त्वपूर्ण कार्य सर जॉर्ज ग्रियर्सन का है। रेवरेंड ई० ग्रीव्ज डॉ० विंसेंट स्मिथ रेवरेंड एफ० ई० के और हिसैन कीने आदि सभी ने उन्हीं का अनुसरण किया है।

(क) विल्सन

विल्सन की सूचनाएँ—विल्सन ने 'ए स्केच ऑव द रिलीजस सेक्ट्स ऑव द हिन्दूज़' नामक अपना लेख एशियाटिक रिसर्च के लिए १८३१ ई० में लिखा था। यह लेख पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और इस पुस्तक का नवीन संस्करण १८६१ ई० में हुआ था। जहाँ तक गोस्वामीजी के जीवनवृत्त का सम्बन्ध है इस नवीन संस्करण में लगभग वे ही सूचनाएँ हैं। हाँ गोस्वामीजी की निधन-तिथि के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रसिद्ध पंक्ति पाद टिप्पणी के रूप में अवश्य दे दी गयी है :—

संवत सोलह सै असी, गंगा (जी) के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

गोस्वामीजी के सम्बन्ध में विल्सन के शब्द मनोरम हैं। वे कहते हैं 'भक्तमाल में तुलसीदास का जो विवरण है उससे विदित होता है कि तुलसीदासजी अपनी उस पत्नी के उपालम्भ के कारण राम भक्ति में प्रवृत्त हुए जिसमें वे इतने अनुरक्त थे। परिव्राजक होने के उपरान्त वे काशी पधारे और तत्पश्चात् चित्रकूट। चित्रकूट में उन्हें हनुमान्‌जी के दर्शन हुए, जिनसे उन्हें कविता लिखने के लिए प्रेरणा मिली और अद्भुत कार्यों के करने की शक्ति भी। उनका यश दिल्ली तक पहुँचा जहाँ सम्राट् शाहजहाँ शासन करते थे। सम्राट् ने गोस्वामीजी को बुलाया और कहा कि हमें राम के दर्शन कराओ। तुलसीदासजी ने ऐसा करना अस्वीकार किया तो सम्राट् ने उन्हें कारागार में डाल दिया। सहस्रों कपि कारागार के चारों ओर एकत्र होकर उसका एवं निकटस्थ भवनों का विध्वंस करने लगे। निकटवर्ती लोगों ने अपनी सुरक्षा के लिए सम्राट् से उन्हें स्वतन्त्र कर देने के लिए प्रार्थना की। शाहजहाँ ने इस कवि को मुक्त कर दिया और कहा कि आप उस अपमान के बदले जो आपको सहना पड़ा कुछ माँगें। तदनुसार तुलसीदासजी ने सम्राट् से निवेदन किया कि आप पुरानी दिल्ली

को जो कि भगवान् राम का निवास-स्थान है छोड़ दें। इस प्रार्थना के अनुसार सम्राट् ने उस स्थान को त्याग कर नवीन नगर की स्थापना की जो तब से शाहजहाँबाद नाम से ख्यात है। तदुपरान्त तुलसीदासजी वृन्दावन पधारे और नाभाजी से मिले। वे वहाँ बस गये और उन्होंने राधा-कृष्ण की अपेक्षा सीताराम की अर्चना के लिए आग्रह किया।

हाजीपुर का उल्लेख—विल्सन कहते हैं कि इस यशस्वी लेखक की इन गाथाओं के अतिरिक्त हमें उसका कुछ अन्य ऐसा परिचय उसके ही ग्रन्थों तथा जन श्रुतियों से उपलब्ध है जो उक्त बातों से कुछ भिन्न है। इनसे ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसीदासजी सरवरिया ब्राह्मण एवं चित्रकूट के निकट हाजीपुर के जन्मजात निवासी थे। प्रौढ़ होकर वे वाराणसी में बसे और उसी नगर के राजा के दीवान पद पर सुशोभित हो गये। उनके दीक्षा-गुरु जगन्नाथदास थे जो अग्रदास के शिष्य एवं नाभाजी के गुरु-भाई थे। अपने गुरु के साथ वे वृन्दावन के निकटवर्ती गोवर्द्धन स्थान पर गये, तत्पश्चात् काशी पधार कर उन्होंने हिन्दी में १६३१ वि० में रामचरितमानस का प्रारम्भ किया। उस समय वे इकत्तीस वर्ष के थे। इस अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ के अतिरिक्त तुलसीदासजी ने कुछ और ग्रन्थ लिखे हैं, यथा —सतसई जो विभिन्न विषयों पर सात सौ दोहों का संग्रह है रामगुणावली जिसमें राम का गुणानुवाद है गीतावली और विनय पत्रिका जो भक्ति-प्रधान हैं और जिनमें सीताराम की विविध स्तुतियाँ हैं। तुलसीदासजी काशी में रहते रहे। वहाँ उन्होंने सीताराम का मन्दिर बनवाया और एक मठ की स्थापना की। ये दोनों आज तक विद्यमान हैं। उन्होंने १६८० वि० में जहाँगीर के शासनकाल में महाप्रयाण किया अतएव तुलसीदास और शाहजहाँ का वार्त्तालाप ऐतिहासिक व्यतिक्रम है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि विल्सन महोदय तुलसीदासजी को हाजीपुर वाले सरवरिया ब्राह्मण जगन्नाथ दास का शिष्य बताते हैं और इस बात का उल्लेख करते हैं कि रामायण प्रारम्भ करने के समय वे इकत्तीस वर्ष के थे तथा काशी-नरेश के दीवान थे। किन्तु विल्सन महोदय के इस लेख से किसी भी परवर्ती समर्थक को तनिक भी सन्तोष न हुआ जैसा कि यथा-स्थान निर्दिष्ट होगा।

(ख) ग्राउज

रामचरितमानस का अंग्रेजी अनुवाद—एफ एस० ग्राउज ने समग्र रामचरितमानस का अंग्रेजी में अनुवाद किया है। उन्होंने इस अनुवाद का सूत्रपात एक लेख के द्वारा किया जो १८७६ ई० में बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में प्रकाशित हुआ था। लेख का नाम है 'प्रोलोग टु द रामायण ऑव तुलसीदास ए सैम्पिल ट्रांसलेशन'। इस लेख में तथा रामायण के अपने अनुवाद की भूमिका में ग्राउज लिखते हैं कि विल्सन के स्केच में अनेक विवरण छोड़ दिये गये और अन्य ऐसे सम्मिलित कर दिये गये हैं जिनका आधार गोस्वामीजी का काव्य नहीं है।

कुछ बाधाएँ—ग्राउज आगे कहते हैं हिन्दु विचारधारा सदा से ऐतिहासिक सत्य की उपेक्षा का तथा चमत्कार के प्रति श्रद्धा-विश्वास का, विचित्र उदाहरण है।

यद्यपि भक्तमाल की टीका इस महाकवि की मृत्यु से एक शताब्दी के भीतर की होगी तथापि वह कवि के जीवन के सम्बन्ध में अल्पविश्वसनीय घटनाओं की सूचना देती किन्तु मिथ्या सूचनाओं का भी स्पष्टतः सम्मिश्रण कर देती है। उनकी पत्नी ने उन्हें सर्वप्रथम भौतिक प्रेम के बदले दिव्य भक्ति तथा रामार्चना के लिए प्रेरित किया था। इस घटना को सत्य समझा जा सकता है किन्तु 'भक्तमाल' में ऐसी अन्य गाथाएँ भी हैं जिनका महाकवि से घनिष्ठ सम्बन्ध है और जो बड़ी लोकप्रिय हैं, उनका आधार चाहे जो हो। कुछ गाथाएँ ये हैं —किसी प्रेत ने गोस्वामीजी का हनुमान्‌जी से साक्षात्कार कराया और उनके द्वारा राम-लक्ष्मण के दर्शन हुए। गोस्वामीजी ने किसी हत्यारे से भगवान् का नामोच्चारण कराया और उसे पाप मुक्त कराया तथा किसी चितागामिनी विधवा के पति को जीवन प्रदान किया। जब सम्राट् ने गोस्वामीजी से चमत्कार-प्रदर्शन के लिए कहा तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया अतः सम्राट् ने उन्हें कारागार में डाल दिया किन्तु हनुमान्‌जी के वानर-दल ने उन्हें मुक्त करा दिया और सम्राट् को वह स्थान त्याग देना पड़ा। एक बार भगवान् राम ने, जो गोस्वामीजी के निवास की चौकसी कर रहे थे चोरों को सेंध देने से रोका। तुलसीदासजी का दर्शस्पर्श नाभाजी से वृन्दावन में हुआ था। गोस्वामी जी भगवान् कृष्ण की अपेक्षा भगवान् राम के अधिक भक्त थे, यद्यपि स्वयं भगवान् कृष्ण ने गोस्वामीजी को यह बता दिया था कि राम और कृष्ण में कोई अन्तर नहीं।

ग्राउज यह भी बताते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास के सम्बन्ध में साधारण-सी घटनाएँ स्वयं गोस्वामीजी के ग्रन्थों से संकलित हो सकती हैं। उदाहरणार्थ रामायण के उपोद्घात से स्पष्ट है कि गोस्वामीजी ने रामायण की रचना का प्रारम्भ अयोध्या में १६३१ वि. में किया और वे इससे पूर्व कुछ काल तक सोरों में अध्ययन कर चुके थे। जाति से वे कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, और जैसा कि भक्ति सिन्धु में लिखा है उनके पिता का नाम आत्माराम था और वे हस्तिनापुर में उत्पन्न हुए थे। ग्राउज के अनुसार 'भक्ति सिन्धु' कोई विशेष प्रामाणिक रचना नहीं, यह एक नवीन कविता है और उसके रचयिता घटना के अभाव में कल्पना का आश्रय ले बैठे हैं। अन्य व्यक्ति गोस्वामीजी का जन्मस्थान चित्रकूट के निकट हाजीपुर मानते हैं। उनके जीवन का अधिकांश निश्चय ही काशी में व्यतीत हुआ यद्यपि उन्होंने कुछ अंश सोरों, अयोध्या चित्रकूट प्रयाग और वृन्दावन में व्यतीत किये और १६८० वि० में अपना नश्वर शरीर त्यागा।

सोरों में लालन-पालन—कदाचित् ग्राउज ऐसा समझते हैं कि 'भक्ति सिन्धु' के रचयिता ने इस बात का आविष्कार किया कि तुलसीदासजी के पिता का नाम आत्माराम था और उनका जन्मस्थान हस्तिनापुर था पर ग्राउज स्वयं यह सूचित करते हैं कि तुलसीदासजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और सोरों में उनका लालन-पालन हुआ था। ग्राउज महोदय पहली बात के लिए किसी कारण का निर्देश नहीं करते किन्तु दूसरी के लिए उन्होंने रामायण के उपोद्घात की ओर इंगित किया है। गोस्वामीजी ने रामायण का लिखना किस अवस्था में प्रारम्भ किया, इस विषय में वे चुप हैं। गोस्वामीजी की निधन तिथि पर उन्हें कोई आपत्ति नहीं। उन्होंने 'सोरों'

शब्द की व्युत्पत्ति की है उनके मत से 'सूकर ग्राम' (अर्थात् वराह नगर) का विकृत रूप 'सूभर गाउँ' हुआ और इन दोनों विकृत शब्दों के एकीकरण से 'सुभराउँ' बना और इससे 'सोरों'। यह व्युत्पत्ति कहाँ तक संगत है, इस सम्बन्ध में हम फिर विचार करेंगे।

(ग) सर जार्ज ग्रार्यर ग्रियर्सन

प्रमुख गवेषक—गोस्वामी तुलसीदास पर प्रमुख गवेषी सर जार्ज ग्रार्यर ग्रियर्सन हैं। १८८८ ई० में उन्होंने अपने ग्रन्थ 'द मॉडर्न वर्नाक्युलर लिट्रेचर ऑव हिन्दुस्तान' में हमारे महाकवि का परिचय इस प्रकार दिया है :—

तुलसीदासजी सरवरिया ब्राह्मण थे जो सोलहवीं शती में उत्पन्न हुए और १६२४ ई० में दीर्घायु पाकर काशी के असी घाट पर दिवंगत हुए जैसा कि इस प्रचलित दोहे से विदित होता है —

संवत सोरह सै असी, असी गंग के तीर।
सावन शुक्ला सत्तमी तुलसी तज्यो शरीर॥

'भक्त सिन्धु' और 'वृहद्रामायण माहात्म्य' के अनुसार गोस्वामीजी के पिता आत्माराम थे माता हुलसी थी और वे कुछ विद्वानों के अनुसार चित्रकूट के निकट हाजीपुर में उत्पन्न हुए थे यद्यपि जनश्रुति यह है कि वे यमुनाजी के किनारे बाँदा जिले में उत्पन्न हुए थे। उनका बाल्यकाल सूकरखेत अर्थात् सोरों में व्यतीत हुआ और वहीं वे राममक्ति में रत हुए थे। प्रियादास के अनुसार गोस्वामीजी अपनी पत्नी के उपालम्भों के कारण विरक्त होकर काशी चले गये जहाँ उन्होंने अपने जीवन का बहुत सा समय व्यतीत किया। कभी-कभी वे अयोध्या मथुरा वृन्दावन कुरुक्षेत्र प्रयाग पुरुषोत्तम पुरी तथा अन्य तीर्थों में भ्रमण करते चले जाते। उनके जीवन की एक और घटना जिसका निश्चयपूर्वक उल्लेख हो सकता है यह है कि वे आनन्दराम और कन्हई नामक दो व्यक्तियों के अभियोग में पंच बने थे।

सहयोग—गोस्वामीजी के विषय में उन्होंने महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी और बाबू रामदीन सिंह जैसे विद्वानों का सहयोग प्राप्त किया और उसी सहयोग के फलस्वरूप उन्होंने गोस्वामीजी के सम्बन्ध में कतिपय लिखित विवरणों एवं अधिकतर अलिखित अनुश्रुतियों का संग्रह किया। उनके प्रस्तुत संग्रह ने उनके उत्तरवर्ती भारतीय और विदेशीय विद्वानों को गोस्वामीजी के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में प्रभावित और प्रेरित किया। अतएव प्रस्तुत विषय पर ग्रियर्सन महोदय के उस संकलन का कुछ और उल्लेख कर देना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।[1]

घटनाएँ—ग्रियर्सन लिखते हैं कि महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने जो बहुमूल्य घटनाएँ मुझे बताईं मैं उन्हीं से प्रारम्भ करता हूँ। कुछ लोग कहते हैं कि कवि (तुलसीदास) कान्यकुब्ज थे और दूसरे कहते हैं कि वे सरयूपारीण थे। पहले प्रकार के ब्राह्मण भेंट लेना भिक्षा माँगना आदि बातों को बुरा समझते हैं किन्तु

---

१ नोट्स ऑन तुलसीदास (इंडियन एण्टीक्वेरी, जिल्द २२, सन् १८९३ ई०)

तुलसीदासजी कवितावली में स्पष्ट लिखते हैं 'मांगो कुल मंगता', अर्थात् मैं ऐसे कुल में उत्पन्न हुआ जो भिक्षा-वृत्ति करता है अतः तुलसीदासजी अवश्य सरयूपारीण रहे होंगे। जनश्रुति है कि वे उस उपजाति के पराशर गोत्री दुबे थे। अत्यन्त विश्वस्त विवरणों के अनुसार वे संवत् १५८९ में उत्पन्न हुए थे अतः रामायण प्रारम्भ करते के समय उनकी अवस्था बयालीस वर्ष की होनी चाहिए, यह बात ग्रन्थ से ही पुष्ट होती है। निश्चय ही यह ग्रन्थ किसी प्रौढ़ बुद्धि और ऐतिहासिक पुरुष का लिखा होना चाहिए।

अंग्रेजी शासन से पहले ज्येष्ठा नक्षत्र के अन्त में तथा मूल नक्षत्र के प्रारम्भ में जो बच्चे उत्पन्न होते थे उन्हें अभुक्त-मूलज कहा जाता और अवश्य समझा जाता था क्योंकि वे अपने पिता के जीवन के लिए अनिष्टकारक समझे जाते थे इस कारण उनके माता पिता उन्हें प्रायः त्याग दिया करते थे। यदि वात्सल्य के कारण वे इतने अमानुषीय न होते तो वे आठ वर्ष तक उनका मुख नहीं देखते थे। मुहूर्त चिन्तामणि' में जो तुलसीदासजी के समय में बनी होगी यह लिखा है कि "जातं शिशुं तत्र परित्यजेद्वामुखम् पितास्याष्ट समा न पश्येत्"। पुराणों में मरात्मक का उल्लेख मिलता है कि रावण का बड़ा पुत्र अभुक्त मूल में उत्पन्न होने के कारण त्याग दिया गया था वह मरा नहीं बढ़ता रहा और उसकी बहुत-सी सन्तति-प्रसन्तति हुई किन्तु नारदजी की प्रेरणा से रावण ने उसे बुला लिया अतएव वह स्वयं राम से युद्ध कर नाश को प्राप्त हुआ।

तुलसीदासजी भी अभुक्त-मूल में उत्पन्न हुए थे। जब उनके माता-पिता ने उन्हें त्याग दिया तो किसी परिव्राजक ने उन्हें उठा लिया क्योंकि भला, कोई भी आदरणीय गृहस्थ ऐसे बालक का क्या करता? स्वयं तुलसीदासजी विनयपत्रिका (२२७ २) में लिखते हैं 'जननी-जनक तज्यो जनमि करम बिनु बिधि हु सज्यो अवडेरे। इसी प्रकार का भाव कवितावली (७ ७३) में मिलता है। गोस्वामीजी अवश्य बचपन में इस साधु के साथ रहे और भारतवर्ष में घूमे होंगे और उन्होंने उसी से तथा उसके साथियों से राम-कथा सुनी होगी जैसा कि उन्होंने स्वयं बालकाण्ड में लिखा है 'मैं पुनि निज गुरुसन सुनी।

कदाचित् इस साधु ने अपनी प्रथा के अनुसार गोस्वामीजी का नाम तुलसीदास रखा। जब कभी किसी व्यक्ति को दीक्षित किया जाता है तो उसे भगवान् विष्णु की मूर्ति पर चढ़ाया हुआ तुलसी-दल खाने के लिए दिया जाता है। यही बात इस अभागे बालक के सम्बन्ध में हुई होगी और इसी कारण 'तुलसी' नामकरण भी।

संस्कृत ज्ञान—लोगों की ऐसी धारणा है कि गोस्वामीजी गंभीर पण्डित थे किन्तु यह भूल है जैसा कि उनके ग्रन्थों से स्पष्ट है। संस्कृत में उनकी अनेक अशुद्धियाँ हैं। उदाहरणतः रामचरितमानस के उत्तरकाण्डीय प्रारम्भिक श्लोकों में 'केकी कण्ठाभनीलं' में 'केकि' 'चिन्तकस्य मन भृङ्ग सङ्गिनौ' में 'मनोभृङ्ग' और रुद्राष्टक के 'त्रिशूल हरणोपमे' में 'तुष्टये' होना चाहिए था।

जनश्रुति—ग्रियसन ने इस जनश्रुति का उल्लेख किया है कि गोस्वामीजी के पिता का नाम आत्माराम दुबे और उनकी माता का नाम हुलसी था। उनका वास्तविक

नाम 'राम बोला' था जैसा कि उनकी कवितावली से विदित है। उनके दीक्षा गुरु नरहरि और श्वशुर दीनबन्धु पाठक थे। उनकी पत्नी का नाम रत्नावली और पुत्र का नाम तारक था। निम्नलिखित दोहों में उक्त विवरणों का समावेश है —

गुर्वें ग्रातमाराम है पिता नाम कन काम।
माता तुलसी कहत सब तुलसी के गुन काम॥
प्रह्लाद-उधरन नाम करि गुरु को सुमिरे साधु।
प्रकट नाम नाँहि कहत सब कहे होत अपराधु॥
दीनबन्धु पाठक कहत ससुर नाम सब कोइ।
रत्नावलि तिय नाम है सुत तारक पत होइ॥

गुरु के नाम का स्पष्ट उल्लेख बिना अपराध के नहीं होता किन्तु यह नाम भगवान् विष्णु के उस अवतार का द्योतक है जिन्होंने प्रह्लाद की रक्षा की थी अर्थात् नरहरि। अन्तिम पंक्ति से ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि के पुत्र का देहान्त बाल्यकाल में ही हो गया था। ये महाकवि भी अपने गुरु का नाम 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में रूपान्तर से प्रकट करते हैं 'बंदौ गुरु पद कंज कृपासिंधु नर रूप हरि'। गोस्वामीजी ने अपनी माता के नाम का भी उल्लेख नीचे किया है रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी तुलसीदास हित हिय हुलसी सी (रा १ ३ १)

जन्म स्थान और शिक्षा-स्थान—कई स्थान गोस्वामी जी का जन्म-स्थान होने का गौरव करते हैं यथा अन्तर्वेद की तारी चित्रकूट के समीप हाजीपुर और बाँदा जिले में यमुनाजी के तट पर राजापुर। इन स्थानों में तारी का दावा सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होता है। बचपन में तुलसीदासजी ने 'सूकर क्षेत्र' अर्थात् वर्तमान 'सोरों' में अध्ययन किया जैसा रामचरितमानस के बालकाण्ड से स्पष्ट है। अपने पिता के जीवनकाल में उन्होंने विवाह किया और उनकी मृत्यु के पश्चात् वे गृहस्थ की भाँति सन्तोषपूर्वक रहने लगे। उनके एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था।

गुरु और सम्प्रदाय—तुलसीदासजी रामानुजीय विशिष्टाद्वैत के उस रूप के अनुयायी थे जिसका रामानन्दजी ने प्रचार किया। किन्तु तुलसीदासजी को इस सम्प्रदाय का कट्टर अनुयायी कहना ठीक न होगा क्योंकि अयोध्या में वे वैरागी वैष्णव न थे स्मार्त थे और किसी सीमा तक महादेवजी की पूजा भी करते थे। राम चरितमानस में उन्होंने स्वयं लिखा है कि मेरा सिद्धान्त 'नाना पुराण निगमागम-सम्मत' है और वे जब-तब शंकराचार्यजी के उस निर्विशेष अद्वैत वेदान्त की ओर इंगित करते हैं जो माया और निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करता है। गोस्वामीजी के एक घनिष्ठ मित्र भी शांकर वेदान्त के अनुयायी थे। मोटे रूप से कहा जा सकता है कि गोस्वामीजी का सिद्धान्त ऐसा विशिष्टाद्वैत था जिसमें अद्भुत तत्त्वों के सम्मिश्रण का अवकाश था। ग्रियर्सन महोदय को बाबा मोहनदास साधु से एक गुरु-परम्परा तालिका प्राप्त हुई। इसका प्रारम्भ श्रीमन्नारायणजी से हुआ जो शिष्य परम्परा में रामानुजाचार्य से बारह पीढ़ी पूर्व थे। ग्रियर्सन के पास इस तालिका के परीक्षण करने का कोई साधन न था। अतएव उन्होंने उसे उसी रूप में उपस्थित कर दिया है जिसमें उन्हें वह प्राप्त हुई थी। हाँ उन्होंने इस बात का उल्लेख अवश्य किया है कि यह

तालिका अधिकांश में जनश्रुतियों पर आश्रित है। उन्हें पटना से भी एक और नामावली प्राप्त हुई जो किन्हीं बातों में उक्त नामावली से भिन्न है और जिसका प्रामाण्य अज्ञात था। वे नामावलियाँ इस प्रकार हैं

क्रमांक	मोहनदास की सूची	पटनावाली सूची
१	श्रीमन्नारायण	
२	श्री लक्ष्मी	
३	श्री श्रीधर मुनि	
४	श्री सेनापति मुनि	
५	श्री कारिसुनु मुनि	
६	श्री सैन्यनाथ मुनि	ये ११ नहीं हैं
७	श्री नाथ मुनि	
८	श्री पुण्डरीक	
९	श्री राम मिश्र	
१०	श्री पराङ्कुश	
११	श्री यामुनाचार्य	
१२	श्री रामानुज स्वामिन्	श्री रामानुज स्वामी
१३	श्री शठकोपाचार्य	नहीं है।
१४	श्री कूरेशाचार्य	
१५	श्री लोकाचार्य	मोहनदास की सूची के समान
१६	श्री पराशराचार्य	,,
१७	श्री वाकाचार्य	श्री मधव् इन्द्राचार्य
१८	श्री लोकार्य	मोहन दास की सूची के समान
१९	श्री देवाधिपाचार्य	
२०	श्री शैलेशाचार्य	
२१	श्री पुरुषोत्तमाचार्य	
२२	श्री गंगाधरानन्द	
२३	श्री रामेश्वरानन्द	श्री राम मिश्र
२४	श्री द्वारानन्द	मोहनदास की सूची के समान
२५	श्री देवानन्द	
२६	श्री श्यामानन्द	,,
२७	श्री श्रुतानन्द	
२८	श्री नित्यानन्द	,,
२९	श्री पूर्णानन्द	
३०	श्री हर्यानन्द	
३१	श्री श्र्यानन्द	नहीं है।
३२	श्री हरिवर्यानन्द	मोहनदास की सूची के समान

क्रमांक	मोहनदास की सूची	पटनावाली सूची
३३	श्री राघवानन्द	मोहनदास की सूची के समान
३४	श्री रामानन्द	
३५	श्री सुरेश्वरानन्द	
३६	श्री माधवानन्द	"
३७	श्री गरीबानन्द	श्री गरीबदास जी
३८	श्री लक्ष्मीदासजी	मोहनदास की सूची के समान
३९	श्री गोपालदासजी	
४०	श्री नरहरिदासजी	"
४१	श्री तुलसीदासजी	

संदेह—यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि विल्सन महोदय ने अपने 'रिलिजस सैक्ट्स् ऑफ हिन्दुज' नामक पुस्तक में रामानुज और रामानन्द के बीच में अपेक्षाकृत अल्पसंख्यक पीढ़ियों का उल्लेख किया है। पैंतीसवें पृष्ठ की प्रथम टिप्पणी में वे इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि रामानुज एकादश शताब्दी के अन्त में उत्पन्न हुए थे और द्वादश शताब्दी के प्रथमार्द्ध में आचार्य रूप से उनकी ख्याति स्थिर हो चुकी थी। ३६वें पृष्ठ पर वे लिखते हैं कि लोग कभी-कभी ऐसा भी कहते हैं कि रामानन्दजी रामानुज के निजी शिष्य थे किन्तु यह बात भ्रमपूर्ण प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त वे एक विशेष विवरण के आधार पर शिष्य-परम्परा का उल्लेख इस प्रकार करते हैं: रामानुज—देवानन्द—हरियानन्द—राघवानन्द—रामानन्द। इस सूची के अनुसार तेरहवीं शताब्दी के अन्त में रामानन्दजी का होना संगत है। 'भक्त माल' में उक्त सूची का चतुर्थ व्यक्ति छूट गया है। विल्सन को स्वयं अपनी सूची की सत्यता पर सन्देह है और उनकी ऐसी धारणा है कि रामानन्द जी चतुर्दश शताब्दी के अन्त में अथवा पंचदश शतक के प्रारम्भ से पूर्व विद्यमान नहीं थे इस प्रकार, उनके अनुसार, रामानुज और रामानन्द में तीन शताब्दियों का अन्तर होना चाहिए।

विवाह-विरक्ति—ग्रियर्सन महोदय सूचित करते हैं कि गोस्वामीजी के श्वसुर दीनबन्धु पाठक रामभक्त थे। पाठकजी की कन्या भी राम की उपासिका थी और जब कभी साधु-सन्त उसके पिता से मिलने आते तो वह उनका आदर-सत्कार करती थी। बचपन में उसका विवाह तुलसीदासजी से हो गया था। बड़े होने पर वह अपने पति के साथ रहने लगी। उसके पतिदेव उसमें अत्यन्त अनुरक्त थे। पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् एक दिन की बात है कि तुलसीदासजी घर आये ज्ञात हुआ कि पत्नी बिना बताये अपने पिता के घर चली गयी है। उन्हें बड़ी चिन्ता हुई और वे उसके पीछे-पीछे वहाँ पहुँचे किन्तु उसने उनका स्वागत निम्नलिखित दोहों से किया

लाज न लागत आपको दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि चर्म मय देह मम तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ होत न तौ भवभीति॥

अर्थात् क्या आपको लज्जा नहीं आती कि आप मेरे पीछे यहाँ तक दौड़े चले आये हैं ? ऐसे प्रेम को धिक्कार है किन्तु, हे नाथ मैं आपसे क्या कहूँ। मेरा शरीर तो अस्थि और चम का बना हुआ है। यदि आपका वह प्रेम जो इस शरीर के प्रति है भगवान् राम के प्रति होता तो आपके लिए सांसारिक भय न होता।

इन शब्दों को सुनते ही गोस्वामीजी में तुरन्त परिवर्तन हो गया और वे अपने घर की ओर चल पड़े। उनकी पत्नी का ऐसा कोई विचार न था कि उनमें इतनी उत्कट प्रतिक्रिया उत्पन्न हो अतएव उसने उनसे लौटने टिकने और भोजन करने के लिए कहा जिससे वह भी साथ चलती। किन्तु कौन्ता के समक्ष कमजन क्या कर सकता था ? उसी समय से तुलसीदासजी विरक्त हुए और घर द्वार छोड़ मुक्त पुरुष की भाँति रामभक्त हो परिव्राजक बन गये। उन्होंने पहले तो अयोध्या को तत्पश्चात् काशी को अपना प्रधान निवास-स्थान बनाया और वहाँ से वे सदा-कदा मथुरा वृन्दावन कुरुक्षेत्र प्रयाग और पुरुषोत्तम-पुरी के दर्शन करने चले जाते थे।

पत्र-व्यवहार और आकस्मिक मिलन—ग्रियर्सन आगे लिखते हैं कि गोस्वामीजी के गृहत्याग के पश्चात् निम्नलिखित पत्र पत्नी ने अपने पति को लिखा था

कटि की खीनी कनक सी रहत सखिन संग सोइ।
मोहि फटे की डर नहीं अनत कटे डर होइ॥

अर्थात् कमर की पतली स्वर्णकान्ति वाली मैं अपनी सहेलियों के साथ रहती और उन्हीं के साथ सोती हूँ। मुझे इस बात का तो डर नहीं कि मेरा हृदय फट जायगा किन्तु मुझे यह डर अवश्य है कि आप कहीं अन्यत्र फँस न जायें। इसका उत्तर गोस्वामीजी ने इस प्रकार दिया था

कटे एक रघुनाथ संग बाँधि जटा सिर केस।
हम तो चाखा प्रेम रस पत्नी के उपदेस॥

अर्थात् मैं तो केवल रघुनाथजी से प्रभावित हूँ मैंने सिर पर जटा-जूट धारण कर लिया और अपनी पत्नी के उपदेश से भगवत्-प्रेम-रूपी रस का आस्वादन किया है। इस उत्तर को प्राप्त करके पत्नी ने अपने पति के कार्य की प्रशंसा करते हुए अपनी शुभकामनाएं प्रेषित की। वर्षों के पश्चात् जब तुलसीदास वृद्ध हो चुके थे वे चित्रकूट से लौट रहे थे। भक्ति में तल्लीन वे अपने श्वसुर के ग्राम में अनजान आ पधारे और उन्होंने भिक्षा चाही। उस समय उन्हें यह ज्ञात न था कि मैं कहाँ हूँ और यह गृह किसका है। उनकी पत्नी भी जो अब बहुत बूढ़ी हो गयी थी, प्रथा के अनुसार उस आदरणीय अतिथि का आतिथ्य करने के लिए बाहर आयी। उसने पूछा कि आप क्या भोजन पायेंगे ? वे बोले कि मैं खिचड़ी बनाना चाहता हूँ। अतएव उसने उनके लिए चौका प्रस्तुत किया और लकड़ी चावल दाल शाक और घी सा उपस्थित किये। स्मार्त वैष्णवों की प्रथा के अनुसार उन्होंने स्वयं अपने हाथ से भोजन पकाना प्रारम्भ किया। जब उनकी पत्नी ने उन्हें एक-दो बार बोलते सुना तो उसने उन्हें पहचान लिया। उसे इस बात से बड़ी प्रसन्नता हुई कि मेरे पति राम के इतने बड़े भक्त हो गये हैं किन्तु उसने अपने को प्रकट न कर केवल इतना कहा कि हे परमादरणीय स्वामिन् क्या मैं आपके लिए कुछ काली मिर्च लाऊँ ? वे बोले कि मेरे झोले में हैं। वह बोली

कि क्या कुछ मसाले ले आऊँ ? उत्तर मिला कि मेरे झोले में हैं। "आपके लिए कुछ कपूर ले आऊँ ?" "मेरे झोले में है।" तब उसने उनकी आज्ञा प्राप्त किये बिना उसके चरण धोने का प्रयत्न किया किन्तु उन्होंने उसे ऐसा नहीं करने दिया। तब वह अपने मन में रात भर सोचती रही कि मैं इनके साथ रहने तथा अपने समय को अपने पतिदेव तथा भगवान् की सेवा में व्यतीत करने का क्या उपाय करूँ ? कभी ऐसा सोचती तो कभी ऐसा स्मरण भी कर लेती थी कि मेरे पति तो मुझे छोड़कर संन्यासी हो गये हैं और मेरे संग से उन्हें बाधा होगी। किन्तु अन्त में उसने यह सोचा कि मेरे पतिदेव सिर्फ मसाले और कपूर जैसी सांसारिक वस्तुएँ अपने झोले में रखते हैं तो मैं उनकी पत्नी भी उनके लिए बाधक नहीं हो सकती। तदनुसार प्रत्यूष में उसने तुलसीदासजी से साक्षात्कार किया और उनसे वहीं टिकने और भजन-पूजन करने के लिए आग्रह भी किन्तु उन्होंने उसकी सभी प्रार्थनाएँ अस्वीकार कर दीं। यहाँ तक कि वे भोजन करने के निमित्त और टिकने के लिए भी अनिच्छुक रहे। तब वह बोली कि 'हे आदरणीय स्वामिन् क्या आप मुझे पहचानते ?' वे बोले : 'नहीं'। वह बोली 'जानते हैं कि यह कौन नगर है ?' वे बोले 'नहीं'। तब उसने अपना परिचय दिया और प्रार्थना की कि आप मुझे अपने साथ रखें किन्तु वे इस बात के लिए किसी प्रकार सहमत न हुए। तब वह बोली

> खरिया खरी कपूर लौं, उचित न पिय तिय त्याग।
> कै खरिया मोहि मेल कै अचल करो अनुराग॥

अर्थात् यदि आपके झोले में खरिया से कपूर पर्यन्त सभी वस्तुएँ विद्यमान हैं तो हे प्रिय, आपको अपनी पत्नी का त्याग उचित नहीं या तो आप मुझे भी अपने झोले में रख लें और अपने प्रेम को स्थायी बना लें या सांसारिक चिन्ताओं के प्रतीक इस झोले को त्याग कर भगवान् के प्रति अपनी भक्ति को और दृढ़ कर लें।[1] यह सुनते ही तुलसीदासजी चल पड़े और उन्होंने अपने झोले की सभी वस्तुएँ ब्राह्मणों को बाँट दीं और अपनी पत्नी के उपदेश से उनका दिव्य ज्ञान पहले से भी अधिक सुदृढ़ हो गया।

वृन्दावन-गमन—ग्रियर्सन ने एक और ऐसी घटना का वर्णन किया है जिसका उल्लेख उनसे पूर्ववर्ती लेखकों ने भी किया था। वह यह है कि तुलसीदासजी दिल्ली से वृन्दावन गये और वहाँ भक्तमाल के प्रणेता एवं कृष्णभक्त नाभादासजी से उनकी भेंट हुई। एक दिन अन्य वैष्णवों के साथ यमुना के लिए दोनों कवि गोपाल-मन्दिर में पधारे। एक वैष्णव ने व्यंग्यपूर्वक कहा कि इसने अपने इष्टदेव राम को त्याग दिया है और अन्य देव (अर्थात् कृष्ण) की पूजा करने आया है। इस पर तुलसीदास बोल उठे—

> का बरनौं छबि आज की भले बिराजे नाथ।
> तुलसी मस्तक तब नवे, धनुष बान लो हाथ॥

अर्थात् मैं किस प्रकार कृष्ण भगवान् की आज की शोभा का वर्णन करूँ वे वास्तव

---

१ वैष्णव साधुओं के झोले के लिए 'खरिया' शब्द का प्रयोग किया जाता है क्योंकि वह प्रायः खस का बना होता है और कन्धों पर धारण किया जाता है। (ग्रियर्सन)

में बड़े भले प्रतीत हो रहे हैं। किन्तु तुलसीदास तो उन्हें अपना मस्तक तब नवायगा जब वे अपने हाथ में धनुष-बाण लेकर आविर्भूत होंगे। गोस्वामीजी ऐसा कह ही रहे थे कि भगवान् कृष्ण की मूर्ति में परिवर्तन हो गया। उनकी बंसी बाण बन गयी थी और छड़ी धनुष। इस चमत्कार से चकित होकर सब ने तुलसीदासजी की प्रशंसा की।

'जर्नल' में वृत्तान्त—१९०३ ई० में ग्रियर्सन ने 'जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सुसाइटी' में गोस्वामीजी का जो विवरण दिया है वह 'इण्डियन एंटिक्वेरी' वाले से किंचित् अर्थों में भिन्न होता हुआ इस प्रकार है

तुलसीदासजी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। उन्हें अभुक्त मूल में उत्पन्न होने के कारण उनके माता-पिता ने तत्कालीन प्रथा के अनुसार त्याग दिया था। किसी घूमते-फिरते साधु ने उन्हें पुनः उठा लिया और शिष्य बनाकर साधारण शिक्षा प्रदान की। हम उनके दीक्षा-गुरु तथा निकट सम्बन्धियों के नाम जानते हैं। उनका विवाह हुआ और एक पुत्र भी। उन्होंने अपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रामायण की रचना अयोध्या नगरी में प्रारम्भ की थी जबकि उनकी अवस्था तेंतालीस वर्ष की थी। सहधर्मियों से झगड़ा हो जाने के कारण वे बनारस चले गये। १६२३ ई० में काशी नगरी में प्लेग नामक महामारी का प्रकोप हुआ और उसी वर्ष उनका देहान्त भी किन्तु अवश्यतः उस रोग से नहीं।

साइक्लोपीडिया—१९२१ ई० में ग्रियर्सन ने 'साइक्लोपीडिया ऑव एथिक्स एण्ड रिलिजन' में गोस्वामीजी का परिचय इस प्रकार दिया है

तुलसीदासजी मध्यकालीन उत्तरी भारत के महत्तम कवि हैं। किन्तु दो-तीन तिथियों के तथा उनके लेखों में विद्यमान कतिपय आकस्मिक विवरणों के अतिरिक्त निश्चय रूप से उनके जीवनवृत्त के सम्बन्ध में अधिक विदित नहीं। ऐसा कहा जाता है कि उनके मित्र तथा साथी बेनी माधवदास ने गोसाईंजी का जीवनवृत्त लिखा था जिसकी कोई प्रति अब विद्यमान विदित नहीं किन्तु जिसका उल्लेख १९वीं शती के उत्तरार्द्ध में शिवसिंह सेंगर ने किया है।

गोस्वामीजी का मुख्य निवास पहले अयोध्या था तत्पश्चात् वाराणसी। उन्होंने उत्तरी भारत में लम्बी-लम्बी यात्राएँ कीं और रामभक्ति का प्रवचन किया। पहले तो उनका बड़ा विरोध हुआ किन्तु उनके पवित्र जीवन और आकर्षक व्यक्तित्व के कारण सभी बाधाएँ हट गयीं। यहाँ तक कि काशी नगरी में भी, जो शिवार्चन का केन्द्र है उनका सबत्र आदर होता था। कवि-रूप में उनका यश दूर-दूर तक फैल गया। उनके अनेक मित्र और अनुयायी हो गये जिनमें से अत्यन्त प्रसिद्ध हैं: आमेर के राजा मानसिंह सुप्रसिद्ध अब्दुर्रहीम खानखाना और काशी के टोडरमल नामक जमींदार जमींदार। ये वे टोडरमल नहीं जो अकबर के वित्त-मंत्री थे। कवि के विषय में अनेक जनश्रुतियाँ हैं जिनमें से कुछ को अत्यन्त विश्वास के साथ स्वीकार किया जा सकता है। कहते हैं कि वे सन् १५३२ ई० में उत्तर प्रदेशीय बाँदापुर जिले के राजापुर में पराशर गोत्रिय सरवरिया ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता का नाम आत्माराम और माता का हुलसी था। उनका निजी नाम रामबोला

था। अपनी एक रचना में गोस्वामीजी ने लिखा है कि मेरे माता-पिता ने मुझे मेरे जन्म के पश्चात् त्याग दिया, अतः यह अधिक सम्भाव्य है कि वे उन्हीं अभागे बालकों में से थे जो मूल नक्षत्र के प्रारम्भ में अर्थात् अभुक्त मूल में उत्पन्न हुए। कहते हैं कि ऐसा बालक अपने पिता का नाश कर देता है और उसका उपाय केवल यही है कि जन्म के समय उसका त्याग कर दिया जाय या कोई ऐसा उपाय कर दिया जाय जिससे माता-पिता अपने उस बालक का आठ वर्ष तक मुख न देख सकें। किसी घूमते हुए साधु ने उन्हें उठा लिया और पवित्र तुलसीदल के नाम पर उनका नाम तुलसीदास रख दिया। ये साधु अत्यन्त सम्भवतः, उनके दीक्षा-गुरु थे। उनका नाम नरहरिदास था जिन्होंने सम्पूर्ण उत्तरी भारत में भ्रमण किया था। इन गुरुदेव से उन्होंने राम-कथा सुनी किन्तु (संस्कृत के) अज्ञान के कारण वे पहले उस कथा की महत्ता नहीं समझ पाये थे किन्तु बार-बार सुनने पर उन्होंने अपनी मति के अनुसार अपने काव्य को लिखने का निश्चय किया। टोडरमल की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों में सम्पत्ति बँटवारे के निमित्त झगड़ा हुआ और तुलसीदासजी को पंच बनाया गया। पंचनामा उन्हीं के हाथ का लिखा विद्यमान है, जिस पर संवत् १६६९ अर्थात् सन् १६१२ ई० पड़ा है। भारत में सन् १६१६ में गिल्टी वाली प्लेग का प्रकोप हुआ जो आठ वर्ष तक रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने गोस्वामीजी को आक्रान्त किया क्योंकि उन्होंने 'हनुमान् बाहुक' नाम की एक छोटी रचना में ऐसे ही किसी रोग का उल्लेख किया है। अस्थायी स्वास्थ्य लाभ के पश्चात् रोग का पुनः आक्रमण हुआ और सन् १६२३ ई० में वे काशीधाम में स्वर्गवासी हुए।

एनसाइक्लोपीडिया—सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' के १९२१ ई० के संस्करण में एक लेख प्रकाशित कराया था। उससे ऐसा प्रतीत होता है कि वे तुलसीवृत्त के सम्बन्ध में भारतीय लेखकों से प्रभावान्वित हो चले थे। तदनुसार गोस्वामी तुलसीदासजी सरवरिया ब्राह्मण थे। जनश्रुति के अनुसार वे सन् १५३२ ई० में उत्पन्न हुए थे और इस बात की अत्यन्त संभावना प्रतीत होती है कि वे यमुना जी के दक्षिण में बाँदा जिले के राजापुर में जन्मे थे। उनके माता पिता के नाम हुलसी और आत्माराम तथा उनकी पत्नी और पुत्र के नाम रत्नावली और तारक थे। गोस्वामीजी ने सूकरखेत में अध्ययन किया था। सूकरखेत का तादात्म्य प्रायः सोरों से किया जाता है जो कि उत्तर प्रदेश के एटा जिले में स्थित है किन्तु ग्रियर्सन को इस बात की अधिक सम्भावना होने लगी कि यह सूकरखेत वह वराह क्षेत्र है जो अयोध्या से तीन मील पश्चिम की ओर घाघरा नदी के तट पर विद्यमान है। वे यह भी सूचित करते हैं कि गोस्वामीजी ने सन् १५७४ ई० में अपने ग्रन्थ (रामायण) को प्रारम्भ किया था और जब उन्होंने उसका तृतीय सोपान अर्थात् अरण्य काण्ड समाप्त किया तो अयोध्या के बैरागी वैष्णवों से अनबन हो गयी और उन्हें वाराणसी जाना पड़ा जहाँ वे असी घाट पर बस गये मृत्यु के समय उनकी अवस्था ९१ वर्ष की थी। राजापुर में तुलसीकृत अयोध्या काण्ड की एक प्राचीन पाण्डु-लिपि विद्यमान है।

(घ) स्मिथ, मैक्फ़ी, कीने

ग्रियर्सन की विचार धारा में स्मिथ मैक्फ़ी और कीने आदि अनेक यूरोपीय हैं।

विंसेंट स्मिथ ने अपने ग्रन्थ 'अकबर द ग्रेट मुग़ल' में गोस्वामी तुलसीदास का उल्लेख किया है।[1] वे कहते हैं कि 'यह हिन्दू अपने युग का भारत में महत्तम व्यक्ति था अकबर से भी महत्तर। किन्तु वे महापुरुष ब्राह्मणजात साधारण माता-पिता की संतति थे जिसे दुर्मुहूर्त में उत्पन्न होने के कारण त्याग दिया गया था। एक घूमते फिरते साधु ने उन्हें उठा लिया उनका पालन-पोषण किया और उन्हें शिक्षा-दीक्षा दी। वे कभी चित्रकूट और कभी राजापुर में रहे किन्तु उनके जीवन का उत्तर भाग अधिकतर काशी में व्यतीत हुआ और वहीं अधिकतर उन्होंने अपने काव्यों की रचना की। उनका साहित्यिक जीवन चालीस वर्ष की अवस्था तक प्रारम्भ नहीं हुआ था और चालीस वर्ष तक अर्थात् सन् १५७४ से १६१४ ई० तक रहा थी। सन् १६२३ ई० में ९० वर्ष से ऊँची अवस्था में उनका देहान्त हुआ। इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्मिथ ने गोस्वामीजी के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में ग्रियर्सन का आधार ग्रहण किया। विंसेंट स्मिथ कहते हैं कि यद्यपि गोस्वामीजी की मैत्री आमेर के राजा मानसिंह और मिर्ज़ा अब्दुर्रहीम खानखाना से थी जो कि अकबर के अत्यन्त शक्तिशाली सरदार थे तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी सम्राट् अकबर अथवा अबुल फज़्ल की जानकारी में नहीं थे। अतएव गोस्वामीजी उक्त दोनों सरदारों के सम्पर्क में अकबर की मृत्यु के पश्चात् ही आये होंगे जो १६०५ ई० में हुई थी।

मैक्फ़ी—जे० एम० मक्फ़ी ने 'द रामायण ऑव तुलसीदास ऑर द बाइबिल ऑव द नॉर्दर्न इण्डिया'[2] की भूमिका में गोस्वामीजी की जीवनी का उल्लेख करते समय ग्राउज़ और ग्रियर्सन का आधार ग्रहण किया है। रघुवंश शर्मा शास्त्री के आधार पर वे लिखते हैं कि जब तुलसीदास के पुत्र उत्पन्न हो चुका था तब गोस्वामीजी के श्वसुर ने कई बार यह इच्छा प्रकट की कि मेरी पुत्री को कुछ काल के लिए मेरे घर भेज दिया जाय, किन्तु गोस्वामीजी निषेध करते रहे। ऐसा हुआ कि एक दिन उसका भाई आकर उसे घर लिवा ले गया इत्यादि। सन्यास ग्रहण के पश्चात् गोस्वामीजी की पत्नी ने उन्हें एक पत्र लिखा था 'मोहि छूटे का डर नहीं' इत्यादि। इसका उत्तर गोस्वामीजी ने लिख भेजा 'छूटे एक रघुनाथ संग' इत्यादि। मैक्फ़ी ने प्रियादास के आधार पर तुलसीदास के सम्बन्ध में उन कतिपय चमत्कारों का उल्लेख किया है जिनकी चर्चा ग्राउज़ और ग्रियर्सन आदि कर चुके थे यथा—हनुमद्दर्शन, रामदर्शन रामतापन का अनुप-बाण लेकर चौकसी करना, शव को जीवित कर देना दिल्ली-सम्राट् को दिल्ली छोड़ने तथा नव-दुर्ग बनवाने के लिए बाध्य करना। गोस्वामीजी के निधन के सम्बन्ध से श्रावण शुक्ला सप्तमी वाले दोहे की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है।

---

[1] पृष्ठ ४१७—४२१ ४८८।
[2] पृष्ठ भूमिका ११।

को प्राप्ति है। उन्होंने सम्मेलन पत्रिका की बत्तीसवीं जिल्द के ७-६ अंकों में इस आशय का लेख लिखा कि गोस्वामीजी के कतिपय छन्द संस्कृत श्लोकों के अनुवाद मात्र हैं और गोस्वामीजी का उक्त सोरठा तो जाबालि-संहिता के निम्नलिखित श्लोक का अनुवाद है—

वन्दे गुरु पदाम्भ यो नर रूप स्वयं हरिः।
महामय तुम्ल्योघस्य रश्मो नश्यन्ति साम्प्रतम्॥

विद्यासंकारजी कहते हैं कि जाबालि संहिताकार ने जब उक्त श्लोक को लिखा तो उनके मन में तुलसीदासजी के गुरु की कल्पना थी, इस बात की सम्भावना प्रतीत नहीं होती। किन्तु क्या ऐसा सम्भव नहीं कि गोस्वामीजी ने जान-बूझ कर जाबालि संहिता में से यह छन्द पसन्द किया जिसमें उनके गुरु का भी आभास मिलता था भले ही संहिताकार को उसकी कल्पना भी न हो। ग्रियर्सन का मत भी पुष्ट प्रतीत होता है क्योंकि उन्हें निम्नलिखित जनश्रुति का समर्थन प्राप्त है—

(प्रस्ताव) उच्चरत नाम करि, गुरु को सुनिये साधु।
प्रगट नाम नहिं कहत जन, कहे होत अपराधु॥

इसके अतिरिक्त गोस्वामीजी ने अन्यत्र भी गुरु के नाम का उल्लेख किया है जिसकी चर्चा यथास्थान की जायगी।

जन्म निधन—गोस्वामीजी से सम्बन्ध रखने वाली मितियों की भी चर्चा की गयी है। विल्सन और ग्राउज दोनों ने ही 'रामचरितमानस' के प्रारम्भ का एवं उनके निधन के संवत् का उल्लेख किया है। संवत् १६३१ तो 'रामचरित मानस' में ही विद्यमान है, और निधन संवत् १६८० निम्नलिखित दोहे पर आश्रित है:

संवत सोलह से असी असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर॥

विल्सन ने १८६१ ई० में प्रकाशित 'ए स्कैच ऑव द रिलिजस सैक्ट्स ऑव द हिन्दूज' में निधन-तिथि का उल्लेख नहीं किया था। १८६१ ई० में उक्त लेख पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ था उसमें उक्त दोहा है। ग्रियर्सन ने गोस्वामीजी के जन्म-संवत् का भी उल्लेख किया है वे उसे १५८६ वि० जनश्रुति के आधार पर मानते हैं। तदनुसार 'रामचरितमानस' की रचना का प्रारम्भ-काल गोस्वामीजी की बयालीस अथवा तितालीस वय की अवस्था में पड़ता है—विल्सन के अनुसार गोस्वामी जी उस समय इकतीस वर्ष के थे अतः उनका जन्म-संवत् लगभग १६०० वि० होना चाहिए।

ग्रियर्सन के विचार से गोस्वामीजी का देहान्त मिस्टी वाली प्लेग से हुआ था। अनेक भारतीय विद्वानों ने इस विचार का प्रतिवाद किया है जो उचित ही प्रतीत होता है। विल्सन ने गोस्वामीजी की निधन तिथि श्रावण शुक्ला सप्तमी संवत् १६८० बतायी।[1]

पति-पत्नी—ग्राउज ने नाभादास के भक्तमाल पर प्रियादास की टीका के

---

१ गोस्वामीजी के आविर्भाव और तिरोभाव के सम्बन्ध में चौथा अध्याय देखिये।

आधार पर जिन बातों का उल्लेख किया है उन्हें मान लेने में कोई विशेष आपत्ति नहीं होनी चाहिए। हाँ तुलसीदासजी की पत्नी ने अपने पति को डाँट पिलाकर जो उपदेश दिया वह औचित्य की मात्रा से अवश्य बढ़ गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वास्तविक घटना को नमक मिर्च लगाकर वर्णन करने का प्रयत्न किया गया है यही बात सोरों-सामग्री में अत्यन्त भद्दे रूप से उपस्थित की गयी है। विरक्त होने के पश्चात् गोस्वामीजी और उनकी पत्नी के आकस्मिक मिलन की जो चर्चा की गयी है वह अधिक विश्वसनीय प्रतीत नहीं होती क्योंकि किसी भी औचित्य के साथ यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि तुलसीदासजी अपनी पत्नी को नहीं पहचान पाये न अपने घर को और न अपने उस नगर का ही जहाँ वे वर्षों रह चुके थे। यह तो संभव है कि बहुत काल बीतने के पश्चात् वे अपनी पत्नी को न पहचान पाये हों और यह भी संभव है कि वे अपने घर को भी न पहचान पाये हों क्योंकि कालान्तर में पर्याप्त परिवर्तन हो गया हो, किन्तु यह बात समझ में नहीं आती कि वे अपने नगर को भी न पहचान पाये थे मानो अलाउद्दीन के दीपक ने उनको अकस्मात् वहाँ लाकर पटक दिया था।

अन्य बातें—संन्यास से पूर्व एवं पश्चात्, पति-पत्नी में जो वार्तालाप हुआ उससे यह बात स्पष्ट है कि गोस्वामीजी की पत्नी कविता कर लेती थी। सोरों-सामग्री में रत्नावली के दोहे तुलसी-पत्नी की काव्य शक्ति की पुष्टि करते हैं। गोस्वामीजी की पत्नी के मुख से निःसृत जो दोहे बताये जाते हैं और जिनका सर्वप्रथम उल्लेख ग्रियर्सन ने आज से ६६ वर्ष पूर्व किया था उनसे प्रतीत होता है कि उनकी पत्नी उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिले की न होकर किसी ब्रज भाषा-भाषी नगर या ग्राम की रही होंगी। इस विषय में सविस्तार विचार यथास्थान होगा। ग्रियर्सन महोदय तथाकथित बेनी माधवदास कृत 'मूल गोसाईं चरित' का दर्शन नहीं कर पाये। उन्होंने केवल उस समय तक उसका नाम सुन लिया था जबकि १९२१ ई० में उन्होंने हमारे सन्त के विषय में 'एंसाइक्लोपीडिया ऑव एथिक्स एण्ड रिलिजन' में अपना लेख लिखा था। उन्होंने इस बात का उल्लेख किया है कि राजापुर में 'रामचरित मानस' के अयोध्याकाण्ड की प्रति और काशी में 'पंचनामा' दोनों ही गोस्वामीजी के हाथ के लिखे हुए हैं। पंचनामे के सम्बन्ध में कोई सन्देह प्रकट नहीं किया जाता है यद्यपि कुछ विद्वानों ने इस विषय में संदेह उपस्थित किया है कि राजापुर की प्रति गोस्वामीजी के हाथ की है।

प्रशस्त संकलन—ग्रियर्सन महोदय ने वास्तव में गोस्वामीजी के जीवन-वृत्त सम्बन्धी दन्तकथाओं, जनश्रुतियों एवं अन्य सामग्री का जो संकलन किया है वह अत्यन्त प्रशस्त है। उनके पूर्वकालीन वे लेख जो अपेक्षाकृत स्वातंत्र्यपूर्वक लिखे गये थे तथ्य के अत्यन्त निकट हैं। ग्राउज को विश्वास न था कि गोस्वामीजी के पिता थे आत्माराम शुक्ल माता थी हुलसी दयापुर थे दीनबन्धु, पत्नी थी रत्नावली तथा पुत्र था तारक जिसका देहान्त बाल्यावस्था में ही हो गया था और गोस्वामीजी स्मार्त वैष्णव तथा गुरु नरहरि के शिष्य थे। तथापि ग्रियर्सन को यह मत मान्य था क्योंकि उन्होंने प्रियादास के आधार पर इस बात का भी उल्लेख किया है कि रत्नावली

अपने पिता के घर पति की आज्ञा के बिना चली गयी थी। उक्त सभी बातों का अधिकांश समर्थन सोरों-सामग्री के द्वारा भी होता है।

आश्चर्य—यह आश्चर्य की बात अवश्य है कि गोस्वामीजी के निवास-स्थान के विषय में ग्राउज ग्रीव्ज और ग्रियर्सन भी अनुमान क्षेत्र में रहे। प्रसिद्ध इतिहासकार विंसेंट स्मिथ ने भी केवल यही लिखा कि गोस्वामीजी को राजापुर जाने तथा वहां कभी वहाँ निवास करने का अवसर प्राप्त हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त किसी सज्जन को राजापुर जाने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। यदि प्राप्त होता तो उनकी जानकारी स्पष्टतर होती अथवा वे अपनी असम्मति प्रकट करते। रेवरेंड एडविन ग्रीव्ज ने सन् १९१८ की नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में एक लेख लिखा और उसमें गोस्वामीजी के जन्म और निवास के सम्बन्ध में इस प्रकार विवेचन किया "पर जन्म कहाँ हुआ? लोग बतलाते हैं राजापुर उनकी जन्म भूमि है। पर इस बात के विरुद्ध और लोग कहते हैं कि नहीं उनका जन्म वहाँ नहीं हुआ पर गुसाईं जी ने वहाँ एक मंदिर बनवाया या गाँव बसाया। फिर हस्तिनापुर उनकी जन्म भूमि बतलाई गई, और हाजीपुर भी (जो चित्रकूट के पास है) पर इन बातों का कुछ प्रमाण नहीं। फिर औरों ने कहा वह तारी में जन्मे पर दूसरे लोग कहते हैं—नहीं उनके माता-पिता वहाँ रहते थे पर यह तुलसीदास के उत्पन्न होने के पहले था। इन सब बातों से अनुमान होता है कि अब तक ठीक-ठीक निर्णय नहीं हुआ कि तुलसीदास का जन्म कहाँ हुआ?"

गजेटियर—राजापुर सम्बन्धी सभी सरकारी गजेटियर इस बात का उल्लेख करते हैं कि रामचरित-मानसकार गोस्वामी तुलसीदास सोरों के निवासी थे और उन्होंने राजापुर की नींव डाली तथा वहाँ कुछ समय तक निवास किया। सब से प्रथम गजेटियर, जिसका सम्बन्ध प्रस्तुत विषय से है १८७४ ई० में इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था और सब से पिछला १९०९ में किन्तु सभी में उक्त एक ही बात कही गयी है। गोस्वामीजी के सम्बन्ध में ग्राउज ने सर्वप्रथम १८७६ ई० में ग्रियर्सन ने १८९३ ई० में ग्रीव्ज ने १९१८ ई० में एवं विंसेंट स्मिथ ने और भी पीछे अपने विचार प्रकट किये। किन्तु किसी ने भी अपने से पूर्व (अर्थात् १८७४ ई० में) प्रकाशित सरकारी गजेटियरों का उल्लेख नहीं किया यद्यपि वे कलकत्ता इलाहाबाद आदि स्थानों से ही प्रकाशित हुए थे और न उन्होंने उनका खण्डन ही किया। ये गजेटियर गोस्वामीजी के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं अतः उनके उद्धरण आवश्यक प्रतीत होते हैं।

(१) प्रथम गजेटियर में लिखा है

"Tradition has it that in Akbar's reign a holy man, Tulsidas a resident of Soron in Parganah Aliganj of the Etah District, came to the jungle on the banks of the Jumna, where Rajapur now stands, erected a temple, and devoted himself to prayer and meditation. His sanctity soon attracted followers who settled around him and as

their numbers increased they began to devote themselves (and with wonderful success) to commerce as well as to religion. There are some curious local customs peculiar to Rajapur derived from the precepts of Tulsi

Statistical Description and Historical Account of the North Western Province of India, Edited by Edwin T Atkinson B A., B C. S. Vol. I Bundelkhand Allahabad 1874 Pages 572 573

अर्थात् १८७४ ई० में इलाहाबाद से प्रकाशित और एडविन टी० एटकिनसन द्वारा संपादित स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्शन एण्ड हिस्टोरिकल अकाउंट ऑव द नार्थवेस्टर्न प्रोविंस ऑव इण्डिया की बुन्देलखण्ड जिल्द १ के पृष्ठ ५७२-७३ पर इस प्रकार लिखा है —

"जनश्रुति है कि अकबर के शासनकाल में तुलसीदास नाम के एक पुण्यात्मा जो एटा जिले के परगना अलीगंज में सोरों के निवासी थे यमुना जी के किनारे उस स्थल में आये जहाँ अब राजापुर स्थित है। वहाँ उन्होंने मन्दिर बनवाया और वे साधना और ध्यान में तल्लीन हो गये। उनकी साधुता ने तुरन्त अनुयायियों को आकर्षित किया और वे उनके चारों ओर बस गये। ज्यों-ज्यों उनकी संख्या बढ़ती गयी त्यों-त्यों वे आश्चर्यजनक सफलता से वाणिज्य और धर्म की ओर प्रवृत्त होने लगे। तुलसी-उपदेश-जन्य कुछ विचित्र स्थानीय प्रथाएँ हैं जो राजापुर में ही मिलती हैं।

(२) तत्पश्चात् 'इम्पीरियल गजटियर ऑव इण्डिया' की ग्यारहवीं जिल्द प्रकाशित हुई जिसका सम्पादन डब्लु० डब्लु० हंटर ने किया था। उसका द्वितीय संस्करण १८८६ ई में प्रकाशित हुआ था। उसके १८२ ३८६ पृष्ठों पर इस प्रकार लिखा है

Rajapur was founded in the reign of Akbar by Tulsi Das a devotee from Soron who erected a temple and attracted many followers."

अर्थात् अकबर के शासनकाल में तुलसीदास नामक एक भक्त ने सोरों से आकर राजापुर की नींव डाली। उन्होंने एक मन्दिर का निर्माण कराया और बहुत से अनुयायियों को आकृष्ट किया।

(३) तदनन्तर १६०८ ई० में कलकत्ते से प्रकाशित 'इम्पीरियल गजटियर ऑव इंडिया यू० पी० २ (प्रोविंशल सिरीज) के पचासवें पृष्ठ पर लिखा है:—

'Rajapur is the name of the town and Majhgaon that of the Mauja or village area within which it is situated According to tradition, the town was founded by Tulsidas, the celebrated author of the Ramayana and his residence is still shown "

अर्थात् "राजापुर कस्बे का नाम है और मझगाँव उस मौजा अथवा ग्राम-प्रदेश का

जिसमें वह स्थित है। ऐसी जनश्रुति है कि रामायण के प्रसिद्ध रचयिता तुलसीदास ने इस कस्बे की नींव डाली थी और यहाँ उनका निवास-स्थान अभी तक दिखाया जाता है ।"

(४) चौथा गजटियर बाँदा जिले का है जो 'डिस्ट्रिक्ट गजटियर्स ऑव द यूनाइटेड प्रॉविंसेज' की इक्कीसवीं जिल्द में सम्मिलित है और जो १९०९ ई० में प्रकाशित हुआ था। उसके पृष्ठ २८५ २८६ पर इस प्रकार लिखा है —

'It is said that in the reign of Akbar a holy man, named Tulsi Das, a resident of Soron in Kasganj Tahsil of the Etah district, came to the jungle on the banks of the Jumna where Rajapur now stands, and devoted himself to prayer and meditation His sanctity soon attracted followers, who settled round him and as their number increased they began to devote themselves to commerce as well as religion. This is, of course Tulsi Das the author of the Ramayana, and his house is still shown in the town. It was a low kachcha building, but has recently been rebuilt and contains a shrine and an old somewhat mutilated manuscript of the Ramayana. There is a small muafi attached to the shrine, but the present muafidars are ignorant and quarrelsome and do nothing to further the spirit of religious purity and lofty ideals preached by the venerable poet. The shrine also contains a stone figure said to be an effigy of the poet, of celestial origin and to have been found buried in the sands near Rajapur Local tradition says that Tulsi Das became acquainted with Rajapur through his having married into a Brahman family in Mahewa, tahsil Sirathu, district Allahabad. There are some peculiar customs in vogue at Rajapur derived from the precepts of Tulsi Das. No houses are allowed to be built of stone or masonry and even the richest live in mud houses only temples are made of masonry No barbers are ever allowed to settle within the town, and no dancing girls, except of the caste of Beriahs, are allowed to live within it. Kumhars are also interdicted from residence, and all gharas and pots are brought in from outside. The rules however are now so far relaxed as to be held to apply only to the precincts of Tulsi Das s house."

अर्थात् ऐसा कहा जाता है कि अकबर के राज्यकाल में तुलसीदास नाम के एक पवित्रात्मा जो एटा जिले की तहसील कासगंज में सोरों के निवासी थे जमुनाजी के किनारे उस जंगल में आए जहाँ अब राजापुर विद्यमान है और वे पूजा-ध्यान में प्रवृत्त हो गये। शीघ्र ही उनके पावित्र्य से आकृष्ट होकर उनके अनुयायी चारों ओर बस गये और जब उनकी संख्या में वृद्धि हुई तो वे वाणिज्य और धर्म में दत्त-चित्त

हो गये। वस्तुतः ये वे ही तुलसीदास हैं जिन्होंने रामायण की रचना की। कस्बे में उनका घर अब भी दिखाया जाता है। उसकी इमारत कच्ची और नीची थी किन्तु अभी हाल में उसका पुनर्निर्माण हो गया है और उसमें एक मन्दिर तथा रामायण की एक प्राचीन किन्तु किंचित् खण्डित पाण्डुलिपि विद्यमान है। मन्दिर से लगी हुई एक छोटी सी मुआफ़ी है किन्तु वर्तमान मुआफ़ीदार अपठित और झगड़ालू हैं और आदरणीय कवि ने जिन पवित्र और उच्च आदर्शों का प्रवचन किया था उनकी भावना को आगे बढ़ाने के लिए वे कुछ नहीं करते। मन्दिर में पत्थर की एक प्रतिमा है जिसे देव निर्मित तथा कवि की बताया जाता है। यह भी कहा जाता है कि यह राजापुर के निकट रेणुका में निखुड़ मिली थी। स्थानीय जनश्रुति है कि तुलसीदास राजापुर से इसलिए वंचित हो गये थे कि उन्होंने इलाहाबाद ज़िले की तहसील सिराथू में महेवा के एक ब्राह्मण कुटुम्ब में अपना विवाह कर लिया था। राजापुर में कुछ विचित्र प्रथाओं का प्रचार है जिनका उद्गम तुलसीदासजी के उपदेशों से है। यहाँ चूने पत्थर के घर बनाने की आज्ञा नहीं है और बनी से बनी भी कच्चे घरों में रहते हैं, केवल मन्दिर ही पक्के बन सकते हैं। नगर के भीतर नापितों को बसने की आज्ञा नहीं है और बेरिया जाति के अतिरिक्त किसी और जाति की नर्तिकायें वहाँ निवास नहीं कर सकती हैं। कुम्हारों पर भी निवास का प्रतिबन्ध है घट और भाण्ड बाहर से मँगाये जाते हैं। किन्तु अब ये नियम शिथिल हो गये हैं और केवल तुलसीदासगृह-प्रतिवेश तक ही लागू हैं।"

गजेटियरों का सार—उपर्युक्त चारों गजेटियरों से यह स्पष्ट है कि राम चरितमानस के कर्ता गोस्वामी तुलसीदास सोरों के निवासी थे और उन्होंने अकबर के शासनकाल में यमुना-तीरस्थ राजापुर की स्थापना की एवं नव बसति की विशुद्धता के लिए कुछ नियमों का विधान किया। उनका निवासस्थान कच्चा था जिसका पुनर्निर्माण हुआ। गजेटियर में मुआफ़ी और मुआफ़ीदारों का भी उल्लेख है। सन् १८७१ ई० की शर्त वाजिबुल अर्ज से स्पष्ट है कि मुआफ़ीदार गोस्वामीजी के शिष्य वंशधर हैं। एक महाशय उक्त गजेटियरों का प्रामाण्य नहीं मानते। उनका तर्क विचित्र है। उनके मत में गजेटियरों का सम्पादन अंग्रेज साहब बहादुरों ने किया जो लोग अपने चपरासियों पर अपने अनुसंधान के विषय में निर्भर रहते थे (अर्थात् वे जैसी सूचनाएँ देते थे साहब लोग उनको उसी रूप में मान लेते थे)। अतएव गजेटियरों का कोई प्रामाण्य नहीं। किन्तु हमारी विनीत सम्मति में गजेटियरों का कुछ न कुछ प्रामाण्य अवश्य है। और कुछ नहीं इतना तो स्पष्ट है कि सन् १८७४ ई० में अर्थात् आज से ८७ वर्ष पूर्व राजापुर का कम से कम एक व्यक्ति यह भी धारणा रखता था कि गोस्वामीजी सोरों के रहने वाले थे। सोरों और राजापुर में लगभग तीन सौ मील का अन्तर है और आज से सतासी वर्ष पूर्व रेलों का विस्तार नहीं था। अतएव राजापुर के किसी चपरासी को क्या पड़ी थी कि वह गोस्वामीजी का सम्बन्ध राजापुर में बैठकर सोरों से बिना बात जोड़ देता। प्रत्येक व्यक्ति को अपने जन्मस्थल से अधिक मोह होता है और यह संभव है कि वह अपने स्थान का गौरव अतिशयोक्ति पूर्ण करे। चपरासी या कोई और व्यक्ति राजापुर की नींव उस व्यक्ति से क्यों बताता

जो सोरों का निवासी था। और यदि यह तर्क उपस्थित किया जाय कि गजेटियर का तुलसीदास-सम्बन्धी उल्लेख पढ़े लिखे साहब बहादुर की कल्पना का उत्पादन है तो भी इस बात के समाधान की अपेक्षा रहती है कि राजापुर के निकट रहने वाले किसी विदेशी को इतनी दूरी पर स्थित सोरों से इतना मोह क्यों था। गजेटियर में यह स्पष्ट उल्लेख है कि राजापुर के नींव डालने एवं तुलसीदास के सोरों-निवासी होने से सम्बन्ध रखने वाली बातों का आधार राजापुर की ही जनश्रुतियां हैं।

(च) निष्कर्ष—विदेशी विद्वानों ने जो अनुसन्धान किये उनका सार इस प्रकार है गोस्वामीजी का कोई घनिष्ठ सम्बन्ध तारी से था। तारी नामक स्थान अन्तर्वेद में था। उनकी शिक्षा-दीक्षा सूकरखेत में हुई और यह सूकरखेत सोरों है जो एटा जिले की कासगंज तहसील में स्थित है। उनके गुरु नृसिंह अथवा नरसिंहजी थे। पिता का नाम था आत्माराम, माता का हुलसी पत्नी का रत्नावली पुत्र का तारक और श्वसुर का दीनबन्धु पाठक। गोस्वामीजी जाति से ब्राह्मण और रामचरितमानस के कर्ता थे। सोरों से आकर इन्होंने बाँदा जिले में राजापुर नामक कस्बे की नींव डाली, वहाँ कुछ काल तक निवास किया और उसके निवासियों के लिए कुछ नियमों का विधान भी किया जिनमें से कुछ का पालन आज तक किसी न किसी रूप में होता आ रहा है। राजापुर में गोस्वामीजी के शिष्य-वंशजों को मुआफी मिली हुई है। गोस्वामीजी अयोध्या और चित्रकूट में भी रहे अब्दुर्रहीम खानखाना और राजा मानसिंह के सम्पर्क में आये और अन्त में काशीसेवन कर संवत् १६८० वि में श्रावण शुक्ला सप्तमी को स्वर्ग सिधारे।

(ख) भारतीयों की गवेषणा

प्राक्कथन—अनेक भारतीय विद्वानों ने भी अपने जीवन का बहुत कुछ समय गोस्वामीजी के जीवन-वृत्त और ग्रन्थों के अध्ययन में व्यतीत किया है। जहाँ तक गोस्वामीजी के ग्रन्थों के अध्ययन तथा समालोचन का सम्बन्ध है वहाँ तक उनका कार्य अत्यन्त उपादेय है। किन्तु गोस्वामीजी के जीवन-वृत्त पर उनका अनुसन्धान उतना उत्साहजनक नहीं रहा। इसका कारण है कुतालोचना उदासीनता अथवा नवानुसन्धान के प्रति उपेक्षा। जिन यशस्वी लेखकों ने इस ओर अपना कलम उठाया है वे हैं आदरणीय मिश्र बन्धु, डॉ० श्यामसुन्दरदास पं० रामचन्द्र शुक्ल बाबू शिवनन्दन सहाय श्री रामदास गौड़ लाला सीताराम श्री व्योहार राजेन्द्रसिंह, श्री सद्गुरुशरण अवस्थी डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र श्री सीताराम शरण श्री भगवान प्रसाद डॉ० माता प्रसाद गुप्त पं० चन्द्रबली पाण्डे आदि जिनका उल्लेख यथा-स्थान होता रहेगा किन्तु प्रथम तीन की सेवाएँ, प्रारम्भिक एवं अत्यन्त प्रशंसनीय हैं, अतएव उनका विवरण सर्वथा आवश्यक प्रतीत होता है।

(अ) मिश्रबन्धु

पं० गणेश बिहारी मिश्र, रावराजा रायबहादुर डॉ० श्यामबिहारी मिश्र तथा रायबहादुर पं० शुकदेव बिहारी मिश्र नामक मिश्रबन्धुओं ने हिन्दी साहित्य की जो सेवा

की है वह किसी से छिपी नहीं है। उन्होंने गोस्वामीजी के सम्बन्ध में जो प्रकाश डाला वह भी अत्यन्त प्रशंसनीय है। 'हिन्दी नवरत्न' एवं 'मिश्र बन्धु विनोद' दोनों ही मिश्रबन्धुओं की संयुक्त लेखनी से १९१० और १९११ ई० में क्रमशः प्रकाशित हुए थे।

माता-पिता ने तुलसीदास को त्यागा न था—मिश्रबन्धु लिखते हैं गोस्वामीजी का जन्म राजापुर तहसील परगना मऊ जिला बाँदा में संवत् १५८९ में हुआ था। राजापुर एक अच्छा कस्बा है जो श्री यमुनाजी के किनारे करवी रेलवे स्टेशन (जी० आई० पी०) से १९ मील पर बसा है। यहाँ तुलसीदासजी की कुटी अब तक वर्तमान है जो गोस्वामीजी के शिष्य गणपतिजी के उत्तराधिकारी ब्रजभान चौधरी के आधिपत्य में है और यहीं अंग्रेजों ने महात्माजी के स्मारक-स्वरूप संगमरमर की एक तख्ती लगा दी है। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। स्वयं इनका नाम रामबोला था परन्तु वैरागी होने पर इनका नाम तुलसीदास हुआ। इनका जन्म अभुक्त मूल में हुआ था। जान पड़ता है कि इनके माता-पिता इनकी बाल्यावस्था में ही स्वर्गवासी हो गए थे और ये दाने-दाने को 'बिललाते' फिरते थे (देखिये 'बारे ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन जानत हो चारि फल चारि ही चनक को' —कवितावली) कुछ लोग समझते हैं कि इनके माता-पिता ने इन्हें छोड़ दिया था पर यह बात ठीक नहीं। अवश्य ही अपनी कविता में इन्होंने ठौर-ठौर अपना माता पिता द्वारा तजा जाना लिखा है पर, मिश्रबन्धुओं के मतानुसार उससे उनके शीघ्र ही 'स्वर्गवासी' होने का तात्पर्य है।[1] मिश्रबन्धुओं ने अपनी इस धारणा के लिए कोई कारण नहीं दिया कि गोस्वामीजी के माता-पिता उनके शैशव में ही स्वर्गवासी हो गये थे यद्यपि इस धारणा की पुष्टि स्रोत-सामग्री से अवश्य होती है।

जनश्रुति के आधार पर मिश्रबन्धु कहते हैं कि गोस्वामीजी का विवाह दीन बन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ जिससे इन्हें तारक नाम का एक पुत्र भी हुआ पर वह बचपन में ही चल बसा। यह भी सुना जाता है कि गोस्वामीजी अपनी स्त्री पर बड़ा प्रेम रखते थे और उसके नैहर जाने पर एक बार वहीं जा पहुँचे। इस पर स्त्री ने कहा कि यदि आप इतना प्रेम परमेश्वर से करते तो न जाने क्या फल होता। तब तो तुलसीदासजी की आँखें खुल गयीं और वे घर छोड़ चल दिये और वैरागी हो गये। इस कथा का उल्लेख प्रियादासजी ने भक्तमाल की टीका में किया है।

दोहों में पति-पत्नी की बातचीत विश्वसनीय नहीं—कहा जाता है कि साधु होने पर एक बार अपनी स्त्री से इनका दैवात् साक्षात्कार हो गया पर इस अवसर पर जो दोनों में दोहों के द्वारा बात-चीत होना कहा गया है वह मिश्रबन्धुओं को विश्वसनीय प्रतीत नहीं होती।[2] दीन बन्धु पाठक रत्नावली तारक आदि के विषय में उनका अभिमत स्रोत-सामग्री से समर्थित है, पति-पत्नी के आकस्मिक मिलन की चर्चा हमें भी विश्वस्त प्रतीत नहीं होती क्योंकि उसका उल्लेख स्रोत-सामग्री में तथा अन्यत्र भी—तुलसीचरित मूलगोसाईं चरित आदि में—कहीं नहीं मिलता।

---

१ हिन्दी नवरत्न, पृ० २३। २ वही, पृ० ३।

तुलसीदास के गुरु नरहरि—गृह-त्याग के उपरान्त गोस्वामीजी रामानन्दजी के शिष्य नरहरिदास के शिष्य हो गये थे। इस समय वे पच्चीस वर्ष के होंगे निर्धन होने के कारण उस समय तक उनका विवाह न हुआ होगा न उन्हें पुत्र लाभ ही। रामचरितमानस में गोस्वामीजी ने लिखा है कि मैंने सूकर क्षेत्र में अपने गुरु से राम कथा सुनी थी किन्तु उस समय मैं अबोध था और मैं उसके तात्पर्य को भली भाँति नहीं समझ सकता था, यद्यपि मेरे गुरुजी ने मुझे यह कथा बार-बार सुनायी, तथापि मैं तब उसका माहात्म्य अपनी शक्ति के अनुसार ही समझ सकता था। मिश्रबन्धु कहते हैं कि इस विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि वे उस समय बारह वय के रहे होंगे और यह भी प्रतीत होता है कि उन्होंने विरक्त होने से पहले ही नरहरि दास से ही दीक्षा लेकर राम-कथा का श्रवण किया हो क्योंकि यदि हम ऐसा न मानें तो प्रियादास प्रदत्त उस विवरण में अविश्वास करना होगा जिसका सम्बन्ध गोस्वामीजी के विवाह से है। किन्तु निम्नलिखित तीन कारणों से प्रियादास के लेख पर अविश्वास नहीं किया जा सकता—प्रथमतः उसके विरुद्ध कोई साक्ष्य नहीं। द्वितीयतः प्रियादासजी ने भक्तमाल पर अपनी टीका अपने गुरु नाभादासजी की प्रेरणा से लिखी जो कि भक्तमाल के कर्ता और गोस्वामीजी के घनिष्ठ मित्र और परिचित थे। तृतीयतः गोस्वामीजी के विवाह की वार्ता प्रचलित है। साक्ष्य के अभाव में प्रियादासजी की रचना को अविश्वसनीय नहीं माना जा सकता[1]। मिश्रबन्धुओं के उक्त तीनों ही तर्क युक्तियुक्त प्रतीत होते हैं।

क्या तुलसीदास कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे?—मिश्रबन्धुओं के मतानुसार तुलसीदासजी के वंश के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद इस प्रकार है—कोई उन्हें कान्यकुब्ज मानते हैं तो कोई सरयूपारीण। अपने 'भक्त कल्पद्रुम' में राजा प्रतापसिंह ने उन्हें कान्यकुब्ज ब्राह्मण लिखा है किन्तु 'शिवसिंह सरोज' में बेनी माधवदास के आधार पर सरयूपारीण ब्राह्मण लिखा है। रामायण के प्रसिद्ध टीकाकार और विद्वान् पं० रामगुलाम द्विवेदी ने भी उन्हें सरयूपारीण बताया है और उन्हीं का अनुसरण डॉ० ग्रियर्सन ने किया है किन्तु मिश्रबन्धुओं के मतानुसार गोस्वामीजी को सरयूपारीण मान लेने में दो आपत्तियाँ हैं पहली तो यह कि समग्र बाँदा तथा राजापुर के निकटवर्ती प्रदेश में कान्यकुब्ज ब्राह्मणों का निवास है सरयूपारीणों का नहीं। अतएव यदि तुलसीदासजी द्विवेदी थे तो स्पष्टतः वे कान्यकुब्ज थे। दूसरी यह कि वे पाठकों में विवाहित थे जो ब्राह्मणों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं तत्पश्चात् द्विवेदियों का स्थान है। पाठकों की पुत्रियों का विवाह द्विवेदियों में नहीं हो सकता था क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपनी कन्या का विवाह निम्नतर कुल में नहीं करता। किन्तु कान्यकुब्जों में पाठक द्विवेदियों की अपेक्षा नीचे समझे जाते हैं अतएव पाठक और द्विवेदियों का वैवाहिक सम्बन्ध औचित्यपूर्वक हो सकता था। सुतराम् मिश्रबन्धु, भक्त-कल्पद्रुम के लेखक से सहमत हो गोस्वामीजी को कान्यकुब्ज मानते हैं[2]। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इन तर्कों का निराकरण किया है जैसा कि हम आगे देखेंगे। इस सम्बन्ध में

---

१ 'हिन्दी नवरत्न' पृष्ठ ४१। २. वही, पृ० ४१।

हमारा विनम्र निवेदन है कि सनाढ्य ब्राह्मणों में भी द्विवेदी शुक्ल पाठक आदि शाखाएँ होती हैं। रायबहादुर लाला सीताराम ने गोस्वामीजी को राजापुर के निकट किन्तु सनाढ्य ब्राह्मण लिखा है[1]। वैष्णव वार्ताओं में और सोरों-सामग्री में भी गोस्वामीजी को स्पष्टतः सनाढ्य ब्राह्मण माना गया है।

तुलसी चरित में आस्था—मिश्रबन्धुओं ने जब 'हिन्दी नवरत्न' की रचना की थी तब तथाकथित 'तुलसीचरित' उपलब्ध न था। संवत् १९७१ वि० में सहसा उसका आविर्भाव हुआ किन्तु उसका कोई प्रत्यक्ष प्रभाव मिश्रबन्धुओं पर न पड़ा। 'हिन्दी नवरत्न' के तीन वर्ष पश्चात् अर्थात् १९११ ई० में उनका दूसरा ग्रन्थ 'मिश्रबन्धु विनोद' प्रकाश में आया और इस महाकाय ग्रन्थ के अनुसार गोस्वामीजी का जीवनचरित इस प्रकार है : तुलसीदासजी बाँदा जिले के सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में संवत् १५८९ वि० में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे था और माता का हुलसी। इनके माता पिता ने उनका नाम रामबोला रखा था किन्तु मिश्रबन्धु कहते हैं कि कुछ लोग 'तुलसीचरित' के आधार पर गोस्वामीजी की जन्म-तिथि और माता-पिता भाई आदि के नामों पर सन्देह करने लग, इसके अनुसार गोस्वामीजी ने अपनी अवस्था के इकहत्तरवें वर्ष में रामचरितमानस का प्रारम्भ किया और १२० वर्ष की आयु प्राप्त कर महाप्रयाण किया तथा न वे निर्धन थे और न नन्ददास के चचेरे भाई। किन्तु मिश्रबन्धुओं के मत से गोस्वामीजी समृद्ध थे यह बात गोस्वामीजी की उक्तियों के विरोध में है वे नन्ददास के भाई नहीं थे यह बात चौरासी वैष्णवों की वार्ता के समकालीन साक्ष्य के विरुद्ध है और उन्होंने इकहत्तर वर्ष की वृद्धावस्था में रामायण का प्रारम्भ किया यह बात बुद्धिगम्य नहीं है। इसी प्रकार यह बात भी अनुमान विरुद्ध है कि उन्होंने १२० वर्ष की आयु पायी थी। मिश्रबन्धु 'तुलसी चरित' को प्रामाणिक नहीं समझते क्योंकि एक-आध सज्जनों के अतिरिक्त और किसी ने भी इस ग्रन्थ का दर्शन नहीं किया है, और जिन्होंने इस ग्रन्थ को देखा है वे बार-बार की प्रार्थना और प्रतिज्ञाओं के उपरान्त भी उसके दर्शन कराने के लिए इच्छुक अथवा प्रस्तुत प्रतीत न हुए[2]। अतएव मिश्रबन्धुओं का निष्कर्ष तत्कालीन विद्वानों के आधार पर इस प्रकार रहा : तुलसीदासजी बचपन में निर्धन थे और उन्होंने प्रयत्न से कुछ ज्ञानोपार्जन किया लगभग बीस वर्ष की अवस्था में उनका विवाह हुआ और तारक नाम के पुत्र की प्राप्ति भी जो कुछ ही दिनों के पश्चात् जाता रहा। गोस्वामीजी अपनी पत्नी में बड़े अनुरक्त थे। एक दिन उनकी पत्नी ने उनसे कहा कि यदि इतना प्रेम तुम ईश्वर से करते तो सिद्ध हो जाते। उपदेश-प्राप्ति पर तुलसीदासजी ने घर छोड़ दिया और वे नरहरिदास के शिष्य बन गये। नरहरिदास ने गोस्वामीजी का नाम तुलसीदास रखा और गोस्वामी जी ने उक्त गुरु की प्रेरणा से 'रामचरितमानस' की रचना की। उन्होंने अनेक तीर्थों

---

१ रामायण अयोध्याकाण्ड (राजापुर संस्करण) जीवन चरित पृ (घ)।
२ मिश्रबन्धु विनोद, पृ २९८-२९९।

के दर्शन किये और अन्त में काशी के असी घाट पर बस कर संवत् १६८० वि० में देह-त्याग किया।[1]

डॉ० दास और पण्डित शुक्ल का प्रभाव—यद्यपि मिश्रबन्धुओं पर 'तुलसीचरित' का कोई विशेष प्रभाव न पड़ा, तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ० श्यामसुन्दर दास तथा पं० रामचन्द्र शुक्ल जैसे गम्भीर विद्वानों ने तुलसी सम्बन्धिनी जन श्रुतियों से उनके विश्वास को शिथिल कर दिया था। श्री भगीरथ प्रसाद दीक्षित ने संवत् १६८५ वि० (अथवा १९२८ ई०) में 'माधुरी' की उनासीवीं संख्या में 'गोस्वामी तुलसीदासजी और उनकी जाति' नामक लेख लिखा जिसमें वे इस प्रकार लिखते हैं "मिश्रबन्धु महोदय पहले जितने प्रबल कान्यकुब्ज मानने के पक्ष में थे इस समय उतने नहीं हैं अपितु उनके भावों में कुछ शिथिलता सी हो रही है"[2]। मैं दीक्षितजी के इन शब्दों से सहमत हूँ और समझता हूँ कि मिश्रबन्धुओं के मन में इस विषय में कुछ सन्देह उत्पन्न हो गया था क्योंकि उन्होंने 'माधुरी' के उस अंक में जो १८ अगस्त १९२३ ई० में प्रकाशित हुआ था स्पष्ट लिखा है कि *आप कान्यकुब्ज अथवा सरयूपारीण ब्राह्मण थे।*[3] *सन् १९१ में मिश्रबन्धुओं ने तुलसीदास* जी को कान्यकुब्ज घोषित किया था सन् १९१३ में सरयूपारीण और सन् १९२३ ई० में लिखा कि वे या तो कान्यकुब्ज थे या सरयूपारीण। ध्यान देने की बात है कि उन्होंने उक्त लेख में तथा 'मिश्रबन्धु विनोद' में रत्नावली और उसके पिता का उल्लेख नहीं किया है। यह गोपन आकस्मिक प्रतीत होता है क्योंकि मेरे पत्र के उत्तर में रायबहादुर डॉ० श्यामबिहारी मिश्र ने मुझे यह सूचित करने की कृपा की कि गोस्वामीजी का जन्म राजापुर में सं० १५८९ में हुआ उनके माता-पिता आत्माराम और हुलसी थे रत्नावली से उनका विवाह हुआ 'उनके श्वसुर का नाम सबको मालूम है हमें इस समय याद नहीं' वे 'सरयूपारीण या कान्यकुब्ज ब्राह्मण—*गाना के मिश्र या द्विवेदी थे' और उनका देहावसान काशी में श्रावण कृष्णा तीज* संवत् १६८० में हुआ था।[4] रायबहादुर पं० शुकदेव बिहारी मिश्र ने 'मूल गोसाईं चरित' के सम्बन्ध में आपत्तियों की एकावली प्रस्तुत कर उस चरित को अस्वीकार किया है[5] जिसकी चर्चा यथा स्थान की जायगी।

मिश्रबन्धुओं का प्रयत्न अत्यन्त प्रशंसनीय है। उन्होंने गोस्वामीजी के सम्बन्ध में प्राचीन किन्तु प्रचलित जनश्रुतियों के संरक्षण के निमित्त स्तुत्य प्रयास किया और अपने निर्णय को निष्पक्ष तर्कों से सम्पन्न किया।

(आ) डॉ० श्यामसुन्दर दास

प्रारम्भिक मत—रायबहादुर डॉ० श्यामसुन्दर दास के प्रारम्भिक ग्रंथों में गोसाईं तुलसीकृत 'रामचरितमानस' नामक ग्रंथ भी है जिसका सम्पादन उन्होंने काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ग्रंथ-सदस्य-समिति की प्रेरणा से किया था और जो

१ 'मिश्रबन्धु विनोद' पृष्ठ ३६६।
२ पृ० ८६। ४ पत्र १८ दिसम्बर १९४ ई० उत्तर ३० दिसम्बर १९४० ई०।
३ पृ० ८५। ५ नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ८ संवत् १९८४ वि०।

इंडियन प्रेस के द्वारा सन् १९१५ में प्रकाशित हुआ और जिसकी भूमिका उन्होंने सभा के मन्त्रि-रूप से काशी में ५ जून को १९०३ ई० में लिखी थी।

जिस समय उक्त ग्रंथ का सम्पादन हुआ उस समय न तो बाबा रघुबरदास के 'तुलसी चरित' का और न बाबा बेणी माधवदास के 'मूल गोसाईं चरित' का आविर्भाव हुआ था। अतएव डॉ० दास को उन जनश्रुतियों से ही सन्तुष्ट रहना पड़ा जिनका संग्रह ग्रियर्सन महोदय कर चुके थे। डॉ० दास लिखते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम दुबे माता का हुलसी और उनका प्रथम नाम रामबोला था किन्तु डॉ० ग्रियर्सन और महामहोपाध्याय प० सुधाकर द्विवेदी से डॉ० दास इस बात में असहमत थे कि गोस्वामीजी को उनके माता पिता ने अशुभ लग्न में उत्पन्न होने के कारण त्याग दिया था। उनकी सम्मति में गोस्वामीजी के माता-पिता का स्वर्गवास बचपन में ही हो गया था और वे साधुओं के साथ घूमते फिरते थे क्योंकि यदि माता-पिता ने उन्हें जन्म से ही त्याग दिया होता तो गोस्वामी जी को कैसे पता चलता कि मैं ब्राह्मण हूँ और वे अपने विषय में 'दियो सुकुल जनम' न लिखते।[1]

डॉ० दास कहते हैं कि यह दृढ़ जनश्रुति है कि गोस्वामीजी के गुरु नरहरि दास थे और स्वयं उन्होंने रामायण में भी 'नर रूप हरि' का उल्लेख किया है। गुरु ने सोरों में बचपन ही में रामायण का उपदेश दिया था। उनका विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ और उससे तारक नामक एक पुत्र भी जो शैशव में ही समाप्त हो गया था। तुलसीदासजी अपनी पत्नी से अत्यन्त स्नेह करते थे और जब वह अपनी माता के यहाँ चली गयी तब वे उसका वियोग न सह सके और उससे मिलने के लिए चल दिये।[2]

'तुलसीचरित' का प्रभाव—सन् १९१६ ई० में डॉ० दास ने रामचरितमानस की टीका की जिसका द्वितीय संस्करण इण्डियन प्रेस से १९२२ ई० में प्रकाशित हुआ। उस समय तक तुलसीचरित नाम के ग्रन्थ का आविर्भाव हो चुका था जिसका प्रभाव उन पर कुछ कम न पड़ा। उनका पहले से ही विश्वास था कि गोस्वामीजी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इस नये ग्रन्थ ने उनकी धारणा को दृढ़ कर दिया। इस कारण वे 'हिन्दी नवरत्न' के लेखक मिश्रबन्धुओं से जो गोस्वामीजी को कान्यकुब्ज बताते थे असहमत रहे। डॉ० दास ने गोस्वामीजी के माता-पिता के सम्बन्ध में भी अपनी धारणा में परिवर्तन किया ऐसा प्रतीत होता है। वे निम्नलिखित पद्य का उल्लेख करते हैं —

सुर तिय नर तिय नाग तिय सब चाहत अस होय।
गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय॥

इसके उत्तरार्द्ध को अब्दुर्रहीम खानखाना ने लिखा था। लोग कहते हैं कि 'हुलसी' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में हुआ है जिन में से एक गोस्वामीजी की माता

---

१. रामचरितमानस भूमिका पृ० ८। २ वही, पृ० ११।

का द्योतक है किन्तु डॉ॰ दास के मत में ऐसी धारणा का कोई आधार नहीं और यह केवल अनुमान है। अतएव उन्हें 'तुलसीचरित' के आधार पर गोस्वामीजी के प्रपितामह का नाम परशुराम मिश्र पितामह का शंकर मिश्र और पिता का आत्माराम मिश्र बताना अधिक रुचिकर प्रतीत हुआ।*

गोस्वामीजी के नाम के सम्बन्ध में भी डॉ॰ दास ने 'तुलसीचरित' का आधार ग्रहण किया जिसके अनुसार हमारे महाकवि का नाम तुलाराम था और जिसे गुरु ने 'तुलसीदास' में परिवर्तित कर दिया। पीछे से गोस्वामीजी स्वयं अपने को 'तुलसीदास' बताने लगे। अतएव डॉ॰ दास का सुझाव है कि विनयपत्रिका के इस वचन का कि 'राम को गुलाम नाम राम बोला राख्यो राम' यह तात्पर्य होना चाहिये कि भगवान् रामचन्द्र ने गोस्वामीजी का नाम राम बोला रख दिया था।[1]

डॉ॰ दास कहते हैं कि 'तुलसीचरित' के अनुसार गोस्वामीजी विवाह के पश्चात् अपने माता-पिता से पृथक हो गये थे जैसा कि तुलसीदासजी ने स्वयं लिखा है 'मातु पिता जग जाय तज्यो' और 'जननी जनक तज्यो जनमि'। उनके विचार से ये दोनों उक्तियाँ समान हैं क्योंकि दोनों ही के अनुसार माता-पिता और पुत्र का वियोग हुआ था। किन्तु यह वियोग कब हुआ था इस सम्बन्ध में दोनों उक्तियों में आकाश-पाताल का अन्तर है। यदि समग्र 'तुलसीचरित' उपलब्ध होता तो कदाचित् समस्या सुलझ जाती किन्तु उसकी उपलब्धि के अभाव में तब तक गोस्वामी जी के वचनों को मानना पड़ेगा जब तक यह सिद्ध न हो जाय कि तुलसीदासजी के उक्त वचन प्रक्षिप्त हैं अथवा उनकी लेखनी से निस्सृत नहीं हुए। किन्तु ऐसा प्रामाण्य नहीं। ऐसी परिस्थिति में डॉ दासजी को कहना पड़ा कि या तो तुलसीदास जी के माता पिता ने उन्हें छोड़ दिया था अथवा संभवतः वे अपने माता पिता के जीवन-काल में ही किसी कारण अपने गुरु के साथ रहने लगे हों अतएव उक्त दोनों बातें सत्य हो सकती हैं। डॉ॰ दास के उक्त विचारों से स्पष्ट है कि उनका झुकाव 'तुलसीचरित' की ओर हो चला था।[2]

तुलसीदासजी के गुरु के विषय में डॉ॰ दास का मत है कि अनुमान की अपेक्षा 'तुलसीचरित' पर निर्भर रहना अधिक अच्छा है अर्थात् दूसरे शब्दों में यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि गोस्वामीजी के गुरु रामदासजी थे और रामायण के मंगलाचरण में 'नर रूप हरि' से नरहरिदास का तात्पर्य ग्रहण करना अधिक समीचीन नहीं। एक पाद-टिप्पणी में डॉ दास ने उस वंशावली में अविश्वास किया है जो डॉ ग्रियर्सन को मिली थी और जिसमें तुलसी-गुरु 'नरहरिदास' का उल्लेख है किन्तु विचित्रता यह है कि उन्होंने रामचरितमानस के बालकाण्ड के पाँचवें दोहे की टीका में नरहरिजी को गोस्वामीजी का गुरु माना है। उनका तर्क है कि कुछ टीकाकार 'नररूप हरि' से भगवान् नृसिंह का तात्पर्य ग्रहण करते हैं अतएव गोस्वामीजी को भी

---

* रामचरितमानस की टीका, द्वितीय संस्करण, प्रस्तावना पृ॰ १७।

१ वही पृ॰। २ वही, पृ॰ १८ ११।

नृसिंहावतार का मस्त समझते हैं। किन्तु मेरा निवेदन है कि गोस्वामीजी के जीवन-वृत्त के गंभीर अध्ययन से यह स्पष्ट है कि नरहरि नामक विद्वान् गोस्वामीजी के गुरु थे। 'नररूपहरि' इस अभिव्यक्ति से प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी ने अपने प्रतिभाशाली गुरु नरहरिजी को रामचरितमानस में प्रणामांजलि अर्पित की है जिसका अधिक विवेचन यथास्थान किया जायगा।

तुलसीदासजी के विवाह के विषय में डॉ० दास के विचार इस प्रकार हैं परम्परा से यह विदित है कि तुलसीदासजी ने दीनबन्धु की पुत्री रत्नावली से विवाह किया और उससे उन्हें तारक नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ जो शैशव में ही जाता रहा' किन्तु 'तुलसीचरित' के अनुसार गोस्वामीजी ने तीन विवाह किये और तीसरा विवाह कंचनपुर ग्राम के निवासी लक्ष्मण उपाध्याय की पुत्री बुद्धिमती से हुआ जिसके कारण गोस्वामीजी विरक्त हुए। तुलसीदास और उनकी पत्नी के विरागोत्तर एवं आकस्मिक मिलन का उल्लेख डॉ० दास करते हैं, तथा तत्कालीन उपलब्ध सामग्री के आधार पर गोस्वामीजी की जन्मतिथि का विवेचन भी जिसके सम्बन्ध में यथा स्थान विचार करेंगे।

'मूल गोसाईं चरित' की ओर झुकाव—उपरिलिखित उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि डॉ दास का झुकाव कभी-कभी 'तुलसीचरित' की ओर था और किन्हीं-किन्हीं विषयों में तो वे उसको तुलसी-सम्बन्धिनी जनश्रुतियों से अधिक महत्त्व प्रदान करते थे' किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया और हिन्दी साहित्य के आंगन में बाबा वेणी माधवदास कृत 'मूल गोसाईं चरित' का आविर्भाव हुआ वैसे-वैसे 'तुलसी चरित' का चमत्कार लुप्त होता गया। अतएव डॉ० दास इस आविष्कृति को महत्त्व प्रदान करने लगे। उनके विचार से महात्मा रघुबर दास का 'तुलसी चरित' गोस्वामीजी के जीवन पर प्रकाश डालता तो है, किन्तु गोस्वामीजी के समसामयिक शिष्य बाबा बेनीमाधव का 'गोसाईं चरित' अधिक प्रामाणिक है। वास्तव में डॉ० दास का विश्वास 'तुलसी चरित' से हट गया था।

विवरणाभाव की पूर्ति जन श्रुति से—यद्यपि उन्होंने अपने उस महाकाय एवं उत्कृष्ट ग्रन्थ 'हिन्दी भाषा और साहित्य' में स्पष्टतः कहना उचित नहीं समझा जो इंडियन प्रेस से सर्वप्रथम १६८० वि० में प्रकाशित हुआ था तथापि उसमें उन्होंने 'मूल गोसाईं चरित' को ही महत्त्व दिया है और जब कभी आवश्यकता पड़ी तो विवरण के अभाव की पूर्ति जन श्रुतियों से की। उनका निष्कर्ष रहा कि आत्मारामजी तुलसीदास के पिता थे यद्यपि मूल 'गोसाईं चरित' में पितृ-नामोल्लेख नहीं है। डॉ० दास ने तुलसीदासजी को नरहरि और शेष सनातन दोनों का ही शिष्य माना है और इस बात का भी उल्लेख किया है कि पन्द्रह वर्ष तक विद्या प्राप्त कर लेने के पश्चात् वे अपने युवाकाल में घर लौट गये थे। किन्तु इस सूचना का आधार मूल गोसाईं चरित' और जन श्रुतियों का सम्मिश्रण है।

खटकने वाली बात—एक बात जो अधिक खटकती है यह है' डॉ० दास ने लिखा है कि 'गोसाईं चरित' और 'तुलसी चरित' दोनों के ही अनुसार गोस्वामीजी का जन्म संवत् १५५४ वि० और मृत्यु संवत् १६८० वि० है किन्तु यह बात ध्यान देने योग्य

है कि 'तुलसी चरित' में तो गोस्वामीजी के जन्म निधन की तिथियाँ विद्यमान नहीं हैं।

परिवर्तन—ऐसा प्रतीत होता है जब डॉ० दास ने १६०३ ई० में रामचरितमानस का सम्पादन किया अथवा १६१६ ई० में उसकी टीका की तो उनकी मनोवृत्ति ग्राहक रूप में थी और जब उन्होंने १६३० में 'हिन्दी भाषा और साहित्य' नामक ग्रन्थ लिखा तो यह वृत्ति प्रासंगिक और आलोचक रूप को ग्रहण करने लगी। किन्तु जब उन्होंने 'गोस्वामी तुलसीदास' नामक ग्रन्थ लिखा जो हिन्दुस्तानी एकाडमी से १६३१ में प्रकाशित हुआ तो यह वृत्ति आलोचनात्मक हो गयी। इसमें उन्होंने 'तुलसी चरित' को अस्वीकार और मूल गोसाईं चरित को स्वीकार किया है। उन्होंने प्रथम पुस्तक के विषय में सन्देह उत्पन्न करने के निमित्त बाबू शिवनन्दन सहाय का आधार ग्रहण किया और स्वयं भी लिखा खेद है कि इस वृहद् ग्रन्थ के एक लाख तैंतीस हजार नौ सौ बासठ उदार छन्दों में से हमें केवल अवध खण्ड की बयालीस चौपाइयाँ और ग्यारह दोहों को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिन्हें स्वयं इन्द्रदेव नारायणजी ने उक्त लेख में दिया है 'सब उदार' छन्दों को जगत् के सामने रखने की उदारता उन्होंने नहीं दिखाई है। उक्त ग्रंथ को भी स्वयं इन्द्रदेव नारायण के अतिरिक्त और किसी लब्ध-प्रतिष्ठ व्यक्ति ने नहीं देखा है। सम्भवतः वह इसकी जाँच कराना पसन्द नहीं करते। उक्त विषय के पत्रालाप से भी उन्हें आना-कानी है। इसलिए यह निश्चय नहीं किया जा सकता है कि यह ग्रंथ कहाँ तक प्रामाणिक है (पृष्ठ १६)। आगे चलकर डॉ० दास अपने सन्देह की पुनरावृत्ति इस प्रकार करते हैं, 'यह ग्रंथ परम्परा तुलसी चरित में दी गई है पर इसका समर्थन और कहीं से नहीं होता। यह ग्रन्थ भी आलोचकों की दृष्टि से बचा कर रखा हुआ है। इसलिए खेद है कि हम इस परम्परा को मानकर नहीं चल सकते। (पृ० २६ २७)। डॉ० दास आगे विचार करते हैं कि 'तुलसी चरित' में यह उल्लेख नहीं कि तुलसीदासजी जन्म के समय असाधारण लक्षणों से सम्पन्न थे अतएव उनके परित्याग का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता प्रत्युत् 'चरित' से तो यह प्रत्यक्ष है कि तुलसीदासजी अपने माता पिता के साथ बहुत समय तक रहे थे। किन्तु यह बात स्वयं गोस्वामीजी की उक्ति के विरुद्ध है, अतएव अमान्य है।" (पृष्ठ ३२)

डॉ० दास अपनी धारणा से विचलित हुए प्रतीत होते हैं। रामचरितमानस की टीका में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि तुलसीरामजी और रामदासजी गोस्वामीजी के अध्यापक अथवा गुरु थे; तथापि गोस्वामीजी का पहला नाम तुलाराम था और यदि रामबोला नाम का कोई नाम था भी उसे भगवान् रामचन्द्र ने दिया था (पृ० ३२ ३७)। किन्तु कुछ ही पृष्ठ के अनन्तर वे लिखते हैं कि अनुमानतः रामबोला तुलसीदासजी का पहला नाम था जैसा कि तुलसीदासजी स्वयं अनेक बार इंगित कर चुके हैं। श्री नरहर्यानन्द के विषय में जो कि तुलसीदास के गुरुओं में से एक थे (दूसरे थी शेष सनातन) डॉ० दास तुलसी-कृत राम काव्य के मंगलाचरण का उद्धरण और वेणीमाधव दास कृत मूल गोसाईं चरित' एवं नाभादास कृत 'भक्त माल' का साक्ष्य उपस्थित करते हैं और डॉ० ग्रियर्सन-द्वारा उपलब्ध उस वंशावली को भी

जिसे वे 'रामचरित मानस के सटीक संस्करण की भूमिका के पृष्ठ ११ २० पर अस्वीकार कर चुके थे।

'तुलसी चरित' की तीक्षासीक्षमा—'मूल गोसाईं चरित' के अनुसार तुलसीदास का विवाह तारीपत के ब्राह्मण की कन्या से हुआ था और उसी के उपदेश से वे विरक्त हो गये थे। किन्तु डॉ० दास कहते हैं कि 'तुलसी चरित' तो उनके विवाह और विरक्ति के विषय में दूसरी ही बात कहता है। यदि हम 'तुलसी चरित' की बात मानें तो यह बात झूठ सिद्ध होगी कि तुलसीदास के माता पिता ने उन्हें त्याग दिया था अथवा कि गोस्वामीजी की ही उक्तियों से स्पष्ट है। अतएव 'तुलसी चरित' माननीय नहीं। इसके अतिरिक्त रघुवरदास जी ने तुलसीदास की विरक्ति के समय उनका जो वर्णन किया है वह ऐसे व्यक्ति का नहीं प्रतीत होता जिसके हृदय में वैराग्य का उदय हो गया हो। उनका हृदय तो विरागशून्य प्रतीत होता है अर्थात् ऐसे व्यक्ति का जिसे बलात् गृह से निष्कासित कर दिया हो। उस समय रघुनाथ पंडित ने उन्हें व्यथित भ्रान्त एवं व्यस्त देखा और समझा था और तुलसीदासजी ने भी अपनी पत्नी के बारे में इस प्रकार कहा था 'हे भगवन् मेरी पत्नी का अपराध है जिसके कारण माता भाई तथा सम्बन्धियों से वियोग हुआ है। इस प्रकार की उक्ति ऐसे व्यक्ति के मुख से निष्कासित नहीं हो सकती जो विरक्ति से अपूर्ण हो।

'मूल गोसाईं चरित' के पक्ष में प्रथम तर्क—डॉ० दास ने 'तुलसी चरित' को अस्वीकृत किन्तु 'मूल गोसाईं चरित' को स्वीकृत किया है। यह विचित्र सी बात प्रतीत होती है कि 'मूल गोसाईं चरित' को केवल इसलिए मान लिया जाय कि वह बाबा बेनीमाधवदास का लिखा हुआ है जिनके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि वे बहुत समय तक गोस्वामीजी के सम्पर्क में रहे थे। तब इस प्रकार है 'मूल गोसाईं चरित' इसलिए प्रामाणिक है कि उसके लेखक अपने चरितनायक के साथ चौंसठ अथवा सत्तर वर्ष तक रहे थे। किन्तु मेरी विनीत सम्मति में इस प्रकार का तर्क पर्याप्त दोष का उदाहरण है क्योंकि यह कैसे सिद्ध हो कि उसके तथा-कथित रचयिता बेनीमाधव दास नाम के कोई व्यक्ति थे और वे सत्तर वर्ष तक गोस्वामीजी के साथ रहे भी थे?

द्वितीय तर्क—एक दूसरा तर्क भी है। 'मूल गोसाईं चरित' में जिन तिथियों का उल्लेख किया गया है वे सभी गणना से ठीक बैठती हैं। वे तिथियाँ भी पंडित गोरेलाल तिवारी की गणना से ठीक उतरती हैं जिन पर नागरी प्रचारिणी पत्रिका में (जिल्द ७ पृ० १६६ ९८ और ४०१ ४०२) सन्देह किया गया था। किन्तु यह बात कहाँ तक ठीक है इस पर अन्यत्र विचार किया जायगा। डॉ० दास स्वयं स्वीकार करते हैं कि इस पुस्तक में कुछ घटनाएँ अमानुष और असम्भव हैं किन्तु उनके समर्थन में वे कहते हैं कि महापुरुषों के विषयों में चमत्कारों का उदय स्वाभाविक है और शिष्य समुदाय उनमें विश्वास करने लगता है। वैज्ञानिक युग में भी शिष्य अपने गुरु के सम्बन्ध में ऐसा करते देखे जाते हैं फिर बेनीमाधवदास जी की तो बात ही क्या जो सत्रहवीं शताब्दी के गुरु-भक्त थे और जो अपने गुरु के जीवन चरित का नित्य पाठ करना अपना कर्तव्य समझते थे।

विरोधी पक्ष से कहा जा सकता है कि तथा-कथित बेनीमाधवदास तो

गोस्वामीजी के निकट सम्पर्क में सत्तर वर्ष रहे, अतएव उनको अपने गुरु के सम्पूर्ण जीवन के सम्बन्ध में, कम से कम उनके उत्तरकालीन जीवन के सम्बन्ध में सत्य ज्ञान होना चाहिए था। भ्रान्ति तो उन शिष्यों में होती है जो अपने गुरु के निकट नहीं रहते अथवा गुरु के देहावसान के पश्चात् परम्परा अथवा संप्रदाय में दीक्षित होते हैं। ऐसे ही शिष्य असम्भव चमत्कारों में विश्वास कर उन्हें अपनी भक्ति का केन्द्र बनाते हैं। किन्तु बेणीमाधवदासजी से ऐसी आशा नहीं होनी चाहिए कि वे असम्भव घटनाओं का उल्लेख करते क्योंकि ऐसा करना अपने गुरु के प्रति अपराध समान के प्रति अन्याय और अपने प्रति प्रवंचना है। वे तो प्रत्यक्षदर्शी थे।

सूकर क्षेत्र के सम्बन्ध में—डॉ॰ दास ने सूकर क्षेत्र की सत्ता के सम्बन्ध में विचार प्रकट किये हैं। १९१६ ई॰ में रामचरितमानस की भूमिका में तथा उस ग्रंथ के उन्नीसवें पृष्ठ की पाद-टिप्पणी में उन्होंने सूकर क्षेत्र को सोरों माना था। १९२२ ई॰ में भी रामचरितमानस के सटीक संस्करण की भूमिका के बाइसवें पृष्ठ पर सूकर क्षेत्र को सोरों का जिला माना था सम्भवतः 'सोरों जिला' से उनका तात्पर्य एटा के सोरों से था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि पीछे से उन्होंने अपनी धारणा में परिवर्तन कर लिया था। कदाचित् इस विषय में उन पर 'मूल गोसाईं चरित' का प्रभाव पड़ा जिसमें सूकर क्षेत्र को सरयू और घाघरा के संगम पर बताया गया है। पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का भी प्रभाव इस विषय में उन पर पड़ा और उन्होंने 'रामचरितमानस' के अपने नवीनतम संस्करण (१९४० ई॰) में शुक्लजी के शब्दों को इस अभिप्राय से उद्धृत किया है कि सूकर क्षेत्र सोरों नहीं है।

स्पष्टवादिता—डॉ॰ दास का झुकाव 'मूल गोसाईं चरित' की ओर इस कारण रहा कि उसकी उल्लिखित कतिपय तिथियाँ मिलती हैं। किन्तु १९४० ई॰ के रामचरितमानस के सटीक संस्करण के षष्ठ पृष्ठ पर वे इतना अवश्य मानते थे कि 'यदि यह बात है तो यह अयोध्या में नहीं रचा गया।' उनके इन शब्दों से यह स्पष्ट है कि 'मूल गोसाईं चरित' में उनकी आस्था शिथिल हो गई थी किन्तु यह शिथिलता उनकी स्पष्टवादिता की ओर संकेत करती है जो अनुसन्धाता में होनी चाहिए।

(ग) प॰ रामचन्द्र शुक्ल

गोस्वामीजी को कान्यकुब्ज मानने पर आपत्तियाँ—पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने गोस्वामी तुलसीदास को सरयूपारीण ब्राह्मण माना और इस विषय में निम्नलिखित आपत्तियाँ उठायीं और उनका समाधान किया। पहली आपत्ति यह थी कि सम्पूर्ण बाँदा और राजापुर के आस-पास कान्यकुब्ज ब्राह्मण निवास करते हैं सरयूपारीण नहीं अतएव यदि तुलसीदासजी द्विवेदी थे तो वे अवश्य ही कान्यकुब्ज थे। दूसरी आपत्ति यह थी कि गोस्वामीजी का विवाह पाठकों में हुआ था। ब्राह्मणों में पाठक उच्चतम समझे जाते हैं, तत्पश्चात् द्विवेदी। पाठक-कन्या का विवाह द्विवेदी पुत्र से नहीं हो सकता क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपनी पुत्री को अपने से नीचे कुल में नहीं देना चाहता। कान्यकुब्जों में पाठक द्विवेदी से नीचे होते हैं और पाठक औचित्य-

पूर्वक द्विवेदी-कन्या से विवाह कर सकता है। किन्तु शुक्लजी इन दोनों आपत्तियों को निराधार समझते हैं। उनका कथन है कि चित्रकूट से जबलपुर तक और उससे भी आगे सरयूपारीण ब्राह्मण निवास करते हैं और चित्रकूट तथा राजापुर के निकट तो ग्राम के ग्राम सरयूपारीणों से संकुल हैं। द्वितीय आपत्ति के सम्बन्ध में शुक्लजी का कथन है कि सरयूपारीण ब्राह्मणों का बच्चा-बच्चा यह जानता है कि सरयूपारियों में पाठक चौबे और उपाध्यायों की कोटि निम्न है और ऊँची श्रेणी वाले सरयूपारीण उच्च कुलों में अपने पुत्रों का विवाह भी नहीं करते द्विवेदी तो पाठकों से कहीं ऊँचे समझे जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि शुक्ल जी के इन तर्कों ने मित्रबन्धुओं के हृदय में घर कर लिया और कुछ नहीं उनके मन में संशय तो उत्पन्न कर ही दिया।

जन्म-तिथि—गोस्वामीजी की जन्म तिथि के सम्बन्ध में शुक्लजी के विचार डॉ० श्यामसुन्दरदास के विचारों से मेल खाते हैं। अतएव उनकी सम्मति में ऐसा कोई ग्रंथ नहीं जिसमें गोस्वामी तुलसीदास की जन्म-तिथि का उल्लेख हो। जनश्रुति के आधार पर पण्डित रामगुलाम द्विवेदी ने गोस्वामीजी का जन्म संवत् १५८९ वि० माना जिसे डॉ० ग्रियर्सन ने स्वीकार किया है। किन्तु शिवसिंह सेंगर के अनुसार गोस्वामीजी १५८३ वि० के लगभग उत्पन्न हुए थे। पहले संवत् के अनुसार गोस्वामीजी की आयु इक्यानवें और दूसरे के अनुसार सत्तानवें वर्ष ठहरती है। विद्वानों ने अधिकतर १५८९ वि० को ही तुलसीदासजी का जन्म-संवत् माना है। शुक्लजी यह भी सूचित करते हैं कि शिव लाल पाठक काशी के एक विद्वान् थे जो गोस्वामीजी की शिष्य-परम्परागत चौथी पीढ़ी में थे। पाठकजी ने वाल्मीकि रामायण पर संस्कृत टीका की है संस्कृत व्याकरण पर कुछ पुस्तकें रची हैं तथा 'रामचरित मानस' पर भी मानसमयंक नाम की टीका लिखी है। इस टीका में पाठकजी ने गोस्वामीजी का जन्म-संवत् इस प्रकार दिया है—

मन' अम्बर शर' जानिये शर' पर दीजै एक'।
तुलसी प्रकटे रामवत राम जन्म की टेक॥
सुने गुरु के बीच शर' सप्त बीच मन" जान।
प्रगटे सतहत्तर परे, ताते कहि विराम॥

अर्थात् गोस्वामी तुलसीदास संवत् १५५४ वि में उत्पन्न हुए और उन्होंने पाँच वर्ष की अवस्था में अपने गुरु से राम कथा सर्वप्रथम सुनी। तत्पश्चात् उन्होंने यह तब सुनी जब वे चालीस वर्ष के थे। जब गोस्वामीजी सतहत्तर वय के हो चुके थे अर्थात् जब उन्होंने अपनी अवस्था के अठहत्तरवें वय में पदार्पण किया तब उन्होंने रामचरितमानस का प्रारम्भ किया। संवत् १६३१ वि० में वे अठहत्तर वर्ष के थे और संवत् १६८० में संसार से चल बसे। इस प्रकार १५५४ वि० में सतहत्तर जोड़ने से १६३१ वि० संवत की उपलब्धि होती है। यदि १५५४ के वर्ष को भी सम्मिलित कर लिया जाय तो मानस रचना के समय गोस्वामीजी की अवस्था अठहत्तर वर्ष की और पूर्णायु १२७ वर्ष की ठहरती है।

शुक्ल जी का तर्क—शुक्ल जी तर्क करते हैं कि एक सौ सत्ताइस वर्ष तक

जीवित रहना असम्भव तो नहीं किन्तु यह सम्भव है कि मानस-मर्मज्ञ के ग्रन्थों का पाठ अमुद्ध हो। यह पता नहीं कि 'तुलसीचरित' के लेखक महात्मा रघुबरदास ने गोस्वामी जी का जन्म-संवत् दिया भी है कि नहीं। इस परिस्थिति में यह विषय और भी संदिग्ध हो जाता है और इस पर निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। निश्चयपूर्वक तो इतना ही कहा जा सकता है कि गोस्वामीजी पोडशी सदी के उत्तर भाग में उत्पन्न हुए और दीर्घजीवी रहे।

जन्म-स्थान—जन्म-स्थान के विषय में शुक्ल जी का कथन है कोई लिखित प्रमाण नहीं। कुछ लोग कहते हैं कि गोस्वामी जी का जन्म-स्थान तारी था दूसरे कहते हैं कि हस्तिनापुर था किन्तु यह पता नहीं कि यह कौनसा हस्तिनापुर है। लोग यह भी कहते हैं कि यह स्थान हाजीपुर के निकट चित्रकूट है। अन्य लोग कहते हैं कि यह स्थान बाँदा जिले का राजापुर है। बहुमत तारी के पक्ष में है। किन्तु पण्डित राम गुलाम उसे राजापुर घोषित करते हैं। शिवसिंह सरोज मूल गोसाई-चरित और तुलसी चरित्र में भी राजापुर लिखा है। राजापुर में तुलसीदास जी का मानस और मन्दिर भी विद्यमान है। अतएव शुक्ल जी के अनुसार राजापुर को ही गोस्वामी जी का जन्म-स्थान तब तक मानना चाहिए जब तक कोई विरुद्ध-प्रमाण दृष्टिगोचर न हो।

वंशावली—शुक्ल जी उस वंशावली को मानते हैं, जो 'तुलसी-चरित्र' में दी गयी है। इस के अनुसार तुलसीदासजी के प्रपितामह परशुराम मिश्र थे। इनके पुत्र शंकर मिश्र थे और उनके संतमिश्र और रुद्रनाथ मिश्र नामक दो पुत्र हुए। रुद्रनाथ मिश्र के चार पुत्र और दो कन्याएँ थीं। पुत्रों के नाम थे पशुपति महेश तुलाराम और मंगल पुत्रियों के थे वाणी और विद्या। तुलाराम ही हमारे चरित नायक गोस्वामी तुलसीदास हैं। पर 'मूल गोसाई-चरित' और 'तुलसी-चरित्र' के अनुसार वंश-विवरणों में नितान्त भिन्नता है।

क्या नन्ददास जी चचेरे भाई थे ?—शुक्लजी यह मानने को प्रस्तुत नहीं कि महाकवि नन्ददास जी गोस्वामी तुलसीदास जी के चचेरे भाई थे। वे कहते हैं कि 'दो सौ बावन वैष्णव वार्ता' के आधार पर यह बात प्रचलित हो गयी है कि 'रासपंचाध्यायी' के रचयिता नन्ददास जी गोस्वामी तुलसीदास के चचेरे भाई थे। बजनाथ दास ने भी इन्हें एक ही गुरु का शिष्य माना है। किन्तु, शुक्ल जी कहते हैं कि नन्ददास जी तो गोकुल के गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य थे पर गोस्वामी तुलसी दास के गुरु राम भक्त थे अत वे दोनों बातें असंगत हैं। 'दो सौ बावन वष्णव वार्ता' में यह भी लिखा है कि तुलसीदासजी सनाढ्य ब्राह्मण थे। अतएव शुक्ल जी आपत्ति करते हैं कि यह कैसे सम्भव है कि दो व्यक्ति एक ही विद्या-गुरु के और विभिन्न दीक्षा-गुरुओं के शिष्य हों।

विवाह—गोस्वामीजी के विवाह के सम्बन्ध में, डा॰ श्यामसुन्दर दास की भाँति शुक्ल जी लिखते हैं कि कुछ व्यक्तियों का अनुमान है कि तुलसीदास जी अविवाहित रहे। इस अनुमान का आधार है विनयपत्रिका का वाक्य—'ब्याह न बरेखी जाति-पाँति न चाहत हों'। किन्तु शुक्ल जी की सम्मति में यह वाक्य इस बात का प्रमाण नहीं कि गोस्वामी जी अविवाहित रहे क्योंकि इसका अर्थ तो यह भी हो सकता है कि 'मुझे

उस समय विवाह की इच्छा नहीं'। इसके अतिरिक्त प्रियादास सबसे प्रथम वे व्यक्ति हैं जिन्होंने 'भक्तमाल' पर अपनी टीका में गोस्वामीजी के विवाह का उल्लेख किया। तत्पश्चात् गोस्वामी जी के प्रत्येक जीवन-चरित में इसका उल्लेख मिलता है। प्रियादास तो तुलसीदास जी के कुछ समय पश्चात हुए थे अतएव हमें यह मान लेना चाहिए, शुक्ल जी लिखते हैं कि तुलसीदास जी का विवाह हुआ था। वे यह भी कहते हैं कि तुलसीदासजी के तीन विवाह हुए और उनकी तीसरी पत्नी कंचनपुर ग्राम के निवासी लछमन उपाध्याय की पुत्री बुद्धिमती थी। इस विषय में शुक्ल जी ने 'तुलसी-चरित' का आधार ग्रहण किया है। 'मूल गोसाईं चरित' में गोस्वामी जी की पत्नी के नाम का उल्लेख नहीं है, और जनश्रुति तथा सोरों-सामग्री के अनुसार गोस्वामी जी की पत्नी दीनबन्धु पाठक की पुत्री रत्नावली थी जिसके कारण वे विरक्त हुए थे। डॉ॰ दास की भाँति शुक्ल जी पति-पत्नी के आकस्मिक किन्तु विरागोत्तर मिलन सम्बन्धी कथानकों का उल्लेख करते हैं जिनका संग्रह ग्रियर्सन महोदय कर चुके थे।

गुरु—गोस्वामीजी के अध्यापक एवं गुरु के सम्बन्ध में डॉ॰ दासकी भाँति, शुक्लजी कहते हैं कि तुलसीदासजी ने अपने गुरु के नाम का उल्लेख कहीं नहीं किया है बस 'रामचरितमानस' के मंगलाचरण में यह उल्लेख है —

बंदउँ गुरु पद कंज कृपासिन्धु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु बचन रबि कर निकर॥

उक्त सोरठे में 'नर रूप हरि' से कुछ लोग जन नरहरिदास का तात्पर्य ग्रहण करते हैं जो तुलसीदास जी के गुरु एवं स्वामी रामानन्द जी के बारह शिष्यों में से एक थे। ये स्वामी जी १५२० वि॰ के लगभग विद्यमान थे। अतएव ऐसा संभव है कि उनके शिष्य नरहरिदास सोलहवीं सदी में विद्यमान रहे हों। किन्तु शुक्ल जी का कथन है कि यह केवल 'नर रूप हरि' के आधार पर अनुमान है। 'तुलसीचरित' के अनुसार रामदास जी तुलसीदासजी के गुरु थे अतएव अनुमान की अपेक्षा इस कथन को अधिक महत्व देना चाहिए। शुक्ल जी के इन विचारों से यह स्पष्ट है कि उनका झुकाव इस ओर था कि रामदास जी तुलसीदासजी के गुरु थे किन्तु यहाँ यह निर्देश कर देना उचित होगा कि नरहरि को गोस्वामीजी का गुरु अनुमानमात्र के बल पर नहीं अपितु प्राचीन जनश्रुति के आधार पर, माना जाता है। इस द्विरुक्ति की आवश्यकता नहीं कि 'तुलसी चरित' का प्रामाण्य सभी को अमान्य है। डॉ॰ ग्रियर्सन द्वारा अनुसंहित उस वंशावली को जिसका सम्बन्ध रामानन्द नरहरिदास और तुलसीदास से था शुक्लजी इस कारण से नहीं मानते कि शठकोपाचार्य रामानुज से पहले थे किन्तु वंशावली में यह नाम पीछे आया है (पृष्ठ २१ पाद टिप्पणी)। यह आलोचना बड़ी संक्षिप्त है नामोल्लेख का व्यतिक्रम तो कई कारणों से ही सकता है, यथा लिपिकार की असवधानी अपर्याप्त ज्ञान एक ही नाम के अनेक व्यक्ति।

'रामबोला'—हमारे महाकवि का नाम भी विवादास्पद है। शुक्ल जी कहते कहते हैं कि तुलसीदास जी ने स्वयं विनय पत्रिका में लिखा है—

'राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम'। ७६

इससे प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी का एक नाम रामबोला भी था किन्तु 'तुलसी

चरित' में उनका नाम तुलाराम है जिसको उनके गुरुगुरु ने 'तुलसीराम' में परिवर्तित कर दिया यद्यपि विरक्ति के पश्चात् उनकी प्रसिद्धि 'तुलसीदास' नाम से ही हुई। अतएव शुक्लजी के अनुसार विनय पत्रिका की उक्ति का तात्पर्य तो केवल इतना है कि भगवान् राम ने उनको बुलाया और स्वीकार कर लिया। स्पष्टतः शुक्लजी का झुकाव 'तुलाराम' नाम की ओर रहा। इस विषय में 'तुलसी-चरित' के खण्डन की विशेष आवश्यकता नहीं, किन्तु यह निर्देश कर देना उचित प्रतीत होता है कि तुलसीदास जी बचपन में 'राम राम' कहा करते थे जिससे उनका नाम 'रामबोला' पड़ गया।

तुलसीदास जी अपने माता-पिता से अलग हुए—कवितावली और विनय पत्रिका में कतिपय ऐसे वाक्य हैं जिनसे यह सन्देह उत्पन्न होता है गोस्वामीजी के माता-पिता ने उन्हें त्याग दिया था अथवा वे पीछे से उनसे अलग हो गये थे। अतएव शुक्लजी ने गोस्वामीजी के इन वाक्यों की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि—

मातु पिता जग जाइ तज्यो। जनक जननि तज्यो जनमि।

पं० सुधाकर द्विवेदी के आधार पर डॉ० ग्रियर्सन ने लिखा था कि अभुक्त मूल में उत्पन्न होने के कारण उनके माता पिता ने उन्हें त्याग दिया किन्तु यह तर्क भी किया था कि मूल-शान्ति के लिए शास्त्रों में उपाय भी बताये गये हैं और बच्चे इस प्रकार त्याग नहीं दिये जाते। अतएव, शुक्ल जी के अनुसार, 'तज्यो' का अर्थ यहाँ पर यह ग्रहण करना चाहिए कि माता-पिता ने यह देखकर कि तुलसीदास किसी काम-धन्धे में नहीं लगते हैं उन्हें अपने घर से अलग कर दिया अथवा वे उनके शैशव-काल में ही दिवंगत हो गये हों। शुक्ल जी का झुकाव पहली बात के लिए अधिक है और वे विनय पत्रिका से निम्नलिखित उद्धरण उपस्थित करते हैं :

स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा को सो टोटक औचट उलटि न हेरो

'तुलसी-चरित' में भी लिखा है कि तुलसीदास जी अपने माता-पिता से गृहकलह के कारण अलग हुए थे। उनका मत है कि 'जनक जननि तज्यो जनमि' इस वाक्य में 'जनमि' का अर्थ 'जन्म के समय' न करना चाहिए; करना चाहिए 'वे लोग जिन्होंने जन्म दिया है'। किन्तु 'जनमि' को इस प्रकार संगति लगाने में शुक्ल जी परम्परागत अर्थ से दूर हो जाते हैं। इस विषय में उनकी कल्पना वैसी ही क्लिष्ट है जैसी कि 'रामबोला' का अर्थ करने में। इस प्रकार की क्लिष्ट कल्पना का प्रेरक तुलसी चरित है जिससे वे प्रभावित थे।

सूकर खेत सरयू-घाघरा के संगम पर—शुक्ल जी ने सूकर-खेत की स्थिति को सरयू-घाघरा के संगम पर बताया है। सूकर-खेत सोरों है यह कहना शुक्ल जी को नहीं सुहाता। वे इस विषय में अपनी झुँझलाहट को इस प्रकार प्रकट करते हैं "हमारे प्रान्त की यह है 'सूकर खेत' को भ्रम से सोरों समझ लिया गया है। 'सूकर खेत' गोंडा जिले में सरयू के किनारे एक पवित्र तीर्थ है। यहाँ आस-पास के कई जिलों के लोग स्नान करने जाते हैं और मेला लगता है। शुक्ल जी लिखते हैं कि सोरों की ओर सबसे प्रथम इंगित लाला सीताराम ने किया और उसके बहुत दिनों पीछे उसी इशारे पर दौड़ लगी। यहाँ हमारा निवेदन है कि लोग बहुत काल से सोरों को सूकर खेत मानते रहे हैं। रामचरित मानस की अतिप्राचीन टीकाओं में सूकर खेत का तादात्म्य

सोरों से किया गया है। अनेक पुराणों में सूकर क्षेत्र की स्थिति गंगा के किनारे बतायी गयी है। ग्राउज आदि अनेक पश्चिमी विद्वान् भी सोरों को ही सूकर क्षेत्र मानते रहे हैं। पर बाबा सीताराम तो उन व्यक्तियों में हैं जिन्होंने सूकर क्षेत्र को सोरों से हटा कर सरयू-घाघरा के संगम पर बताया है। शुक्ल जी ने संवत् १९८० वि० में काशी-नागरी प्रचारिणी-सभा-द्वारा प्रकाशित 'तुलसी ग्रन्थावली' के तृतीय भाग के प्रथम संस्करण की भूमिका के १४वें पृष्ठ पर, पण्डित महादेव प्रसाद त्रिपाठी के मत का उल्लेख किया है जिन्होंने अपने 'भक्ति-विकास' में सूकर क्षेत्र का तादात्म्य सोरों से किया है। कदाचित् शुक्ल जी को तब यह विदित न था कि उक्त संगम पर भी कोई सूकर खेत कहा जाता है नहीं तो वे उक्त त्रिपाठी जी को अवश्य आड़े हाथ लेते।

परिवर्तन—ऐसा प्रतीत होता है कि शुक्ल जी जिसे पहले हीरक-खनि समझते थे वह पीछे स्वर्णखनि, तत्पश्चात् कोकिल-खनि, सिद्ध हुई। सर्वप्रथम वे 'तुलसी चरित' से प्रभावित हुए, किन्तु 'मूल गोसाईं-चरित' के आविर्भाव से तुलसी-चरित' का चमत्कार लुप्त हो गया। अतएव अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ के प्रथम संस्करण में उन्होंने उक्त 'तुलसी चरित' की उस महिमा का त्याग किया जो 'तुलसी ग्रन्थावली' की भूमिका में विद्यमान है। यद्यपि इस संस्करण में स्पष्टतः 'मूल गोसाईं चरित' की प्रशंसा नहीं की गयी है, तथापि उसके बड़े भाई 'तुलसी चरित' की अपेक्षा 'मूल गोसाईं चरित' को अधिक महत्व प्रदान किया गया है। यह बात उल्लेखनीय है कि शुक्ल जी ने अपने पिछले ग्रन्थ में यह नहीं लिखा कि गोस्वामी तुलसीदास रामदास के शिष्य थे अथवा तुलसीराम उनके कुलगुरु थे। किन्तु वे 'मूल गोसाईं चरित' के आधार पर नरहरिदास और शेष सनातन को तुलसी दासजी का गुरु बताने लगे। जिस 'मूल गोसाईं चरित' की ओर शुक्ल जी अपने इतिहास के प्रथम संस्करण में झुके प्रतीत होते थे उसी को उन्होंने नवीनतम संस्करण में भर्त्सना प्रदान की और जाली घोषित किया।

शुक्ल जी का दृष्टिकोण—अतः शुक्ल जी ने यह अच्छा ही किया कि उन्होंने अपने 'गोस्वामी तुलसीदास' नामक ग्रन्थ से गोस्वामी जी का जीवन चरित निकाल दिया। इसके प्रथम संस्करण में जो १९८० वि० में लक्ष्मीनारायण प्रेस से प्रकाशित हुआ था उन्होंने गोस्वामी जी के जीवन-चरित के निमित्त एक सौ सतावन पृष्ठ उपस्थित किये थे किन्तु जब उसका नवीन संस्करण इण्डियन प्रेस (इलाहाबाद) से प्रकाशित हुआ'—तो उन्होंने जीवन-खण्ड को निकाल दिया। १९९७ वि० में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पुनः प्रकाशित हुआ और इस संस्करण से यह स्पष्ट नहीं होता कि गोस्वामी जी के जीवन-चरित के सम्बन्ध में शुक्ल जी की निजी धारणाएँ क्या थीं। उन्होंने 'मूलगोसाईं चरित' की स्पष्ट निन्दा की है और वे 'तुलसीचरित' के प्रामाण्य के विषय में भी संदिग्ध प्रतीत होते हैं। यद्यपि शुक्ल जी अपनी आलोचना में बड़े दृढ़ और प्रबल प्रतीत होते हैं तथापि ध्यान देने से यह स्पष्ट है कि उन्होंने सत्य को अपनाने में संकोच न किया। यदि वे आज जीवित होते और सोरों की समस्त सामग्री का स्वयं अवलोकन कर उसे सत्य पाते तो उसकी भी भूरि भूरि प्रशंसा करते।

भ्रान्त-साहित्य

प्राक्कथन

गोस्वामी तुलसीदास के जीवन के सम्बन्ध में ६ भ्रान्त पुस्तकें हैं। वे हैं 'तुलसी चरित', 'मूल गोसाईं चरित', '—घटरामायण' 'गोसाईं चरित' 'गौतम चन्द्रिका' और 'तुलसी प्रकाश'। इनमें से प्रथम तीन तो तुलसीदास जी को राजापुर-वास बताती हैं। चतुर्थ और पंचम तुलसी-जन्म स्थान के सम्बन्ध में चुप हैं किन्तु द्वितीय से पंचम तक सभी पुस्तकें सूकरखेत की स्थिति सरयू-घाघरा के संगम पर बताती हैं। छठी पुस्तक सोरों-सिद्धान्त के अनुकूल होते हुए भी अप्रामाणिक है। अतएव उक्त सभी पुस्तकों का अलग-अलग विस्तृत विवेचन आवश्यक है।

(क) तुलसी चरित परीक्षण

प्राप्ति-काल और परिचय—श्री इन्द्रदेव नारायण ने प्रयाग से निकलने वाली मर्यादा नाम की मासिक-पत्रिका की ज्येष्ठ संवत् १९६९ की संख्या में एक लेख प्रकाशित कराया जिसमें मिश्रबन्धु-कृत 'हिन्दी नव-रत्न' की विरोधात्मक समालोचना की गयी थी। इसी लेख के मध्य में 'तुलसी-चरित' नामक एक ग्रन्थ की सूचना इस प्रकार दी गई थी "गोस्वामी जी का जीवन चरित उनके शिष्य महानुभाव महात्मा रघुबरदास जी ने लिखा है। इस ग्रन्थ का नाम तुलसी-चरित है। यह बड़ा ही बृहद् ग्रन्थ है। इसके मुख्य चार खण्ड हैं—(१) अवध (२) काशी (३) नर्मदा और (४) मथुरा इनमें भी अनेक उपखण्ड हैं। इस ग्रन्थ की छंद संख्या इस प्रकार लिखी हुई है—

एक लाख तैंतीस हजारा नौ सै बासठ छंद उदारा।

यह ग्रन्थ महाभारत से कम नहीं है। इसमें गोस्वामी जी के जीवन-चरित्र-विषयक नित्यप्रति के मुख्य-मुख्य वृत्तांत लिखे हुए हैं। इसकी कविता अत्यन्त मधुर सरल और मनोरंजक है। यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि गोस्वामीजी के प्रिय शिष्य महात्मा रघुबरदासजी-विरचित इस आदरणीय ग्रन्थ की कविता भी रामचरित मानस के टक्कर की है और यह तुलसी-चरित्र बड़े महत्व का ग्रन्थ है। इससे प्राचीन समय की सभी बातों का विशेष परिज्ञान होता है।"

शिवनन्दन सहाय जी का मंतव्य—१९२१ में प्रकाशित माधुरी के तुलसी अंक के 'गोस्वामी-तुलसीदासजी' नामक लेख में शिवनन्दन सहाय जी 'तुलसी-चरित' की प्राप्ति पर इस प्रकार विचार करते हैं—

"हमें ज्ञात हुआ है कि बेतिया (चंपारन) निवासी बाबू इन्द्रदेव नारायण को गोसाईंजी के किसी चेले की एक लाख दोहे चौपाइयों में लिखी हुई गोसाईं जी की जीवनी प्राप्त हुई है। सुनते हैं, गोसाईंजी ने पहले उसका प्रचार न होने का शाप दिया था, किन्तु लोगों के अनुनय-विनय से शाप-मोचन का समय संवत् १९६७

निर्धारित कर दिया। तब तक उसकी रक्षा का भार उसी प्रेत को सौंपा गया जिसने गोसाईं जी को भी हनुमानजी से मिलने का उपाय बताकर श्री रामचन्द्रजी के दर्शन की राह दिखाई थी। यह पुस्तक भूटान के किसी ब्राह्मण के घर में पड़ी रही। एक मुंशीजी उनके बालकों के शिक्षक थे। बालकों से उस पुस्तक का पता पाकर उन्होंने उसकी पूरी नक़ल कर डाली। इस गुरुतर अपराध से क्रोधित हो वह ब्राह्मण उनके वध के निमित्त उद्यत हुआ तो मुंशी जी वहाँ से चंपत हो गये। वही पुस्तक किसी प्रकार मसवर पहुँची और फिर पूर्वोक्त बाबू साहब के हाथ लगी। क्या हम स्वजातीय इन मुंशीजी की चतुराई और बहादुरी की प्रशंसा नहीं करेंगे? उन्होंने सारी पुस्तक की नक़ल कर ली। तब तक ब्राह्मण देवता के कानों तक खबर न पहुँची और जब आये तो अपने वोरिए बस्ते के साथ दीर्घकाय ग्रन्थ को लेते हुए। इसके साथ ही क्या अपने दूसरे भाई को यह अभूतपूर्व और अलभ्य पुस्तक हस्तगत करने पर बधाई न देनी चाहिए? पर प्रत ने उसकी कैसे रक्षा की और वह उस ब्राह्मण के घर कहाँ पहुँची यह कुछ हमारे संवाद-दाता ने हमें नहीं बताया। जो हो जिस प्रेत की बदौलत सब कुछ हुआ उसके साथ गोसाईं जी ने यथोचित प्रत्युपकार नहीं किया। सनकादी तथा कैलवदास के समान उसके उद्धार का उद्योग तो भला करते उल्टे उसके माथे तीन सौ वर्ष तक अपनी जीवनी की रक्षा का भार डाल दिया।

मिश्र बन्धुओं और शुक्ल जी का असन्तोष— मिश्र-बन्धु विनोद में मिश्र-बन्धु लिखते हैं 'हम 'तुलसी चरित' को प्रमाण नहीं मानते हैं क्योंकि इस ग्रन्थ को अभी तक सिवा एक-आध सज्जनों के और किसी ने नहीं देखा है और उन महाशय ने हम से कई बार वादा करने पर भी उस ग्रन्थ के दिखाने में कोई तत्परता नहीं की।" पंडित रामचन्द्र शुक्ल भी इस बात का उल्लेख 'तुलसी ग्रन्थावली' की प्रस्तावना में करते हैं कि 'इस पुस्तक को और किसी ने नहीं देखा है।

डॉ० दास और बड़थ्वाल की आपत्तियाँ—डॉ० श्यामसुन्दर दास और डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल गोस्वामी तुलसीदास नामक ग्रन्थ में 'तुलसी चरित' के विषय में इस प्रकार विचार प्रकट करते हैं—"खेद है कि इस वृहत् ग्रन्थ के एक लाख तेंतीस हजार नौ सौ बासठ उदार छन्दों में से हमें केवल प्रथम खंड की ४२ चौपाइयों और ११ दोहों को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिन्हें स्वयं इन्द्रदेव नारायण जी ने उक्त लेख में दिया है। शेष उदार छन्दों को जगत् के सामने रखने की उदारता उन्होंने नहीं दिखाई है। उक्त ग्रन्थ को भी स्वयं इन्द्रदेव नारायण जी के अतिरिक्त और किसी सम्मप्रतिष्ठ लेखक ने नहीं देखा है। संभवतः वे उसकी जाँच कराना पसंद नहीं करते। उस विषय के पत्रालाप से भी उन्हें आनाकानी है। इसलिए यह निश्चय नहीं किया जा सकता है कि यह ग्रन्थ कहाँ तक प्रामाणिक है। आगे चलकर 'गोस्वामी तुलसीदास' के लेखक कहते हैं 'यह वंशपरम्परा तुलसी चरित में दी हुई है पर इसका समर्थन और कहीं से नहीं होता। यह ग्रन्थ भी आलोचकों की दृष्टि से बचाकर रखा हुआ है इसलिए खेद है कि हम इस परम्परा को मानकर नहीं चल सकते तुलसी चरित वाले कथानक को यदि सत्य मानते हैं तो पिता के द्वारा त्याग दिए जाने की कथा झूठी ठहरती है ..... अतएव तुलसी-चरित की विवाह-सम्बन्धी बातें

माननीय नहीं है। इसके अतिरिक्त रघुबरदास ने तुलसीदास के घर से बैरागी होने के लिए निकलने पर जो दशा बताई है वह उस व्यक्ति की सी नहीं है, जिसके हृदय में वैराग्य का उदय हुआ हो। उनका हृदय वैराग्य की अनुभूति से रहित जान पड़ता है। वे घर से जबरदस्ती निकले हुए से लगते हैं। इस समय रघुनाथ पंडित ने उन्हें 'बिलोक आतुर मति भारी' देखा था। इस पंक्ति से बुद्धिमती के विषय में तुलसीदास ने कहा था—

'अहो नाथ तिन्हु कीन्ह चोराई। मात भ्रात परिवार छोड़ाई।

यह ऐसे व्यक्ति का-सा वर्णन नहीं है जिसके हृदय में वैराग्य की अनुभूति हो। तुलसीदासजी का जो रूप उनके प्रश्नों से प्रस्फुटित होता है वह इसके प्रतिकूल पड़ता है।"

पाला मिश्र का बेतुका बाना—'समाजजीवन' के तुलसी-स्मृति अंक में काव्य-कुसुम-कुसुमभूषण पं० रामस्वरूप मिश्र ने श्री तुलसीदास के काल्पनिक जीवन-चरित पर एक दृष्टि-पात' किया है। आप लिखते हैं—

'तुलसी चरित में रघुनाथ पंडित और गोस्वामी तुलसीदासजी के प्रश्नोत्तर विचारणीय हैं। प्रायः अपरिचित व्यक्ति के परिचय के लिए उसका नाम ग्राम जाति वृत्ति तथा वर्तमान दशा का पूछना ही पर्याप्त होता है, इन बातों के ज्ञात हो जाने पर विशेष बातें किसी विशेष प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए ही पूछी जाती हैं, किन्तु रघुनाथ पंडित का सामान्य परिचय भी न होते हुए सम्पूर्ण कुटुम्ब का वृत्तान्त पिता की पूर्व पीढ़ियों के साथ ससुराल आदि का परिचय प्राप्त करना अस्वाभाविक है और रघुनाथ पंडित का कथन तो सर्वथा उपहासास्पद ही प्रतीत होता है। 'सबों चिह्न मिश्रन सम तोरा बिसुधि मंजु मम गोत्र किशोरा'। तुम्हारे चिह्न मिश्रों के समान देखता हूँ अतः तुमको मैं अपने पवित्र गोत्र का पुत्र अनुमान करता हूँ। यहाँ पर रघुनाथ ने गोस्वामीजी के मिश्र जान पड़ने वाले चिह्न नहीं दिए, शायद उस समय मिश्रों के कोई विशेष चिह्न होते हों जो अन्य शास्त्रीय ब्राह्मणों में न पाए जाते हों किन्तु गोस्वामीजी ने अपनी कविता में अपने किन्हीं विशेष चिह्नों का संकेत नहीं किया है न अपने को मिश्र ही लिखा है। उन्होंने तो स्पष्ट रूप से अपना जन्म सुकुलों में लिखा है—

'दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को'

विद्वान् गोस्वामी जी ने रघुनाथ पंडित के प्रश्नों के विस्तृत उत्तर में अपने कुल-गुरु तुलसीराम द्वारा नामकरण रामदास गुरु से केवल तीन वर्ष में समस्त शास्त्र पुराणादि पढ़ना अपनी कुण्डली के ग्रहों के फल विवाह-दहेज में हजारों रुपये लेना बीड जैन ग्राम नाम का अप्रासंगिक वर्णन अपने को धनी विद्यावान् तपस्वी तेजस्वी बुद्धिमान् वचनसिद्ध स्वरूपवान्, पौरुषमं और विदेह-समान ज्ञानी बताना तथा पिता-द्वारा अपनी माता, भ्राता, भगिनी, मामा भतीजे भतीजियों सहित अपना १६ व्यक्तियों के घर से निकाले जाना आदि कहने और न कहने योग्य सभी बातें तो एक अपरिचित पुरुष से बिना पूछे ही कह डालीं।" श्री शिवनन्दनसहाय की भाँति मिश्रजी भी इस बात पर आश्चर्य प्रकट करते हैं कि गोस्वामीजी को ६,०००) दहेज में मिले जो भी तीसरे विवाह में। पर ऐसा प्रसिद्ध है कि गोस्वामीजी को बालकपन में आर्थिक संकट

का सामना करना पड़ा, जैसा कि स्वयं उनकी ही उक्तियों से स्पष्ट है। मिश्रजी की धारणा है कि 'वास्तव में यह 'तुलसी चरित' उनके किसी भी शिष्य का लिखा नहीं जान पड़ता यह प्रबन्ध ही किसी स्वार्थसाधक बाबा मिश्र का बेतुका गाना है।

पाठान्तर—'तुलसी चरित' 'मर्यादा' के अतिरिक्त 'तुलसी ग्रन्थावली' 'गोस्वामी तुलसीदास' 'रामचरितमानस सटीक' एवं 'तुलसीदास और उनकी कविता' में भी उद्धृत है, जो क्रमशः नागरी प्रचारिणी सभा हिन्दुस्तानी एकेडेमी इण्डियन प्रेस और हिन्दी मन्दिर, से प्रकाशित हुए। त्रिपाठीजी ने कदाचित् डॉ० श्यामसुन्दर से नकल की है। यह ध्यान देने की बात है कि सभी उद्धरणों में पर्याप्त संशोधन भी हुआ है। छन्द तक बदल दिए गये हैं और कहीं-कहीं वाक्य-विन्यास में भी अन्तर है। ऐसा न जाने क्यों हुआ है?

अस्पष्ट स्थल—'तुलसी चरित' के अनेक स्थल ऐसे हैं जो अंधकारमय हैं, यथा—

राजमानि से जानिए, कोउ विप्र अरु भूप।
जन्म भूमि मम गौर भुमि प्रगट्यो बौद्ध स्वरूप॥
बौद्ध स्वरूप भैंडते भारी। उपल रूप महि दीन बनारी॥
जैनाभास चल्यो मत भारी। रहा कीच पूर्ण परिवारी॥
अति आदर करि भूप बसावा। वाम मार्ग पथ शुद्ध चलावा॥
स्वार स्वामि शिव शक्ति उपासी। जिनके प्रगट संभु गिरिवासी॥
दोहा—राज योग कोउ सुख यु एहि होहिं अनेक प्रकार।
भये सदा मुनीस को, लियो जन्म दरबार॥

ऐतिहासिक व्यतिक्रम—'बौद्ध-स्वरूप' और 'जैनाभास' मत क्या है? जैन और बौद्ध धर्म तो गोस्वामीजी की चार ऊँची पीढ़ियों से भी कम से कम एक-एक हजार वर्ष पहले प्रचलित थे। 'वाम मार्ग पथ शुद्ध' क्या है? वाम मार्ग भी बहुत प्राचीन है। अस्तु 'तुलसी-चरित' की निम्नलिखित पंक्तियां विशेषतः विचारणीय हैं—

पुनि आयो यक सम हेता। कियो परम गुरुदेव सचेता॥
पढ़ि मुनि पाणिनीय को ग्रन्था। बहु अध्याय शब्द कर पंथा॥
कौमिल ग्रन्थ समग्र विचारी। पढ़े कृपा गुरु शेखर भारी॥
कौमुदआदि महभाष्य विचारी।
बरष एक महं धारहिं सोई। पुनि यह शास्त्रवत महं सोई॥
सकल पुराणकाव्य प्रवलोकी। तीन बरष महं भयो विलोकी॥

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास ने केवल तीन वर्षों में बहुत कुछ पढ़ लिया। एक वर्ष में सब पुराण एक वर्ष में सम्पूर्ण व्याकरण और एक वर्ष में छहों शास्त्र पढ़ लिये। चतुर से चतुर मनुष्य ऐसा नहीं कर सकता। अष्टादश पुराणों के पारायणमात्र में बहुत समय लग जाता है। सुनते हैं कि अकेला व्याकरण ही बारह वर्षों में समाप्त होता था। गोस्वामीजी असाधारण मनुष्य थे, अतएव विचारार्थ हम माने लेते हैं कि उन्होंने केवल तीन वर्ष में ही सब व्याकरण शास्त्र और पुराण पढ़ लिये।

क्या भट्टोजी और नागेश के व्याकरण रचे जा चुके थे ?—किन्तु एक बात खटकती रहती है कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने दीक्षित कौस्तुभ और शेखर पढ़ लिये। ऐसा कदाचित् मान भी लिया जाय कि उन्होंने पाणिनि की अष्टाध्यायी और पतंजलि का महा भाष्य पढ़े थे, क्योंकि ये गोस्वामीजी से कहीं पहले के हैं, यद्यपि तुलसीदासजी की क्षीण संस्कृत रचना से तो यही प्रकट होता है कि उन्हें संस्कृत व्याकरण का बोध अधिक न था इस पर आगे प्रकाश डाला जायगा। पर गोस्वामीजी दीक्षित, कौस्तुभ और शेखर किस प्रकार पढ़ सकते थे जब कि ये रचनाएँ गोस्वामीजी की मृत्यु के पश्चात् संसार को मिली हैं।

भट्टोजी दीक्षित का समय—स्मरण रहे कि सिद्धान्त कौस्तुभ और मनोरमा के कर्ता भट्टोजी दीक्षित जगन्नाथ पंडितराज के समकालीन थे अतः वे शाहजहाँ के शासनकाल में विद्यमान थे, जैसा कि श्री पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी ने 'हिन्दी रस गंगाधर, की भूमिका के पृष्ठ २२ २४ पर लिखा है जिसे काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से इण्डियन प्रेस से १९८९ वि० में प्रकाशित किया। ए ए० मैकडौनल ने 'ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर' (१९१७-नवीन संस्करण) के ४१२ वें पृष्ठ पर भट्टोजी को सत्रहवीं शताब्दी का माना है। उसी प्रकार काशी-विश्वविद्यालय के प्रो० पं० सीताराम जयराम जोशी और पं० विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज ने अपने 'संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' (पृष्ठ २१४) में भट्टोजी को सप्तदश शतक के प्रारम्भ का माना है। श्री सदाशिव शर्मा जोशी ने स्वसंपादित एवं भट्टोजी दीक्षित-कृत प्रौढ़ मनोरमा' के प्रस्ताविकम् (१९२८ ई०) के चतुर्थ पृष्ठ पर भट्टोजी के विषय में इस प्रकार लिखा है—

अस्य कर्त्तारः पूज्यपादाः खिस्ताब्दमानेन १६१० बाणगिरसैन्दु परिमिते संवत्सरे वाराणसी-मास्थाय महाराष्ट्र-ब्राह्मणा भट्ट-कुलावतंसाः श्री मल्लक्ष्मीधर पंडितवर-तनूजन्मानः श्रीमच्छेष-कृष्णाभिधगुरोरपारानुराग-समासादित-वदुपी-भूषिताः सुगृहीतनामधेया विद्यावारिधिवर्धन-दीक्षिता भट्टोजी दीक्षिता इति विदितमेव समेषां विदुषाम्।

इससे स्पष्ट है कि भट्टोजी दीक्षित १६१० ईसवी में प्रकाश में आये थे।

नागेश भट्ट का समय—महामहोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसाद और वासुदेव शर्मा पणशीकर ने 'रसगंगाधर का संपादन १९१६ ई० में किया जिसमें उन्होंने नागेश भट्ट के विषय में इस प्रकार लिखा है—

अत्र पंडित-राजाद् द्वितीय पुरुषो नागेश आसीदिति श्रायते। पूर्वं निर्णीत प्रासमले जगन्नाथपण्डितराज-समये १६६६ खिस्ताब्दे पुष्यप्रथ-मरालीनि चत्वारिंशद् वर्षाणि योजयन्ते चेत्तदा १७०६ खिस्ताब्दोऽप्रमासन्नो नागेश समय समायाति। अत्र च जयपुर-महाराजाः श्री सवाई जयसिंह वर्मणोऽश्वमेध प्रसंगे नागेश-भट्टाय निमन्त्रणपत्रं प्रहितवन्तः। तदा नागेशेन 'अहं क्षेत्र-संन्यासं गृहीत्वा काश्यां स्थितोऽस्मि प्रतस्ता परित्यज्यान्यत्र गन्तुं न शक्नोमि'। इत्युत्तरं प्रहितम् एषा किंवदन्ती जयपुरेऽप्युनापि प्रसिद्धास्ति। श्री जयसिंह महाराजानाम् १७१४ खिस्ताब्देऽश्वमेधं इतवन्त इत्युक्तमेव प्राक्। अयमश्वमेधसंवत्सरोऽपि पूर्वलिखित १७०६ खिस्ताब्दसमुपासन्न एवेति खिस्ता

श्रीकाव्यदश-शतक-प्रथम-तुरीयांशे नागेश भट्ट आसीदिति व्यक्त मेव।"

उक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि भट्टोजी दीक्षित १६३० ई० में प्रकाश में आये किन्तु सभी उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार गोस्वामीजी १६२३ ई० (अर्थात् १६८० संवत् वि०) में दिवंगत हुए थे। नागेशभट्ट-कृत 'परिभाषेन्दुशेखर' 'बृहच्छब्देन्दुशेखर' और 'लघुशब्देन्दुशेखर' तो और भी पीछे (अठारहवीं शताब्दी) की कृतियाँ हैं। अतः स्पष्ट है कि गोस्वामीजी ने तो 'सिद्धान्त कौमुदी' के कर्ता भट्टोजी दीक्षित और भट्ट नागेश कृत शेखरों के नाम भी न सुने होंगे पढ़ने की तो बात ही क्या?

संस्कृत व्याकरण का साधारण ज्ञान—गोस्वामीजी के संस्कृत-ज्ञान की चर्चा कदाचित् अप्रासंगिक न होगी। 'रामचरितमानस' के श्लोकों की रचना देखने से अनेक विद्वानों की सम्मति अब तक यही रही है कि तुलसीदासजी संस्कृत-भाषा के साधारण पंडित थे *। वे बहुश्रुत एवं असाधारण पौराणिक थे किन्तु 'शेखर,' 'मनोरमा' आदि के ज्ञाता अथवा भाष्यान्त वैयाकरण नहीं थे, जैसा कि 'तुलसी-चरित' के लेखक ने लिखा है। गोस्वामीजी की संस्कृत रचना में कई अशुद्धियाँ हैं। आर्ष प्रयोग कहकर इन त्रुटियों का भी समाधान किया जा सकता था यदि ये अशुद्धियाँ स्वल्पसंख्यक होतीं और गोस्वामीजी कालिदास आदि कवियों से पहले होते। किन्तु ऐसा नहीं। पद्य संख्या के देखे त्रुटियाँ कुछ अधिक और इतनी स्पष्ट हैं कि थोड़ा सा संस्कृत ज्ञान रखने वाला भी उन्हें सहज में जान लेता है। इससे इनके केवल साधारण संस्कृत-पाण्डित्य की पुष्टि होती है।

व्याकरण-व्यतिक्रम के उदाहरण—मानस के संस्कृत पद्यों की अशुद्धियाँ इस प्रकार हैं—

अयोध्या काण्ड के तीसरे श्लोक में 'सीता समारोपित वाम भागम्' लिखा है। यहाँ सप्तम्यन्त का पूर्व निपात होने से 'वामभाग समारोपितसीतम्' ऐसा पाठ होना चाहिए।

अरण्य काण्ड में 'नमामि भक्तवत्सलम्' यह अत्रिकृत स्तव है। इसमें कई प्रयोग खटकते हैं—

निषंगचापसायकं धरम्'—यहाँ 'निषंगचापसायकधरम्' ऐसा होना चाहिए।

मुनीन्द्र सन्त रंजनम्'—इसमें 'सन्त' शब्द का प्रयोग लौकिक व्यवहार के अनुसार है। व्याकरण से 'सत्' अथवा 'सज्जन' होना उचित है।

'त्वमेकमद्भुतं प्रभुम'—यहाँ 'त्वम्' के स्थान पर 'त्वाम्' होना चाहिए।

भवोऽम्बुधिभापतिम्'—यहाँ 'उर्विजा' के स्थान पर 'उर्वीजा' होना चाहिए।

'प्रसीद मे नमामि ते पदाब्ज भक्ति देहि मे'—इसमें 'ते' के स्थान पर 'त्वाम्' होना चाहिए। और यदि 'ते' का सम्बन्ध 'पदाब्ज भक्ति' के साथ लगाया जाय तो

---

* मंगलाचरण और ग्रन्थ की समाप्ति में कुछ श्लोक शुद्ध संस्कृत के भी रचे हैं जिनसे यह प्रकट होता है कि ये संस्कृत के ज्ञाता थे परन्तु संस्कृत के प्रचंड कवि नहीं थे और संस्कृत व्याकरण में कच्चे थे—राम चरितमानस (डा० श्यामसुन्दरदास द्वारा सम्पादित) इंडियन प्रेस, १६१५, पृ० ७१-७२

हि वॉज नेवर ए गुड संस्कृत स्कॉलर एण्ड हैज लेफ्ट इन दैट लैंग्वेज ओनली मिसेलेनियस वर्सेज।—इं० ब्रि० इनसाइक्लोपीडिया ऑव एथिक्स एण्ड रिलिजन।

भी 'भक्ति' शब्द का निर्विभक्तिक प्रयोग चिन्त्य है। 'पदाब्जभक्तिम' पाठ होना संगत है।

'नरावरेण ते पदम्'—यहाँ 'नरा' 'आवरेण' ऐसा पाठ होना चाहिए। सन्धि करने पर विसर्गों का लोप हो जायगा किन्तु दुबारा सन्धि नहीं हो सकती।

त्वदंघ्रिमूल ये नराः—यहाँ 'मूल' के स्थान पर 'मूलं' होना चाहिए।

किष्किन्धा-काण्ड के प्रथम श्लोक में 'विज्ञान धामौ' के स्थान पर 'विज्ञान धामानौ' होना चाहिए। 'धाम' शब्द अकारान्त नहीं अन्नन्त है।

सुन्दर काण्ड के प्रथम श्लोक में 'ब्रह्मा शम्भु फणीन्द्र सेव्यम्' पाठ है। 'ब्रह्मा' शब्द आकारान्त नहीं अन्नन्त है। समास में 'न्' का लोप हो जाने से 'ब्रह्मशम्भुफणीन्द्र सेव्यम्' होना चाहिए। इसी प्रकार तीसरे श्लोक में हनुमान् जी की स्तुति में 'अतुलित बल धामम्, के स्थान पर 'अतुलित बलधामानम्' पद होना उचित है।

लंका काण्ड के तीसरे श्लोक में 'शंकरः शं तनोतु माम्' में 'माम्' का प्रयोग ठीक नहीं है। इसके स्थान पर 'मे' की आवश्यकता है।

'कोशलेन्द्र पद कंजमंजुलौ'—यहाँ 'पद' का निर्विभक्तिक प्रयोग व्याकरण सम्मत नहीं है। 'पद' शब्द नपुंसक लिंग है (पदं व्यवसितित्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु—अमरकोष) अतएव 'कोशलेन्द्र पदे' होना चाहिए और उसके विशेषणों में सर्वत्र नपुंसक लिंग का प्रयोग होना चाहिए, जैसे 'कंज मंजुले'। अथवा अमरकोष पर भानुजी दीक्षितकृत 'व्याख्यासुधा' नामक टीका में पदांघ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम् के विवरण में उपन्यस्त 'स्वामी तु पदोऽङ्घ्रि इति पठन्नान्तं न मन्यते' इस वाक्य के अनुसार 'पद' शब्द को पुल्लिंग भी माना जाय तो भी 'कोशलेन्द्रपदौ' तो होना ही चाहिए।

मन भृङ्गसंगिनौ'—यहाँ 'मन' शब्द को अकारान्त माना गया है जबकि उस के सकारान्त होने के कारण 'मनोभृङ्गसंगिनौ' पाठ होना चाहिए।

'कुन्द-इन्दु-दर-गौर-सुन्दरम्'। यह अवश्य ही समासान्त पद है। समास में संधि नित्य होती है, किन्तु इस पद में व्याकरण के इस नियम का उल्लंघन स्पष्ट है। 'कुन्देन्दुदरगौर सुन्दरम् ऐसा पाठ होना उचित है।

'कारुणीक कलकंजलोचनम्'—इसमें 'कारुणीक' शब्द के स्थान पर 'कारुणिक' होना चाहिए। पाणिनि के ४।४।६१ सूत्र के अनुसार करुणा और ठक् के संयोग से 'कारुणिक' शब्द ही सिद्ध होता है और कोष में भी ऐसा ही प्रयोग है (स्याद् दयालुः कारुणिकः कृपालुः सूरतः समाः अमरकोष ३।१।१५)

इसी काण्ड में रुद्राष्टक नामक प्रसिद्ध सुन्दर स्तुति है। इसमें व्याकरण की कई अशुद्धियाँ हैं। 'त्रय शूलनिर्मूलनम्' को 'शूलत्रयनिर्मूलनम्' अथवा 'त्रिशूलनिर्मूलनम्' होना चाहिए।

'पुरारी'—यह शब्द ईकारान्त नहीं है अपितु इकारान्त है।

'नतोऽहं सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यम्'—इसमें 'शम्भु' के स्थान पर 'शम्भो' और 'तुभ्यम्' के स्थान पर 'त्वाम्' होना चाहिए।

'प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी'—यहाँ 'मन्मथारे' का प्रयोग अपेक्षित है।

श्री रामनरेश त्रिपाठी ने 'तुलसीदास और उनकी कविता' में अयोध्या काण्ड

के दूसरे श्लोक में 'मम्ले' शब्द की ओर ध्यान आकर्षित किया है वह संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'मम्लौ' होना चाहिए।

'प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः।'

इसी प्रकार उत्तरकाण्ड के निम्नलिखित श्लोक में 'तोषये' शब्द आया है जो संस्कृत व्याकरणानुसार 'तुष्टये' होना चाहिए।

रुद्राष्टक मिदं प्रोक्तं विप्रेण हर तोषये
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति।

निष्कर्ष—अतः स्पष्ट है कि गोस्वामीजी को संस्कृत-व्याकरण का ज्ञान साधारण था, और उन्होंने व्याकरण का विशेष अध्ययन न किया होगा। सम्पूर्ण 'तुलसी-चरित' जैसा कि अनेक विद्वानों ने लिखा है जनता की दृष्टि से बचा हुआ है। यदि वह वास्तव में पूरा-पूरा विद्यमान है, तो अच्छा ही है कि वह अभी तक गुप्त निधि बना हुआ है क्योंकि यदि वह पूरा प्रकाशित होता तो उसमें विद्वानों को कदाचित् और भी असंगत बातें मिल जातीं किन्तु जैसा भी उपलब्ध है वह अपने वास्तविक रूप का द्योतक है। न तो उसकी भाषा परिमार्जित है और न उसकी बातें ही इतिहास के अनुकूल हैं। उसकी अप्रामाणिकता तो स्वयं-सिद्ध है।

(ख) मूल गोसाईं चरित

आलोचन

प्रथम उल्लेख—ठाकुर 'शिवसिंह सेंगर' ने 'शिवसिंह सरोज' में गोस्वामी तुलसीदास के जीवन चरित के विषय में लिखा है कि "इनके जीवन चरित्र की पुस्तक बेनीमाधवदास कवि पसका ग्राम निवासी ने जो इनके साथ रहे, बहुत विस्तारपूर्वक लिखी है। उसके देखने से इन महाराज के सब चरित्र प्रकट होते हैं।" सेंगरजी ने गोस्वामीजी का जन्म सं० १५८३ लिखा है पर बाबा बेनीमाधव-कृत 'मूल गोसाईं चरित' में १५५४ इस प्रकार दिया गया है

पन्द्रहसौ चउवन बिषै, कालिंदी के तीर
सावन शुक्ला सप्तमी तुलसी धरेउ शरीर।

इससे प्रतीत होता है कि सेंगरजी ने बाबाजी की उक्त रचना देखी न थी नहीं तो वे गोस्वामीजी का जन्म संवत् स्वतन्त्र रूप से निश्चित न करते।

प्राप्ति की लालसा—शिवनन्दन सहायजी 'श्री गोस्वामी तुलसीदासजी' में (पृष्ठ १९१ पर) सूचित करते हैं कि वेणीमाधवदासजी के गोसाईं चरित की "प्राप्ति और पाठ के लिए गोसाईंजी के अनुरागी लोग बड़े ही लालायित हैं"। सहायजी की आशंका सत्य निकली लालसाएँ पूर्ण हुईं।

मूल गोसाईं चरित के लिए खोज—बहुत खोज करने पर भी सर जॉर्ज ग्रियर्सन एफ० एस० ग्राउज एवं ग्रीव्स आदि तुलसीचरितान्वेषी महानुभावों को बाबा वेणीमाधवदास-कृत मूल गोसाईं-चरित उपलब्ध नहीं हुआ। विद्यावारिधि पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र अपनी सटीक रामायण की भूमिका में लिखते हैं—"सुनते हैं कि

वेणीमाधवदास कृत एक गोसाईं-चरित ग्रन्थ है जो गोस्वामीजी के समय में ही रचा गया है परन्तु वह भी इस समय नहीं मिलता है। काशी नागरीप्रचारिणी सभा के विद्वान संपादकों ने श्रीरामचरित-मानस का शुद्ध संस्करण संपादित करते समय गोस्वामीजी के जीवन-चरित की उपलब्धि पर विचार करते हुए लिखा है—"सबसे प्रामाणिक वृत्तांत बताने वाला ग्रन्थ वेणीमाधवदास कृत गोसाईं चरित है, जिसका उल्लेख बाबू शिवसिंह सेंगर ने 'शिवसिंह सरोज' में किया है परन्तु खेद का विषय है कि न तो अब वह ग्रन्थ कहीं मिलता है और न शिवसिंह सरोज-कार ने ही उसका संक्षिप्त वृत्तांत अपने ग्रन्थ में लिखा है।'

प्राविर्भाव—उन्नाव के वकील पं० रामकिशोर शुक्ल ने स्व-संपादित रामचरित मानस के प्रारम्भ में उक्त 'मूल गोसाईं-चरित' लगाकर १९२५ ई० में नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित कराया था, पर उक्त चरित की प्राप्ति पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला। इसके पश्चात् १९३१ ई० में डॉ० श्यामसुन्दर दास और डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने इसे 'गोस्वामी तुलसीदास' नामक पुस्तक में परिशिष्ट रूप दिया जो प्रयाग की हिंदुस्तानी एकाडेमी से प्रकाशित हुई है। यह 'चरित' 'मानसांक' के साथ गीता प्रेस गोरखपुर से और रामायणी श्रीरामबालक दास संशोधित 'श्री तुलसीदास कृत रामचरित मानस सटिप्पन' के साथ सेठ लक्ष्मीचंद छोटे लाल के द्वारा श्री बब्बन पुस्तकालय, अयोध्या, से प्रकाशित हुआ। कब? इसका कुछ पता नहीं क्योंकि इस पर संवत् नहीं छापा गया है। पुस्तक प्राचीन नहीं। कदाचित् यह उल्लेख उचित होगा कि "श्रीयुत गोस्वामी तुलसीकृत रामायण सम्पूर्ण क्षेपक सहित' पं० रामभद्र ने शुद्ध की और हरिप्रसाद भगीरथजी ने बम्बई के जगदीश्वर छापेखाने में सं० १९५५ में मुद्रित की और परमहंस सीतारामजी की आज्ञा से लक्ष्मीचन्द छोटेलाल ने प्रकाशित की। इस पुस्तक में 'तुलसी-चरितामृत' की गद्य-पद्य मयी भूमिका है जो अधिकांश में 'मूल गोसाईं चरित' के अथवा 'गोसाईं चरित' के विषय से मेल खाती है। यही नहीं इसमें कई स्थानों पर 'मूल गोसाईं चरित' के छंद ज्यों के त्यों मिलते हैं, किन्तु यह कहीं भी नहीं बताया गया है कि ये छंद 'मूल गोसाईं चरित' के हैं अथवा वेणीमाधवदासजी के।

भूमिका—प्रस्तुत मूल गोसाईं चरित से विदित होता है कि—

"संवत सोरहसौ असी, असी गंग के तीर,
श्रावण-श्यामा तीज शनि तुलसी तज्यो शरीर।"

और

"सोरहसौ सतासि सित, नवमी कार्तिक—मास,
विरच्यो यहि नित पाठ हित बेणीमाधवदास।"

अर्थात् सं० १६८० में श्रावण की श्यामा तीज शनिवार को काशी में असी गंगा के तट पर गोस्वामी तुलसीदास ने शरीर त्याग किया और सं० १६८७ में कार्तिक शुक्ला नवमी को उक्त 'मूल गोसाईं-चरित' नित्यपाठ करने के लिए बाबा वेणीमाधवदास ने लिखा और 'हमि याहव माधवबेनि उभय विलसुख करबद मानंद-सदय' इस उक्ति के द्वारा यह प्रकट किया है कि बाबाजी १६०९ वि० के लगभग चित्रकूट पर गोस्वामीजी

सत्संगी जन-समुदाय में थे। अतः, स्पष्ट है कि वे गोस्वामीजी के समकालीन ही नहीं अपितु निकटवर्ती भी थे और उनके पश्चात् कम से कम सात वर्ष तक जीवित रहे। ऐसी दशा में बाबा-वाक्य को ही प्रमाण समझना उचित प्रतीत होता परन्तु खेद है, कि वह गहन विचार के पश्चात् सत्य की कसौटी पर नहीं टिकता।

गोस्वामीजी की जन्म-तिथि और जन्म-स्थान—उक्त 'मूल गोसाईं-चरित' में बाबा बेणीमाधवदास लिखते हैं

"बरनउं तुलसी जथमति हिये।"
"पुरुषी सतयाम सुभी सुसिया रविमापुर राजपुर मुखिया।
तिनके घर द्वादस मास परे जब कर्क के जीव हिमांशु करे।
शुभ सप्तम सप्तम मानु-समय अभिजोवित सनि सुखर सोम्य समय।'

देस सरवार, पतेजी (पत्यौजा) ग्राम निवासी पराशर गोत्रीय, मूरखे मास्सवीय ब्राह्मण कुल में यमुना-तटस्थ दूबन के पुरवा में, रविमापुर के राजगुरु की धर्मपत्नी हुलसी की दक्षिण कुक्षि में १२ मास निवास कर संवत् १५५४ में श्रावण शुक्ला ७ शनिवार को सायंकाल रविमापुर में गोस्वामीजी ने जन्म लिया। उनके जन्म-समय अभिजित नक्षत्र था और जन्म-पत्र में मंगल सप्तम तथा शनि अष्टम स्थान में एवं कर्क के गुरु और चन्द्र थे। खेद की बात है कि जहाँ जरा-जरा बात का उल्लेख है वहाँ गोस्वामीजी के पिता के नाम पर शून्य ही दिखाया गया है। यदि बाबाजी गोस्वामीजी के संगी और समकालीन थे तो क्या वे उनके पिता के नाम का पता नहीं लगा सकते थे? जनता में पुत्र की प्रसिद्धि पिता के नाम से होती है न कि माता के नाम से। यदि बाबाजी गोस्वामीजी के पिता का नाम जानते होते तो उसका उल्लेख करने से कभी न चूकते।

बाबा बेणीमाधवदास ने गोस्वामीजी का जन्म सं० १५५४ में लिखा है और देह-त्याग सं० १६८० में इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास की आयु १२६ वर्ष की होती है। जितेन्द्रिय वीतराग योगी महात्माओं की आयु इतनी या इससे भी अधिक हो सकती है, परन्तु इस गणना से सं० १६३१ में, जबकि उन्होंने रामचरित मानस लिखा था उनकी अवस्था ७७ वर्ष की होती है। इस अवस्था में रामचरित-मानस जैसे वृहत् काव्य-ग्रंथ का निर्माण करना असम्भव प्राय जान पड़ता है क्योंकि इस अवस्था में अब स्फूर्ति और स्मृति का ह्रास होना स्वाभाविक है।

जन्म-ग्रह—बेणीमाधवदास ने गोस्वामीजी की जन्म-तिथि श्रावण शुक्ला सप्तमी शनिवार के सायंकाल में अभिजित् का होना लिखा है, किन्तु गणित से यह असत्य है न तो उस दिन और न जन्म के समय ही अभिजित् नक्षत्र था। प्रतीत होता है उक्त लेखक ने किंवदंतियों का आश्रय लिया अथवा कल्पना का। कदाचित् उन्हें गोस्वामीजी की पूर्ण जन्म पत्री का ज्ञान न था, यदि होता तो वे नवग्रहों के बदले केवल चार ग्रहों के उल्लेख से ही सन्तोष न कर लेते, क्योंकि जैसा कहा जा चुका है, वे अपने वर्णनों में जरा-जरा सी बातों का उल्लेख करते पाये जाते हैं।

अन्य तिथियों का उल्लेख—बाबा बेणीमाधवदास ने निम्नलिखित छः और ऐसी तिथियों का उल्लेख किया है जिनकी परीक्षा गणना के द्वारा सम्भव है। वे ये

माघ शुक्ला पंचमी को सरयू के तीर पर उनका यज्ञोपवीत संस्कार कर और उन्हें अपना शिष्य बना वहाँ दस मास रहे। अब तुलसीदास ८ वर्ष ४ मास के हो गये थे। वहाँ से चलकर नरहर्यानंदजी और तुलसीदास सूकर-क्षेत्र आये और ५ वर्ष तक रहे। तुलसीदास १३ वर्ष ४ महीने के हो गये। फिर उन्होंने १५ वर्ष तक काशी एवं चित्रकूट में शेषसनातनजी से विद्याध्ययन किया और वे २८ वर्ष ४ मास के हो गये। विद्याध्ययन के पश्चात् वे अपने जन्म-स्थान को गये। २८ वर्ष १० मास के वय में उनका विवाह हो गया।

विश्लेषण—इस प्रकार वेणीमाधवदासजी के लेखानुसार तुलसीदासजी को जन्म से विवाह तक किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव नहीं होना चाहिए था। चुनिया अन्नपूर्णा पार्वती नरहर्यानंदजी एवं शेषसनातनजी इन्हीं चार व्यक्तियों ने तुलसीदासजी का पुत्र से भी अधिक स्नेह के साथ पालन-पोषण एवं शिक्षण किया। तुलसीदासजी को बाल्यकाल से द्वार द्वार जाकर दीन होकर जाति-कुजाति के टूक खाने की आवश्यकता ही कब पड़ी, और कितने समय तक ? पर गोस्वामी जी लिखते हैं

जाते तें ललात बिललात द्वार-द्वार दीन
    जानत हौं चारि फल चारि ही चनक कौं।
जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि-बस
    खाए टूँक सबके विदित बात दुनी सो। (कवितावली)
"द्वारे द्वारे दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूँ ।" (गीतावली)
"हा-हा करि दीनता कही द्वार-द्वार बार-बार परी न छार।
असन-बसन बिनु बावरो जहँ तहँ उठि धायो मोहू मायो।
                                        (विनय-पत्रिका)

बाबा वेणीमाधवदासजी भी स्वर में स्वर मिलाते लिखते हैं—

"डोलत सो बालक द्वार-द्वार, बिलोकि लेहि बिचरत हियो।

किन्तु वे यह स्पष्ट नहीं करते कि ऐसा कब हुआ ? तुलसीदास की देख भाल के लिए जब स्वयं भगवान् शिव और जगज्जननी पार्वती-चिन्तित थे तब तो ऐसी कल्पना मिथ्या प्रतीत होती है। चुनिया के पश्चात् देवी पार्वती फिर नरहर्यानंदजी तत्पश्चात् शेषसनातनजी पर तुलसीदासजी के भरण-पोषण का भार रहा। क्या तुलसीदासजी इतने कृतघ्न थे कि वे अपने उपकारकों को एकदम भूल गये ? यदि वे हुलसी का जिसका मुख उन्होंने नहीं देखा उल्लेख कर सकते थे तो उस चुनिया का भी करते जिसके पास वे पाँच वर्ष तक पुत्रवत् रहे और जो तुलसीदास को प्रसन्न रखने में कोई बात उठा नहीं रखती थी (जेहि ते बिनु रीझ हि छोह करैं)।

सूकर-क्षेत्र की स्थिति—बाबा वेणीमाधवदास ने सूकरक्षेत्र की स्थिति सरयू घाघरा के संगम पर बतायी है :

"बहुत कथा इतिहास बहु भाए सूकर-खेत।
संगम सरयू घाघरा संत जनन सुख देत।"

यह पुराण-प्रसिद्ध सूकरक्षेत्र के साक्ष्य तथा अन्य प्रमाणों के विरुद्ध है जैसा कि इस

ग्रंथ में अन्यत्र विस्तार से स्पष्ट किया जायगा।

तुलसी के गुरु—बाबा बेनीमाधवदास के अनुसार तुलसीदासजी के दो गुरु थे। वे लिखते हैं कि गोस्वामीजी गुरु नरहर्यानंद के साथ सूकरखेत से काशी धाम आये। वहाँ शेषसनातनजी ने नरहर्यानंदजी से गोस्वामी तुलसीदास को चारों वेद, षट् शास्त्र आदि पढ़ाने के लिए माँग लिया, और गोस्वामीजी भी उनसे १५ वर्ष पढ़कर पूर्ण विद्वान् हो गये

बिचरत, बिहरत मुदित मन आये कासी धाम।
परम गुरु सुस्थान वर, जाय कीन्ह विश्राम।

× × ×

तँहवाँ हुते सेषसनातन जू। श्रुति बुद्ध वरिष्ठ गुणा गन जू।

× × ×

तिन्हि रीझि गए बटु पे जबही, गुरु स्वामि सौं सुन्दर बात कही।
निज शिष्यहि देहु मोहि गुनी, सिसुबुद्धि गुनी नहिं ध्यानधुनी।
हौं ताहि पढ़ावहुँ वेद चहूँ। षट् शास्त्र दर्शन पाठ महूँ।

× × ×

"बटु पंद्रह बरष वहाँ रहिकै पढ़ि शास्त्र सबै गहिके नहिके।

आश्चर्य है कि भगवान् शिव की पसन्द के गुरु नरहर्यानंदजी फीके निकले और शेषसनातनजी की आवश्यकता पड़ी। दूसरा आश्चर्य है कि स्वयं तुलसीदासजी भी अपनी कृतियों में शेषसनातनजी का उल्लेख करना भूल गये। गोस्वामीजी ने रामचरितमानस में जहाँ गुरु की महिमा एवं वन्दना लिखी है वहाँ उन्होंने केवल 'कृपासिंधु नर-रूप हरि' अर्थात् गुरु नृसिंह का ही उल्लेख किया है शेषसनातनजी का नहीं। क्या गोस्वामीजी ऐसा पक्षपात कर सकते थे?

मृगयावलोकन—बाबा बेनीमाधव लिखते हैं कि सरमन-पहाड़ी की गुफा में गोस्वामीजी निवास करते थे पुन: नरहर्यानन्द स्वामी की सम्मति से वे गुफा में से निकल कर बने हुए मचान पर बैठकर नित्य दर्शन करते, विहार देखते तथा मृगया के कौतुक का अवलोकन करते थे

नित नित्य विहारहु देखत हैं, मृगया कर कौतुक पेखत हैं।

किन्तु तुलसीदासजी जैसे कोमल-हृदय भक्त को मृगया का दृश्य रुचिकर प्रतीत होता होगा इसमें सन्देह है।

प्रियादास और नवल का आगमन—बाबा बेनीमाधव लिखते हैं कि संवत् १६०९ वि० में चित्रकूटस्थ तुलसीदास के पास श्री हितहरिवंशजी ने वृन्दावन से अपने शिष्य प्रियादास और नवल को भेजा। उन्होंने आकर जुहार किया और गुरु हितहरिवंशजी की दी हुई अमूल्य्त्मक राधासुधा-निधि एवं राधिका-तन्त्र-महानिधि नामक पुस्तकें और जन्माष्टमी को लिखी एक पत्रिका भेंट की। उसमें लिखा था है वत्स महाराज की रजनी आ रही है, मेरा चित्त घोर तमसा रहा है मैं शरीर को त्यागना चाहता हूँ मुझे आप आशीर्वाद दें तो मैं कुछ शान्त करूँ।

सुनि विनती मुनिनाथ, एवमस्तु इति भाखेउ।
तनु तजि भए सनाथ नित्य-कुंज प्रवेश करि।

अर्थात्, तुलसीदास ने इस विनती को सुनकर एवमस्तु कहा और हितहरिवंश जी नित्यकुंज में प्रवेश (शरीर-त्याग) कर सनाथ हो गये। किन्तु प्रमाणतः सं० १६३२ वि० तक हितहरिवंशजी के जीवित रहने का प्रमाण मिलता है, क्योंकि "ओरछा-नरेश महाराज मधुकरशाह के राजगुरु श्री हरिराम व्यास जी सं० १६२२ के लगभग आपके शिष्य हुए थे" जैसा कि पं० रामचन्द्र शुक्ल अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में लिखते हैं। द्वितीयतः हितहरिवंश जी राधावल्लभीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे उन्हें तुलसीदासजी से रामनाम की आज्ञा अथवा आशीर्वाद की क्या आवश्यकता पड़ी थी?

सूरदासजी का आगमन—बाबा वेणीमाधवदास सूरदासजी के विषय में लिखते हैं

सोरह सौ सोरह लगे, कामदगिरि ढिग वास,
सुचि एकांत प्रदेस महँ आए सूर सुदास।
पठए गोकुलनाथजी कृष्ण रँग में बोरि,
कवि सूर दिखायेउ सागर को सुचि प्रेम कथा नटनागर को।
दिन सात रहे सतसंग-पगे, पद कंज गहे जब जान लगे।
गहि बाँह गोसाईं प्रबोध किए, पुनि गोकुलनाथ को पत्र दिए।

अर्थात् सं० १६१६ लगते ही कामदगिरि के समीप वास करते हुए तुलसीदासजी के पास (व्रजभूमि से) श्री गोकुलनाथजी के द्वारा कृष्ण-रंग में बोरे और भेजे हुए सूरदास जी आये। उन्होंने अपना 'सूरसागर' दिखाया और वहाँ सात दिन रहकर चलते समय गोस्वामीजी के चरण छुए। तब गोस्वामीजी ने उन्हें बोध और एक पत्र गोकुलनाथजी के लिए दिया। संवत् १६१६ में श्री गोकुलनाथजी आठ वर्ष के थे और सूरदासजी ७६ वर्ष के। वे तो कृष्ण रँग में पहले से ही रँगे हुए थे और वे वृद्धावस्था में ब्रज को छोड़कर कहीं जाते न थे नेत्रहीन भी थे। डा० व्रजेश्वर वर्मा को भी यह वृत्तान्त अमान्य है।[1]

याज्ञवल्क्यजी से साक्षात्कार—बाबा वेणीमाधवदास के अनुसार, सं० १६२८ में हनुमानजी ने प्रसन्न होकर गोस्वामीजी से कहा कि तुम अयोध्या में जाकर रहो। आज्ञानुसार गोस्वामीजी अयोध्या चल दिये। मार्ग में तीर्थराज प्रयाग पड़ा। वहाँ मकर-स्नान के पर्व का आरम्भ था। उस पर्व के ६ दिन पश्चात् वट की छाया में गोस्वामीजी ने दो मुनि देखे और दूर से ही उन्हें प्रणाम किया। उनमें से एक ने गोस्वामीजी को अपने पास बुलाया। वे भूमि पर ही बैठ गये। परस्पर परिचय हुआ। वहाँ वही राम-कथा हो रही थी जो तुलसी-गुरु ने सूकर-खेत में कही थी। इससे विस्मित होकर गोस्वामीजी ने मुनि से गुप्त-भेद पूछा तब याज्ञवल्क्य मुनि ने बताया कि यह कथा शिवजी ने भवानी और काकभुशुंड से कही एवं काकभुशुंड से मैंने सुनी, पुनः मैंने भरद्वाज को सुनाई। इस प्रकार संतुष्ट हो गोस्वामीजी दस दिन

---

१ सूरदास पृ० ४१

वहाँ से चले आये। वे पुनः उसी स्थान पर गये परन्तु वहाँ न तो वट की छाया थी और न वे दोनों मुनि ही। इससे उन्हें बड़ा विस्मय हुआ :

तेहि अवसर उत्तम परब लागी मकर नहान
जोगी, जती तपी सती, जुरे सयान-अयान।
तेहि पर्व ते बासे भए दिन छै, बट छाँह तरे जु लख्यो मुनि द्वै।

× × ×

सोइ राम कथा तँह होत रह्यो गुण सूकर खेत में जौन कह्यो।
विस्मय-युत बूझेउ गुप्त मता कहि याज्ञवल्कि मुनि दीन्ह बता।
दुर देखि नवाबिहि दीन्ह सोई पुनि दीन्ह सुनाविहि तस जोई।
हौं जाइ सुमुखि तें ताहि कहेउँ, भरद्वाज मुनी प्रति भाई कहेउँ।

दूसरे मुनि कौन थे, कुछ पता नहीं। गोस्वामीजी और महर्षि याज्ञवल्क्य का साक्षात्कार खूब हुआ! सोचने की बात है, कब याज्ञवल्क्य और कब तुलसीदास!

राम जन्म-योग—बाबा बेनीमाधवदास लिखते हैं—

राम-जन्म तिथि बार सब जस त्रेता-युग मास।
तस चकतीसा महँ जुरे, योग लग्न ग्रह रास।

अर्थात् त्रेता युग में राम-जन्म के समय जो तिथि, वार, योग लग्न ग्रह, राशि आदि एकत्र हुए थे वे ही सम्वत् १६३१ वि० की चैत्र शुक्ला नवमी मंगलवार को भी एकत्र हुए थे। यदि बाबा बेनीमाधवदास को यह बात ज्ञात थी तो गोस्वामीजी को भी अवश्य होती। यदि ऐसा होता तो गोस्वामीजी 'मानस' का आरम्भ करते समय तिथि, वार आदि के साथ-साथ इस बात का भी उल्लेख अवश्य करते, और बड़े गौरव से। ज्योतिष के किसी विद्वान् ने भी अभी तक यह बात ज्ञात नहीं की।

केशवदासजी से साक्षात्कार—बाबा बेनीमाधवदास के अनुसार, संवत् १६५२ के लगभग तुलसीदासजी काशी के अस्सी-घाट पर थे तब कवि केशवदास उनसे मिलने गये और एक ही रात्रि में उन्होंने 'रामचन्द्रिका' रचकर गोस्वामीजी को दिखायी

कवि केसवदास बड़े रसिया, घनस्याम सुकुल नम के बसिया।
कवि जानि के दर्सन हेतु गए रहि बाहर सूचन भेज दिए।

× × ×

रचि रामसुचंद्रिका रातिहि में जुरे केसवजू अति चातुहि में।

परन्तु केशवदासजी स्वयं अपनी रामचंद्रिका में लिखते हैं

सोरहसै अट्ठावनै कातिक सुदि, बुधवार।
रामचन्द्र की चन्द्रिका तब लीनी अवतार।

अर्थात् १६५८ वि० के कार्तिक शुक्ल बुधवार को रामचंद्रिका अवतीर्ण हुई। बाबा बेनीमाधवदास पुनः लिखते हैं कि सं० १६४६ या १६६० के लगभग गोस्वामी जी को दिल्ली जाते समय ओरछा में कवि केशवदास के प्रेत ने उन्हें घेरा तब वे गोस्वामीजी की कृपा से बिना प्रयास प्रेत-योनि से मुक्त हो विमान पर चढ़कर स्वर्ग गये। पर कवि केशवदास ने संवत् १६६७ में विज्ञान-गीता और १६६६ में जहाँगीर-

भक्त-चंद्रिका की रचना की थी। पण्डित रामचन्द्र शुक्ल वेणीमाधवदासजी का जन्म संवत् १६१९ वि० में और मृत्यु १६८४ वि० के आस-पास मानते हैं।

नाभाजी से भेंट—बाबा वेणीमाधवदास गोस्वामीजी की व्रज यात्रा के विषय में लिखते हैं कि तुलसीदासजी नाभाजी के साथ प्रसन्नतापूर्वक मदनमोहनजी के मंदिर में गये और श्री मदनमोहन ने उन्हें राम भक्त जानकर, धनुष-बाण धारण कर दर्शन दिया

विप्र संत नाभा-सहित हरि-दर्शन के हेतु
गए गोसाईं मुदित मन मोहन मदन-निकेत।
राम-उपासक जानि प्रभु तुरत धरे-धनु-बान
दर्शन दिए प्रनाम किए, भक्तवत्सल भगवान।

प्रथमतः ध्यान देने की बात है कि नाभाजी के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वे डोम थे; किन्तु बाबा वेणीमाधवदास उन्हें 'विप्र-संत' लिखते हैं। द्वितीयतः दो-सौ-बावन वैष्णवन की वार्ता में लिखा है सो नंददासजी के बड़े भाई तुलसीदास हते सो काशी सों नन्ददासजी कूं मिलिबे के लिए ब्रज में आए। जब नन्ददासजी श्रीनाथजी के दर्शन करिबे कूं गए तब तुलसीदास हू उनके पीछे गए'। जब श्री नन्ददासजी ने मन में विचार कीनो यहाँ श्रीर गोकुल में हू इनकूं श्री रामचन्द्रजी के दर्शन कराऊँ, तब ये श्रीकृष्ण के प्रभाव को जानेंगे। जब श्री नन्ददासजी ने श्री गोवर्धननाथजी सों विनती करी, सो दोहा

कहा कहौं छवि आज की भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवे, धनुष-बान लेवो हाथ।

"जब श्रीगोवर्धननाथजी ने श्रीरामचन्द्र को रूप धरके तुलसीदास कूं दर्शन दिए तब तुलसीदासजी ने गोवर्धननाथजी कूं साष्टांग दंडवत करी।"

क्या नन्ददासजी कान्यकुब्ज थे?—संपूर्ण वार्ता से ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण भगवान् की मूर्ति ने नन्ददासजी की प्रार्थना पर धनुर्धर राम का रूप धारण कर गोस्वामीजी को दर्शन दिया था। यह भी ज्ञात होता है कि तुलसीदासजी महाकवि नन्ददास के जो सनाढ्य ब्राह्मण थे बड़े भाई थे और अपने छोटे भाई से ब्रज में मिलने आये थे। बाबा वेणीमाधव ने उक्त घटना का विशेष उल्लेख नहीं किया वे लिखते हैं

नन्ददास कनौजिया प्रेम-मढ़े जिन शेष सनातन तीर पढ़े।
शिक्षा-गुरुबन्धु भए तिहि ते अति प्रेम सों आय मिले यहि ते।

अर्थात् नन्ददास कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। वे शेषसनातन जी के पास पढ़े थे। वे गुरुभाई थे, अतः वे आकर प्रेमपूर्वक तुलसी से मिले। शेषसनातनजी की पुष्टि और नन्ददासजी को सनाढ्य से कान्यकुब्ज बनाना यह सब क्यों? स्यात् इस कारण कि 'श्री गोसाईं चरित' के लेखक भवानीदासजी ने भी बरेली वाले नन्ददास और रामपुर वाले नन्ददास को भूल से एक समझ लिया था

कान्यकुब्ज कुल विप्र नगर रामपुर निवासी,
श्रीगोसाईं गुरु बंधु रहे श्रीकृष्ण उपासी।
नंददास गुनखान स्वच्छ हृत पद जब पावैं,
और कुटुम्बी विप्र सकल (?) नहिं भावैं।

विविध भाँति इरिखा करहिं, पार न पावें पंथ में।
तब मृतक माइ मिलि दास द्विज द्वारि मुवा क्लेश है ॥
भोर भये अपराध माइ सब मिलि दिज घेरे,
अपमान होइ दास कछु बसम तन हरे।
अब प्रभु कछु बिताइ लाज जाने की करिये,
होइ बसन को मान भंग हम सोसति टरिये।
करुनाकर माइ बिचार तब दास मुकस अब बिसतर्यो।
पल बास मामि सब देव हूँ पानि भक्त बरनन पर्यो ॥
तब है अधिक सर्पन होइ कर कृष्ण पुन पास
आनन्द सो बिचरत रहे नंददास सुध-ध्यान।
सुनि आगमन गोसाईं की वृन्दावन में आइ
मिले पुलकि अति प्रेमते आनँद उर न समाइ।
पद सुनाइ करि भेंट तहँ कियो हास मुसकाइ
लीला कृष्ण बहुत करी राम अस्य गुन गाइ।
तब कर जोरि बिनै कह्यो बिहस दास प्रभ दास,
तात मात सौंपहि बह बोहि मति करि बिस्वास।
प्रथमहि तुम हो उर बसेउ नंददास अस नाम,
दसरथ लाल न क्यों कह्यो रह्यो तिन गुन ग्राम।
दास दीन सरकार को कर दीन्हो तुम मोहि,
ताहि बचो इठ-प्रेम करि भई कृपा अब होहि।
मुनिके अधिक प्रसन्न हूँ बिपुल प्रसंसा कीन्ह
इह (मन) भजन करो सदा बहुबिध आसिष दीन्ह।

पर स्वयं नाभादासजी ने कृष्ण-मूर्ति का राम-मूर्ति में परिवर्तित होने की ओर तुलसीदास को अपने सामने दर्शन देने की अद्भुत एवं अलौकिक घटना का वर्णन अपने भक्तमाल में नहीं किया।

विद्वानों की सम्मति—यह जानना आवश्यक प्रतीत होता है कि कतिपय प्रसिद्ध विद्वान् अब तक 'मूल गोसाईं-चरित' के विषय में क्या लिख चुके हैं। नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' (जिल्द ८, सं० १९८४ वि० पृष्ठ ९२-९८) में डॉ० श्यामसुन्दरदास ने कुछ विद्वानों की सम्मतियों का उल्लेख किया है। यद्यपि रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने 'मूल गोसाईं-चरित' की प्रशंसा की है तथापि उन्होंने तुलसीदासजी की जन्म तिथि पर संदेह प्रकट किया है। रायबहादुर बाबू हीरालाल भी इस चरित की ओर मुझे तो प्रतीत होते हैं, किन्तु वे इस प्रकार लिखते हैं "यह सत्य है कि बेनीमाधव की सभी बातें विश्वास के योग्य नहीं हैं। उन्होंने अपने गुरु की महिमा इतनी बढ़ाई है कि उन्हें मुर्दा जिलाने, लड़की का लड़का बना देने आदि की शक्ति दे दी है।" स्वर्गीय पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—"इसमें वर्णित अधिकांश घटनाएँ ठीक जान पड़ती हैं। अलौकिक और मनुष्यातीत जितनी बातें इसमें हैं उनकी मात्र सचाई में सन्देह होता है।'-सर जॉर्ज ग्रियर्सन लिखते हैं— खेद है कि उन्होंने

(पं० रामकिशोर शुक्ल ने) इस बात की सूचना नहीं दी कि यह हस्तलिखित पुस्तक जिसका जिन्होंने सम्पादन किया कहाँ विद्यमान है और वह किस दशा में है। "इस समय मैं तिथियों के विषय में ज्योतिष-गणना करने में असमर्थ हूँ।"

पाठकजी की सम्मति—पंडित श्रीधर पाठक उक्त लेख में लिखते हैं कि "हमारी समझ में बेणीमाधव के मूल गोसाईं-चरित में दी हुई सामग्री गोस्वामीजी के सविशेष जीवन-चरित के लिए अधिकांश में प्रामाणिक और उपयोगी है केवल जन्म-संवत् की और जन्म-संवत् से रामगीतावली के संकलन के पूर्व तक की घटना काल दिये हैं उनकी सत्यता संदिग्ध प्रतीत होती है। 'यह कथन कि गोस्वामीजी का साहित्यिक जीवन उनकी ७४ बरस की उम्र में प्रारम्भ हुआ और ११८ बरस की वयस तक प्रवर्तित रहा—विश्वसनीयता की सामान्य सीमा के परे पहुँचता प्रतीत होता है। 'मरण-संवत् की प्रामाणिकता में संदेह का अवसर नहीं अतः' निष्कर्ष निकलता है कि जन्म-सम्बन्धी दोहा मरण-सम्बन्धी दोहे के बाद उसकी नकल में बनाया गया है। तीर्थाटन समाप्त करके जब गोस्वामीजी चित्रकूट में बरसों के लिए बस गए तब उनके दर्शनार्थ दूर-दूर से साधु, महात्मा आदि आने लगे। उनमें वृन्दावन के हितहरिवंशजी के भेजे हुए उनके प्रिय शिष्य नवलदास भी थे जिनके हाथों उन्होंने 'यमुनाष्टक' 'राधा सुधानिधि' और 'राधा तन्त्र' की पुस्तकें मय संवत् १६०९ की जन्माष्टमी की लिखी हुई अपनी पत्री के गोस्वामीजी की भेंट को प्रेषित की थीं। फिर सं० १६१६ में गोकुलनाथजी की प्रेरणा से गोस्वामीजी से मिलने महात्मा सूरदासजी आए और अपना प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ सूर-सागर उनको दिखाने के लिए साथ लाए। तदनन्तर मीराबाई के पत्रवाले पद के आने का उल्लेख है। इस स्थल पर प्रश्न उठता है कि ये सब साहित्यिक संपर्क की विशिष्ट घटनाएँ गोस्वामीजी के साधुत्व के कारण हुई थीं अथवा साधुत्व-सहवर्ती कवित्व की प्रसिद्धि उनका हेतु थी? क्या उनसे यह आभासित नहीं होता कि तुलसीदासजी ने ७४ वर्ष की उम्र से बहुत पहले साहित्यिक कर्मण्यता के साथ संपर्क स्थापित कर लिया था और जिस समय उन्होंने 'रामगीतावली' और 'कृष्णगीतावली' का संकलन और रामचरितमानस का निर्माण किया था उस समय वे संवत् १५५४ के जन्मे पौन शताब्दी पुराने चिरपरिचित, जीर्ण-शीर्ण वृद्ध नहीं थे? मरण-तिथि जो मूल चरित में दी हुई है, ठीक मानी जा सकती है क्योंकि मूल चरित के कर्ता बाबा बेणीमाधवदास गोस्वामीजी की मृत्यु के समय उनकी सेवा में उपस्थित रहे होंगे परन्तु उपनयन विवाह, स्त्री-त्याग राम-दर्शन, सूरदास-आगमन, टोडरमल-मृत्यु इत्यादि घटनाओं की तिथियाँ बाबाजी को कहाँ से और कैसे प्राप्त हुईं? कहा जा सकता है कि जन्म-तिथि गोस्वामीजी के जन्म-पत्र से ली गई होगी या स्वयं गोस्वामीजी से मालूम हुई होगी; परन्तु क्या जन्म होते ही माता-पिता से बिलगाए गए बालक का जन्म-पत्र बनाया गया होगा और जन्म-पत्र के अभाव में गोस्वामीजी को अपने जन्म के नक्षत्र, दिवस, तिथि संवत् का ठीक ज्ञान होगा? सम्भव है, यज्ञोपवीतादि घटनाओं के संवतों का उनको ठीक ज्ञान रहा हो परन्तु यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इन घटनाओं के संवत् बेणीमाधवदास को गोस्वामीजी से प्राप्त हुए थे। अब 'मूल चरित' के सम्बन्ध में कुछ वाङ्मय-विवेचना

अपेक्षित प्रतीत होती है। यह कहा जाता है कि इसके रचयिता बाबा बेनीमाधवदास गोस्वामीजी के पट्ट शिष्यों में थे और उनकी सेवा और सहवास में चिरकाल तक रहे थे। परन्तु एक महाकवि के सत्संग का साहित्यिक दृष्टि से उनको कोई प्रशंसनीय फल नहीं मिला, क्योंकि मूल-चरित सारा का सारा अनेक दोषों से परिप्लुत है। तोटक छन्द का उसमें अधिक बाहुल्य है और उसी छन्द में छन्दोभंग का प्रचुर प्राबल्य है। सिवाय दोहों के शेष सभी छन्द रचनाएं न्यूनाधिक अशुद्ध हैं। पृष्ठ २० पर जो एक आर्यू सविक्रीडित दिया हुआ है वह छन्द करके अभिहित है। हरिगीतिका को भी यही नाम प्राप्त है। आश्चर्य है कि जिन गोस्वामीजी ने 'निर्बल भाट बमोबरहि माखिय है कवि कीरह' उनकी शिष्यता में बरसों रहने पर भी बेनीमाधवदास को आदरणीय कविता बनाने की योग्यता प्राप्त नहीं हुई। प्रतीत होता है कि प्रकाशित होने के पहले मूल-चरित में कुछ संशोधन किये गए हैं।

मिश्रजी की सम्मति—रायबहादुर पंडित शुकदेव बिहारी मिश्र की आलोचना इस प्रकार है—"इसकी साखी अनेकानेक ग्रंथों में इतनी असम्भव और भ्रष्ट है कि इसके किसी अंश पर भी विश्वास करना बड़े ही श्रद्धालु पुरुष का काम है बेनीमाधव के 'मूल गोसाईं-चरित' में ओर से छोर तक असम्भव घटनाओं की भरमार है। कुछ उदाहरण लीजिए—

"(१) गोस्वामीजी जन्म के समय ही पाँच वर्ष के थे। वे रोए नहीं और पृथ्वी पर गिरते ही उन्होंने 'राम' कहा। उनके उसी समय बत्तीसों दाँत मौजूद थे।

"(२) जन्म-समय में पाँच वर्ष के होते हुए भी गोस्वामीजी ६५ महीनों में बोलने और डोलने के योग्य हुए। क्या दस वर्षों की आयु होकर बेचारे चल सके? राम नाम तो जन्म के समय ही लिया था फिर बोलने योग्य होने के लिए ६५ महीनों की कैसे आवश्यकता पड़ी।

"(३) बोलने-डोलने के योग्य तो ६५ महीनों में हुए, किन्तु यज्ञोपवीत ८० की ही अवस्था में हो गया।

(४) उनकी स्त्री उन्हें पहले तो कुवाक्य कहकर उनके वैराग्य का कारण बनी, किन्तु पीछे से बहु मनाने से वे वापस न हुए तो तुरन्त मर गई। इस प्रकार लोग मरकर फिर नहीं पड़ा करते हैं। अन्य वासियों ने इसी स्त्री का बहुत पीछे गोस्वामीजी से साक्षात्कार लिखा है, जिसमें कई दोहों में बातचीत लिखी है। वे कुछ दोहे भी तुलसीकृत हैं।

"(५) मीराबाई संवत् १६०३ ही में मर चुकी थीं किन्तु उनका पत्र सं० १६१६ में गोस्वामीजी के पास आना लिखा है। काल विरुद्ध दूषण है।

"(६) सं० १६२८ में पहले-पहल ७४ वर्ष की अवस्था में गोस्वामीजी का ग्रन्थ-निर्माणारम्भ लिखा है। इतना बड़ा पंडित तथा सुकवि इतनी बड़ी अवस्था तक एक भी ग्रन्थ न बनावे और चार-छः बड़े ग्रन्थ बुढ़ापे में रच डाले—ऐसा मानना बड़े ही भोले आदमी का काम है।

(७) भगवान् की मूर्ति ने भोजन कर लिया तथा पत्थर के नन्दीगण ने

पास का थी। जब इससे भी ज्यादा पास वाले तब कोई समालोचक बीसवीं शताब्दी में ऐसे मतमर्म वाद को सच्चा साक्षी समझे।

'(८) केशवदास ने रामचन्द्रिका एक ही रात में बना डाली। ग्रन्थ में प्राय ४० अध्याय हैं और पूरा ग्रन्थ अच्छे पद्यों में है। इतना बड़ा ग्रन्थ एक ही रात में बन गया—यह बड़ा ही असम्भव कथन है।

'(९) ब्राह्मणों ने इंडीले के मार्ग में गोस्वामीजी का अपमान किया जिससे वे निर्धन हो गए। ठाकुर सितिपाल प्रणाम न करने से कंगाल हो गया तथा कुनाई भेंट देने से विपुल धन-धान्य पा गए! बादशाह जहाँगीर करामात दिखलाने का उत्सुक होने से बानरों द्वारा पीड़ित हुआ।

"(१०) गोस्वामीजी ने एक पतित-मोचक क्रिया सम्पन्न कर दी तथा एक स्त्री को पुरुष बना दिया। वास्तव में वेणीमाधवजी की जिह्वा के मारे कोई आई-बंधक नहीं है। ऐसे ही लोग असम्भव के उदाहरण में दस हाथ की ककड़ी तेरह हाथ का बीज भी कहने वाले कवि को भी मात करते हैं।

'(११) एक मरा हुआ मुर्दा आपने उसकी स्त्री के कारण जिला दिया। तीन लड़के आपका एक दिन दर्शन न पाकर मर ही गए और आपने उन्हें तुरन्त जिला भी दिया।

इस असम्भव एकादशी का वर्णन केवल तीस पृष्ठ के छोटे से ग्रन्थ में प्रस्तुत है। हनुमानजी तो गोस्वामीजी के पीछे ही पीछे फिरा करते थे और रामचन्द्र तथा महादेवजी ने भी इन्हें दर्शन दिए। ऐसे अमर्मज्ञ साक्षी का एक भी कथन एक मिनट के लिए भी विचारने योग्य नहीं। केवल तिथि-संवत् आदि लिखने से किसी अमर्मज्ञ एवं असम्भव-भाषी के कथन प्रमाण-कोटि में नहीं आ सकते। इस ग्रन्थ का कोई भी भाग मान्य नहीं है।

याज्ञिक जी—नागरी प्रचारिणी पत्रिका के अष्टम भाग (सं० ११८४) में पंडित मायाशंकर याज्ञिक ने भी कुछ महत्त्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डाला है

(क) "संवत् १६१६ में गोकुलनाथजी की आयु केवल ८ वर्ष की थी। गोकुलनाथजी के पिता गोस्वामी विट्ठलनाथजी स्वयं वहीं पर विराजमान थे। गोकुल-नाथजी के तीन भ्राता भी मौजूद थे। सूरदासजी रहते भी विट्ठलनाथ के पास थे। फिर उनका पत्र न लेकर एक आठ वर्ष के बालक का पत्र लेकर सूरदासजी का जाना संभव नहीं प्रतीत होता। बाबा वेणीमाधवदास ने इस सम्बन्ध में गोकुलनाथजी का नाम लिखने में कदाचित् भूल की है।

(ख) "नन्ददासजी और तुलसीदासजी की भेंट के विषय में जिस रीति से वर्णन 'मूल गोसाईं चरित' में किया गया है वह भी विचारणीय है। यद्यपि इस भेंट का कोई संवत् गोसाईं-चरित में नहीं दिया गया है फिर भी जिस क्रम से वर्णन किया गया है, उससे पाया जाता है कि बाबा वेणीमाधवदास के कथनानुसार यह भेंट संवत् १६४१ के पश्चात् हुई होगी क्योंकि गोस्वामी तुलसीदास संवत् १६४१ में मिहानी के सुकुल से मिले थे। उसके बाद सीतावट शिथिलित होकर रामपुर पहुँचे और वहाँ से चलकर वृन्दावन आए और वृन्दावन में नन्ददासजी से मिले थे। इसलिए यह भेंट

१६४१ के बाद ही गोसाईं-चरित के अनुसार हुई होगी, परन्तु '२५२ वष्णवन की वार्ता' से पाया जाता है कि नन्ददासजी का बहुगुण्ठवास १६४१ से बहुत पूर्व हो चुका था। वार्ता में लिखा है कि तानसेन से नन्ददासजी का एक पद सुनकर अकबर ने नन्ददास जी से मिलने की इच्छा प्रकट की और उनको बीरबल द्वारा श्रीगोवर्द्धन में बुलवाया। नन्ददासजी की देह वहीं छूटी थी। जब यह समाचार विट्ठलनाथजी को विदित हुआ तो उन्होंने नन्ददासजी की बड़ी सराहना की थी। इससे स्पष्ट है कि नन्ददासजी की मृत्यु गो० विट्ठलनाथ और बीरबल दोनों से पहले हुई थी। गोस्वामी विट्ठलनाथ का गोलोकवास सं० १६४२ में और बीरबल का स्वर्गवास सं० १६४० के आसपास हुआ था। नन्ददास जी का देहावसान इससे भी पहले हुआ था। फिर गोसाईं चरित में सं० १६४१ के पश्चात् नन्ददासजी और तुलसीदासजी की भेंट होना लिखा गया है, वह ठीक नहीं मालूम होता है। २५२ वष्णवन की वार्ता' के आधार पर कुछ लोग नन्ददासजी को तुलसीदास का भाई मानते थे। वार्ता में नन्ददासजी को सनाढ्य ब्राह्मण लिखा है। वार्ता के देखने से उसमें किसी दूसरे सनाढ्य तुलसीदास का वर्णन नहीं पाया जाता किन्तु गोस्वामीजी का वर्णन पाया जाता है।

(ग) "केशवदासजी के प्रेत-योनि से छुड़ाने का जो समय गोसाईं चरित में लिखा है वह ठीक नहीं है। गोसाईं-चरित में लिखा है कि दिल्ली से बादशाह का खवास गोस्वामीजी को बुलाने आया था। दिल्ली जाने के समय केशवदास को गोसाईंजी ने प्रेत-योनि से छुड़ाया था। दिल्ली से लौटकर काशी आने के कुछ समय बाद संवत् १६६९ की वैशाखी पूर्णिमा को गोस्वामीजी के मित्र टोडरमल की मृत्यु हुई थी। अतः केशवदास को संवत् १६६९ के पूर्व ही गोस्वामीजी ने प्रेत-योनि से छुड़ाया होगा परन्तु संवत् १६६९ तक केशवदासजी का जीवित रहना निश्चित है। इस संवत् में उन्होंने 'जहाँगीर यश-चन्द्रिका' निर्माण की थी।

(घ) "संवत् १६७० के अन्त में जहाँगीर का गोस्वामी से मिलने आना लिखा है, वह भी जाँच से ठीक नहीं ठहरता है। संवत् १६७० के बहुत पहले से गोस्वामीजी का अखंड वास काशी में ही था। इसलिए यदि जहाँगीर गोस्वामीजी से मिलने आया होता तो काशी ही में आया होता परन्तु जहाँगीरनामा के देखने से पाया जाता है कि संवत् १६६९ की चैत बदी ११ से आश्विन सुदी २ संवत् १६७० तक तो जहाँगीर आगरे ही रहा। इस मिति को अजमेर के लिए रवाना हुआ और अगहन सुदी ७ को वहाँ पहुँचा था। पाँच दिन कम तीन वर्ष अजमेर में रहकर कातिक सुदी १ संवत् १६७३ को दक्षिण की ओर रवाना हुआ था। संवत् १६७० या उसके तीन वर्ष बाद तक जहाँगीर आगरा प्रयाग काशी की ओर रहा ही था कि गोस्वामीजी के काशी में अखण्ड वास करते हुए उनसे मिलने आया। गोसाईं चरित में संवत् १६७० के अन्त में उसका गोसाईंजी से मिलने आना लिखा है वह मानने योग्य नहीं है।"

डॉ० गुप्त—'मूल गोसाईं-चरित की ऐतिहासिकता पर कुछ विचार' नामक लेख में डॉ० माताप्रसाद गुप्त निम्नलिखित बातों पर प्रकाश डालते हैं—

(क) हितहरिवंशजी ने (वेणीमाधवदास के अनुसार) १६०९-वि० की बहुराग रजनी अर्थात् कार्तिक की पूर्णिमा को शरीर त्याग किया

निश्चित है कि उनका देहान्त १६०९ वि० में नहीं हुआ क्योंकि ओरछा-नरेश महाराज मधुकरशाह के राजगुरु श्री हरिराम व्यासजी १६२२ वि० के लगभग आपके शिष्य हुए थे।

(ख) नाभाजी को 'विप्र-संत' कहा गया है किन्तु नाभाजी डोम कहे जाते हैं। मन्दिर-दर्शन के विषय में वेणीमाधवदास और '२५२ वैष्णवन की वार्ता' में सामंजस्य नहीं।

(ग) वेणीमाधवदास के अनुसार उदयसिंह को १६२१ वि० में शाही सभाओं में सम्मान मिला किन्तु इतिहास-लेखकों का मत है कि सम्मान न उदयसिंह को मिला, न प्रतापसिंह को   १६२८ वि० में उदयसिंह की मृत्यु हो गई।

(घ) वेणीमाधवदास के अनुसार टोडरमल के घर का बटवारा उनके दो लड़कों के बीच हुआ किन्तु पंचनामे से प्रतीत होता है कि वे चाचा-भतीजे थे।

त्रिपाठी जी—पं० रामनरेश त्रिपाठी सटीक रामचरित-मानस की भूमिका में लिखते हैं—"शिवसिंह (सेंगर) ने 'सरोज' में एक ऐसी पुस्तक का हवाला दिया है, जो अब अप्राप्य है। उस हवाले का परिणाम यह हुआ कि उसी नाम की पुस्तक प्राचीन कागज पर लिखकर या लिखवाकर चतुर आदमियों को तुलसीदास के प्रेमियों के सम्मुख उपस्थित करने का सुअवसर मिल गया।" 'मूल गोसाईं चरित' को मैं 'एक नव-निर्मित पुस्तक मानता हूँ। मैंने उसे ध्यान से पढ़ा है उसके एक-एक शब्द और मुहावरों पर विचार किया है, तब मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि उसकी आयु अभी बहुत थोड़ी है। 'मूल गोसाईं-चरित' की भाषा मुझे तीन-सौ वर्ष पुरानी मालूम नहीं होती। एक साधारण तुकबन्द ने, गैर-जिम्मेदारी के साथ जो कुछ उसके मगज में से निकला या निकलवाया गया बे-सिर-पैर के पद्यों में निकालकर रख दिया है। हमें उसका कहाँ तक विश्वास करना चाहिए? "मूल गोसाईं-चरित' हमें भ्रमपूर्ण और असत्य बातों से भरा मिलता है। हम उसे गोस्वामी तुलसीदासजी के जीवन-चरित के लिए बिल्कुल ही विश्वास-योग्य नहीं मानते, वह किसी अनधिकारी व्यक्ति का लिखा हुआ जान पड़ता है। संभव है, उसका उत्पत्ति-स्थान कनक-भवन अयोध्या हो।'

'तुलसीदास और उनकी कविता' नामक ग्रन्थ में त्रिपाठीजी इस प्रकार विचार करते हैं: 'उसकी भाषा तीन सौ वर्षों की पुरानी नहीं मालूम होती है। कुछ उदाहरण लीजिए—

एक रात्रि सखी तेहि सपनहु में कछु देख घुलाहट है उर में।

"हमें इस 'घुलाहट' के हट को देखकर संदेह हुआ था, क्योंकि 'हट' प्रत्ययुक्त शब्द जैसे—घबराहट मुस्कराहट, चिल्लाहट आदि बहुत प्राचीन नहीं हैं। कम से कम मुझे किसी प्राचीन कवि की कविता में अभी तक नहीं मिले। हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी-अध्यापक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को मैंने पत्र लिखकर और फिर मिलकर भी पूछा। वे भी 'हट' को प्राचीन नहीं मानते।' "सत्यं शिवं सुन्दरं" ने तो मूल-चरित के आधुनिक रचयिता को अँधेरे में से खींचकर उजाले में लाकर खड़ा कर दिया है। 'सत्यं शिवं सुंदरं' संस्कृत का प्राचीन वाक्य है, पर अभी थोड़े दिनों से हिन्दी-वाक्यों में इसने

प्रवेश पाया है। तुलसीदास ही ने नहीं किया तो उनके एक साधारण पढ़े-लिखे कवित्त चेले की क्या बिसात थी जो इस वाक्य तक पहुँचता।

पुस्तकी—पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' * में इस विषय पर विचार किया है। उनका कथन है कि अयोध्या में एक ऐसा निपुण दल है जो समय-समय पर पुस्तकें प्रकट करता रहता है। उनकी सम्मति में 'सत्यं शिवं सुंदरं' अंग्रेजी के 'द ट्रू द गुड द ब्यूटिफुल' का अनुवाद है जो ब्रह्म-समाज के द्वारा बंगाली साहित्य में और फिर हिन्दी में प्रविष्ट हुआ।

निष्कर्ष—तथ्य यह है कि 'मूल गोसाईं-चरित' परीक्षा की कसौटी पर ठीक नहीं उतरा है, भाषा और इतिहास की दृष्टि से भी खरा नहीं है। यह जिस समय का रचा हुआ बताया जाता है उससे कहीं पीछे का है। चमत्कारों असम्भवों घटनाओं और इतिहास-व्यतिक्रमों ने तो इसकी मौलिकता का अपहरण कर लिया है।

(ग) 'घट रामायन' की आलोचना

संस्करण—'घट रामायन' नामक पुस्तक हाथरस वाले तुलसी साहब की कृति बताई जाती है। इसका सर्व प्रथम प्रकाशन मुंशी देवीप्रसाद साहब उर्फ देवी साहब ने तत्पश्चात् रा० रामबहादुर बालेश्वर प्रसाद ने 'मगन' उपनाम से कतिपय प्रतियों के आधार पर उसे संशोधित कर बेलवेडियर प्रेस प्रयाग से १९११ ई० में प्रकाशित किया। तब से इसके तीन संस्करण हो चुके हैं। मेरे सामने १९५२ का चौथा संस्करण है।

तुलसी साहब का जीवन चरित—उक्त संस्करण में तुलसी साहब का जीवन-चरित भी सम्मिलित है। इससे पता चलता है इनके पिता ने इनका नाम श्यामराव रखा था। इनके छोटे भाई थे पेशवा बाजीराव द्वितीय और इनकी स्त्री का नाम था लक्ष्मीबाई। यद्यपि इनके पिता इन्हें ही गद्दी देना चाहते थे तथापि स्वभावतः विरक्त होने के कारण गद्दी पर बैठने के एक दिन पहले ही वे घर छोड़कर भाग गये। इनकी बड़ी खोज हुई, पर जब कहीं पता न लगा तो अति उदास व निराश होकर (पिता ने) राज्य को त्याग किया और अपने कुँवर बाजीराव को गद्दी पर बैठाया। तुलसी साहब कितने ही बरसों तक जंगलों पहाड़ों और दूर-दूर शहरों में घूमे और हजारों आदमियों को उपदेश देकर सत्य मार्ग में लगाया और कई बरस पीछे जिला अलीगढ़ के हाथरस शहर में आकर पक्के तौर पर ठहरे और वहीं अपना कर्तव्य जारी किया। घर से निकलने के बयालीस बरस पीछे वह अपने छोटे भाई राजा बाजीराव से बिठूर (जिला कानपुर) में मिले थे जहाँ कि बाजीराव गद्दी से उतारे जाने पर संवत् १८७६ में भेज दिये गये थे तुलसी साहब के उत्पन्न होने का संवत् 'सुरत बिलास' में नहीं दिया है, पर यह लिखा है कि उन्होंने अनुमान अस्सी बरस की अवस्था में जेठ सुदी २ बिक्रमी संवत् १८९९ या १९०० में चोला छोड़ा। इससे उनके देह-धारण करने का समय संवत् १८२० के लगभग ठहरता

---

* १९५४ ई० पृष्ठ १२० १२१

सम्मत सोलह सै अट्ठारा। कथौ पोथ ग्रंथ कियो सारा॥
भादों सुदी मंगल एकादशी। प्रारम्भ कियो प्रथमअभ्यासा॥ पृ० ४१७

पुस्तक को गुप्त करने के कारण—प्रश्न उठता है कि यदि यह पुस्तक तुलसी साहब ने गोस्वामी तुलसीदास के रूप में १६१८ संवत् में लिखी तो गोस्वामीजी की अन्य पुस्तकों की भाँति इसका पता लोगों को क्यों न था ? इस शंका का समाधान स्वयं तुलसी साहब ने इसी ग्रंथ में करने का प्रयत्न किया है। आपका कथन है कि आपने 'घट रामायण' १६१८ में तो बनायी थी किन्तु काशी में लोगों ने इसका बड़ा विरोध किया। जब इसका बड़ा शोर मचा तो स्वयं गोस्वामीजी ने इसको गुप्त कर दिया और तुलसी साहब का चोला धारण कर पुनः प्रकट कर दिया।

जप अनुभ कारन हम आई। जो करै इष्ट राम से भाई॥
जो हम न्यारा भेद सुनावें। तो जग नाहिं रहन नहिं पावें॥
तासे न्यारा भेद न भाखा। संत भेद हम गुप्त राखा॥
भेद ग्रंथ में गुप्त लखाया। पुनि काहू की दृष्टि न आया॥ पृ० १५५
काशी में मचा शोर, तैरह को लिया चोर।
तुलसी अस जान चोर, चोर नगर माँही।
तुलसी ताप रहुत तैरह कीना प्रवीन।
वासे बीज करो न हेत देत काहू नाहीं। पृ० १२४

घट रामायण सुनि जो शोरा। काशी नगर मचा अस घोरा॥
पंथ भेष जग सकल बखारा। घट रामायण परी पुकारा॥
अस सुन शोर भयो जग माँही। शहर पुस्तक पोथी नाहीं॥
भेष पंथ में प्रकरण भाखा। वरतन भेष सकल को आखा॥ पृ० २८६
काशी में शोर कराई। तब हमने गुप्त छिपाई॥ पृ० ४१२
पंडित हिरदे से भयो न्यारा। और भेष जग काशी सगरा॥
तब तुलसी मन कियो विचारा। घट रामायण गुप्तकरि डारा॥ पृ० ४१३
पुनि काशी में प्रकरण कीन्हा। शोर नगर में भयो मलीना॥
पंडित कथा सैन और सुरका। भयो भगरा भाइ काशी पुरका॥
पंडित भेष अस्त मिलि सारा। घट रामायण परी पुकारा॥
जो कुछ न्यारा रीति कस भाँती। जग बस भया दिवस अरु राती॥
तासे ग्रंथ गुप्त हम कीन्हा। घट रामायण प्रगट न कीन्हा॥ पृ० ४१७-१८

संसार को भ्रम में डालने के लिए रामचरितमानस की रचना—उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि 'घट रामायण' ने ऐसी खलबली मचा दी थी कि दिन-रात झगड़ा होने की आशंका रहती थी। अतएव गोस्वामीजी ने उसे गुप्त कर दिया। किन्तु यह बात विचारणीय है कि 'घट रामायण' का नाम क्या शहर, क्या गया-बीता ग्राम सभी जगह फैल गया था और लोग गोस्वामीजी के दर्शन के लिए आते थे जैसा कि उक्त उद्धरण से स्पष्ट है। प्रसिद्धि तो अच्छी बात थी पुस्तक तो विचार प्रचार की दृष्टि से ही लिखी जाती है। यदि घट-रामायण के कारण गोस्वामीजी के पास लोग दूर-दूर से दर्शन करने को आते थे तो वे काशी छोड़कर अन्यत्र जा

सकते थे। साधु के लिए क्या काशी क्या मथुरा क्या प्रयाग, क्या मगहर सभी बराबर हैं। गोस्वामीजी काशी के घोर से इतने डर गये कि उन्हें 'घट रामायन' गुप्त कर देनी पड़ी। कबीर का भी बड़ा विरोध हो चुका था किन्तु वह महापुरुष तो अड़ा ही रहा। भक्तों के दर्शनार्थ आने पर भी काशीवासों के डर से 'घट रामायन' उन्हें गुप्त करनी पड़ी। बात यहीं समाप्त नहीं होती है। यहाँ तक भी प्रमीमत थी। उन्होंने एक काम और किया—उन्होंने 'घट रामायन' के पश्चात् १६३१ में ऐसा रामचरित बनाया जिससे सारा संसार भ्रम में पड़ जाय। तुलसी साहब के वचन हैं—

तासे गुप्त इम कीन्हा। घट रामायन बरतन न दीन्हा ॥
या से संत मते की रीति। अमृत प्रयान न जाने रीति ॥
संवत् सोलासे इकतीसा। रामचरित्र कीन्ह पद ईसा ॥
इस क्रम औतारी माया। कर्म भाव सब जगहि सुनाया ॥
जग में प्रगटा आना भाई। रावन राम चरित बनाई ॥
पंडित भेद अमृत सब भारी। रामायन सुनि भये सुखारी ॥
धंधा धंधे विधि समझाया। पृ० ४१७-४१८
रावन राम कीन्ह संवादा। तब काशी में बसी अगाधा ॥
तुलसीमता कोई नाँहि चीन्हा। गुप्त भेद सब जग से कीन्हा ॥
ये भौसागर अमृत प्रसारा। तुलसी मता भले कोनारा ॥
जग में वस्तु कोई नहि चीन्हा। जा से ग्रन्थ गुप्त कर दीन्हा ॥
रामचरित्र बनाय अमत भूल भ्रम ताहि में। पृ० ४१४

पर गोस्वामी तुलसीदास ने तो और भी अनेक ग्रन्थ लिखे हैं जिन सब में उनका दार्शनिक सिद्धान्त प्रायः एकसा ही है और राम में उनकी अटल भक्ति उनके सभी ग्रन्थों में लक्षित होती है।

प्रस्तुत 'घट रामायन' मूल रूप में है अथवा सार रूप में?—कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसीसाहब गोस्वामीजी की घट रामायन नहीं कह रहे हैं किन्तु उसका सार मात्र कह रहे हैं।

काल करे जिव हानि तुलसीदास तत तय रहो।
घट रामायन सार, मधि काया जिव घट कह्यो ॥ पृ० २१
घट रामायन सार, यह घट माँहि घटाइया।
घट का मथन विचार, भिन्न करि बरनिया ॥ पृ० २६
रामायन घट सार, सुरति शब्द से लखि परे।
गगन कंज कर वास ऊपर चढ़ि जिन देखिया ॥ पृ० ४६
घट रामायन सार ये अपार गति यों कही।
बूझै बूझनहार बिन सतगुर पावै नहीं ॥ पृ० ७६
सम्पत सोलासै अट्ठारा। घट रामायन लिखि सारा ॥ पृ० ४१२
घट रामायन सार सोलहसै अठरा कही।
कही गई नहि सार सार निकट कासी बसी ॥ पृ० ४११

यदि यह पुस्तक वास्तव में गोस्वामीजी की घट रामायण नामक किसी कृति का सार है तो इसका नाम 'घट रामायण सार' होना चाहिए था। घट रामायण' नाम से तो भ्रम फैलता है क्योंकि जो कृति वास्तव में गोस्वामीजी की नहीं है वह उनकी बताई जाती है। यह गोस्वामीजी के विचारों का सार भी है या नहीं यह तो पाठक सम्पूर्ण आलोचना को पढ़कर और गोस्वामीजी के ग्रन्थों का मनन और मथन कर निश्चय कर सकते हैं।

घट रामायण का विषय—'घट रामायन' का विषय क्या है? इस पुस्तक में भेद पिंड और ब्रह्मांड भीर भेद गमन भेद सुक्ष्म त्रिकुटी भेद नाम भेद सुन्नि भेद जोगभेद सिद्धों के नाम प्रकृति भेद आदि कई प्रकरण हैं। इसमें कुछ विरोधी पुरुषों के शुभनाम और विवाद संवाद भी सम्मिलित हैं जिन्होंने संतमत स्वीकार कर लिया था, यथा—तकी मियाँ मानगिरि संन्यासी फूलदास कबीरपंथी गुसाईं प्रियेलाल और परशुराम नामक पंथी। डॉ० रामकुमार वर्मा ने तुलसी साहब को आवापंथ का प्रचारक बताया है। तुलसी साहब ने 'आप' शब्द का अनेक बार प्रयोग किया है और एक स्थल पर गोस्वामी तुलसीदास के लिए काशी के पंडितों से कहलाया है 'तुम्हरा आपमता हम जानी' पृष्ठ १२७। इनके दार्शनिक विचार का सार उस संवाद से अच्छा विदित होता है जो मानगिरि संन्यासी के साथ हुआ था।

तुलसी साहब के दार्शनिक विचार—"स्वामीजी तीन लोक बैराट नाश होकर कहाँ समाते हैं?

'ब्रह्म निराकार ज्योति तीन लोक बैराट नाश होकर सुन्न में समाता है। सुन्न नाश होकर महासुन्न में समाता है। महासुन्न के परे सत्त लोक है जहाँ सत्त साहब रहता है, वहाँ प्रलय और महाप्रलय की गम नहीं।

"सत्त साहिब की महर से महासुन्न होता है महासुन्न से सुन्न सुन्न से शब्द शब्द से ब्रह्म ब्रह्म से ज्योति निराकार, निराकार ज्योति से मन मन से बना ब्रह्मा विष्णु, शिव वेद सब उत्पन्न होते हैं।" पृष्ठ १७१

अगले पृष्ठ पर इसी विषय को स्पष्ट करते हुए तुलसी साहब कहते हैं—

"ब्रह्मा विष्णु और महेशा। नाश भये बल मत के देशा॥
मन को नाश सुनो पुनि भाई। बल लहि गया निरंजन माई॥
नाश निरंजन ब्रह्म समाना। ब्रह्म को नाश शब्द में जाना॥
शब्द नाश जो सुन्न समाना। सुन्न नाश महासुन्न में जाना॥
यहुँ से उत्पत्ति परलय होई। यामें भेद न जानें कोई॥
यहुँ से आवें यहुँ लौ जावें। याके भेद न कोई पावें॥
सत्त लोक महा सुन्न कहाई। तीन लोक सब सुन में जाई॥
तीनि लोक करता लहि जावें। वा घर को कोई संत समावें॥

पहले कहा था कि 'महा सुन्न के परे सत्त लोक है' और 'सत्त साहिब की महर से महा सुन्न' होता है, पीछे कहा है कि "सत्त लोक महासुन्न कहाई।

वेद और सनातन धर्म के विरोधी विचार—तुलसी साहब को कदाचित् वेद शास्त्र, पुराण, अवतार एवं राम-कृष्ण के नाम से चिढ़ थी जैसा कि आगे लिखे

किया जायेगा। वे मूर्ति-पूजा के भी विरोध में थे और उन्होंने जनियों पर इस विषय में आक्षेप किया है कि

झंगी जो चैन नम घूमें भाई। पाहन को पाँहि पूजें पाहन भाई॥ पृ० ६६

पुस्तक की भाषा—पुस्तक की भाषा प्रधानत खड़ी बोली और ब्रजभाषा है किन्तु इसमें पंजाबी और फ़ारसी शब्दों का भी मिश्रण है। मैं भाषा पर गम्भीर विचार नहीं करना चाहता अत पाठकों को निम्नलिखित कतिपय उदाहरण देकर ही सन्तुष्ट हूँ—बिवरा उत्र (उदर) जगत (जगत्) सुपम्न पसबक, मलम बिलम प्रमातम (परमात्मा) ससबक पिछाना (पहिचाना) मरजुम्न जतन्न (यत्न) तप्त मति (मति) बरम्न प्रभाव (प्रभाव) स्वाम (सवाम) कमी (कमी) तत्त (तत्व) मिर्ख पिरथम्म (प्रथम) सुर (सुर) रम्म (रस) पत्कम/ दा पदीदा कीदा (किया) दूरबीन उमस दस्क उबक गाह्यो चह्यो जायी ह्वो बसेरो मेरो बचायौ सुनायो रह्यौ दिया किया हुआ, रहा आया। यद्यपि गोस्वामीजी राजापुर में जन्मे और काशी में रहे जैसा कि 'घट रामायन' के अंत में लिखा है, तथापि उस कृति में पंजाबी का प्रभाव है।

अभूतपूर्व व्युत्पत्तियाँ—नीचे के उद्धरणों में वृन्दावन दशरथ लक्ष्मण कौशल्या कैकेयी मंथरा मन्दोदरी भरत शत्रुघ्न आदि रामचरित मानस के पात्रों की अद्भुत एवं अपूर्व व्युत्पत्तियाँ हैं जिन्हें कदाचित् गोस्वामी तुलसीदास मान्यता प्रदान न कर सकते थे।

बिन्द से बना बिंद्राबन होई। जप के माहीं रहा समोई॥ पृ० २८४
बिंद्राबन बिच कोन्ह सोई साँचा। मुसाई पोथी के साथ बन बन नाचा॥

पृ० २८६

इंद्रजीत जीते मन ही को। सो इन्द्र जीत कहाई॥
रावन बहुत बसे मन बीरो। ताको मन्दोदरी बनाई॥
मन की और को दूर बहावे। त्रिकुटी बहुत कहाई॥
दस इंद्री रत दसरथ कहिये राम रमा मन भाई।
सत की लीला पालन किया को कुमति कौशल्या बताई।
मन थिर सुरति करे थिर कोई सो मन मथुरा कहाई।
जहाँ के बात कही कौन सुनाई कर्म न थिर कैकाई।
से पे रस मन ही को भाई लक्ष्मन और कहाई।
पी मैं कह मरत पिलाई भय से मसुंड सुलाई।
भय रस भरत भरत हे सोई चाहु चाहु शत्रुघ्न पिलाई।
सो को नाम चतुर मन कहिये ये सब भेद बताई। पृ० २१२

असान्यता—तुलसी साहब को शुकदेव व्यास जनक नारद, वेद शास्त्र, ब्रह्मा विष्णु महेश ज्ञानी व्रत तीर्थ अवतार और संस्कृत में आस्था न थी पर तुलसीदासजी को तो थी।

काया खोज किया नहिं भाई। शुकदेव रहे भूल के भाई॥
व्यास जनक नारद नहिं भाई। कथि पुरान आगम मति भाई॥

यदि यह पुस्तक वास्तव में गोस्वामीजी की 'घट रामायन' नामक किसी कृति का सार है तो इसका नाम 'घट रामायन सार' होना चाहिए था। 'घट रामायन' नाम से तो भ्रम फैलता है, क्योंकि जो कृति वास्तव में गोस्वामीजी की नहीं है वह उनकी बताई जाती है। यह गोस्वामीजी के विचारों का सार भी है या नहीं यह तो पाठक सम्पूर्ण आलोचना को पढ़कर और गोस्वामीजी के ग्रन्थों का मनन और मथन कर निश्चय कर सकते हैं।

घट रामायन का विषय— घट रामायन' का विषय क्या है ? इस पुस्तक में भेद पिंड और ब्रह्मांड, नीर भेद गगन भेद सुखम त्रिकुटी भेद नाम भेद सुन्नि भेद योगभेद सिद्धों के नाम प्रकृति भेद आदि कई प्रकरण हैं। इसमें कुछ विरोधी पुरुषों के गुमनाम और विचार संवाद भी सम्मिलित हैं जिन्होंने संतमत स्वीकार कर लिया था, यथा—तकी मियाँ मानगिरि संन्यासी फूलदास कबीरपंथी गुसाईं गिरैदास और पलकराम नानकपंथी। डॉ० रामकुमार वर्मा ने तुलसी साहब को आवापंथ का प्रचारक बताया है। तुलसी साहब ने 'साहब' शब्द का अनेक बार प्रयोग किया है और एक स्थल पर गोस्वामी तुलसीदास के लिए काशी के पंडितों से कहलाया है 'तुम्हरा साहमता तब जानी' पृष्ठ १२०। इनके दार्शनिक विचार का सार उस संवाद से अच्छा विदित होता है जो मानगिरि संन्यासी के साथ हुआ था।

तुलसी साहब के दार्शनिक विचार—"स्वामीजी, तीन लोक बैराट नाश होकर कहाँ समाते हैं ?

"ब्रह्म निराकार जोति तीन लोक बैराट नाश होकर सुन्न में समाता है। सुन्न नाश होकर महासुन्न में समाता है। महासुन्न के परे सत्त लोक है जहाँ सत्त साहब रहता है जहाँ प्रलय और महाप्रलय की गम नहीं।

"सत्त साहिब की लहर से महासुन्न होता है महासुन्न से सुन्न सुन्न से शब्द शब्द से ब्रह्म ब्रह्म से जोति निराकार, निराकार जोति से मन मन से अक्षर ब्रह्मा विष्णु, शिव वेद सब उत्पन्न होते हैं।" पृष्ठ १७६

आगले पृष्ठ पर इसी विषय को स्पष्ट करते हुए तुलसी साहब कहते हैं—

"ब्रह्मा बिस्नु और महेसा। नास सबै जब मन के भेसा॥
मन को नास सुनो पुनि भाई। मन लीन भया निरंजन माई॥
नास निरंजन ब्रह्म समाता। ब्रह्म की मता शब्द में जाता॥
शब्द नास जो सुन्न समाता। सुन्न नास महासुन्न में जाता॥
यहँ से उतपति परलय होई। आवै भेद न जानै कोई॥
यहँ से आवै यहँ लै जावै। आवै भेद न कोई पावै॥
सत्त लोक महा सुन्न कहाई। तीन लोक सब सुन में जाई॥
तीनि लोक करता नहिं जावै। या पद को कोई संत समावै॥

पहले कहा था कि 'महा सुन्न के परे सत्त लोक है' और 'सत्त साहिब की लहर से महा सुन्न होता है;' पीछे कहा है कि "सत्त लोक महासुन्न कहाई।

वेद और सनातन धर्म के विरोधी विचार—तुलसी साहब को कदाचित् वेद शास्त्र, पुराण, अवतार एवं राम-कृष्ण के नाम से चिढ़ थी जैसा कि आगे निर्देश

किया जायेगा। वे मूर्ति-पूजा के भी विरोध में थे और उन्होंने जैनियों पर इस विषय में आक्षेप किया है कि

जैनी को जैन नैन पूजै भाई। आतम को छाँड़ि पूजै पाहन भाई ॥ पृ० ६६

पुस्तक की भाषा—पुस्तक की भाषा प्रधानतः खड़ी बोली और व्रजभाषा है किन्तु इसमें पंजाबी और फ़ारसी शब्दों का भी मिश्रण है। मैं भाषा पर गम्भीर विचार नहीं करना चाहता अत: पाठकों को निम्नलिखित कतिपय उदाहरण देकर ही सन्तुष्ट हूँ—मिहरा उप्र (अचर) जगत (जगत्) सुपन्न पलक मसन्म, मिसाल, प्रमातम (परमात्मा) सलक पिछाना (पहिचाना) अरजुन्न जतन्न (यत्न) तप्प जति (यति) चरन्न ज्वाब (जवाब) स्वाल (सवाल) कमी (कमी) तत (तत्त्व) मिर्स पिरथम्म (प्रथम) सुद (सुद) रम्म (रब) अक्कल या पढीदा कीदा (किया) पुरकीन तसम इस्क तबक महो कही जाती हुतो मसेरो चेरो बचायी सुनायी रहती दिया किया हुआ रहा गया। यद्यपि गोस्वामीजी राजापुर में जन्मे और काशी में रहे जैसा कि 'घट रामायन' के अंत में लिखा है, तथापि उस कृति में अवधी का अभाव है।

अभूतपूर्व व्युत्पत्तियाँ—नीचे के उद्धरणों में वृन्दावन दशरथ लक्ष्मण कौशल्या कैकेयी मथरा मन्दोदरी भरत शत्रुघ्न आदि रामचरित मानस के पात्रों की अद्भुत एवं अपूर्व व्युत्पत्तियाँ हैं, जिन्हें कदाचित् गोस्वामी तुलसीदास मान्यता प्रदान न कर सकते थे।

बिन्द से बना बिन्द्रावन होई। मन के माहीं रहा समोई ॥ पृ० १८४
बिन्द्रावन बिद कीन्ह सोई लीला। गुसाँई पोथी के साथ बन बन लाया ॥

पृ० २८६

इंद्रजीत जीते मन ही को। सो इन्द्र जीत कहाई ॥
रावन बहुर बसै मन छोरी। ताको मन्दोदरी बनाई ॥
मन की छोर को दूर बहावे। मिकुटी बहु कहाई ॥
दस इंद्री रत दसरथ कहिये राम रमा मन भाई।
सत की सीता मातम लिया को सुमति कौशल्या बनाई।
मन थिर सुरति करे थिर कोई सो मन मंथरा कहाई।
जहाँ को बात कही कौन सुनाई कर्म न थिर कैकाई।
से पे रस मन ही को भाई लक्ष्मन वीर बढ़ाई।
यो में कइ मक्क मिलाई भय से भर्सुंड सुनाई।
भय रत भरत भरत है सोई बहु बाहु त्रिपुन्न मिलाई।
तो को माम चतुर गुन कहिये ये सब भेद बताई। पृ० २१२

अवमानना—तुलसी साहब को शुकदेव व्यास जनक, नारद वेद शास्त्र, ब्रह्मा विष्णु महेश नामी सब तीन अवतार और संस्कृत में आस्था न थी, पर तुलसीदासजी को तो थी।

काया खोज किया नहिं भाई। सुकदेव रहे भूल के माई ॥
व्यास जनक नारद नहिं भाई। कथि पुरान शास्त्र थकि पाई ॥

ज्ञानी भूले मर्म में, परम हंस बहु बार ॥
सास्तर संध बिचारिया, बहे कर्म की धार ॥ पृ० २१
तिनमें पड़ै त्रिगुनी धारा । ब्रह्मा बिष्नु न पावैं वारा ॥
संकर जोगी सिद्ध अनूपा । उनहूं न जानी आगम रूपा ॥ पृ० २२
ब्रह्मा वेद बखान बिस्नु सिव ना बचे । बचे नहीं बैराग अजुनि कहाँ[को बचे ॥ पृ० १२
ज्ञानी नहिं बचना ध्यानि न बचना बिद बेद पति नाहिं लई ।
ब्रह्म नहिं चिन्हा राम न चिन्हा, सिव सिद्धि नहिं पार लई ।
ब्रह्म बिस्नु भये महादेवा । इनकी उत्पति मन मत भेवा ॥
सास्तर बेद सम्मत बानी । ये सब मन मत मति उतपानी ॥
दस औतार अपन जग माया । यह मन और अनेक उपाया ॥
ज्ञानी मुनी जोगी सुर ज्ञानी । मन करता कर सब मिलि मानी ॥
तीरथ बरत बेद ब्यौहारा । जप पूजा मन जाल पसारा ॥ पृ० १६

तुलसी साहब और तुलसीदास के दृष्टिकोणों में अन्तर—गीता कहती है 'त्रैगुण्यविषया वेदा' और गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है—'बिधि हरि संभु नचावन हारे।' किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि गोस्वामीजी को 'राम' शब्द कितना प्यारा था। उनके दशरथ के सुत कितने प्यारे थे और तुलसी साहब का भाव राम-कृष्ण के प्रति क्या था ?

जिनकी रच बावन राम और रावन, तिन्हअक्खर सार कही । पृ० १२
नहिं राम न रावन यह गति बावन अगुन सगुन गुन नाहिं कही । पृ० २५
आठे नाम भेद नहिं जानै सबहि राम को नाम बखानै ।
नाम सही है अगम अपारा ब्रह्म राम कोउ पावै न पारा ॥ पृ० १६
रावन राम सकल परिवारा । ये मन भीतर जुगि जुगि मारा ॥ पृ० ४२
राम राम को मर्म भुलाई । ताको जनम अकारथ जाई ॥ पृ० १२१
राम करम बस भौ के भाई । संत अगम घर मित प्रति जाई ॥
राम काँच सम की मत जाना । संत मती हीरा परमाना ॥
जो पैसे में जन ले जावै । राम काँच मन जग को (पावै ॥
संत अगम हीरा गति न्यारी । केहि बिधि पावै जगत भिखारी ॥ पृ० २४३
राम भाव कर्मन बस परिया । कहौ तासैं जग कसकस तरिया ॥ पृ० २४८
जोग राम रिस बैठा जापा । बुधि गई तु बुड़े आपा ॥ पृ० २५२
राम-कृष्ण कीन्ह बड़मारा । सिव ब्रह्मा मिलि खोजी बारा ॥ पृ० २६७
त्रेता रामचन्द्र भये राजा । भूले जोहु देहु सुख काजा ॥
छिरया काज कीन्ह संग्रामा । बन बन फिरे लछमन अरु रामा ॥
कुल ब्राह्मन रावन को मारा । ब्राह्मन हति लीन्हा सिर भारा ।
ब्राह्मन पाप ग्रसिबौ कीन्ही । बालिहि मारि काल गति लीन्ही ॥
ये अधर्म कीन्हा अन्याई । ब्राह्मन मारि दया नहिं आई ॥ पृ० ११०
कच्चा राम भया मति हीना । कपट विराग उनहूं नहिं चीन्हा ॥

तिरिया काज कीन्ह सब कामा। कीन्हा मोप कीन्ह कोई रामा॥ पृ० ११०
रामकृष्ण जग हाथी काला। सोउ बड़े कर्म लपटाला॥ पृ० १११

क्या गोस्वामी तुलसीदास राम को 'बटमारा' 'मतिहीना' बताकर मार सकते थे अथवा उन्हें काग समझकर उनकी अवहेलना कर सकते थे? क्या वे रावन को राम से कहीं अधिक अथवा बराबर मान सकते थे? तुलसी साहब की आस्था तो रावन पर राम से कहीं अधिक है। उनके 'घट रामायन' में रावन ब्रह्म है और त्रिकुटी लंका है। वे लिखते हैं—

रावन ब्रह्म कहा कोई। कुटी लंक ब्रह्म है सोई। पृ० ४२
रावन ब्रह्म बसे त्रिकुटी में। लंक त्रिकूट बनाई॥ पृ० २१५

रावन के परिवार तक की सुन्दर व्याख्या है। रावन की पत्नी मंदोदरी तो 'मन की डोर को दूर' बहाने वाली किन्तु रामपत्नी सिया असत्, राम-माता कौशल्या कुमति और राम-पिता विषयी हैं—

रावन ब्रह्म बसे मन डोरी ताको मंदोदरी बनाई।
मन की डोर को दूर बहावै त्रिकुटी ब्रह्म कहाई।
दस इंद्री रस दसरत कहिये राम रमा मन जाई।
सत की सीता असत सिया को कुमति कौसिल्या बताई॥ पृ० २१२

किन्तु गोस्वामी तुलसीदास को अवश्य इस उक्ति से असंतोष होगा।

रामनाम का विरोध—तुलसी साहब रामनाम के विरोध में इस प्रकार युक्ति देते हैं:—

राम लिखो पत्थर के माई, पानी डारि देखि लो भाई।
जो पत्थर पानी माँहि बूड़ा, तो तुम जानो राम अमूढ़ा।
पत्थर डूबे राम लिखे से। तो तुम बुड़िहो राम कहे से।

पर गोस्वामी तुलसीदास ने अपने सभी ग्रंथों में रामनाम की कितनी महिमा गायी है।

मिथ्या तिथियाँ—डॉ० माताप्रसाद गुप्त लिखते हैं कि तुलसी साहब ने सात तिथियों का उल्लेख किया है जिनमें से केवल तीन में वार दिया हुआ है, अतः अन्य तिथियों के तथ्यातथ्य के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। जिन तिथियों के तथ्यातथ्य का विवेचन हो सकता है वे हैं—

(क) जन्मतिथि भाद्रपद शुक्ला ११ मंगलवार १८२९ वि० अर्थात् १० सितम्बर १७७२ ई० (ख) काशी में आगमन की तिथि चैत्र शुक्ला १२ मंगलवार १८१२ वि० और (ग) *घटरामायन निर्माण की तिथि भाद्रपद शुक्ला मंगल एकादशी* संवत् १८१८। किन्तु जन्म तिथि को छोड़कर और कोई भी ज्योतिषगणना के अनुसार ठीक नहीं उतरती।

ऐतिहासिक व्यतिक्रम—इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे ऐतिहासिक व्यतिक्रम हैं जिनसे घटरामायन के साक्ष्य का महत्त्व एकदम कम हो जाता है। प्रथम व्यतिक्रम यह है कि पलटूराम नानक-पंथी से संवाद करते हुए घटरामायन-कार उस प्रथा की ओर इंगित करते हैं जो पंजाब में साधारण रूप से और जाटों में विशेष

कम से प्रचलित थी। विसेंट स्मिथ * लिखते हैं कि लार्ड हार्डिंग के समय में पुत्रीवध पंजाब राजपूताना मालवा, कच्छ, काठियावाड़ तथा कश्मीर में व्यापक था और उक्त गवर्नर जनरल ने इसे रोकने का उद्योग किया।

सतकराम ये कैसी रीती। साहिब आवे करे अनीती ॥
लड़की मारि करें अजपूता। यह इत्या जानत होय पूता ॥ पृ० १०१
सुनि साहिब बातों की रीती। लड़की मारि जो करें अनीती ॥
कन्या पाप करम को बुलती। सो साधू नहिं पावे मुक्ती ॥ पृ० १७७

घटरामायन कर्त्ता ने एक स्थान पर यह भी लिखा है कि

भाव गृहस्थ लड़की को मारें। ताको जनत जनम करि डारें ॥ पृ० १७२

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि 'भाव' से क्या तात्पर्य है। इससे तो यही ध्वनि निकलती है कि तुलसी साहब अपने उस समय की ओर इशारा कर रहे हैं, जबकि अंग्रेज लोग 'कुप्रथा-भुद्री' की रोकने का उपाय कर रहे थे। 'भाव' शब्द से प्रतीत होता है कि यह रचना गोस्वामी तुलसीदास की नहीं है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि मुंशी देवीप्रसाद ने घट रामायन का जो संस्करण निकाला था उसमें 'लड़की' के स्थान पर 'बकरा' शब्द रख दिया गया है।

दूसरा व्यतिक्रम यह है कि घटरामायन-कार ने कम से कम नौ स्थलों पर दरिया साहिब के नाम का उल्लेख किया है

जा घर कोई मरम न जाने। नानक दास कबीर बखाने ॥
दादू दरिया रैदासा। नाभा मीरा अगम बिलासा ॥ पृ० ६५
दादू मीरा नाभा भाई। नानक दरिया गुर सुनाई ॥ पृ० २११
नानक और दादू दरिया साधू। मीरा सूर कबीर कही।
नाभा जस जानि भाखि बखानी। सुरति सबानी पार गई ॥ पृ० २१०
दरिया भी दादू बतलाई। पलटोमियाँ पुन साखि सुनाई ॥ पृ० २१०
और कबीर दादू रैदासा ॥ दरिया नानक अगम तमासा ॥
सूरदास नाभा अब मीरा। औरो संत अगम मति धीरा। पृ० २४०
ऐसे संत अचेत अबूझा। पुन दरिया पानी में सूझा ॥ पृ० २६२
पुन दरियाव राह नहिं जाना। डुबुका पानी डार बखाना ॥
मैं बाते नहिं कहाँ दियाना। पुन दरिया पानी में जाना ॥ पृ० २६१
गुरु का घर दरयावा माई। ताको पुन दरियाव बताई ॥ पृ० २६१
जब पुन घर दरियाव न चीन्हा। डुबुका पानी डार जो दीन्हा ॥ पृ० २६२
दादू पुन दरियाव न पावें। बिना संत कहाँ जो दरसावें ॥ पृ० २६१
संजा तन बिच बीच विचारा। पुन दरियाव गगन के पारा ॥ पृ० २६२
नानक और कबीर सुनाई। दादू दरिया सब ने गाई ॥ पृ० १७८

---

* लार्ड हार्डिंग — "कुछ मैनर्स एण्ड कस्टम्स आफ सती एण्ड इनफैन्टिसाइड इन द नेटिव स्टेट्स" पृष्ठ १५८।

इनफैन्टिसाइड वॉज प्रैक्टिस्ड पार्टिकुलरली इन द पंजाब, राजपूताना मालवा कच्छ काठियावाड़ एण्ड कश्मीर। पृष्ठ ६६ द ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया विन्सेंट स्मिथ-कृत।

यहाँ यह विचारणीय है कि डॉ॰ रामकुमार वर्मा ने 'हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास' में दो दरिया साहबों का परिचय दिया है। एक तो बिहार-वाले दरिया साहब जो संवत् १७३१ में जन्मे और १८३७ में मरे दूसरे वे मारवाड़ वाले दरिया साहब जिनका जन्म संवत् १७३३ में हुआ। यदि यह ठीक है तो क्या १६८० में दिवंगत होने वाले गोस्वामी तुलसीदास दरिया साहब का उल्लेख कर सकते थे ?

तृतीय व्यतिक्रम यह है कि 'घटरामायन' के रचयिता ने पलकराम नानक पंथी के साथ संवाद में अनेक (कम से कम छः) स्थलों पर गुरु गोविन्द का उल्लेख किया है यथा—

गुरु गोविंद मुख भाखै बानी। पातशाह बसमैं सहुबानी ॥ पृ॰ १४६
गुरु गोविंद की बाने कहिया। पातशाह बसवीं बतलइया ॥ पृ॰ १४२
गुरु गोविंद बिधि कही बखाना। सो भी सोच-सोच कर भाखा ॥ पृ॰ १११
गुरु गोविंद ग्रन्थ मति भाखा। तामें लिखी सब्द बतलाखा ॥
सुनो सब्द मैं भाखि सुनाऊं। गुरु गोविंद बानी मुख गाऊं ॥
पूजा माइन नहीं बताई। देखो गोविंद ग्रन्थ मंझाई ॥
देखो ग्रन्थ मैं भाखी साखो। एक सब्द तुलसी कहि भाखी ॥ पृ॰ १११
येहि बिधि गोविंद ग्रंथ लखाई। देखो सब्द ग्रन्थ के माहीं ॥
धीरी सुनो मूल इक भाऊं। गुरु गोविंद की साखि बताऊं ॥
गुरु गोविंद मुख अपने भाखा। ग्रन्थ लिखी मैं देखि बुझावा ॥
अम्म राम भगवान को भाखा। नहीं काल ने उनको राखा ॥
गुरु गोविंद ग्रन्थ मैं भाखा। भये भगवान काल ने पाखा ॥ पृ॰ १७०

ध्यान देने की बात है कि गोस्वामीजी और पलकराम का संवाद १६१६ संवत् में हुआ था जैसा कि उद्धरणों से स्पष्ट है और इसी संवाद में गुरु गोविन्द का भी उल्लेख है। इस बात के प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं कि गुरु गोविंदसिंह का आविर्भाव गोस्वामी तुलसीदास के देहावसान के पश्चात् हुआ। अतः यह असम्भव कल्पना है कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने गुरु गोविन्दसिंह का उल्लेख अपनी रचना में किया होगा। 'घटरामायन' में गुरु गोविंद का जो उल्लेख है वह सब पीछे का है।

पूर्व जन्म की कथा—'घटरामायन' के परिशिष्ट में लिखा है कि तुलसी साहब अपने किसी पूर्वजन्म में गोस्वामी तुलसीदास थे और तब इनका जन्म भाद्रपद शुक्ला ११ संवत् १५८९ वि॰ में यमुना के किनारे राजापुर में हुआ जो बुन्देलखण्ड में चित्रकूट से दस कोस की दूरी पर स्थित है। ये कुलीन कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। यद्यपि ये अपनी पत्नी में आसक्त थे तथापि सत्संगप्रिय थे। श्रावण शुक्ला नवमी संवत् १६१४ को इनके 'मन का सौदा' हुआ, इनकी समाधि लगने लगी बड़ी प्रसिद्धि हो गयी लोग दर्शनों को राजापुर आने लगे। काशी का रहने वाला हिरदे नाम का अहीर राजापुर में किसी के यहाँ नौकर था, वह नित्य प्रति दर्शन को आता था अतः इनकी उससे प्रीति बढ़ गयी। एक दिन ऐसा हुआ कि हिरदे को काशी गये बहुत दिन हो गये तो तुलसीदास व्याकुल हो स्वयं काशी जा पहुँचे हिरदे से मिले और काशी में गंगा के किनारे कुटी बना कर सत्संग में रहने लगे। यह बात चैत्र द्वादशी मंगलवार संवत् १६१६ की है। कार्तिक

कृष्णा पंचमी १६१६ में पलकराम नानकपंथी से साक्षात्कार हुआ। तत्पश्चात् इन्होंने भादों शुक्ला मंगल ११ सं० १६१८ को घटरामायन का प्रारम्भ किया। इस पुस्तक से काशी में बड़ी खलबली मची। अतः इन्होंने झगड़े के डर से इसे गुप्त कर दिया और सं० १६३१ में 'मंथा भये विधि' समझाने के लिए रामचरितमानस का प्रारम्भ किया और सं० १६८० की श्रावण शुक्ला सप्तमी को गंगा नदी के किनारे महाप्रस्थान किया। इस विषय में आवश्यक उद्धरण इस प्रकार हैं—

राजापुर जमुना का तीरा। जहँ तुलसी का भया शरीरा॥ पृ० ४१५
दिसि बुन्देलखण्ड सोहि देसा। चित्रकोट बीच दस कोसा॥
संवत् पन्द्र सै नवासी। भादों सुदी मंगल एकादसी॥
तिरिया बरस मति मन राता। विधि-विधि रीति चित संग साथा॥
काम हीन रस रंग संग माता। कामकुवत ब्राह्मन कोरी जाता॥
संत साथ मोहि नीका भावै। नाम प्रनाम एक नहिं भावै॥
संवत् सोलासै के चौथा। ता दिन भया प्रथम का सौदा॥
सावन सुदी नौमी तिथि वारी। आधी रात भई गति न्यारी॥
पंथ गुरु ने राह बताई। देह गुरु से कछु नहिं पाई॥ पृ० ४१६
ऐसे कइ दिन बीति सिराने। राजापुरी जगत सब जाने॥
लोग बरस को नित नित आवैं। दरस भाव सब को उपजावैं॥
हिरदे अहीर काशी का वासी। रहै राजापुर नौकर पासी॥
सोहु प्रतिदिन दरसन को आवे। प्रीति बड़ी हित कहा न जावै॥ पृ० ४१७
रीति दिवस दिन-दिन रहु पासा। तुलसी बिना और नहिं आसा॥
एक दिवस भई ऐसी रीति। काशी गये बहुत दिन बीती॥
हमरा चित हिरदे में बासी। हम चलि गये तब जहँ काशी॥
संवत सोलासै रहे पंद्रा। भाद्रमास बारस तिथि मंगरा॥
पहुँचे काशी नगर मँझाई। हिरदे सुनत दौड़ि चलि आई॥
आवे चरन लीन्हु परसादी। विधि-विधि रहन कुटी की साधी॥
कुटी बनाय कीन्ह अस्थाना। काशी में हम रहे निदाना॥
गंगा निकट कुटी जहं कीन्हा। हिरदे नित आवैं ली सीधा॥
सोलासै सोला में सोई। कातिक बदी पंचमी होई॥
आये पलकराम इक संतो। रहे काशी में नानक पंथी॥
घटरामायन ग्रन्थ बनाया। ताकी विधि विपत सब पाया॥
सम्मत सोलासै अट्ठारा। पठी मीत्र ग्रन्थ छिपी सारा॥
भादों सुदी मंगल एकादसी। आरंभ कियो ग्रन्थ मन भासा॥
पुन काशी में प्रचरण कीन्हा। सोर नगर में भयो मलीना॥
तासे ग्रन्थ गुप्त हम कीन्हा। घटरामायन चलन न दीन्हा॥
सम्मत सोला से इकतीसा। राम चरित कीन्ह पद ईसा॥
जग में भ्रमरा आगा भाई। रावन राम चरित्र बनाई॥
दीक्षित भेद अगस्त सब भारी। रामायण भुनि भये पुजारी॥ पृ० ४१८

ग्रंथा ग्रंथे विधि समझावा । घटरामायन पुष्ट करावा ॥
अब कहों अंत समय अस्थाना । देह तजो विधि कहौं विधाना ॥
सम्वत सोलासै असी नदी बरुन के तीर ।
सावन सुक्ला सत्तमी तुलसी तज्यो शरीर ॥
मैं अपना वासंत कराई समसत वृन्द कुटुम्ब बिठलाई ।
जस-जस भया विधि विधि लेखा तस-तस तुलसी कहा विसेखा ॥

परिशिष्ट पर विचार—तिथि वार संवत् और रचना घटना का बाहुल्य निस्संदेह तथाकथित तुलसी साहब की पूर्वजन्म-स्मृति का अद्भुत साक्षी है। पूर्वजन्म में इनके जो-जो संवाद अपने भक्तों से हुए थे वे सब संवतों के साथ ज्यों के त्यों स्मृति-पटल पर अंकित हैं उन सब भक्त स्त्री-पुरुषों के नाम स्मृत हैं, उन्होंने जो कहा वह भी इन्होंने जो उनसे कहा वह भी याद है। इनका पूर्वजन्म में कब जन्म हुआ वह बावन तोले पाव रत्ती स्मरण रहा उनका जन्मस्थान कहाँ था किस प्रांत में और चित्रकूट से कितनी दूर था यह भी। इन्हें अपनी मरण-तिथि याद रही। इनके 'अगम का सौदा' कब हुआ वह तिथि मास संवत् यहाँ तक कि भावीनाथ से हिरदे की प्यास में काशी किस दिन पहुँचे इन्होंने 'घटरामायन' किस दिन प्रारम्भ की रामचरित मानस कब प्रारम्भ किया सब स्मृत है। और तो और इनको यह घटना भी याद है कि परसराम नामक पंथी इनके पास किस संवत् में किस तिथि और वार को सर्वप्रथम मिला। पर इन्हें यह स्मरण नहीं रहा कि पूर्वजन्म में इनके पुण्यश्लोक माता-पिता का क्या नाम था। इन्हें यह स्मरण नहीं रहा कि इनकी पत्नी का जिसमें ये अत्यन्त अनुरक्त थे क्या नाम था। इन्हें यह स्मरण नहीं रहा कि इन्होंने पूर्वजन्म में गोस्वामीजी के रूप में 'घटरामायन' और 'रामचरित मानस' के अतिरिक्त कौन कौनसी पुस्तकें लिखीं। इन्हें 'विनय-पत्रिका' 'कवितावली' आदि सभी अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकें विस्मृत हो गयीं। इनकी स्मृति अविश्वसनीय होनी चाहिए, क्योंकि केवल जन्म तिथि को छोड़ कर अन्य सब तिथियाँ प्रथम तो गणना की कसौटी पर वार आदि के अभाव से कसी नहीं जा सकतीं और जो कसी भी जा सकती हैं वे असत्य हैं।

'सुधांशु' जी की और अनास्था—'घटरामायन' गोस्वामी तुलसीदास के विषय में महत्व की नहीं है। श्री लक्ष्मीनारायणसिंहजी 'सुधांशु' के शब्द हैं—

हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि किसी कुचक्र ने इसकी रचना कर इसे तुलसीदासजी के पवित्र नाम से प्रकाशित किया है यह पुस्तक संतमत की कट्टर समर्थक है। सारी पुस्तक दोहे चौपाई आदि में वर्णित है। पर इसमें रामचरितमानस की तरह न सरसता है न सरलता और न अर्थ-गाम्भीर्य। छन्दोभंग की त्रुटियों से सारी पुस्तक यथावत भरी पड़ी है जैसे तैसे एक ही बात की बार-बार आवृत्ति कर पुस्तक के कलेवर की वृद्धि की गई है। हमारी समझ में यह पुस्तक गोस्वामीजी के पवित्र नाम में कलंक लगाने वाली है।"[१]

विवरण—'घटरामायन' कैसी भी पुस्तक हो उसका सम्बन्ध तुलसी साहब से है। तुलसी साहब किसी जाति के हों वे संत थे अतः वे आदर के पात्र हैं चाहे

१. तुलसीदास और घटरामायन, माधुरी, भाद्रपद १९८३ वि

सिद्धान्त की दृष्टि से मतभेद कितना भी हो । वे हाथरस के निवासी न थे किन्तु वहाँ आते-जाते रहते थे और उनकी एक पक्की समाधि वहाँ विद्यमान है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जनसाधारण पर उनका प्रभाव अधिक नहीं था। हाथरस की शिष्ट जनता आज उनको नहीं के बराबर जानती है कदाचित् यही कारण था कि १८७२ ई० में एटकिंसन महोदय ने जो गजटियर छापा जिसमें अलीगढ़ जिला और हाथरस तहसील का विवरण है उसमें तुलसीसाहब का कोई उल्लेख नहीं और न १९०९ में छपे अलीगढ़ जिले के गजटियर में ही। हाथरस में ऐसी कोई जनश्रुति नहीं कि गो० तुलसीदास का जन्म राजापुर में हुआ था।

सन् १९२४ ई० में श्री श्यामबिहारी मिश्र और शुकदेव बिहारी मिश्र ने हिन्दी की पाण्डुलिपियों के अनुसन्धान का जो त्रैवार्षिक विवरण प्रकाशित किया उसके परिशिष्ट (संख्या १ पृष्ठ २११४० पर) अपनी में यह आशय प्रकट किया है कि 'तुलसी साहब नये अनुसन्धात कवि हैं जो अपने प्रख्यात नामराशि से भिन्न हैं। वे हाथरस में रहते थे। पुस्तक कब रची इसका पता नहीं। पाण्डु लिपि १९१४ संवत् में अर्थात् १८५७ ई० की हाथरस के पण्डित दुर्गादत्त त्रिपाठी के पास विद्यमान है। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है 'इति श्री ग्रन्थ घटरामायण तुलसी साहेब का सम्पूर्ण मिती कातिक बदि ११ सं० १९१४ दसखत गुरमुखदास के शुभमस्तु १११११''

गुरमुखदास कौन ?—'रत्नसागर के तृतीय संस्करण के द्वितीय पृष्ठ पर जो १९३० में प्रकाशित हुआ तुलसी साहब का जीवन-चरित दिया गया है, उसमें अन्य भक्तों के साथ उक्त गुरमुखदास अर्थात् सूरस्वामी का उल्लेख इस प्रकार है 'राम किशुन नाम का एक गड़रिया तुलसीसाहब के नीचे आ बैठता था। एक दिन तुलसीसाहब को यह बात विदित हो गई उन्होंने पूछा तुम क्यों आते हो यह बोला कि आपकी वाणी बड़ी प्यारी लगती है। इस पर तुलसीसाहब ने दया करके उसे एक पुस्तक दी और कहा कि पढ़ो। उसने उत्तर दिया कि मैं अपढ़ हूँ। किन्तु तुलसी-साहब के पुनः आज्ञा करने पर उसने जो पुस्तक ली और देखा तो धड़ाके से पढ़ने लगा। इसी प्रकार प्रसिद्ध है कि आपके गुरमुख (शिष्य) सूरस्वामी जो निपट अपढ़ और जन्मान्ध थे। उनको भी एक दिन तुलसीसाहब की आज्ञा हुई कि ग्रन्थ पढ़ो और उज्र करने पर डाँटा तो उनकी आँखों में ज्योति आ गई और वे पढ़ने लगे।''

निष्कर्ष—घट रामायन में तुलसीसाहब के पूर्व जन्म का जो परिचय है वह स्यात् गुरमुखदास अथवा अन्य किसी शिष्य का प्रक्षिप्त परिशिष्ट हो क्योंकि उस परिचय की भाषा शेष पुस्तक की भाषा से भिन्न है और जहाँ-जहाँ तिथियों का उल्लेख हुआ है वहाँ-वहाँ अन्त्यानुप्रास बिगड़ गया है और कहीं प्रथम पुरुष का तो कहीं उत्तम पुरुष का प्रयोग हुआ है। तुलसी साहब के पूर्व-जन्म-संबन्धी घटनाओं के जो संवत् दिये गये हैं उनमें से कुछ तो तिथि-वार के अभाव से जाँच की कसौटी पर नहीं कसे जा सकते, और जिनमें तिथि वार मिलते हैं वे केवल एक संवत् को छोड़ गणना से अशुद्ध हैं। जन्म-संवत् गणना से ठीक उतरता है किन्तु भ्रान्त विवरणों के बीच घुणाक्षर-न्याय से ही ठीक प्रतीत होता है क्योंकि अभी जन्म तिथियों में मंगलवार दिया गया है। 'घटरामायन' पर बौर्जे ग्रियर्सन की टिप्पणियों से पीछे की

है अतः गोस्वामीजी के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में महत्त्व की नहीं। डॉ॰ पीताम्बरदत्त[1] और श्री परशुराम चतुर्वेदी[2] दोनों ने ही 'घटरामायन' के जीवन-वृत्त-सम्बन्धी परिशिष्ट को प्रक्षेप माना है।

(घ) गोसाईं-चरित्र विवेचन

चरित्र के क्रम—गोस्वामी तुलसीदास के चरित के सम्बन्ध में निम्नलिखित कतिपय रचनाएँ भवानीदास के 'गोसाईं चरित' की परम्परा में प्रतीत होती हैं —

(क) 'तुलसीदास चरित' बनकपाल किशोरी शरण-लिखित। इसका निर्माण काल ज्ञात नहीं किन्तु लिपिकाल सं॰ १९३० है। यह प्रति राष्ट्रकवि डॉ॰ मैथिली शरण गुप्त (चिरगाँव, झाँसी) के संग्रह में विद्यमान है। खोज रिपोर्ट में इस चरित के आदि मध्य तथा अन्त के एक-एक छन्द भी दिये हुए हैं किन्तु जैसा कि डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त लिखते हैं[3] उनमें न तिथियाँ हैं और न अन्य उपयोगी बातें लक्षित होती हैं।

(ख) 'तुलसीचरित्र' इसे जिला बहराइच में अलीपुर के निवासी रघुबीरसिंह ने सं॰ १९१ में रचा जिसकी प्रतिलिपि संवत् १९५५ की है। खोज रिपोर्ट के अनुसार इसकी विषय-सूची में वन्दना पवन-सुत-मिलन शिव-दर्शन हरिनामजन सन्त सुयश-वेद विदा रामघाट मचान सरयू स्नान नामामगन आदि का समावेश है।

(ग) 'तुलसी चरित' दासाम्यदासकृत। इस प्रति का निर्माण-काल अज्ञात है लिपिकाल १९२१ है। यह ठाकुर महेश्वरसिंह ग्राम सिकौलिया डाकखाना बिसवाँ[4], जिला सीतापुर के संग्रह में है।[5]

(घ) श्री गोसाईं चरित्र दासाम्यदासकृत। कानपुर के प्रो॰ अयोध्यानाथ शर्मा की कृपा से मुझे एक 'गोसाईं चरित्र' की एक प्रतिलिपि के दर्शन हुए, जिसे डॉ॰ भगवतीप्रसादसिंह ने, माधव भवन लंका बनारस में १९५६ ई॰ में ३ अक्तूबर के ८ बजे प्रातःकाल से ७ अक्तूबर के ८ बजे प्रातःकाल तक पूर्ण किया था। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है —

इति श्री गोसाईं चरित्र दासाम्यदास विरचितायां सम्पूर्णम् शुभमस्तु।

इति श्री दसपत मोहन शुक्ल के पोथनी मस्थामध्ये सुक्ल पक्ष तिथी संप्तं शुक्रवासरे संवत्स १९२१

राम राम   राम राम   राम राम
राम राम   राम राम   राम राम
राम

दोहा—शुक्रवार तिथि सप्तमी शुक्ल पक्ष बैसाख।
सम्वत बनारस से मकरंस को पाता संवत भाख॥

---

१ हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय पृ॰ ६१
२ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा पृ॰ ३५८
३ तुलसीदास पृ॰ ६४   ४ वही,   ५ वही

उक्त दोहा पुस्तक के १२१ वें पृष्ठ पर है। भूमिका से स्पष्ट है कि पुस्तक को किसी दासानुदास ने लिखा और मोहन शुक्ल ने संवत् १९२१ में नकल किया। किन्तु हरिगीतिका संख्या १४ में भवानीदास का भी उल्लेख है जो इस प्रकार है:—

सब गुन रहित औगुन सहित तव चरन दृढ़ विश्वास है,
करि आस संख्या नाम की कासी भवानी दास है।
झूठे फुरे निज दास की पंक्ति लाज करि आपे सबै
निज विधि निहारि पुरारि प्रिय रिपि लीजिये अबहूँ अबै ॥१४॥

क्या दासानुदास और भवानीदास एक ही व्यक्ति हैं? श्री गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत से पता चलता है कि हाँ।[1]

श्री गोसाईं चरित्र के लिए प्रेरणा इस प्रकार मिली थी —

राम चरित रस रंग के प्रभु पद दृढ़ प्रसनेह
श्री गोसाईं अनुकूल तिन तिनहिं परम प्रिय नेह।
जो प्रियदास भाषा हुई भक्तन के गुन गाउ
भव सागर के तरन को नाहिन आन उपाउ ॥१९॥
ताते कछुक प्रसंग शुभ सुनेउ जो संत प्रसाद
संत शिरोमणि हू दई आग्या रामप्रसाद ॥२०॥
श्री स्वामी नवललाल बहुरत राम परायन
नगर सडौली बास बड़ कुल के सुखदायन।
श्रीमत जोधराम जिनहिं कुल कमल दिवाकर
जथा नाम प्रभु आपु भनी तन धरे कृपाकर।
प्रथम कछुक बंदन कियो श्री गुरदेव जो परमहित
अमित नाम नर रूप हरि तिन भगती की अनुहरित।
श्री रामचरन दास गुनीम प्रिय जन स्वामी के
तिनके गुन अभिराम भरति सब चितनीके।
श्री हीरामनिदास जो तिनके गुन मंडित
साहजस रति राम काम आचारज पंडित।
तेहि कुल कैरव सुधानिधि रामप्रसाद प्रकास जिय
हित चरन विषय रस सबब बसि श्री स्वामी के सुति प्रिय ॥२१॥
मोहि आसन कर जानि मानि कुल कानि पथ पर
सदय विषय लपटान दीन हौं पाप कृपाकर।
विविध प्रसंग सुनाइ गोसाईं के सुखदायक
भो निसोल कर चरित करहु भाषा गुन गायक।
अज्ञा सिर धर लई जोरिकै जिन की कवि कोविद चरन
लखि चूक क्षमा कीनी अबुध जानि दास आपनी सरन।
सोरठा—जदपि सब विधि हीन छोटो मोटो दीन अघ
करहिं छोह परवीन कैसो कैसो दास लखि।

---

१ सरस्वती भाग ४१ संख्या १ पृष्ठ ११

इस प्रति में पचास विषय वर्णित हैं, यथा—गणेश, शिव राम वाल्मीकि व्यास और हनुमानजी की स्तुतियाँ, गोसाईं चरित निर्माण की प्रेरणा, स्वामी रामप्रसाद का आदेश गुरु परम्परा, स्वामी रामानन्द, अनन्तानन्द कृष्णदास तथा अग्रदास की वन्दनाएँ, माया हनुमानजी, मीराबाई नन्ददास, वृन्दावन वंशीवट रामपुर, आदि के प्रसंग ।

(ड) डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने उस 'गोसाईं चरित' की ओर ध्यान आकर्षित किया है जो १९२४ ई० में नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से रामचरितमानस पर, रामचरणदासजी की बृहट्टीका के तृतीय संस्करण के साथ प्रकाशित हुआ था।[1] श्री चन्द्रबली पाण्डे की आस्था इस चरित में अधिक थी और उन्होंने अपनी रचना "तुलसी की जीवन भूमि" के लिए इसका उपयोग बहुलता से किया है। इस चरित को भवानीदास ने स्वामी रामप्रसाद की प्रेरणा से लिखा अतएव बहुत संभव है कि यह चरित और वाल्मीकिदास बाबा दोनों ही न्यूनाधिक समान हैं। चरित के लिए प्रेरणा कैसे मिली उसका निर्देश करने के लिए डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने जो उद्धरण दिया है[2] वह उक्त उद्धरण के "श्री स्वामी नन्दभाव ... आनि दास अपनी धरन' के समान है यद्यपि कहीं-कहीं शब्दों और नाम में किंचित् अन्तर भी है।

'चरित' का निर्माण कब ? डॉ० गुप्त ने ऊहा-पोह के अनन्तर इस चरित को लगभग सं० १९१० की रचना माना है।[3] हमें भी उसे तत्कालीन रचना मान लेने में कोई आपत्ति-विशेष नहीं। उसकी प्रामाणिकता अथवा अप्रामाणिकता से शोध-सामग्री पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि, जैसा कि डॉ० गुप्त लिखते हैं यद्यपि इसमें कवि के समकालीन अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं का उल्लेख है तथापि उन व्यक्तियों के सम्बन्ध में और उनसे सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं के सम्बन्ध में हमें वह आवश्यक विस्तार नहीं मिलता जिसकी सहायता से उनकी ऐतिहासिकता का परीक्षण हो सके क्योंकि चरित भर में किसी तिथि का उल्लेख नहीं।

चरित के अनुवाद उर्दू-नागरी में—'श्री गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत' डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने इस शीर्षक से सरस्वती में एक लेख लिखा। यह चरितामृत भवानीदास-कृत 'गोसाईं चरितामृत' का उर्दू अनुवाद है जो काकोरी (लखनऊ) के निवासी भानजी कवि के द्वारा संवत् १९४३ वि० अर्थात् मई सन् १८८६ ई० पूर्ण हुआ। इसकी उपलब्धि नवाबगंज (जिले बाराबंकी) में हुई। यह पुनः अयोध्या के कनक भवन के निकट तुलसीराम के द्वारा उर्दू से नागरी रूप को प्राप्त हुआ। यह ग्रन्थ, डॉ० वार्ष्णेय की सूचना के अनुसार, गोस्वामी तुलसीदास के हनुमद्दर्शन से आरम्भ होता है और भवानीदासजी ने तुलसीदास जी के जन्म जन्म-स्थान आदि के विषय में कुछ नहीं लिखा किन्तु अनुवादक ने, अवश्य अपनी

---

१ सरस्वती भाग ४२ संख्या १ पृ ४०
२ वही, पृ० ४२
३ वही पृ० ४३
४ वही, पृ ४४
५ वही, पृ० ११ १६

ओर से तुलसीदासजी का जन्म राजापुर में संवत् १५८९ में और मरण काशी में १६८० वि० में लिख दिया है।[1]

चरित के प्रसंग—इस ग्रन्थ में साठ प्रसंग हैं जिनमें से कुछ ये हैं—हनुमद्दर्शन अयोध्या-निवास रामाश्रम नाभा से मिलने वृन्दावनगमन वृन्दावन में कृष्णमूर्ति का राममूर्ति में परिवर्तन तज्जन्य ईर्ष्या वृन्दावन में राम की प्रस्तरमूर्ति की स्थापना; कन्नौज के कनौजिया और गोस्वामीजी के गुरु भाई नन्ददास का आना और ठहरकर वापस जाना अयोध्या-माहात्म्य सुनाकर तुलसीदासजी का अयोध्या से वृन्दावन लौट जाना अयोध्या में राममूर्ति के सामने नृत्य करने वालों को 'गीतावली' की भेंट कलि-कुचाल के कारण अयोध्या छोड़कर काशी जाना; राममन्दिर-निर्माण और रामायण-प्रचार भाषा में 'रामचरित मानस' के निर्माण से काशी में पंडितों का विरोध मधुसूदन स्वामी की सम्मति और पंडितों की क्षमा याचना भैरव नाथ हनुमत्सहायता चोरों का प्रयत्न और राम-लक्ष्मण की चौकसी उपदेश के द्वारा गणिका जमींदार पंडित योगी नीच आदि का उद्धार काशी से जनकपुर यात्रा और ब्राह्मणों को मार्ग में राम दिखाना प्रत्यावर्तन बनखण्डी प्रेत की मुक्ति प्रेत के साथ नैमिषारण्य की यात्रा और कोष का उत्खनन कर तीर्थोद्धार में धन का व्यय काशी से चन्नारगढ़ विन्ध्याचल की तराई से प्रयाग मुरारिदास और मलूकदास से भेंट; चित्रकूट-वसन रघुनाथजी की लीला और भूमण विहार से आनन्द प्राप्ति राम घाट में हरियानन्द से भेंट और राम-दर्शन चित्रकूट के एक ग्राम में किसी ब्राह्मण के दारिद्र्य का मोक्ष, चित्रकूट से दिल्ली बादशाह को करामात न दिखाने के कारण बन्धन और हनुमत्कृपा से मोक्ष शाहजहाँनाबाद की स्थापना किसी ब्यासे की माया-मुक्ति वृन्दावन को प्रस्थान संडीले में नन्ददास से भेंट भीकम सिंह कानूनगो की उपेक्षा मलिहाबाद में रामोपासक वैष्णव भाट को 'राम चरित मानस' की प्रति की भेंट मलिहाबाद से रसूलाबाद ब्रह्मावर्त संडीला पिहानी मिसरिख और रामपुर (मथुरा) होते हुए अयोध्या को प्रस्थान लाला भीकम सिंह की शरणागति काशी में हैजे का प्रकोप काशी-निवासियों की शरणागति और हनुमत्स्तुति के द्वारा प्रकोप की शान्ति मीराबाई का पत्र तथा आगमन गंग कवि का व्यंग्य और बादशाह के हाथी के द्वारा उसकी मृत्यु जहाँगीर का आगमन और भेंट-स्वीकृति के लिए उसकी प्रार्थना तुलसीदासजी के शरीर में फोड़े और बादशाह की उक्ति कि मेरे साथ 'हकीम डाक्टर वैदराज'[2] बहुत हैं उनकी दवा कर लें किन्तु गोस्वामीजी की असम्मति।

सूचना-बहुलता—भवानीदास के गोसाईं चरित की विशेषता यह है कि उसमें गोस्वामी तुलसीदासजी की यात्राओं तथा प्रसंगों का वर्णन-बाहुल्य है। उसमें ऐतिहासिक क्रम का कहाँ तक पालन और उल्लंघन हुआ है यह स्वतन्त्र अनुसंधान और निर्णय का विषय है। फिर भी तुलसी-सम्बन्धी इन सूचनाओं में सत्यांश का आधिक्य होगा ऐसा हमारा अनुमान है।

१ श्री गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत, सरस्वती भाग ४२ संख्या १ पृ १४
२ वही पृ ११

संदिग्ध प्रामाण्य—फिर भी 'गोसाईं चरित' के प्रामाण्य को आँख मूँदकर पावोल में स्वीकार कर लेना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि उसमें कुछ स्थल ऐसे भी हैं जो तथ्य से सर्वथा दूर हैं और तिथियों के प्रभाव के अतिरिक्त वह कुछ कारणों से प्रमाण निरपेक्ष भी नहीं रहा —

(१) प्रथमतः भवानीदास ने रामपुर वासी नन्ददास का तादात्म्य बरेली वासी नन्ददास से कर दिया है जो भ्रमोत्पादक है। इन दोनों के वृत्त 'शिवसिंह सरोज' में अलग-अलग विद्यमान हैं। नाभाजी ने स्वयं नन्ददास को रामपुर का बताया है और 'वैष्णव वार्ताओं' में रामपुर वासी नन्ददास को गोस्वामी तुलसीदास का भाई (और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी दोनों को भाई) घोषित किया है जिसकी सविस्तर चर्चा सोरों-सामग्री के विवेचन के समय की जायगी।

(२) द्वितीयतः यह बात इतिहास के विरुद्ध है कि संत कवि की मृत्यु हाथी के पैर से कुचल कर जहाँगीर के समय में हुई थी। उसे तो औरंगजेब ने सदोष कवित्त के लिये हाथी से कुचलवाया जैसा कि श्री शंभुप्रसाद बहुगुणा[1] और डा० माताप्रसाद गुप्त[2] समझते हैं।

(३) तृतीयतः जहाँगीर के समय में अंग्रेज डाक्टर बहुत कहाँ थे ? क्या तब तक अंग्रेज डाक्टरों की और अंग्रेजी चिकित्सा की इतनी धाक जम गई थी कि जहाँगीर ने तुलसीदासजी को उनके इलाज का सुझाव दिया ?

(४) चतुर्थतः शिवसिंह सेंगर ने 'शिवसिंह सरोज' में गोस्वामीजी के जीवन चरित का उल्लेख तो किया है किन्तु उसे बेनीमाधवदास की रचना बताया है भवानीदास की नहीं। यद्यपि मूल गोसाईं चरित में गोस्वामीजी का जन्म १५५४ में बताया गया और 'गोसाईं चरित' में गोस्वामीजी के जन्म की चर्चा ही नहीं तथापि शिवसिंह सरोज में जन्म संवत् १५८३ वि० दिया गया है। भवानीदास ने 'गोसाईं चरित' में बेनीमाधवदास के नाम का उल्लेख कहीं भी नहीं किया।

(५) पंचमतः भवानीदास की रचना डॉ० गुप्त के अनुमान से संवत् १८१० के लगभग हुई। तब से उसके हिन्दी उर्दू पद्यानुवाद और छोटे-बड़े अनेक संस्करण भी हो गये। 'गोसाईं चरित' के दोनों बड़े संस्करणों में विषय का न्यूनाधिक्य परम विचारणीय है किसी में पचास तो किसी में साठ[3]।

अतः निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि यद्यपि 'गोसाईं चरित' का अपना महत्व है तथापि उसका प्रामाण्य निरपेक्ष नहीं।

(ङ) गौतम चन्द्रिका

प्राक्कथन—श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने २०१२ वि० की 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में 'गौतम चन्द्रिका' का एवं तदन्तर्गत गो० तुलसीदास के चरित का उद्धरण

१ वीणा पृ० ८५१ वर्ष १९६५ २ तुलसीदास, पृ० ७४ ११,१२
३ श्री गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत, सरस्वती भाग ४१ संख्या १, पृ० ३६
४ श्री गोसाईं चरित्र सम्पादकीय निवेदन
५ श्री गोस्वामी तुलसीदास परिचायक सरस्वती पृ० ३६, भाग ४१, संख्या १

परिचय हिन्दी जगत् के समक्ष विचारार्थ उपस्थित किया है। अतएव कुछ निवेदन है।

तुलसी-वृत्त की मुख्य बातें—मिश्र जी ने तुलसीदास-सम्बन्धी वृत्तान्त की कुछ बातें इस प्रकार अभिव्यक्त की हैं —

(१) काशी में शिव केदार के समीप आनन्द कानन ब्रह्मचारी रहते थे, उनके यहाँ 'गौतम चन्द्रिका' के (तथा-कथित) रचयिता कृष्णदत्त मिश्र भी पढ़ते थे। वर्षा ऋतु में, एक बार तुलसीदास आये और उन्होंने ब्रह्मचारी जी के चरणों में प्रणाम कर अपने गुरु नरहरि का एवं अपना वृत्तान्त बताया। (२) नरहरिजी अयोध्या से नर्मदा तट चले गये थे, और तुलसीदासजी ने यमुना तटपर यमुना नाम की किसी स्त्री से विवाह कर लिया था। (३) कृष्णदत्त ने तुलसीदास को अपना परिचय दिया और माता पिता के स्वर्गवासी होने की बात कही जिससे वे दुःखी हुए। (४) बाढ़ आने पर तुलसीदासजी ने गंगा जी को शान्त किया। (५) उर्वेनीदास ने सूर और मीरा के कृष्णभक्ति-सम्बन्धी पद गाये, और इस पर तुलसीदासजी ने भी कृष्ण की प्रशस्ति के पद गाये। (६) कृष्ण की कीर्ति-ध्वजा फहरा कर तुलसीदासजी 'गोसाईं' हो गये लोगों ने उन्हें ढोंगी पतित कुमार्गि आदि कहना आरम्भ किया जिस पर उन्होंने राम के पतित-पावन आने की बात कही। (७) तुलसीदासजी ने एक बार मिथिला में जाकर विद्यापति के वंशज रमाबन्धु ठाकुर के किसी व्यंग्य के प्रत्युत्तर में कहा था कि आप तो श्री जानकी जी के नाते हमारे मामा हैं और मिथिला मेरी ननसार है। (८) तुलसीदासजी के सत्संगी थे थे काशीनाथ पंडित, अमरसिंह राजपूत गंगाराम सत्संगी केशवकवि उर्वेनीदास संगीतज्ञ भजनभ्यासा जयराम नवरसेठ, सियाराम तपोनी नाथू नाऊ, राजू मल्लाह, देवानन रैदास, लोली गोड़ हरि हरवाह मीर हाफ़ी बसन जुलाहा, मघवान् ब्राह्मण टोडर, कमच्छा के मेवा भगत आदि। (९) सरयू-घाघरा के संगम पर सूकरक्षेत्र में जो शाण्डिल्य ऋषि का आश्रम है नरहरि स्वामी रहते थे जो शाण्डिल्य गोत्र के और तुलसीदास के गुरु थे और जो परिपक्व वय में नर्मदा से रामेश्वर होते हुए सूकरक्षेत्र लौटे और बुढ़ापे के कारण काशी आ बसे तथा कैलाश-वासी हुए; उनका श्राद्ध तुलसीदासजी ने किया। (१०) तुलसीदासजी २८ वर्ष की अवस्था में (जबकि कृष्णदत्त १८ वर्ष के थे) काशीनाथ पंडित, कैलाश कवि मेवाभक्त तथा अन्य लोगों के साथ मानसरोवर की यात्रा को गये और उन्होंने ३१ वर्ष के वय में लौटकर अयोध्या में 'रामचरित मानस' का निर्माण किया। (११) उन्होंने नैमिष रम्य गंगासागर और जगन्नाथ की यात्रा की रामेश्वर में गंगाजल चढ़ाया तथा द्वारका प्रभास कुरुक्षेत्र वृन्दावन नर्मदातट की यात्रा के अनन्तर काशी आकर रामायण के किसी व्यास को वाल्मीकि मानकर पूजन और रामराज लीला का विस्तार किया। (१२) टोडर की मृत्यु पर गोस्वामीजी उनके लिए दुःखी हुए। उन्हें (संवत् १६६८ के पश्चात्) आधे आषाढ़ में बाहु पीड़ा हुई, जो आधे श्रावण में दूर हो गयी थी। तदनन्तर टोडर के पुत्र धर्मदराज तथा रामभद्र के पुत्र कन्हैयाराम के झगड़े में गोस्वामीजी ने पंच बनकर काशी से समुचित निर्णय कराया। (१३) (संवत् १६६८ के पश्चात्) सनीचरी और मीन की शनीचरी में काशी की भयावह स्थिति हो गयी थी, किन्तु रामभजन के द्वारा गोस्वामीजी ने महामारी को शान्त कर दिया। (१४) संवत्

१६८० में तुलसीदासजी ने श्रावण कृष्णा तीज को ८० वर्ष की आयु पाकर गंगा लाभ किया। (१५) तुलसीदासजी की रचना का अष्टांग योग है रामगीतावली, पदावली कृष्णगीतावली बरवै दोहावली सुगुन (सगुन=सगुनावली=रामाज्ञा प्रश्न) कवितावली सोहिलो मंगल।

सामान्य विमर्श—जिस प्रकार 'घटरामायन' में तुलसीदासजी का जीवन-वृत्त पुस्तक की समाप्ति पर दिया गया है ठीक उसी प्रकार 'गौतम चन्द्रिका' में भी वह अन्त में दिया गया है और जिस प्रकार पहला वृत्त भ्रामक है वैसा ही दूसरा भी। 'गौतम चन्द्रिका' की भाषा भी कहीं-कहीं ऐसी लचर है कि यह स्पष्ट नहीं होता कि लेखक क्या कहना चाहता है। अस्पष्टता कभी-कभी सुविदित भी होती है, जिससे मनमाना अर्थ ग्रहण किया जा सके। एक अंग्रेजी उक्ति के अनुसार महान् वह है जिसकी बात समझ में कम आवे। इससे गौतमचन्द्रिका-कार को महाकवि कह देना स्यात् अनुचित न होगा। स्वामी पुलक स्याम से

'इमहुँ गुरु आसन करि वासा। निमिदत करहुँ वेद अभ्यासा।

इस उद्धरण में 'इमहुँ' 'करहुँ' को आर्ष (आर्केइक) प्रयोग मान लेना चाहिए, क्योंकि लेखक 'साक्षर' तो थे ही वे स्वयं कहते हैं 'आखर कृष्णदत्त मम माहैं'। कवित्व परखने वाले उल्लेख तथा प्रकृत पद्य-वाक्य 'गौतम चन्द्रिका' की चन्द्रिका का अपहरण कर लेते हैं, जिनकी चर्चा अभी की जायगी।

लिपिकरण की विलक्षणता—श्री चौधरी पुन्नीसिंह ने 'गौतम चन्द्रिका'-प्रसूत तुलसी-विवरण को अपनी बहियों के दायें-बायें पार्श्वों पर नकल किया था। श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने चौधरी जी से पूछा था कि आपने बहियों पर क्यों लिखा? चौधरी जी ने उसका जो उत्तर दिया वह जमता नहीं। क्योंकि यदि पाण्डुलिपि ग्रन्थ-स्वामी के द्वारा दी गयी थी तो उसकी अनुपस्थिति में पुस्तक की प्रतिलिपि बहियों के हाशियों पर ही क्यों? वह तो यथावत् की जा सकती थी। यदि ग्रन्थ-स्वामी वहीं उपस्थित रहता था और उसे यह अभीष्ट न था कि ग्रन्थ की प्रतिलिपि की जाय जैसा कि चौधरी जी का कथन है तो वह उसे बही पर भी क्यों नकल करने देता? क्या ग्रन्थ-स्वामी सोता जाता रहा और बहुत समय तक?

निर्माण काल—'गौतम चन्द्रिका' में उल्लेख है कि यह पुस्तक गो० तुलसीदास की मृत्यु के दिन अर्थात् श्रावण कृष्णा तृतीया को संवत् १६८१ में, पूर्ण हुई। 'मूल गोसाईं चरित' में लिखा है

संवत सोरह सै असी, असी गंग के तीर।
श्रावण स्यामा तीज शनि तुलसी तज्यो शरीर।

इसके अनुसार तुलसीदासजी का स्वर्गारोहण श्रावण कृष्णा तृतीया शनिवार को संवत् १६८० में हुआ। 'गौतम चन्द्रिका' स्यात् रूपान्तर से इसी का समर्थन इस प्रकार करती प्रतीत होती है

संवत सोरह सै एकासी तुलसी बरनी कथा प्रकासी।
सावन कृष्णा तीजि तिथि आई, यह गौतम चन्द्रिका सुहाई।

प्रथम उद्धरण में वार का उल्लेख नहीं हुआ है, अतएव इस तिथि के सत्यापन का प्रश्न

ही नहीं उठता। किन्तु 'मूल गोसाईं चरित' प्रदत्त तुलसी-निधन-तिथि तो स्वतः ही अशुद्ध सिद्ध है जैसा कि निवेदन किया जा चुका है।

पूर्वापर-हीनता—'गौतम चन्द्रिका' में पूर्वापर-सम्बन्ध का निर्वाह नहीं है अतएव घटनाओं के इधर-उधर हो जाने का उत्तरदायित्व किस पर हो ?

पूर्वापर संगति रहित सब कथन भांति प्रमान।
जथा जथा हम चोरि मति लीनु सबै अनुमान॥

स्वयं 'चन्द्रिका' के ग्रन्थकार कृष्णदत्त मिश्र तो गोस्वामीजी के समकालीन ही नहीं, गुरु-भाई भी थे। यदि वे गोस्वामीजी के विषय में 'प्रत्यक्ष' के आधार संगति-पूर्वक पूर्वापर का निर्वाह कर देते तो लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष के पश्चात् किसी अनु-संधित्सु को 'अनुमान' की क्या आवश्यकता पड़ती? अनुमान तो अनुमान ही है।

गुरु भ्रातृत्व—तुलसीदास जी को कृष्णदत्त मिश्र ने अपना गुरु-भाई बताया है। काशी में शिव-केदार के निकट आनन्द कानन नामक वेदान्ती ब्रह्मचारी रहते थे उन्हीं से कृष्णदत्त पढ़ते थे। गोस्वामीजी भी यमुना तटस्थ यमुना नामक पत्नी को छोड़कर ब्रह्मचारी जी की शरण आकर और 'अबुधो गुरु हम कहँ भगिनाम' कहकर उनके शिष्य बन गये।

'आनन्द कानन' कौन ?—पर 'आनन्द कानन' से क्या तात्पर्य ग्रहण किया जाय? क्या यह नाम 'गौतम चन्द्रिका' के लेखक कृष्णदत्त मिश्र के गुरु का द्योतक है अथवा किसी वास-स्थान का? गुरु-क्रम से परिचय इस प्रकार है

ब्रह्मचर्य व्रत महत तपस्वी द्विज कुलदीप।
नामानंद कानन लसत शिव केदार समीप॥
गुरु देव वेदान्त के पारंगत श्रीमान।
ब्रह्मसुख आसा परम आनन्द रहहिं समान॥

× × ×

बहुतक शिष्य ब्रह्मचारीके। सुमति सुशील सकल सुचि नीके॥
पूर्व मध्य उत्तर मीमांसा। सुनहिं सकल गुरु पासा॥
आइ विपुल विद्या फल पावहिं। गुरु आनन्द कानन्हिं भावहिं॥
तुम्हहूँ गुरु आश्रम करि बासा। विधिवत पढ़हुँ वेद अभ्यासा॥

जब तुलसीदासजी के पहले गुरु नरहरि नर्मदा से काशी आये तो कृष्णदत्त के शब्द हैं :

अथ नव संवत नरहरी सुकरखेत निहार।
आरम्भक तुलसा भरी काशी पहुँचे धाइ॥
रमि रमाय आनन्दवन भए महा शिव लोक।
गुरुवर उचर त्याग करि तुलसी भए असोक॥

अतएव संदेह होता है कि 'आनन्द कानन' किसी व्यक्ति का नाम है अथवा किसी वन का? यदि कहा जाय कि आनन्द वन में निवास करने वाले व्यक्ति का तो प्रश्न उठता है कि क्या काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान मधुसूदन सरस्वती का ही दूसरा नाम आनन्द-कानन है क्योंकि 'गौतम चन्द्रिका' में निम्नलिखित श्लोक आनन्द कानन जी के मुख से निःसृत हुआ है

"सुनि आनन्द कानमहु आवै। मंजन मन जहि जब अभिलावै॥
आनंद कानने ह्यस्मिन् जंगमस्तुलसी तरु
कविता मंजरी यस्य राम-भ्रमर-भूषिता।"

जनश्रुति के अनुसार ही यह श्लोक मधुसूदन सरस्वती जी के मुख से तुलसीदासजी की प्रशंसा में अभिव्यक्त हुआ था, जिसका उल्लेख अनेक विद्वानों ने किया है, रामदास गौड़जी ने भी[1]। जो हो, 'गौतम चन्द्रिका' में तुलसी प्रशंसक मधुसूदन सरस्वती का उल्लेख विवरण-बाहुल्य में विद्यमान नहीं। उनके श्लोक को अन्य व्यक्ति के मुख से कहलाने का क्या अभिप्राय है यह कृष्णदत्त मिश्र जानते होंगे।

सरयू-घाघरा पर नरहरि—'गौतम चंद्रिका' के अनुसार तुलसीदासजी के पहले गुरु शाण्डिल्य-गोत्रीय नरहरि स्वामी थे जो सरयू घाघरा के संगम पर वराहक्षेत्र में निवास करते थे। इन्होंने नर्मदा तट, रामेश्वर आदि तीर्थों में विचरण किया और अन्त में काशी में आकर मोक्ष पाया। उसी समय कृष्णदत्त मिश्र के गुरु भी ब्रह्म-पद लीन हो गये और तुलसीदासजी ने भी उनके चरणों की विधिवत् सेवा की थी।

सरजू अपर घाघरी जोऊ। संगम तीर्थराज सम सोऊ
बसति कोटि एकादसि माही। तहाँ विपुल नरनारि नहाही
तहँवा सकल लोक विख्याता। सुकृत भक्तिपुंज निर्माता
शाण्डिल्य रिषि आश्रम जग ख्याता, जहँ-तहँ सरयू सिन्धु कर नाता
राम-भक्त भूमि अधिकारी। जगत पावन धर्म अनुसारी
शाण्डिल्य गोत्रज नरहरि स्वामी। ज्ञान निधान भक्ति पथ गामी
रमि नर्मदा कुटी बनवाए। रामेश्वरहिं पुनि पुनि जाए
करत परागम धर्म निरूपन। चाहे करन भक्ति जग रूपन
अब पथ संगम नरहरी सूकर खेत विहाइ
पारम्भक सुषमा भरी कासी पहुँचे आइ
रमि रमाय आनंदवन गए प्रभु सिवलोक
गुरु पद ध्यान हृदय धरि तुलसी भए असोक
मम गुरु माधव कृष्ण तहिं भए ब्रह्मपद लीन
तिन्ह पद की आराधना तुलसिहुँ विधिवत कीन।

इन उद्धरणों में वराह क्षेत्र की स्थिति सरयू घाघरा के संगम पर बताई गयी है, और नरहरिजी को शाण्डिल्य गोत्र का। सोरों-सामग्री के अनुसार सूकरक्षेत्र गंगातट पर और नरसिंहजी वशिष्ठ गोत्रीय और गृहस्थ थे। कृष्णदत्त अपने गुरु की महिमा के लिए विशेष चिंतित और स्यात् तुलसीदास जी के द्वारा उनका चरण-स्पर्श कराके आनन्द लाभ करते-से प्रतीत होते हैं। एक स्थान पर वे लिखते हैं

हेरेहुँ गुरु पद कोउ न पाएउँ। तकि तव चरन सरन मैं आएउँ।
अब एहि दास कहुँ पालित जानहु। अनुचरी गुरु हम कहँ प्रतिपालहु॥

---

1. 'रामचरित मानस की भूमिका' में तुलसी चरित चन्द्रिका पृष्ठ ११

अन्यत्र वे लिखते हैं

मम पुर भावन कृष्ण लहि भए ब्रह्म पर लीन।
तिन्ह पथ की आराधना तुलसिहिं बिदित कीन ॥

उस समय तुलसीदासजी २८ वर्ष के थे और उन्होंने तब तक रामायण का निर्माण नहीं किया था क्योंकि कृष्णदत्त के अनुसार 'राम चरित मानस' के रचना काल के समय गोस्वामीजी ६१ वर्ष के थे। सूकर-क्षेत्र की स्थिति को सरयू-घाघरा के संगम पर बताना उसका अन्य परिचय देना वहाँ सरयूपारीणों की बस्ती का उल्लेख करना और उस भूमि को राम प्रदत्त बताना 'गौतम चन्द्रिका'-कार की दूरदर्शिता को प्रकट करता है, क्योंकि उनके इस लेख से तुलसी के सम-सामयिक कवि केशव का (कविप्रिया, २, १३ में) यह लेख झूठा सिद्ध हो जाता है कि सनाढ्य ब्राह्मण रामचन्द्रजी के पुरोहित थे और उन्हें उनसे बहत्तर ग्राम दान में प्राप्त हुए थे एटा जिले के गंगातीरस्थ सूकरक्षेत्र का भी निराकरण स्वतः हो जाता है !!!

गौतम ब्राह्मण ?—कहीं तुलसीदासजी कृष्णदत्त मिश्र के कोई धर्म-सम्बन्धी तो न थे ? क्योंकि प्रथम मिलन के अवसर पर जब तुलसीदासजी को कृष्णदत्त के वंश का परिचय मिला तो तुलसीदासजी व्याकुल होकर बोल उठे थे—

हम कर जोरे शीश नवाए, माऊँ गोत कुल पाँड़े बताए
सुनी सहितवाणी वाणी मुनि, तुलसी व्याकुल बोल उठे पुनि
हा कुलदेव गौतमी माता तोहिं प्रति काम प्रसेउ कुल माता।

यहाँ 'गौतमी माता' से क्या तात्पर्य है ? क्या गौतमी तुलसीदासजी की माता थीं ? स्यात् नहीं क्योंकि कृष्णदत्त आगे लिखते हैं

राम कृपा तुलसी भनित तुलसी बिरवा सोइ
भै हुलसावति पुरजुनी, जल अंचल में बोइ।

तो क्या गोस्वामीजी गौतम ब्राह्मण थे ? कृष्णदत्त मिश्र ने स्पष्ट तो कुछ नहीं लिखा। किन्तु यदि ऐसा है तो यह कथन सोरों-सामग्री और राजापुर-सामग्री दोनों के ही विरुद्ध पड़ता है।

तीर्थाटन—जब कृष्णदत्त और तुलसीदासजी का प्रथम साक्षात्कार हुआ तो उनमें से एक तो १८ वर्ष के थे और दूसरे २८ के।

तुलसी वय अठबीस बताई, मम वय वस अब आठ गमाई।

एक ने गृहस्थाश्रम सँभाला तो दूसरे ने तीर्थाटन के लिये प्रस्थान किया

द्वितीयाश्रम आश्रित हम भए, तुलसी तीर्थाटन पथ गए।

यदि गोस्वामीजी २८ वर्ष की अवस्था में भागवत कामनाजी की शरण में आये और अनेक सुदूर तीर्थों में घूमने चले गये तो उन्हें गुरुसेवा के लिए अवसर बहुत कम प्राप्त हुआ होगा। तीर्थाटन में उन्हें एकान्त भी बहुत कम प्राप्त हुआ होगा जो तुलसी-जैसे सन्त के लिए परम आवश्यक था। 'गौतम चन्द्रिका' के अनुसार तो मार्ग में भजन-कीर्तन कथा-वार्ता वादविवाद सभी कुछ होता था और तीर्थाटन में उनके साथ अनेक व्यक्ति भी रहते थे। अस्तु, केवल तीन वर्षों में उन्होंने हरिद्वार, नर-नारायण, शिव-केदार, गंगोत्तरी यमुनोत्तरी, कैलाश मानसरोवर आदि दुर्गम

तीर्थों के दर्शन कर आये और लौटकर ११ वर्ष की अवस्था में, अर्थात् संवत् १६३१ में 'रामचरित मानस' की रचना की। तदनन्तर वे प्रयाग, नैमिषारण्य, काशी गंगासागर, रामेश्वर, कन्याकुमारी, द्वारका प्रभास सुदामाधाम स्यमन्तक कुरुक्षेत्र और पुष्कर पधारे थे। वे पुष्कर से वृन्दावन, नर्मदातट और गया होते हुए काशी लौट गये।

वल्लभ-प्रभाव—पुष्कर से तुलसीदास जी वृन्दावन आये थे।

> तहँ ते चलि वृन्दावन आए, तुलसी रवि जमुना नमनाए
>
> छवि निहार मन कामिनि सोभा निरखत वृन्दावन मन लोभा।

यमुना के लिए 'रवि' शब्द का प्रयोग कितना भावपूर्ण है। कृष्णदत्त के अनुसार 'यमुना' गोस्वामीजी की पत्नी थी जो यमुना-तट की रहने वाली थी। पता नहीं कृष्णदत्त क्या समझाना चाहते हैं वह राजापुर की थी अथवा वृन्दावन की? जो हो। गोस्वामीजी वृन्दावन में 'वल्लभ भक्ति' और 'भागवत' से परिपुष्ट हुए किन्तु गोस्वामीजी तो पहले से ही इन दोनों से प्रभावित हो चुके थे, जैसा कि 'रामचरित मानस' की रचना से भी स्पष्ट है। सोरों-सामग्री के अनुसार वल्लभाचार्यजी तुलसी के बचपन में एक-दो बार सोरों पधारे थे। कृष्णदत्त मिश्र ने इस आख्यायिका को भूल से अथवा जान बूझ कर छोड़ दिया है कि उनके निमित्त कृष्णमूर्ति ने राम के रूप में दर्शन दिया था। अस्तु। तुलसीदासजी वृन्दावन से काशी लौट गये और वहाँ उन्होंने (स्यात् कृष्णलीला के अनुकरण पर) रामलीला का प्रचार किया। वे भगवान् शिव कार्तिकेय विंदुमाधव और हनुमान्जी की पूजा करते थे और जब वे दीपावली की शोभा का गान करते तो कृष्णदत्त मिश्र नगाड़ा बजाते थे

> दीपावलि लखि, तुलसी गावत, कृष्णदत्त दुन्दुभी बजावत।

अन्यत्र तो कृष्णदत्त मिश्र ने अपने लिए उत्तम पुरुष का प्रयोग किया है।

सत्संगी—तीर्थाटन में गोस्वामी जी के साथ कई व्यक्ति रहते थे।

> पंडित कासी कवि कैलासू नैना भगत अजोमी दासू
>
> साधु वृद्ध अरु युवा अनेका तुलसी संग लगे गहि-टेका।

तुलसीदासजी के सत्संगियों की सूची इस प्रकार है

> पंडित कासीनाथ महामति। समरसिंह रजपूत धनपति
>
> गंगाराम परम सतसंगी। कवि कलास कवित्त उमंगी
>
> पन्नगी संगीत प्रवीना। भजन गोप हरिवंस कुलीना
>
> नगर सेठ श्रीराम सुजागर। तांबूली सियराम गुनागर
>
> नाथू नापित केवट रामू। अरु रैदास बेलावन नामू
>
> धोबी मोद हरो हरनामू। मांझी मीर, बसन कोलहारु
>
> कहाँ कहाँ लगि नाम गनाई। काको बिस्वनाथ प्रभुताई।

तुलसी साहब ने भी तुलसीदासजी के कुछ सत्संगियों का उल्लेख 'घट-रामायन' में किया है, जो 'गौतम चन्द्रिका' में नहीं है। इस विषय में दोनों के उल्लेख नितान्त भिन्न हैं। तुलसी साहब ने तुलसीदास के पट्ट शिष्य काशी-निवासी 'हिरदे अहीर' का उल्लेख 'घट-रामायन' में इस प्रकार किया है

हिरदे अहीर कासी का बासी, रहे राजापुर नौकर चाकी।
जेहु मति दिन दरसन को आवे, प्रीति बढ़ी हित कहा न जावे।
राति दिवस छिन-छिन रहे पाता, तुलसी बिना और नहिं भाता।
एक दिवस भइ ऐसी रीती, कासी भये बहुत दिन बीती
हमरा चित हिरदे में बासी, हम चलि भये अपमहुँ कासी।

किन्तु 'गौतम चंद्रिका' में 'हिरदे अहीर' का कोई उल्लेख नहीं, और तदुल्लिखित सत्संगियों का 'घट रामायण' में नहीं यद्यपि दोनों नामावलियों का सत्य होना भी असंभव नहीं)

भगवान—एक बार जब गंगाजी में बाढ़ आई थी तो कृष्णदत्त मिश्र के अनुसार, तुलसीदासजी ने अपनी प्रार्थना के द्वारा उसे शान्त किया था इससे गोस्वामी जी का गौरव बढ़ गया था। अतएव कोई आश्चर्य नहीं, यदि टोडर और कृष्णदत्त के पिता भगवान् भी गोस्वामीजी के भक्त और सत्संगी थे

ब्राह्मण कासीवार जो मम पितु तनु भगवान
टोडर सबन समान जो तुलसी बाम विताम।

कहने का तात्पर्य है कि पिता-पुत्र दोनों ही तुलसीदासजी के भक्त थे। पर भगवान् कब और कैसे भक्त हुए? तुलसीदासजी तो सीधे मधुभाटट से काशी आये थे और वहाँ उनका और कृष्णदत्त का जो वार्तालाप हुआ उससे स्पष्ट है कि कृष्णदत्त के माता-पिता मर चुके थे

हम लखि तुलसी पूछन लागे।
कुलपति बालक ऐसा बालक। तुम केहि कुलपालक के बालक।
हम कर जोरे सीस नवाए। नाउँ गोत कुल गाउँ बताए।
सुनी सहितुरसी बानी तुलि। तुलसी व्याकुल बोलि उठे पुनि।
हा कुल देव गौतमी माता। तोहि प्रति काल प्रतेह कुल माता।
पितु सपना सुधुमि मधु माई। अति परिवार विमुक्ति बनि आई।

श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र के शब्द हैं "श्री कृष्णदत्त ने अपना परिचय दिया और माता-पिता के स्वर्गवासी होने की बात कही" श्री कृष्णदत्त मिश्र के उक्त उद्धरण को स्पष्ट करते हैं कि साक्षात्कार के तुरन्त पश्चात् कृष्णदत्त मिश्र और तुलसीदासजी का परिचय हुआ और कृष्णदत्त मिश्र ने उन्हें अपने माता-पिता के दिवंगत होने की सूचना दी। यदि यह बात ठीक है तो कृष्णदत्त के पिता भगवान् किस प्रकार और कब तुलसीदासजी के सत्संगी सिद्ध होते हैं? किन्तु कृष्णदत्त ने अपने पिता की गणना तुलसीदासजी के सत्संगियों में की है; वे लिखते हैं

तुलसी सतसंगी बहुतेरे। तुलसी सकल राम के चेरे
ब्राह्मण कासीवार जो मम पितु तनु भगवान्
टोडर सकल समाज सो तुलसी बाप विताम।

यदि कल्पना की जाय कि प्रथम साक्षात्कार से पूर्व ही कृष्णदत्त के पिता भगवान् तुलसीदासजी के भक्त हो गए थे तो कब? कृष्णदत्त उनसे नितान्त अपरिचित क्यों थे? तब तक गोस्वामीजी ने 'रामचरितमानस' भी नहीं लिखा था, वे तो सीधे

यमुना तटस्थ यमुना नामक पल्ली को छोड़ कर आये हुए थे। अतएव द्वितीय कल्पना असम्बद्ध-सी प्रतीत होती है।

'मानस' की प्राप्ति—दूसरी आपत्ति और है। वह यह है कि न पिता ने और न सुपठित पुत्र ने ही 'रामचरित मानस' की प्रतिलिपि को तुलसीदासजी के जीवन काल में, लेने की चिन्ता की। वे कैसे भक्त थे? वह रचना तो ऐसे सन्त की थी जिसकी प्रार्थना से गंगाजी की बाढ़ भी शान्त हो गयी थी और जिसके साथ उनकी घनिष्ठता भी थी। आश्चर्य है कि कृष्णदत्त मिश्र को 'रामचरित मानस' की उपलब्धि के लिए तोडर (टोडर) का घर टटोलना पड़ा।

तोडर घर से पुस्तक पाई रामचरित मानस अपनाई।

यह हाविड़ी प्राणायाम क्यों? उसकी प्राप्ति गोस्वामीजी से सीधे क्यों नहीं?

भ्रान्त संवत्—कृष्णदत्त मिश्र ने लिखा है कि १६६८ वि० के पश्चात् तुलसीदासजी को बाहु-पीड़ा हुई थी। किन्तु तुलसीदासजी के ही शब्दों में यह पीड़ा यहाँ दशविपति के अन्तर्गत मीनस्थ शनि में हुई

बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बड़ो बारानसी। क० ७, १८०
एक तो कराल कलिकाल सूल मूल तामें
कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की। क० ७ १७७

अतः यह सिद्ध है कि तुलसीदासजी का यह संकट-समय संवत् १६२१ से १६४२ तक बीस वर्ष रहा और इसी में मीन के शनि भी थे। कृष्णदत्त मिश्र तो गोस्वामी जी के गुरु भ्राता और सजातीय होने का दावा करते हैं, उनकी उक्ति तथ्य-पूर्ण होनी चाहिए थी किन्तु उनके अनुसार १६६८ वि० के पश्चात्

बर्ष था बीसी विधि घोरी, भई सनि मीन बसलक होरी।

जो ठीक नहीं है।[1] घनिष्ठता का यह कैसा दावा?

मौन?—दीर्घ और घनिष्ठ परिचय होने पर भी कृष्णदत्तजी गो० तुलसीदास के जन्म-स्थान पितृ-नाम और वंश-परिचय के सम्बन्ध में नितान्त मौन हैं, यद्यपि उन्होंने अन्य विवरणों के उपस्थित करने में कोई संकोच नहीं किया है।

विवेचन का निष्कर्ष—'गौतम चन्द्रिका' के तुलसी-विवरण की उपलब्धि संदेहातीत नहीं है। 'गौतम चन्द्रिका'-कार ने बड़ी समझ से काम लिया है। उन्होंने संवत् पक्ष और तिथि का प्रयोग केवल एक बार किया है उसमें भी 'वार' का त्याग किया है। बुद्धिमत्ता की दूसरी बात यह है कि उन्होंने घटनाओं के पूर्वापर सम्बन्ध के उत्तरदायित्व का भार ही अपने सिर से हटा दिया। फिर भी भूल से उन्होंने यह लिख ही दिया कि सं० १६६८ के पश्चात् बाहुबीसी और मीन की सनीचरी का अवसान हुआ, यह प्रमाद-ग्राह 'चन्द्रिका' को ग्रस कर आत्मसात् कर बैठा है।

---

१ विशेष विवरण के लिए देखिए अध्याय 'पाठान्तर और रचना-समय'

(घ) तुलसी-प्रकाश

(सोरों-सामग्री का दिठौना)

परिचय—'तुलसी-प्रकाश' की मूल पाण्डु प्रति मुझे देखने को नहीं मिली। हाँ उसके कुछ छन्द कुशलपदीप की मासठों की भाँति मुझे संग्रह मिलते रहे, जिन्हें मैं यथा-समय प्रकाश में लाता रहा। सन् १९४८ ई० में कुछ तो 'नवीन भारत' में प्रकाशित हुए और कुछ 'विकास भारत' में भी। तब तक प्राप्त सभी छन्द 'तुलसीदास का दरबार' नामक ग्रन्थ में सन् १९४९ ई० में संकलित हुए।

उक्त सभी छन्द मुझे श्री भद्रदत्त शर्मा से प्राप्त हुए थे और उन्हीं से सुना भी कि 'तुलसी-प्रकाश' की प्रति किन्हीं साधु रामदास ब्रह्मचारी के पास है जो गंगा तीरस्थ गढ़िया रसूलपुर (जिला बदायूँ) में आते रहते थे। तब तक प्रकाशित सभी छन्द एटा के स्व० बाँकेलाल जी से भद्रदत्त जी को उपलब्ध हुए थे जिसका उल्लेख मैं यथा-समय करता रहा हूँ। पर इस प्रश्न का समाधान अभी तक नहीं हो पाया कि बाँकेलाल जी ने इतने ही छन्दों का संग्रह क्यों किया और गोस्वामी तुलसीदास के जन्मस्थान एवं जन्म-काल आदि महत्त्वपूर्ण बातों को क्यों छोड़ दिया। इसी बीच मैं गोस्वामीजी के दार्शनिक विचारों के अनुसन्धान में मेरे दत्तचित्त होने से यह जिज्ञासा शान्त सी हो गयी।

किन्तु वैद्यभूषण पं० भद्रदत्त शर्मा का एक लेख १७ अगस्त १९५१ को 'नवीन भारत' में प्रकाशित हुआ जिसका शीर्षक था 'श्री गोस्वामी तुलसीदासजी ने राजापुर की नींव डाली'। उसमें भाषा के विरुद्ध अविनाशराय का १९६ वाँ छन्द 'राजत राजा पुरी' 'नहीं है' गया दृष्टिगोचर हुआ। अतः मैंने वैद्यभूषण जी से आग्रहपूर्वक कहा कि आप समस्त पुस्तक को क्यों नहीं प्रकाशित कर देते सोरों सामग्री तो पहले से ही बदनाम है और अकारण कलंकित होगी। फलतः 'तुलसी प्रकाश' का पुनर्अवतार हुआ।

बाह्य परीक्षण—उक्त 'तुलसी प्रकाश' के दो संस्करण लक्ष्मी प्रेस कासगंज से मुद्रित हुए हैं। इसका प्रथम संस्करण आयुर्वेदाचार्य श्री वेदव्रत शर्मा ने दिसम्बर १९५१ में प्रकाशित किया। लगभग एक मास पश्चात् उसके द्वितीय संस्करण का आगमन हुआ। सोरों की तुलसी-समिति ने इसका प्रकाशन और श्री भद्रदत्त शर्मा ने सम्पादन किया तथा श्री गोविन्द वल्लभ भट्ट ने इसका परिचय दिया। जहाँ तक इस पुस्तक के संस्करणों का सम्बन्ध है वहाँ तक भूमिकादि और शीर्षक पृष्ठों को छोड़कर दोनों में कोई अन्तर नहीं। ये एक ही संस्करण के दो विभाजन हैं।

पाठ-भेद—पुस्तक का प्रथम संस्करण १९५१ ई० के दिसम्बर मास में और उसके तथाकथित द्वितीय संस्करण का सूत्रपात श्री गोविन्दवल्लभ भट्ट की परिचयात्मक भूमिका के अनुसार १ जनवरी १९५४ को हो चुका था। पुस्तक के दोनों ही मुद्रित संस्करणों तथा उसकी पाण्डु लिपि से श्री भद्रदत्त जी का सम्बन्ध रह चुका था। परन्तु इन तथाकथित संस्करणों में और तुलसी प्रकाश की पाण्डु-लिपि के संयुक्त अनुसन्धाता पं० भद्रदत्त शर्मा के उन लेख-वर्ती पाठों में अन्तर है जो 'तुलसी प्रकाश'

के सम्बन्ध में पीछे प्रकाशित हुए। वर्मा जी का एक लेख था 'गोस्वामीजी ने राजापुर बसाया' दूसरा था 'गोस्वामी तुलसीदास के जीवन से सम्बन्धित तिथियाँ'। ये दोनों लेख 'विशाल भारत' के फरवरी और मई १९५४ ई० के अंकों में प्रकाशित हुए हैं। पहले लेख को 'ब्रज भारती' में भी स्थान मिला है। वर्मा जी के उक्त प्रथम लेख में गोस्वामी तुलसीदास और अविनाशराय की भेंट का शक संवत् इस प्रकार उद्धृत किया गया है—

नग्न वाम तत्व ईस अर्क्क स्थित गौमि जीव
फेरि किय संग एक मास अविनाश राय।

किन्तु 'तुलसी-प्रकाश' के मुद्रित संस्करणों में यह पाठ इस प्रकार है—

नग्न वाग तत्व ईस वर्षस्थित गौमि कच्छ
जीव करि जीव संग १ मास अविनाश राय।

और इसका भी पाठान्तर दोनों संस्करणों की पाद टिप्पणियों में इस प्रकार है—

नग्न वाम तत्व सोम कार्तिक शप्य गौमि
सोम करि जीव तब मास अविनाशराय।

पाठ-भेद की संगति नहीं मिलती। 'तुलसी प्रकाश' के मुद्रित तथाकथित दोनों संस्करण तो जनवरी १९५४ ई० तक प्रकाशित हो चुके थे। प्रथम लेख में जो फरवरी १९५४ में प्रकाशित हुआ था और दूसरे लेख में भी जो 'तुलसी प्रकाश' से सम्बन्ध रखता है पाठ भेद की ओर कोई संकेत नहीं किया गया। शुद्ध पाठ कौनसा है—पहला कि पिछला? यदि पहला तो पिछले का क्या आधार? यदि पिछला तो पहला कहाँ से प्राप्त हुआ? पहला पाठ तो प्राप्य असल की नकल है। प्रेस की भूल हो ऐसा संभव नहीं क्योंकि 'विशाल भारत' और 'ब्रज भारती' दोनों में ही एकसा पाठ है और वेदवती से जो पाठ मुझे २९ फरवरी १९५४ के पश्चात् प्राप्त हुआ था वह भी पिछले के ही अनुसार है। पाठान्तर वाली दो मूल प्रतियों का कहीं उल्लेख नहीं। अतएव यह पाठ भेद पाठकों के लिए प्रहेलिका है।

तिथि-समारोह—अविनाशराय ने चौबीस तिथियाँ शक संवत् में दी हैं। पच्चीसवीं 'तुलसी-प्रकाश' के प्रतिलिपिकार की है। वे इस प्रकार हैं —

(१) तुलसी जन्म श्रावण शुक्ला सप्तमी शुक्रवार १४३३ अर्थात् १ अगस्त १५११ ई०

(२) गुरु नृसिंह-दर्शन आषाढ़ शुक्ला १५ बुधवार, १४४१

(३) तुलसी विवाह : कार्तिक शुक्ला ११ बुधवार १४५४ अर्थात् ७ नवम्बर, १५३२ ई०

(४) पितामही-मृत्यु फाल्गुन शुक्ला १३ शुक्रवार १४६२

(५) तारक-जन्म कार्तिक शुक्ला १० बुध १४६४ अर्थात् १८ अक्तूबर, १५४२ ई०

(६) रत्नावली के भ्राता का आगमन १४६६ शक संवत्

(७) गृह-त्याग भाद्रपद कृष्णा ३ शुक्रवार १४६९ अर्थात् २ सितम्बर १५४७ ई०

(८) रत्नावली का योगमार्गवास वैशाख शुक्ला ३ शुक्रवार १५७१ अर्थात् २ अप्रैल १५५७

(९) तुलसीदास का द्वितीय बार अयोध्यागमन चैत्र शुक्ला ५ गुरु १५८० अर्थात् २४ मार्च १५५८ ई०

(१०) नन्ददास-वैराग्य-सूचना ज्येष्ठ शुक्ला ७ गुरु १५८१ अर्थात् ११ मई १५७१ ई०

(११) तुलसी की मथुरा-यात्रा माघ शुक्ला ५ मंगलवार १५९३

(१२) तुलसी का प्रयाग और अयोध्या में भ्रमण १५९५

(१३) रामचरितमानस प्रारम्भ १५९९ चैत्र शुक्ला ९ मंगल अर्थात् १० मार्च १५७४ ई०

(१४) रामचरितमानस की पूर्ति ज्येष्ठ कृष्णा ३ शुक्रवार १६००, अर्थात् ११ मई १५७८ ई०

(१५) चित्रकूटवास ज्येष्ठ १६०९

(१६) राजासाहु की कुटी में निवास ज्येष्ठ शुक्ला ७ शनिवार १६ ९ अर्थात् ३ जून १५८७

(१७) अविनाशराय का राजासाहु की कुटी में प्रवेश माघ कृष्णा ५ रविवार १६१७ अर्थात् ८ फरवरी १५६१ ई०

(१८) राजासाहु की मृत्यु फाल्गुन शुक्ला २ शुक्रवार १६१७ अर्थात् २० फरवरी १५६१ ई०

(१९) अविनाशराय का पुनर्मिलन कार्तिक शुक्ला ९ बुधवार १६१९

(२०) अविनाशराय का पुनर्मिलन श्रावण कृष्णा १० सोमवार १६२२

(२१) अविनाशराय की तीर्थयात्रा भाद्रपद शुक्ला १५ शनिवार १६२८ अर्थात् ६ सितम्बर १६ १ ई०

(२२) अविनाशराय का काशी में आगमन कार्तिक शुक्ला १५ बुधवार १६३४ अर्थात् २९ अक्तूबर १६१२ ई०

(२३) हरसिंह का देह-त्याग वैशाख कृष्णा ७ शनिवार १६३५, अर्थात् १ मई १६११ ई०

(२४) 'तुलसी प्रकाश' की पूर्ति पौष कृष्णा २ शुक्रवार १६४२

(२५) ज्येष्ठ कृष्णा १० अमावास्या सोमवार १६५९ वि० अर्थात् २८ जून १८०२ ई०

तिथि-प्रक्षेप—अविनाशराय प्रदत्त चौबीस तिथियों में से तीन में तिथिवार नहीं दिये गये अतएव उनके सत्यापन का प्रश्न नहीं उठता। शेष इक्कीस में से छः तिथियाँ सत्यापित नहीं होतीं। जिस तिथि-वार को अविनाशराय ने गोस्वामी तुलसीदास से भेंट की वह गणना से अशुद्ध है, क्योंकि उस दिन सोमवार था बुधवार नहीं। आश्चर्य है कि जो व्यक्ति औरों के सम्बन्ध में तिथि-वार दे वह स्वयं अपने सम्बन्ध में भूल करे। इसके अतिरिक्त जैसा कि निवेदन किया जा चुका है पाँच और तिथियाँ गणना से ठीक नहीं। इनमें से एक है आषाढ़ पूर्णिमा शुक्रवार शक संवत् १४४१,

अर्थात् जिस दिन गोस्वामीजी को अपने गुरु नृसिंह के दर्शन हुए। दूसरी है फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी शुक्रवार शक संवत् १४१२ अर्थात् जिस दिन गोस्वामीजी की पितामही का देहावसान हुआ। तीसरी है माघ शुक्ला पंचमी मंगलवार शक संवत् १४१९ अर्थात् जिस दिन गोस्वामीजी मथुरा पधारे थे।

उक्त अन्तिम तीनों तिथियाँ प्रचलित संवत् प्रणाली के और अन्य सब विगत प्रणाली के अनुसार हैं। अतएव यह विचारणीय है कि कोई लेखक अपने उसी ग्रन्थ में विगत और प्रचलित दोनों ही परिपाटियों का आश्रय लेकर संवतों का उल्लेख करे। अविनाशराय को पूर्ण स्वतन्त्रता थी कि वे शक संवतों का उल्लेख करते समय विगत प्रणाली का आश्रय लेते अथवा प्रचलित का। किन्तु उन्हें यह उचित न था कि संवतों के उल्लेख में कभी इसका आश्रय लेते और कभी उसका।

चौथी प्रमुख तिथि को अविनाशराय का गोस्वामीजी से पुनर्मिलन हुआ। पाँचवीं प्रमुख तिथि वह है जिस दिन अविनाशराय ने अपनी रचना 'तुलसी-प्रकाश' को पूर्ण किया। वह है पौष कृष्णा द्वितीया शुक्रवार शक संवत् १५८२। ये तिथियाँ तभी ठीक मानी जा सकती हैं जब संवत् को पूर्णिमान्त मानें। किन्तु आपत्ति होगी कि अन्य सब तिथियों के सम्बन्ध में संवत् को अमान्त क्यों माना जाय? एक ही स्थान और युग के संवतों के निर्धारण में पूर्णिमान्त अथवा अमान्त किसी एक ही प्रणाली का अवलम्बन संगत प्रतीत होता है।

डायरी की भूल-चूक—सुनते हैं कि भारतीयों में डायरी अर्थात् दैनन्दिनी रखने की प्रथा न थी। जो हो अविनाशराय ने इस भ्रम को दूर करने का प्रयास किया है। उन्होंने तिथियों का बाजार लगा दिया है और गोस्वामीजी के सम्बन्ध में संवत्, तिथि और वार दिये हैं, और कभी-कभी तो वे नक्षत्र का उल्लेख करने से भी न चूके। तुलसीदासजी का बस्ता कब उत्पन्न हुआ कब दिवंगत? उनकी दादी ने कब स्वर्ग-लाभ किया? तुलसीदासजी और नन्ददासजी ने यात्रा के लिए कब प्रस्थान किया? आदि छोटी-छोटी घटनाओं को भी वे नहीं भूले। किन्तु उन्हें नन्ददास और रत्नावली के जन्म-मृत्यु के तथा 'रामचरित मानस' और 'कृष्ण गीतावली' को छोड़ अन्य सब रचनाओं से सम्बन्ध रखने वाले संवत् कैसे विस्मृत हो गये? आश्चर्य है कि उन्होंने अपने से सम्बन्ध रखने वाली तिथियों में भी भूल की। इस उल्लेख की विशेष आवश्यकता भी क्या थी कि वे अमुक तिथियों को गोस्वामीजी से और अमुक को राजा साधु से मिले। बड़े बाजार में सभी के मतलब की सभी प्रकार की वस्तुएँ उपलब्ध रहती हैं वैसे ही अविनाशराय ने तिथियों का जो बाजार लगाया है उसमें प्रचलित विगत अमान्त, पूर्णिमान्त संवत्प्रणालियों का नयनाभिराम प्रदर्शन है।

अभीष्ट-साधन—अविनाशरायजी गोस्वामी तुलसीदास का जन्म-स्थान सोरों के योग मार्ग मोहल्ले में स्थापित कर कुछ व्यक्तियों की साभिप्राय कल्पना की पुष्टि अवश्य करते हैं। किन्तु सोरों की जो सामग्री 'तुलसी प्रकाश' के उद्भव से पूर्व प्रकाशित हो चुकी थी उसके अनुसार गोस्वामीजी का निवास तो सोरों के योगमार्ग मोहल्ले में अवश्य था पर उनका जन्म-स्थान उस सामग्री के अनुसार रामपुर नामक ग्राम था जो सोरों से लगभग दो मील पूर्व है। इस विषय में मुरलीधर चतुर्वेदी के

निम्नलिखित वे वचन स्पष्ट हैं जो उन्होंने १८२१ वि० में लिखे थे—

तबहिं मीत इक दई प्रास पुत्र नृसिंह के पाउ पास ।।९।।
स्मारत वैष्णव सो पुनीत सकल वेद आगम प्रवीत ।।१०।।
बस तीर्थ छिप पाठग्राम तहाँ पढ़ाकत विपुल वास ।।११।।
तहाँ रामपुर के समसदम सुकुल वंशवर हैं सुखसदम ।।१२।।
तुलसिदास अरु नंददास पढ़त करत विद्या विलास ।।१३।।
एक पितामह पौत्र दोउ चंद्रहास लघु अमर सोउ ।।१४।।
तुलसी आत्माराम पूत अवर हुलासी के प्रसूत ।।१५।।
गये दोउ ते अमर लोक यसी पौत्रहिं करि ससोक ।।१६।।
बसत जोग मारग समीप बिप्रबंस कर दिव्यदीप ।।१७।।

(रत्नावली चरित)

अन्यं—एक पितामह सदन दोउ जनमे बुधि राशी ।
दोउ एकहिं गुरु नृसिंह गुरु ग्रामवासी ।
तुलसिदास नन्ददास भये हैं गुरुभोपारे ।
एक भजे सियराम एक घनश्याम पुकारे ।
एक बसे सो रामपुर एक श्यामपुर में रहे ।
एक राम गाथा लिखी एक भागवत पद कहे ।।१।।
एक पिता के पूत दोउ बस राम मुरारी ।
मुरलि धरन इक धर्यो एक धनु सुभग धारी ।
नीलांबर तनु एक एक पीतांबर धारी ।
दोउन चरित उदार रह्यो जस प्यारो-प्यारो ।
इमि वर्णन्य चरित जस प्रकृति जन-जन कीन समान वय ।
भ्रमि एक हु पृथ नहिं लिख स्वभाव अनुरूप मय ।।२।।

—रत्नावलीचरित (परिशिष्ट)

'तुलसी-प्रकाश' अथवा 'तुलसीतत्व प्रकाश' ?—अविनाशराय की रचना का वास्तविक नाम क्या है—'तुलसी प्रकाश' अथवा 'तुलसी तत्त्व प्रकाश' ? सन् १९३१ ई० के अक्तूबर में, 'कल्याण' में एक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसका शीर्षक था 'श्री गोस्वामीजी के नामराशि' और लेखक थे अयोध्यावासी म० बालकराम विनायक। उसमें विनायकजी ने किसी 'तुलसी तत्त्व प्रकाश' का उल्लेख किया था। 'तुलसी-प्रकाश' के दोनों संस्करणों के सम्पादकों ने इस ओर इंगित किया है। 'तुलसी प्रकाश' के १९८वें छन्द में 'तुलसी प्रकाश' का और १९९वें में 'तुलसी-तत्त्व प्रकाश' का स्पष्ट नामोल्लेख हुआ है। यदि वाल्मीकिजी रामजन्म से पहले ही रामगाथा लिख सकते थे तो क्या अविनाशरायजी म० विनायकराय के जन्म से पहले शतियों पूर्व विनायकरायजी की पुष्टि न कर सकते थे। पता नहीं इस-नामकरण की क्या आवश्यकता पड़ी।

नवीन पुरातन का मिश्रण—हो सकता है 'तुलसी प्रकाश' नितान्त नवीन रचना न हो नवीन-पुरातन का सम्मिश्रण हो। पर कितना नवीन और कितना

पुरातन यह तो उन वैद्यभूषण और आयुर्वेदाचार्य की ऐतिहासिकता का थर्मामीटर कहा सकता है जिनके परामर्श से राजा साहु रामपुर की पर्णकुटी के रोगियों की चिकित्सा और परिचर्या करते थे। १५८वें छन्द में लिखा है—

मिच्छा नहिं लावें कवि साधु आइ जाये कोउ
नेह सों जिमावें भलें साधु भरत उपास
रोगी होइ साधु कोउ साधु उपचार करैं
बुधि वृद्धि वैदनु घोटि प्यावें अमल पास।

१७२ में छन्द का निम्नलिखित पाठान्तर मूलसूत्रधार के निमित्त स्पष्ट प्रक्षेप है

नभ नभ सर सोम कातिक प्रथम भौमि
सोम केरि कौन सब मास अविनाशराय।

तुलसीदासजी का एवं अपना परिचय देने के पश्चात् अविनाशराय के निम्नलिखित छन्द को अप्रकरण प्रक्षेप ही कहा जा सकता है—

मन्द दास चंद्रहास सुत कृष्णदास बल चंद
गए बुलावन बार बहु श्री तुलसिहिं मंदमंद ॥११२॥

इसी प्रकार पुष्पिका के अन्त में १९९, २० और २०१ संख्यक छंद अनावश्यक प्रक्षेप हैं जो 'तुलसी-प्रकाश' और 'तुलसी तत्त्व प्रकाश' के तादात्म्य को सिद्ध करने के निमित्त निर्मित प्रतीत होते हैं। महाकवि कालिदास की उक्ति है कि पुरानी सभी बातें अच्छी नहीं होतीं और न नवीन सभी बातें अवद्य होती हैं। अविनाशरायजी ने भी यह अच्छा ही किया कि उन्होंने एक ऐसे काव्य की सृष्टि कर डाली जो नवीन होता हुआ भी पुरातन है और पुरातन होता हुआ भी नवीन है। उन्होंने एक ऐतिहासिक महापुरुष का जीवन-वृत्त ऐसे रूप में उपस्थित किया है जो कालविक की उपेक्षा कर सकता है। अविनाशराय ने 'तुलसी चरित' के कर्त्ता बाबा रघुवरदास तथा 'मूल गोसाईं चरित' के रचयिता बाबा वेणीमाधवदास को आधा वैसी और इतिहास-व्यतिक्रम में जो करारा मात चखाया उसके लिए वे आश्चर्य के पात्र हैं।

साम्याभास— रामचरित मानस' में गोस्वामीजी ने भरतजी की प्रशस्ति में जो स्मरणीय पद्य लिखे हैं वे हैं

जो न होत जग जन्म भरत को, सकल धरम धुर धरनि धरत को
(२, २१२, १)
होत न भूतल भाउ भरत को, अचर सचर चर अचर करत को।
(२ २३० ४)
सियराम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम विषम व्रत आचरत को।
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को।
(अयोध्या कांड का अन्तिम छंद)

यह अविनाशराय ने भी गोस्वामीजी के लिए लिख दिया

होत न जो तुलसी जग में हिंदुआन को कानहिं को करतो।

बेद पुरातन की बरचा करता अविश्वास को आवरतो।
मोहमयी मदिरा मद मत्त अचेतन चेतन को करतो।
मानस राम पियूष पिआइ सो जीवन-जीवन को भरतो ॥११७॥

अविनाशराय को यह गौरव प्राप्त था कि वे अकबर जैसे सम्राट् के काल में विराजमान थे। वे लिखते हैं—

अविनाश अकब्बर से अवनीस रहै जिनकी जग कीरति कहानी ॥११८॥

हिन्दुत्व के हामी और अकबर के प्रशंसक अविनाशराय की उक्त प्रशस्ति में पाठकों को विरोधाभास अथवा नवीनताभास भले ही मिले किन्तु उन्हें इस बात से संतोष होना चाहिए कि साम्य का आधार तो प्राचीन है। स्यात् अविनाशराय को इस 'क्रेडिट्' की आशा रही होगी कि उन्होंने गोस्वामीजी को जो 'ट्रिब्यूट्स' अर्पित किये हैं वे उनके कल्पना-बमबिहारी उत्तर-कालीन आलोचकों के लिए पथ-प्रदर्शक रहेंगे।

'सूर सूर तुलसी ससी' के आलोचक से कदाचित् पहले ही अविनाशराय ने लिख दिया था—

छहरै ससीलौं छिति छेम में छपाकर सो ॥११८॥

गोस्वामीजी की गणना आजकल विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवियों में की जा रही है। उनके रामचरितमानस का अनुवाद ग्राउज, हिल और ऐटकिंस अंग्रेजी में कर चुके हैं और एमेन्सी बारान्निकोव ने रूसी भाषा में किया है। ग्रियर्सन ने तथा अन्य अनेक विदेशियों ने तुलसी के गीत गाये हैं। इस प्रकार गोस्वामीजी की रचनाओं का गुरुत्व यूरोप और अमरीका में आँका जा रहा है। किन्तु अविनाशराय तो शताब्दियों पूर्व गोस्वामीजी के लिए भविष्यवाणी कर गये हैं

धनि जन्म भए तुलसी जग में जस कीरति जासु रहै चिर पाई ॥११९॥

अतएव कहा जा सकता है कि अविनाशराय केवल डायरी-कार और कुशल पद्यकार ही नहीं थे किन्तु ज्योतिष के चमत्कार से भी चमत्कृत थे और आज उनकी रचना शोरों की सामग्री में डिठौना के रूप से सुशोभित है।

निष्कर्ष—उक्त कारणों से मैं 'तुलसी प्रकाश' को अप्रामाणिक ही समझता हूँ। इसके कुछ अंश अवश्य प्राचीन लगते हैं, पर पुस्तक में मिलावट अवश्य है। इसका कितना अंश प्रामाणिक और कितना अप्रामाणिक है, इसे छाँट देने में मैं इस समय अपने को असमर्थ पाता हूँ। इसमें तुलसीदासजी की जो जन्म-तिथि दी गयी है वह गणना से तो ठीक है जिसकी चर्चा किंचित् विस्तार से इसी ग्रंथ में अन्यत्र की जायगी। इसके अतिरिक्त इसमें कुछ ऐसी सूचनाएँ भी हैं जिनसे तुलसी-जीवन पर विशेष प्रकाश पड़ने की सम्भावना है। आशा है विद्वानों के गंभीर विवेचन के निमित्त 'तुलसी प्रकाश' पुस्तक का सार दे देना तथा प्रस्तुत ग्रन्थ के आगामी पृष्ठों में उसके कतिपय स्थलों का यथा-स्थान तुलनात्मक उल्लेख कर देना अवांछनीय न होगा।

'तुलसी-प्रकाश' का सार—अविनाशराय के अनुसार, गोस्वामी जी के नाना अमोध्यानाथ दुबे गंगा के दक्षिण तट पर स्थित तारी ग्राम में निवास करते थे। गोत्र था कौडिन्य और व्यवसाय ज्योतिष। पत्नी दिवंगत हो चुकी थी पर उनकी परठ विधवा

भगिनी सरस्वती साथ रहती थी। पुत्र तो कई हुए पर हुलसी कन्या ही जीवित रही जिसका विवाह आत्माराम शुक्ल से हुआ। विवाह के कुछ वर्ष पश्चात् ज्योतिषी जी ने अपने जामाता को बुलवाया और उन्हें अपनी सम्पत्ति अर्पण कर स्वर्गारोहण किया।

आत्माराम जी के पिता पं० सच्चिदानन्द भारद्वाज गोत्रीय शुक्ल-समाख्य ब्राह्मण वेद सनातन-पंथ के तथा तारी और सोरों के निकट रामपुर ग्राम के निवासी थे वे अपने छोटे पुत्र जीवाराम का विवाह करने के पश्चात् दिवंगत हुए। जीवाराम की माता और पत्नी चम्पा में एक दिन वाग्युद्ध हो गया जिसके फलस्वरूप माता ने प्रण-पूर्वक निश्चय किया कि मैं अब चम्पा के साथ न रहूँगी।

सोरों के योगमार्ग मोहल्ले में आत्माराम की ननसाल का गृह सूना पड़ा हुआ था वह रामौरियों का घर कहलाता था। आत्माराम अपनी माता और पत्नी के सहित वहाँ जा बसे और प्रसन्नता-पूर्वक रहने लगे। कुछ ही दिन पीछे वहाँ १५३१ पर श्रावण शुक्ला सप्तमी बुधवार को विशाखा नक्षत्र के द्वितीय चरण में तुलसीदास का जन्म हुआ। समारोहपूर्वक उत्सव मनाया गया। कुल-गुरु श्रीमर्दकर ने आवश्यक संस्कार कराये। आत्माराम जी के पेट में तीन दिन बड़ी पीड़ा रही पर भगवान् रामचन्द्र की कृपा से शान्त हो गयी। पीड़ा-शान्ति के पश्चात् प्रातःकाल तारी में सरस्वती को बधाई भेजी गयी और उसने प्रसन्नतापूर्वक पारितोषिक भेजा।

शुभ दिन नामकरण हुआ। माता हुलसी तुलसी जी की पूजा किया करती थी अतएव बालक का नाम तुलसीदास रखा गया। जब तुलसीदास दस मास के हुए तो कुछ शब्द बोलने लगे।

इधर तारी में सरस्वती की मृत्यु हो गयी। सूचना पाकर दम्पति वहाँ गये श्राद्ध तथा ब्राह्मण भोजन कराया। लौटने का विचार हो रहा था कि हुलसी को अचानक हैजा (विषूचिका रोग) हो गया और वह चल बसी। आत्माराम जी उसका भी संस्कार कर पुत्रसहित सोरों लौट आये।

शोकाकुल तो थे ही, आत्माराम को ज्वर हो आया और अर्धमास दुःख में काट वे भी चल बसे। उन की माता, भाई तथा चम्पा सभी दुःखी थे। जीवाराम ने माता से रामपुर चलने के लिए कहा और चम्पा ने क्षमा माँगी पर माता सहमत न हुईं। अतएव जीवाराम नित्य सोरों आकर तुलसीदास को खिलाकर माता का कुशल-क्षेम ले जाते थे। १॥ वर्ष पश्चात् चम्पा ने नन्ददास को जन्म दिया। नामकरण हुआ और तुलसीदास की पट्टी भी पुजी। इसके दो वर्ष दस मास पश्चात् चन्द्रहास संसार में आये, पर जीवाराम जी रोगी हो अब वे पंचत्व को प्राप्त हुए। उनकी मृत्यु के पश्चात् घोर दारिद्र्य ने परिवार को आ घेरा, खेती-बारी धन धान्य पूर्व-वैभव सब नष्ट हो गया। चाचा की मृत्यु से तुलसीदास को बड़ा शोक हुआ। दादी उन्हें सान्त्वना देती कि राम भला करेंगे तू राम को भज। तुलसीदास राम-राम कहते जिससे लोग उन्हें राम-बोला कहने लगे। जो कभी अच्छा भोजन किया करते थे उन्हें अब कभी-कभी अधपेट ही भोजन मिलता, वे फटे-पुराने कपड़े पहनते साथियों से याचना करते पर कोई धैर्य न देता।

एक सं० १५४१ की आषाढ़ पूर्णिमा बुधवार को गंगा किनारे नृसिंह जी ने

त्रिवेणी में स्नान कर उन्होंने भरद्वाज जी के आश्रम का अवलोकन किया। वहाँ से वे चित्रकूट पहुँच कर राम के भजन में तल्लीन हो गये। उन्होंने राम भक्ति के निमित्त काशीपुरी में भगवान् शंकर के दर्शन किये तत्पश्चात् अनेक गिरि-वनों में बैठ कर सीताराम का भजन किया अनेक व्रत-जप-तप साधे एवं शीतोष्ण का सहन किया।

चैत्र शुक्ला ५ बुधवार १४८० शक को गोस्वामी जी पुनः अयोध्या पधारे, सात मास वहाँ निवास कर पुनः तीर्थाटन के लिए चल दिये और १४८५ शक में काशी लौट आये। वे अपने निवास-स्थान पर कभी राम-कथा कहते और कभी शिव-कथा। यद्यपि वे कभी चित्रकूट कभी अयोध्या और कभी प्रयाग चले जाते पर वे अधिकतर काशी में ही निवास करते थे। दर्शन के लिए सन्तों और भक्तों की भीड़ लगी रहती थी।

ज्येष्ठ शुक्ला ७ बुधवार १४९१ शक को किसी यात्री ने कहा कि नन्ददास जी ने वैराग्य ले लिया है और वे घर छोड़ कर व्रज में रहने लगे हैं। यह सुन तुलसीदास जी प्रसन्न हुए। उनके मन में इच्छा हुई कि नन्ददास को कभी जाकर देख आऊँ और वे माघ शुक्ला ३ मंगलवार १४९१ शक को मथुरा पहुँचे। वहाँ नन्ददास जी ने उन्हें सूरदास जी के दर्शन कराये और तुलसीदास जी ने उन्हें प्रणाम किया। फिर नन्ददास जी तुलसीदास जी को लेकर गोवर्द्धन गये और वहाँ तुलसीदास जी ने भगवान् कृष्ण को भगवान् राम के रूप में देखा। तदनन्तर वे दोनों जी विट्ठल जी के दर्शन के लिए गोकुल गये और उन्हें अभिवादन किया। गोसाईं जी ने भी उनका आदर-सत्कार किया। विट्ठल जी के पुत्र का नाम था रघुनाथ और पुत्र-वधू का जानकी तुलसीदास जी ने उन्हें अपने इष्टदेव के नाम राशि समझ कर प्रसन्नतापूर्वक अपना मस्तक नवाया। तदनन्तर नन्ददास जी ने भगवान् कृष्ण के सम्बद्ध अनेक सुन्दर स्थल दिखाये जिन्हें देखकर तुलसीदास जी को बड़ी प्रसन्नता हुई। तुलसीदास जी ने 'कृष्ण पदावली' की रचना की और तदनन्तर वे काशी चले गये। शक १४९५ की मकर संक्रान्ति में उन्होंने प्रयाग में स्नान और वहाँ से अयोध्या जाकर चैत्र शुक्ला नवमी मंगलवार शक १४९६ को 'रामचरित मानस' का प्रारम्भ किया और शक १५० की ज्येष्ठ-कृष्णा १ शुक्रवार को उस की पूर्ति की। इस बीच में वे कभी काशी और कभी अयोध्या आते जाते रहे। पाँचवें वर्ष में उनके 'रामचरित मानस' की ख्याति होने लगी। गोतायन बढ़ने लगे। तुलसीदास जी कभी काशी कभी अयोध्या कभी प्रयाग और कभी चित्रकूट रहते।

शक १५०९ के ज्येष्ठ मास में गोस्वामी जी चित्रकूट में निवास कर रहे थे कि वहाँ राजा नाम का भक्त आया। वह नगर बाबा का वंशज जाति का अहीर था किन्तु वह साधुओं का सेवक और भगवान् का दासी था। उस का नाम था राजवीर, किन्तु लोग उसे राजा साधु कहते थे। उस का रंग श्यामल था उसके गले में तुलसी की माला शोभित रहती। वह सिर पर जटा, कटि में कौपीन और मस्तक पर ऊर्ध्व पुंड्र धारण करता और तुलसीदास जी के श्रीमुख से श्रद्धापूर्वक राम-कथा सुनता था।

एक दिन वह *प्रातःकाल गोस्वामी जी* से बोला कि मेरी कुटी पर पधारिये और मुझे कृतार्थ कीजिये। उसकी पर्ण-कुटी अरण्य में पयस्विनी और यमुना के संगम

के दक्षिण तट पर थी। अनेक पेड़ों से घिरा वह स्थान बड़ा रमणीक था। जो कोई वहाँ आता राजा साधु उसका बड़ा सत्कार करता और जो कोई रोगी होता उसकी औषधि का भी प्रबन्ध कर देता। वह बड़े सरल स्वभाव का था कभी क्रोध न करता।

प्रार्थना स्वीकार कर गोस्वामी जी ने उक्त शक की ज्येष्ठ शुक्ला ७ शनिवार को राजा साधु की कुटी में पदार्पण किया। स्थान रमणीक था तुलसीदास जी का मन लग गया। वे वहाँ यमुना जी में स्नान करते और सीताराम का भजन। वे राम कथा कहते और राजा साधु सुनता। वहाँ गोस्वामी जी का निवास सुनकर और लोग भी आने लगे। तुलसीदास जी का शरीर गौर और सुन्दर किन्तु स्थूल था। वे आजानु-बाहु थे और गले में माला कटि में श्वेत अधोवास और यज्ञोपवीत मस्तक पर तिलक धारण करते तथा सिर और मूँछ मुँडित रखते। उन्होंने राजा साधु की सेवा से प्रसन्न हो राजापुर बसा दिया। उनका व्यक्तित्व भव्य था। शक १५१७ की माघ कृष्णा ५ रविवार को उक्त स्थल पर अविनाशराय तुलसी के भक्त-दरबार में उपस्थित थे।

किन्तु फाल्गुन शुक्ला द्वितीया शुक्रवार १५१७ शक को राजा साधु अचानक परमधाम सिधार गये। कुटी में अपार शोक छा गया। चारों दिशाओं के ग्रामवासियों ने एकत्र होकर उसका विमान निकाला और दाह-संस्कार किया। तुलसीदास जी ने समारोह-पूर्वक उसका भण्डारा किया और उसकी प्रस्तर मूर्ति बनाकर हनुमानमन्दिर में स्थापित कर दी।

अविनाशराय ने गो॰ तुलसीदास का दर्शन सर्वप्रथम चित्रकूट में तदनन्तर राजा साधु की कुटी में किया। गोस्वामी जी ने बड़े प्रेम से उसका परिचय लिया छाती से लगाया और अपना भी परिचय दिया। राजा साधु की मृत्यु के समय गोस्वामी के दर्शन अविनाशराय को पुन: प्राप्त हुए। कार्तिक शुक्ला ६ बुधवार १५१९ शक को एक मास तक वे तुलसीदास जी के साथ रहे। तदनन्तर सोमवती अमावस्या श्रावण १५२२ शक को सत्संग की अभिलाषा से वे गोस्वामी जी के पास गये और कई मास उनके पास रहे। गोस्वामी जी भी उसी वर्ष कार्तिक में काशी में चले गये और फिर अविनाशराय को उनके दर्शन न मिल सके। अविनाशराय भी भाद्रपद शुक्ला १५ शनिवार १५२८ शक को शिकुड़ा छोड़कर, तीर्थाटन के लिए, भारत के दक्षिण पश्चिम और उत्तर में गये और कार्तिक शुक्ला १५ बुधवार १५३४ शक को अपने घर तारी में लौट आये। यात्रा में पहाड़ का पानी लगा अतएव वे चार वर्ष तक अस्वस्थ रहे किन्तु फिर ठीक हो गये। तारी के अधिपति हर्षसिंह वैशाख कृष्णा ७ शनिवार १५३५ शक को स्वर्ग सिधारे और उनके सुयोग्य पुत्र कर्णसिंह ने कार्य-भार सँभाला। कर्णसिंह ने अविनाशराय को पद-गरिमा के साथ सम्मान प्रदान किया और तब से अविनाशराय तारी छोड़कर कहीं जाते न थे। वहाँ उनके लघु भ्राता और पुत्र भी थे। तारी की भूमि धन्य है जिसमें तुलसी-जैसे चारु-चरित दोहित्र हुए, तुलसी जैसी भक्त प्रसविनी और दुर्गा जैसी कर्णसिंह की वीर-जननी हुई। नन्ददास जी के पुत्र कृष्णदास और चन्द्रहास जी के पुत्र ब्रजचन्द थे। कृष्णदास तुलसीदास जी को बुलाने कई बार गये थे। यदि तुलसीदास जी न होते तो हिन्दुओं के मान और मर्यादा की रक्षा कौन करता ?

अविनाशराय की तरुणावस्था बुन्देलखण्ड में व्यतीत हुई। उन्होंने कालिंजर में और चिहुटा में निवास किया। उन्हें बहुत दान मान और प्रेम भी प्राप्त हुआ। किन्तु उन्हें ओरछा-नरेश के समान गुणज्ञ, केशव के समान कवि, राजा के समान साधु, कहीं देखने को न मिला। सम्राट् जहाँगीर के एक कर्णसिंह सोलंकी के समय में अविनाश राय ने पौष कृष्णा द्वितीया शुक्रवार १५७२ शक को कवित्तमय गो० तुलसीदास की का चरित्र बड़ा पुरुषों से सुना और स्वयं देखा लिख दिया।

सूकर-क्षेत्र

प्राक्कथन

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस के बालकाण्ड में सूकर-खेत का उल्लेख इस प्रकार किया है

मैं पुनि निजगुरु सन सुनी कथा सु सूकर खेत

इससे स्पष्ट है कि गोस्वामीजी की शिक्षा-दीक्षा बाल्यकाल में 'सूकर खेत' में हुई थी। किन्तु यह सूकर-क्षेत्र कहाँ है—इस विषय में कुछ मत भेद है। कुछ के अनुसार यह एटा जिले का सोरों है दूसरों के अनुसार यह सरयू-घाघरा के संगम पर पसका नामक ग्राम है। आवश्यक अनुसंधान के पश्चात् प्रथम मत परम पुष्ट प्रतीत होता है जिसकी रूपरेखा आगामी पृष्ठों में दी जा रही है।

सूकर-क्षेत्र कहाँ ?

निश्चय की आवश्यकता—कुछ आधुनिक लेखकों ने सोरों और सूकर क्षेत्र के तादात्म्य पर शंका उपस्थित की है। अतएव इसका विवेचन आवश्यक है।

यूरोपीय विद्वानों का दृष्टिकोण—यूरोपीय विद्वानों ने सोरों और सूकर-क्षेत्र के तादात्म्य को स्वीकार किया है। उदाहरणतः रैवरेंड एडविन ग्रीव्ज़ अपने एक लेख में जो १८७६ ई० में लिखा गया और जो १९२३ ई० में 'तुलसी ग्रन्थावली' में प्रकाशित हुआ था लिखते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास अपने गुरु के साथ सूकर-क्षेत्र में निवास करते थे जो प्राचीन काल में ऊकल क्षेत्र और वर्तमान काल में सोरों नाम से विख्यात है। एफ० एस० ग्राउज़ महोदय ने भी अपने 'द प्रोलोग टु द रामायण ऑव तुलसीदास : ए स्पेसिमन ट्रांसलेशन' नामक लेख में सूकरखेत को सोरों माना जो बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की पैंतालीसवीं जिल्द में, सन् १८७६ ई० में प्रकाशित हुआ था। उस लेख में उन्होंने यह निर्देश किया है कि 'सोरों' 'सूकर-ग्राम' का वर्तमान अपभ्रंश है। उनकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है सूकर ग्राम=सूअर गाँव=सुअरोंव=सोरों। किन्तु सूकरक्षेत्र के पर्याय 'सौकर' और 'सौकरव' से 'सोरों' शब्द की निष्पत्ति अधिक संगत है। ग्राउज़ ने गोस्वामीजी के दोहे का इस प्रकार अर्थ किया है "मैंने पुनः अपने गुरु से सूकर खेत अर्थात् सोरों में राम-कथा सुनी थी पर मैं उस समय अबोध बालक होने के कारण उसके तात्पर्य को नहीं समझ पाया। मुझ जैसा जड़ और सांसारिक अपवित्रताओं से संकुल जीव भला भगवान् राम की गूढ़ कथा को कैसे समझ सकता था, जिसके श्रोता और वक्ता दोनों ही ज्ञान के सागर हैं। श्री ग्राउज़ ने अन्यत्र लिखा है कि गोस्वामीजी ने सोरों में अध्ययन किया और अयोध्या में लिखना प्रारम्भ किया। ग्रियर्सन महोदय ने भी अपने पत्र 'नोट्स ऑन तुलसीदास' में जो इण्डियन एण्टीक्वेरी में १८९३ ई० में प्रकाशित हुए, लिखा है कि गोस्वामीजी ने अपने बचपन में सूकर-क्षेत्र में अध्ययन किया था जिसे आजकल सोरों कहते हैं। इन उक्तियों से यह स्पष्ट है कि ग्राउज़

ग्रीम्स और ग्रियर्सन के समय में सोरों और सूकर-क्षेत्र एक ही स्थान समझे जाते थे और कारपेंटर, मेकफ्री और हिल ने भी उनका अनुसरण किया।

लाला सीताराम का मत—सोरों और सूकरक्षेत्र के तादात्म्य में राय बहादुर लाला सीताराम का अविश्वास था। उन्होंने अपने 'राजापुर के अयोध्या काण्ड की भूमिका' में जो १९०२ में प्रकाशित हुई थी 'श्री अवध की झाँकी' में जो १९११ में प्रकाशित हुई थी और अपने 'सिलेक्शन्स फ्रॉम हिन्दी लिटरेचर, तृतीय पुस्तक तुलसीदास' नामक ग्रंथ में उल्लेख किया है कि तुलसीदास की साधुओं के दल में सम्मिलित होकर सूकर क्षेत्र अर्थात् वराहक्षेत्र चले गये और यह क्षेत्र एटा जिला का सोरों नहीं है जैसा कि ग्राउज महोदय समझते हैं, किन्तु यह गोंडा जिले में सरयू-घाघरा के संगम पर स्थित है। यहाँ गोस्वामीजी ने नरहरिदास से वैष्णव धर्म में दीक्षा ली और रामायण की कथा सुनी थी।

गोसाईं चरित में सूकर खेत—मूल गोसाईं चरित' १९२१ ई० में सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ। उसके निर्माता ने कदाचित् लाला सीतारामजी के उक्त अनुसन्धान से अथवा भवानीदास के 'गोसाईं चरित' से प्रेरित होकर लिख दिया कि—

"अहुत कथा इतिहास बहु आए सूकर खेत।
संगम सरयू घाघरा, संत जनन सुख देत॥

इस दोहे में 'सूकर खेत' की स्थिति सरयू-घाघरा के संगम पर प्रकट की गयी है।

डॉ० दास का सुझाव—डॉ० श्यामसुन्दर दास और पं० रामचन्द्र शुक्ल के प्रभाव से इस मत का प्रचार हुआ किन्तु जैसा कि मैं पीछे के अध्यायों में लिख चुका हूँ डॉ० दास ने अपने उस 'रामचरितमानस' की भूमिका के तेरहवें पृष्ठ पर जो सन् १९११ ई० में प्रकाशित हुआ था और उसी ग्रन्थ के सत्तावनवें पृष्ठ की पाद-टिप्पणी में सोरों का सूकर खेत से तादात्म्य किया था। पुनश्च उस रामचरितमानस' की भूमिका के बाइसवें पृष्ठ पर जो १९२२ ई० में प्रकाशित हुआ था उन्होंने जिस सोरों का उल्लेख किया था वह कदाचित् एटा जिले का था। किन्तु पीछे से उन्होंने अपनी धारणा बदल दी और वे सूकर क्षेत्र को सरयू-घाघरा के संगम पर मानने लगे जैसा कि उनके उस ग्रन्थ 'गोस्वामी तुलसीदास' के उनतालीसवें पृष्ठ से स्पष्ट है जो १९३१ ई० में प्रकाशित हुआ। वे इस विषय में शुक्ल जी से प्रभावित हुए प्रतीत होते हैं क्योंकि उन्होंने १९४० के 'रामचरितमानस' के संस्करण के सोलहवें और सत्रहवें पृष्ठ पर शुक्ल जी के कथन को उद्धृत किया है जिसका तात्पर्य है कि सूकर खेत' सोरों नहीं है।

शुक्लजी और सूकर खेत—'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के १२६वें पृष्ठ पर शुक्ल जी लिखते हैं — "मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत' को लेकर कुछ लोग एटा जिले के सोरों नामक स्थान तक धीधे पश्चिम दौड़े हैं। पहिले पहल इस ओर इशारा लाला सीताराम ने अयोध्या काण्ड के स्वसंपादित संस्करण की भूमिका में किया था। उसके बहुत दिनों पीछे उसी इशारे पर दौड़ लगी और अनेक प्रकार के कल्पित प्रमाण सोरों को जन्म-स्थान सिद्ध करने के लिए तैयार किये गये। सारे उपद्रव की जड़ है सूकरखेत को भ्रम से सोरों समझ लिया गया। सूकरक्षेत्र गोंडा

जिले में सरयू के किनारे एक पवित्र तीर्थ है। यहाँ आस-पास के कई जिलों के लोग स्नान करने आते हैं और मेला लगता है।" डॉ० दास ने गुप्तजी का समर्थन किया और डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने गुप्त जी के कथन को इस प्रकार और अधिक स्पष्ट किया : 'पहले पहल लाला सीताराम ने अपने संपादित राजापुर वाले अयोध्या काण्ड के संस्करण में यह इशारा किया था कि सूकर खेत या सोरों तुलसीदास की जन्मभूमि हो या नहीं वहाँ वे रहे जरूर थे। पर लाला सीतारामजी के सम्बन्ध में गुप्तजी और द्विवेदीजी द्वारा जो उल्लेख किया गया है वह तथ्य से दूर है, क्योंकि लालाजी ने तो सूकर खेत को गोंडा जिले में सरयू-घाघरा के संगम पर माना और इस बात का खण्डन किया कि सोरों ही सूकर क्षेत्र है जैसा कि उन्होंने राजापुर वाले अयोध्याकाण्ड के संस्करण में तथा अपनी अन्य कृतियों में व्यक्त किया है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि १९२५ ई० से पहले जब 'मूल गोसाईं चरित' का आविर्भाव नहीं हुआ था गुप्त जी को संगम वाले सूकरखेत का पता न था अन्यथा वे १९१२ ई० और १९२२ ई० में डॉ० दास की आलोचना अवश्य करते जिन्होंने सोरों को सूकरक्षेत्र समझा था और वे संयुक्त-सम्पादक के रूप से 'हिन्दी शब्द सागर' के ३१३६वें पृष्ठ पर सोरों और सूकरक्षेत्र का तादात्म्य न करते। इसके अतिरिक्त गुप्त जी पाञ्चालदास बदोनाम्नाय के 'पसाक' का अनुवाद करते समय कुछ तो लिखते जबकि पाञ्चाल जी ने सूकरक्षेत्र की स्थिति कन्नौज के पश्चिम में गंगा के किनारे बतायी थी और वे पं० महादेव प्रसाद त्रिपाठी को भी आड़े-हाथ ले सकते थे जिन्होंने अपने 'भक्तिविलास' में सूकर खेत और सोरों का तादात्म्य किया है जिसका उल्लेख गुप्त जी ने स्वयं 'तुलसी ग्रन्थावली' के तृतीय भाग की प्रस्तावना में किया जो काशी-नागरी प्रचारिणी-सभा के द्वारा सर्वप्रथम १९८ वि० में प्रकाशित हुआ था।

'पसका' की व्युत्पत्ति—डॉ० भगवती प्रसाद सिंह ने जून १९४३ की सरस्वती में 'सूकरक्षेत्र' नामक लेख में सरयू-घाघरा-संगमस्थ 'पसका' ग्राम को सूकरक्षेत्र सिद्ध करने के लिए 'पसका' शब्द की व्युत्पत्ति की है कि पसका=पसु+का=पशु (वराह) का=वराह क्षेत्र' अथवा पसका=पशुक=पशु इव इति (पशु प्रधान)=कुत्सित पशुः। किन्तु व्युत्पत्ति इस प्रकार भी तो हो सकती है पसका=पास+का अर्थात् गोंडा वालों के लिए पासका वराह तीर्थ क्योंकि सोरों जाना दूर पड़ता है। पर क्या इस प्रकार की व्युत्पत्तियाँ प्रामाणिक हैं ?

संगमवाला वराहतीर्थ—मैंने गोंडावाले सूकरक्षेत्र के सम्बन्ध में सरकारी अधिकारियों से जो पत्र व्यवहार किया उसका निष्कर्ष इस प्रकार है। गोंडा जिले में सूकर क्षेत्र है जो पसका के निकट सरयू-घाघरा के संगम पर स्थित है। यहाँ एक मन्दिर है जो वराह जी का कहा जाता है और यह भी कहा जाता है कि यहाँ उनका अवतार हुआ था। कहते हैं कि मन्दिर तीन सौ वर्ष प्राचीन है, इस मन्दिर से पहले भी एक मन्दिर था किन्तु अब उसके कोई चिह्न नहीं हैं। पौष मास में यहाँ मेला लगता है, किन्तु मन्दिर की अपेक्षा अधिकतर संगम के उपलक्ष्य में ही। इस सूकरक्षेत्र का उल्लेख 'अयोध्या माहात्म्य' में उपलब्ध है। उक्त सूचना तरबगंज गोंडा के सबडिवीजनल ऑफिसर श्री बी० बी० सहाय से प्राप्त हुई थी। हमारी समझ में यह बातें विचार-

नीय है कि उक्त सूचना के अनुसार प्राचीन मन्दिर के भग्नावशेष अब विद्यमान नहीं और यह भी कि कार्तिक मेला मन्दिर की अपेक्षा संगम के उपलक्ष में लगता है। ऐसा कहना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि उक्त 'अयोध्या-माहात्म्य' में यह उल्लेख नहीं है कि वराह भगवान् का जन्म उक्त संगम पर हुआ और न 'सूकरखेत' अथवा 'सूकरक्षेत्र' शब्द का ही उल्लेख है क्योंकि वराह तीर्थ तो मथुरा आदि अनेक स्थानों में मिलते हैं जैसा कि वराह पुराण (६७-२१) में लिखा है और पण्डित भद्रदत्त शर्मा का आग्रह[1] भी है —

तत्र हत्वा च हैरण्यं मूर्तपद्म वसुन्धरा
तीर्थं वराहसंज्ञेषु मथुरायां व्यवस्थितः ॥

अयोध्या माहात्म्य में उल्लेख—अयोध्या माहात्म्य के कुछ आवश्यक उद्धरण नीचे दिये जाते हैं —

ततः पश्चिमदिग्भागे गोप्रतारप्रतिष्ठिते । ३२ ।
संगमो वर्तते देवि सर्वपापप्रणाशनः ।

× × ×

संगमे सलिले तस्मिन् नर स्नात्वा विधानतः ।
संतर्प्य पितृ देवांश्च दत्वा दानं च शक्तितः । ४३ ।
हुत्वा वैष्णव मन्त्रेण विष्णु लोकं व्रजेन्नरः
पौषे मासि विशेषेण स्नानं बहुफलप्रदम् । ४४ ।

× × ×

विष्णुं सम्पूज्य विप्रांश्च देवं स्वर्णादि शक्तितः
वाराहस्थाने च वासांसि पूर्णचन्द्रमुत्तमम् ।५१।
संगमे विधिवद् दत्वा संयाति परमां गतिम्
वर्षे वर्षे तु कर्तव्या यात्रा धर्मार्थतत्परैः ।५४।
सर्व तीर्थावगाहस्य फलं प्राहुः स्मृतं किल
तादृक फलं नृणां सम्यक् गर्गेश्वरसंगम-मज्जनात् ।५५।
पुरा कृतयुगे देवि पृथिव्युद्धरणे कृतम्
तत्र निर्माणितं तीर्थम् वराहेण महात्मना ।५६।
हत्वा दुष्टं हिरण्याक्षं पृथिवीस्थापनं कृतम्
अथ देवा सगन्धर्वाः हर्षनिर्भरमानसाः ।५७।
समागम्य स्तुतिं चक्रुर्वाराह-पुण्यदे ।५८।

देवा ऊचुः

देवाधिदेवाय नमो नमो विभो
श्री यज्ञवाराह नमाम्यहं प्रभो

---

१ वास्तविक सूकरक्षेत्र (सनातन धर्म, जनवरी १९४२) और सूकरखेत (ब्रज भारती फाल्गुन २०११ वि)

स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य मही-प्रवर्तिने
कृपा-समुद्राय वर प्रदायिने ।५९।

श्री वराह उवाच

किं वो मनसि भो देवा मत्तस्तत्प्रार्थ्यतां ध्रुवम्
संगमेऽत्र महाक्षेत्रे भुक्ति मुक्ति-प्रदायके ।६०।

देवा ऊचुः

अच्युतो न भयं तस्य न कलत्र-वियोजनम्
सप्तमे मज्जनात् पुंसो गर्भ-वास-भयो भवेत् ।६१।

श्री वराह उवाच

एवमस्तु सदा देवाः संगमे पापनाशनः
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्तिस्तत्र न संशयः ।६२।

श्री शूकर उवाच

इति श्रुत्वा तदा देवा पंचममुनयस्तदा
तत्रैव निवसन्तिस्म सर्वा हृष्टा विमानतः ।६३।

(अध्यात्म हरगौरी संवाद अयोध्या खण्ड अध्याय २६)

'अत्र' और 'तत्र'—उक्त श्लोकों से स्पष्ट है कि सरयू-घाघरा का संगम पौष माघ में धार्मिक स्नान-दान के लिए विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है और सत्ययुग में देवता गण भगवान् वराह की स्तुति करने के लिए यहीं एकत्र हुए जिन्होंने अन्यत्र हिरण्याक्ष दैत्य को समाप्त कर पृथ्वी का उद्धार किया था। उक्त श्लोकों में 'तत्र' और 'अत्र' सार्थक हैं। इनमें से एक का अर्थ है 'अन्यत्र' अर्थात् वह स्थान जिसका 'संवाद' में लिखित उल्लेख नहीं है स्यात् उसका तात्पर्य सोरों से है। दूसरे का तो निश्चय ही उक्त संगम से तात्पर्य है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि 'अत्र' से अभीष्ट स्थान है सरयू-घाघरा का संगम एवं 'तत्र' से सोरों।

प्रो० रामनारायण का सन्देह—कदाचित् यह वार्ता रोचक प्रतीत होगी कि बरेली कालिज के श्री रामनारायण ने उक्त अध्याय से अट्ठावन तक के श्लोकों का अनुवाद आंग्ल भाषा में किस प्रकार किया था जो इण्डियन एण्टिक्वेरी में १८७५ ई० में प्रकाशित हुआ था। वह अनुवाद इस आशय का है : "सत्ययुग के प्रारम्भिक काल में भगवान् वराह रूप में अवतीर्ण हुए। उन्होंने हिरण्याक्ष को मारा और भुवन को दुष्टों से मुक्त किया। वे आये और यहीं रहे और उन्होंने तीर्थ की स्थापना की। देवता गन्धर्व और मुनि हर्ष-पूर्वक इस प्रकार स्तुति करने लगे। यह अनुवाद समीचीन प्रतीत नहीं होता क्योंकि यह अभिव्यक्ति कि 'वे आये और यहीं रहे' निराधार प्रतीत होती है। वे इस आशय से लिखते हैं कि "महाराज मानसिंह के अनुसार 'अयोध्या माहात्म्य' सूर्य-वंशी इक्ष्वाकु की रचना है। अयोध्या और सरयू की कथा उनके आध्यात्मिक गुरु श्री वशिष्ठ मुनि के कारण है जिन से अयोध्या के वाशिष्ठ ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई है। इसकी सृष्टि त्रेता युग में हुई थी और यह भी रामचन्द्र के सुदर्शन चक्र पर स्थित है। किन्तु श्री उमादत्त पंडित के अनुसार

किया और वह जीर्णोद्धार शनिवार वैसाख सुक्ला द्वादशी को संवत् १२४१ वि० में पूर्ण हुआ।

(ख) पृथ्वीराज रासो और सोरों—और भी कतिपय महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं जिनमें सोरों वाले सूकरक्षेत्र के अन्तर्गत तीर्थों या मुहल्लों के नामों का उल्लेख मिलता है। पृथ्वीराज रासो के इकसठवें समय में जो काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुआ है सोरों के योगमार्ग मोहल्ले का उल्लेख है। इस में योगेश्वरजी का मन्दिर है जिसका उल्लेख सौकरव के वर्णन में वराह पुराण में किया गया है। निम्न लिखित उद्धरण से विदित होता है कि जयचन्द्र की पुत्री का हरण करके पृथ्वीराज कन्नौज से दिल्ली जाते समय सोरों के योगमार्ग मोहल्ले में टिके थे। वहीं उन्हें युद्ध करना पड़ा था जिसका वर्णन चन्दबरदाई ने इस प्रकार किया है—

> जुरि जोग मग्ग सोरों समर भवत जुद्ध जग : कहिय (२४०१)
> पुर सोरौं संग्रह उवक जोग मग्ग सिव चित
> अद्भुत रस असिवर भयो बंकम बरन कवित्त (२४०२)
> × × ×
> बेघ कोस दुर्रसिय सर्भ त्रियसत वक गुज्जर
> काम बान हर नयन तिहर बिहुर भुमि सुसम्भर।
> अयन अट्ठ पलानि कन्नु बंकिय दृग पासह
> सस्तु बाल द्वादसह अवस तिच्छा बंकिय लह।
> शृंगार बिन्दु ससपह सुकव नयन बहारसि बंध धर्य
> इतने सुर सब सुम्भ तहं सोरौं पुर पृथिराज प्रय (२४०३)
> परयो पैपि बाहुार राज कम मग्ग कोप किय
> पहु सोरों पृथिराज निकट विग्यो सुचिति हिय (२४०४)

(२) तुलसीकालीन प्रमाण—गो० तुलसीदास के समय में सूकरक्षेत्र की स्थिति वक्राघट पर मानी जाती थी और वह स्थान सोरों है। इस विषय में मुख्य प्रमाण हैं-वीर मित्रोदय और आईने अकबरी।

(क) वीर मित्रोदय—'वीर मित्रोदय' के लेखक-सम्पादक मित्रमिश्र हैं जिनका सम्बन्ध बुन्देलखण्ड से रहा और जिन्होंने वहाँ के महाराज की प्रेरणा से इस ग्रन्थ का निर्माण प्राचीन प्रमाणों के आधार पर किया। इन्होंने सूकरक्षेत्र के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है

> *"अथ सूकरक्षेत्र माहात्म्यम्।* वराह पुराणे वराह वचनम्
> परं कोका मुखं स्थानं स्थानं कुब्जाम्रकं परम्
> परं च सौकरं स्थानं सर्व-संसार मोक्षकम्।
> यत्र संस्था मया देवि हृत् धृतासि रसातलात्
> तत्र भागीरथी गंगा मम शौचार्थ मागता॥
> ये मृतास्तत्र पुण्योपि क्षेत्र सूकरके मम
> तारिताः सर्व संसारात् श्वेत द्वीपाय यान्ति ते।

(वीर मित्रोदय तीर्थप्रकाश, पृ० १७५)

(घ) अबुल फजले अल्लामी ने 'आइने अकबरी' में लिखा है कि 'हिरण्याक्ष नाम के एक दैत्य ने बहुत काल तक भगवद्भक्ति और तपस्या की। एक दिन भगवान् इस विग्रह में आविर्भूत हुए और उससे बोले कि तू क्या चाहता है ? इन कृपापूर्ण शब्दों से हृष्ट हो दैत्य ने बहुत से हिंस्र पशु गिनाये और प्रार्थना की कि मैं उनकी हानि से मुक्त रहूँ और अखिल विश्व का सम्राट् बन जाऊँ। तत्पश्चात् शीघ्र ही अभीष्ट की प्राप्ति कर, उसने इन्द्र से स्वर्ग का आधिपत्य छीन लिया और उसे अपने किसी सम्बन्धी को दे दिया। देवगण और ब्रह्माजी सहायतार्थ विष्णुजी के निकट गये। (दैत्य की) प्रार्थना में सूकर का नाम रह गया था अतएव (भगवान् ने) उत्तर दिया कि मैं उस रूप में प्रकट होकर उसके प्राण हरूँगा। तदनन्तर तुरन्त विष्णुजी ने उस रूप में आविर्भूत हो और उसकी राजधानी में प्रवेश कर उसका संहार कर दिया। यह (घटना) सोरों नामक स्थान में हुई बतायी जाती है।"[1] कर्नल एच० एस० जैरेट सर यदुनाथ सरकार तथा जगदीश मुखोपाध्याय आदि उक्त ग्रन्थ के टीकाकारों ने एवं गजटियरों के लेखकों ने उक्त सोरों को उत्तर प्रदेश के एटा जिले में माना है।

३ अन्य प्रमाण—इनके अतिरिक्त अन्य अनेक प्रमाण हैं यथा विष्णु स्वामि चरितामृत वल्लभदिग्विजय विजराम का शिलालेख सूकरक्षेत्र माहात्म्य भाषा रत्नावली चरित।

(क) विष्णुस्वामिचरितामृत—हरिहर भट्ट कृत 'विष्णुस्वामी चरितामृत' में विष्णुस्वामीजी की जीवनी और यात्राओं का वर्णन है। इसका नाम रवि माधव भी है। इनके पौत्र ने गोकुल के श्री वल्लभाचार्य की पौत्री से विवाह किया था। एक बार विष्णु स्वामीजी ने अपने शिष्यों के साथ मुरादाबाद जिले के संभल से एटा जिले के सहसवान में सप्तस्रोत तक यात्रा की और वहाँ से वराह क्षेत्र पहुँचे। इस क्षेत्र में गुणाम नामक किसी सनाढ्य ब्राह्मण को दीक्षा देकर वे आगरा जिले में यमुना तीरस्थ बटेश्वर पहुँचे थे जैसा कि निम्नलिखित उद्धरणों से स्पष्ट है—

ततो जगामाशु रविः परत्र सहस्रबाहो किल तीर्थ मुख्यम्।
यत्रार्जुनो दिग्विजयं च कृत्वा चकार राज्यं किल कार्तवीर्य ।१२।
सप्तस्रोतस्तीर्थमुख्यं तु यत्र स्रोतोभिः स्यात्सप्तभिःसप्तमिश्रा।
सप्तानां वा प्रीतये भार्गवाणां स्वरद्भवानां पञ्चशाला गतानाम् ।१३।
बभूव यस्या गुणमस्य पुत्रो ततो पुरायत्य सुदैव तीर्थम्।
× × ×
दृष्ट्वा प्रयात्यस्मिन् समस्तकामाम् गौरवा पुनीताश्च (भवन्ति) सर्वत।
पुरुषाणि यस्मिन् किल सोमवासरे धारयन्ति बहुतपुर परात्परम् ।१५।
× × ×

[1] आइने अकबरी बाइ अबुल फजल अल्लामी जिल्द २ जैरेट-सरकार का ट्रान्सलेशन रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल १९४८ पृष्ठ १९०।

सोर्मे वराहस्य हरेर्जगाम दृष्ट्वा गंगां स च दुःखहारिणीम् ।
गुसाल नाम्नापि समाहुय सारादृहस्था रवि ग्राम समुं तदापात् ।२०।
× × ×
ततो जगामाशु बटेश्वरं रविर्मवर्ष तीर्थे तु कम्पिलका तते ।।२२।।
(उल्लास १४)

सूकरक्षेत्र और सनाढ्य ब्राह्मण—जिस वराह क्षेत्र का उल्लेख ऊपर हुआ है वह सोरोंवाला ही सूकरक्षेत्र है जहाँ आज भी अधिकांश में सनाढ्य ब्राह्मण निवास करते हैं। यह गंगा के किनारे है और सहसवान से सात मील है। उपर्युक्त विष्णु स्वामी चरितामृत के तीसवें अध्याय में उस यात्रा का वर्णन है जो विष्णुस्वामी के पौत्र गोस्वामी रघुनन्दन ने की थी। ये गोस्वामीजी सात वर्ष तक प्रयाग में रहे और रामपाल के पुत्र से सवा लाख मुद्राओं की भेंट स्वीकार कर अपने पुत्र कमल तथा परिवार के सहित मथुरा के लिए चले। वे प्रयाग से काशी अयोध्या और नैमिषारण्य पहुँचे। मार्ग में गोमती रामगंगा और भागीरथी गंगा के दर्शन कर और उन्हें पार कर वे मैनपुरी कन्नौज कम्पिल और वहाँ से वराह तीर्थ पहुँचे। वराह तीर्थ में गंगा-स्नान कर और निर्धनों को दान दे, मथुरा के लिए प्रस्थित हुए और दाऊजी तथा महावन के दर्शन कर अन्त में गोकुल जा पहुँचे जहाँ वल्लभाचार्यजी के पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने कुछ समय तक उनका सत्कार किया। वचन इस प्रकार हैं —

इत्थं प्रयागे रघुनन्दनस्तु उवास वर्षाणि च तत्र सप्त ।
× × ×
ततो मिलित्वा रामपालपुत्रं भेंट गृहीत्वा च सपादलक्षम् ।
पुत्रं कमलं किल ज्ञातिगुर्त्तैर्जगाम गोस्वामिसुतो मथुरां पुरीम् ।। ९ ।।
काशीं च गत्वा किल विष्णुमाधवं विश्वेश्वरं वीक्ष्य भवानी कणिकाम् ।
ससाययोध्यां नगरीं ददर्शह रघुनन्दनस्तत ।। १ ।।
श्री नैमिषं तत्र पुनर्विलोकयन् सगोमतीं रामगंगां च जाह्नवीम्
उत्तीर्य गत्वा च मनोपुरीं परां ददर्श मार्गे किल कान्यकुब्जकम्
स कम्पिलां तत्र पुनर्विलोक्य तीर्थे वराहस्य ततो जगाम
स्नात्वा च गंगां स ततो द्विजेभ्यः दत्वा सुवर्णं प्रययौ मधोः पुरीम्
संकर्षणं वीक्ष्य महावनं च श्री गोकुलाख्ये नगरे गतः स ।
गोस्वामिना वल्लभनन्दनेन सुपूजितस्तत्र निवासितश्च ।
(श्री विष्णुस्वामी चरितामृत, उल्लास १०)

(ख) वल्लभदिग्विजय—'वल्लभ दिग्विजय'[1] के अनुसार वल्लभाचार्यजी ने हरिद्वार से सूकरक्षेत्र तक यात्रा की और वहाँ से वे कन्नौज होते हुए प्रयाग पहुँच गये, जैसा कि निम्नलिखित उद्धरण से प्रकट है

ततः प्रचलिता हरिद्वारोपमार्गेण सूकर-क्षेत्रं समायाताः । तत्र
कृत्वाय गुरुवर्त्तनाशां दत्त्वा गत्यकुब्जमध्यना प्रयागे समागताः । (पृष्ठ ४६)

(ग) विश्राम का शिलालेख ७८२ वर्ष प्राचीन—कासगंज से सोरों को

1 द्वारिका कराधन मुम्बादा, १६८५ वि ।

आठ मील और बिलराम ढाई मील है। एक शिलालेख से* ऐसा विदित होता है कि बिलराम का पुराना नाम बलराम है। बलरामसिंह नाम का एक चौहान था जो कन्नौज की राज-सभा का सदस्य था। अपने नाम पर उक्त नगर बसा कर वह १०१५ शक संवत् में पंचत्व को प्राप्त हुआ। जहाँ उसने प्राण त्यागे वह स्थान था सूकरक्षेत्र अर्थात् सोरम। राजपूताने से आने वाले यात्री भी सोरों को सोरम कहते हैं। निम्नलिखित शिलालेख में जो मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी संवत् १०१५ शक का है सोरों और सोरम का तादात्म्य ध्यान देने योग्य है:

कालोत्तरद्विनयविजयभूविभागे आकारि येन नगरं बलराम संज्ञम्।
स्वर्गम् गतो 'म धर्म भृतां वरिष्ठः चौहानवंशप्रतिलको बलरामसिंहः।
योकान्यकुब्ज-नरपाल-सभा-सदस्य श्रेष्ठाग्रपदस्थ सुधियां विदुषां कवीनाम्।
येन स्वकीययशसा धवलीकृता भूः स्वगम् गतः स नृपतिर्बलरामसिंहः॥
शाकाब्दपुण्यशरदिन्दु प्रमिते शकाब्दे पुण्येऽग्रहायण दले च तिथौ दशम्याम्।
श्री सोरमे प्रथितसौकरवे सुतीर्थे स्वर्गं गतः स नृपतिर्बलरामसिंहः॥

(ग) कवि कृष्णदास—महाकवि नन्ददास के पुत्र कवि कृष्णदास ने भी अपनी रचनाओं में सूकरक्षेत्र पर प्रचुर प्रकाश डाला है क्योंकि वे स्वयं सूकरक्षेत्र के निवासी थे। उन्होंने वर्षफल की रचना १६५७ वि० में की थी जिसमें उन्होंने रामपुर-श्यामपुर का तादात्म्य और श्यामायन मन्दिर और श्यामसर तथा रत्नावली की जन्मभूमि बदरी का उल्लेख किया है जो उक्त संवत् में गंगा के प्रवाह में डूब गयी थी। उन्होंने यह भी बताया है कि बदरी गंगा-तीर पर थी। उनके वचन हैं

कीरति की मूरति जहाँ राजै भगीरथि की
सोरम बराह भूमि वेदनु जो गाई है।
जाइ धाम रामपुर श्याम सर कीनो थान
श्यामायन श्यामपुर वास सुखदाई है।
× × ×
बीतत अषाढ़ बाढ़ आई बढ़ि देवधुनि
बूड़ी जल जन्मभूमि रतनावली माता की।
नारी-नर बूड़े बहु पैय बड़ भाग रहे
बिधु मिट बदरी के दुसह कथा ताकी।

'सूकरक्षेत्र माहात्म्य' में सूकर-क्षेत्र के इतिहास और माहात्म्य पौराणिक आधार पर बताये गये हैं। वराह भगवान् धरनी से कहते हैं—

क्षेत्र सोकरव वेद बखानो अगति मुकति दायक तेहि जानो।
जल बूड़ी जबहि तुमहि कुमारी जहाँ रसातल सौं उद्धारी।
तहाँ त्रिपथगा देवि सुहावे सोई सोकर खेत कहावे।
योजन पाँच तासु विस्तारा जहँ निज रूप बराह पसारा।

कृष्णदासजी ने उक्त माहात्म्य में चक्रतीर्थ योगतीर्थ सोमतीर्थ आदि का वर्णन किया है और अनेक प्रकार से सूकर-क्षेत्र की महिमा गायी है। वे कहते हैं:

* दे० सूकर क्षेत्र (प्र० [illegible]) [illegible], आषाढ़ २ ११ वि

सूकरखेत सुरसरी माहीं स्थिर प्रसिद्ध जो नाद सिराहीं।
तासु शिखर मन सवमति पावें ते मनि कुल-सपूत कहावें।

(छ) रत्नावली-चरित में सूकरक्षेत्र का वर्णन—श्री मुरलीधर चतुर्वेदी ने १८४९ वि० में 'रत्नावली-चरित' लिखा और उसमें सूकर-क्षेत्र तथा बदरी का अच्छा वर्णन किया है :१

विदित वेद प्रच हरन हारि पतितनु पावन करन हारि।
सुरसरिता के दच्छिन कूल, प्रच्य धरनि मोक्षस्य मूल।
निज स्वभाव बस जगत नाह हरि प्रच्छपो जहँ वपु बराह।
तासों जु बराह खेत, भइ भूमि भव तरन सेतु॥
तीरथ सूकरक्षेत्र नाम भयो विदित जन भक्ति धाम।
बहु तीरथ जहँ रहे राजि सेवत प्रच मन जात भाजि।

× × ×

आदि तीर्थ जो जगत माहिं, सब तीरथनु फल है जहाँहिं।
सुरसरि पुनि बराह खेत मधुर अब पुनि फलहु देत।
जहँ बराह प्रभु सदन एक, सोहत सुर सदनहुँ अनेक।

× × ×

जहँ सुरसरि की बहति धारि, बनु बराह पद रह्यो पखारि।
सोरोंको नृप सोमदत्त भयो जहाँ श्रुति धर्म मत्त।
तासु दुर्ग ध्वंसेस माहिं, कछुक चिह्न ताके लखाहिं।

× × ×

ताके पच्छिम दिसि कछार बहुत पुरातनि पंथपार।
तासु प्रतीची तीर बाम कछुक रह्यो नयनाभिराम।
नाम बदरिका बन प्रसिद्ध, होत मृगादि न जहाँ विद्ध।

× × ×

सोइ कालबस मुनिन धाम कथ्यो पुहुपिधनु बास बाम।

'रत्नावली-चरित' को सम्पूर्ण करते समय श्री मुरलीधर चतुर्वेद ने बताया है कि उन्होंने रत्नावली की कथा सूकर तीर्थ में बूढ़ों से जैसी सुनी वैसी लिख दी। चतुर्वेद जी ने ब्राह्मणवंशी जाति का इतिहास भी लिखा है और उसमें उन्होंने अपने को सूकरखेत निवासी सनाढ्य ब्राह्मण बताया है, जिससे सिद्ध होता है कि 'सूकर तीर्थ' 'बराह तीर्थ' 'सूकर खेत' 'सूकर क्षेत्र' और 'सोरों क्षेत्र' पर्यायवाची शब्द हैं।

(ज) चालुक्य वंश प्रदीप—'चालुक्य वंश प्रदीप' से भी सूकरक्षेत्र पर प्रकाश पड़ता है। इसे जीमदेव बघेला ने रचा था जो अतिरंजीपुर के रहने वाले थे और जो जैसा कि कहा जाता है, आमेर के राजा मानसिंह की सेवा में थे। इसमें लिखा है कि आदि चौलुक्य राजा हारीतदेव अर्बुद (अर्थात् आबू) से आकर सोरों में गंगा के तट पर बस कर उग्र तप के निमित्त कुछ समय तक तो दस चुल्लू जल पीकर ही रहे। तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने उन्हें चौलुक्य पद प्रदान किया और जिस स्थल पर उन्होंने तपस्या की थी वह चुलुका नाम से अभिहित हुई। हारीत देव की संतति

चौलुक्य कहलाती। उसका पुत्र बड़ा यशस्वी हुआ जिसने दो दुर्ग बनवाये जिनमें से एक तो सोरों है दूसरा मतिरंजी। भीमदेव बघेला के छन्द इस प्रकार हैं—

सोरम गंगा निकट सुभट निज कुटी बनाई
करन लग्यो व्रति तहाँ उग्र जप तप अधिकाई।
कर्‌यो साग आहार पियो रस चुलुक गंग जल
× × ×
बीति बारह बरस जब प्रगटे विधि द्विज रूप धरि।
चुलुक पान करि तब कर्‌यो तासों चौलुक भयौ।
तपो भूमि चुलुका महँ इमि वर दै निज पथ गयौ।
× × ×
चौलुक देव भुपाल पूत नृप बन प्रतापी
मतरंजीपुर दुर्ग नींव तिन हित करि थापी।
तिनहि सोरम तीर्थ दुर्ग दृढ़ विरच बनायो,
जहँ सिसि देवन कीति राज्य चौलुक्य कहायो।
रहि वराह पद भगति रत वरता सुख करि जस लह्यो।
काल पाइ पत दुर्ग तिहि मातु रूप खेरा भयो।

(घ) 'शशांक'—श्री राखालदास बंद्योपाध्याय ने जिसका निर्देश किया जा चुका है, शशांक नाम का ऐतिहासिक उपन्यास लिखा जिसे पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अनूदित किया और काशी की नागरी प्रचारिणी-सभा ने १९२२ ई० में प्रकाशित किया। इस पुस्तक के पच्चीसवें से बत्तीसवें पृष्ठ तक इस बात का वर्णन है कि स्थाण्वीश्वर-नरेश राज्यवर्द्धन की मृत्यु गौड़ के शशांकगुप्त-द्वारा ६०६ ई० में गंगा जी के तट पर सूकरक्षेत्र में हुई। उपन्यासकार के अनुसार सूकर-क्षेत्र गंगाजी के पश्चिम में वह स्थान है जहाँ भगवान् वराह का अवतार हुआ था। यह अत्यन्त प्राचीन तीर्थ है जहाँ यात्री आते रहते हैं। कुरुक्षेत्र की भाँति यह भी युद्धस्थल रहा है जिसने मध्यदेश के शासकों के भाग्य का निर्णय किया है। यह वही सूकर-क्षेत्र है जहाँ महाराजा जयचन्द ने मुहम्मद गौरी का सामना किया। सूकर-क्षेत्र में शशांक को यह सूचना मिली कि राज्यवर्द्धन मालवा की ओर बढ़ रहा है अतएव अनेक चर भेजे गये। राज्यवर्द्धन मथुरा पहुँचा तो शशांक ने उसके पास अपना दूत भेजा जो अपमानित होकर लौटा। अतएव अनन्तवर्मा और माधववर्मा ने यह प्रस्ताव किया कि उसे यमुना जी पर ही रोक दिया जाय किन्तु शशांक सहमत नहीं हुआ। अन्त में जब सूकर-क्षेत्र में राज्यवर्धन का ससैन्य प्रवेश हुआ तो उसका और शशांक का द्वन्द्व-युद्ध हुआ। शशांक के कई घाव आये किन्तु सहसा उसका खड्ग राज्यवर्द्धन की ग्रीवा पर जा पड़ा और उसका शरीर धूलि में लोटने लगा। राज्यवर्द्धन की मृत्यु का समाचार सुनते ही स्थाण्वीश्वर की सम्पूर्ण सेना भाग खड़ी हुई और कान्यकुब्ज लौट गयी। 'शशांक' के उक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि वह सूकरक्षेत्र जहाँ यह युद्ध हुआ था कान्यकुब्ज और मथुरा के बीच गंगा-तट पर स्थित था अतएव उसका तादात्म्य सोरों से करना चाहिए।

(ज) श्री ग्रोवर—श्री बी० एल० ग्रोवर ने 'कल्याण' के रामायणांक में एक लेख देखा जिसका शीर्षक था 'रामायणकालीन स्थान-परिचय'। इस लेख में उन्होंने चकल क्षेत्र और सोरों का तादात्म्य किया है पर सोरों को शूकर क्षेत्र बतलाया है। वे लिखते हैं —"यह स्थान एटा से सत्ताइस मील उत्तर-पूर्व की ओर है। कहते हैं इसी स्थान पर हिन्दी के पूजनीय महाकवि तुलसीदास का बाल्यकाल में पालन पोषण हुआ था"। ग्रोवरजी ने तो विषय को बिल्कुल स्पष्ट कर दिया, क्योंकि उनके अनुसार गोस्वामी तुलसीदास जी का न केवल अध्ययन अपितु पालन-पोषण भी यहीं हुआ।

(झ) श्री नन्दलाल दे—श्री नन्दलाल दे ने 'द ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑव एंश्येंट एण्ड मिडिवल इण्डिया' १८९९ ई० में प्रस्तुत की और उसके ८९वें पृष्ठ पर लिखा कि सूकर-क्षेत्र में हिन्दी के विख्यात कवि तुलसीदासजी का माता-पिता द्वारा परित्यक्त होने पर बाल्यकाल में पालन-पोषण हुआ था।

(ञ) श्री जगदीश मुखोपाध्याय—श्री जगदीश मुखोपाध्याय ने १८९८ ई० में 'आईने अकबरी' का जो संस्करण निकाला था उसके ७६८ वें पृष्ठ की पाद टिप्पणी में लिखा है कि सोरों एटा जिले का एक नगर है। इसे सूकरक्षेत्र कहते हैं। सोरों की 'बूढ़ गंगा' तो 'वृद्ध गंगा' का विकृत रूप है, क्योंकि बूढ़ गंगा भागीरथी गंगा का पुराना मंझार है, गंगाजी यहाँ से हट गयी हैं।

(ट) श्री कमलापति चौबे—ने राधाकृष्णदास के 'नागर समुच्चय' जीवन चरित के पृष्ठ २१ से नागरीदास जी के यात्रा-विवरण को इस प्रकार उद्धृत किया है कि 'वहाँ से श्री यमुना जी का स्नान करके सोरों में आकर रहे। यह स्थान जिला एटा में है। यहाँ बूढ़ गंगा जी का स्नान किया। यहीं भगवान् का श्री वराहावतार हुआ है। हिरण्याक्ष को मारा है। इसका उपनाम उकलक्षेत्र और दूसरा शूकरक्षेत्र है।"

(ठ) कुछ पुष्पिकाएँ—कुछ ऐसी पुस्तकें विद्यमान हैं जो सूकरक्षेत्र में अथवा उसके निकट लिखी गयीं। इन की पुष्पिकाओं से सोरों और सूकरक्षेत्र का तादात्म्य स्पष्ट है। पुष्पिकाएँ इस प्रकार हैं

(अ) ज्ञान स्वरोदय। इति श्री चरनदास कृत ज्ञान स्वरोदय सम्पूर्णम्। श्री शुभमस्तु संवत् १९०१ शाके १७६६ तत्र वैशाख मासे शुक्ल पक्षे तिथौ प्रथम तृतीयायां भौम वासरे लिखितं ब्राह्मण सदारामेण ग्राम काशगंज मध्ये श्री सोरों शूकर क्षेत्र समीपे।

(आ) केशवी पद्धति सोदाहरण। संवत् १८९६ शाके १७६१ तत्र वर्षे माघ मासे कृष्ण पक्षे तिथौ ६ षष्ठ्याम् सोमवासरे लिखितं विप्र सदारामेण काशगंज मध्ये श्री सूकरक्षेत्र समीपे। शुभमस्तु।

(इ) सर्वतोभद्र। इति श्री सर्वतोभद्रसमाप्तम्। मंगलमस्तु लिखितं विप्र सदारामेण ग्राम काशगंज मध्ये श्री शूकरक्षेत्र समीपे संवत् १८९८ फाल्गुन कृष्णा ९ भौम वासरे। श्री रामाय नमः।

(ई) जातकाभरण। इति श्री दैवज्ञ ढुंढिराज विरचिते जातकाभरणे स्त्री जातकाध्याय। ११। १७६८। शुभमस्तु। कल्याणमस्तु। संवत् १८९९ वसन्तेऽग्नि ग्रहनाग भूमिते माधवे सित उर्ध्वगया तिथौ। सौमिभेऽर्क दिवसे दिवामितै लिखमते

द्विजवरेरव मायव । १ । कासगंज पुरे सूकरक्षेत्र समीपे श्री हरेः प्रसादात् समाप्तिम गात् ग्रन्थ आतकामरकार्य मंगलाय भवतु ।

उपर्युक्त पुष्पिकाओं से स्पष्ट है कि चारों पुस्तकें कासगंज में लिखी गयीं जो सूकरक्षेत्र अर्थात् सोरों के निकट है। ये कल्याण संस्कृत विद्यालय के पण्डित कृष्णदत्त गौड़ के पास कासगंज में विद्यमान हैं। आज तो कासगंज सोरों से भी बड़ा नगर है जिसमें कासगंज सिटी और कासगंज जंकशन नामक नोर्थ ईस्ट रेलवे के दो स्टेशन हैं। सोरों भी रेल का स्टेशन है और कासगंज से लगभग आठ मील है।

(ङ) श्री मेवाराम मिश्र—यह कह देना असंगत न होगा कि आज से १०० वर्ष से अधिक पूर्व श्री मेवाराम मिश्र ने 'बधकौस्तुभ' नाम का चित्र-काव्य लिखा था। उनके पुत्र गणपति मिश्र सनाढ्य ब्राह्मण थे और उनकी संतति आज भी सोरों में बनीमिश्र कहलाती है। 'बधकौस्तुभ' का प्रकाशन बाढ़ीय संस्कृत कौंसिल के रजिस्ट्रार डॉ॰ मंगलदेव शास्त्री के सहयोग से पटना के श्री हरिनारायण शर्मा ने १९२८ ई॰ में किया था। मेवाराम जी ने अपना निवास सूकर-क्षेत्र में बताया है और सम्पादकों ने इस क्षेत्र का तादात्म्य सोरों से किया है। उद्धरण इस प्रकार है

'बंधकौस्तुभ नामायं ग्रन्थः सूकरक्षेत्र (सोरों जि॰ एटा यू॰ पी॰) वासिना मिश्रवरेण श्री मेवाराममिश्रेण विरचित इति पंचसमाप्तौ ८७ तमात् श्लोकादवगम्यते ग्रस्य निर्माणं प्राचेन शत-वर्ष वर्षेभ्यः पूर्वमेवाभूदिति
श्री मेवाराम मिश्रेण सूकरक्षत्र वासिना।
मतो प्रीत्यै चित्रकाव्यं कृतोऽयं बंधकौस्तुभः ॥ ८७ ॥

(च) मानस की टीकाएँ—रामचरितमानस के कुछ टीकाकारों ने सूकरखेत का तादात्म्य सोरों से किया है। हिन्दू प्रेस के छपे हुए 'रामचरित मानस' के दो सटीक संस्करण कासगंज में विद्यमान हैं। एक तो १९१७ वि॰ का और दूसरा १९२८ वि॰ का है। पहले में सूकरखेत का अर्थ सोरों और दूसरे में सोरों गंगाघाट बताया गया है। १९२८ वि वाले संस्करण में बालकाण्ड अयोध्याकाण्ड अरण्यकाण्ड किष्किन्धा काण्ड लंकाकाण्ड उत्तरकाण्ड पंचावली और कोष विद्यमान हैं। उसके बालकाण्ड के चतुर्थ पृष्ठ पर 'नरहरि' का अर्थ करते समय 'नरहरिदास वाराह क्षेत्र निवासी और गोस्वामी तुलसीदास का गुरु' और तीसवें पृष्ठ पर सूकर-खेत की व्याख्या इस प्रकार है सूकर खेत=गंगातीर सोरों घाट जहाँ बराह अवतार भयो'। बाबू किशनलाल ने भी बम्बई से प्रकाशित अपनी टीका में सूकरखेत का अर्थ सोरों ही किया है जो १९६६ वि॰ में छपी थी।

(छ) सरकारी विवरण—ब्रिटिश कालीन निम्नलिखित कतिपय सरकारी विवरणों के अनुसार भी जो समय समय पर प्रकाशित होते रहे सूकरखेत का तादात्म्य सोरों से होता है —

(अ) प्राचीनतम सरकारी विवरण 'आर्केलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया' है जो १८७१ ई॰ में प्रकाशित हुआ। उसके २६६वें पृष्ठ पर लिखा है कि सोरों एक बड़ा कसबा है जो गंगाजी के दक्षिण अथवा पश्चिमी तट पर बरेली-मथुरा के राज-पथ पर स्थित है। यह स्थान पहले उकलक्षेत्र कहा जाता था किन्तु वराहावतार द्वारा

(ख) श्री बडेर—श्री बी० एच० बडेर ने 'कल्याण' के रामायणांक में एक लेख ऐसा लिखा जिसका शीर्षक था 'रामायणकालीन स्थान-परिचय'। इस लेख में उन्होंने शूकर क्षेत्र और सोरों का तादात्म्य किया है पर सोरों को युक्त क्षेत्र बतलाया है। वे लिखते हैं —"यह स्थान एटा से उत्ताइस मील उत्तर-पूर्व की ओर है। कहते हैं इसी स्थान पर हिन्दी के युगनीत महाकवि तुलसीदास का बाल्यकाल में पालन-पोषण हुआ था"। बडेरजी ने तो विषय को बिल्कुल स्पष्ट कर दिया क्योंकि उनके अनुसार गोस्वामी तुलसीदास जी का न केवल अध्ययन अपितु पालन-पोषण भी यहीं हुआ।

(ग) श्री नन्दलाल दे—श्री नन्दलाल दे ने 'द ज्योग्रैफिकल डिक्शनरी ऑफ एंशेंट एण्ड मिडिवल इण्डिया' १८९९ ई० में प्रस्तुत की और उसके ८९वें पृष्ठ पर लिखा कि सूकर-क्षेत्र में हिन्दी के विख्यात कवि तुलसीदासजी का माता पिता द्वारा परित्यक्त होने पर बाल्यकाल में पालन-पोषण हुआ था।

(घ) श्री जगदीश मुखोपाध्याय—श्री जगदीश मुखोपाध्याय ने १८९८ ई० में 'आईने अकबरी' का जो संस्करण निकाला था उसके ७१८ वें पृष्ठ की पाद टिप्पणी में लिखा है कि सोरों एटा जिले का एक नगर है। इसे सूकरक्षेत्र कहते हैं। सोरों की 'बुढ़ गंगा' तो 'बुढ़ गंगा' का बिगड़ा रूप है, क्योंकि बुढ़ गंगा भागीरथी गंगा का पुराना मंझार है गंगाजी यहाँ से हट गयी हैं।

(ङ) श्री जनकजी पाँडजी—ने राधाकृष्णदास के 'नागर समुच्चय' जीवन चरित के पृष्ठ २१ से नागरीदास जी के यात्रा-विवरण को इस प्रकार उद्धृत किया है कि 'वहाँ से श्री जमुना जी का स्नान करके सोरों में आकर रहे। यह स्थान जिला एटा में है। यहाँ बुढ़ गंगा जी का स्नान किया। यहीं भगवान् का श्री वराहअवतार हुआ है। हिरण्याक्ष को मारा है। इसका उपनाम उकलक्षेत्र और दूसरा शूकरक्षेत्र है।"

(च) कुछ पुष्पिकाएँ—कुछ ऐसी पुस्तकें विद्यमान हैं जो सूकरक्षेत्र में अथवा उसके निकट लिखी गयीं। उन की पुष्पिकाओं से सोरों और सूकरक्षेत्र का तादात्म्य स्पष्ट है। पुष्पिकाएँ इस प्रकार हैं

(अ) ज्ञान स्वरोदय। इति श्री चरनदास कृत ज्ञान स्वरोदय सम्पूर्णम्। श्री शुभमस्तु संवत् १९०१ शाके १७६८ तत्र वैशाख मासे शुक्ल पक्षे तिथौ प्रथम तृतीयायां भौम वासरे लिखितं ब्राह्मण सदारामेण ग्राम कासगंज मध्ये श्री सोरों सूकर क्षेत्र समीपे।

(आ) केशवी पद्धति सोदाहरण। संवत् १९१५ शाके १७६१ तत्र वर्षे माघ मासे कृष्ण पक्षे तिथी ९ षष्ठ्याम् भौमवासरे लिखितं विप्र सदारामेण कासगंज मध्ये श्री शूकरक्षेत्र समीपे। शुभमस्तु।

(इ) सर्वतोभद्र। इति श्री सर्वतोभद्रसमाप्तम्। मंगलमस्तु लिखितं विप्र सदा रामेण ग्राम कासगंज मध्ये श्री शूकरक्षेत्र समीपे संवत् १९१८ फाल्गुण कृष्णा २ भौम वासरे। श्री रामाय नमः।

(ई) जातकाभरण। इति श्री दैवज्ञ ढुंढिराज विरचिते जातकाभरणे रवी जातकाध्याय। ११। १७१९। शुभमस्तु। कैल्याणमस्तु। संवत् १९११ वसरैऽग्नि नवनाग भूमिते माघके सित द्वितीयया तिथौ। भौमिनेऽर्क दिवसे दिवाग्निते लिख्यते

ज़िमवरैस नामक । १ । कासगंज पुरे सूकरक्षेत्र समीपे थी हरे- प्रसादात् समाप्तिम गमत् ग्रन्थ यावत्कामरमास्त्वं मंगलाय भवतु ।

उपर्युक्त पुष्पिकाओं से स्पष्ट है कि चारों पुस्तकें कासगंज में लिखी गयी जो सूकरक्षेत्र अर्थात् सोरों के निकट है। ये कल्याण संस्कृत विद्यालय के पण्डित कृष्णदत्त गौड़ के पास कासगंज में विद्यमान हैं। आज तो कासगंज सोरों से भी बड़ा नगर है, जिसमें कासगंज सिटी और कासगंज जंक्शन नामक नॉर्थ ईस्ट रेलवे के दो स्टेशन हैं। सोरों भी रेल का स्टेशन है और कासगंज से लगभग आठ मील है।

(ड) श्री मेवाराम मिश्र—यह कह देना असंगत न होगा कि आज से १०० वर्ष से अधिक पूर्व श्री मेवाराम मिश्र ने 'वैद्यकौस्तुभ' नाम का चित्र-काव्य लिखा था। उनके पुत्र गणपति मिश्र सनाढ्य ब्राह्मण थे और उनकी संतति आज भी सोरों में गनीमिश्र कहलाती है। 'वैद्यकौस्तुभ' का प्रकाशन काशीय संस्कृत कॉलेज के रजिस्ट्रार डॉ॰ मंगलदेव शास्त्री के सहयोग से पटना के श्री हरिनारायण शर्मा ने १९२८ ई॰ में किया था। मेवाराम जी ने अपना निवास सूकर-क्षेत्र में बताया है और सम्पादकों ने इस क्षेत्र का तादात्म्य सोरों से किया है। उद्धरण इस प्रकार है

वैद्यकौस्तुभ नामायं ग्रन्थः सूकरक्षेत्र (सोरों जि॰ एटा यू॰ पी॰)
वासिना मिश्रवरेण श्री मेवाराममिश्रेण विरचित इति ग्रंथसमाप्तो ८७ समस्
श्लोकाश्चसम्पन्नौ ग्रन्थ निर्माणे प्रादेष शत-नय वर्षेभ्यः पूर्वमेवामूदिति"
'श्री मेवाराम मिश्रेण सूकरक्षेत्र वासिना।
मतो ग्रोक्तं चित्रकाव्यं हर्षोत्थं वैद्यकौस्तुभ' ॥ ८७ ॥"

(ढ) मानस की टीकाएँ—रामचरितमानस के कुछ टीकाकारों ने सूकरक्षेत्र का तादात्म्य सोरों से किया है। हिन्दू प्रेस के छपे हुए 'रामचरित मानस' के दो सटीक संस्करण कासगंज में विद्यमान हैं। एक तो १९१७ वि॰ का और दूसरा १९२८ वि॰ का है। पहले में सूकरखेत का अर्थ सोरों और दूसरे में सोरों गंगाघाट बताया गया है। १९२८ वि॰ वाले संस्करण में बालकाण्ड अयोध्याकाण्ड अरण्यकाण्ड किष्किन्धा काण्ड लंकाकाण्ड उत्तरकाण्ड पदावली और कोष विद्यमान हैं। उसके बालकाण्ड के चतुर्थ पृष्ठ पर 'नरहरि' का अर्थ करते समय 'नरहरिदास वाराह क्षेत्र निवासी और गोस्वामी तुलसीदास का गुरु और उन्नीसवें पृष्ठ पर सूकर-खेत की व्याख्या इस प्रकार है 'सूकर खेत=गंगातीर सोरों घाट जहाँ वराह अवतार भयो'। बाबू विजयलाल ने भी बम्बई से प्रकाशित अपनी टीका में सूकरखेत का अर्थ सोरों ही किया है जो १९२१ वि॰ में छपी थी।

(ण) सरकारी विवरण—ब्रिटिश कालीन निम्नलिखित कतिपय सरकारी विवरणों के अनुसार भी जो समय समय पर प्रकाशित होते रहे, सूकरखेत का तादात्म्य सोरों से होता है —

(क) प्राचीनतम सरकारी विवरण 'पार्लमेण्टियरी वर्क्स ऑफ इण्डिया' है जो १८०१ ई॰ में प्रकाशित हुआ। उसके २११वें पृष्ठ पर लिखा है कि सोरों एक बड़ा कस्बा है जो गंगाजी के दक्षिण अथवा पश्चिमी तट पर बरेली-मथुरा के राजपथ पर स्थित है। यह स्थान पहले उग्रक्षेत्र कहा जाता था किन्तु वराहअवतार

(ख) श्री बडेर—श्री बी० एच० बडेर ने 'कल्याण' के रामायणांक में एक लेख दिया जिसका शीर्षक था 'रामायणकालीन स्थान-परिचय'। इस लेख में उन्होंने उक्त क्षेत्र और सोरों का तादात्म्य किया है पर सोरों को शूकर क्षेत्र बतलाया है। वे लिखते हैं —"यह स्थान एटा से सत्ताइस मील उत्तर-पूर्व की ओर है। कहते हैं इसी स्थान पर हिन्दी के सुप्रसिद्ध महाकवि तुलसीदास का बाल्यकाल में पालन-पोषण *हुआ था*"। बडेरजी ने तो विषय को बिल्कुल स्पष्ट कर दिया क्योंकि उनके अनुसार गोस्वामी तुलसीदास जी का न केवल अध्ययन अपितु पालन-पोषण भी यहीं हुआ।

(ग) श्री नखलाल दे—श्री नखलाल दे ने 'द ज्याग्रैफिकल डिक्शनरी ऑव एंशेंट एण्ड मिडिवल इण्डिया' १८९९ ई० में प्रस्तुत की और उसके ८१वें पृष्ठ पर लिखा कि सूकर-क्षेत्र में हिन्दी के विख्यात कवि तुलसीदासजी का माता-पिता द्वारा परित्यक्त होने पर बाल्यकाल में पालन-पोषण हुआ था।

(घ) श्री जगदीश मुखोपाध्याय—श्री जगदीश मुखोपाध्याय ने १८६८ ई० में 'भक्ति भक्तरी' का जो संस्करण निकाला था उसके ७६८ वें पृष्ठ की पाद टिप्पणी में लिखा है कि सोरों एटा जिले का एक नगर है। इसे सूकरक्षेत्र कहते हैं। सोरों की *'बूढ़ गंगा'* तो *'वृद्ध गंगा'* का विकृत रूप है, क्योंकि बूढ़ गंगा भागीरथी गंगा का पुराना मंझार है गंगाजी यहीं से हट गयी हैं।

(ङ) श्री जानकी पांडेयजी—ने राधाकृष्णदास के 'नागर समुच्चय' जीवन चरित के पृष्ठ २१ से नागरीदास जी के यात्रा-विवरण को इस प्रकार उद्धृत किया है कि 'वहाँ से श्री यमुना जी का स्नान करके सोरों में आकर रहे। यह स्थान जिला एटा में है। यहाँ बूढ़ गंगा जी का स्नान किया। यहीं भगवान् का श्री वराहवतार हुआ है। हिरण्याक्ष को मारा है। इसका उपनाम शूकरक्षेत्र और दूसरा सूकरक्षेत्र है।"

(च) कुछ पुष्पिकाएँ—कुछ ऐसी पुस्तकें विद्यमान हैं जो सूकरक्षेत्र में अथवा उसके निकट लिखी गयीं। उन की पुष्पिकाओं से सोरों और सूकरक्षेत्र का तादात्म्य स्पष्ट है। पुष्पिकाएँ इस प्रकार हैं

(अ) ज्ञान स्वरोदय। इति श्री चरणदास कृत ज्ञान स्वरोदय सम्पूर्णम्। श्री शुभमस्तु संवत् १९०३ शाके १७६८ तत्र वैशाख मासे शुक्ल पक्षे तिथौ अक्षय तृतीयायां भौम वासरे लिखितं ब्राह्मण सदारामेण ग्राम कासगंज मध्ये श्री सोरों शूकर क्षेत्र समीपे।

(आ) कैवल्य पद्धति सोदाहरण। संवत् १८२८ शाके १७९३ तत्र वर्षे माघ मासे कृष्ण पक्षे तिथौ ९ पञ्च्याम् भौमवासरे लिखितं विप्र सदारामेण कासगंज मध्ये श्री सूकरक्षेत्र समीपे। शुभमस्तु।

(इ) सर्वतोभद्र। इति श्री सर्वतोभद्रभाष्यम्। मंगलमस्तु लिखितं विप्र सदा रामेण ग्राम कासगंज मध्ये श्री शूकरक्षेत्र समीपे संवत् १८२८ फाल्गुण कृष्णा २ भौम वासरे। श्री रामाय नमः।

(ई) जातकाभरण। इति श्री दैवज्ञ ढुंढिराज विरचिते जातकाभरणे स्त्री जातकाध्यायः। ३१। १७१८। शुभमस्तु। कल्याणमस्तु। संवत् १८९१ शरसेंद्रीन नगनाग भूमिते श्रावणे सित द्वितीयायां तिथौ। *योगिनेत्रर्क्ष दिवसे लिखामिते लिख्यते*

द्विजवरेण माधव । १ । कासगंज पुरे सूकरक्षेत्र समीपे श्री हरेः प्रसादात् समाप्तिम यात् ग्रन्थ बालकामरत्नाख्यं मंगलाय भवतु ।

उपर्युक्त पुष्पिकाओं से स्पष्ट है कि चारों पुस्तकें कासगंज में लिखी गयीं जो सूकरक्षेत्र अर्थात् सोरों के निकट है । ये कल्याण संस्कृत विद्यालय के पण्डित कृष्णदत्त गौड़ के पास कासगंज में विद्यमान हैं । आज तो कासगंज सोरों से भी बड़ा नगर है, जिसमें कासगंज सिटी और कासगंज जंक्शन नामक नॉर्थ ईस्ट रेलवे के दो स्टेशन हैं । सोरों भी रेल का स्टेशन है और कासगंज से लगभग आठ मील है ।

(ख) श्री मेवाराम मिश्र—यह कह देना असंगत न होगा कि आज से १०० वर्ष से अधिक पूर्व श्री मेवाराम मिश्र ने 'वैद्यकौस्तुभ' नाम का चित्र-काव्य लिखा था । उनके पुत्र गणपति मिश्र सनाढ्य ब्राह्मण थे और उनकी सन्तति आज भी सोरों में गनीमिश्र कहलाती है । 'वैद्यकौस्तुभ' का प्रकाशन काशीय संस्कृत कौंसिल के रजिस्ट्रार डॉ० मंगलदेव शास्त्री के सहयोग से पटना के श्री हरिनारायण शर्मा ने १९२८ ई० में किया था । मेवाराम जी ने अपना निवास सूकर-क्षेत्र में बताया है और संपादकों ने इस क्षेत्र का तादात्म्य सोरों से किया है । उद्धरण इस प्रकार है

'वैद्यकौस्तुभ नामाय ग्रन्थ सूकरक्षेत्र (सोरों जि० एटा यू० पी०)
वासिना मिश्रवरेण श्री मेवाराममिश्रेण विरचित इति ग्रंथसमाप्तो ८७ समात्
श्लोकात्मकमध्यते अस्य निर्माण प्रायेण शत-त्रय वर्षेभ्यः पूर्वमेवाभूदिति'
'श्री मेवाराम मिश्रेण सूकरक्षेत्र वासिना ।
कृतो प्रीत्यै चित्रकाव्य श्लोकोऽयं वैद्यकौस्तुभ ॥ ८७ ॥"

(ग) मानस की टीकाएं—रामचरितमानस के कुछ टीकाकारों ने सूकरखेत का तादात्म्य सोरों से किया है । हिन्दू प्रेस के छपे हुए 'रामचरित मानस' के दो सटीक संस्करण कासगंज में विद्यमान हैं । एक तो १९१७ वि का और दूसरा १९२८ वि० का है । पहले में सूकरखेत का अर्थ सोरों और दूसरे में सोरों गंगाघाट बताया गया है । १९२८ वि० वाले संस्करण में बालकाण्ड अयोध्याकाण्ड अरण्यकाण्ड किष्किन्धा काण्ड लंकाकाण्ड उत्तरकाण्ड पंचावली और कोष विद्यमान हैं । उसके बालकाण्ड के चतुर्थ पृष्ठ पर 'नरहरि' का अर्थ करते समय नरहरिदास वाराह क्षेत्र निवासी और गोस्वामी तुलसीदास का गुरु और इक्कीसवें पृष्ठ पर सूकर-खेत की व्याख्या इस प्रकार है 'सूकर खेत=गंगातीर सोरों घाट जहाँ वराह अवतार भयो' । बाबू शिवलाल ने भी बम्बई से प्रकाशित अपनी टीका में सूकरखेत का अर्थ सोरों ही किया है जो १९२९ वि० में छपी थी ।

(घ) सरकारी विवरण—ब्रिटिश कालीन निम्नलिखित कतिपय सरकारी विवरणों के अनुसार भी जो उनय समय पर प्रकाशित होते रहे सूकरखेत का तादात्म्य सोरों से होता है —

(च) प्राचीनतम सरकारी विवरण 'आर्केलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया' है जो १८७१ ई० में प्रकाशित हुआ । उसके २५६वें पृष्ठ पर लिखा है कि सोरों एक बड़ा कस्बा है जो गंगाजी के दक्षिण अथवा पश्चिमी तट पर बरेली-मथुरा के राज-पथ पर स्थित है । यह स्थान पहले ऊकलक्षेत्र कहा जाता था किन्तु वराहावतार द्वारा

(च) श्री बडेर—श्री बी० एच० बडेर ने 'कल्याण' के रामायणांक में एक लेख दिया जिसका शीर्षक था 'रामायणकालीन स्थान-परिचय'। इस लेख में उन्होंने उकल क्षेत्र और सोरों का तादात्म्य किया है पर सोरों को शूकर क्षेत्र बतलाया है। वे लिखते हैं — 'यह स्थान एटा से सत्ताइस मील उत्तर-पूर्व की ओर है। कहते हैं इसी स्थान पर हिन्दी के युगनीय महाकवि तुलसीदास का बाल्यकाल में पालन-पोषण हुआ था"। बडेरजी ने तो विषय को बिल्कुल स्पष्ट कर दिया क्योंकि उनके अनुसार गोस्वामी तुलसीदास जी का न केवल अध्ययन अपितु पालन-पोषण भी यहीं हुआ।

(छ) श्री नन्दलाल दे—श्री नन्दलाल दे ने 'द ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ एंशेंट एण्ड मिडिवल इण्डिया' १८९९ ई० में प्रस्तुत की और उसके ८१वें पृष्ठ पर लिखा कि सूकर-क्षेत्र में हिन्दी के विख्यात कवि तुलसीदासजी का माता पिता द्वारा परित्यक्त होने पर बाल्यकाल में पालन-पोषण हुआ था।

(ज) श्री जगदीश मुखोपाध्याय—श्री जगदीश मुखोपाध्याय ने १८९८ ई० में 'भारति चकवरी' का जो संस्करण निकाला था उसके ७१८ वें पृष्ठ की पाद टिप्पणी में लिखा है कि सोरों एटा जिले का एक नगर है। इसे सूकरक्षेत्र कहते हैं। सोरों की बूढ़ गंगा तो 'वृद्ध गंगा' का विकृत रूप है, क्योंकि बूढ़ गंगा भागीरथी गंगा का पुराना कछार है गंगाजी यहाँ से हट गयी हैं।

(ट) श्री रामदत्त पांडेय—ने राधाकृष्णदास के 'नागर समुच्चय' जीवन चरित के पृष्ठ २१ से नागरीदास जी के यात्रा-विवरण को इस प्रकार उद्धृत किया है कि 'यहाँ से श्री यमुना जी का स्नान करके सोरों में आकर रहे। यह स्थान जिला एटा में है। यहाँ बूढ़ गंगा जी का स्नान किया। यहीं भगवान् का श्री वराहावतार हुआ है। हिरण्याक्ष को मारा है। इसका उपनाम उकलक्षेत्र और दूसरा सूकरक्षेत्र है।

(ठ) कुछ पुष्पिकाएँ—कुछ ऐसी पुस्तकें विद्यमान हैं जो सूकरक्षेत्र में अथवा उसके निकट लिखी गयीं। उन की पुष्पिकाओं से सोरों और सूकरक्षेत्र का तादात्म्य स्पष्ट है। पुष्पिकाएँ इस प्रकार हैं

(अ) ज्ञान स्वरोदय। इति श्री चरणदास कृत ज्ञान स्वरोदय सम्पूर्णम्। श्री शुभमस्तु संवत् १९०१ शाके १७६६ तत्र वैशाख मासे शुक्ल पक्षे तिथौ प्रथम तृतीयायां भौम वासरे लिखितं ब्राह्मण रुद्रारामेण ग्राम कासगंज मध्ये श्री सोरों सूकर क्षेत्र समीपे।

(आ) केशरी पद्धति सोदाहरण। संवत् १८९६ शाके १७६१ तत्र कार्य माघ मासे कृष्ण पक्षे तिथौ १ चतुर्थ्याम् सोमवासरे लिखितं मिश्र रुद्रारामेण कासगंज मध्ये श्री सूकरक्षेत्र समीपे। शुभमस्तु।

(इ) सर्वतोभद्र। इति श्री सर्वतोभद्रसमाप्तम्। मंगलमस्तु लिखितं मिश्र रुद्रारामेण ग्राम कासगंज मध्ये श्री सूकरक्षेत्र समीपे संवत् १८९८ फाल्गुन कृष्णा ९ भौम वासरे। श्री रामाय नमः।

(ई) बालकाभरण। इति श्री दैवज्ञ ढुंढिराज विरचिते बालकाभरणे दशमी बालकाध्याय। ११। १७१८। शुभमस्तु। कल्याणमस्तु। संवत् १८९१ वत्सरेऽस्मिन नयनाग भूमिते माघमे सित द्वितीयगा तिथौ। योगिनीमेऽर्क दिवसे लिखापितं लिखते

द्विजवरेण मार्गे । १ । कासगंज पुरे सूकरक्षेत्र समीपे श्री हरेः प्रसादात् समाप्तिम गात् ग्रन्थ आवकामरत्यार्थं मंगलाय भवतु ।

उपर्युक्त पुष्पिकाओं से स्पष्ट है कि चारों पुस्तकें कासगंज में लिखी गयीं जो सूकरक्षेत्र अर्थात् सोरों के निकट है। ये कस्माण संस्कृत विद्यालय के पण्डित कृष्णदत्त गौड़ के पास कासगंज में विद्यमान हैं। आज तो कासगंज सोरों से भी बड़ा नगर है, जिसमें कासगंज सिटी और कासगंज जंक्शन नामक नॉर्थ ईस्ट रेलवे के दो स्टेशन हैं। सोरों भी रेल का स्टेशन है और कासगंज से लगभग आठ मील है।

(ङ) श्री मेधाराम मिश्र—यह कह देना असंगत न होगा कि आज से १०० वर्ष से अधिक पूर्व श्री मेधाराम मिश्र ने 'वैद्यकौस्तुभ' नाम का चित्र-काव्य लिखा था। उनके पुत्र गणपति मिश्र सनाढ्य ब्राह्मण थे और उनकी संतति आज भी सोरों में धनीमिश्र कहलाती है। 'वैद्यकौस्तुभ' का प्रकाशन काशीय संस्कृत कौंसिल के रजिस्ट्रार डॉ॰ मंगलदेव शास्त्री के सहयोग से पटना के श्री हरिनारायण शर्मा ने १९२८ ई॰ में किया था। मेधाराम जी ने अपना निवास सूकर-क्षेत्र में बताया है और संपादकों ने इस क्षेत्र का तादात्म्य सोरों से किया है। उद्धरण इस प्रकार है

"वैद्यकौस्तुभ नामायं ग्रन्थः सूकरक्षेत्र (सोरों जि॰ एटा यू॰ पी॰)
वास्तिना विप्रवरेण श्री मेधाराममिश्रेण विरचित इति ग्रन्थसमाप्तौ ८७ तमम्
श्लोकात्तरवर्त्यवती यस्य निर्माणं प्रायेण शत-त्रय वर्षेभ्यः पूर्वमेवाभूदिति
'श्री मेधाराम मिश्रेण सूकरक्षेत्र वासिना ।
सतां प्रीत्यै चित्रकाव्यं कृतोऽयं वैद्यकौस्तुभः ॥ ८७ ॥

(च) मानस की टीकाएँ—रामचरितमानस के कुछ टीकाकारों ने सूकरखेत का तादात्म्य सोरों से किया है। हिन्दू प्रेस के छपे हुए 'रामचरित मानस' के दो सटीक संस्करण कासगंज में विद्यमान हैं। एक तो १९१७ वि॰ का और दूसरा १९२८ वि॰ का है। पहले में सूकरखेत का अर्थ सोरों और दूसरे में सोरों गंगाघाट बताया गया है। १९२८ वि॰ वाले संस्करण में बालकाण्ड अयोध्याकाण्ड अरण्यकाण्ड किष्किन्धा काण्ड लंकाकाण्ड उत्तरकाण्ड रामावली और कोष विद्यमान हैं। उसके बालकाण्ड के चतुर्थ पृष्ठ पर 'नरहरि' का अर्थ करते समय 'नरहरिदास बाराह क्षेत्र निवासी और गोस्वामी तुलसीदास का गुरु' और इक्कीसवें पृष्ठ पर सूकर-खेत की व्याख्या इस प्रकार है 'सूकर खेत=गंगातीर सोरों घाट जहाँ बराह अवतार भयो'। बाबू किशनलाल ने भी बम्बई से प्रकाशित अपनी टीका में सूकरखेत का अर्थ सोरों ही किया है जो १९५९ वि॰ में छपी थी।

(छ) सरकारी विवरण—ब्रिटिश कालीन निम्नलिखित कतिपय सरकारी विवरणों के अनुसार भी जो समय समय पर प्रकाशित होते रहे सूकरखेत का तादात्म्य सोरों से होता है —

(अ) प्राचीनतम सरकारी विवरण 'आर्कॅलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया' है जो १८७१ ई॰ में प्रकाशित हुआ। उसके २६६वें पृष्ठ पर लिखा है कि सोरों एक बड़ा कस्बा है जो गंगाजी के दक्षिण अथवा पश्चिमी तट पर बरेली-मथुरा के राज-पथ पर स्थित है। यह स्थान पहले ऊकलक्षेत्र कहा जाता था किन्तु वराहावतार द्वारा

दैत्य हिरण्याक्ष के वध के पश्चात् इसका नाम सूकर-क्षेत्र अर्थात् सुकर्म-क्षेत्र पड़ गया। सोरों में बहुत मन्दिर हैं उनमें से कतिपय प्राचीन हैं। किन्तु महत्त्वपूर्ण मन्दिर तो सीतारामजी का है जो टीले पर है और वराहजी का भी जो नगर के उत्तर-पश्चिम में विद्यमान है। द्वितीय मन्दिर के निकट मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को एक बड़ा वार्षिक मेला लगता है और इस मन्दिर में लक्ष्मी-वराह की प्रतिमाएँ हैं।

(आ) स्टैटिस्टिकल डिस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टोरिकल अकाउंट—इसी प्रकार का विवरण 'स्टैटिस्टिकल डिस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टोरिकल एकाउंट' (एन॰ डब्ल्यू॰ पी॰ आगरा डिवीजन की चतुर्थ जिल्द में) १८७६ ई॰ में, तथा कुछ अधिक सूचनाओं के साथ 'द इम्पीरियल गजेटियर ऑव इण्डिया' में प्रकाशित हुआ। इस गजेटियर का द्वितीय संस्करण १८८५ ई॰ में और नवीन संस्करण १९०८ ई॰ में हुआ था। द्वितीय संस्करण के सत्तानवें पृष्ठ पर विवरण उपलब्ध है। नवीन संस्करण की तेइसवीं जिल्द से निम्नलिखित कुछ उद्धरण रोचक प्रतीत होंगे

सोरों उत्तर प्रदेश के एटा जिले की कासगंज तहसील में एक कस्बा है जो बूढ़गंगा के तट और २७°५४′उ॰ तथा ७८°४५′ पू॰ अक्षांशों पर स्थित है। १९०१ की जन-संख्या १२१७४ है। सोरों अत्यन्त प्राचीन स्थान है। जनश्रुति के अनुसार इसका नाम उक्कलक्षेत्र था किन्तु विष्णुजी के वराहावतार-द्वारा हिरण्यकश्यप नामक दैत्य के वध के पश्चात् उसका नाम बदल कर सूकर-क्षेत्र रख दिया गया। 'सूकर' जंगली सूअर का पर्याय है। टीले पर सीतारामजी का मन्दिर और मुसलमान फकीर शेख जमाल की समाधि है। औरंगजेब के शासन-काल में यह मन्दिर नष्ट कर दिया गया किन्तु पर उसी के अन्त में एक धनी वैश्य ने इसका पुनरुद्धार कर दिया। सत्रहवीं शताब्दी तक गंगाजी उसी मार्ग से बहती थीं जिसे अब बूढ़ी गंगा कहते हैं। यात्री लोग मथुरा दर्शन के पश्चात् सोरों में स्नान के निमित्त आते हैं। यहाँ सरोवर, सुन्दर मन्दिर और घाट बने हुए हैं। आजकल इस सरोवर में गंगा से जल आता है, किन्तु महत्त्वपूर्ण स्नान तो गंगाजी में ही होता है जो सोरों से चार मील उत्तर है।

(इ) इम्पीरियल गजेटियर आदि—यह बात द्रष्टव्य है कि पहले दो विवरणों में 'सूकर' का अर्थ भ्रम से सुकृत कर दिया गया था किन्तु यह भूल तीसरे विवरण में सुधार दी गई थी अर्थात् 'सूकर' का अर्थ 'सूअर' कर दिया गया है किन्तु अन्तिम दो में एवं एटा-जिला गजेटियर में भी भूल से हिरण्याक्ष के स्थान पर हिरण्यकश्यप लिख दिया गया है यद्यपि आर्केलोजिकल सर्वे ऑव इण्डिया में शुद्ध रूप ही था। इम्पीरियल गजेटियर के द्वितीय संस्करण में लिखा है कि सोरों का विशेष महत्त्व वाणिज्य यात्रा और मेले से सम्बद्ध है।

(ई) एटा डिस्ट्रिक्ट गजेटियर—१८७५ ई॰ में ई॰ टी॰ एटकिंसन ने एटा डिस्ट्रिक्ट गजेटियर प्रस्तुत किया और १९११ में ई॰ आर॰ नीव ने एच॰ जी॰ डब्ल्यू॰ रॉबर्ट्स के बन्दोबस्त-विवरण तथा कतिपय जिलाधिकारियों की संगृहीत सामग्री के आधार पर उसका संशोधन भी। जैसा कि होना चाहिए, इस संशोधित संस्करण में सोरों का इतिहास तथा अन्य विवरण अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से दिया गया है।

२२३वें से २२६वें पृष्ठ तक जो विवरण दिये गये हैं उनका कुछ आशय नीचे दिया जाता है

सोरों का मूल नाम उकल क्षेत्र था जो विष्णुजी के वराहावतार-द्वारा हिरण्यकश्यप के वध के पश्चात् सूकरक्षेत्र (अर्थात् वन्य सूअर का स्थान) नाम में परिवर्तित हो गया। प्राचीन कस्बा तो दूर के खेड़े पर बसा हुआ है। यह नगर गंगाजी के प्राचीन ऊँचे तट पर स्थित है जहाँ कि, कहते हैं यह नदी कई सौ वर्ष पहले बहती थी। इस खेड़े पर सीतारामजी का मन्दिर और शेख जमाल की समाधि विद्यमान है। यह मन्दिर बड़े आकार की नग्न इष्टिकाओं से परिपूर्ण है और प्राचीरों की नींव सब दिशाओं में लक्षित होती है। जनश्रुति है कि ये राजा सोमदत्त के युग के अवशेष हैं। मूल बस्ती तो उनसे भी प्राचीनतर उस राजा वेन चक्रवर्ती की है जिसके विषय में उत्तर बिहार अवध और रुहेलखंड में गाथाएँ प्रचलित हैं। सोरोंवालों की अनुश्रुति के अनुसार उसका स्थापक उन्हीं का एक नेता सोमदत्त था। यद्यपि बहुत से मन्दिर अत्यन्त प्राचीन कहे जाते हैं, तथापि सीतारामजी के एवं नगर के ईशान में स्थित वराहजी के मन्दिर की विशेष महत्ता है। इस मन्दिर में लक्ष्मी-वराह की प्रतिमाएँ स्थापित हैं और भगवान् वराह की स्मृति में मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को यात्रियों की भीड़ दर्शनार्थ आती है। कहा जाता है कि सीतारामजी के मन्दिर को औरंगजेब ने नष्ट कर दिया और १८०७ में एक धनाढ्य वैश्य ने स्तम्भों को स्थापित कर और नवल भित्ति बनवाकर उसका पुनरुद्धार कर दिया था। इन स्तम्भों की पद्धति वैसी ही है जैसी दिल्ली में कुतुब मसजिद के अग्नि कोपस्थ स्तम्भों की। एक स्तम्भ पर प्राचीन और स्पष्ट संवत् १२२६ उत्कीर्ण है, अतएव मन्दिर का निर्माण १००० ई० के पश्चात् नहीं होना चाहिए। जनरल कनिंघम ने उन पर यात्रियों के इन उत्कीर्ण लेखों के सम्बन्ध में लिखा है कि यद्यपि ये साधारणतः संक्षिप्त और रुचिहीन हैं तथापि संख्या में चालीस से कम नहीं हैं, और उन पर जो संवत् पड़े हैं वे ११६९ ई० और १५११ ई० के अन्तर्गत हैं। अतएव मन्दिर के इतिहास का पता लगाने के लिए इनका महत्व है। मुसलिम विजय के पश्चात् सब से पहला विवरण सन् १२४१ ई० का है और तब से लेकर १२९० ई० तक कम से कम पन्द्रह ऐसे विवरण हैं जिनमें संवतों का उल्लेख है। अतः अवश्य ही गोरी वंश काल में जिसका अन्त १२८९ ई० में हुआ था अधिक यात्री सोरों आते रहे होंगे। किन्तु उसके पश्चात् खिलजी और तुगलकों के शासन काल का केवल एक उत्कीर्ण लेख १३७५ ई० का है जो फीरोज-कालीन है। इस काल के आधे भाग में निर्दय और निरंकुश अलाउद्दीन खिलजी ने एवं नृशंस उन्मत्त मुहम्मद तुगलक ने शासन किया था। अतएव ऐसी कल्पना उचित प्रतीत होती है कि मुसलमान शासकों के अत्याचार से धार्मिक यात्राओं में अड़चन पड़ी। दूसरा लेख १४२६ ई० का है और तब से १५११ ई० तक सोलह संवत्-लेख मिलते हैं। इनमें से तेरह बहलोल लोदी के शासन-काल के हैं। अतएव कनिंघम का अनुमान है कि सय्यद-वंश का शासन हिन्दुओं की धार्मिक यात्राओं के पक्ष में न था। यह भी अनुमान है कि यह मन्दिर धर्मान्ध सिकन्दर लोदी के शासन में नष्ट कर दिया गया होगा क्योंकि लेखों का क्रम १५११ ई० में अर्थात् उसके शासन

के अन्त से ठीक एक वर्ष पूर्व समाप्त हो जाता है। यदि यह मन्दिर सहिष्णु अकबर, उदासीन जहाँगीर और राजनीतिज्ञ शाहजहाँ की सदी में विद्यमान होता तो निश्चय ही भाषा-सम्बन्धी कुछ विवरण मन्दिर के स्तम्भों पर उत्कीर्ण होता। इस कारण कनिंघम की धारणा है कि सोरों के विशाल मन्दिर का विनाश असहिष्णु औरंगजेब से पूर्व ही मानना चाहिए।

(उ) ट्रैवलर्स कम्पेनियन—रेलवे बोर्ड ने सन् १९११ तक खोज कर 'ट्रैवलर्स कम्पेनियन' प्रकाशित की। इसमें सोरों का इतिहास उसी प्रकार दिया गया है जिस प्रकार डिस्ट्रिक्ट गजेटियर में। इसमें भी धर्मशाला सराय प्रस्तर, पीपल पंडे आदि का एवं सोरों की मानीरथी पुण्य का उल्लेख मिलता है।

(ऊ) एनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट १६१६ ई०—मन्दिर की प्राचीनता—हिन्दू और बौद्ध भवनों के अधीक्षक राय बहादुर दयाराम साहनी ने ३१ मार्च १९११ को समाप्त होने वाले सन् की 'एनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट' में सोरों के सीताराम मन्दिर के ६६ उत्कीर्ण लेखों की सूची दी है। उनके विचार से सोरों का सबप्राचीन मन्दिर सीतारामजी का है। भवन रूप में मंडप विद्यमान है। देवायतन इसके पश्चिम में था जिसके अवशेष जनरल कनिंघम के समय में तो थे परन्तु अब लुप्त हो गए हैं यद्यपि खनन से नींव तो दृष्टिगोचर होती है। कनिंघम के विवरण से विदित होता है कि मंडप का पुनरुद्धार १८६७ में हुआ था। अब केवल एक छत अपने मौलिक रूप में विद्यमान है। उस पर चित्रकारी का विषय शिवविवाहोत्सव है। इसमें सन्देह नहीं कि यह मन्दिर मूलतः शैव-परिवार का होगा। उसका नाम 'सीतारामजी का मन्दिर' आधुनिक है जिसका मूल मन्दिर से कोई सम्बन्ध नहीं। मन्दिर के उत्कीर्ण लेख से यह प्रतीत हो सकता है कि यह मन्दिर वराहजी का होगा। साहनीजी कहते हैं कि पहले तो मैं उस वैष्णव लेख से इन वाले अंकित शैव दृश्यों का समन्वय नहीं कर सका किन्तु मेरा सन्देह इस बात से दूर हो गया कि जिस स्तम्भ पर वैष्णव लेख है वह मूलतः मन्दिर से बाहर की वस्तु है जो जीर्णोद्धार के समय १८६७ ई० में वहाँ लगा दिया गया होगा। साहनीजी ने कनिंघम की इस धारणा को दूर किया है कि यह मन्दिर सिकन्दर लोदी के समय में नष्ट किया गया था। इसका कारण यह है कि साहनीजी को १६२१ विक्रम संवत् का स्तम्भ लेख प्राप्त हुआ है जो अकबर के काल का है। अतएव साहनीजी की सम्मति में यह मन्दिर अकबर के काल तक विद्यमान था जो संभवतः औरंगजेब के द्वारा नष्ट किया गया होगा जैसा कि सोरों-निवासी भी कहते हैं। मैं साहनीजी से सहमत हूँ कि मन्दिर मूलतः शैवों का रहा होगा क्योंकि जैसा कि 'चालुक्य वंश प्रदीप' में लिखा है सोरों और अतिरंजी दोनों को ही चौलुक्य नरेश ने बसाया था और अतिरंजी में चार बहुत बड़े और प्राचीन शिवलिंग विद्यमान हैं।

सूकर-क्षेत्र की स्थिति—सूकरक्षेत्र की स्थिति पुराणों के अनुसार भागीरथी गंगा के तट पर बतायी गयी है। 'गर्ग संहिता' ने इसे कौशाम्बी रामतीर्थ और कर्ण-क्षेत्र के निकट बताया है। 'श्री विष्णुस्वामी चरितामृत' में यह स्थान संभल और बटेश्वर के बीच तथा कन्नौज कम्पिला और मथुरा के निकट बताया गया है। १०६२ तक वाले

शिलालेख से विदित होता है कि वह बिसराम और कालीनदी के पास है। कम्पिल निवासी शोध निधि ने 'वीरविनयसत' में सूकरखेत को कम्पिल पुरी के निकट माना है।

पांचाली की टेर सुनि धाय बढ़ायो चीर
हौं हूं तो पांचाल हूं फिर क्यों न हरत मो पीर।
सनमुखै सूकरखेत सुचि पावै तीनों धाम
मध्य लसै कम्पिल पुरी जन्मभूमि अभिराम।

सूकरक्षेत्र में चौलुक्य सोरकी और बघेले—सोरों में लोग कुकुकिया अथवा चिलकिया नामक स्थान का निर्देश करते हैं। यह स्थान सोरों में उस स्थान के निकट है जहां एक टीले पर महाप्रभु वल्लभाचार्य की बैठक विद्यमान है और जहां उन्होंने कई बार भागवत की कथा बांची थी। इन आचार्यजी के सोरों पधारने के उल्लेख श्री वल्लभ-दिग्विजय में हैं। —'सम्प्रदाय कल्पद्रुम' के पृष्ठ १० और ११ से भी स्पष्ट है कि ये आचार्य १५४९ वि० एवं १५५६ वि० में सोरों पधारे थे। कुकुकिया पर प्राचीन काल में एक ऋषि ने गंगाजी के किनारे निराहार केवल दस चुलुक जल पीकर बारह वर्ष तक घोर तपस्या की थी। जनश्रुति है कि चक्रवर्ती राजा वेन ने गंगाजी के किनारे सोरों में और कालीनदी के किनारे पतिरंजी में दो दुर्ग बनवाये। इस जनश्रुति का उल्लेख 'एटा गजेटियर' में है। 'नवीन भारत' में २१ सितम्बर १९४२ के लेख और तत्पश्चात् प्रकाशित 'चालुक्य वंश प्रदीप' से विदित होता है कि श्रीमदेव बघेला आमेर के राजा महाराज मानसिंह की सेवा में थे और उनकी मृत्यु के पश्चात् अपनी जन्मभूमि में जो कालीनदी के तीर पर स्थित पतिरजी खेड़े के निकट थी बस गये। बघेलाजी ने 'कच्छवाह कुल प्रदीप' और 'चौलुक्य वंश प्रदीप' नाम की दो पुस्तकें लिखीं। उनके लेख से स्पष्ट है कि चौलुक्यों की एक शाखा गंगा तीरस्थ सोरम के नाम पर सोरकियों की शाखा बन गई, और उनकी एक उपशाखा 'बघेला' नामक ग्राम के नाम पर 'बघेला' नाम से विख्यात हुई। कुछ लोगों की कल्पना है 'सोरंकी' शब्द 'सोरों' के सम्बन्धकारक का स्त्रीलिंग रूप है—सोरों+की। उनके लेख से यह भी स्पष्ट है कि आदि चौलुक का जिसे ब्रह्माजी ने चरवाल किया था वेनु नाम का पुत्र था जिसने सोरों और पतिरजी में दुर्ग बनाये। बघेलाजी के समय में भी पतिरंजी खेड़ा इसी प्रकार विद्यमान था जैसा आज है। इतिहास साक्षी है कि चालुक्यों ने अपने राज्य का विस्तार दक्षिण भारत तक किया। उनके झण्डों में गंगा यमुना और वराहजी की आकृतियां रहती थीं। कहने की आवश्यकता नहीं कि दक्षिण भारत में दोनों वंशों की मुद्राओं पर भी भगवान् वराह की आकृति रहती थी।

सूकरक्षेत्र का विस्तार—काल-गणना के अनुसार हिन्दू आजकल श्वेत-वराह-कल्प में जीवन-यापन करते हैं। सूकरस्थान का विस्तार सोरों से पतिरंजी एटा मथुरा और स्यात् अलीगढ़ तक है। अलीगढ़ का प्राचीन नाम कोइल संस्कृत के 'कोल' शब्द का स्मरण दिलाता है जिसका अर्थ वराह है। अलीगढ़ में मंकारी नाम का एक ग्राम है जहां से एक नवीन प्रकार की प्रतिमा प्राप्त हुई जिसका चित्र इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस के अलीगढ़-सम्मेलन के विवरण में १९४३ ई० में प्रकाशित हुआ था। इस विग्रह में विष्णु, नृसिंह और वराह की विभूति का समावेश है। सूकरक्षेत्र का

विस्तार समय पाकर केवल पाँच योजन रह गया जैसा निम्नलिखित श्लोक से विदित होता है —

> पंच योजन विस्तीर्णं सूकरे मम मन्दिरे।
> यास्मिन्वसति यो देवि वर्षमेकोऽपि वसुन्धरे ॥६॥
> त्रीणि हस्तसहस्राणि त्रीणि हस्तशतानि च।
> मध्ये हस्त विमानानि परिमाणं विधीयते ॥७॥
> (पद्म पुराण, उत्तर खण्ड अ० १२१)

सूकरक्षेत्र का विस्तार, कहते हैं, पूर्व में गणेशपुर (सहावर) पश्चिम में परमोरा (बरबारा), दक्षिण में कासगंज और उत्तर में बदरिया तक है। किन्तु प्राय कम सामान्यतः उसका विस्तार सोरों कस्बे तक ही है। गोस्वामी तुलसीदास की जन्मभूमि रामपुर (अर्थात् श्यामपुर एवं रामसर) वराहजी के मन्दिर से दो मील है अतः सूकरक्षेत्र के अन्तर्गत है। इस विषय में गोस्वामीजी की पत्नी रत्नावली की उक्ति कितनी सार्थक है :

> प्रभु बराह पद पूत महि जनम-मही पुनि एहि।
> सुरसरि-तट महि त्याग अस मए बाम पिय केहि ॥२२॥
> तीरथ प्रादि बराह् जं तीरथ सुरसरि पार।
> याही तीरथ भाइ पिय भयहु अपत करतार ॥११॥

जन्म-स्थान

प्राक्कथन

तुलसीदासजी के जन्मस्थान के विषय में मतभेद है। हाजीपुर, हस्तिनापुर, राजापुर, काशी, अयोध्या, तारी और सोरों के योगमार्ग मुहल्ले का उल्लेख किया जाता है किन्तु हम देखेंगे कि सोरों के रामपुर ग्राम का पक्ष असमन्त प्रबल है।

फ्रांसिस बुकानन ने काशी को[1] और एच॰ एच॰ विल्सन ने 'स्केच ऑव द रिलिजस सेक्ट्स ऑव द हिन्दूज' में चित्रकूट के निकट हाजीपुर को जन्मस्थान लिखा तदनन्तर, तदनुसार गासाँ द तासी ने भी ऐसा ही बताया[2] और एफ॰ एस॰ ग्राउज[3] एवं जार्ज आर्थर ग्रियर्सन ने भी उसका उल्लेख कर दिया है। इस विषय में सद्विद्वान प्रो॰ रामबहोरी शुक्ल कहते हैं कि "कुछ लोग चित्रकूट के पास हाजीपुर को उनका जन्म स्थान मानते हैं। फ्रांसीसी विद्वान् तासी और अंगरेज लेखक विल्सन ने इस मत का प्रवर्तन किया है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है ऐसा कोई स्थान आजकल तो है नहीं। सम्भव है उन्होंने राजापुर को भ्रमवश हाजीपुर लिख दिया हो। यों तो भारत में अनेक हाजीपुर हैं किन्तु प्रतीत होता है कि विल्सन ने गोस्वामीजी के विषय में जहाँ अनेक भ्रान्त बातों की चर्चा की वहाँ हाजीपुर की भी की।

ग्राउज ने लिखा है कि 'भक्तसिन्धु' के अनुसार गोस्वामीजी का जन्म हस्तिनापुर में हुआ था किन्तु उन्होंने इसे महत्त्व प्रदान नहीं किया।[4] ग्रियर्सन ने इस विषय में बृहद् रामायण माहात्म्य का भी उल्लेख किया किन्तु वे तारी और राजापुर की ओर ही अधिक झुके। ला॰ सीताराम के शब्दों में "कोई कहता है उनका जन्म राजापुर के पास हस्तिनापुर में हुआ था जिसे अब हस्तनाम कहते हैं।"[5] लालाजी तो स्वयं तारी के पक्ष में थे। हस्तिनापुर की स्थिति तो गढ़मुक्तेश्वर (मेरठ) के निकट मानी जाती है यद्यपि चार्ल्स कोपिन ने एक जर्मन ग्रन्थ के आधार पर उसे काली नदी के तट पर माना है।

राजापुर, काशी, अयोध्या, तारी आदि के सम्बन्ध में अलग-अलग और विस्तृत विवेचन की अपेक्षा है, जो इस प्रकार है

---

१ An Account of the district Purnea in 1809-10 पृ॰ १०१

२ Tulsidas etait un Brahmane de la branche des Serwariah et natif de Hajipur pres de Chitrakuta—Histoire de la Litterature Hindoui et Hindustani.

३ रामायण ऑव तुलसीदास

४ द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑव हिन्दुस्तान, पृ ४४

५ रामायण ऑव तुलसीदास, ४ १२

६ द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑव हिन्दुस्तान, ४३-४४

७ अयोध्याकाण्ड (राजापुर)

राजापुर की सामग्री

समालोचनात्मक विवरण

सिंहावलोकन—राजापुर से गोस्वामी तुलसीदास का घनिष्ठ सम्बन्ध प्रदर्शित करने के लिए निम्नलिखित सामग्री का उल्लेख किया जा सकता है :

(क) 'तुलसीचरित' 'मूल गोसाईं चरित', और 'घटरामायन' का परिशिष्ट
(ख) अयोध्याकाण्ड का तापस-प्रकरण
(ग) अयोध्याकाण्ड की हस्त-लिखित प्राचीन प्रति
(घ) शासकीय विवरण
(ङ) मन्दिर और प्रतिमाएँ
(च) माफ़ी की दो सनदें
(छ) फर्द वाजिबुल अर्ज
(ज) जनश्रुति

उपरिलिखित सामग्री का परिचय नीचे दिया जा रहा है।

तीन अप्रामाणिक पुस्तकें—राजापुर-पक्ष के समर्थक तीन ग्रन्थों को प्रमाणस्वरूप उपस्थित करते हैं जो सत्य की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। इनकी विस्तृत आलोचना द्वितीय अध्याय में की जा चुकी है यहाँ उनका परिचय-मात्र अभीष्ट है।

प्रथम है 'मूल गोसाईं चरित' जिसकी श्री मीवर पाठक रायबहादुर शुकदेव बिहारी मिश्र श्री मायाशंकर याज्ञिक डॉ० माताप्रसाद गुप्त आदि विद्वानों ने चर्चा की है एवं इसकी तिथि-सम्बन्धी अशुद्धियों की ओर संकेत किया है जिनसे यह परिपूर्ण है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल १९४० में प्रकाशित अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के पृष्ठ १२ व १२१ पर लिखते हैं कि 'मूलगोसाईं चरित' का निर्माण अयोध्या के कनक-भवन में हुआ था। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने भी अपने सटीक 'रामचरित मानस' की प्रस्तावना तथा 'तुलसीदास एवं उनकी कविता' के प्रथम भाग (१९३७ ई०) के पृष्ठ ७१-७७ पर, इसी तथ्य की सूचना दी है।

दूसरा है 'तुलसीचरित' जो बाबू शिवनन्दनसहाय पं० रामस्वरूप मिश्र डा० श्यामबिहारी मिश्र रायबहादुर पं० शुकदेव बिहारी मिश्र पं० रामनरेश त्रिपाठी डॉ० श्यामसुन्दरदास प्रभृति विद्वानों के द्वारा अप्रामाणिक सिद्ध किया जा चुका है। जब मैंने स्वयं उल्लिखित हस्तलिपि के प्रकाशित भाग का निरीक्षण किया तो यह सत्य की कसौटी पर खरा नहीं पाया। स्वयं अन्तःसाक्ष्य इसके विपरीत है। इतिहास व्यतिक्रम के उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित वर्णन को लिया जा सकता है। 'तुलसी चरित' के अनुसार तुलसीदासजी ने अपना समस्त अध्ययन तीन वर्षों में समाप्त कर लिया था। एक वर्ष में उन्होंने वेदों का अध्ययन समाप्त कर लिया था, दूसरे वर्ष में समस्त पुराणों का ज्ञान प्राप्त किया। तृतीय वर्ष में वे दीक्षित कौस्तुभ तथा शेखर आदि व्याकरण-ग्रन्थों में पारंगत हो गए। इतने बृहद् ज्ञान को तीन वर्षों में प्राप्त कर लेना आश्चर्यजनक है। अस्तु, विचार-स्वार्थ इसे स्वीकार किया जा सकता है परन्तु कठिनता यह है कि दीक्षित ने अपना व्याकरण तुलसीदासजी की मृत्यु के बाद

वर्ष पश्चात् प्रकाशित किया था। 'परिमापेन्दुशेखर' 'बृहच्छब्देन्दुशेखर' तथा 'लघु शब्देन्दुशेखर' का प्रणयन १८ वीं शताब्दी में हुआ था। कोई व्यक्ति कितना भी भोला क्यों न हो इस प्रतथ्य पर विश्वास नहीं कर सकता कि तुलसीदास ने अपने बाल्यकाल में उन ग्रन्थों का अध्ययन किया था जो उनकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाश में आये।

तृतीय ग्रंथ और है जिस पर राजापुर-पक्ष के कुछ समर्थक विश्वास करते हैं यह पुस्तक सपरिशिष्ट 'घटरामायण' है जिसका सम्बन्ध किन्हीं तुलसीसाहब से स्थापित किया जाता है। उनके कुछ शिष्यों ने उन्हें गो० तुलसीदास का अवतार मानकर उनके महत्त्व को बढ़ाने का प्रयत्न किया है। यह कहा जाता है कि 'घट रामायण' की रचना स्वयं गो० तुलसीदास की थी परन्तु उन्होंने स्वयं ही इसे दबा दिया क्योंकि काशी के निवासियों ने इसे आदर की दृष्टि से नहीं देखा और उन्हें धोखा देने के लिए 'रामचरितमानस' लिख डाला। विद्वानों ने इसकी परीक्षा की है, और जहाँ तक इसका सम्बन्ध गो० तुलसीदास से है उन्होंने इसे मिथ्या ही माना है। श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' ने स्पष्टतया इसकी प्रामाणिकता के विरुद्ध निर्णय दिया है और इसमें दोष निकाले हैं। मैंने स्वयं इसके अनेक एतिहासिक व्यतिक्रमों की ओर संकेत किया है जिनसे यह सिद्ध होता है कि यह तुलसीदासजी की रचना नहीं है। तुलसीदासजी के जीवन-सम्बन्धी परिशिष्ट का निर्माण तो तुलसीसाहब के किसी अनन्य भक्त की रचना है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त इसकी ओर झुके हैं यद्यपि सम्पूर्ण हृदय से नहीं क्योंकि उन्होंने स्वयं इसमें कुछ विरोधी बातें पायी हैं। परन्तु श्री परशुराम चतुर्वेदी तथा डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने अपनी अपनी रचनाओं में 'उत्तर भारत की सन्त परम्परा' पृष्ठ ६४८ पर तथा 'हिन्दी काव्य में निर्गुन-सम्प्रदाय' अध्याय २ के पृष्ठ ६० पर इसके विपरीत निर्णय दिया है।

उक्त पुस्तकों में पारस्परिक विरोध—स्पष्टतया उपर्युक्त तीनों पुस्तकों में सामंजस्य नहीं है। तुलसीदासजी की जाति कुल एवं विवाह-सम्बन्धी विवरण परस्पर प्रतिकूल हैं। गोस्वामीजी के माता-पिता तथा पत्नी के नामों में भी अनुकूलता नहीं है। गोस्वामीजी के जन्म-संवत् के विषय में मत-भेद है किन्तु जन्म-स्थान के सम्बन्ध में साम्य है जो कदाचित् घुणाक्षर-न्याय से हो।

तापस प्रकरण—अयोध्या काण्ड की निम्नलिखित पंक्तियाँ तापस-प्रसंग के नाम से ख्यात हैं

तेहि अवसर एकु तापसु आवा, तेज पुंज लघु बयसु सुहावा।
कबि अलखित गति बेषु बिरागी मन क्रम बचन राम अनुरागी।
सजल नयन तन पुलकि निज इष्ट देउ पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनि तल दसा न जाइ बखानि।
राम सप्रेम पुलकि उर लावा परम रंक जनु पारस पावा।
मनहुँ प्रेमु परमारथु दोऊ, मिलत धरें तनु कह सब कोऊ।
बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा, लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा।
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा।

कीन्ह निषाद दण्डवत तेही मिलेउ मुदित लखि राम सनेही।
पियत नयन पुट रूपु पियूषा, मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा।

(रा० २ १०९ ११०)

श्री विद्यमानन्द त्रिपाठी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल श्री रामबहोरी शुक्ल आदि अनेक विद्वानों ने अयोध्याकाण्ड के तापस प्रकरण पर आग्रह किया है। उसके आधार पर उन्होंने तापस को गोस्वामी तुलसीदास मानकर जिस स्थान की ओर इंगित किया है उसे राजापुर समझ कर गोस्वामीजी का जन्मस्थान घोषित किया है।

श्री चन्द्रबली पांडे किंचित् भिन्नता से लिखते हैं कि, 'इस बात का सदा से ही विचार रहा है कि वास्तव में तुलसीदास ने अपने आपको ही एक तापस के रूप में अंकित किया है। किन्तु अब इसका विचार रंचक भी यह नहीं रहा कि इस प्रसंग का कारण है राजापुर तुलसी का जन्मस्थान होना। कारण है यह कि यह किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता कि राम ने राजापुर के सामने जाकर जमुना को पार किया और पार कर पुरवासियों का सुख मोया। ध्यान देने की बात यहीं यह है कि यदि 'राम' को राजापुर जाकर चित्रकूट जाना इष्ट होता तो प्रयाग से सीधे जलमार्ग से प्रस्थान करते और सखा निषाद की सहायता से बड़ी सरलता से वहीं पहुँच जाते। परन्तु उन्होंने किया इसके विपरीत ही।'[1]

अन्य विद्वान् 'तापस' से नितान्त अन्य तात्पर्य ग्रहण करते हैं, यथा (१) तापसी रूप से रावण वध का सदेह संकल्प (२) अग्नि (३) चित्रकूट में निवास करने वाला अगस्त्य ऋषि का शिष्य (४) स्वयं कामदनाथ चित्रकूट वन।'

कुछ ऐसे विद्वान् भी हैं जो तापस प्रसंग को अप्रामाणिक समझते हैं। तापस-प्रसंग प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में मिलता है, किन्तु श्री शम्भुनारायण चौबे ने ऐसी प्राचीन तेरह छपी हुई पोथियों का उल्लेख किया है (जिनमें से एक तो दो सौ वर्ष से भी अधिक पुरानी है) जिनमें तापस प्रसंग नहीं है। चौबेजी तापस प्रसंग को प्रक्षिप्त मानने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क उपस्थित करते हैं —

(१) यह प्रकरण सर्वथा अप्रासंगिक और असंबद्ध है।

(२) किसी पौराणिक कथा से इसकी पुष्टि नहीं होती।

(३) सम्पूर्ण 'रामचरित मानस' की ग्रन्थ-संख्या मिलाते समय इसका ग्रहण करने से प्रामाणिक प्रतियों की ग्रंथ संख्या में अन्तर पड़ता है।

चौबेजी की सम्मति में 'तापस' को गो० तुलसीदास मानने में खटकने वाली बात यह है कि गोस्वामीजी तापस वेश में राम सीता लक्ष्मण सबसे स्वयं मिले किन्तु निषादराज से जो भगवान् के साथ में था तब मिले जब कि पहले निषाद ने दण्डवत् किया और गोस्वामीजी ने उसे राम-स्नेही जान लिया। 'सिया राम मय सब जग जानी' जिसका यह सिद्धान्त हो वह निषादराज से मिलने में संकोच करे!! किन्तु जो तुलसी निम्नलिखित पंक्तियाँ लिख सकता है वह, भला स्वाभिमानी किस प्रकार हो सकता है

---

१ तुलसी की जीवन भूमि पृष्ठ १९१

२ 'रामचरितमानस के प्राचीन सेवक' पृष्ठ २५९, नागरी प्रचारिणी पत्रिका भा०।

तुलसी जाके बदन तें धोखे हु निकसत राम
ताके पग की पगतरी मेरे तन को चाम ॥ दो० ४७
आपु आपुने तें अधिक जेहि प्रिय सीताराम
ताके पग की पानही तुलसी तनु को चाम ॥ दो० ४९

इसके अतिरिक्त 'तेज पुंज' और 'मिलेउ मुदित' अहंमन्यता-सूचक शब्द गोस्वामीजी अपने लिए न लिखते। काव्य की दृष्टि से 'रंक' और 'पारस' शब्दों का प्रयोग भी उचित प्रतीत नहीं होता। भक्त 'पारस' कदापि नहीं हो सकता और भगवान् के लिए 'रंक' शब्द का प्रयोग भी विस्मय है।[1] विवेचन का निष्कर्ष यह है कि तापस-प्रकरण प्रक्षेप है और यदि वह प्रक्षेप नहीं भी है तो यह आवश्यक नहीं कि 'तापस' से 'गोस्वामी तुलसीदास' का ही तात्पर्य ग्रहण किया जाय।

राजापुर का अयोध्याकाण्ड—राजापुर में 'रामचरितमानस' का अयोध्याकाण्ड है। कहा जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास ने इसे स्वयं अपने हाथ से लिखा था। पहले यह सातों काण्डवाली रामायण की पोथी थी जो तुलसी-मन्दिर में रखी रहती थी। एक बार एक पुजारी इसे चुराकर ले भागा तो गोस्वामीजी के शिष्यों को रात में स्वप्न हुआ। प्रातःकाल शिष्यों ने उसका पीछा किया। पुजारी पुस्तक ले नाव पर नदी पार कर रहा था। उसी समय नाव लौटाने के लिए भेजे हुए व्यक्तियों ने मल्लाह को पुकारा। पुजारी सब बात समझ गया और उसने रामायण को यमुनाजी के मध्य में डाल दिया। जब यह समाचार कालाकांकर के महाराज को मिला तो उन्होंने जाल डुबवाकर पुस्तक को निकलवा लिया और काण्ड तो गल गये केवल अयोध्याकाण्ड बच गया।

जनश्रुति इस प्रकार भी है कि गोस्वामी तुलसीदास ने काशी जाने से पहले गणपति शिष्य को अपने हाथ से लिखी रामायण की पुस्तक प्रदान की। एक दुष्ट साधु उस पोथी को ले भागा और जब उसका पीछा किया गया तो उसने इसे यमुना जी में डाल दिया। सम्पूर्ण पुस्तक में केवल अयोध्याकाण्ड शेष रहा है।

श्री चन्द्रबली पांडे उक्त जन-श्रुतियों के विषय में लिखते हैं कि 'घटना कुछ भी घटी हो पर पकड़ की बात है केवल अयोध्याकाण्ड का बचा रहना जो किसी प्रकार संभव नहीं दिखाई देती। स्मरण रखने की बात यह है कि इसके सभी पन्ने अलग-अलग हैं। अतएव इसकी संभावना कैसे की जाय कि बीच में होने के कारण इसका एक काण्ड बच गया? पानी में नीचे का भाग पहले डूबता है पत्रे काठ की पटरियों के बीच में बेठन से बंधे रहते हैं। अतः किसी ग्रन्थ का सर्वथा जल-मग्न होना कठिन होता है। हम जानना चाहते हैं कि क्या उक्त तुलसी-हस्तलिखित काण्ड में कोई भी चिह्न ऐसा है जिससे हम इसे अलग एक स्वतन्त्र काण्ड न मान किसी सम्पूर्ण ग्रन्थ का अंग मानें।'[2]

मैं पाठकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि उक्त दोनों

१ रामचरितमानस के प्राचीन पेपर, मास्टरी अष्टयामी संस्करण, पृ० ३१०-३१२, वर्ष ५८ अंक १ कार्तिक १९९८ वि०।
२ तुलसी की जीवन-भूमि पृ० ६० ६१।

जनश्रुतियों में से जिसका उल्लेख श्री चन्द्रबली पांडे ने किया है, एक में गंगाजी का उल्लेख है, दूसरे में यमुनाजी का। पर सोरों और काशी में गंगाजी हैं, राजापुर में यमुनाजी।

उक्त अयोध्याकाण्ड के विषय में डॉ० माताप्रसाद गुप्त सूचित करते हैं कि यह प्रति "पं० मुन्नीलाल उपाध्याय के पास है। इनका मकान तुलसीदास के मन्दिर के पास ही है। कहा जाता है कि पहले प्रति मन्दिर ही में रक्खी रहती थी। बाद को चोरों के डर से उपाध्यायजी इसे अपने घर में रखने लगे। प्रति में कोई पुष्पिका नहीं है इसलिए लिपि-काल के सम्बन्ध में कहना कठिन है। हस्त-लेख के सम्बन्ध में जनश्रुति यह है कि इसके लिपिकार तुलसीदासजी ही थे। प्रति हाथ के बने सफेद कागज पर है, जो पुराना होने के कारण कुछ भूरा पड़ गया है और स्याही काली है। प्रति साधारणतः अच्छी हालत में है केवल कागज के किनारों पर पानी से भीगने के दाग बने हुए हैं।'[1] किन्तु यह 'तुलसीदास' की स्वहस्त लिखित नहीं है।[2]

श्री शंभु नारायण चौबे के विचार से भी राजापुर की प्रति गोस्वामीजी के हाथ की लिखी नहीं है। इसके लिए वे दो प्रमाण उपस्थित करते हैं। प्रथमतः इस प्रति में 'तापस-प्रकरण' विद्यमान है जिसे तुलसीदास जी जैसे निरभिमान व्यक्ति नहीं लिख सकते थे। द्वितीयतः निम्नलिखित अर्द्धालियाँ राजापुर की प्रति में विद्यमान नहीं हैं यद्यपि वे अन्य सभी प्राचीन प्रामाणिक प्रतियों में तो हैं।

१ सकल सुकृत मूरति नर नाहू। राम सुजस सुनि अतिहि उछाहू ॥२।१।२॥
२ प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू। रामहि राय देहु जुबराजू ॥२।४।४॥
३ कीन्हेसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू। फिरि न नवै जिमि उकठि कुकाठू ॥ २।१६।७॥
४ सहज सनेह बरनि नहिं जाई। पूछी कुसल निकट बैठाई ॥ २।८७।४॥
५ राम सनेह सुधा जनु पागे। लोग वियोग विषम विष दागे ॥२।१८६।१॥
६ कहु मत बादि लोग छल छाहू। इहाँ कपट कर होइहि लाहू ॥२।२२७।२॥
७ । अरध तजहिं बुध सरबस जात ॥
तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिय लखन सहित रघुराई ॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता। २, २५५, ९-४ ॥
८ । जनु महि करत जनक पहुनाई ॥
सब सब लोग नहाइ नहाई। ॥ २।२८८।२
९. । रिषि करि धीर जनक पहिं आए ॥
राम बचन गुरु नृपहि सुनाए। ॥ २।२९०।२

जो हो इसमें सन्देह नहीं कि राजापुर का अयोध्याकाण्ड प्राचीन है और प्रमाणाभाव में प्राचीन जनश्रुति की अवहेलना उचित नहीं। यदि राजापुर की प्रति तुलसीदास जी के हाथ की नहीं है तो भी अत्यन्त आदरणीय है। हाँ, यह बात अवश्य है कि राजापुर में उसकी केवल विद्यमानता इस बात का कोई स्पष्ट साक्ष्य नहीं कि तुलसीदास जी राजापुर में जन्मे थे।

१ तुलसीदास—माताप्रसाद गुप्त, पृ० १६६।
२ वही। पृ० १४५।

शासकीय विवरण—गोस्वामी तुलसीदास के विषय में राजापुर इतिहास के निम्नलिखित चार शासकीय विवरण अत्यन्त स्पष्ट हैं जिनका उल्लेख किया भी जा चुका है —

(अ) इनमें प्राचीनतम है स्टैटिस्टिकल डिस्क्रिप्शन एण्ड हिस्टोरिकल एकाउंट ऑव द नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज ऑव इण्डिया' जिल्द प्रथम बुन्देलखण्ड जो कि एडविन टी० एटकिंसन के द्वारा सम्पादित तथा १८७४ ई० में प्रयाग से प्रकाशित है। इसके पृष्ठ ५७२-७३ पर ऐसा लिखा है—जनश्रुति है कि अकबर के शासन काल में एक पवित्रात्मा जो कि एटा जिले के अलीगंज परगने में सोरों नामक स्थान का निवासी था यमुना के किनारे उस जंगल में आया जहाँ आज राजापुर स्थित है। उसने एक मन्दिर बनवाया और वह भावना एवम् ध्यान में दत्तचित्त रहने लगा। उसकी साधुता ने शीघ्र ही अनुयायियों को आकृष्ट किया और वे उसके चारों ओर बस गये। जैसे जैसे उनकी संख्या बढ़ती गई उन्होंने आश्चर्यजनक सफलता से अपने को व्यापार तथा धर्म में लगाया। यहाँ कुछ विचित्र स्थानीय परम्पराएँ हैं जिनका सम्बन्ध तुलसीदास जी से है।

(ब) इम्पीरियल गजेटियर ऑव इंडिया' जिल्द २, डब्ल्यू डब्ल्यू हंटर द्वारा अनूदित १८८६ ई में प्रकाशित दूसरे संस्करण के पृष्ठ ३८५-८६ पर यही तथ्य इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—सोरों के सन्त तुलसीदास द्वारा अकबर के शासन-काल में राजापुर बसाया गया। उन्होंने एक मन्दिर का निर्माण कराया तथा अनेक अनुयायियों को आकर्षित किया।

(स) 'इम्पीरियल गजेटियर ऑव इंडिया यू० पी० सैकिंड प्राविंशियल सीरीज १९०८ ई० में कलकत्ते से प्रकाशित पृष्ठ ३० पर लिखा है कि राजापुर कस्बे का नाम है और मेंझगाँव उस मौजे अथवा ग्राम-मण्डल का जिसके समीप यह स्थित है। जनश्रुति के अनुसार यह कस्बा रामायण के प्रसिद्ध रचयिता तुलसीदास जी के द्वारा बसाया गया था जिनका निवास-स्थान अभी तक दिखाया जाता है।

(द) 'डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑव बाँदा' १९०९ ई० में प्रकाशित हुआ। उसके पृष्ठ २८५-८६ पर लिखा है—कहा जाता है कि अकबर के शासन-काल में तुलसीदास नामक एक भक्त जो एटा जिले की कासगंज तहसील में सोरों का निवासी था यमुना तट के उस जंगल में आया जहाँ आजकल राजापुर स्थित है और भावना तथा तप करने लगा। वे वे ही तुलसीदास हैं जो रामायण के रचयिता हैं जिनका घर कस्बे में अभी तक दिखाया जाता है।

प्रथम शासकीय लेख १८७४ ई० में प्रकाशित हुआ था तथा अन्तिम १९०९ ई० में। ये सब इस बात को स्पष्टतः प्रकाशित करते हैं कि तुलसीदास एटा जिले में सोरों नामक स्थान के निवासी थे तथा उन्होंने अकबर के शासन-काल में बाँदा जिले में राजापुर की नींव डाली। यह अविश्वसनीय है कि कोई व्यक्ति अपने जीवन-काल में किसी नगर को बसाये और उसी में उत्पन्न भी हो।

राजापुर की स्थापना—उक्त गजेटियरों से स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास सोरों से आये और उन्होंने राजापुर की नींव डाली। श्री अयोध्या प्रसाद जी के वक्तव्य

धार्मिक पुस्तकों की पुष्पिकाओं के आधार पर कहते हैं कि 'राजापुर का प्राचीन नाम विक्रमपुर था और कालान्तर में रजियापुर अथवा राजापुर हुआ'।[1] किन्तु श्री चन्द्रबली पांडे इस पर आपत्ति करते हैं कि उन पुष्पिकाओं में न तो राजापुर का नाम मिला और न राजापुर और विक्रमपुर का साथ साथ उल्लेख ही। 'यमुना के दक्षिण तट पर क्या एकमात्र राजापुर बसा है जो उसी को विक्रमपुर मान लें।'

श्री राम बहोरी शुक्ल ने 'तुलसी चरित' में इलाही सन् १ अर्थात् १६११ संवत् के शाही फ़रमान की प्रतिलिपि दी है। फ़रमान फ़ारसी में है। डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त ने उक्त फ़रमान का हिन्दी रूपान्तर अपने 'तुलसीदास' में इस प्रकार दिया है—

सही फ़रमान ता॰ २३ माह आबान इलाही सन् १ यह है कि सावे सूबा और इलाहाबाद के हाल और मुस्तकबिला मुतसद्दी शाही इलाकत के उम्मीदवार होकर जानें कि इस वक्त ऊधो वल्द बलपत ने हुजूर के दरबार में हाजिर होकर दरख्वास्त दिया और फ़रियाद चाही है कि हुक्काम परगना पहोरा महाल व दूसरे उठा दिये गये शायरों की दस्तत में जो कि हुजूर की सल्तनत में मुमाफ हैं मौजा विक्रमपुर के रहने वालों से और परगना मज़कूर के दूसरे रहने वालों से वसूल कर रहे हैं और हम लोगों की हालत में मुजाहिमत कर रहे हैं। चाहिए कि मामले की हकीकत को समझ कर जिस तरह काम हो रहा है उसे न होने दें ताकि परगने मज़कूर के हाकिमों और मालिकों में से कोई भी उन कामों को जो मना कर दिए गए हैं न करने पाए और आइन्दा में आकर किसी किस्म की बेजा माँग न करे। इस बाबत निहायत ताकीद की जाती है और जो कुछ हुक्म दिया गया है उसके खिलाफ़ न जावें। तारीख़ सदर मज़कूर सन् इलाही।

श्री अयोध्याप्रसाद पांडे ने एक पट्टे की प्रतिलिपि दी है जिसे डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त इस प्रकार देते हैं—

'श्री महाराज मैमार श्री विकाल हिन्दुपति जू देव पेते पं॰ सीताराम को पट्टो कर दियो। आपे के पटे पर हुकुम आपर मौजे विक्रमपुर में जो कुछ साबिक दस्तूर रहौ आये होइ सो हमेशा पावै जाहु। हुकुम हुजूर माह सुदि ६ सुक्र १८१२ मुकाम मसौनी।

डॉ॰ गुप्त एक और पट्टे की प्रतिलिपि उद्धृत करते हैं जो इस प्रकार है—

'श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा अमानसिंह जू देव पेते पं॰ श्री अयोध्या सीताराम को समधि कर दई की आपर मौजे मन्झिवां में कस्बा राजापुर बसतु है सु आवै ठे वे जहाँ की राह रकम हाटफट की पाइ आये होइ सु पावै जाइ पुरानी समधि पर हुकुम हास कोऊ आमिसु मैमार जिमीदार मुजाहिम न होइ हुकुम हुजूर पौष सुदि १५ सं॰ १८१३ मु॰ छुइबारी।"

उक्त फरमान और पट्टों से डॉ॰ गुप्त श्री अयोध्याप्रसाद पांडे की भाँति इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विक्रमपुर और राजापुर एक ही हैं। उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि संवत् १८१२-१३ में कस्बे का नाम विक्रमपुर से बदल कर राजापुर हो गया

१ तुलसी की जीवन-भूमि पृष्ठ ११२।
२. वही, पृष्ठ ११७।

यद्यपि प्राचीनता के पोषक पण्डित लोग कुछ पीछे तक पुराने ही नाम का उपयोग करते रहे। किन्तु इस विषय में प्रथमतः यह आपत्ति हो सकती है कि यदि संवत् १८१२ ११ में विक्रमपुर का नाम राजापुर कर दिया गया तो राजकीय पत्रों में इसका उल्लेख अवश्य होता। १८१२ और १८११ दोनों ही संवतों के पट्टों में पण्डित सेवाराम का उल्लेख है। भाषा का साम्य भी है। पट्टा देने वाले अधिकारी तो भिन्न हैं ही। पर एक में विक्रमपुर का उल्लेख है तो दूसरे में राजापुर का। यदि विक्रमपुर का नाम राजापुर कर दिया गया होता तो उसका उल्लेख पट्टे में अवश्य होना चाहिए था। ऐसा प्रतीत होता है कि विक्रमपुर और राजापुर भिन्न-भिन्न स्थान हैं और पट्टा देने वाले भी। इस अनुमान का कोई आधार नहीं कि विक्रमपुर ही राजापुर नाम से अभिहित हुआ। द्वितीयतः यह भी विचारणीय है कि सटवारा निवासी श्री बलदेव प्रसाद की रचना "कानूनगोय कायस्थ वंशावली" भी राजापुर नाम की ओर झुकती है यद्यपि सटवारा से प्राप्त यह वंशावली प्राचीन रचना नहीं और डॉ॰ गुप्त की सम्मति में भी यह हाल की ही रचना ज्ञात होती है क्योंकि उसमें अंग्रेजों तक का उल्लेख हुआ है शाह पुर की कुर्सी अंग्रेज। अभी तक केवल ग्यारह पंक्तियाँ इस वंशावली की प्रकाशित हुई हैं।

मन्दिर और प्रतिमाएँ—राजापुर में गोस्वामी तुलसीदास की स्थापित की हुई संकटमोचन नामक हनुमान्‌जी की मूर्ति विद्यमान है। एक कच्चे घर को गोस्वामीजी का निवास-स्थान बताया जाता है। यहीं एक मूर्ति भी है जो लगभग पचास वर्ष पूर्व यमुनाजी के सैकत-पुलिन से प्राप्त हुई थी जिसे लोग तुलसीदासजी की बताते हैं। परन्तु यह काले पत्थर की बनी हुई है अतः गौरांग तुलसीदासजी का ठीक प्रतिनिधित्व नहीं करती। सामान्यतः श्वेत प्रतिमा गौरवर्ण की प्रतीक होती है और कृष्ण प्रतिमा श्यामवर्ण की। अतः मेरे विचार में यह प्रतिमा राजा नामक एक साधु की है जिसके नाम पर गोस्वामीजी ने राजापुर का नामकरण किया था जैसा कि उनके समकालीन अविनाश राय भट्ट के एक पद से प्रकट होता है अथवा यह प्रतिमा भगवान् सीतूदास की हो जैसा भी अन्यत्र भी समझते हैं।[1] यह स्वीकार करने पर भी कि यह प्रतिमा तुलसीदास की है उसका अस्तित्व केवल इस बात का यथेष्ट प्रमाण नहीं है कि उनका जन्म राजापुर में हुआ था। महात्मा गांधी की प्रतिमाएँ तो भारत के अनेक नगरों में विद्यमान हैं किन्तु इससे उनका जन्म उन सभी नगरों में नहीं माना जा सकता।

राजापुर की सनदें—राजापुर निवासी श्री रामबहोरी शुक्ल ने मास्टर की दो सनदों का उल्लेख किया है जो राजापुर में उस सरयूपारीण ब्राह्मण वंश के पास हैं जो अपने को गो॰ तुलसीदास के शिष्य गणपति उपाध्याय की सन्तति कहता है। डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त को यह शिकायत है कि जब वे एक बार राजापुर गये थे तो उन्हें ये सनदें नहीं दिखायी गयीं अपितु सनद-वालों ने उनके वर्तमान अस्तित्व से इन्कार कर दिया था किन्तु पीछे श्री रामबहोरी शुक्ल ने 'वीणा' में उनका विवरण दिया था।

---

१ तुलसी की जन्मभूमि पृष्ठ १००-१०१।

में स्वभावतः किसी वस्तु को तब तक असत्य अथवा अप्रामाणिक नहीं ठहराता जब तक उसके विरोध में सबल प्रमाण उपस्थित न हों। अतः मेरी विनीत सम्मति में इन दोनों सनदों को वास्तविक मान लेने में कोई हानि नहीं, जिन्हें गोस्वामीजी के शिष्य वंश उपस्थित करते हैं। किन्तु उन दोनों सनदों को वास्तविक और प्रामाणिक मान लेने से भी गोस्वामी तुलसीदास के जन्म-स्थान पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

एक सनद पन्ना नरेश श्री हिन्दुपति की दी हुई बताई जाती है जिस पर १८११ संवत् पड़ा हुआ है। इसमें गोस्वामी तुलसीदास का नाम तक नहीं है और न इसमें यह लिखा है कि इसे अकबर या जहाँगीर ने प्रदान किया था। इससे यह तनिक भी सिद्ध नहीं होता कि गोस्वामी तुलसीदास के जन्म से पहले भी राजापुर विद्यमान था। यह सनद गोस्वामी तुलसीदास के सम्बन्ध में सर्वथा चुप है। अतः प्रामाणिक हो अथवा अप्रामाणिक यह गोस्वामीजी के जन्म-स्थान निर्णय के सम्बन्ध में अन्यथा सिद्ध है।

दूसरी सनद फ़ारसी लिपि में लिखी हुई है। बीच-बीच में कागज कई जगह फट गया है। इससे जो कुछ पढ़ा जा सका है उसकी प्रतिलिपि श्री रामबहोरी शुक्ल के अनुसार नीचे दी जाती है

आमिलान हाल इस्तकबाल परगने महोरा सिरक कालींजर सूबे इलाहाबाद के पावे प मदारीलाल साईं तुलसीदास के सर्मे का महसूल साइर का तिहवा तिहाव श्री का अकारी का गुजर श्री जमुनाजी राजापुर अमल पर बामूजब सनद बादशाही व सुबेदारान व राजा बुन्देलखण्ड है सो सिरकार में हाल है सो हसब मुकाम के अमल हो मुजाहिम ना हुवे हरसाल नई सन मा बमो ता० २१ सावान सन् १२।

'सन् १७११ बमुकाम बांदा।

इस सनद पर एक कोने में डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर हैं जो बहुत धूमिल होने से पढ़े नहीं जाते और उनके ऊपर उर्दू में लिखा है हुक्म हुआ २७ दिसम्बर सन् १८४१।

सनद पर डॉ० गुप्त की आपत्तियाँ—उक्त सनद के विषय में डॉ० माताप्रसाद गुप्त इस प्रकार विचार करते हैं कि उत्तर प्रदेश में 'पं० मदारीलाल गोसाईं तुलसीदास' नाम का कोई एक व्यक्ति नहीं हो सकता। अतः पं० मदारीलाल और गोस्वामी तुलसीदास के सम्बन्ध को सूचित करने वाला कोई शब्द अवश्य आना चाहिए था जैसा कि सनदों में हुआ करता है, और दूसरे के 'सर्मे' का सम्बन्ध 'पं० मदारीलाल' से होना चाहिए न कि 'साईं तुलसीदास' से और तीसरे यदि पं० मदारीलाल का वंश राजापुर में चलता है तो उससे यह सिद्ध नहीं होता कि गोसाईं तुलसीदास का वंश भी राजापुर में चलता रहा। मैं अपनी ओर से यह कहूँगा कि श्री रामबहोरी शुक्ल ने के सर्मे का' के बीच में 'व' की पूर्ति अपनी ओर से सुझायी है। किन्तु 'वंश' शब्द ठेठ संस्कृत का है और सनद के सभी प्रधान शब्द फ़ारसी के हैं। अतएव शुक्लजी का सुझाव संगत नहीं।

सनदें अप्रमाण-सिद्ध हैं—प्रथमतः, यह बात ध्यान देने की है कि गोस्वामीजी के तारापति नाम का पुत्र हुआ जो बचपन में ही जाता रहा जिसका उल्लेख सोरों-सामग्री

के अतिरिक्त सर जॉर्ज ए० ग्रियर्सन ने भी उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों की जनश्रुतियों के आधार पर किया है। अतएव गोस्वामीजी के औरस वंशज संसार में कहीं नहीं मिलने चाहिएँ। हाँ सोरों-सामग्री के अनुसार गोस्वामीजी के चचेरे भाई महाकवि नन्ददास और चन्द्रहास के सन्तानें थीं और आज भी उनके वंशज सोरों में विद्यमान हैं।

द्वितीयतः राजापुर में सनद वाले महानुभाव स्वयं अपने को गोस्वामीजी के शिष्य का वंशज बताते हैं। इस पर किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? गोस्वामीजी के तो अनेक स्थानों पर अनेक शिष्य रहे होंगे। हो सकता है कि भी गणपति उपाध्याय पट्ट शिष्य रहे हों और इस कारण वे गोस्वामीजी की तथाकथित राजापुर-वाली सम्पत्ति और अधिकार के उत्तराधिकारी रूप से आज भी विद्यमान हैं। इस वार्ता से बड़ी प्रसन्नता है किन्तु शिष्य-वंश की उपस्थिति से भला गुरु का जन्म-स्थान अपने आप किस प्रकार सिद्ध हो सकता है?

तृतीयतः यदि यह सुझाया जाय (जिसका कि गुप्तजी ने प्रयत्न किया है) कि गोस्वामीजी से संबद्ध राजापुर वाली सम्पत्ति पहले गोस्वामीजी की सन्तान को मिली और उसके नष्ट हो जाने पर वह गोस्वामीजी के शिष्य के वंश को प्राप्त हुई तो यह सुझाव उपहासास्पद होगा क्योंकि हिन्दू-कानून के अनुसार साधु-संन्यासी की सम्पत्ति सीधे पट्ट शिष्य को मिल सकती है। इस कारण यदि गोस्वामीजी की सम्पत्ति सीधे भी गणपति उपाध्याय को प्राप्त हुई तो न्याय-संगत है और तब से अब तक वह गोस्वामीजी के शिष्य-वंशजों के अधिकार में ही होनी चाहिए। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि यदि सम्पत्ति गोस्वामीजी के किसी भी प्रकार के खानदानी की हो जाती तो उनके खानदान के नष्ट हो जाने पर वह गोस्वामीजी के शिष्यों को प्राप्त नहीं हो सकती थी। वह तो गोस्वामीजी के दूर के रिश्तेदारों को ही पहुँचती और उन रिश्तेदारों के अभाव में सरकार को मिलती।

चतुर्थतः किसी भी सनद से यह तनिक भी प्रकट नहीं होता कि ये सनदें अकबर या जहाँगीर की प्रदान की हुई थीं और उनसे यह भी सिद्ध नहीं होता कि गोस्वामीजी के जन्म से पहले राजापुर विद्यमान था क्योंकि स्वयं राजापुर के इतिहास बताने वाले सभी सरकारी गजेटियरों में यह स्पष्ट लिखा है कि रामायण के रचयिता और सोरों के निवासी गोस्वामी तुलसीदास ने अकबर के समय में राजापुर की नींव डाली।

हमें सनदों पर किसी प्रकार के आक्षेप करने की आवश्यकता नहीं यद्यपि श्री चन्द्रबली पाण्डे के अनुसार सन् और मास अशुद्ध पढ़ लिये गये हैं[1] जिससे सौ वर्ष का अन्तर हो जाता है। जब वे ही लोग जिनके पास सनदें हैं स्वयम् अपने को गोस्वामीजी के शिष्य का वंशधर बताते हैं तो उनकी बात मान लेनी चाहिए। वे और उनकी सनदें हमारे लिए गौरव की वस्तु हैं यद्यपि वे गोस्वामीजी के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में नितान्त चुप हैं। सनदें राजापुर गजेटियरों का विरोध भी नहीं करतीं। अर्थात्

---

१ तुलसी की जीवन भूमि पृ० ८।

उनका इस तथ्य से कोई विरोध नहीं कि 'रामचरितमानस' के कर्ता गोस्वामी तुलसीदास ने अकबर के समय में राजापुर को गाँव बसाया और वे सोरों के रहने वाले थे।

दस वाजिबुलअर्ज—मौजा मजरूआ उर्फ राजापुर की दस वाजिबुलअर्ज ११ मार्च १८७१ ई० को प्रस्तुत की गयी जिसकी आवश्यक प्रतिलिपि नागरी लिपि में परिशिष्ट रूप से दी जा रही है। उसकी अन्तिम कतिपय पंक्तियों से स्पष्ट है कि गोसाईं तुलसीदास के चेले रामजियावन पत्रादीन रामलाल ब्रजलाल माफ़ीदार हैं और कटरा बजाजा बाजार, मंडई तथा गिरहाई से ८८॥।≈) हक पाते हैं। इस लेख से उन लोगों के कथन की पुष्टि होती है जो अपने को गोस्वामी तुलसीदास के शिष्य गणपति उपाध्याय का वंशज बताते हैं।

जनश्रुति— राजापुर के बड़े-बूढ़े यह कहते रहे हैं कि गोस्वामी तुलसीदास सोरों या उसके समीपवर्ती किसी स्थान के निवासी थे और उनका जन्म राजापुर में नहीं हुआ था। जनश्रुति का उल्लेख गजेटियरों में हुआ है और अनेक विद्वानों ने भी इस प्रकार किया है

श्री सीताराम शरण भगवान् प्रसाद १९११ ई० में लिखते हैं 'राजापुर आपका जन्म-स्थान नहीं। श्री गोस्वामीजी का जन्म-स्थान श्री गंगा वाराह-क्षेत्र (सोरों) के प्रान्त अन्तर्वेद में तारी नामक ग्राम था तारी था। आपने राजापुर में विरक्त होने के पीछे निवास कर भजन किया इसी से वहाँ गोस्वामीजी की विराजमान की हुई संकटमोचन श्री हनुमान्‌जी की मूर्ति है और श्री रामायण अयोध्याकाण्ड भी है। यह वार्ता वहाँ वाले भली प्रकार निश्चय की है।'[1]

रेवरेंड एडविन ग्रीब्ज १८८८ ई० में लिखते हैं 'पर जन्म कहाँ हुआ ? पर लोग बतलाते हैं राजापुर उनकी जन्मभूमि है। इस बात के विरुद्ध और लोग कहते हैं कि नहीं उनका जन्म वहाँ नहीं हुआ पर गुसाईंजी ने वहाँ एक मन्दिर बनवाया था गाँव बसाया। फिर हस्तिनापुर उनकी जन्म भूमि बतलाई गई और हाजीपुर भी (जो चित्रकूट के पास है) पर इन बातों का कुछ प्रमाण नहीं। फिर औरों ने कहा वह तारी में जन्मे दूसरे लोग कहते हैं—नहीं उनके माता-पिता वहाँ रहते थे पर वह तुलसीदास के उत्पन्न होने के पहले था।'[2]

श्री शिवनन्दन सहाय १९२२ ई० में लिखते हैं "जन्मस्थान के सम्बन्ध में भी अभी तक ठीक निर्णय नहीं हुआ। राजापुर तथा तारी के बीच झगड़ा है। यद्यपि राजापुर में आपका स्मारक निर्मित हुआ था तथापि वहीं के कुछ बूढ़े लोग कहते हैं कि यह गोसाईंजी का जन्मस्थान नहीं। विरक्त होने पर यह कुछ दिन रहे अवश्य थे और प्रायः आया करते थे।"[3] १९१९ ई० में उन्होंने लिखा था 'जिन कारणों से लोग राजापुर को इनका जन्मस्थान होना बताते हैं उनसे यह बात प्रमाणित नहीं होती। परन्तु राजापुर गोस्वामीजी को अपनाने की चेष्टा में बहुत तत्पर है। बहुत लोगों को

१ श्री भक्तमाल सटीक वार्तिक प्रकाशयुक्त, पृ० ७४१।
२ तुलसी ग्रन्थावली, निवेदनपत्री पृ० ४२।
३ माधुरी, अगस्त १९२२ पृ० २४।

निज मत का प्रतिपादक बनाता जाता है और उसमें अपने निकटवर्ती बदबार ग्राम-निवासी बलदेव कवि से अपने माहात्म्य की कविता में अपने यहाँ यमुना के तट पर गोस्वामीजी का 'आगार' होना कहलाया है।"[1]

पण्डित गोविन्द वल्लभ भट्ट १९२९ ई० में लिखते हैं "श्री तुलसी-स्मारक तथा राजापुर के एक अधिकारी से जब इसी जन्म-स्थान के विषय में पत्र-व्यवहार किया तो उत्तर में उन्होंने प्राइवेट ढंग के साथ इस बात को स्वीकार किया कि गोस्वामीजी का जन्म-स्थान सोरों या उसी के आस-पास कहीं होना चाहिए।"[2]

निष्कर्ष—राजापुर-सामग्री से इतना स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदास सोरों के निवासी थे उनका जन्म-स्थान भी सोरों या सोरों के आस पास कोई स्थान था। विरक्त होने पर उन्होंने राजापुर की स्थापना की जहाँ आज भी उनके शिष्य निवास और कुछ माफ़ी का उपभोग, तथा 'रामचरितमानस' के अयोध्याकाण्ड की अति प्राचीन प्रति की संरक्षा करते हैं।

---

१. श्री गोस्वामी तुलसीदासजी (१९१६ ई०) पृ० ५।
२. माधुरी १९२९ ई०।

काशी का पक्ष

जन्म-स्थान : बंगाली के मित्र—प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ ने तुलसीदासजी को काशी का सारस्वत ब्राह्मण लिखा है।[1] श्री रजनीकान्त शास्त्री के मत से भी गोस्वामी जी की जन्म भूमि काशी थी। अपने मत की पुष्टि में वे तुलसीदासजी के लेखों का निम्नलिखित प्रमाण देते हैं

> दियो सुकुल जनम सरीर सुंदर हेतु जो फल चारि को।
> जो पाइ पंडित परम पद पावत पुरारि मुरारि को ॥
> यह भरतखंड समीप सुरसरि थल भलो संगति भली।
> तेरी कुमति कायर कलप बल्ली चहति विषफल फली ॥ वि० १३५ (१)

'विनय-पत्रिका' के उक्त भजन का अर्थ शास्त्रीजी इस प्रकार करते हैं "गोसाईंजी अपने मन को समझाते हैं 'रे मन भगवान् रामचन्द्र ने मुझे अपने कुल में जन्म तथा सुन्दर शरीर दिया है जो अब धर्म काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति का कारण है तथा जिसको पाकर पण्डितजन महादेव और विष्णु का परम-पद पाते हैं। फिर भरतखंड जैसी पवित्र भूमि और भगवती जाह्नवी का सामीप्य है और यहाँ की संगति भी अच्छी है। परन्तु हे कायर, तेरी दुर्बुद्धि रूपी कल्पबेलि जन्म-मरण-रूपी जहरीला फल फला चाहती है।

इस उद्धरण से शास्त्रीजी को स्पष्ट है कि गोसाईंजी का जन्म गंगाजी के पास कहीं पर हुआ था न कि यमुना नदी के तट पर बसे हुए राजापुर में, जैसा कि अधिकांश लोग आजकल माना करते हैं। पर इस भजन से यह नहीं विदित होता कि गंगाजी के पास वह कौन सा स्थान था जिसे गोस्वामीजी की जन्मभूमि होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

काशी का उल्लेख—इस विषय में 'रामचरितमानस' के किष्किन्धा काण्ड का प्रथम सोरठा शास्त्रीजी की कुछ सहायता करता प्रतीत होता है। वह यह है —

> मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर।
> जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइय कस न ॥

शास्त्रीजी इस सोरठे का अर्थ इस प्रकार करते हैं — मोक्ष और (मेरे) जन्म की भूमि ज्ञान की खान और पापों का संहार करने वाली जो काशी पुरी है, जहाँ शिव और पार्वती निवास करते हैं उसकी सेवा अवश्य करनी चाहिए।"

सोरठे का नवीन अर्थ—तत्पश्चात् शास्त्रीजी का तर्क इस प्रकार है "इस सोरठे में मुक्ति-जन्म-महि का अर्थ है 'मोक्ष और (मेरे) जन्म की भूमि' न कि मोक्ष की जन्म भूमि'। जन्म और मरण से निवृत्त हो जाने का ही नाम मुक्ति है तो फिर मुक्ति का जन्म-मरण कैसा ? यदि मुक्ति जन्म लेती है वह मरती भी जरूर होगी। काशी तो उसकी जन्म भूमि हुई पर उसकी मरण भूमि कहाँ है ? क्या मुक्ति कोई प्राणी है जो जन्म लेती और मरती है ? इस तर्क शैली से स्पष्ट हो जाता है कि मुक्ति-जन्म में द्वन्द्व समास (मुक्ति और जन्म) है न कि षष्ठी तत्पुरुष (मुक्ति का

---

१ [illegible] सन् १८०६ १ पृ० १०१ ।

जन्म) है जैसा कि भूल से लोग माना करते हैं। उक्त दोनों उद्धरणों ('विनय पत्रिका' का 'दियो सुकुल जन्म' वाला भजन तथा 'रामचरितमानस' का 'मुक्ति-जन्म-महि' वाला सोरठा) को एक में मिला कर पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि गोसाईंजी का जन्म-स्थान गंगाजी के समीप अर्थात् गंगाजी के तट पर काशी पुरी थी"।

ऊहापोह—अपने तर्क की पुष्टि में शास्त्रीजी 'कवितावली' से निम्नलिखित उद्धरण उपस्थित करते हैं

देव सरि सेवौं बामदेव गाउँ रावरेहीं
नाम रामही के माँगि उदर भरत हौं।
दीबे जोग तुलसी न लेत काहू को कछुक
लिखी न भलाई भाल पोच न करत हौं।
एते पर हूँ जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै
ताको जोर देव दीन द्वारें गुदरत हौं।
पाइ कै उराहनो न दीजो मोहि
काल कला कासी नाथ कहें निबरत हौं ॥ क० १६५ पृ० ॥

अर्थात् हे शिवजी मैं आपके गाँव काशी में गंगा का सेवन करता हूँ और रामचन्द्र के नाम से भीख माँग कर पेट पालता हूँ। तुलसीदास कहते हैं कि अगर मुझे किसी को देने की योग्यता नहीं है तो मैं किसी से कुछ लेता भी तो नहीं हूँ। और यदि मेरे भाग्य में किसी की भलाई करना नहीं लिखा है तो मैं किसी की बुराई भी तो नहीं करता। इतने पर भी अगर आपका कोई भक्त मुझे कष्ट दे तो हे देव मैं दीन होकर आपके ही पास उसका कष्ट देना निवेदन किए देता हूँ। यह उलाहना मैं आपको इस लिए देता हूँ कि इसे पाकर आप यह नहीं कहने पाएँगे कि तुमने मुझ से क्यों नहीं कहा। अत हे काशीनाथ मैं कलिकाल की इस करनी को आपकी सेवा में निवेदन कर अपनी जबावदेही से निवृत्त हो जाता हूँ।

"पर क्या कारण है" शास्त्रीजी का तर्क चलता है 'कि काशी वालों ने आप को इतना तंग किया कि आपको काशी से भागना ही पड़ा। कारण ढूंढने के लिए कहीं दूर जाने की जरूरत नहीं है। कहावत प्रसिद्ध है कि ओच्छी तसे का मून सात पुरत का नाम जाने में गोसाईंजी के लेखों के आधार पर पूर्व में कह आया हूँ कि आपका जन्म बनारस भूमि में कहीं पर हुआ था और आपने अपने बाल्यकाल को रामबोला के नाम से वहाँ के समीप बालकों की तरह दर-दर भीख माँग कर अपना पेट पालते हुए बिताया था। अत काशी वालों को आपकी जन्म-कहानी तथा आपका हेय प्रारम्भिक जीवन-काल बखूबी मालूम थे। पर घर-घर का टुकड़ा खाने वाला वही रामबोला अब अपना नाम तुलसीदास रखकर और महात्मा बन जाने का स्वांग रच कर उन्हीं ओछेे तसे के मूर्खों के ऊपर अपनी महात्मागिरी की धाक जमाने आया जो उनके लिए असह्य हो गया। काशी की जनता न ऐसी है और न कभी ऐसी थी कि कोई जाना हुआ व्यक्ति उस पर सहसा रोब गाँठ सके। सारांश यह कि गोसाईंजी तत्कालीन जनता की दृष्टि में कभी भी प्रतिष्ठा के पात्र नहीं रहे। वह आपकी जाति पाँति के विषय में सदा संदिग्ध रहती थी तथा आपको दोष पूर्ण

भवानि आदि कहा करती थीं"।

तर्क का प्रथम समाधान—शास्त्रीजी के उपर्युक्त तर्कों के उत्तर में इस प्रकार निवेदन किया जा सकता है :—

गोस्वामीजी के कतिपय लेखों के आधार पर शास्त्रीजी की धारणा है कि गोस्वामीजी किसी नीच कुल में उत्पन्न जारज सन्तान थे। केवल दो दशाएँ हैं। गोस्वामीजी के लेखों पर विश्वास किया जाय अथवा न किया जाय। यदि गोस्वामीजी ने समाज को धोखा देने के अभिप्राय से अपने विषय में यद्वा-तद्वा लिखा है तो उनके उन लेखों को प्रमाण न माना जाय और यदि उनके लेखों में श्रद्धा है तो जो कुछ उन्होंने लिखा है वह ठीक मान लिया जाय। यदि गोस्वामीजी के लेख अविश्वसनीय हैं तो विचार का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि वे लेख विश्वसनीय हैं तो विचार-धारा इस प्रकार प्रवाहित होती है :—

शास्त्रीजी ने 'विनय पत्रिका' का जो उद्धरण उपस्थित किया है उसमें गोस्वामीजी ने अपने लिए 'सुकुल' शब्द का प्रयोग किया है। उक्त भजन का अर्थ करते समय शास्त्रीजी ने 'सु' और 'स' में भेद नहीं माना है। 'सुकुल' शब्द का अर्थ है अच्छा अर्थात् 'उच्च कुल' अथवा 'सुकुल नामक ब्राह्मण वंश'। दोनों ही अर्थों से इस निराधार धारणा का निराकरण हो जाता है कि गोस्वामीजी नीच कुल के थे। काशीवाले गोस्वामीजी का तिरस्कार इसलिए नहीं करते थे कि वे नीच कुल के थे, किन्तु इस कारण कि वे अपनी विद्वत्ता रचना तथा सौजन्य के कारण ख्याति लाभ कर रहे थे जो तत्कालीन तथाकथित लब्ध-प्रतिष्ठ कतिपय व्यक्तियों को असह्य प्रतीत होती थी। गोस्वामीजी की रचनाएँ तो अहम्मन्यता से सर्वथा शून्य हैं। पर असूया आदि कुत्सित प्रवृत्तियाँ भी तो मानव-स्वभाव में विद्यमान रहती हैं और अकारण शत्रु भी संसार में रहते हैं। अतएव यदि गोस्वामीजी को कुछ लोगों ने अकारण कष्ट पहुँचाया तो कोई आश्चर्य न होना चाहिए। जनता को सदा अधिकार रहा है कि भगवान् कृष्ण को बाण से आघात पहुँचाय ईसामसीह को फाँसी पर लटकाय हजरत मोहम्मद को इधर-उधर भटकाय तथा सांख्य-शास्त्र प्रणेता को कपिल वैशेषिक दर्शनकार को कणाद न्यायशास्त्रकार को गौतम छन्दःशास्त्र के आचार्य को पिंगल आदि हेय शब्दों से अभिहित करे।

द्वितीय समाधान—शास्त्रीजी का कथन है कि गोस्वामीजी काशी में अथवा उसके निकट किसी स्थान में उत्पन्न हुए थे क्योंकि 'विनय-पत्रिका' के उक्त भजन में 'समीप सुरसरि बस' शब्दावली का प्रयोग हुआ है। अपने मत की पुष्टि में शास्त्रीजी ने 'रामचरितमानस' के किष्किन्धा काण्ड का प्रथम सोरठा उद्धृत किया है और 'मुक्ति-जन्ममहि' का तात्पर्य समझाने के लिए 'मुक्ति-जन्म' में द्वन्द्व समास का आश्रय लिया है, यद्यपि 'मानस' के सभी प्रसिद्ध टीकाकारों ने काशी को 'मुक्ति की जन्म-स्थली' माना है। शास्त्रीजी की यह आलंकारिक भाषा काव्य में निराधार खटकती है।

शास्त्रीजी की इस धारणा का पूर्ण निराकरण करने के निमित्त डॉ० माताप्रसाद गुप्त निम्नलिखित पंक्तियाँ कवितावली उत्तर काण्ड से उद्धृत करते हैं—

घेरो राम राय को सुजस सुनि तेरो हर ।
पायें तर आइ रह्यो सुरसरि तीर हौं ॥१६६॥
जीवे की न लालसा दयालु महादेव मोहि ।
मालुम है तोहि मरबहु को रहत हौं ॥१६७॥

अर्थात् हे शंकर भगवन् मैं महाराज राम का दास हूँ, आपका सुयश सुनकर आपके चरणों में गंगाजी के तट पर आ बसा हूँ। हे दयालु महादेव मुझे जीवित रहने की इच्छा नहीं है आप जानते ही हैं कि मैं तो मरने के लिए (काशीपुरी में) रहता हूँ। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि गोस्वामीजी कहीं से आकर काशी में वास करने लगे थे, जिस से यह स्वत: सिद्ध होता है कि वे वहाँ उत्पन्न नहीं हुए थे।

तृतीय समाधान—यदि शास्त्रीजी के इस सुझाव को थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाय कि गोस्वामीजी काशी में उत्पन्न हुए थे तो भी जन्मवसी पाण्डे गोस्वामीजी की अन्य उक्ति की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं वह यह है —

बानर बिभीषन की ओर के कनावड़े हैं
सो प्रसंग सुनें अंग जरै अनुचर को।
राज रीति आपनी को होइ सोई कीज, बलि
तुलसी तिहारो घर जायो है घर को ॥क० ७ १२२॥

अर्थात् आप सुग्रीव के ऋणी हैं यह बात सुनकर दास का मन मन जलता है (कि आप मुझ पर ऐसी कृपा क्यों नहीं करते ?)। अत: मैं आपकी बलिहारी जाता हूँ अपने प्रण की रक्षा करके आपसे जो बने वही कीजिये। यह तुलसीदास तो आपके घर का घर-जाया सेवक है। इस छन्द में गोस्वामीजी ने अपनी जन्म भूमि का निदश किया है जो स्पष्टत काशीपुरी नहीं हो सकती।

निष्कर्ष—पाण्डेजी गोस्वामीजी के जन्म-स्थान को अयोध्या समझते हैं हम रामपुर को गंगा तीरस्थ सूकर खेत (सोरों) से दो मील था। हमारी धारणा के अनुसार तो गोस्वामीजी के सभी उपर्युक्त उद्धरणों का समाधान हो जाता है कि सुकुल आस्पद तुलसीदास भी गंगा तीरस्थ भगवान् राम के पुर के जन्म-जात एवं निवासी थे और वृद्धावस्था में काशी सेवन करने लगे थे जिससे कतिपय पण्डितम्मन्य आतंकित हो उन्हें कुछ समय तक कष्ट देते रहे। सोरों-सामग्री के अनुसार गोस्वामी जी पुराणों की कथा बाँच कर अपना निर्वाह करते थे अत: शास्त्रीजी ने भविष्य पुराण की जो निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की हैं वे संगत ही हैं :—

वाल्मीकिस्तुलसीदास: कलौ देवि भविष्यति
रामचन्द्रकथां साध्वीं भाषाबद्धां करिष्यति
विख्यातस्तुलसी सम्यं पुराण-निपुण: कवि:। १२२

काशी की सामग्री—गोस्वामीजी का सम्बन्ध काशी से घनिष्ट रहा यह निर्विवाद है और यहाँ कि 'रामचरितमानस' और 'विनय पत्रिका' से स्पष्ट है उनका वार्धक्य वहीं बीता। तुलसी-घाट अभी और गंगाजी के सघन पर है। इस घाट के सन्निकट एक पुराना भवन है जिसकी एक कोठरी में हनुमानजी की प्राचीन मूर्ति है। यहाँ लकड़ी का एक खण्ड भी है जो गोस्वामीजी की उस नौका का अवशेष

कहा जाता है जिसमें वे गंगा-पार जाया करते थे। एक चोखी खड़ाऊँ की और एक चित्र भी विद्यमान है जिन्हें गोस्वामीजी का बताया जाता है। गोपाल मन्दिर के अहाते में एक नीची कोठरी है जिसमें कहते हैं गोस्वामीजी ने विनय पत्रिका के कुछ पदों की रचना की थी। प्रह्लाद घाट पर गंगारामजी ज्योतिषी का स्थान है। जब गोस्वामीजी सर्वप्रथम काशी गये तो यहाँ ठहरे थे। गोस्वामीजी ने इनकी ज्योतिष सम्बन्धी सहायता की थी तब से वे गोस्वामीजी के मित्र बन गये। इस स्थान पर गोस्वामीजी का एक चित्र भी है जिसे, कहते हैं जहाँगीर सम्राट् ने बनवाया था यद्यपि रायकृष्णदासजी की सम्मति से यह सं० १६२५ का नहीं है।[1] इस सामग्री के अतिरिक्त काशी में हस्तलिखित सामग्री भी है। १६६९ वि० का पंचायतनामा जो पहले असीघाट के निवासी टोडर के उत्तराधिकारियों के पास था अब काशीराज के यहाँ है। टोडर गोस्वामीजी के मित्र थे जिसका उल्लेख इन पंक्तियों में हुआ है:

तुलसी उरथाल बिमल टोडर गुनगन बाग
ये दोउ नैनन सींचिहौं समुझि समुझि अनुराग।
चार गाँव को ठाकुरो मन को महा महीप
तुलसी या कलिकाल में अथए टोडर दीप।
तुलसी राम सनेह को सिर पर भारी भार
टोडर काँधा ना दियो सब कहि रहे उतार।
राम धाम टोडर गए तुलसी भए असोच
जियबो मीत पुनीत बिनु यही जानि संकोच॥[2]

टोडर और राजा टोडरमल विभिन्न व्यक्ति हैं। टोडर के दो पुत्र थे आनन्दराम और रामभद्र। सं० १६६९ में जब रामभद्र मर चुके थे तो आनन्दराम और (रामभद्र के पुत्र) कन्हई में झगड़ा हुआ। जमींदारी में पाँच ग्राम थे—भदैनी नयपुर शिवपुर छीतूपुर और लहरतारा जो काशी के ही मुहल्ले हैं। बँटवारे का झगड़ा हुआ तो दोनों पक्षों ने गोस्वामीजी को पंच बनाया और पंचनामा १६६९ वि० आश्विन शुक्ला त्रयोदशी को काशी के समक्ष लिखा गया। पंचनामा तो फारसी के अक्षरों में है पर, कहते हैं सर्व प्रथम जो श्लोक है वह गोस्वामीजी के ही कर-कमलों के द्वारा लिखा गया है। ११ पीढ़ियों तक तो यह पंचनामा टोडर के वंश में रहा तदनन्तर पृथ्वीपालसिंहजी ने इसे काशी-नरेश को सौंप दिया और अब तक वह वहाँ सुरक्षित है। काशी के सरस्वती भवन में वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड की एक प्रति विद्यमान है जो १६४१ वि० की लिखी हुई है इसकी पुष्पिका में 'लि तुलसीदासेन' अंकित है।[3] १६६६ वि० में लिखी 'विनय-पत्रिका' की एक प्रति रामनगर के चौबरी छुन्नीसिंह के पास है। कहते हैं कि इस प्रति में जो संशोधन किये गये हैं वे स्वयं तुलसीदासजी के हाथ के हैं।

इस प्रकार कह सकते हैं कि यद्यपि काशी गोस्वामीजी की जन्म-भूमि नहीं है तथापि उनके निवास और मोक्ष की भूमि होने के कारण परमस्त महत्त्वपूर्ण है।

---

१ तुलसीभवन, ८५-८६।
२. श्री रामचरितमानस की भूमिका पाँचवीं बार ११ १४।
३ इस सम्बन्ध में विचार ग्रन्थ अध्याय में किया गया है।

अयोध्या

प्राक्कथन—गोस्वामी तुलसीदास के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में पण्डित चन्द्रबली पांडे ने अयोध्या की ओर इंगित किया है। उन्होंने जो प्रमाण संग्रह किया है उसका द्विविध विभाजन हो सकता है—बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य साक्ष्य के अन्तर्गत हैं अनन्य कवि की रचना, तुलसी चौरा, मोहन साईं का स्थान तथा भवानीदास का लेख और अन्तःसाक्ष्य के आधार हैं स्वयं गोस्वामी तुलसीदास जी के 'रामचरितमानस', 'कवितावली' और 'गीतावली'। पांडेजी का प्रयास प्रशंसनीय है यद्यपि रूपान्तर से उनके द्वारा सोरों-सिद्धान्त का ही समर्थन हो जाता है।

१ बहि: साक्ष्य

(क) व्रजनिधि का पद—जयपुराधीश्वर श्री सवाई प्रतापसिंहजी देव ने (जिनका उपनाम व्रजनिधि है) किन्हीं अनन्य नामक कवि के पदों का संग्रह किया। इस व्रजनिधि की अन्य रचनाओं के साथ इन पदों का संकलन पुरोहित हरिनारायण शर्मा के द्वारा हुआ और इन्हें काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने संवत् १९९० में प्रकाशित किया। महाराज प्रतापसिंह (व्रजनिधि) का जीवन-काल है संवत् १८२१ से १८६० वि० तक। अनन्य कवि कौन थे इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। चाहे वे अक्षर अनन्य हों अथवा अनन्य माधव अथवा अन्य कोई अनन्य हों इस से कोई विशेष प्रयोजन भी नहीं। किन्तु इनकी रचना का संग्रह-संकलन व्रजनिधि जी ने स्वयं किया अथवा उनके किसी उत्तराधिकारी ने यह स्पष्ट नहीं। अस्तु अनन्यजी ने गोस्वामी तुलसीदास की प्रशस्ति इस प्रकार का है —

जय जय तुलसीदास गुसाईं। सिया राम इन गाई गाई
रघुबर की बर कीरति गाई। औ अनन्य तिनके मन भाई ॥८४॥
गाई अनन्य अवधि सुकीरति बिमल रघुबर राम की।
करि विविध चरित्र बानी प्रगट कीनी भाम की।
दुर्मिल कलि के जीव तिन पै अति अनुग्रह तुम करयो।
विविध ताप संताप हिय को दया करि सब को हरयो ॥८५॥
जय श्री तुलसी तप संयम साजई
आनन्द बन के माँहि अमर छवि छाजई
कविता मंजरी सुन्दर साजे।
राम-भ्रमर रमि रह्यो तिहि काज ॥८६॥
रमि रहे रघुनाथ-अलि ह्वै सरस सौंधा चाहके
अति ही अमित महिमा तिहारी कहौं कैसे गाइके
तुलसी सु कविता लखी जो निज नाम तें तुम्हा लखी
दास तुलसी नाम की यह रहति मैं मन मैं लखी ॥८७॥

कोसल देस उजागर कीनो। सबहिन को अनुभव रस दीनो।
छिन-छिन उमगे प्रेम नवीनो। उमड़ि घुमड़ि अरु भाव रंगीनो ॥८८॥
रंग की बरखा करी बहु जीव सम्मुख करि लिए।
जनक नंदिनि-राम-छबि में मिले मिले डोले जन हिये।
बस निरन्तर रहत जिनके माथ रघुबर जानकी।
है दास तुलसी कछु मो पर दया दंपति जान की ॥८९॥
सुन्दर सिया राम की जोरी। वारौं तिहि पर काम करोरी।
जोर मिलि रंग महल में सोहै। सब सखियन के मन को मोहै ॥९०॥
सकल सखियन में सिरोमनि दास तुलसी तुम रही।
करी डोलन चरित रवि सों मुक्त को बानी कही।
दास यह तुअ समस्त तापर रीझि बरसन लग परी।
यही तुलसीदास तुम्ह ही कृपा करि अपनी करी ॥९१॥'[1]

उक्त प्रशस्ति में 'कोसल देस उजागर' कीनो' शब्दावली ध्यान देने योग्य है। पाण्डेजी की समझ में यह अर्थ भासता है कि कोसल देस में जन्म लेकर तुलसी ने उसे धन्य कर दिया।'[2] इसमें कोई सन्देह नहीं सभी जानते भी हैं कि तुलसीदासजी अयोध्या में रहे थे और वहीं उन्होंने अपने 'रामचरितमानस' का आरम्भ किया था। उनकी उस रचना से देश का कल्याण हुआ अतः कोसल देश धन्य है जहाँ उन्होंने कुछ काल तक निवास किया। पर 'कोसल देस' का तात्पर्य केवल अयोध्या नगरी से ही यह आवश्यक नहीं और केवल 'उजागर कीनों' से यह तात्पर्य ग्रहण नहीं किया जा सकता कि वहाँ उनका जन्म हुआ, जबकि भिन्न साक्ष्य भी उपलब्ध हों।

(ख) तुलसी-चौरा—अयोध्या में तुलसी चौरा नामक स्थान है जिसका उल्लेख मोहन दास नाम के पुण्यात्मा ने एक गीत में किया है। उसका आशय यह है कि जहाँ आज तुलसी चौरा है वहाँ वट वृक्ष के नीचे एक योगिराज ने आसन जमाया था और जब गोस्वामी तुलसीदास काशी से वहाँ पधारे तो उसने योगबल से गोस्वामीजी का महत्त्व जान कर उन्हें सब कुछ सौंप कर योगद्वारा अग्नि उत्पन्न की और अपना शरीर त्याग दिया। जब संवत् १६३१ आया तो गोस्वामीजी ने रामगाथा लिखी और भगवान् विष्णु, सीता राम लक्ष्मण और हनुमानजी की मूर्तियाँ स्थापित कीं। राजा मानसिंह ने वहाँ फर्श और छत्री बनवा दी। गीत सुन्दर है वह इस प्रकार है—

अवध की भूमी पवित्र सब है
पवित्रतम उसमें है तुलसी चौरा।
तवाफ करते हैं रोज जिसका
विरंचि नारद महेश गौरा ॥१॥
यह वही जगह थी कि जिस जगह, वह दरख्त वट का उगा यहाँ।
उसी छाँव में बड़े के गुलाम गुरु, जमे जैसे कोई करे जवाँ।

---

१ रसनिधि-ग्रन्थावली (हरिहर संग्रह) पृष्ठ ९०-९१।
२ तुलसी की जीवनभूमि, पृष्ठ ११४।

हरे हुए सब देखकर कुदरत इलाही दर जहाँ।
न सुना मुअम्मा किसी से भी पोशीदा इसरारे निहाँ।
सुना न देखा किसी ने पहले बना दिया हरम सब को बौरा ॥२॥
अवध की भूमी॰

जमाया आसन उसी के नीचे, प्रसिद्ध मुनि योगिराज जी ने।
वे जानते मर्म भीतरी थे बता दिया था उन्हें किसी ने।
यहाँ पै काशी से जब गुसाईं पधारे थी राम रस से भीने।
सुनाके आदेश अपने गुरु का उन्हें ही सौंपा सब उस यती ने।
जला के तन योग अग्नि में तब सिधारा गुरु पार भव भौंरा ॥३॥
अवध की भूमी॰

लगी जब इक्कीसी राम भोगी गुसाईं जी ने कलम उठाई।
उमाह से राम ब्याह तेंतिस समाप्ति तिथि जानकी सुहाई।
हुई थी पूजा की धूम पुरजन ने राम माथा मे थी बढ़ाई।
सुविज्ञ मणि दीप सुचि अलौकिक सुघरता जिनकी कही न जाई।
बीता था उसमें समेत परिकर के रामजी का शबीह बौरा ॥४॥
अवध की भूमी॰

थी एक दर विष्णु जी की झाँकी व दूसरे दर थी राम सी जी।
व तीसरे दर प्रभुक हनुमत विराजती मूर्ति दीप थी जी।
उन्हीं की पूजा यहाँ पै होती बसाई जानी गुसाईं जी की।
बना दिया मिरजा मानसिंह ने कलश कंगूरेव व पक्ति ही की।
बहुत दिनों तक चहल-पहल थी पलट गया फिर समय का दौरा ॥५॥
अवध की भूमी॰

चढ़ा था शैतान सुना के सिर कि ताजपोशी की की तयारी।
उपाड़ कर फर्श तख्त लाया दुखा के दिल थी बला के भारी।
वह तख्त पर बैठने न पाया पहुँच के मौरंग न जान मारी।
मुगल के घर रत्न फर्श थी गुनाह व सजावत उसने करसा।
किए का फल हाथों हाथ पाती पहुँच गए बिस्तियों पिचौरा ॥६॥
अवध की भूमी॰

रहा सहा कुल चरिका पुत्र भी था ही जिसका मजाह सब का।
बना न वह भी बचे तो कहते कि हिम गए जब कि लाखों तबका।
वह कैसा संवत् था देवता का कि नाम बारह बनास रब का।
जो जन्म देता था कहते माने कि प्रभकरी तिथि हुमन की जबका।
सब ईंट की वेदिका बची है उसी पै सिर हम पटकते बौरा ॥७॥
अवध की भूमी॰

ए पाक दर मैं तो लायके तन हूँ बहुत ही था पाक मजसे दामन।
मगर तुम्हारे ही साये में तो हुआ है मेरा हमेशः पालन।
इसी से मुझे का हक़ है हासिल दिया करो नितुदेव भगवन्।

कपीश से मुंह में छिपाई तुम्हारा तब भी बने न ईमन।
तुम्हारी भावस्मित पेरती है हृदय हमारा बनाके हीरा ॥८॥

भवन की चूनी०

तुम्हीं तो सता के सोमचर हो तुम्हीं तो द्वापर के वंशीधर भी।
तुम्हीं बने कलि में बोध दिखला जो मानसी वर यहाँ प्रकट भी।
तुम्हीं धनय बट तुम्हीं अचल बट तुम्हीं हो कैलास तट मुकुट भी।
तुम्हीं हो नटराज बट अपूर्व में तुम्हीं मेकल सुता के तट भी।
तुम्हारा गुन गावै साईं मोहिन बनेगा जब तक भजन का बीरा ॥६॥

प्रकाश की चूनी०

श्री चन्द्रबली पाण्डे की कल्पना है कि उक्त गीत में जिस मुनी का उल्लेख है वह तुलसीदासजी के माता-पिता की होगी और यह चौरा ही तुलसीदासजी का जन्म-स्थान है। किन्तु उक्त गीत से ऐसी कल्पना को बल नहीं मिलता। उसमें स्पष्ट लिखा है कि गोस्वामीजी काशी से उस स्थान पर आये थे। छतरियाँ तो स्थान को महत्त्व प्रदान करने के लिए अथवा निर्माता की अपनी ही स्मृति को बनाये रखने के लिए बनवा दी जाती हैं। सोरों में, उदाहरणार्थ, वराह-मन्दिर के समीप हर की पैड़ी पर अनेक सुन्दर प्रस्तरमयी छतरियाँ विद्यमान हैं जिन्हें राजाओं ने स्मृति चिह्न-स्वरूप बनवाया था।

(ग) भवानीदास का 'तुलसी चरित'—पाण्डेजी ने भवानीदास कृत 'तुलसी चरित' में से कुछ उद्धरण दिये हैं। वे ये हैं:—

(क) तहाँ ते चलि आए बहुरि, बीरापुर सुजान
पकल सराहैं आप जिमि करि आदर सनमान ॥४॥
मिलि सहु साथ सहेत करि, दीन्ह बचन बहु भाखि
लोग प्रेम तहँ अति सुखद, आप चरन उर राखि ॥५॥
दै करि आशिरबाद जिन आए आवर ठौर।
जाति सबद समर्थ जिय सैनहु आयो मीर। ६॥
प्रथम रूप छायो छिमन उपज्यौ प्रेम अपार।
मगन ध्यान रस संग सुन दशा शरीर बिसारि ॥१॥
पुनि विविध करि आरती अति ही प्रेम अधीर।
बस्तु भावना सकल करि, चले नगर रघुबीर ॥२॥ (पृ० १००)
आये वहँ बनाइ बस्तु भरि गुह जल कलसा
छहु समाज चढ़ि चले करत रघुपति गाथा।
है मग को एक ग्राम रामपुर नाम है ताको
गेहि ग्रामजनी नाम धराओ है यह काको।
अब जिन कपाति नहिं चूकि है
कहौ बहुत लिन माय नहिं
जन जाति कुजाति समाति के
काहू को कहि काम नहिं ॥१॥

असवारी को नाव जबै पहुँची तेहि ठाऊँ
साधन हूँ बहु कह्यो बतायो तदपि नाऊँ
तापर नहिं मान तब तिन पूँछ गोसाईं
कहा ग्राम को नाम कौन मुखवर यहि ठाईं
कह्यो हुवेराम को ग्राम यह
नाम रामपुर विदित मम।
जाती जाति तन तदपि है
रामदास मम नाम जन ॥२॥
तब निज मन अनुमान किय अब ऐसे शुभ ठौर
आवे वस्तु जो काम तो हमहिं न चाहिय और ॥१॥
वस्तु अनेक अमोल अति पद बहु विविध सुदेस
तब आई क्यों भेंट किय साथ नरेस अनेस ॥२॥(पृष्ठ १०६-७)

इन अवतरणों का तात्पर्य है कि गोस्वामी तुलसीदास को अयोध्या से बड़ा प्रेम था और उसके नाममात्र से उनके नैनों में प्रेमाश्रु आ जाते थे और वे स्वयं विभोर हो जाते थे। एक बार यात्रा करते वे एक ग्राम में पहुँचे जिसका नाम रामपुर था किन्तु वे उसे पहचानते न थे। वह न तो अयोध्या था और न सोरों वाला रामपुर ही क्योंकि यदि वह इनमें से कोई होता तो वे उसे अवश्य पहचान लेते।

रामपुर नामा का वर्णन अन्यत्र भी मिलता है। श्री खेमराज श्री कृष्णदास ने अपने श्री वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से संवत् १९३० अर्थात् १८७४ ई० में 'तुलसीकृत रामायणम्' प्रकाशित किया प्रारम्भ में तुलसीदासजी का जीवन-चरित पद्य में दिया गया है उसमें तुलसीदासजी को रामापुर-निवासी बताया गया है और उक्त नामा का वर्णन पृष्ठ ६१० पर इस प्रकार है—

एक समय श्री अवध को लै सब संत समाज।
जावहिं नावहिं चलत भये नाव भरासे साज ॥१८॥
सरयू गंगा संगम जहुँई पहुँचे जबै गोसाईं तहुँई
भूप यार भाटी जब आमा पूछ्यो तुलसी चाकिहु नामा
कहेँ लोक चलिके फिर मावत रामसिंह इत नृपति कहावत
रामदास यारी कर नाऊँ तथा रामपुर बाजत गाऊँ
रामघाट यह सुन्यो गोसाईं लगत अपार हर्ष भरि आईं
बिन कर दै कोउ बाम न पावें तुमहुँ को देव उचित इत आवें
राम भये पुनि नाम लखन के लखन कोर भे प्रभु नयन के
तुलसिदास बोले मुसकाई दै अमात है कोर कबाई
सुन्यो गोसाईं अत्रान राजा आयो तुरतहिं सहित समाजा
बंदी तुलसिदास पदकंजन लिय उपदेश सुमति इन मंजन
बिनय कियो भरि भाल में माथा होय नाथ इतही संहाय
मेरे कठ देहु प्रभु कंठी कीजे मोहिं भक्ति विभूति।

तुलसीदास कीन्हें कृपा भंडारा तहँ तीन
भूपहु धम्म समाज के अति वत्सल तहँ कीन ॥१९॥
तुलसिदास उपदेशते भूप सहित सब देस
रघुपति भक्त अनन्य भो लियो संत हमेस ॥२०॥
तुलसिदास की पादुका थपी भूप गृह मांहि
इष्ट देव सम पूजिकै पायो मोद सदाहि ॥२१॥
एक दिवा निवसत तेहि कासी एक चरित्र भयो सुखरासी ॥"

रामपुर-यात्रा के वर्णन की समानता रखते हुए भी यह भिन्न है। एक में रामपुराधिपति का नाम दृढ़सराम और दूसरे में रामसिंह दिया गया है। जगाति की जात और जाटी का नाम रामदास दोनों में दिया गया है, किन्तु इस यात्रा प्रकरण से भी गोस्वामीजी के जन्म-स्थान पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष में कोई प्रकाश नहीं पड़ता। पांडेजी ने निम्नलिखित उद्धरण और दिया है —

ग्राम एक है रामपुर सिलिरिय पुरब भाग
भूमिपाल तेहि ग्राम को भिलो सो बड़ अनुराग ॥१॥
नाम धुलत बंरामपुर कियो गोसाईं सोइ
तब तिन अपने दुख कह्यो भयहि दुख के ओइ ॥२॥
पति महा दारुण दुखद रहत हमारे ग्राम
करत वारिए कृपा करि पूजे सब मन काम ॥ ॥
तब्हि सो प्रीति की नाम नाम को नातो मान्यो।
पर दुख दुखी दयाल सहज तहँ कीन्ह बखानो।
वृन्दावन जब रहे तहाँ एक सहज सुभाए
सुचि डार बट धरी सो प्रभु सहज हि रखवाए
कहि बंसीबट परताप सो पाहि बतायो दियो बल
तह कहयो बासना बट रुचिर व्याधि नास हित करि अचल ॥३॥
अग्रहन शुक्ला पंचमी राम ब्याहु उत्साह
सदा रहत बट तर करेहु होइहि तब सुख लाह ॥४॥
एक दिन रहि तह कीन्ह पयानी बट ताकानि बिम्नहरि जानी
पहुँचे ग्राम तो मुख सुखारा प्रेमकाल बड़ि लाग अकासा
प्रीति पीन दुख दूर पराने मिटे ताप परिताप पराने
बट बढ़ि भो विस्तार अति छाया विलस गंभीर
धुति मनमा तेहि तर भजहु होत नह सबी पीर ॥६॥ (पृष्ठ १०४ ?)

उक्त उद्धरण का आशय है कि गोस्वामी तुलसीदास वृन्दावन (मथुरा) से बंसीबट की शाखा लाए। वह सूख गई थी किन्तु उन्होंने उसे बयरामपुर में यों ही गाड़ दिया और उसमें पानी लगाया। समय पाकर वह शाखा उग आयी और अब वट वृक्ष के रूप में गोस्वामीजी के स्मारक-स्वरूप वे विद्यमान है। गोस्वामीजी के इस चमत्कार के सम्बन्ध में हमें कुछ नहीं कहना किन्तु इससे गोस्वामीजी के जन्म-स्थान पर कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता। इसका केवल इतना आशय है कि गोस्वामीजी कभी

निश्चित भी वरे थे जिसके लिए ऊहापोह की विशेष आवश्यकता नहीं।

२ तथा-कथित भ्रान्त साक्ष्य

पाण्डेजी ने अपने मत की पुष्टि में गोस्वामीजी की रचना के कुछ ऐसे स्थलों की ओर ध्यान आकर्षित किया है जिनसे अनुमान होता है कि उनका सम्बन्ध उनके इष्टदेव भगवान् रामचन्द्र की जन्म भूमि अयोध्या से था यथा—

१ (क) सखि नीके के निरखि कोउ सुठि सुन्दर बटोही।
मधुर मूरति मदन मोहन जोहन-जोग
बदन सोभासदन देखिहौं मोही॥
साँवरे गोरे किसोर सुर मुनि चित चोर
उभय अंतर एक नारि सोही।
मनहुँ बारिद बिधु बीच ललित अति
राजति तड़ित निज सहज बिछोही॥
उर धीरजहि धरि जन्म सफल करि
सुनहि सुमुखि जनि बिकल होही।
को जानै कौने सुकृत लह्यौ है लोचन लाहु
ताहि तें बारहि बार कहति तोही॥
सखिहि सुसिख दई प्रेम मगन भई
सुरति बिसरि गई आपनी ओही।
तुलसी रही है ठाढ़ी पाहन गढ़ी सी काढ़ी
न जानै कहाँ ते आई कौन की को हौ॥

(गीतावली अयोध्याकाण्ड ११ १०४)

(ख) राम-धाम मह कामधेनु महि सुख संपदा लोक छाए
जनम-जनम जानकी नाथ के गुनगन तुलसीदास गाए।

(गीतावली लंकाकाण्ड २३)

(ग) निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ रहहि मोच्छ सब त्यागि॥

(रामचरित मानस ४ २६)

(घ) काई सों बहुत बात कौसिलहि लड़ुबात
बोल पग धोर से बोलता और-थोर हैं।
सनमुख सबहि बिलोकत सबहि नीके
कृपा सों हेरत हँसि तुलसी की ओर हैं।

(गीतावली बालकाण्ड ७१ १)

(ङ) भरत राम रिपुदवन लखन के चरित सरित अन्हवैया
तुलसी तब के से अजहुँ जानिबे रघुबर नगर बसैया।

(गीतावली बालकाण्ड ८, ६)

उपर्युक्त उद्धरण [संख्या क)] का अर्थ यह है कि तुलसीदासजी ने स्वयं

अपने किसी पूर्व-जन्म में सीता-राम-लक्ष्मण के दर्शन किये। उस समय वे तो बटोही थे और तुलसीदास सखी थे। ऐसी कुछ लोगों की कल्पना है और पाण्डेयजी की भी। अन्यथा उक्त उद्धरण के चतुर्थ छन्द का अर्थ एक टीका में इस प्रकार है जो समीचीन प्रतीत होता है—"इस प्रकार सखी को सुशिक्षा दे वह प्रेम में डूब गयी और उसे अपनी सुधि जाती रही। तुलसीदास कहते हैं फिर तो वह पत्थर में गढ़ कर काढ़ी हुई मूर्ति के समान ज्यों की त्यों खड़ी रह गयी। फिर यह कौन जाने कि वह कहाँ से आयी थी और किसकी कौन लगती थी?" यदि तुलसीदासजी को अपने पूर्व जन्म का ज्ञान होता तो वे यह न लिखते कि यह कौन जाने कि वह कहाँ से आयी थी और किसकी कौन लगती थी।[1] अतएव ऐसा अनुमान केवल क्लिष्ट कल्पना है कि तुलसीदास ने यह अपने ही विषय में लिखा है। सूरदासजी ने भी तो लिखा है

हौं तो तेरे घर को ढाढ़ी सूरदास मोंहि नाऊँ ॥३५॥
मैं तेरे घर को हौं ढाढ़ी भी हरि कोउ न जाने ॥३६॥'

तुलसीदासजी ने सूरदासजी की शैली का कुछ विषयों में अनुकरण किया है। उन्होंने बाल राम का वर्णन ठीक उस प्रकार किया है जिस प्रकार सूरदासजी ने बालकृष्ण का। साम्य इतना अधिक है कि साहित्य-स्तेय का आभास होता है। किन्तु तुलसीदासजी भगवद्भक्त थे उन्हें सांसारिक यशोलाभ की लिप्सा न थी और उनकी अपनी मौलिक रचनाएँ ही क्या कम थीं। उन्हें सूरदासजी से प्रेरणा मिली और उसके सुन्दर उपयोग के द्वारा उन्होंने सूर को चिरस्तन श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।[2]

(ख) (ग) और (घ) संख्यक उक्त उद्धरणों का तात्पर्य यह प्रदर्शित करने का है कि गोस्वामी तुलसीदास और भगवान् रामचन्द्र का सम्बन्ध तो जन्म-जन्मान्तरों का सम्बन्ध है। इस विषय में भी गोस्वामीजी को सूरदासजी से प्रेरणा मिली है। सूरदासजी भी तो भगवान् कृष्ण के प्रति कहते हैं

हौं तेरो जनम-जनम को ढाढ़ी सूरज दास कहाऊँ ॥३१॥'

दार्शनिक दृष्टिकोण से तो प्रत्येक मानव का भगवान् से जन्म जन्मान्तरों का सम्बन्ध है ही। इस दृष्टिकोण से सूर-तुलसी की कल्पनाएँ मनोरम तो हैं इतिहाससम्मत नहीं।

(च)-संख्यक उद्धरण में तो तुलसीदासजी भगवान् रामचन्द्र के निकट जनकपुरी में विद्यमान हैं अतः कल्पनाएँ हो सकती हैं कि गोस्वामीजी उस समय एकिकोड़ अथवा जनौलिस्ट अथवा मिथिला-वास सम्भ्रान्त नागरिक के रूप में थे किन्तु ये तीनों ही कल्पनाएँ क्लिष्ट हैं और ऐसी ही जैसी 'तापस-प्रकरण' के 'तापस' की।

(छ)-संख्यक उद्धरण का तात्पर्य यह है कि गोस्वामी तुलसीदासजी भगवान् राम के नगर के वासी न केवल पूर्व-जन्मों में ही थे किन्तु वर्तमान जन्म में भी। किन्तु कुछ टीकाओं में इस बात का उल्लेख नहीं। इस उद्धरण का अर्थ इस प्रकार किया गया

---

१ बालकाण्ड, दशम सर्ग, १ ३५-३६।

२. सूर को तुलसी की श्रद्धांजलि, रामरत्न भटनागर 'देश बन्धु', पृष्ठ १८।

३ सूर सागर, १० ३१।

तुलसीदासजी कहते हैं कि राम भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न के चरित्र रूप सरिता में स्नान करने वाले जैसे तत्कालीन अवधवासी थे वैसे ही आज के भी समझने चाहिए। इससे तो कोई पता नहीं चलता कि तुलसीदासजी रघुबरनगर से अपने किसी सम्बन्ध की चर्चा कर रहे हैं। यदि यह मान भी लिया जाय कि गोस्वामी तुलसीदास का सम्बन्ध अयोध्या से था तो उसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? उन्होंने अयोध्या में निवास और 'रामचरित मानस' का आरम्भ किया। 'रघुबर नगर बसैया' से 'रघुबर नगर' में जन्म सिद्ध नहीं होता।

९ अन्य प्रकार

श्री चन्द्रबली पाण्डे ने एक अन्य प्रकार से तुलसीदासजी के ही लेख से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि गोस्वामीजी अयोध्या में उत्पन्न हुए थे

सुनु कपीस अंगद लंकेसा पावन पुरी रुचिर यह देसा
जद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना बेद पुरान बिदित जगु जाना
अवधपुरी सम प्रिय नहि सोऊ, यह प्रसंग जाने कोउ कोउ
जन्म भूमि मम पुरी सुहावनि उत्तर दिसि बह सरजू पावनि
जा मज्जन ते बिनहि प्रयासा, मम समीप नर पावहिं बासा
अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी मम धामदा पुरी सुखरासी
हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी धन्य अवध जो राम बखानी

रा ७ ११ २-७

पाण्डेजी के मतानुसार, इन पंक्तियों में गोस्वामी तुलसीदास ने भगवान् रामचन्द्र के मुख से अपनी जन्म भूमि की प्रशंसा सांकेतिक रूप से करायी है। अतः उनकी दृष्टि में वस्तुतः अवधपुरी हो तुलसी की जन्म भूमि और अवध ही उनका जन्म-देश है।[1] किन्तु अन्य अनेक कवियों ने भी इसी प्रकरण में इसी प्रकार लिखा है। सूरदासजी लिखते हैं—

हमारी जन्म भूमि यह गाउँ।
सुनहु सखा सुग्रीव-बिभीषन अवनि अयोध्या नाउँ।
देखत बन-उपवन-सरिता-सर, परम मनोहर ठाउँ।
अपनी प्रकृति लिए बोलत हौं सुरपुर मैं न रहाउँ।
ह्याँ के बासी अवलोकत हौं, आनन्द उर न समाउँ।
सूरदास जो बिधि न संकोचै तो बैकुण्ठ न जाउँ ॥१६२॥[2]

अध्यात्म रामायण-कार युद्धकाण्ड में लिखते हैं—

एषा भागीरथी गंगा दृश्यते लोकपावनी
एषा सा दृश्यते सीते सरयू यूप मालिनी ॥ (१४ ११)
एषा सा दृश्यतेऽयोध्या प्रणामं कुरु भामिनि
एवं क्रमेण सम्प्राप्तो भरद्वाजाश्रमं हरिः ॥ (१४,१४)

---

१ तुलसी की जीवन भूमि, पृष्ठ १२९।
२ सूरसागर प्रथम स्कन्ध १६८, दूसरा खण्ड नागरी प्रचारिणी सभा काशी, प्रथम संस्करण १९८२ वि।

यद्यपि वाल्मीकिजी रामायण के युद्धकाण्ड में लिखते हैं
एषा सा दृश्यते सीते राजधानी पितुर्मम ।
अयोध्यां कुरु वैदेहि प्रणामं पुनरागता । (१२१, ५२)

किंचित् अन्तर से तुलसीदास, सूरदास, व्यास, वाल्मीकि सभी का भावसाम्य है हाँ गोस्वामीजी की उक्ति सब से अधिक भावुकतापूर्ण है क्योंकि 'यद्यपि बैकुण्ठ की महिमा सब लोग जानते हैं और वेद-पुराण में भी उसके माहात्म्य का वर्णन है तथापि वह बैकुण्ठ भी मुझे (राम को) इतना प्यारा नहीं जितनी अयोध्या, इस बात को सब नहीं जानते कोई-कोई ही जानता है। यह है गोस्वामी तुलसीदास का वर्णन अपने इष्टदेव की जन्म-भूमि के प्रति प्रेम का। नायक की घटना भावना का आरोप ग्रन्थकार पर करना सर्वथ युक्ति-संगत नहीं होता। कवि तो तन्मय होकर लिखा करता है।

३ वास्तविक अन्तःसाक्ष्य

सागर में गोता लगाने वालों को कभी न कभी मोती मिल ही जाता है। श्री चन्द्रबली पाण्डे ने भी तुलसी रचना-सागर में गोता लगाकर एक रत्न ढूंढ़ ही लिया। उन्होंने गोस्वामीजी की 'कवितावली' में से एक ऐसी पंक्ति खोज ली जिसमें कवि ने अपनी जन्म-भूमि की ओर महत्त्वपूर्ण इंगित किया है। वह इस प्रकार है —

तुलसी तिहारो घर जायो है घर को। (१२२)

गोस्वामीजी भगवान् रामचन्द्र को उपालम्भ दे रहे हैं कि आप हनुमान् सुग्रीव अंगद विभीषण आदि बाहर राक्षसों पर जो बाहर वाले हैं आरम्भ से ही अहसान करते रहे हैं किन्तु आपने मुझ पर अपनी कोई कृपा नहीं की। मैं तो आपके घर का घरजाया नौकर हूँ। पाण्डेजी की खोज की उपेक्षा-सी करते हुए डॉ० माताप्रसाद गुप्त संत कबीर की निम्नलिखित पंक्ति का स्मरण दिलाते हैं —

कहि कबीर गुलाम घरका जी ज्याइ भावै मारि।

किन्तु जैसा कि पाण्डेजी लिख चुके हैं कबीर और तुलसी की उक्तियों में अन्तर है। तुलसी ने 'घर' शब्द की द्विरुक्ति की है कबीर ने नहीं। कबीर के उपास्य हैं निर्गुण ब्रह्म जिसका न कोई घर है न कोई गुलाम किन्तु तुलसी के उपास्य हैं सगुण ब्रह्म श्री रामचन्द्र जिनके अनेक घर और नौकर-चाकर हैं। अतएव दोनों कवियों की उक्ति में भाव-साम्य नहीं।

'तुलसी तिहारो घर जायो है घर को'

इस पंक्ति के आधार पर पाण्डेजी घोषणा करते हैं कि तुलसीजी का जन्म-स्थान अयोध्या था। वे इस प्रकार अर्थ लगाते हैं आपका अर्थात् राम का घर अयोध्या है और तुलसीदास उस घर में उत्पन्न हुए घर के दास हैं अतएव तुलसीदास अयोध्या में जन्मे थे। हमारा दृष्टिकोण तनिक भिन्न है राम का घर रामपुर में और तुलसीदास वहाँ के घरजाये घर के दास, अतएव तुलसीदास भी रामपुर में उत्पन्न हुए।

रामपुर की सत्ता ?

तो रामपुर कहाँ ? क्या वह अयोध्या नहीं है ? 'रामपुर' नामक स्थान तो अनेक हैं, और अयोध्या को भी रामपुर कहते हैं। स्वयं गोस्वामीजी ने अयोध्या के लिए रामपुर शब्द का प्रयोग किया है, यथा—

मुनि सुर सुजन समाज के सुधारि काज
बिगारि बिगारि जहाँ जहाँ जाकी रही है
पुर पाउँ धारि है उधारि है तुलसी से जन
जिन जानि के गरबी गाढ़ी गही है।

(गीता॰ अयो॰ ४१ ४)

उक्त पुर 'रामचरित मानस' में स्पष्ट हो गया है

पहुँचे दूत रामपुर पावन। हरषे नगर बिलोकि सुहावन
भूप द्वार तिन्ह खबरि जनाई। दसरथ नृप सुनि लिए बोलाई॥

(बालकाण्ड २८६, १-२)

जब जब अवधपुरी रघुबीरा। धरहिं भगत हित मनुज सरीरा।
तब-तब जाइ रामपुर रहऊँ। सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ॥

(रा॰ ७ १११ व १२ ११)

गोस्वामी तुलसीदास का जन्म-स्थान भी रामपुर है और वहीं उनके पूर्व पुरुष रहते थे। किन्तु दोनों 'रामपुर' भिन्न स्थान हैं। भगवान् रामचन्द्र का जन्म-स्थान रामपुर अर्थात् अयोध्या है और गोस्वामीजी का जन्म-स्थान रामपुर ग्राम है। वह सोरों से दो मील पूर्व था। इस सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन "रामपुर" नामक आगामी अध्याय में किया जायगा। सोरों-सामग्री में 'रामपुर' का उल्लेख श्री चन्द्रबली पाण्डे की भव्य कल्पना से पूर्व ही प्रकाशित हो चुका था। परन्तु पाण्डेजी के अनुसन्धान से सोरों-सामग्री को और अधिक स्पष्टता और पुष्टता प्राप्त हुई है, जिसके लिए हिन्दी-संसार उनका ऋणी रहेगा।

तारी हुलसी की जन्मस्थली

अविनाशराय की सूचना—कविराज अविनाशराय ने सन् १६२० ई० में 'तुलसी प्रकाश' नाम की पुस्तक लिखी थी जिस पर द्वितीय अध्याय में विचार हो चुका है। उसमें अविनाशराय ने अपनी जन्म भूमि तारी का, अपने वंश का, एवम् गोस्वामी जी की माता हुलसी का जो परिचय दिया वह इस प्रकार है —

गंगा दक्षिण कूल इक, तारी ग्राम सुचाल।
सोरंकी हरसिंह जहँ, भूमिपाल मतिमान।
जहँ बसत भूसुर भूरि बहु लसत भूसुर भूरि।
बहु बास जन सुखकारि, लघु ग्राम पै मन हारि।
जन्मभूमि मेरी सोइ, आनंद सुरप सम जेइ।
सिवराय जू कविराय मेरे जनक सुखदाइ।
कौशिक मुनि गोती दुबे तहाँ विप्र सिरमौर।
बसत अयोध्यानाथ बुध, एहि सम गनक न और।

पुत्र न कोउ जियो उनको, दुहिता हुलसी बहु लाल भई।
ब्याहन जोग भई जब ही वर ढूँढन मैं चितवृत्ति दई॥
सूकर खेत समीप तबै वर रामपुरे मधि देखि लयो।
आतमराम सुकुलहि के कर मैं हुलसी कर बाम दयो॥

आत्माराम घर हाथ मातुहीन हुलसी सुता।
गई अयोध्यानाथ लोक वेद कुल रीति करि।
जामातहिं सुखदाइ, बरस भए कछु ब्याह सों।
मिश्र सरबस पहाइ, तारी तजि सुरपुर गए।
तारी महँ बसि बरस इक पंडित आत्माराम।
जाइ बसे हुलसी सहित, सूकर रामपुर धाम।

इन उद्धरणों से पता चलता है कि अविनाशराय के समय में गंगा के दक्षिण किनारे तारी नाम का ग्राम था जहाँ हरसिंह सोलंकी शासन करता था। यह ग्राम छोटा तो था किन्तु मनोहर था। यह अविनाशराय का जन्म-स्थल था जिनके पिता का नाम शिवराय था। इन्होंने अपने पिता को कविराज बतलाया है जिससे यह अनुमान होता है कि यह ब्रह्मभट्ट होंगे। इस ग्राम में अयोध्यानाथ नाम के ज्योतिषी भी रहते थे, जो जाति के दुबे और गोत्र के कौशिक्य थे। उनका कोई पुत्र जीवित न रहा। इनकी पुत्री का नाम हुलसी था। विवाह-योग्य होने पर उन्होंने समीपस्थ सूकरखेत के रामपुर में आत्माराम शुक्ल के साथ विधिपूर्वक विवाह कर दिया। विवाह के कुछ वर्ष पीछे अयोध्यानाथ जी ने अपने जामाता पण्डित आत्माराम शुक्ल को बुलाकर अपना सब कुछ सौंपकर स्वर्ग-लोक को गमन किया। पण्डित आत्माराम तारी में एक वर्ष रहे तत्पश्चात् वे हुलसी के साथ अपने ग्राम रामपुर में आ गये।

कामहूराय का लेख—शाहजहाँ के शासन-काल में कामहूराय नाम के एक बड़े भट्ट थे, जिनका जन्म-स्थान भी तारी था। उन्होंने 'कर्ण विलास' नामक ग्रन्थ में तारी का परिचय दिया है, कर्णसिंह सोलंकी की प्रशंसा की है और तुलसी की जन्म-भूमि का उल्लेख किया है। कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं जो २१ सितम्बर १९४२ के 'नवीन-भारत' में प्रकाशित हुए थे —

तारी करन ताल तीर वाटिका बिसाल सोहै
मोहै मन पंथिन को देखि बिसराम है।
करन की सरन प्राम बैरी हू निर्भै होत,
करन की बड़ी मानी कल्प तरु ललाम है॥
भूखे को भोजन जहाँ कविजन कौं मान मिलै
विप्रन कौं दान मिलै पूर्ण मन काम है।
साहिजहाँ राज सब सुखारी हैं 'कामहूराय'
त्योंही करन राज में तारी सुख धाम है॥
जाके दिसि उत्तर में गंग सुभ राजि रहीं,
दक्खिन कछु कोस पै करै केलि कामी है।
तुलसी-मात हुलसी की जननी जे तारी भूमि
भूपसिंह वाली जासु रक्षक कपाली है॥
करनसिंह मानी मन दानी है करन जैसो,
धम धुरधारी धीरवीर बलसाली है।
जाही को ताली नित कवित करै कामहूराय
रैन दिन वंदन करै वै वै कर तालो है॥
एक ही प्रहार में संहारति अनेक मुंड,
तनु मुंड देखि देखि करत पयान है।
कराल महाकाल सी काली सी कृपाली सी
कालो करि डिठाई होत जम को महिमान है॥
दामिनि सी दमकाति देखि वीर थरहरात,
कायर सुकाय जात जानत अहान है।
समुहत करतमी वीर वीर हरती त्यों,
करनी के 'कामहूराय' करन कृपान है॥
भूखत बचन भूप होसत तुरंत भूप
दर्पदन झंकार जहाँ बरति सुनाई है।
कुम्भन पछारै मैं कुम्भारै बल थाम जहाँ
होति नित राम कथा सन्त सुखदाई है॥
बड़े बड़े पंडित गुन मंडित कामहूराय
पावें नित जाके द्वार पावें पहुनाई है।
सोलंकी करन जैसो देख्यो ना उदार वीर
बैरी हू जाने जासु नीति निपुनाई है॥

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि तारी के किनारे कर्णताल और कोई विश्राम वाटिका थी। उस समय तारी का शासक कर्णसिंह नाम का कोई सोलंकी था, जो ज्ञानी, दानी और धर्म-धुरन्धर था। उसकी बड़ी सुख्याति थी। उन दिनों सम्राट् शाहजहाँ का राज था। तारी के उत्तर में दोनों गंगाएँ शोभा देती थीं और दक्षिण में कुछ कोस पर काली नदी बहती थी। भागीरथी गंगा और बूढ़ गंगा (बूढ़ गंगा) और काली नदी आज भी विद्यमान हैं। बूढ़ गंगा तो भागीरथी गंगा का प्राचीन प्रवाह-मार्ग है, जहाँ आज भी क्षीण धारा बहती है और भागीरथी गंगा कुछ हटकर बहने लगी है। यह तारी तुलसीदासजी की माता हुलसी की जन्म भूमि है।

भ्रम क्यों?—जैसे-जैसे समय बीतता गया हुलसी की जन्मस्थली तारी की वास्तविक स्थिति को लोग इधर-उधर बताने लगे क्योंकि एक ही नाम के अथवा *समान नाम के ग्राम और कस्बे होते हैं जिनसे भ्रम का उत्पन्न होना स्वाभाविक है।* फिर भी सत्य नहीं छिपता। तारी को कुछ लोगों ने स्वयं गोस्वामीजी की जन्म भूमि माना है। भ्रम में भी सत्य छिपा रहता है। सर जी० ए० ग्रियर्सन ने १८९१ ई० में 'नोट्स ऑन तुलसीदास' नामक लेख प्रकाशित कराये जो 'इण्डियन एण्टीक्वेरी' की २२वीं जिल्द में समाविष्ट हैं। ग्रियर्सन महोदय लिखते हैं—"गोस्वामीजी की जन्म-भूमि होने का दावा कई स्थान करते हैं यथा तारी जो दुआब में है हस्तिनापुर चित्रकूट निकटस्थ हाजीपुर और बाँदा जिले में यमुना के किनारे वाला राजापुर। इनमें से तारी का दावा सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होता है। अपने बचपन में गोस्वामीजी ने सूकर-क्षेत्र अर्थात् वर्तमान सोरों में अध्ययन किया था।"

संस्कृत भक्त माला—संवत् १९८१ वि० में श्री क्षेमराज श्रीकृष्णदास ने श्री वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई में मुद्रण कर "संस्कृत भक्त माला" प्रकाशित की। उसमें गोस्वामीजी के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है। उसके कुछ श्लोक ये हैं :—

गंगा यमुनयोर्मध्ये देशः पुण्यतमो महान् ।
अंतर्वेदिरिति ख्यातो मुनिभिः परिसेवितः ॥१॥२॥
तत्रैकोऽस्ति तरी नाम्ना ग्रामो ब्राह्मण संकुलः ।
तत्रासीत् तुलसी नाम्ना द्विजः सत्पुरुषाग्रजः ॥३॥
कारयित्वा तद्विवाहं पिता तस्य दिवं गतः ।
माताऽप्यनुगता तस्य स्वपति सत्य-तत्परा ॥४॥
ततो स तुलसी नाम्ना स्वपत्न्या सह निस्पृहः ।
रेमे पितृधनं प्राप्य कामभोग-समन्वितः ॥५॥
कालेन तस्य पुत्रोऽभूत् दृष्ट्वा तं चाति हर्षितौ ।
तुलसी तस्य पत्नी चेत्युभौ पूर्ण मनोरथौ ॥६॥
एकदा तस्य पत्नी तु समीपे मातृ मन्दिरे ।
तमनुज्ञाप्य गता चाथ सोऽप्य दृष्ट्वा गृहे च ताम् ॥७॥
ययौ तत्रैव श्वसुरगेहे पत्नी दर्शार्थं द्रुतं ।
दृष्ट्वा तमागतं पत्नी भर्त्सयन्ती वचोऽब्रवीत् ॥८॥

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि तारी की स्थिति गंगा-यमुना के अन्तर्वेद में थी और

निकट ही गोस्वामीजी का ससुरालय भी था।

रेवरेण्ड ग्रीव्स—रेवरेण्ड एडविन ग्रीव्स ने 'तुलसी ग्रन्थावली' के ४५वें पृष्ठ पर लिखा है 'पर जन्म कहाँ हुआ ? कुछ लोग बतलाते हैं कि राजापुर उनकी जन्म भूमि है। पर इस बात के विरुद्ध और लोग कहते हैं कि उनका जन्म वहाँ नहीं हुआ। पर गोसाईं ने वहाँ एक मन्दिर बनवाया या गाँव बसाया। फिर हस्तिनापुर उनकी जन्म भूमि बतलाई गई और हाजीपुर भी जो चित्रकूट के पास है पर इन बातों का कुछ प्रमाण नहीं है। फिर औरों ने कहा कि वह तारी में जन्मे पर दूसरे लोग कहते हैं कि उनके माता-पिता वहाँ रहते थे पर वह तुलसीदास के उत्पन्न होने से पहले था। इन सब बातों से अनुमान होता है कि अब लों ठीक-ठीक निर्णय नहीं हुआ कि तुलसीदास का जन्म कहाँ हुआ।"

श्री सीतारामशरण भगवान् प्रसाद—सन् १९११ ई० में श्री अयोध्याजी अमोलवन कुटिया के निवासी श्री सीतारामशरण भगवान्प्रसाद ने अपने सटीक वार्तिक-प्रकाश-युक्त भक्तमाल के ७४१वें पृष्ठ पर लिखा है—"जन्म-स्थान भी लोग कई ठिकाने लिखते हैं। बाँदा जिले में यमुना-तीर को बहुत लोग कहते हैं परन्तु राजापुर आपका जन्म-स्थान नहीं है। श्री गोस्वामीजी का जन्म-स्थान श्री गंगा वाराह क्षेत्र (सोरों) के प्रान्त अन्तर्वेद में 'तरी' नाम ग्राम या 'तारी' था। आपने राजापुर में विरक्त होने के पीछे निवास कर भजन किया है। इसीसे वहाँ श्री गोस्वामीजी की विराजमान की हुई संकटमोचन श्री हनुमानजी की मूर्ति है और श्री रामायण अयोध्याकाण्ड भी है। यह वार्ता वहाँ जाके भली प्रकार निश्चय की गई है।"

श्री शिवनन्दन सहाय—श्री शिवनन्दन सहाय ने अगस्त १९२१ ई० में माधुरी' के २४वें पृष्ठ पर लिखा है—"जन्म-स्थान के सम्बन्ध में भी अभी तक ठीक निर्णय नहीं हुआ। राजापुर और तारी के बीच झगड़ा है। यद्यपि राजापुर में आपका स्मारक निर्मित हुआ है तथापि वहीं के कुछ बूढ़े लोग कहते हैं कि वह गोस्वामीजी का जन्म-स्थान नहीं है। विरक्त होने पर वह कुछ दिन वहाँ रहे अवश्य थे और प्राय जाया करते थे।

तुलसी स्मारक सभा राजापुर का पत्र—पण्डित गोविन्दवल्लभ भट्ट ने १९२९ ई० की माधुरी में अपने पत्रोत्तर का उल्लेख इस प्रकार किया है—'श्री तुलसी स्मारक सभा, राजापुर के एक अधिकारी से जब इसी जन्म-स्थान के विषय में पत्र *व्यवहार किया था तो उत्तर में उन्होंने प्राइवेट रूप के साथ इस बात को स्वीकार* किया है कि गोस्वामी जी का जन्म-स्थान सोरों या उसी के आस-पास कहीं होना चाहिए।"

तारी कहाँ ?—ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है कि भ्रम में भी कितना सत्य छिपा रहता है। रायबहादुर लाला सीताराम ने उक्त अन्तर्वेद वाली तारी से उस तारी को समझ लिया, जो राजापुर से आठ कोस यमुना किनारे बतायी जाती है। वे लिखते हैं —"गोस्वामीजी के जन्म-स्थान के विषय में मतभेद है। कोई कहता है कि उनका जन्म राजापुर के पास हस्तिनापुर में हुआ था जिसे अब हस्तनाव कहते हैं। कोई राजापुर को ही यह गौरव देते हैं। पर अधिक छानबीन से यह सिद्ध हुआ

तारी की महत्ता—तुलसी तुलसी से सम्बद्ध होने के कारण तारी का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका गौरव अविनाशराय के शब्दों में, इस प्रकार है—

तार्यो तें मुकुल बंस तार्यो तै कुलिन-बंस,
सात ससुर तारे तें तारी महतारी है।
कहै अविनाशराय आपु तरी तार्यो बापु,
तार्यो पति रामपुर तारी तारी है॥
अजहूँ हुलसात मै तुलसी जन तेरी नाम
तुलसी सो जायो पूत धर्म अवतारी है।
धन्य मात तुलसी तें मोच्छद्वार-तारे की,
मुमुक्षुन हाथ गहै तुलसी जन तारी है॥

रामपुर

तुलसीदासजी का जन्म-स्थान

महत्तम प्रमाण—गोस्वामीजी के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में सब से बड़ा अन्त-साक्ष्य सर्वप्रथम श्री भगवद्दसी पाण्डे ने खोजकर उपस्थित किया है। इसका उल्लेख अयोध्या की चर्चा करते समय ही चुका है। पुनर्विचार के हेतु वह यह है

बानर विभीषण की ओर के कनावड़े हैं
सो प्रसंगु सुने अंगु जरे अनुचर को।
राखे प्रीति आपनी जो होइ सोई कीजे बलि
तुलसी तिहारो घर जायो है घर को॥ क० १२२॥

अन्तिम पंक्ति में तुलसीदासजी ने अपने को राम के घर का जन्माया माना है। किन्तु यह अयोध्या है अथवा अन्य कोई स्थान? श्री भगवद्दसी पाण्डे का अभिप्राय अयोध्या से है जहाँ भगवान् रामचन्द्र का जन्म हुआ था।

पाण्डेजी के पक्ष में—पाण्डेजी के पक्ष में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि गोस्वामीजी ने 'रामपुर' शब्द का प्रयोग अयोध्या के लिए 'विनयपत्रिका' और 'रामचरितमानस' में एक दो बार किया और मुरलीधर चतुर्वेद ने भी इसका प्रयोग अयोध्या के लिए और 'श्यामपुर' का मथुरा के लिए अर्थ-गाम्भीर्य के साथ किया है यथा

राम-सप्राम-सीता-सहित सर्वदा तुलसिमानस-रामपुर बिहारी॥ वि० २७
पहुँचे दूत रामपुर पावन हरषे नगर बिलोकि सुहावन॥ रा १ २८१ १
तब तब आइ रामपुर रहऊँ सिसु लीला बिलोकि सुख लहऊँ॥ रा० ११४ १
तुलसीदास नन्ददास भये हैं मुरली धारे।
एक भजे सियराम एक घनश्याम पुकारे।
एक बसे सो रामपुर एक श्यामपुर में रहे।
एक रामगाथा लिखी एक भागवत पद कहे॥ १ मुरलीधर

परन्तु तुलसीदासजी ने 'रामपुर' का प्रयोग मंगातीरस्थ रामपुर के लिए भी किया है और मुरलीधर चतुर्वेद ने भी इसका प्रयोग सूकरखेतान्तर्गत गंगातीरस्थ रामपुर के लिए किया जैसा कि आगामी पंक्तियों से स्पष्ट होगा।

अन्य साक्ष्य—पर अन्य साक्ष्य के आधार पर रामपुर का तात्पर्य सूकरखेत के रामपुर नामक ग्राम से है जहाँ तुलसीदासजी के पूर्व पुरुष रहते और नन्ददासजी उत्पन्न हुए थे। इस विषय में नन्ददासजी पर नाभादासजी की प्रशस्ति है—

लीला पद रस रीति ग्रन्थ रचना में नागर।
सरस उक्ति युत युक्ति भक्ति रस गान उजागर।
प्रचुर पयधलौं सुजस रामपुर ग्राम निवासी।
सकल सुकुल संवलित भक्त पद रेनु उपासी।

चन्द्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम पय में पगे।
श्री नन्ददास आनन्द निधि रसिक सुप्रभुहित रंग मगे ॥

प्राचीन काव्य के अष्टसखामृत में उल्लेख इस प्रकार है—

रामभगत तुलसी अनुज नंददास व्रज व्यास।
सुव सनौढ़िया सुकुल कवि कृष्ण भगत प्रवदास ॥१॥
कर्यो राम तें स्याम मिल बदलि इष्ट व्रज धाम।
रच्यो स्यामसर बाधक हरि बसवाऊ धाम ॥३॥
सौंपि अनुज बड़भृत्य कर सुत तारा धन धाम।
आये सुकरखेत तजि सब बलि सेवत स्याम ॥४॥
कृष्ण राम के रूप भये नन्ददास मन मानि।
लखि तुलसी मन कलि रहे प्रात जोरि जुग पानि ॥७॥
रामायन भाषा विरचि भाषा करी प्रकास।
देखि रच्यो श्री भागवत भाषा श्री नंददास ॥८॥

काका वल्लभजी महाराज ने 'भगवदीय नाम मणिमाला' में लिखा है कि—

नंददास सखा रामपुरी कहीयेरे
सात्विक चंपक लता चंद्रलेखा लखिये रे ॥१०८॥

'भावप्रकाश' में हरिराय जी लिखते हैं—

'ये नन्ददास जी लीला में श्री ठाकुर जी के मीत सखा अंतरंग तिनको प्राकट्य है। सो ये पूरब में रामपुर ग्राम में जन्मे।

'दो सौ बावन वष्णवन की वार्ता' काका वल्लभजी के बावन वचनामृत' और गोकुलनाथजी के 'वचनामृत' में गोस्वामी तुलसीदास और महाकवि नन्ददास के भ्रातृत्व का स्पष्ट उल्लेख है। यह सब साहित्य १६४० वि० और १७७२ वि० के मध्य का है। गोकुलनाथजी के वचनामृत की प्रति १७२६ वि० की है। 'श्री गुसाईंजी के सेवक चारि अष्टछापी तिनकी वार्ता' इसकी एक प्रति संवत् १६६७ वि० की विद्यमान है। उसमें लिखा है "श्री गुसाईंजी के सेवक नन्ददास सनौढ़िया ब्राह्मण तिनके पद गावत है। सो वे पूर्व मे रहते तिनकी वार्ता। सो वे नन्ददास और तुलसीदास दोइ भाई हते तामें बड़े तो तुलसीदास छोटे नन्ददास।" इस प्रकार उक्त प्राचीन प्रमाणों से स्पष्ट है कि वे दोनों कवि भाई-भाई थे और रामपुर के निवासी थे।

रामपुर कहाँ ?—उक्त १६६७ वि० की प्रति में दोनों कवियों के भ्रातृत्व का उल्लेख तो है पर निवास के सम्बन्ध में इतना ही सूचित किया गया है कि वे पूर्व में रहते थे। यदि तुलसीदासजी और नन्ददासजी अयोध्या के होते तो नगर का उल्लेख अवश्य होता पर रामपुर तो एक छोटा सा ग्राम सूकरखेत के अन्तर्गत था अतएव उसका नामोल्लेख आवश्यक न समझा गया। अष्ट सखामृत' में 'पूर्व' को अवश्य स्पष्ट कर दिया गया है। पूर्व शब्द श्री बल्लभी पाण्डे तथा अन्य कतिपय विद्वानों को खटका और रामपुर का तादात्म्य अयोध्या से करने के लिए उन्हें इस शब्द का बल मिला। 'अष्टसखामृत' में जिसमें केवल आठ ही भक्तों की चर्चा है नन्ददास का विवरण देते समय, रामपुर का निर्देश हुआ है। तन्निर्दिष्ट स्यामसर बाधक धाम की

सूकरक्षेत्रान्तर्गत रामपुर में विद्यमान है। 'अष्टछापामृत' और नाभादासजी के पद में नन्ददासजी के छोटे भाई चन्द्रहास का भी उल्लेख है। सनाढ्य जाति का उल्लेख तो १६९७ वि० की प्रति से लेकर पीछे की सभी वार्ताओं और वचनों की प्रतियों में विद्यमान है। तुलसी और नन्द का भ्रातृत्व एवं 'चन्द्रहास' सनाढ्य' रामपुर' 'सूकरक्षेत्र' आदि जन्म-समष्टि सूकरक्षेत्र के अन्तर्गत रामपुर की ही पुष्टि करती है। उक्त वार्ता 'वचनामृत' आदि की रचना करने वालों ने औरों से क्या उत्कोच ग्रहण किया था कि वे जन्मस्थान और जाति विषयक उल्लेख में औरों का पक्षपात करते ? वल्लभ वार्ताओं में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र सभी की चर्चा है। जो कान्यकुब्ज ब्राह्मण था उसे कान्यकुब्ज जो सारस्वत था उसे सारस्वत जो सनाढ्य था उसे सनाढ्य और जो गौड़ था उसे गौड़ ब्राह्मण लिख दिया गया। हाँ इतना माना जा सकता है कि सम्प्रदाय की महत्ता-वृद्धि के निमित्त नन्ददासजी का उत्कर्ष तुलसीदासजी की अपेक्षा वल्लभग्रन्थों में अधिक दिखा दिया गया हो किन्तु नाम जाति और स्थान के उल्लेख में पक्षपात के लिए कोई कारण प्रतीत नहीं होता।

रामपुर की स्थिति तुलसीदासजी का प्रमाण—तुलसीदासजी ने विनयपत्रिका में अपने जन्मस्थान की स्थिति भागीरथी गंगा के तट पर बतायी है—

सिधी सुकुल जनम सरीर सुंदर हेतु जो फल चारि को
जो पाइ पंडित परम पद पावत पुरारि मुरारि को।
यह भरत खंड समीप सुरसरि थल भलो संगति भली।
तेरी कुमति कायर कलप बल्ली चहति विष फल फली॥ १३५॥

उनकी यह इच्छा बनी रही कि जब-जब उनका जन्म हो तो गंगाजी के तीर ही हो —

जब जायहि बार सरीर धरौं
रघुबीर को ह्वै तब तीर रहौंगो॥ क० ७, १४०

जब घर के गंगातट का त्याग कर अनेक गिरि काननों में घूमने से भी शान्ति न मिली तो उन्हें कुछ पश्चात्ताप हुआ होगा अतएव सेवामी से निवेदन हुआ :—

सुखागत सुरसरि बिहाय सठ
फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो॥ विनय० २४५

यही कारण है कि उन्होंने विरक्त होकर स्थायी निवास के निमित्त गंगातटस्थ काशी को ही मनोनीत किया—

मेरो राम राय को सुजस सुनि तेरो हर
पायें तर आइ रह्यो सुरसरि तीर हौं।
जीबे को न लालसा दयालु महादेव मोहि
मालुम है तोहि मरबे को रहत हौं॥

कवितावली ७ १६६ १६७

उक्त उद्धरणों से प्रतीत है कि तुलसीदासजी का जन्मस्थान गंगाजी के किनारे था और काशी में उन्होंने मोक्षलाभ किया।

नन्ददासजी के पुत्र का लेख—नन्ददासजी के पुत्र कवि कृष्णदास ने रामपुर

की स्थिति गंगाजी के किनारे और सूकरखेत के समीप बतायी है तथा उसमें अपने वंश के निवास का उल्लेख किया है —

सेत बराह समीप सुचि गाम रामपुर एक ।
तहँ पंडित मंडित बसत सुकुल बंस सविवेक ॥१॥

(कृष्णदास बयानमी)

कीरति की मूरति जहाँ राजै भगीरथ की
तीरथ बराह भूमि बैकुं जो पाई है
जाही ठाम रामपुर स्यामधर कीने वास
स्यामायन स्यामपुर बास सुखदाई है
सुकुल विप्रबंस में विप्र तहाँ जीवाराम
तासु पुत्र नंददास कीरति कविपाई है ॥ (वषफल)

अयोध्या तो सरयू के, और रामपुर गंगाजी के किनारे है। इस सब बातों से यही सिद्ध होता है कि अपने जन्मस्थान के सम्बन्ध में गोस्वामीजी के लेख का अभिप्राय गंगातीरस्थ रामपुर से था।

रत्नावली का साक्ष्य—रत्नावली के दोहों से भी स्पष्ट है कि गंगाजी के किनारे सूकरखेत में उसके पति तुलसीदासजी की जन्म-भूमि थी। नन्ददास उसके देवर लगते थे और तुलसीदासजी की अनुपस्थिति में रामपुर स्यामपुर बन गया।

प्रभु बराह पद पूत महि जनम मही सुनि एहि
सुर सरि तट महि त्यागि अस गए धाम पिय केहि ॥२२॥
मोहि दीनो संदेस पिय अनुज नंद के हाथ
रतन समुझि जनि पृथक मोहि जो सुमिरत रघुनाथ ॥२७॥
जनक समासन कुल सुकुल पेहु भयो पिय स्याम
रत्नावलि आभा गई तुम बिन बन सम गाम ॥१७॥

मुरलीधर चतुर्वेद की स्पष्ट उक्ति—मुरलीधर चतुर्वेद ने १८२६ वि० में जो लिखा वह विषय को और भी अधिक स्पष्ट कर देता है—

स्मारत वैष्णव सो पुनीत सकल वेद आगम प्रवीन ।
बाल तीय हित पाठशाल तहाँ पढ़ावत विपुल बाल ।
तहाँ रामपुर के सनाढ्य सुकुल वंशधर द्वै गुनाढ्य ।
तुलसीदास अरु नन्ददास पढ़त करत विद्या बिलास ।
एक पितामह पौत्र दोउ बंधुत्व लघु अपर सोउ ।

(रत्नावली चरित १० ६४)

तुलसी और नन्द दोनों एक ही बाबा के पौत्र थे। नन्द और चन्द्र दोनों सगे भाई थे। उनके पूर्व पुरुष रामपुर में रहते थे। बाबा के घर में ही तुलसीदास और नन्ददास का जन्म हुआ था जैसा कि मुरलीधर के इस छन्द से स्पष्ट है—

एक पितामह सदन दोउ जनमें सुमिरासी ।
दोऊ एकहि गुरु सूर्गेह बुध यमोवासी ।

तुलसीदास नन्ददास भये हैं मुरली धारे।
एक भजे सियराम एक घनश्याम पुकारे।
एक बसे सो रामपुर एक श्यामपुर महँ रहे।
एक राम गाथा लिखी एक भागवत पद कहे ॥१॥

मुरलीधर को रामपुर की इयत्ता के विषय में भ्रान्ति रही हो यह बात नहीं। उन्होंने स्वयं (अपने हाथ से) कृष्णदास वंशावली की प्रतिलिपि की थी जो उनकी 'रत्नावली चरित' नामक पुस्तिका के साथ एक ही जिल्द में सम्मिलित है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कृष्णदासजी ने रामपुर ग्राम की स्थिति पंचाधीरस्थ बराह क्षेत्र के निकट बतायी है।

रामपुर-यात्रा—यद्यपि मैं श्यामायन के दर्शन दो बार कर चुका था, तथापि श्यामपुर तक (जिसे पहले रामपुर कहते थे) जाने का अवसर दोनों बार मुझे प्राप्त न हो सका। अतएव अपने पूर्वविद्यार्थी श्री नमवानसिंह को साथ लेकर, मैं २ जून १९५४ को कासगंज से सोरों रेल के द्वारा और वहाँ से पैदल दो मील के लिये चल दिया। बीच में श्यामायन और श्यामसर का साधारण निरीक्षण करते हुए श्यामपुर पहुँचकर हमने जनसम्पर्क किया। श्यामपुर में पं० रामसहायजी रहते हैं उनके चार पुत्र हैं। पहले पं० सूबेदार, दूसरे पं० हरप्रसाद तीसरे पं० रामस्वरूप चौथे पं० रामभरोसे हैं। प्रथम दोनों पुत्र अपने पिता के पास श्यामपुर ही रहते हैं। संयोगवश रामसहायजी उस समय बाहर गये हुए थे। सूबेदारजी और हरप्रसादजी ने बताया कि गोस्वामी तुलसीदास इसी ग्राम के रहने वाले थे और यही उनकी जन्म भूमि है जैसा कि उन्होंने अपने पिताजी से सुन रखा था। उनका तथा अन्य कतिपय श्यामपुर-निवासियों का जो चित्र लिया गया उसमें यज्ञोपवीत धारण किये हुए श्री सूबेदार हैं और पँचोदेवाले श्री हरप्रसाद हैं।

निष्कर्ष—सोरों-कासगंज के विज्ञ जन[1] की धारणा है कि गोस्वामीजी सूकर क्षेत्र में उत्पन्न हुए। सूकरक्षेत्र का क्षेत्र पंचयोजन चारों ओर है और इस प्रकार रामपुर ग्राम जो सोरों से डेढ़ दो मील है उसके अन्तर्गत है। किन्तु यदि सूकरक्षेत्र का तात्पर्य केवल सोरों की वर्तमान बस्ती अथवा उसके योगमार्ग मोहल्ले से है, तो धारणा ठीक नहीं। सोरों का महत्त्व बढ़ाने के लिए 'तुलसी प्रकाश' में तुलसीदासजी का जन्म सोरों के योगमार्ग मोहल्ले में बताया गया है। मुरलीधरजी के छप्पय में 'सदन' शब्द का अर्थ 'घर' या 'मकान' न करके 'घराना' अथवा 'वंश' किया जाता है। यह उचित नहीं। मुरलीधरजी संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे जैसा कि उनके संस्कृत श्लोकों से विदित है। वे 'सदन' शब्द का अर्थ खूब समझते थे। श्री महावीर प्रसाद विद्यार्थी ने लिखा है कि तुलसीदासजी की जन्म स्थिति तारी में हुई थी यह उन्होंने किसी प्राचीन जनश्रुति के आधार पर लिखा है और ठीक भी प्रतीत होता है। 'तुलसी प्रकाश' के अनुसार भी गोस्वामीजी की माता हुलसी लगभग पाँच मील की दूरी पर तारी ग्राम की पुत्री थी और उनके पिता आत्माराम एक वर्ष तारी में रहे

---

१ पं० गोविन्दवल्लभ भट्ट पं० भद्रदत्त शर्मा, पं० वैद्यनाथ शर्मा।

भी अतएव वहाँ उनकी स्थिति असम्भव नहीं। तुलसी के नाना की मृत्यु के पश्चात् तुलसी के माता पिता रामपुर चले आये वहीं उनका जन्म हुआ। जन्म होने के पश्चात् गोस्वामीजी सोरों के योगमार्ग मोहल्ले में चले गये। पं० गोविन्दवल्लभ भट्ट को तुलसी-स्मारक सभा (राजापुर) के अधिकारी ने जो लिखी पत्र भेजा था उसमें लिखा है कि 'गोस्वामीजी का जन्म-स्थान सोरों या उसी के आस-पास कहीं होना चाहिए'। डॉ० भगीरथ मिश्र का निष्कर्ष ठीक ही है कि 'जन्मभूमि न तो राजापुर ही है और न सोरों ही वरन् सोरों या सूकरखेत के पास कोई स्थान गोस्वामीजी की जन्मभूमि हो सकती है।'[1] वह स्थान सोरों के निकट रामपुर है।

सोरों वाला रामपुर ही क्यों? उत्तर में निवेदन है कि स्वयं गोस्वामीजी की उक्ति-समष्टि का निर्णय। गोस्वामीजी का उल्लेख है कि मैंने गंगाजी के तट पर राम के घर जन्म लिया। उनकी कामना रही कि जब जब मेरा जन्म हो तो गंगाजी के किनारे और राम भक्ति प्राप्त हो। राम-जन्म स्थल-वाहिनी सरयू से उन्हें इतनी ममता नहीं थी। रामलला नहछू में भी गंगाजल के प्रति ही उनकी बाल्यकाल-निगूढ़-श्रद्धा यों ही प्रस्फुटित होती है —

कनक कलसी गंगाजल भरी लाइय।
चंदन चौका पुराये प्रभु को नहवाइय॥

उन्होंने कवितावली में प्रकट किया—

तुलसी तिहारो घर जायो है घर को॥७ १२३॥

और विनयपत्रिका में स्पष्ट किया—

दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारिको
जो पाइ पंडित परमपद पावत पुरारि मुरारि को
यह भरत खण्ड समीप सुरसरि थल भलो संगति भली॥१३५॥

जब कभी तुलसीदासजी ने 'रामपुर' का उल्लेख स्वयं किया अथवा उन्हें अन्य किसी रामपुर नामक स्थान के वर्णन करने का अवसर मिला तो उन्हें किसी निगूढ़ हर्ष सुख अथवा किसी सात्विक भाव का अनुभव अवश्य हुआ। 'विनय पत्रिका' और 'बरवै रामायण' में तुलसी की भावना गंगा-तीर और रामपुर के लिए कैसी उत्कट है—

भरत बहुत सब-तब कहुँ सुमिरहु राम।
तुलसी अब नहिं जपत समुझि परिनाम॥
तुलसी रामनाम सम मित्र न आन।
जो पहुँचाव रामपुर तनु अवसान॥
नाम भरोस नाम बल नाम सनेहु।
जनम-जनम रघुनंदन तुलसिहि देहु॥
जनम-जनम जहँ-जहँ तनु तुलसिहि देहु।
तहँ राम निबाहिब नाम सनेहु॥ बरवै ७ ६२ ६८
जब बारहि बार सरीर धरौं।
रघुबीर को ह्वै तब तीर रहौंगो॥ क ७, १४७

[1] तुलसी स्मारक पृष्ठ ११।

यदि सरयू और अयोध्या से गोस्वामीजी का इतना गहरा लगाव होता तो वे गृहत्याग के उपरान्त १६३१ वि० में 'रामचरितमानस' का प्रारम्भ अयोध्या में कर, वृद्धावस्था व्यतीत करने और मरने के लिए काशी का सेवन न करते। सोरों और सन्निकट रामपुर में पुन: आ बसने से तो लोकाचार सम्बन्धी झेंप का जटिल प्रश्न उत्पन्न हो सकता था किन्तु अयोध्यावास करने में तो कोई आपत्ति न होनी चाहिए थी। वातावरण जैसा काशी का वैसा अयोध्या का था स्यात् अयोध्या का अपेक्षाकृत अनुकूल भी। जब जीवन-काल में ही वे अपना शरीर अयोध्या को भेंट न कर सके तो मृत्यु के पश्चात् उसे वहाँ पहुँचवा देने की लालसा असंगत प्रतीत होती है। तुलसीदासजी का राम प्रेम संकीर्ण न था उनके राम तो अयोध्यावासी दशरथ-नन्दन और भगवान् विष्णु के अवतार ही नहीं अपितु निर्गुण-सगुण एवं तदतीत परमात्मपरम सत्ता हैं, जो अयोध्या में रहते हुए भी भगवान् शिव के हृदय में एवं अन्यत्र सर्वत्र विराजते हैं। वे शिव हृदयासीन राम को गंगाजी के किनारे अधिक चाहते थे। यदि सोरों में गंगातट पर सोमेश्वर नाथ के हृदय में राम विराजते थे तो काशी में गंगातट पर विश्वनाथजी के हृदय में राम थे। तुलसी के लिए दोनों स्थान पवित्र थे एक का लगाव था जन्म से तो दूसरे का मरण से। तुलसीदासजी अपनी पत्नी भाई और भतीजे के आग्रह को टालते रहे। उन्हें अपने आवेश पर कुछ पश्चात्ताप भी हुआ होगा जैसा कि उनके उन कतिपय वचनों से विदित होता है जिनकी चर्चा अन्यत्र की गयी है। पर जो हो गया वह हो गया। सोरों में रामपुर नामक अपनी जन्मभूमि को न लौट आने के लिए वे लोकाचार के कारण विवश थे पर उनका शव तो कल्पना के द्वारा ही आ सकता था। पण्डित जवाहर लाल नेहरू की धर्मपत्नी का देहान्त हुआ योरप में और अन्तिम संस्कार तीर्थराज प्रयाग के त्रिवेणी तट पर। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ क्षण ऐसे आते हैं जब उसकी स्मृति जन्मस्थान और बाल्यकाल की घटनाओं की ओर लग जाती है। अतएव गोस्वामीजी के द्वारा गंगातीरस्थ रामपुर का उल्लेख मार्मिक एवं स्वाभाविक है।

आविर्भाव-तिरोभाव

(क) जन्म-संवत् का उल्लेख

गोस्वामी तुलसीदास के जन्म-संवत् के विषय में निम्नलिखित का उल्लेख है :—

१५५४ वि०—'मूल गोसाईं चरित' के कर्ता बेनीमाधवदासजी गोस्वामीजी की जन्म-तिथि लिखते हैं—

पन्द्रह सौ चउवन बिषे कालिंदी के तीर।
सावन सुक्ला सत्तमी तुलसी धरउ शरीर।।

इसमें तिथि के साथ वार का उल्लेख नहीं है अतएव इसकी प्रामाणिकता के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता था। परन्तु बेनीमाधवजी आगे लिखते हैं—

तिनके घर द्वादस मास परे
जब कर्क के जीव हिमांशु चरे
कुज सप्तम अष्टम भानुतनय
अभिजीतिवित अभि सुन्दर सौम्य समय।

इस पर दो आपत्तियाँ हैं प्रथम तो यह कि गोस्वामीजी हुलसी के गर्भ में द्वादश मास नहीं केवल दस मास ही रहे। तुलसीदासजी स्वयं विनयपत्रिका में लिखते हैं—

गर्भ-बास दस मास पालि पितु मातु रूप हित कीन्हों ।।१७१।।

दूसरे तिथि का जो विस्तार दिया गया है वह ठुक नहीं उतरता जैसा कि डा० माताप्रसाद गुप्त ने गणना करके बताया है।[1]

'मानस मयंक' के रचयिता ने भी उक्त संवत् इस प्रकार माना है :—

४ ५ ५ १
सर अम्बर सर शशिमिते सर बर कीन्हें एक।
तुलसी प्रकटे रामवत राम जनम की टेक।।[2]

यदि १५५४ वि० ठीक मान लिया जाय तो गोस्वामीजी की आयु १२६ वर्ष होती है। उन्होंने 'रामचरितमानस' १६३१ वि० में अर्थात् सतहत्तर वर्ष की अवस्था में लिखा जो पं० रामनरेश त्रिपाठी और डॉ माताप्रसाद गुप्त को असम्भव सा लगता है इसी प्रकार १६६९ वि० में अर्थात् एक सौ पन्द्रह वर्ष की अवस्था में पंचायत नामे पर मंगलाचरण लिखना भी। १२६ वर्ष की अवस्था असम्भव तो नहीं बाहर के देशों में १५० वष के कुछ लोग जीवित सुने गये हैं। जिला बुलन्दशहर के अनूप शहर में श्री तोताराम और उनकी पत्नी क्रमशः १११ और १०० वष के जीवित थे जसा कि मई १९६७ की 'चेतावनी' से विदित हुआ है। गोला गोकर्णनाथ के तीर्थ

---

१ तुलसीदास, पृ १६६ तथा २०९-२११ तृतीय संस्करण।
२. तुलसी और उनका काव्य पृ० ८३।

मोहल्ले में मेरे सन्निकट धर्मशाला के अध्यक्ष श्री शिव बाबा १९२८ ई० में ११० वर्ष के थे। मुझे उनके दर्शन करने का सौभाग्य हुआ था वय के देखे उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था वे पैदल चलते-फिरते और भजन करते थे। इंगलैंड के स्व० बर्नार्ड शॉ तो नब्बे वर्ष की अवस्था में लिखते रहते थे। यदि गोस्वामीजी ने १२६ वर्ष की अवस्था पायी तो यह असम्भव नहीं। हाँ यह अवश्य माना जा सकता है कि इतनी दीर्घ आयु बहुत कम होती है, अतएव सम्भावना न्यूनातिन्यून है। परन्तु जब सं० १५५४ वाली जन्म-तिथि ही अशुद्ध है तो सम्भावना का और भी अधिक ह्रास हो जाता है। श्री शिवसिंह सेंगर ने अपने 'सरोज' में जन्म-संवत् १५८३ वि० माना है और १५५४ वि० का उल्लेख नहीं किया यद्यपि उनकी सूचना का आधार तो गोसाईं चरित है जिससे उन्होंने एक उद्धरण भी उपस्थित किया है। अतएव १५५४ की धारणा भ्रान्त और स्वतः विरोधात्मक है।

१५६० वि०—स्व० ब्रजमोहन वर्मा ने गोस्वामीजी का जन्म संवत् १५६० माना है। उनके मत का आधार है राममुक्तावली की निम्नलिखित पंक्ति —

पवन तनय सौ सन कह्यो पाँच बीस अरु बीस।

इसको जन्म-संवत् मान लेने से गोस्वामीजी की आयु १२० वर्ष की होती है। यह भी दीर्घ आयु है जिसके सम्बन्ध में वैसी ही सम्भावना-न्यूनता है जैसी कि १५५४ वि० के विषय में। डॉ० माताप्रसाद ने 'राममुक्तावली' का निरीक्षण भली-भाँति किया है और उसकी शैली विचारधारा और छन्दोयोजना के आधार पर उनका विश्वास है कि यह गोस्वामीजी की कृति नहीं है। इसके अतिरिक्त 'पाँच बीस अरु बीस' का अर्थ ५+२०+२०=४५ हो सकता है। यदि इसका अर्थ २०×५+२०=१२० किया जाय तो डॉ० माताप्रसाद गुप्त के अनुसार, यह पंक्ति गोस्वामीजी ने १२० वर्ष की अवस्था के पश्चात् लिखी होगी।[1] अतएव इस जन्म संवत् का उल्लेख केवल अनुमान के बल पर है।

१५८३ वि०—शिवसिंह सेंगर ने गोस्वामीजी का जन्म-संवत् १५८३ माना है। वे 'शिवसिंह सरोज' में लिखते हैं 'यह महाराज सं० १५८३ के लगभग उत्पन्न हुए थे'।[2] सेंगरजी ने अपनी सूचना का आधार 'गोसाईं चरित' लिया है और उससे एक उद्धरण भी दिया है। गोसाईं चरित' में तो १५५४ वि० दिया है अतएव इसका उल्लेख न कर उन्होंने १५८३ वि० का उल्लेख क्यों किया? हो सकता है कि उन्होंने १५५४ वि० को अविश्वसनीय समझकर उसे त्याग दिया अथवा उनके सामने 'गोसाईं चरित' का कोई पुराना संस्करण रहा हो जिसमें जन्म-संवत् का उल्लेख न किया गया था और जिसका अद्यतन (अप्टुडेट) संस्करण मूल गोसाईं चरित' के नाम से पीछे हुआ हो। अस्तु सं० १५८३ वि० का उल्लेख किसी जनश्रुति के अथवा अनुमान के आधार पर हो सकता है जिसकी पुष्टि किसी अन्य प्रमाण से नहीं होती। इस संवत् के सम्बन्ध में वे तथाकथित असम्भावनाएँ नहीं हैं जो पहले और दूसरे के सम्बन्ध में दीर्घ आयु के कारण थीं।

१ तुलसीदास पृ० १९१।
२ शिवसिंह सरोज, पृ० ४२७।

१५८९ वि०—ग्रियर्सन ने 'इंडियन ऐंटिक्वेरी' में १५८९ संवत् का उल्लेख इन शब्दों में किया है कि 'सब से अधिक विश्वस्त विवरणों से यह बात प्रकट होती है कि कवि का जन्म १५८९ वि० में हुआ'। पर उन्होंने यह नहीं बताया कि वे विश्वस्त विवरण कौन से हैं। 'तुलसी ग्रन्थावली' के तृतीय भाग के पृष्ठ १८ पर उल्लेख है कि स्व० रामगुलाम द्विवेदी अपने को गोस्वामीजी की शिष्य-परम्परा में और वे १५८९ वि० को उनका जन्म संवत् मानते थे। ग्रियर्सन की पुष्टि तुलसीसाहब की 'घट रामायन' से भी होती है। यदि ग्रियर्सन महोदय को घटरामायण-प्रदत्त जन्म-तिथि का ज्ञान होता तो वे पूरी जन्मतिथि और उसके आधार का उल्लेख करते, अतएव उनका आधार जनश्रुति रही होगी। तो क्या 'घटरामायन' के उल्लेख का आधार ग्रियर्सन का लेख है ? हो सकता है क्योंकि घट रामायन' की प्राचीनतम पाण्डुलिपि १८४२ संवत् अर्थात् १८९९ ई० की है। घट रामायन' में लिखा है —

संवत् पंद्रा सै नवासी। भादौं सुदी मंगल एकादसी (पृ० ४१५)

इस पुस्तक में सात तिथियों का उल्लेख है जिन में से चार में वार का उल्लेख नहीं अतः उनका परीक्षण नहीं हो सकता। अन्य तीनों में वार का उल्लेख है इस से उनका परीक्षण हो सकता है। डॉ० माताप्रसाद ने सब का परीक्षण स्वयं किया है और उनकी गणना से जन्मतिथि को छोड़ कर अन्य दोनों तिथियाँ विगत या वर्तमान किसी भी प्रणाली से शुद्ध नहीं। जन्म तिथि भाद्रपद शुक्ला ११ मंगलवार सं० १५८९ शुद्ध प्रमाण है।'[1] पर यह विचारणीय है कि सभी परीक्षणीय तिथियों में मंगलवार का ही उल्लेख है और अनेक विद्वान् 'घट रामायन' के उस परिशिष्ट को जिसमें तुलसीदासजी का विवरण दिया गया है प्रक्षिप्त मानते हैं।

श्री चन्द्रबली पाण्डे का झुकाव १५८९ के पक्ष में है। वे लिखते हैं 'उपलब्ध सामग्री में मुँह मारने से जो कुछ सूझ पड़ा उसका निष्कर्ष यह निकला कि तुलसी का आविर्भाव हुमायूँ के शासन में सं० १५८९ में अयोध्या में हुआ'। पाण्डेजी ने अपने कथन की पुष्टि में लिखा है कि १५८३ में बाबर का सिक्का भारत में जमा। राणा साँगा की हार के कारण भगवान् राम के जन्म-स्थान पर बाबरी मसजिद का निर्माण हुआ जिसमें गोस्वामीजी कभी बैठे हों जैसा कि उन्होंने लिखा है —

माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो
लैबो को एक न देबो को दोऊ ॥ क० ७ १०६ ॥

परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं पाण्डेजी को अपने तर्क पर विश्वास कम था। उनके वचन हैं 'कोई चाहे तो १५८३ को भी तुलसीदास की जन्मतिथि मान सकता है अन्यथा डॉ० माताप्रसाद गुप्त को मान्य है सं० १५८९ ही'। पर गोस्वामीजी का जन्म अयोध्या में नहीं अन्यत्र हुआ था जैसा कि अन्यत्र विवेचन हुआ है। सोरों में मुसलमानों का सान्निध्य था और वहाँ भी मसजिदें उपलब्ध थीं। अतएव पाण्डेजी के विचार में और भी न्यूनता हो जानी चाहिए थी।

१६०० वि०—'ए स्केच ऑव द रिलिजस सेक्ट्स ऑव द हिन्दूज' में विलसन

---

१ तुलसीदास पृ० ९९ और ५१६ ५१७।

का लेख है कि तुलसीदासजी ने इकतीस वर्ष की अवस्था में 'रामचरितमानस' का लिखना प्रारम्भ किया।[१] तर्क कुछ इस प्रकार हो सकता है १६३१—३१=१६०० अर्थात् १६०० वि० में गोस्वामीजीका जन्म होना चाहिए। गासीं द तासी ने भी इस विषय में विलसन का अनुसरण किया है। गौतम चन्द्रिका के अनुसार १६०० वि० उपलब्ध होता है।[२] पर डॉ०माताप्रसाद गुप्त को यह संवत् इसलिए ठीक नहीं प्रतीत होता कि केवल ३१ वर्ष की अवस्था में 'रामचरित मानस' जैसे विद्वत्तापूर्ण महान ग्रन्थ का प्रणयन असम्भव जान पड़ता है। महापुरुषों के लिए ऐसी बात असम्भव तो नहीं क्योंकि स्वामी शंकराचार्य ने तो कहते हैं सब कार्य ३१ वर्ष की अवस्था तक कर डाला था और 'गौतम चन्द्रिका' का प्रामाण्य सन्देहातीत नहीं।[१] पर सं० १६०० हमें भी ग्राह्य नहीं क्योंकि अन्य प्रमाणों से इस संवत् की सगति नहीं बठती। सोरों-सामग्री के अनुसार गोस्वामीजी १६०४ वि में सोरों छोड़ कर चले गये थे जबकि उनकी पत्नी २७ वर्ष की थी। अतएव उसके अनुसार उस संवत् में तुलसीदास को भी कम से कम २७ वर्ष का होना चाहिए।

१५६८ वि०—जन्म-संवत् के सम्बन्ध में छठा उल्लेख अविनाशराय के 'तुलसीप्रकाश' में इस प्रकार —

राम बाम सत्तार मही सक सत सावन मास
रवि तिथि भृगु दिन दुतिय पद नषत विसाखा वास ॥२१॥

इसके अनुसार तुलसीदासजी का जन्म श्रावण शुक्ला सप्तमी शुक्रवार शक संवत् १४११ (तदनुसार १ अगस्त १४११ ई०) में हुआ। उस समय विशाखा नक्षत्र का द्वितीय चरण था। तिथि वार नक्षत्र आदि गणना से शुद्ध हैं। परन्तु जैसा कि मैंने 'तुलसी प्रकाश' की आलोचना में प्रकट किया है यह पुस्तक जालपक है और इसकी कुछ तिथियाँ अशुद्ध भी हैं। अतएव यह प्रमाण भी सर्वथा निर्भ्रान्त नहीं कहा जा सकता। इसके मान लेने से गोस्वामीजी की आयु ११२ वर्ष की बैठती है। 'रामचरितमानस' अठठ वर्ष की अवस्था में लिखा गया होगा और पंचायतनामे की पाँचें-पंक्तियाँ निन्यानबें वर्ष की अवस्था में।

यद्यपि मुझे 'तुलसीप्रकाश' का प्रामाण्य सर्वथा स्वीकृत नहीं तथापि मैंने उदकमण्ड के सरकारी एफिमेरिस से विदित किया कि श्रावण शुक्ला सप्तमी शुक्रवार १५६८ वि० को ग्रहों की स्थिति इस प्रकार थी —सप्तमी का प्रारम्भ गुरुवार को १८ पर और अवसान शुक्रवार को २४ पर हुआ था। उस दिन मघा नक्षत्र में सिंह

---

१. पृ० ४१।

२ (क) हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास पृ० १४ रामबहोरी शुक्ल और भगीरथ मिश्र कृत हिन्दी भवन १९५६।

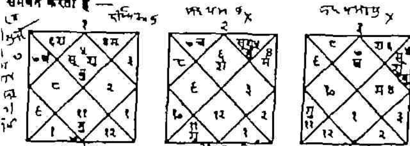
(ख) सोरह सत पुराण गये पर तुलसी कविता सुमरत। राम राम कहि लिखा है पन्नी गेह निज धाम ॥

सम्वत् सोरह सौ सतासी तुलसी वासी ग्रसी अमरधाम। सावन कृष्ण तीज तिथि रवि दिन गौतम चन्द्रिका पूर्ण। गौतम चन्द्रिका से तुलसीदास का वृत्तान्त, डॉ० किशोरीलाल गुप्त मिश्र, पृ० १० ११।

१ गौतम चन्द्रिका का मतामतप्रत हिन्दी सम्पादक में प्रकट किया गया है।

राशि पर सूर्य १°२ चल चुका था चन्द्रमा विशाखा नक्षत्र में तुला के २१ ६ पार कर चुका था। मंगल पुष्य में कर्क के ८°६२°, बुध वक्री होकर मघा में सिंह के १°२ गुरु वक्री होकर शतभिषा में कुम्भ के ७°२°, शुक्र पूर्वाफाल्गुन में सिंह के १६ ८°, और शनि चित्रा में कन्या के २७°७° पार कर चुका था।

जन्म के समय विशाखा नक्षत्र का द्वितीय चरण था। अतएव उक्त आधार पर तीन जन्मपत्रियाँ सम्भव हैं, जिनमें से तीसरी तुलसी की जीवन घटनाओं का समर्थन करती है —



तीसरी कुण्डली में नीच के मंगल ने गोस्वामीजी के माता पिता और पुत्र का अपहरण कर लिया। पंचम स्थान में गुरु और ग्यारहवें में शुक्र विद्या और काव्यशक्ति प्रदान करते हैं और शुक्र दीर्घ जीवन भी प्रदान करता है।

इसके अतिरिक्त एक विचित्र संयोग का उल्लेख करने के लिए मुझे आन्तरिक प्रेरणा हो रही है। वह यह है यदि तुलसीदासजी का जन्म-संवत् वास्तव में १५६८ वि० था तो उनकी निम्नलिखित उक्ति उन्हीं के जीवन पर यथार्थ घटती भी है:

आयो पचु प्रतीत हूँ रामचरन लवलीन
तुलसी देखु विचारि हिय है यह मतो प्रवीन ॥

सोरों-सामग्री के अनुसार गोस्वामीजी ने सं० १६०४ में गृह-त्याग किया, तब वे (सं० १६०४—१५६८ अर्थात्) ३६ वर्ष के थे। जब उन्होंने अयोध्या में भगवान् राम के चरणों में बठकर 'रामचरित मानस' का प्रारम्भ किया तो वे (सं० १६३१—१५६८ अर्थात्) ६३ वर्ष के थे।

(ख) मृत्यु १६८० वि०

गोस्वामीजी के देहावसान का संवत् १६८० है। इस विषय में कोई मतभेद नहीं है। श्रावण मास में वे दिवंगत हुए यह बात भी मतभेद रहित है। पर श्रावण के किस पक्ष में और किस तिथि को इस विषय में मतभेद अवश्य है।

श्रावण कृष्णा तीज—'मूल गोसाईं चरित' में बेनीमाधवदासजी गोस्वामीजी की मृत्यु-तिथि के सम्बन्ध में लिखते हैं

।। । से असी गंग के तीर
सावन स्यामा तीज शनि तुलसी तज्यो शरीर

'गौतम चन्द्रिका' में लिखा है—

सोरह सतु असु असी वय तुलसी सहित हुलास।
राम राम कहि गिरा हुई, असी गग किय वास ॥

और उक्त 'गौतम चन्द्रिका' में तुलसीदासजी की चर्चा के विषय में मूल गोसाईं चरित की पुष्टि का आगे यह उल्लेख है

सवत सोरह सौ एकासी तुलसी बरषी असो प्रकासी
सावन कृष्न तीजि तिथि पाई, यहु गौतम चन्द्रिका पुराई ॥

'गौतम चन्द्रिका' के लेखक ने वार का उल्लेख कहीं नहीं किया अतएव इस तिथि का परीक्षण सम्भव नहीं। परन्तु जैसा कि द्वितीयाध्याय में बताया जा चुका है वार का अनुल्लेख सुचिन्तित है। अस्तु। तुलसीदासजी ने सं० १६८० की श्रावण कृष्णा तीज शनिवार को स्वर्गगमन किया। श्री विजयानन्द त्रिपाठी अपने मानस की भूमिका में सूचित करते हैं कि गोस्वामीजी के मित्र टोडर के उत्तराधिकारी गोस्वामीजी की स्मृति में इस तिथि को सीधा बाँटते और चर्चा मनाते हैं यद्यपि गणना से उन्होंने यह तिथि अशुद्ध ही मानी है।[1] श्री रजनीकान्त शास्त्री भी स्वतन्त्र गणना कर के इसी निश्चय पर पहुँचे हैं।[2] मैंने इस तिथि का परीक्षण भारतीय पुरातत्त्व विभाग के उप-कर्णधार डॉ० एन० पी० चक्रवर्ती से कराया और उन्होंने भी यही निर्णय दिया कि यह तिथि गणना से ठीक नहीं उतरती।

श्रावण शुक्ला सप्तमी—प्रचलित तिथि निम्नलिखित जनश्रुति में विद्यमान है—

संवत सोलह सै असी असी गंग के तीर
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर ॥[3]

इस तिथि का उल्लेख 'श्रावण श्यामा तीज शनि' की अपेक्षा प्राचीनतर है पर वार का उल्लेख न होने से इसका परीक्षण नहीं हो सकता। लोक में यह बात प्रचलित है कि गोसाईंजी की जो मृत्यु-तिथि है वही उनकी जन्म-तिथि भी थी। बाबा बेनी माधवदास और अविनाशराम दोनों के ही अनुसार जन्म-तिथि श्रावण शुक्ला सप्तमी है।

पंद्रह सै चउवन बिषे कालिन्दी के तीर
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी धरेउ शरीर ॥ मूल गो०॥
राम राम सायर मही शकसित सावन मास
रवि तिथि भृगु दिन तुलिय वर नखत विशाखा भास ॥ तु० प्र० ॥

और अद्भुत दोहाई है

श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर।

एक ओर जनश्रुति की रक्षा और दूसरी ओर टोडर-कुटुम्ब की परम्परा। व्यक्ति तो विस्मृति आदि के कारण इतने लम्बे काल में धोखा खा सकता है पर जनश्रुति तो बहुत से लोगों की जिह्वा पर विराजती रहती है। अतएव मेरा झुकाव 'श्रावण शुक्ला सप्तमी' की ओर ही है।

---

१ तुलसीदास, पृ० १८६ और ५१४ १५।
२ मानस मीमांसा पृ० ८१, ८४।
३ श्री गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस' में श्री रघुवर शर्मा-कृत श्री गोस्वामी तुलसी दास चरितम्, पृ० ४१।

आकृति-प्रकृति

(क) वर्णाकृति

गोस्वामीजी ने 'विनयपत्रिका' में अपने सम्बन्ध में लिखा है—

दियो सुकुल जनम शरीर सुन्दर, हेतु जो फल चारि को ।।१३५।।

हौं सुबरन कुबरन कियो ।।२६६।।

इन। पंक्तियों से स्पष्ट है कि तुलसीदासजी शरीर से सुन्दर और गौर वर्ण के थे। मुरलीधर चतुर्वेद ने उनके विषय में रत्नावली-चरित में लिखा है कि वे गौर वर्ण के थे

गौर बरन विद्या निधान। विविध शास्त्र पंडित महान ।।१५।।

'प्रेम रामायण' भी ऐसा ही कहती है —

गौरं 'रा' पदमात्र संश्रवणतोम्भुद् भूतरोमाङ्कुर
बद्ध श्री तुलसी प्रसून गुटिका मालं धृतो भालिनम्
वारंवारमिदं वदं 'भरतु मे टाउ अति भाइ स्वरम्
नामग्रं नर कपिवं कमपितं वंदे प्रभाते हितम् ।।'[1]

अविनाशराय ने 'तुलसी प्रकाश' में शिशु तुलसीदास के विषय में लिखा है —

गोरो तन मुख मार छवि, सुनयन बाहु विशाल ।।२१।।

और राजापुर में निवास करते हुए वीतराग तुलसीदासजी का चित्रण उक्त 'प्रकाश' में इस प्रकार हुआ है —

सुन्दर सुजान अभिमान अजान बाहु
भक्त जन प्रधान तेहि बसे वास मानिये ।।
गात परवीन कुरि ध्यान लवलीन कवि
विषय विकार हीन पीन सिय जानिये ।।
मुंडित सीस मुच्छ सो सेत सेत केस वेस
पीन देह सुभ कटि गौर त्यों बखानिये ।।
कहूं अविनाश भास तिलक सुभालिनाल
सेत कटि पटोवास तासु पहचानिये ।।१६३।।

'गौतम चन्द्रिका' के अनुसार —

धवल मधुकरी कपिस पट लिया सुभ संयाम ।
बरनि तुलसिका माल सुचि रुचि रुचि सेवनी प्रणाम ।।

---

१ 'मानस' की रूसी भूमिका, पृष्ठ १ ।

(ख) चित्र

गोस्वामी तुलसीदासजी के उपलब्ध सभी चित्र उक्त विषय के अनुरूप हैं। कुछ चित्र ऐसे भी हैं जो कला की दृष्टि से अथवा अन्य किसी कारण से प्रामाणिक नहीं समझे जा सकते। अतएव इस विषय में कुछ विवेचन वांछनीय प्रतीत होता है।

मुख्य चित्र—वाराणसी के भारत-कला भवन के उपाध्यक्ष श्री उदयशंकर शास्त्री ने डॉ॰ वासुदेव शरण अग्रवाल के द्वारा गोस्वामी तुलसीदास के चित्रों के सम्बन्ध में बहुमूल्य परामर्श दिया। वे संख्या (१) से (८) तक इस प्रकार सूचित करते हैं—

(१) प्रह्लाद घाट पर गोस्वामीजी का एक प्राचीन चित्र है जो सम्राट् जहाँगीर का बनवाया हुआ बताया जाता है। शैली के अनुसार तो यह चित्र जहाँगीर कालीन नहीं होना चाहिए, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ का अवश्य है। उस्ताद रामप्रसाद ने इसकी एक प्रतिकृति प्रस्तुत की जो रायकृष्णदास जी के निजी संग्रह में है और इसी की प्रतिकृति उत्तर प्रदेश के संग्रहालय में भी है।

(२) उक्त चित्र से मिलता-जुलता एक चित्र कला भवन में है जो सत्रहवीं शती के अन्त एवं अधिक से अधिक अठारहवीं शती के प्रारम्भ से इधर का नहीं हो सकता। यह चित्र और प्रथम संख्यक चित्र दोनों एक ही मूल पर अवलम्बित हैं।

(३) याज्ञिक-बन्धुओं के संग्रह में भी एक चित्र है जिसका समय अठारहवीं शती के पश्चात् नहीं हो सकता। यह भी चित्र-संख्या एक या दो के मूल पर अवलम्बित है। इस प्रकार ये तीनों ही चित्र किसी एक मूल की परम्परा में हैं।

(४) भारत-कला भवन में जो सचित्र किन्तु अपूर्ण 'बाल काण्ड' है और जिस का समय अठारहवीं शती का प्रारम्भ है उसमें गोस्वामीजी का जो चित्र है उसका साम्य चित्र संख्या एक और दो से है।

(५) काशीराज के यहाँ 'रामायण' की एक सचित्र प्रति है जो अठारहवीं शती की है। इस में गोस्वामीजी का जो चित्र है वह संख्या एक और दो के समान है। काशी में अठारहवीं शती की लिखी की हुई 'रामचरित मानस' की कई प्रतियों में तथा अन्य ग्रंथों में भी इसी अनुहार के चित्र मिलते हैं।

(६) सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'रामचरितमानस' के अपने सम्पादित संस्करण में गोस्वामीजी का जो चित्र दिया है वह उन्हें अयोध्या के किसी अखाड़े से प्राप्त हुआ था। यह चित्र उसी समय का प्रतीत होता है जिसका सम्बन्ध उपर्युक्त पाँचों चित्रों से है।

त्याज्य चित्र—(७) असी घाट पर गोस्वामी तुलसीदास के निवास-स्थान में एक दाढ़ी वाला चित्र मिलता है किन्तु यह आधुनिक है जिसे पिछले चालीस वर्ष के भीतर उस्ताद रामप्रसाद के भतीजे ने उस स्थान के महन्त स्वामी माधवजी की इच्छानुसार जिन के चित्रकार की मैत्री की बनवाया था। उन्हीं के देने से प्रतीत चित्रकार ने संख्या १ पर दाढ़ी का आरोपण कर दिया था। ध्यान देने से प्रतीत

होता कि इस दाढ़ी वाले चित्र के भीतर वही हनु सन्निहित है जो चित्र सख्या एक में विद्यमान है। इस प्रकार दाढ़ी की यह कल्पना चालीस वय के भीतर की है अतएव गोस्वामीजी के चित्रों पर विचार करते समय सर्वथा त्याज्य है।

व्यंग्य चित्र—(८) डॉ० कुमार स्वामी ने इण्डियन ड्राइंग नामक अपनी पुस्तक में एक व्यंग्य चित्र दिया है जिसमें कई वैष्णव हैं। उस में गोस्वामीजी का जो चित्र है वह चित्र संख्या १ का विकृत रूप है।

छपे चित्र—(९) (क) डॉ० श्यामसुन्दरदासकृत और इण्डियन प्रेस लखनऊ से प्रकाशित हिन्दी भाषा और साहित्य में एक चित्र है जिसमें गोस्वामीजी अधेड़ अवस्था के प्रतीत होते हैं। वे गले में कण्ठी और दो मालाएँ कन्धे पर लम्बा यज्ञोपवीत और दुपट्टा दाहिने हाथ में एक माला मस्तक वक्षःस्थल उदर और भुजाओं पर केवल एक-एक तिलक तथा कटि में अंगोछा धारण किये पेड़ के नीचे कुशासन पर, सुखासन-पूर्वक स्मश्रु रहित विराजमान हैं।

(ख) डॉ० श्यामसुन्दर दास और डॉ० पीताम्बर बड़थ्वालकृत तथा हिन्दुस्तानी एकादमी द्वारा प्रकाशित 'गोस्वामी तुलसीदास' नामक पुस्तक के चित्र में गोस्वामीजी के सिर पर घनी चोटी है दाढ़ी मूछ नहीं है। वे गले में एक कण्ठी और दो मालाएँ, दाहिने हाथ में माला बांयें स्कन्ध पर दुपट्टा बायें पर लम्बा यज्ञोपवीत मस्तक उदर और वक्षःस्थल पर एक-एक और भुजाओं पर दो-दो तिलक तथा कटि में अंगोछा धारण किए हुए खुले स्थान में पेड़ के नीचे कुशासन पर विराजमान हैं। गोस्वामीजी की अवस्था अपेक्षाकृत कम है।

श्री उदयशंकर शास्त्री की धारणा है कि डॉ० श्यामसुन्दरदास की पोथी का चित्र उक्त चित्र संख्या १ पर अवलम्बित एक तैल चित्र की प्रतिकृति है। परन्तु डॉ० श्यामसुन्दरदास ने मुझे लिखा था कि 'हिन्दी भाषा और साहित्य' तथा 'गोस्वामी तुलसीदास' में जो चित्र दिये गये हैं वे दोनों एक ही हैं केवल ब्लॉक में अन्तर होने से भिन्न जान पड़ते हैं। वे चित्र उस चित्र के फोटो से बने हैं जो पण्डित गंगाराम के यहाँ है। इन्हीं गंगारामजी के लिए गोस्वामीजी ने 'राम शकुनावली' लिखी थी और वे प्राय नित्य उनसे मिलते थे।

(१०) श्री रामनरेश त्रिपाठीकृत और हिन्दी-मन्दिर द्वारा प्रकाशित 'राम चरितमानस' के प्रथम संस्करण की भूमिका के पूर्व एवं तुलसी और उनकी कविता के प्रथम भाग में गोस्वामीजी के तीन चित्र हैं —

(क) पहले चित्र में गोस्वामीजी के सिर के बाल श्वेत हैं और दाढ़ी भी श्वेत तथा छोटी है। वे मस्तक वक्षःस्थल और भुजाओं पर एक-एक और पेट पर तीन तिलक गले में एक कण्ठी और दो मालाएँ लम्बा यज्ञोपवीत दाहिने कंधे पर दुपट्टा और कटि में धानी धोती धारण किए, तकिए के सहारे चार पाये के आसन पर (कदाचित् गृह के खुले भाग में) विराजमान हैं। यह चित्र काशी में प्राप्त एक प्राचीन प्रति की नकल है।

(ख) दूसरा है संवत् १६५५ का कहा जाने वाला चित्र। यह अधेड़ किन्तु राज्य अवस्था का प्रतीत होता है। इसमें पट का स्थान अधिक सुन्दर है यहा तकिया

बूटेदार है जिसके भेद अस्पष्ट है। यज्ञोपवीत नहीं है। यह प्रह्लादघाट निवासी श्री रणछोर लाल के पास है। रामकृष्णदासजी इस चित्र को इसकी इमारत के कारण बहुत पीछे का मानते हैं। इस से मिलते-जुलते कई चित्र विभिन्न संग्रहों में मिलते हैं। उनमें से एक तो प्रसिद्ध पुस्तक संग्रहिता मायाशंकर याज्ञिक के पास है और एक भारत-कला भवन काशी में है।

(ग) तीसरा चित्र जिसका ऊपर उल्लेख हो चुका है। यह खड्ग विलास प्रेस से प्रकाशित और ग्रियर्सन महोदय के अनुसंधान का फल है। इसमें गोस्वामीजी के केश लम्बे और पीछे की ओर को पड़े हैं। उनके मस्तक पर मोटी बिन्दी सी प्रतीत होती है। गले में दो कण्ठियाँ तथा रुद्राक्षों की मालाएँ हैं। दक्षिण स्कन्ध पर दुपट्टा है और कटि में पूरी धोती। गोस्वामीजी आसीन हैं, बिना यज्ञोपवीत और उपधान के किन्तु दोनों हाथ जोड़े बैठे हैं।

तथाकथित समकालीन चित्र—(११) 'भारत में अंग्रेजी राज्य (१९३८ ई० का संस्करण) के पृ० १०१ के सामने गोस्वामीजी का रंगीन चित्र है जो श्री बहादुर सिंहजी सिंघी कलकत्ता की कृपा से नवाब मुर्शिदाबाद के यहाँ की एक हस्तलिखित फ़ारसी रामायण के समकालीन चित्र से उपलब्ध हुआ है। इसमें गोस्वामीजी भव्य गृह के सामने सफ़ेद तकिया लगाये गले में मालाएँ डाले बगलबन्दी पहने और उसी पर यज्ञोपवीत धारण किये टोपी लगाये गोमुखी में हाथ डाले टिकटी पर बाँह रखे हुए हैं। बाईं ओर चौकी पर खुली पुस्तक और दाहिनी ओर ऊँची गर्दन का (कदाचित् पीतल का) कमण्डलु है।

कल्पित चित्र—(१२) मिश्रबन्धु-कृत 'हिन्दी नवरत्न' के प्रारम्भ में तुलसीदासजी का एक चित्र लगा हुआ है। इसमें गोस्वामीजी खड़ाऊँ तूँबा और पोथी हाथ में लिये मृगछाला बगल में दबाये—रामनामी दुपट्टा ओढ़े गले में मालाएँ डाले पूरी किनारीदार धोती बाँधे, मस्तक पर रामानन्दी तिलक लगाये श्वेत और लम्बी दाढ़ी मूँछ एवं धवल कचों का जूड़ा धारण किये पत्थर की सीढ़ियों से घाट पर उतर रहे हैं। आकृति सौम्य है। डॉ० श्यामबिहारी मिश्र से पूछने पर विदित हुआ कि यह चित्र काल्पनिक है जिसे उन्होंने अपनी पुस्तक के लिए बनवाया था।

(१३) 'कल्याण' के मानसांक में गोस्वामीजी का रंगीन चित्र उपर्युक्त चित्र संख्या एक और दो से मेल खाता है। आकृति अपेक्षाकृत दुबली है अवस्था भी कम प्रतीत होती है। गले में दो कण्ठियाँ और दो मालाएँ सुशोभित हैं। गले की मालाएँ भिन्न हैं। आसन गलीचे के समान बेल-बूटों से युक्त है। गोस्वामीजी आधी धोती बाँधे, पेट के अधिक निकट बिना दाढ़ी मूँछ के हैं। विशेषता यह है कि वे यज्ञोपवीत धारण किए हुए नहीं हैं। पूछने पर 'कल्याण' के सम्पादक श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार ने स्पष्ट किया कि यह चित्र नागरी प्रचारिणी सभा के चित्र के आधार पर तैयार करवाया गया था।

(१४) गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित 'रामायणांक' के छोटे चित्र में गोस्वामीजी की दाढ़ी भारी और लम्बी है। सामने छोटी चौकी पर खुली पुस्तक रखी है। उसके कुछ पत्र बायें हाथ में पढ़ने के लिए विद्यमान हैं किन्तु दक्षिण हस्त

में माला भी है। गोस्वामीजी नाभिपर्यन्त यज्ञोपवीत धारण किये और आधी धोती पहने नदी-तट के समीप चौतख पट्टी पर विराजमान हैं। बायीं ओर तूँबा है कन्धे पर दुपट्टा नहीं है। मस्तक वक्षस्थल और उदर पर एक-एक तथा भुजाओं पर दो-दो तिलक सुशोभित हैं। श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार का कहना है कि काली दाढ़ी वाला यह चित्र मथुरा के एक सज्जन को प्राप्त किसी प्राचीन चित्र के आधार पर बनवाया गया था। उन्होंने इस चित्र को प्राप्त करके उसके आधार पर श्री गोस्वामीजी की मूर्ति संगमरमर की बनवायी थी। यह बात आज से लगभग २८ वर्ष पहले की है। पोद्दारजी को उन सज्जन का नाम स्मरण नहीं रहा। डॉ० श्यामसुन्दरदास ने मुझे लिखा कि 'असी घाट वाले चित्र के विषय में मैं नहीं जानता। एक काली दाढ़ी वाला चित्र बनावटी है। जिन्होंने उसे बनवाया था उन्होंने मुझसे कहा था'।

कल्पित किस्म-चित्र—(१६) श्री मदनमोहन शर्मा के उद्योग से तुलसी सेवक समाज (गीता मन्दिर, मथुरा) से जो रंगीन चित्र प्रकाशित हुआ था वह चित्र संख्या चौदह से बहुत कुछ मिलता है। इसमें गोस्वामीजी लाल रंग की आधी धोती काछे, एक कण्ठी पहन दाहिने हाथ में माला लिये सुखासन से जप कर रहे हैं। उनका बायाँ हाथ बायें घुटने पर स्थित है सिर की जटा गुम्फबन्धित दाढ़ी काली और मूँछें घनी हैं। चौतख पट्टी कुछ भिन्न है कमण्डलु दरियाई है मस्तक वक्ष स्थल और उदर पर एक-एक तथा भुजाओं पर दो-दो तिलक अंकित हैं। शर्माजी ने कहा कि यह चित्र किशनगढ़ राज्य में किसी सुरक्षित चित्र की प्रतिलिपि का परिवर्द्धित संस्करण है और मूल चित्र की एक प्रति काशी नरेश के यहाँ तथा गोस्वामीजी की उस बैठक में है जो काशी में असी घाट पर है और जिसमें उनकी माला खड़ाऊँ आदि सुरक्षित हैं। श्री रायकृष्णदास की सम्मति में काशी के असी घाट वाले तुलसीदास के स्थान में उनका दाढ़ी वाला जो चित्र है वह एक आधुनिक चित्रकार की कृति है और सर्वथा कृत्रिम है।

पूर्व-सादृ—श्री मदनमोहन शर्मा से यह भी विदित हुआ कि सन् १९२१ में अयोध्या के डिप्टी कमिश्नर होवर्ड के संरक्षण में तुलसी-सेवा समिति नाम की एक संस्था इसलिए स्थापित हुई कि वह तुलसीदासजी के उस स्थान का जीर्णोद्धार कराये जहाँ उन्होंने 'रामचरितमानस' की रचना प्रारम्भ की थी। इस संस्था के मुख्य कार्यकर्त्ता थे स्वर्गीय रामरघुबीर लालजी रईस फ़ैज़ाबाद। संस्था के निमित्त धन एकत्र करने के लिए उक्त शर्माजी ने देशी राज्यों में भ्रमण किया था जिसके फलस्वरूप उन्हें गोस्वामीजी का एक चित्र किशनगढ़ नरेश से देखने को मिला और उसके अनुसार जयपुर सरकार ने स्कूल ऑव आर्ट जयपुर में गोस्वामीजी की एक मनुष्याकार ऐसी पाषाण-प्रतिमा बनवाकर इन्हें प्रदान की थी जो अष्टुत्तरशाटस्थ गोस्वामि प्रतिमा से भिन्न है। शर्माजी ने चौका-चोखा करके पचिन-छः सहस्र रुपया भी एकत्र किया था जिसमें से अधिकांश उक्त रामरघुबीरलालजी के द्वारा इलाहाबाद बैंक में जमा कर दिया गया था और जयपुर से प्राप्त मूर्ति भी जो साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर भरतपुर भेज दी गयी थी उन्हीं के यहाँ विद्यमान है। कुछ रुपया शर्माजी के पास भी रहा। तदनुसरण में अयोध्या के महात्मा श्री पंडित रामवल्लभ शर्मा की अध्यक्षता

में सभा की एक बैठक हुई और निश्चय हुआ कि एक उपसमिति तुलसी-चौरा के मध्यस्थ से उस स्थान का जीर्णोद्धार कराने के लिए अनुमति प्राप्त करे। तब से फिर न जाने इस संस्था का क्या हुआ। उक्त विवरण कहाँ तक ठीक है यह नहीं कहा जा सकता। उपर्युक्त चित्र और प्रतिमा के विषय में शर्माजी को जो पत्र जयपुर और किशनगढ़ राज्य से अंग्रेजी में प्राप्त हुए थे उनका हिन्दी में अनुवाद नीचे दिया जा रहा है :—

पत्र-व्यवहार

महकमा खास जयपुर

प्रस्ताव संख्या ६ जो १६ नवम्बर, १९२४ को मुबारक महल में, महकमा खास की बैठक में स्वीकृत हुआ।

तुलसी-सेवा-समिति के अवैतनिक संयुक्त मंत्री का आवेदन-पत्र गोस्वामी तुलसीदास स्मारक के निमित्त दान के लिए पढ़ा गया। निश्चय हुआ कि अधिक से अधिक २१०) रुपए संगमरमर की मूर्ति के लिए स्वीकृत किया जाय यदि वह स्कूल ऑव आर्ट के द्वारा जयपुर में ही बने।

सं० २४५६। मिति जयपुर २४ नवम्बर ई०। इस प्रस्ताव की एक प्रति पं० मदनमोहन शर्मा अवैतनिक संयुक्त मंत्री तुलसी-सेवा-समिति एडवर्ड मेमोरियल, जयपुर के पास सूचनार्थ भेजी जाती है।

एस० डी० मजूमदार
मंत्री महकमा खास, जयपुर।

मेमोरेंडम नं० ८७

प्रेषक	सेवा में
प्रिंसिपल स्कूल ऑव आर्ट, जयपुर	पं० मदनमोहन शर्मा तुलसी-सेवा समिति जयपुर

ता० २४ अक्तूबर १९२५ ई०। विषय गोस्वामी तुलसीदास की श्वेत प्रस्तर मूर्ति।

प्रिय महोदय

कार्यसिल ऑव स्टेट जयपुर के फारिन एण्ड होम डिपार्टमेंट के मंत्री के इसी मास के पत्र नं० ६१ के अनुसार मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप अपनी सुविधा के अनुसार शीघ्र पधार कर मूर्ति को ले लेने की कृपा करें।

भवदीय
एस० राय चौधरी प्रिंसिपल।

फूल महल किशनगढ़ राजपूताना
१४ जनवरी १९२९ ई०

प्रिय पण्डितजी

तुलसी-सेवा-समिति के दान के निमित्त श्रीमन् महाराज प्रदत्त

का पे-आर्डर नत्थी है। कोष के अधिकारी को आदेश दे दिया गया है कि वह गो० तुलसीदासजी का अभीष्ट चित्र आपको दिखला दे। आपका परिचय कराने के लिए एक परिपत्र भी सब विभागों के अध्यक्षों के पास भेज दिया गया है। अब आप घूमकर चन्दा इकट्ठा कर सकते हैं।

भवदीय

सोहनलाल निजी सचिव

यहाँ मैं यह निवेदन कर देना आवश्यक समझता हूँ कि शर्माजी ने किशनगढ़ के मूल चित्र की प्रतिलिपि मुझे नहीं दिखायी क्योंकि वह जैसा कि वे कहते हैं उनसे खो गयी है। मैंने इस विषय में और अन्वेषण करना चाहा अतः पहले किशनगढ़ और फिर वाराणसी राज्य को लिखा। वाराणसी से मुझे अंग्रेजी में यह उत्तर मिला था —

प्रासाद सदस्य सं० २०१ — किला रामनगर ब० रि०

बनारस रियासत — ता० अक्तूबर २८, १९४०

प्रिय महाशय

आपका पत्र ता० २ सितम्बर, १९४० का हि० हा० महाराजा साहब बहादुर बनारस के लिए। मुझे यह सूचित करते खेद है कि गोस्वामी तुलसीदास का चित्र इस सरस्वती भंडार में अप्राप्य है। कृपया इसे नोट कर लें। मुझे वास्तव में खेद है कि आपको निराश होना पड़ा।

भवदीय

जे० पी० एन० सिंह प्रासाद सदस्य

किशनगढ़ को लिखने पर एक ही चित्र की दो परिवर्द्धित फोटो प्रतिलिपियाँ मुझे से प्राप्त हुईं जो चित्र संख्या १४ १५ से सर्वथा भिन्न हैं। वहाँ से एक पत्र भी अंग्रेजी में प्राप्त हुआ जिसका अनुवाद नीचे दिया जाता है —

प्रेषक — सेवा में

चीफ मेम्बर काउंसिल — पं० रामदत्त भारद्वाज

किशनगढ़ — कासगंज

सं० ११६२ एम० १९४० । किशन गढ़ १० अगस्त १९४० ।

विषय गोस्वामी तुलसीदासजी के मूल चित्र की प्रतिलिपि ।

प्रकरण आपके पत्र १ जुलाई और १ अगस्त १९४० के।

प्रिय महोदय

मैं यह कहने के लिए लिखता हूँ कि जो सूचना आप चाहते हैं वह नीचे दी जाती है —

१ मूलचित्र पोस्ट कार्ड के आकार का है और रंगीन नहीं है

२ यह ज्ञात नहीं कि इस चित्र का बनाने वाला कौन था और यह राज्य में किस प्रकार से आया,

१ रामकोष में गोस्वामीजी के और कोई चित्र नहीं है न कोई चित्र बाहर जाता ही है।

भवदीय

बी० आर० गुप्त

कृते चीफ मेम्बर ऑव काउंसिल किशनगढ़

किशनगढ़ वाला चित्र—(१६) किशनगढ़ से जो चित्र मुझे प्राप्त हुआ है वह लगभग १२"८ इंच की परिवर्द्धित फ़ोटो प्रतिलिपि है। इसमें गोस्वामीजी की आकृति चित्र-संख्या १० ब अर्थात् १६५५ वि० के कहे जाने वाले चित्र की आकृति से बहुत कुछ मिलती है। उसमें गोस्वामीजी पूर्वाभिमुख हैं तो इसमें पश्चिमाभिमुख। उसमें दो कंठियाँ और दो मालाएँ हैं तो इसमें एक कंठी और एक माला है। इसमें यज्ञोपवीत है उसमें नहीं। इसमें पेट विशेष निकला हुआ प्रतीत होता है। उसमें कोई पुस्तक नहीं थी इसमें एक पुस्तक गलीचे से हटकर चौकी पर और दूसरी कपड़े में लिपटी और बँधी गलीचे पर है। दोनों में गोस्वामीजी जप कर रहे हैं नेत्र खुले हुए हैं सामने की ओर दृष्टि है। उसमें तकिया, कालीन और इमारत का अंश था इसमें केवल एक गलीचा है जो उस कालीन से भिन्न है। गोस्वामीजी का अंगरखा भी भिन्न है। दोनों में गोस्वामीजी घुटमुण्ड किन्तु शिखा-युक्त हैं चन्दन-बिन्द्वादि एक से हैं। बैठने का ढंग समान है चरण की बनावट भी। इस चित्र का शीर्षक है तुलसीदासजी गुसाई श्री रामावृत।

निष्कर्ष—उक्त सभी चित्रों के विमर्श से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चित्र संख्या १ तथा उसी वर्ग वाले सभी चित्र गोस्वामीजी के वास्तविक चित्र हैं। इनका मूल अवश्य उनका समकालीन रहा होगा। काशी में प्रह्लाद घाट के जिस ब्राह्मण के पास यह चित्र संख्या १ है उन्होंने अपने उद्योग से उसी चित्र के आधार पर जो एक ममर प्रस्तर की मूर्ति बनवायी है, वह अनेक अंशों में सन्तोषजनक प्रतिकृति कही जा सकती है। विभिन्न चित्रों को देखने के पश्चात् भारत पुरातत्त्व विभाग के कर्णधार रायबहादुर काशीनाथ नारायण दीक्षित के परामर्श से, सोरों में वराह मन्दिर के सम्मुख हर-की-पैरी नामक ताल में गोस्वामीजी की मानवाकार प्रतिमा, उच्च पीठिका पर, १९४१ ई० में एटा जिलाधीश श्री के० एम० लोबो-प्रभु ने स्थापित की थी। यह प्रतिमा मर्मर प्रस्तर की लगभग सात फीट ऊँची है। इसमें गोस्वामीजी का वय उस समय का अंकित किया गया है जब उन्होंने सोरों को छोड़ा था। प्रतिमा के एक हस्त में 'रामायणम्' सुशोभित है, दूसरा उपदेश मुद्रा में है। तुलसीदासजी पंडित-वेश में धोती काछे, दुपट्टा ओढ़े वैष्णव तिलक लगाये कमल माला धारण किये हुए, सुन्दर आकृति के हैं।

(ग) स्वभाव और चरित्र

दयालु और परोपकारी—गोस्वामी तुलसीदास प्रकृति से दीनों के प्रति दयालु थे। वे अपने बाल्यकाल में कष्ट और संकटों का पर्याप्त अनुभव कर चुके थे अतएव वे

यह भली भाँति जानते थे कि कष्ट कितने दुःखद होते हैं और विपत्ति में सान्त्वना-सहानुभूति का क्या महत्त्व है। वे वीतराग थे उदासीन थे अतएव यदि वे दूसरों के पूर्वकृत कष्टों को देखकर आँख मीच लेते अथवा उन कष्टों के कारणों को भवितव्यता अथवा पाप कह कर टाल देते तो क्या था ? पर उनका हृदय तो कोमल और दयामय था। यद्यपि काशीवालों ने उन्हें अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचाये थे तथापि जब काशी में महामारी का प्रकोप हुआ और उन्होंने अपनी आँखों से बहुत से व्यक्तियों को मृत्यु के घाट उतरते देखा तो उनका हृदय द्रवित हो गया। वे इतने करुणापूर्ण हुए कि उन्होंने उस प्रलयंकरी महामारी की शान्ति के लिए भगवान् शंकर की आराधना की। वे यदि कभी किसी के भविष्य पर प्रकाश डालते और 'रामाज्ञा प्रश्न' से समाधान करते तो कभी किसी हत्यारे को और किसी वेश्या को पाप से निवृत्त करते थे। यदि कोई दरिद्र अपनी कन्या के विवाह के लिए द्रव्य चाहता तो वे उसके लिए धन की कोई व्यवस्था कर देते। जब अनेक लोग अपनी-अपनी कामनाएँ लेकर आस-पास से तदनन्तर दूर-दूर से आते और राम-भजन में अधिक बाधा पहुँचती तो वे गुफा में चले जाते। फिर भी वे किसी की प्रेत-बाधा को दूर करते, किसी की पुत्री को पुत्र बनाते और किसी के पति को प्राणदान देते थे। उनके मूल मंत्र थे

हित सों हित रति राम सों रिपु सों बैर बिहाउ
उदासीन सब सों सरल तुलसी सहज सुभाउ ॥ दो० ९१
परहित निरत निरन्तर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥ वि० १७२

मृदुल—गोस्वामीजी ने मृदुलता का परिचय अपनी रचनाओं में भी दिया है। पाठकों को पात्रों के चरित्र में जो उग्रता वाल्मीकि और व्यास के द्वारा मिलती है वह तुलसी के द्वारा नहीं। उदाहरणस्वरूप से निवेदन है कि वाल्मीकि रामायण में श्रीराम से वनवास की सूचना मिलने पर माता कौशल्या के उद्गार बड़े स्वाभाविक हैं —

न दृष्टपूर्वं कल्याणं सुखं वा पतिपौरुषे।
अपि पुत्रे विपश्येयमिति रामास्थितं मया ॥ २, २० ३८
सा बहून्यमनोज्ञानि वाक्यानि हृदयच्छिदाम्।
अहं श्रोष्ये सपत्नीनामवराणां परा सती ॥ २ २० ३९
अतो दुःखतरं किन्नु प्रमदानां भविष्यति।
मम शोको विलापश्च यादृशोऽयमनन्तकः ॥ २, २ ४०
त्वयि सन्निहितेऽप्येवमहमासं निराकृता।
किं पुनः प्रोषिते तात ध्रुवं मरणमेव मे ॥ २, २० ४१
अत्यन्तं निगृहीतास्मि भर्तुर्नित्यमसम्मता
परिवारेण कैकेय्याः समा वाप्यथवाऽवरा ॥ २ २०, ४२
यो हि मां सेवते कश्चिदथवाप्यनुवर्तते।
कैकेय्याः पुत्रमन्वीक्ष्य स जनो नाभिभाषते ॥ २, २० ४३

न चाधर्म्यं वचः श्रुत्वा सपत्न्या मम भाषितम्
विहाय शोक-सन्तप्तां गन्तुमर्हसि मामितः ॥ २ २१ २२

किन्तु तुलसीदासजी कितने कोमल हो गये हैं

राखौं सुतहि करौं अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू
कहौं जान बन तौ बड़ि हानी। संकट सोच बिबस भइ रानी।
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरम क टीका
जौं केवल पितु आयेसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना ॥२ ५४ ५५

सुमन्त्र के लौटने पर वाल्मीकिजी कौशल्या से दशरथ के प्रति कहलवाते हैं महाराज यह दूत दुष्कर कार्यकर्ता रामचन्द्र का सन्देश लाया है। इससे आप क्यों नहीं बोलते? इतने भीषण अपराध करके अब आप इतने क्यों दुःखित हो रहे हैं? जिसके डर के मारे आप रामचन्द्र के समाचार नहीं पूछते वह कैकेयी यहाँ नहीं है। आप किसी बात की शंका मन में न रखें जो कुछ कहना चाहें कहें (२ ५८ २६ ११)। पर तुलसीदासजी कहलाते हैं—

नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू
करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू
धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू
जौं जियँ धरिअ बिनय पिय मोरी। रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी॥
(२ १५१ ४-७)

वाल्मीकिजी के अनुसार मारीच ने मरते समय 'हा सीता हा लक्ष्मण' कहा था। आश्रम में सीताजी ने ज्योंही यह आर्तनाद सुना तो उन्होंने लक्ष्मणजी से कहा 'जाओ लक्ष्मण देखो। ज्ञात होता है कि आर्यपुत्र पर कोई संकट आया है और वे तुम्हें पुकार रहे हैं। जाओ दौड़कर उनकी रक्षा करो'। पर रामाज्ञा का स्मरण कर लक्ष्मण अपने स्थान से विचलित नहीं हुए। तब सीताजी ने अत्यन्त क्रोध से कहा— लक्ष्मण जान पड़ता है कि तुम्हारे मन में मेरे विषय में कोई पाप है इसी कारण तुम श्रीराम की रक्षा के लिए नहीं जा रहे हो। उन पर जो संकट आया है प्रतीत होता है तुम उस से प्रसन्न हो इसलिए चुपचाप बैठे हो। तुलसीदासजी ने इस घटना का उल्लेख केवल इतना किया है—

मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला॥ ३ २७ ५

कैकेयी के मर्मभेदी वचनों को सुनकर श्रीराम ने वन जाने के लिए वचन दे दिया किन्तु कहा 'देवि मुझे एक बात खटकती है कि राजा ने अभी तक अपने श्रीमुख से यह नहीं कहा कि मैं भरत को राज्याभिषेक देने के लिए प्रसन्न हूँ।

अलीकं मानसं त्वेकं हृदयं दहते मम
स्वयं यन्नाह मां राजा भरतस्याभिषेचनम् ॥ २ १९ ९

पर आगे चलकर कुछ उत्तेजना से राम बोले कि 'हे देवि मैं साधारण मनुष्यों की भाँति अर्थ-लोभी नहीं मुझे ऋषियों के तुल्य शुद्ध धर्म पर अटल जानो। (२ १९, २)
पर मृदुल-स्वभाव तुलसीदासजी श्रीराम के मुख से कहलाते हैं —

पुनि मधुर बचन महतारी।
मोहि कछु मातु-तात दुख कारन। करिय जतन जेहि होइ निवारन
× × ×
मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। रामु सहज आनन्द निधानू
बोले बचन बिमल सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन
सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी
तनय मातु पितु तोषनि हारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा
मुनि गन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर॥
भरतु प्रान प्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
(रा २ ४१ ४२)

कहने का तात्पर्य है कि चाहे वाल्मीकि रामायण में अथवा अध्यात्म रामायण में जहाँ-जहाँ कटु प्रसंग आये हैं, वहाँ-वहाँ तुलसीदास-द्वारा या तो उनका उल्लेख छोड़ दिया गया है, अथवा कटुता को शिवा से आवृत कर दिया गया है। यदि वाल्मीकि जी और व्यासजी ने वास्तविकता को चित्रित किया तो तुलसीदासजी ने आदर्श को उपस्थित किया है क्योंकि राम के अनन्य भक्त होने के कारण वे यह सहन नहीं कर सकते थे कि कौशल्या राम सीता आदि के मुखारविंद से ऐसा कोई शब्द निःसृत हो जो आदर्श से नीचा उतरे।

श्रद्धालु—अपने गुरु माता और पिता में गोस्वामीजी की बड़ी श्रद्धा थी। अनेक बार स्पष्ट और गुप्त रूप से गुरु नरहरि और माता हुलसी का तथा कूट-द्वारा पिता आत्माराम का उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार वल्लभाचार्यजी का भी। गुरु को मानस में प्रणाम किया गया है और 'विनय' में ब्रह्मा-विष्णु की पंक्ति में माता-पिता की चर्चा की गयी है, जिससे विदित होता है कि तुलसीदासजी इन औपनिषद वाक्यों का पालन करते थे आचार्य देवो भव पितृ देवो भव। सूकरखेत का स्पष्ट और स्यात् दारी का कूटोल्लेख हुआ है।[1]

मातृ-सेवा—गोस्वामीजी ने कौशल्या सुमित्रा सीता अनसूया आदि नारियों की चर्चा बड़े आदर भाव से की है। तुलसी का नारी-चरित्र-चित्रण इतना उग्र नहीं है जितना कि 'वाल्मीकि रामायण' अध्यात्म रामायण' और 'हनुमन्नाटक' में उपलब्ध है। तथापि उनकी कुछ उक्तियाँ नारी-जाति के विरोध में अवश्य हैं। पार्वतीजी स्वीकार करती हैं कि स्वभावतः नारी मूर्ख और ज्ञान रहित है (रा १ १४१ २)। इसी प्रकार अनसूयाजी सीताजी से कहती हैं कि नारी स्वभावतः अपवित्र है (रा ३ ८) शबरी भी मानती है कि नारी नीचातिनीच है (रा ३ ४१ १२)। ये उक्तियाँ स्वयं नारियों के मुखों से निःसृत हुई हैं। पुरुषों में रावण ने मन्दोदरी को नारी के दोष गिनाये हैं (रा ५, १६ १ ६,२२ १२)। पर वे मूलतः इस प्राचीन श्लोक पर

---

१ रा० १ १० क० १ ११२ ए

आधारित है :—

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥ शुक्रनीति ३ १११

स्वयं भगवान् राम ने नारी के अवगुणों की ओर ध्यान आकर्षित कर उसे सब दोषों की खान बताया है (रा ३ ४४ ४७)। कहते हैं कि तुलसीदासजी को पत्नी से डाँट मिली अतएव उन्होंने नारी चरित्र को कुत्सित रूप में चित्रित किया है। इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने 'दोहावली' (२५८) में लिखा है कि नारी कलह और मृत्यु का कारण है और कदाचित् इसी कारण जन्म-पत्री में उसका स्थान शत्रु और मृत्यु के मध्य पड़ता है और वह भगवद्भक्ति में बाधा पहुँचाती है (रा ३ ४०)। किन्तु तुलसीदासजी नारी के प्रति ऐसी भावना के लिए दोषी नहीं हैं। वे तो अपने समय के प्रतिनिधि हैं। उनके पीछे स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने कामिनी-कांचन-त्याग पर आग्रह किया और उनसे पूर्व कबीर भी कुछ ऐसा ही लिख चुके थे। योगवासिष्ठ के अनुसार हम अपने अज्ञान के कारण नारी को सुन्दर समझते हैं (१ २१ ८) और भगवद्गीता में उसका उल्लेख पाप योनियों में (अथवा उनके साथ) हुआ है (९, ३२ ३३)। गोस्वामीजी ने समुद्र के मुख से कहला दिया कि 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी ये सब ताड़न के अधिकारी' (रा ५, ५८, ६)। यह उक्ति भी 'धर्म संहिता' के इस श्लोक का अक्षरशः अनुवाद है :—

दुर्जनाः शिल्पिनो दासाः दुष्टाश्च पटहाः स्त्रियः
ताडिता मार्दवं यान्ति नते सत्कारभाजनम् ।

उनके समकालीन महाकवि शेक्सपीयर ने सहस्रों मीलों की दूरी पर नारी की जो अभद्र तुलना की है उसका तो उल्लेख भी अवांछनीय है। अतएव गोस्वामीजी को दोषी ठहराने से पूर्व कई बार विचार कर लेना श्रेयस्कर होगा। गोस्वामीजी ने अपनी माता का उल्लेख विभूति के साथ किया अतएव वे यह उपदेश करते प्रतीत होते हैं कि मातृ देवो भव। नारी के विषय में तुलसी भावना पर अधिक विवेचन अन्तिम अध्याय में किया जायगा।

विश्वास्—'आराध्य की ऐसी एकनिष्ठ भक्ति, ऐसा अनन्य विश्वास और इतनी अखण्ड आस्था संसार के इतिहास में दुर्लभ है'[1] जितनी गोस्वामीजी में। एक स्त्री ने नदी में स्नान करते समय उन्हें राम की शपथ दिलाकर कहा था कि जब तक मैं न कहूँ तब तक पीठ फेरे खड़े रहो और वे प्रातःकाल से सायंकाल तक जल में पीठ फेरे खड़े रहे। राम के नाम पर वे क्या नहीं कर सकते थे? यदि चमत्कारों में आस्था कर ली जाय तो कहा जा सकता है कि अनन्य विश्वास के कारण ही उन्हें हनुमद्दर्शन शिवदर्शन और रामदर्शन हुए तथा उनके ग्रन्थ पर दिव्य 'सही' पड़ी। उन्हें अपने किसी सम्बन्धी अपने किसी सुकृत अथवा अपने शरीर पर भरोसा न था :—

जाप न बिराग त्याग तीरथ न तप को
भाई को भरोसो न खरो सो बैर बैरी हू को
बल अपनो न हित जननी न जनक को ॥ क ७ ७७

---

१ हिन्दी साहित्य पृ ११०।

पर उन्हें राम का भरोसा अवश्य था।

भारी है भरोसो तुलसी के एक नाम को ॥ क ७ १०७

विनयशील—वे विनय के तो मानो अवतार थे। 'विनय पत्रिका' विनय प्रार्थनाओं से परिपूर्ण है। अन्य सभी ग्रन्थों में यत्र-तत्र विनीतता का परिचय मिलता है। यद्यपि उनके कुछ पदों में उपालम्भ भी है जो सख्य भक्ति का द्योतक है तथापि उनकी रचना दास्य से ओत-प्रोत है। वे इतने नम्र हैं कि अपने को कवि नहीं समझते और बार-बार घोषित करते हैं: कवि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ (रा १ ११ ९) कवि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू सकल कला सब बिद्या हीनू (रा १ ८ ८) निज बुधिबल भरोस मोहि नाहीं (रा १ ७प ४) छमिहहिं सज्जन मोर ढिठाई (रा १ ७प ८) कबित बिबेक एक नहिं मोरे (रा १ ८ ११) भाषाभनिति भोरि मति मोरी (रा १ ८ ४)। 'सीय राम मय सब जग' को जानकर वे हाथ जोड़ कर सब को प्रणाम करते हैं इष्ट देव को पंचदेवों को संतों को और खलों को भी। यजुर्वेद में कुत्स ऋषि ने भी शिव के वर्णन कुछ इसी प्रकार किये थे नमो वंचते परिवंचते स्तेनानां पतये नमो नमो निषंगिणऽइषुधिमते तस्कराणां पतये नमो नम सृकायिभ्यो जिघांसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो नमो सिमद्भ्यो नक्तं चरद्भ्यो विकृन्तानां पतये नम ॥१६ २१॥

भावुक—गोस्वामीजी बड़े भावुक और रसिक थे। पत्नी में उन्हें गाढ़ आसक्ति थी और भावावेश में वे वर्षा की अर्धरात्रि के समय पार कर उससे मिलने श्वसुरालय पहुँचे थे। पत्नी के उपदेश से उस आसक्ति का मार्गान्तरीकरण हो गया रति भक्ति बन गई। वे बड़े रसिक थे पर उनका रसास्वाद संयत रहता था। शृंगार में अश्लीलता से दूर रहते पर उत्सवों पर स्त्रियों की गालियाँ सुनने के रसिक भी थे और उन्होंने अनेक स्थलों पर स्त्रियों के गाली गाने का रसद उल्लेख किया है। वे विनोदप्रिय भी थे और अवसर आने पर मीठी चुटकी लेने से चूकते न थे। विन्ध्याचल के तपस्वियों पर कैसा मधुर व्यंग्य कसा है। कवि और संगीतज्ञ प्राय भावुक रसिक और विनोदी होते ही हैं, तुलसीदासजी ऐसे ही थे पर भावुकता और संयम के साथ।

आत्म-परीक्षक—ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी जो कार्य करते थे उसे कर लेने के पश्चात् उसके औचित्य और अनौचित्य पर विचार करते होंगे। पत्नी के उपदेश से वे घर छोड़ बैठे थे उन्होंने आवेश में ऐसा किया था। इससे उन्हें तो कष्ट मिले ही उनकी पत्नी भी दु:खी रही। क्या घर छोड़े बिना वे रामभक्ति न कर सकते थे क्या ऐसा किये बिना तुलसीदास तुलसीदासजी न बन सकते थे? मन्त्रद्रष्टा ऋषि लोग तो सपत्नीक उच्चतम जीवन व्यतीत करते थे। कदाचित् गोस्वामीजी को पश्चात्ताप रहा होगा कि उनके विरक्त हो जाने से उनकी मधुरा पत्नी रत्नावली को कितना दुख हुआ था? अतएव 'दोहावली' में जहाँ पत्नी की एक उक्ति उल्लिखित है वहाँ उन्होंने लिखा है कि घर पर रहकर ही भगवद्भक्ति श्रेयस्कर है (२५५, २५६)।

---

१ तुलसीदासजी स्त्रीत्व से प्रेम कि इन राम-रागिनियों से स्पष्ट है जिनका प्रयोग 'विनय पत्रिका' और 'गीतावली' में हुआ है।

एक बार विरक्त हो जाने पर घर लौट कर आ जाना लोकापवाद-जनक था। रत्नावली को पत्रोत्तर में लिखा था कि यदि तू राम का भजन करती है तो मुझे अपने से पृथक मत समझ (र० च० २७) आत्म विषय में उनकी कुछ उक्तियाँ हैं जिनसे विदित होता है कि वे आत्म-परीक्षण करते रहते थे —

किए अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को ॥ क०
तुलसी से कूर को कहत जन राम को ॥ क०
अपनायो तुलसी सो धींग धमधूसरो ॥ क०
मोसे दीन दूबरे कुपूत कूर काहिलो ॥ क०
स्वारथ को साज न समाज परमारथ को ॥ क०
मोसो दगाबाज दूसरो न जग जाल है ॥ क०
धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को ॥ क०
राम सों बड़ो है कौन मोसों कौन छोटो ॥ वि०
राम सों खरो है कौन मोसों कौन खोटो ॥ वि०

सद्-व्यवहारी—गोस्वामीजी और उनकी पत्नी ने जो कुछ लिखा है उससे विदित होता है कि वे दोनों लोक-व्यवहार से सुपरिचित थे। किन्तु दोनों ही ने अपने व्यवहार में अतिक्रमण किया क्योंकि दोनों ही कवि अतएव भावुक थे। गोस्वामीजी चाटुकारिता से दूर, स्पष्टवादी थे। कदाचित् इन दोनों गुणों के कारण वे बार-बार संघर्ष में आकर कष्टापन्न होते रहे यद्यपि अपनी प्रतिभा विद्वत्ता और साधुता के कारण उन्हें राजप्रसाद प्राप्त था और तज्जन्य सुरक्षा और सफलता भी। बिन गंगाराम और टोडर को छोड़ उन्होंने किसी व्यक्ति का उल्लेख तक न किया यहाँ तक कि अपने गुरु और माता पिता का भी स्मरण छूट-छाट ही किया है। वे नर प्रशंसा से दूर रहे कदाचित् इस कारण उनकी कविता को और भी सौष्ठव प्राप्त हुआ। राग-द्वेष से रहित वे सबसे समान व्यवहार करते थे—

तुलसी ममता राम सों समता सब संसार
राग न रोष न दोष दुख दास भये भव पार ॥ दो० ९४

गुणग्राही—तुलसीदासजी गुणग्राही थे। उन्होंने बौद्ध और जैन धर्मों की उचित प्रशंसा की है यों उन्होंने मतभेद भी प्रदर्शित किया है। पुष्टिमार्ग से उन्होंने भगवान् के बालरूप के महत्त्व को ग्रहण कर उसका वर्णन 'रामचरितमानस' 'कवितावली' और 'गीतावली' में किया है। सूरदास के कतिपय कृष्ण-परक पद 'गीतावली' में राम-परक हो गये हैं (१ ११ ४०)। यह साहित्य स्तेय नहीं क्योंकि इनके द्वारा उन्हें न तो धन का अर्जन करना था और न प्रतिष्ठा की प्राप्ति। यह तो महाकवि सूरदास के प्रति उनकी चिरस्मरणीय श्रद्धांजलि है।

तीव्रालोचक—गोस्वामीजी प्रायः अपनी ही बात कहते थे और दूसरों पर आक्षेप न करते थे। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वे कभी-कभी दूसरे का खण्डन करने के लिए बाध्य भी हो जाते थे। सैयद सालार मसऊद गाजी की दरगाह पर उनका व्यंग्य है

जही माँखि कब श्रीचरे माँस पूत कब स्याइ
कब कोड़ी काया लही जग बहुराइव बाइ ॥ दो० ४५१

'दोहावली' (१६) और 'तुलसी सतसई' (४, ४१) में 'मसक मसक' कहने वाले फ़कीर को कड़ी डाट पिलायी गयी है। इन्द्र की तुलना श्वान से की गयी है (रा० १ १२५, २ १ १, ८)। जो राम का भजन नहीं करते वे सींग पुच्छ-रहित पशु हैं (दो० ११८)। जो दूसरे की कीर्ति को मिटा कर स्वयं प्रसिद्ध होना चाहते हैं उनके मुख पर कालिमा पुतेगी (दो० १८१)। गोसाईं चरित में लिखा है कि उन्होंने लाला गीडमलसिंह से अप्रसन्नता प्रकट की और एक चटकी के गर्व का खण्डन किया।

प्रकृति-प्रेमी और मादर्श-वादी—गोस्वामीजी भक्त-कवि थे अतएव वे प्रकृति को भी 'सियाराममय' के चश्मे से देखते थे। हिमगिरि, चित्रकूट प्रयाग अयोध्या तथा पुष्प-वाटिका वर्षा और शरद के वर्णन परमसत्व सुन्दर हैं। गंगाजी से तो वे बड़े प्रभावित थे। कमल चातक, चक्रवाक चकोर मृग मीन और खंजन का उपयोग उपमा देने के लिए अधिकतर हुआ है, किन्तु परम्परागत पद्धति के अनुसार। बहुधा 'फूले फले न बेत' के तथ्य पर आपत्ति उठायी गयी है और 'बेत' को 'विवद्' (आकाश) का अपभ्रंश मान कर कुछ टीकाकारों के द्वारा पाठ का समाधान किया गया है। उनके समय में वर्णाश्रम की क्या दशा थी उसका वर्णन यथावत् हुआ है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि गोस्वामीजी मानव-स्वभाव के विशेषज्ञ थे। उनके पात्र राम, लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्न दशरथ कौशल्या कैकेयी सीता हनुमान्, रावण, सुग्रीव आदि के चरित्रों का चित्रण कितना मनोमोहक और आदर्श कितना उन्नायक हुआ है इस पर दो सम्मतियाँ नहीं हो सकतीं। वे आदर्शवादी ही नहीं, आदर्श-स्रष्टा भी थे।

स्पष्टवादी और निर्भीक—भगवान् राम ने अयोध्या के पुरजनों को बताया कि मैं उस व्यक्ति को अपनाता हूँ जो कुटिलता का त्याग कर स्वाभाविक सरलता से व्यवहार करता है (रा ७ ४५, २)। गोस्वामीजी भी सरल प्रकृति के थे। उन्होंने अपने बचपन के दैन्य और दारिद्र्य के दोषों का स्पष्ट उल्लेख 'कवितावली' 'बाहुक' और विनयपत्रिका में अनेक स्थलों पर किया है। प्रायः सरल व्यक्ति स्पष्टवादी और स्पष्टवादी निर्भीक होते हैं। अयोध्या और काशी में बैरागियों और पण्डितों से एवं ठगों और चोरों से अनेक बार संकट उपस्थित हुए। पर वे निडर होकर डटे रहे। मानव-हृदय ही तो था एकाध बार वे घबड़ाये भी। पर विकट परिस्थिति में उनका विश्वास और प्रयत्न उनकी सहायता करते एवं सदा-सदा हनुमान् जी शिवजी और रामजी भी। अतएव उन्हें था

लोक की न डर परलोक को न सोचु ॥ क ७ ७७
कीन को त्रास करै तुलसी जो पै राखिहैं रामु तो मारि है कोरे ॥
क० ७ ४८

मेरे तो न डर रघुबीर सुनौ साँची कहौं ॥क० ७, ७१
है काके द्वै सीस ईस के जो हठि जन की सीम चरै
तुलसिदास रघुबीर बाहुबल सदा अभय काहू न डरै ॥ वि० १३७

दृढ़ संकल्प—गोस्वामीजी जो विचार लेते उस पर दृढ़ रहते थे। दृढ़-

त्याग कर देने पर वे पुनः लौट कर नहीं आये, यद्यपि उनकी पत्नी ने उनके पास संदेश भेजे और उनके भाई-भतीजे ने रामपुर-सोरों में पधारने की प्रार्थना की। अधिकारियों के साथ सम्राट् के आग्रह पर भी वे चमत्कार दिखाने के लिए प्रस्तुत न हुए। उन्होंने बंधन का कष्ट तो सहा किन्तु जो मुख से निकल गया उस पर अटल रहे। रामानन्दियों एवं पुष्टि-सम्प्रदाय वालों के प्रलोभनों और उपाधियों एवं तथा-कथित पंडितों के अस्वीकृतों के मध्य अपने सिद्धान्त पर अटल रहने के लिए उनमें दृढ़ संकल्प की सत्ता थी। गोस्वामीजी के हठयोगी होने का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं। वे कहते हैं

जाग जोग जप तप कियो न तमाई जोग ॥ क० ७ ७७

पर वे ज्ञान-योगी और राजयोगी अवश्य थे।

प्रमाण पठित—दीर्घ जीवन के अनुभव पर्यटन और सत्संग के कारण गोस्वामीजी बहुश्रुत थे। उनका अध्ययन भी विशाल था। गृहत्याग से पूर्व वे कर्मकाण्डी पुरोहित और कथावाचक थे उनकी रचनाओं में जो अन्तर्कथाओं का बहुल निर्देश है उससे प्रतीत होता है कि वे पुराणों में निष्णात थे। उनकी सूक्तियाँ श्रुति-स्मृति-परक हैं। उनके दर्शन की सूक्ष्मता से प्रकट है कि वे तत्कालीन आचार्यों के मतों से अवगत थे। 'राम-चरित मानस' के प्रारम्भिक सप्तम श्लोक में उन्होंने स्पष्ट किया है कि मेरी रचना अनेक पुराण आगम निगम तथा अन्य ग्रन्थों पर आधारित है। कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे वे हैं:

असुर मुनि कहुँ दिसा सुहाई। वेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई ॥ रा० ४ १४, १
यह पंक्ति ऋग्वेद (७ १०३ १ १०) का स्मरण दिलाती है। उन्होंने रामनाम-महिमा स्कन्द पुराण के नागर खण्ड से पायी और राम की व्युत्पत्ति 'रामनाम चन्द्रिका'' 'राम पटल'' और 'महारामायण'' के आधार पर की। राम की उपासनापरक कल्पना 'रामपूर्व तापिनी, रामोत्तर तापिनी' 'रामरहस्य', और 'कलिसंतरण' आदि उपनिषदों से प्राप्त की सज्जन-प्रशंसा और दुर्जन निन्दा का आधार कादम्बरी से लिया। गोस्वामीजी ने कथावस्तु के लिए 'पद्मपुराण'' विष्णुपुराण, 'महाभारत 'मूल रामायण' 'संक्षेप रामायण' 'अगस्त्य संहिता'' 'भुशुण्डिरामायण ' बालरामायण' और उत्तर राम चरित' को देखा होगा किन्तु 'हनुमन्नाटक' प्रसन्नराघव' और 'रघुवंश'' का कुछ उपयोग भी किया है। यह तो निश्चय है कि गोस्वामीजी के सम्मुख आदर्श-रूप से 'वाल्मीकि रामायण' उपस्थित थी किन्तु उपयोग के लिए अध्यात्मरामायण' को ही अधिक अपनाया गया। सीताजी को मायापतित मानने का आधार 'अद्भुत रामायण'' प्रतीत होता है। वैराग्य-सम्बन्धी सुझाव के लिए गोस्वामीजी 'योगवासिष्ठ' के अधिक

---

१ २ ३ तुलसी-दर्शन पृष्ठ १८८ १८९।
४ वही, पृष्ठ ९१।
५-६ ऐन आउटलाइन ऑव द रिलिजस लिटरेचर ऑव इंडिया पृष्ठ १८८ ११
१४७ २५१, २ ८।
७ ८ ९ तुलसीदास पृष्ठ ११६ ११८ २१।
१ भा मु रामायण २१ ४२ २४ २४ ३५ २।

चली प्रतीत होते हैं, जिसका पठन-पाठन तब और अब भी विरक्त पुरुषों में प्रचलित है। भक्ति के विषय में उन पर गीता और भागवत का और बालोपासना में वल्लभाचार्यजी के पुष्टिमार्ग का प्रभाव पड़ा। गोस्वामीजी स्वयं भी थे जैसा कि 'रामाज्ञा प्रश्न', 'दोहावली' और 'तुलसी सतसई' से विदित होता है।

प्रतिभाशाली—तुलसीदासजी को जो 'अभूतपूर्व सफलता'[1] मिली उसका कारण है उनकी "अपूर्व समन्वय शक्ति"[2]। "उनकी रचनाओं में विशेषकर 'रामचरितमानस' में लोक और शास्त्र का ही समन्वय नहीं है अपितु वैराग्य और गार्हस्थ्य का भक्ति और ज्ञान का भाषा और संस्कृत का निर्गुण और सगुण का पुराण और काव्य का भावावेश और अनासक्त चिंतन का ब्राह्मण और चाण्डाल का पंडित और अपंडित का समन्वय है।"[3] श्री व्यौहार राजेन्द्रसिंह ने अपने ग्रन्थ 'गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना' के द्वितीय भाग में उनके साम्य-समन्वय साधन-समन्वय उपास्य-गुण-समन्वय उपासक-गुण-समन्वय वृत्ति-समन्वय भाव-समन्वय उपदेश-समन्वय दर्शन-समन्वय द्वैताद्वैत समन्वय निर्गुण-सगुण-समन्वय की विस्तारपूर्वक चर्चा की है। प्राचीन काल में भी यह समन्वयात्मक प्रवृत्ति कुछ पुराणों और महाभारत में तथा पृथ्वीराज रासो में भी मिलती है तुलसीदासजी ने विष्णु-शिव ज्ञान भक्ति और निर्गुण-सगुण के सामंजस्य पर पुन आग्रह कर लोक-कल्याण किया। भावों के अतिरिक्त भाषा में भी उनकी प्रतिभा अप्रतिहत है। उनकी भाषा विषयानुकूल तथा वक्ता और श्रोता के अनुसार हो जाती है। परिचारिका की भाषा और रानी की भाषा में अन्तर है निषाद की भाषा जितनी ही सरल और अकृत्रिम है वशिष्ठ की भाषा उतनी ही वैराग्यमंडित और परिष्कृत। तुलसीदास के पहले किसी हिन्दी कवि ने इतनी मार्जित भाषा का प्रयोग नहीं किया था। काव्योपयोगी भाषा लिखने में तो वे कमाल करते हैं। उनकी विनय पत्रिका में भाषा का जैसा जोरदार प्रवाह है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। जहाँ भाषा साधारण और लौकिक होती है वहाँ तुलसीदास की उक्तियाँ तीर की तरह चुभ जाती हैं और जहाँ शास्त्रीय और गंभीर होती है वहाँ पाठक का मन चील की तरह मंडरा कर प्रतिपादित सिद्धान्त को ग्रहण कर लेता है[4]। गोस्वामीजी की संतुलित प्रतिभा ने वह महान् साहित्य दिया जो संसार के इतिहास में अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखता।[5]

---

१ हिन्दी साहित्य पृष्ठ २३१। २ वही, २३२। ३ वही, २३२। ४ वही, पृष्ठ २३६-२४०। ५ वही, पृष्ठ २४१।

सोरों-सामग्री

प्रथम भाग सिंहावलोकन

सोरों-सामग्री का अर्थ—सोरों-सामग्री इस शब्द-द्वय का अभिप्राय उस सामग्री से है जो सोरों में अथवा उसके निकटवर्ती स्थानों से उपलब्ध तथा संगृहीत है और जो गोस्वामी तुलसीदास साध्वी रत्नावली और नन्ददासजी के जन्मस्थान वंश और रचनाओं पर प्रकाश डालती है एवं वह सामग्री जो उक्त सामग्री का समर्थन करती है। प्रथम प्रकार की सामग्री पर अनेक आक्षेप हैं जो अन्ततोगत्वा उपादेय ही सिद्ध हुए हैं। जिस प्रकार अग्नि में तपने से स्वर्ण का मल छूट जाता है और उसकी कान्ति बढ़ जाती है ठीक उसी प्रकार आक्षेपों से सत्यशोध को सहायता ही प्राप्त हुई। आलोचन और प्रत्यालोचन से पूर्व सोरों-सामग्री का वर्तमान रूप उपस्थित करना अभीष्ट है।

सोरों-सामग्री के दो रूप—सोरों-सामग्री के दो रूप हैं (क) गृह्य और (ख) बाह्य। गृह्य सामग्री प्रचुर तथा बहुविध है। भवन वंशज जनश्रुति भाषासेवी गोस्वामीजी के वचन और अन्य कवियों की पाण्डु लिपियाँ इस सम्बन्ध में प्रबल साक्ष्य उपस्थित करती हैं। बाह्य सामग्री भी न्यून नहीं। इसके अन्तर्गत हैं—विकीर्ण जन श्रुतियाँ जो पूर्वी जिलों में प्राप्त हैं ग्रियर्सन ग्राउस ग्रीब्ज आदि यूरोपीय विद्वानों की गवेषणाएँ सम्बद्ध वार्ताएँ तथा अन्य लेख जिनसे सोरों की गृह्य-सामग्री की पुष्टि होती है।

(१) गृह्य-सामग्री

(क) भवन साक्ष्य

इस विषय में निम्नलिखित साक्ष्य उल्लेखनीय हैं —

(१) रामपुर नामक ग्राम सोरों से डेढ़ मील पूर्व स्थित था और है। इसके निकट एक टीले पर बलरामजी का मन्दिर बना हुआ है जिसकी भित्तियों में कहीं कहीं अंकित कंकड़ प्रस्तर चिने हुए हैं जो गोस्वामीजी से भी कहीं पुरातन भवनों के अवशेष हैं। प्रतीत होता है कि बलरामजी के उपलक्ष्य में ग्राम का नाम रामपुर रखा गया। मन्दिर के समक्ष एक पक्का सरोवर था जिसकी बहुत सी ईंटें लोग अपने घर बनाने के लिए उखाड़ कर ले गये हैं किन्तु तनिक ध्यान देने पर घाट का अवशिष्ट भाग लक्षित हो सकता है। वर्षा ऋतु में अब भी उसमें जल भर जाता है जैसा कि उस चित्र से भी प्रकट है जो चौदह वर्ष पूर्व मैंने लिया था। वहीं बलदेव-छट को मेला लगता है और निकटवर्ती ग्रामों के निवासी दर्शन करने आते हैं। नन्ददासजी ने कृष्ण भक्ति के आवेश में रामपुर का श्यामपुर मन्दिर का श्यामायतन और सर का श्यामसर नाम रख दिया। इस नामकरण का उल्लेख कृष्णदासजी के 'सूकर क्षेत्र माहात्म्य' 'कृष्णदास वचनावली और 'वर्णन' में रत्नावली की 'दोहा रत्नावली' में और बाब

कृष्ण की 'भ्रमर-गीत' वाली प्रति की पुष्पिका में हुआ है। यह रामपुर तुलसीदास और नन्ददास दोनों की जन्म भूमि है।

(२) नृसिंह मन्दिर—यह स्थान गोस्वामी तुलसीदास और नन्ददासजी के गुरु नृसिंहजी का विद्याभवन था जो सोरों के चक्रतीर्थ मोहल्ले में आज भी विद्यमान है। इसमें पहले हनुमानजी की मूर्ति भीतर थी जिसे पीछे से बाहर लाकर इसके चबूतरे पर प्राचीन वटवृक्ष के नीचे स्थापित कर दिया गया। जिस अधिकारी ने ऐसा किया वह इस कुकृत्य के कारण अन्धा हो गया था ऐसी लोक-श्रुति है। इसी हनुमत्प्रतिमा की प्रशंसा नन्द तुलसी और उनके गुरुदेव करते थे। गुरुदेव के वंशज अब भी विद्यमान हैं। मन्दिर के सम्मुख गली के कोने पर एक कूप है जो नृसिंहजी का कहलाता है। लगभग बारह वर्ष हुए मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ जिससे उसके पूर्व रूप में अन्तर हो गया है जो चित्रों से स्पष्ट है। भीतर का भाग प्राचीन है।

(३) बराह मन्दिर और घाट—यहाँ गोस्वामीजी के समय में और पीछे तक गंगाजी बहती थी जिसका साक्ष्य रम्य भव्य घाट आज भी दे रहे हैं, यद्यपि गंगाजी अब यहाँ से चार मील दूर हट गयी हैं। नवीं शताब्दी में यहाँ सोलंकी राजा सोमदत्त राज्य करते थे। कुछ ध्वंसावशेष अभी तक पाये जाते हैं। राजा टोडरमल, महाराणा जयपुर, अलवर नरेश एवं अनेक सेठों के बनवाये पक्के घाट बुर्जियाँ कुंज और धर्मशालाएँ हैं। बराहजी का मन्दिर पीछे का निर्माण है और श्वेत प्रस्तर-निर्मित भगवान् बराह की प्रतिमा भी अपेक्षाकृत नयी है। सूकरक्षेत्र का माहात्म्य 'ब्रह्म पुराण' 'बराह पुराण' 'गर्गसंहिता' आदि पुराणों में वर्णित है। श्री नन्ददास-पुत्र कृष्णदासजी ने भाषा में 'सूकर क्षेत्र माहात्म्य' लिखा है। सूकर-क्षेत्र (सोरों) का उल्लेख 'आइने अकबरी' और 'पृथ्वीराज रासो' में भी मिलता है। यहाँ प्रतिवर्ष बराह भगवान् के उपलक्ष्य में मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी से पूर्णिमा तक लक्खी मेला लगता है। सूकरक्षेत्र का विस्तृत विवेचन तृतीय अध्याय में किया जा चुका है।

(४) तुलसीदास गृह—सोरों के योगमार्ग मोहल्ले में तुलसीदासजी का निवास था। पहले इस घर में तुलसीदासजी की दादी की ननसाल थी और इसको राजौरियों का घर कहा जाता था। गृह-कलह से पीड़ित हो दादी और माता पिता शिशु तुलसी को लेकर उसमें आ बसे थे। आज यह घर कच्चा टूटा-फूटा है न जाने तब से कितनी बार नया बन गया होगा। पहले यह ब्रह्मभट्टियों के बीच स्थित था और अब मुसलमानों के अधिकार में है। रत्नावली विवाहित हो यहाँ रही थी उसकी और उसके पति की पवित्रता के कारण लोग अब भी कनफर रोग की शान्ति के लिए इसकी दीवाल को पूर्ण कर मिट्टी ले जाया करते हैं जिसका उल्लेख मुरलीधर चतुर्वेद ने 'रत्नावली चरित १८' में किया है। इस घर से कुछ हटकर अलग घर में नन्ददासजी के वंशज रहते हैं।

(५) सीतारामजी का मन्दिर—यह बहुत प्राचीन भवन है। इसका विवेचन सूकरक्षेत्र नामक अध्याय में किया गया है। यहाँ हरिहर स्वामी नाम के साधु रहते थे जिन्होंने तुलसीदासजी और नन्ददासजी को संगीत की शिक्षा दी थी।[1]

---

१ तुलसी प्रकाश ६६।

(६) सोरों के सामने पक्के सरोवर के पार बदरिया नामक छोटा सा ग्राम है जिसमें तुलसीदासजी का श्वसुरालय था। श्वसुरालय वाला घर जो रामनरेश त्रिपाठीजी ने देखा था अब एक मंदिर के रूप में है। १६२७ वि० में गंगाजी में बाढ़ आयी थी जिसमें बदरिया डूब गयी अतः वर्तमान मकान को प्रतीक-मात्र समझना चाहिए।

(ख) वंशज

(अ) गुरु नरसिंहजीके वंशज—गुरु नरसिंहजी की पाठशाला के सन्निकट एक भव्य गृह है जिसमें आज भी नरसिंहजी की सुसम्पन्न संतति निवास करती है। नरसिंहजी वसिष्ठ-गोत्री और बिर्यरिया चौधरी आस्पदीय सनाढ्य ब्राह्मण थे। उनकी वंशावली इस प्रकार है —

होडिलजी तारनजी दामोदरजी और धाराजीतजी चार भाई थे। होडिलजी के नाम पर होडलपुर ग्राम बसा जो सोरों के निकट है। उनके वंशज होडलपुर के चौधरी कहे जाते हैं। तारनजी की सन्तति भिन्न ब्राह्मणों के यहाँ दत्तक होने से भिन्न हो गयी। धाराजीतजी के दो पुत्र हुए, जिनमें एक धमनावत ब्राह्मण वंश के प्रवर्तक हुए, दूसरे बरनारिया वंश में चले गये।

दामोदरजी के पुत्र चक्रपाणिजी उनके श्रीधरजी और उनके बंशीधरजी हुए जो अनेक राजाओं के द्वारा सम्मानित रहे। बंशीधरजी के तीन पुत्र हुए—हरिहरजी नरसिंहजी और हरिसुखजी। हरिहरजी भागीरथ मंदिर के अधिकारी थे फ़रीदनगर की ज़मींदारी चौधरी वंश के अधिकार में थी। हरिसुखजी के वंश के विषय में कोई उल्लेख नहीं।

नरसिंहजी महाराज ने तुलसीदासजी और नन्ददासजी का संरक्षण और अध्यापन किया। वे जयपुर आदि अनेक राजाओं के दीक्षा-गुरु एवं सर्व-सम्मानित रहे। इनके पुत्र थे मीकरजी उनके मुकुन्दजी उनके मथुराजी और उनके फूलचन्दजी। फूलचन्दजी के तीन पुत्र थे—उत्तमचन्दजी हासचन्दजी और दीपचन्द जी।

हासचन्दजी के पुत्र राधाकृष्णजी उनके भोलानाथजी और मुरलीधरजी भोलानाथजी के पुत्र मथुरारामजी और उनके पूप। मुरलीधरजी के दो पुत्र हुए—देवरियाजी और फ़क़ीरचन्दजी और फ़क़ीरचन्दजी के दो पुत्र गंगानाथजी और रणछोड़जी इनमें रणछोड़जी के पुत्र प्यारेलालजी और उनके रामनिवासजी थे।

दीपचन्दजी के तीन पुत्र हुए, एक से हमनिया के भगवा का चौधरी वंश चला दूसरे से कुरई चौधरी वंश और तीसरे से होली का रामनारायणजी का चौधरी वंश।

उत्तमचन्दजी के पुत्र बहादुरलालजी थे और उनके चार—प्रसादीलालजी भूपालीरामजी शिवदानजी और शिवनारायणजी। प्रसादीलालजी के पुत्र मनसुखजी और छोटेलालजी और छोटेलालजी के लछमनजी मथुराजी और रामलालजी। रामलालजी के हरिवल्लभजी उनके निमाई रामगोपालजी (बोधवाली) और उनके श्रीनाथजी (मसत) और परीजी; श्रीनाथजी के पुत्र प्रेमनाथजी हुए।

भूपाली रामजी के पुत्र जगन्नाथजी थे।

शिवदानजी के पाँच पुत्र हुए—बदरीनाथजी बैजूजी दुर्गाजी, चतुर्भुजजी और हरदेवजी। इनमें बदरीनाथजी के पुत्र मनोहरजी और उनके रामनलालजी जिन के दो पुत्र प्रेमीजी और नारायणजी हुए। दुर्गाजी के दो पुत्र थे—गोविंदरामजी और दामोदरजी। गोविंदरामजी के चार पुत्र हुए—गोपीनाथजी, सीतारामजी किशनलालजी और हरनामजी। किशनलालजी के हुए शिवस्वरूपजी पातुजी मन्नूजी और बल्लभजी। बल्लभजी के प्यारेलालजी और उनके मन्नाजी। हरनामजी के दो पुत्र हुए टीकारामजी और रणछोड़जी जिनमें टीकारामजी के सियारामजी और श्यामलालजी और रणछोड़जी के गंगाराम (८७)।

जवाहरलालजी के पुत्र नारायणजी का वंश इस प्रकार चला नारायणजी के तीन पुत्र थे—बलदेवजी, फूलनाथजी निम्बुरामजी। बलदेवजी के पुत्र थे गौरीशंकर, और उनके रामरत्न। फूलनाथजी के दो पुत्र हुए—द्वारकानाथजी और युगलकिशोर जी। द्वारकानाथजी के तीन पुत्र हुए—रंगनाथजी दीनूजी और रामाजी और रंगनाथजी के पुत्र हैं—दशरथ चौधरी (पिस्ते) जी। युगलकिशोरजी के हुए भीष्म। जवाहरलालजी के पुत्र निम्बुरामजी के तीन पुत्र थे—कियनजी बंशीजी और मदनजी।

नरसिंह पाठशाला के प्रथम चित्र में रंगनाथजी का चित्र विगत है तिदरी के प्रथम द्वार के आगे मुंडासा बाँधे बैठे हैं, गुरु नरसिंहजी इनके पिता से सातवीं पीढ़ी में थे।

(आ) नन्ददासजी के वंशज—इस समय इस वंश में श्री मधु शुक्ल के पौत्र और श्री धानसिंह के पुत्र पण्डित बाबूराम शुक्ल और उनके भतीजे अर्थात् स्व० पं० मुरारीलाल शुक्ल के पुत्र श्री शिवनारायण शुक्ल वर्तमान हैं। उसकी वंशावली अभी तक मुझे प्राप्त नहीं हो सकी है, किन्तु सुना गया है कि वह विद्यमान है।

(ग) जनश्रुति

सोरों में जनश्रुति है कि रत्नावली जिस घर में निवास करती थी उसकी रज धारण करने से आरोग्य लाभ होता है। कवि मुरलीधर चतुर्वेद ने भी 'रत्नावली चरित' में लिखा है —

> करत सकल रज जासु कोइ। परत देह रुज रहित होइ ॥१५८॥

एक लोक-चर्चा यह है कि गोस्वामीजी का घर कसाइयों के निकट था

> तुलसी तेरी झोंपड़ी कसकरियन के पास
> जैसी करै सोई भरै तू क्यों होत उदास'

नरसिंह मन्दिर के विषय में लोग कहते हैं कि इस में नरसिंहजी की पाठशाला थी। तारी (एटा) में यह जनश्रुति है कि यहाँ गोस्वामीजी की ननसाल थी जिसका उल्लेख कुछ विस्तार से अन्यत्र किया गया है।

(घ) भाषा शैली

गोस्वामीजी के 'रामचरितमानस' की भाषा और शैली का साम्य सोरों के

१ तुलसी और उनका काव्य, पृ० ७१।

तत्कालीन अन्य कवियों की भाषा और शैली से है। महाकवि नन्ददास और कवि कृष्णदास ने भी जो क्रमशः गोस्वामीजी के चचेरे भाई और भतीजे लगते थे चौपाई दोहों में रचना की है और वह भाषा-शैली की दृष्टि से न तो तत्कालीन ठेठ ब्रज ही है और न अवधी ही किन्तु ब्रजावधी है। तुलसी-पत्नी के उन दोहों की जो उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में जनश्रुति के रूप में मिले हैं, तथा 'दोहारत्नावली' की रचना ब्रजावधी है। कवि मुरलीधर चतुर्वेद की ब्रजभाषा भी अवधी से समन्वित है। सोरों की विशेषतः उसके आस-पास के ग्राम-वासियों की भाषा भी ब्रजावधी है। पं० गोविंद वल्लभ भट्ट और पं० रामनरेश त्रिपाठी तुलसीदासजी के कुछ ऐसे शब्दों की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं जिनका प्रयोग उनकी समझ से सोरों में ही होता है अन्यत्र नहीं। वे शब्द ये हैं तायो (ताँवा) और को (आदि का) बकठोरि, कुटिलकीट (केंकड़े की जाति का एक कीड़ा जिसे सोरों में कुटीमा कहते हैं, यह कीट अपनी माँ के पेट को फाड़ कर निकलता है और वह उसके जन्म लेते ही मर जाती है) और तिजरा (इसका अर्थ कुछ टीकाकारों ने तिजारी ज्वर किया है पर सोरों में यह शब्द पसली चलने के रोग को कहते हैं और इसकी शान्ति के निमित्त लोग आटे का पुतला बनाकर चौराहे पर डाल कर चले जाते हैं और उसे फिर नहीं देखते।) उक्त शब्दों से सम्बद्ध वचन इस प्रकार हैं

सकल मगन मन लग लये सब अतलपति तायो (विनय)

हौं तो बिनरायल और को (विनय)

खेलत अवध खोरि गोली भँवरा बकठोरि (गीतावली)

तनु जनेउ कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिताहू (विनय)

स्वारथ के साथिन तज्यो

तिजरा को सो ढोटक औचट उलटि न हेरो (विनय)

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने भौंरा और बकठोरी के सम्बन्ध में अपनी शंका की है कि 'जैसा हमने देखा है राजापुर के समर्थक कहते हैं कि ये खेल राजापुर में ही विशेष प्रचलित हैं। साथ ही यदि आज इन खेलों का प्रचार उपर्युक्त स्थानों में अत्यन्त कम हो—अथवा न हो—तो इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि तुलसीदास के समय में भी इन स्थानों में उपर्युक्त खेलों की परिस्थिति यही थी'।[१] गुप्तजी का कथन सत्य हो सकता है यद्यपि उनके तक के पूर्वापर वाक्य विरोधात्मक प्रतीत होते हैं। 'तायो' और को', तिजरा' तथा 'कुटिल कीट' के सम्बन्ध में उन्होंने अपने विचार प्रकट नहीं किये हैं।

त्रिपाठीजी ने कुछ और शब्दों का उल्लेख किया है जिनका प्रयोग मारवाड़ में होता है यथा माय आयो, मींजो (हाथ फेरा) मैंन (मैन मोम) मोहि (भरोसे) माट (घड़ा) मोंगी (चुप) मूरी (पोंछी) बियो (दूसरा गुजराती बीजा) म्हाको (मुझको) बाक (बाक्) आदि, मार (गाड़ चर्दन)। तुलसीदासजी की पंक्तियाँ ये हैं—

लोसे माय आयो को (विनय०)। मींजो गुरु पीठ (विनय०)

१ तुलसीदास, पृ १२४।

नैन के बसान कुलिस के कोरक (श्रीकृष्ण गी०)
नगन बीच मन्दिर के मोल (गीतावली)
बिथके हैं ग्रौव मन मानों थिर के (गीता०)
सींची रहि समुझि प्रेमपय न्यारो (गीता०)
मन मानि मलानि कुबानि न मूकी
कहाँ रघुबीर सो बीर बियो है (कवित्ता०)
मन्द मति कन्त सुन मन्त म्हाको (कवित्ता०)
काल तोपची तुपक महि दारू अनय कराल (दोहा०)
बिलग न लाई नारि बालक बन तजि दूसरहि (दोहा०)

उपर्युक्त मारवाड़ी शब्दों में से अनेक तो आज भी सोरों आसपास हाथरस, मथुरा में बोले जाते हैं। सोरों और मथुरा में राजपूताने से यात्री आते रहते हैं। कुछ शब्दों का प्रयोग नन्ददासजी ने भी अपनी रचनाओं में किया है। अरबी-फारसी शब्दों के प्रयोग-बाहुल्य से त्रिपाठीजी ने यह अनुमान किया है कि गोस्वामीजी पश्चिमी प्रान्त के निवासी थे।[१] राजापुर पक्ष के समर्थक अपने पक्ष के समर्थन में राजापुर अथवा उसके आस-पास प्रयुक्त होने वाले इन शब्दों का उल्लेख करते हैं कुर पनही, मनुहार, महतारी फरसा कदराहु, किधौं पुचकारे, गोहार कुराई, बिधाता समेटा माहुर, बिराव, इत्यादि।[२] पर 'किधौं' का प्रचुर प्रयोग तो सूरदासजी की रचनाओं में भी है, और पनही महतारी, फरसा ब्याना समेटा पुचकारे का प्रयोग ब्रजभाषा में दिल्ली तक मिलता है। गोस्वामीजी लगभग १६ वर्ष की अवस्था में सोरों को त्याग कर पूर्वी जिलों में परिभ्रमण तथा अयोध्या राजापुर चित्रकूट और काशी में निवास करते रहे। उन्होंने अपनी आयु के लगभग ६६ वर्ष पूर्व में व्यतीत किये। इतने दीर्घ काल में यदि उन्होंने कतिपय अवधी-मैथिली शब्दों को अपना लिया तो क्या आश्चर्य? कुछ विद्वानों के मतानुसार गोस्वामीजी की उपभाषा (इष्टदेव की भाषा) अवधी भले ही हो पर उनकी अपनी भाषा ब्रजी ही थी जिसका उपयोग उन्होंने विनयपत्रिका में अपने हृदय की आत्त भावना को स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त करने में किया है। तर्क के निमित्त यदि उन्हें जन्मतः राजापुर या अयोध्या का मान लिया जाय तो यह आपत्ति हो सकती है कि गोस्वामीजी पश्चिमी प्रान्त में तो कुछ ही समय के लिए पधारे थे वह भी व्रज-यात्रा करने अतएव इतने थोड़े समय में वे मारवाड़ी ब्रजी और अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग कैसे करने लगे? यद्यपि गोस्वामीजी की केवल भाषा यह निर्णय नहीं कर सकती कि वे कहाँ उत्पन्न हुए थे तथापि कारण समष्टि में भाषा का साक्ष्य सहयोग-साधक अवश्य है।[३]

(ङ) गोस्वामीजी का आत्मपरिचय

गोस्वामीजी के कुछ वचन और कूट आत्मपरिचयात्मक समझे जाते हैं जिनका विवरण नवम अध्याय में यथास्थान उपलब्ध है।

---

१ तुलसी और उनका काव्य, पृ० ७९।
२ तुलसीदास माताप्रसाद गुप्त पृ० १२०।
३ अधिक विवेचन के लिए देखिये अध्याय ३ क ख, ग।

(च) पाण्डुलिपियाँ

पण्डित दशरथ शास्त्री[1] एवं उनके शिष्य पण्डित गोविन्दवल्लभ भट्ट को तथा अन्य कतिपय व्यक्तियों को भी कुछ हस्तलिखित पुस्तकें प्राप्त हुई जिनसे तुलसीदास रत्नावली नन्ददास और कृष्णदास की जीवनियों और रचनाओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। ये पुस्तकें मुख्यत एटा और बदायूँ जिलों से प्राप्त हुई थीं और सर्वथा अज्ञात रहीं। सन् १६५६ ई० के फ़रवरी और जून के 'विशाल भारत' में मुझे रत्नावली और नन्ददास पर कुछ लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। तब से हिन्दी-जगत् को विशाल जनता को इनका आभास सर्वप्रथम मिला। उस समय से कतिपय और भी पाण्डुलिपियाँ मेरे देखने में आयी हैं। उन सबका समालोचनात्मक विवरण आगामी अध्याय में दिया जायगा। उसमें जिन हस्त-लिखित पुस्तकों का निर्देश है उनमें से ६ और ७ संख्यक पुस्तकें कासगज के हरगोविन्दजी पण्डा से और ८ संख्यक पुस्तक पं० वैद्यदत्त शर्मा से प्राप्त हुई थी। मुझे तो अन्य सभी का यथेच्छ दर्शन पण्डित भद्रदत्त शर्मा के प्रभूत साहाय्य से हुआ।

(२) बाह्य सामग्री

निम्नलिखित सामग्री ऐसी है जो भारत में यत्र-तत्र बिखरी हुई है और गोस्वामीजी के विषय में सोरों-सामग्री पर प्रकाश डालती अथवा उसका समर्थन करती है, यथा —

(क) नन्ददास का विनय-पद

इस पद में नन्ददासजी ने अपने बड़े भाई तुलसीदासजी की वन्दना की है। इससे प्रतीत होता है कि तुलसीदासजी शेष-सनातन वंश के थे और नन्ददासजी के समय में ही संत-जन उन्हें वाल्मीकि का अवतार कहने लगे थे। 'रामचरितमानस' का बड़ा आदर हो चला था। भगवान् शिव ने उनकी पुस्तक पर 'सही' लिख दिया और भगवान् कृष्ण ने उन्हें भगवान् राम के रूप में दर्शन दिये तथा नन्ददासजी पर तुलसीदासजी का बहुत प्रभाव पड़ा था। पद इस प्रकार है

श्रीमत्तुलसीदास स्व गुरु भ्राता पद बन्दे।
शेष सनातन विपुल ज्ञान जिन पाइ अनन्दे॥
रामचरित जिन कीन्ह तापत्रय कलिमल हारी।
करि पोथी पर सही आदरउ आप पुरारी॥
राखी जिनकी टेक मदन मोहन धनुधारी।
बाल्मीकि अवतार कहत तेहि सन्त प्रचारी॥
नन्ददास के हृदय नयन को खोलेउ सोई।
उज्ज्वल रस टपकाय दियो जानत सब कोई॥

श्री रामचन्द्र वैद्य शास्त्री इस वन्दना को अप्रामाणिक समझते हैं। उन्होंने यह जानकारी प्राप्त की कि यह वन्दना १६८७ वि० में रामायणांक के एक लेख में प्रकाशित हुई जिसे बालकराम विनायक जी ने लिखा था। तदनन्तर 'मानसांक' के मुखपृष्ठ पर

[1] बर्तमान २१ १०-१९६१।

यह कविता प्रकाशित हुई थी। वेदशास्त्री जी की आशंका है कि इस वन्दना में तुलसीदास जी को नन्ददासजी का गुरु-भ्राता 'मूल गोसाईं चरित' के आधार पर लिख मारा है। 'गुरु-भ्राता' का अर्थ है गुरु-भाई अर्थात् गुरुजी का पुत्र जो साथ रहा या पढ़ा हो। दूसरी आपत्ति है 'शेष सनातन' की विद्यमानता पर, क्योंकि 'मूल गोसाईं चरित' में इन्हें तुलसीदासजी का गुरु माना गया है[1]। सोरों-सामग्री के अनुसार शेष और सनातन गोस्वामी के पूर्वज थे और 'गुरु' शब्द का अर्थ है 'बड़ा' और उस समय भी इसका इस अर्थ में प्रयोग प्रचलित रहा है। वन्दना की भाषा भी ब्रजभाषा है। रत्नावली ने भी लखा है

शेष सनातन कुल सुकुल गेह भयौ पिय स्याम।१८।

फिर भी कुछ विद्वानों की धारणा है कि नन्ददास ग्रन्थावली में अनुपलब्ध होने के कारण यह पद अप्रामाणिक है, मुझे भी इस पद पर कोई आग्रह नहीं।

(ख) नाभादासजी की प्रशस्तियाँ

नाभादासजी ने भक्तमाल में तुलसीदासजी और नन्ददासजी पर जो प्रशस्तियाँ लगभग १६६० वि० में लिखीं वे सोरों-सामग्री का समर्थन करती हैं।[2] तुलसी-प्रशस्ति में तुलसीदासजी को वाल्मीकि का अवतार बताया गया है, जिससे नन्ददास जी के उपर्युक्त पद की पुष्टि होती है। वह है

त्रेता काव्य निबन्ध करी शत कोटि रमायन।
इक अक्षर उच्चरै ब्रह्म हत्यादि परायन।
अब भक्तन सुख दैन बहुरि लीला बिस्तारी।
राम-चरन-रस मत्त रहत अह निसि ब्रतधारी।
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लियो।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो॥

इस पर प्रियादास जी ने अनेक छन्दों में टीका की है। एक यह है

तिया सों सनेह बिन पूछे पिता गेह गई।
भूली सुधि देह भजे वाही ठौर आये हैं।
बधू अति लाज भई रिस सौं निकस गई।
प्रीति राम नई तन हाड़ चाम छाये हैं॥

इस छन्द में 'वाही ठौर' को स्पष्ट करते हुए सेवादासजी अपनी टीका में इस प्रकार लिखते हैं

सुनो सखि गेह उमड्यो तिय-सनेह हिय
रत्नावली यहीं हित मन अकुलाये हैं।
नारी को मरम राति चंचला चमकि जाति
जल थल सिन्धु परे भौर बन आये हैं

१ तुलसी सन्दर्भ बनाम अथवा मार्ग विचार १ ८४-८५।
२ वृन्दावन नगरअली।
३ 'हो रहे ब्रज प्रश्न करों' में विश्लेषणात्मक अध्ययन, १ ६।

संसे मैं तुलसी तत सूकर सों मौन जरे
चपल चाल चलत जात मगमार आये हैं।
नाव पै सवार ह्वै पंथमार पार करी
बदरी ससुरारि आय चौरिया बनाये हैं॥

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि पत्नी के पीहर चले जाने पर तुलसीदास जी सूकर-क्षेत्र से गंगाजी पार कर अपनी पत्नी रत्नावली से मिलने ससुराल बदरिया पहुँचे थे। उस समय भादों की अर्द्ध रात्रि थी और मन्द-मन्द वर्षा हो रही थी। नाभाजी ने नन्ददास जी के विषय में भी निम्नलिखित पद्यवी उपस्थित की है

लीला पद रस रीति ग्रन्थ रचना में नागर।
सरस उक्ति युत युक्ति भक्ति रस गान उजागर।
प्रचुर पयधलौं सुजस रामपुर ग्राम निवासी।
सकल सुकुल संवलित भक्त पद रेनु उपासी।
चन्द्रहास अग्रज सुहृद प्रम पय में पगे।
श्री नन्ददास आनन्द निधि रसिक सुप्रभुहित रंग मगे॥

इससे स्पष्ट है कि महाकवि नन्ददास बड़े विद्वान् थे और रामपुर ग्राम के निवासी सुकुल ब्राह्मण तथा चन्द्रहास के बड़े भाई थे। अतएव यह सूचना सोरों-सामग्री के अनुकूल पड़ती है। उक्त पद्यारी के आरम्भ में सेवादास ने लिखा है तुलसीदास जी कही ब्रज में मति जाहु। जब लिखि चुके फिरि आपको आयबो कहां तुलसीदासजा को उत्तर दीयो।

(ग) अष्ट सखामृत

राम भगत तुलसी अनुज नन्ददास व्रजरास।
सुकुल ठमकोढ़िया सुकुल कवि कृष्ण भगत अवदास॥ १
ज्यों राम तें स्याम निज बरनि इष्ट अरु धाम।
रच्यो स्याम तर बादक हरि बसराऊ धाम॥ ३
सौंपि अनुज चन्द्रहास कर सुत दारा धन धाम।
आये सूकर खेत तजि ब्रज बसि सेवत स्याम॥ ४
कृष्ण राम के रूप भए नन्ददास मन मानि।
लखि तुलसी मन बसि रहे प्राण कोटि जुग पानि॥ ७
रामायन भाषा बिरचि भ्राता करी प्रकास।
देखि रच्यो श्री भागवत भाषा श्री नन्ददास॥ ८

प्राचीन कवि के[1] उक्त लेख से स्पष्ट है कि नन्ददासजी रामभक्त तुलसीदासजी के अनुज थे। जाति से सुकुल पाराशरीय सनाढ्य शाण्डिल्य तथा सूकर-क्षेत्रान्तर्गत रामपुर ग्राम के निवासी थे। उनके इष्टदेव पहले राम थे फिर कृष्ण हो गये और उन्होंने कृष्ण-भक्ति के आवेग में अपने ग्राम का नाम भी परिवर्तित कर दिया। सूकरक्षेत्र को

---

१ कृष्णदास सं० २० ० वि १४।

त्याग और घर का सब भार छोटे भाई चन्द्रहास को सौंप वे व्रज में निवास करने लगे। जब देखा कि बड़े भाई तुलसीदासजी ने हिन्दी भाषा में 'रामचरितमानस' लिखा है तो उन्होंने भी भागवत' के भाव का हिन्दी रूपान्तर कर दिया। प्राचीन कवि ने नाभादासजी का अनुमोदन और भी अधिक सूचना के साथ किया है। 'अष्ट सखामृत' की एक प्रति ज्येष्ठ शुक्ला ५ शुक्रवार १८६५ वि० की पं० रामचन्द्र वैद्य गोकुल से प्राप्त है। गणना से यह तिथि १ अप्रैल १८ ८ ई० है। इसकी एक प्रति पौष कृष्णा १० शनिवार सं० १७६७ को गोवर्द्धन में वैष्णव व्यासदास ने की जो अब बम्बई के गोस्वामी गोकुलनाथजी महाराज (बड़ा मन्दिर) के पास है।

(घ) भारतेन्दु का मत

श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जो भक्तमाल लिखा है उसमें नन्ददासजी की इन प्रशस्तियों से प्रकट है कि नन्ददासजी तुलसीदासजी के छोटे भाई एवं श्री विट्ठलनाथजी के सेवक थे और उन्होंने भागवत का भाषानुवाद किया जिसको उन्होंने दुःखी के कहने से और ब्राह्मणों की आजीविका-नाश के भय से जल में प्रवाहित कर दिया।

तुलसीदास के अनुज सदा विट्ठल पदचारी।
अष्टछाप हरि सखा नित्य जेहि प्रिय गिरधारी॥
भाषा में भागवत रचौ अति सरस सुहाई।
पुनि आगे द्विज कथन सुनत जल माँहि डुबाई॥
पंचाध्यायी हठ करि रखी तब पुनमर द्विज भय हरत।
श्री नन्ददास रस रास रत प्रान तज्यो सुधि सो करत।।८०।। उत्तरार्द्ध[1]
श्री तुलसीदास प्रताप तें नीच ऊँच सब हरि भजे
नन्ददास अग्रज द्विज कुल अति शुभ मन मंडित
कवि हरिजन गायक प्रेमी परमारथ पंडित
रामायण रचि राम-भक्ति जग थिर करि राखी
घोरे मैं बहु कह्यो जगत सब साखी साखी
जग जीव दीन हू का कृपा बल न रामचरित हि तजे
श्री तुलसीदास।। १७२[2]

(ङ) वल्लभ वार्ताएँ और वचनामृत

भारतेन्दुजी के 'भक्तमाल' से भी कहीं प्राचीनतर साक्ष्य वैष्णव वार्ताओं और वचनामृतों का है। वार्ताओं में चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ताएँ हैं। वचनामृतों में उल्लेखनीय हैं श्री गोकुलनाथ जी के और श्री वल्लभजी के। इस 'प्रमेयनिधि' के सचय एवं परिवर्धन का श्रेय जहाँ श्री गोकुलनाथजी को दिया जा सकता है, वहाँ उसके वर्गीकरण और सज्जीकरण का श्रेय हरिरायजी महानुभाव

---

१ २ भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा भाग उत्तरार्द्ध भक्तमाल ना० प्र० सभा २ १० वि [illegible] उत्तरार्द्ध भक्तमाल [illegible] रा० सं० श्री [illegible], [illegible], १९९७ हरिश्चन्द्र [illegible] ४१।

को समर्थित होता है।[1] वार्तामृतों से तुलसीदासजी और नन्ददासजी का भ्रातृत्व स्पष्ट है और यह भी विदित होता है कि नन्ददासजी सनाढ्य ब्राह्मण थे और रामपुर नामक ग्राम में जन्मे थे। उक्त वैष्णव साहित्य से आवश्यक उद्धरण नीचे दिए जा रहे हैं —

(१) अष्टछापी वार्ता—श्री गोकुलनाथजी के समकाल की सबसे प्राचीन प्रति विद्या विभाग कांकरौली में उपलब्ध है।[2] चौरासी वैष्णव वार्तान्तर्गत 'गोसाईंजी के सेवक चारि अष्टछापी तिनकी वार्ता' की प्रतिलिपि कृष्णदास नामक सनाढ्य ब्राह्मण ने गोकुल में यमुना तट पर चैत्र सुदी ५ को १६९७ वि० में की थी। इसमें लिखा है "अब श्री गुसाईंजी के सेवक नन्ददास सनौढिया ब्राह्मण तिनके पद गावत हैं सो वे पूर्व में रहते तिनकी वार्ता॥ सो वे नन्ददास और तुलसीदास दोउ भाई हुते॥ तामें बड़े तो तुलसीदास छोटे नन्ददास॥ सो वे नन्ददास पढ़े बहुत हुते॥ और तुलसीदास तो रामानन्दी के सेवक हुते॥ सो नन्ददासजी को हू रामानन्दी के सेवक कीए हुते। सो नन्ददास को तो लौकिक विषे बहुत आसक्ति हुती। सो जो कहूँ भवैया नाचते सो तहाँ जाय देखते॥ और जो कोऊ गावते तहाँ जाइकें सुनते॥ अपनो काम काज छोड़ि के राग रंग सुनते॥ तब बड़े भाई तुलसीदास बहुत समझावते और कहत जो तू कहाँ तहाँ भटकत फिरत है सो आछो नाहीं॥ परि नन्ददासजी मानें नाहीं।" इस अष्टछापी वार्ता के अनुसार तुलसीदासजी बड़े भाई थे और नन्ददासजी छोटे। वे सनाढ्य ब्राह्मण थे नन्ददास बहुत पढ़े-लिखे थे। वे पहले पूर्व में रहते थे। इस 'पूर्व' शब्द को लेकर कुछ लोगों की कल्पना की उड़ान अयोध्या या काशी तक जा पहुँचती है किन्तु सूरदासजी ने गोकुल की गोपियों के द्वारा 'पूर्व' का प्रयोग 'मथुरा' के लिए करवा दिया है 'जब हरि गवन कियो पूरब लौं तब लिखि जोग पठायो।'[3] इस 'पूर्व' का स्पष्टीकरण अन्तर्युक्त एवं बीच के भी कतिपय उद्धरणों तथा विचार-विमर्श में उपलब्ध है।

(२) संवत् १७५१ की 'भाव प्रकाश' वाली वार्ता—यह प्रति परीख द्वारकादास के पास है। इसमें लिखा है "अब श्री गुसाईंजी के सेवक नन्ददासजी सनाढ्य ब्राह्मण रामपुर में रहते जिनके पद अष्टछाप में गावत हैं तिनकी वार्ता। सो वे तुलसीदासजी के भाई सनोढिया ब्राह्मण हते। सो तुलसीदासजी तो बड़े भाई और छोटे भाई नन्ददासजी हैं। सो वे नन्ददासजी पढ़े बहुत हते। और तुलसीदास तो रामानन्दीन के सेवक हुते।

(३) भाव प्रकाश—श्री हरिरायजी (१६४७-१७७२ वि०) ने दो सौ बावन वैष्णव वार्ताओं का सम्पादन किया और यत्र-तत्र भाव को स्पष्ट करने के लिए अपनी ओर से सं० १७२९ के पश्चात् टीका लिखी। नन्ददासजी की वार्ता पर वह टीका इस प्रकार है—

---

१ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता प्रथम खण्ड भूमिका श्री द्वारकादास शास्त्री।
२ वही।
३ भ्रमर गीतसार पद १०४।
४ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, खण्ड १, श्री द्वारकादास शास्त्री।

'अब श्री गुसाईंजी के सेवक नन्ददासजी सनाढ्य ब्राह्मण रामपुर में रहते जिनके पद अष्टछाप में गाइयत है तिनकी वार्ता को भाव कहत हैं :—

भाव प्रकाश—ये नन्ददासजी लीला में श्री ठाकुरजी के 'भोज सखा' अंतरंग तिनको प्राकट्य हैं। सो दिवस की लीला में तो ये 'भोज' सखा हैं, और रात्रि की लीला में श्री चन्द्रावलीजी की सखी 'चन्द्र रेखा' इनको नाम है। सो चन्द्ररेखा 'चंपकलता' तें प्रगटी है। तातें उनके सात्विक भावरूप हैं। सो ये पूरब में 'रामपुर' गाम में जन्मे।'[1]

औरंगजेब के उपद्रव के कारण श्रीनाथजी का देवविग्रह ब्रज से मेवाड़ ले जाया गया था। उसी समय हरिरायजी भी मेवाड़ चले गये। 'भाव प्रकाश' का निर्माण मेवाड़ में हुआ और 'रामपुर' मेवाड़ से पूर्व में है ही।

(४) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता—इसका सम्पादन गोस्वामी हरिरायजी ने १७३० वि० के लगभग किया।[2] इसकी दो सौ इक्यावनवीं वार्ता नन्ददासजी की है और उसमें तुलसीदासजी का भी उल्लेख नन्ददासजी के भाई के नाते अनेक स्थलों पर हुआ है जिससे विदित होता है कि नन्ददासजी और तुलसीदासजी भाई भाई और सनाढ्य ब्राह्मण थे। तुलसीदासजी नन्ददासजी के लिए चिन्तित रहते नन्ददासजी ने उन्हें कृष्णजी के दर्शन भगवान् राम के रूप में कराये। दोनों भाइयों का पत्र व्यवहार बड़ा मनोरम है। 'वार्ता' के आवश्यक उद्धरण इस प्रकार हैं

सो वे तुलसीदासजी के भाई सनोढिया ब्राह्मण हते। सो तुलसीदासजी तो बड़े भाई और छोटे भाई नन्ददासजी हते। सो ये नन्ददासजी पढ़े बहुत हते। तुलसीदासजी रामानंदीन के सेवक हुते। सो नंददास हू कों रामानंदीन को सेवक करायो। उन नंददास कों लौकिक विषय में प्रीति बोहोत हती। जो कहूँ तमासा नाचे तो तहाँ जाय कें ठाड़े रहें सुनवे लगें। सो तुलसीदासजी नन्ददास कों बोहोत समुझावें जो जहाँ तहाँ तू मति बैठ्यो करे। सो वे नन्ददास मानते नाहीं।

'सो कछुक दिन में एक संग पूरब को चल्यो तहां तें श्री रणछोड़जी के दरसन कों श्री द्वारकाजी कों चल्यो। तब नंददास ने मन में विचारी जो बने तो मैं ऐसे संग में श्री रणछोड़जी के दरसन करि आऊँ। तब नन्ददास ने तुलसीदासजी सों कह्यो जो तुम कहो तो मैं या संग में श्री रणछोड़जी के दरसन करि आऊँ। तब तुलसीदासजी ने नन्ददास कों बोहोत समझाये जो कहूँ मति जाय मारग में दुख बोहोत हैं। अनेक दुःसंग हैं। जो जायगो तो तू भ्रष्ट होय जायगो। तातें तू श्री रणछोड़जी ताईं न पहुँच सकेगो बीच ही में रहेगो। तातें श्री रघुनाथजी को स्मरण कर और अपने घर में बैठ्यो रहे। तब नन्ददास ने तुलसीदासजी सों कह्यो जो मेरे तो श्री रघुनाथजी हैं परि मैं एक बार श्री रणछोड़जी के दरसन कों अवश्य करि के आऊँगो। तुम कोटि उपाय करो पर मैं न रहूँगो। तब तुलसीदासजी ने जान्यो जो

---

[1] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पृ १५१ शुद्धाद्वैत एकेडमी कांकरोली।

[2] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता तृतीय खण्ड पृ १२९-३० ; हरिराय-प्रणीत, सम्पादक गो. व्रजभूषण शर्मा और द्वारकादास परीख, प्रकाशक : शुद्धाद्वैत एकेडमी, कांकरोली, प्रथम संस्करण २०१० वि।

यह न रहेगो तब संग में जो मुखिया सिरदार हुतो ताके पास नंददास कों ले के तुलसीदासजी गये। और मुखिया सों नंददासजी की ससामन तुलसीदासजी ने दीनी जो यह नंददास तुम्हारे संग आवत है। तातें तुम मारग में याकी खबरि राखियो। ऐसो करियो जो इहाँ फेरि नंददास आवे काहू गाम में रहि न जाय। तब वा मुखिया ने कह्यो जो आपो या बात की चिन्ता मति करो। ता पाछे वह संग चल्यो सो वाके संग नंददास हू चले ॥ (वार्ता प्रसंग १)

और एक समय श्री मथुराजी को संग पूरब कों चल्यो जयाभाद करिबे कों। ता संग में दस पाँच वैष्णव हू हुते। तब तुलसीदास ने सुन्यो जो संग आयो है। तब वा संग में तुलसीदासजी ने आइ के पूछी वा एक नंददास ब्राह्मन इहाँ तें गयो है सो मथुराजी में रह्यो है। सो तुम ने कहूँ देख्यो होय तो कहो। तब एक वैष्णव ने कही जो तुलसीदासजी एक नंददास तो श्री गुसाईंजी को सेवक भयो है। सो वह नंददास पहले तो अत्यन्त विषयी हुतो सो अब तो बड़ा ही कृपापात्र भगवदीय भयो है। तब तुलसीदासजी अपने मन में विचारे जो ऐसो तो वही नंददास है सो श्री गुसाईंजी को सेवक भयो है। जो अब तो उनको मेरी चिन्ता न रहेगी। तब तुलसीदासजी ने उन वष्णवन सों कह्यो जो मैं तुम कों एक पत्र दऊँ ताको जुवाब तुम मोकों मँगाय देगे? तब उन वैष्णवन ने तुलसीदासजी सों कही जो कातिक मैरो मनुष्य श्री गोकुल को चलेगो। जो तुम को पत्र दनो होय तो लिख के वेगि तैयार करियो। तब तुलसीदासजी ने ताही समै पत्र लिखि के तैयार कियो। तामें लिख्यो जो तू पतिव्रत धर्म छोड़ि व्यभिचार धर्म लियो सो आछो नाहीं कियो। अब तू आवे तो फेरि तोकों पतिव्रत धर्म बताऊँ। सो यह पत्र तुलसीदासजी ने वा वैष्णव के हाथ दियो। सो वह पत्र अपने पत्रन में धरिके वा वैष्णव ने कातिक के हाथ दियो। सो वह पत्र लेके श्री गोकुल आयो। तब कातिक ने दण्डवत् करि के वे पत्र श्री गुसाईंजी के आगे धरे। तब उन पत्रन में नन्ददास के नाम को जो पत्र हुतो सो निकस्यो। तब श्री गुसाईंजी ने वह पत्र बाँचिके नंददास को बुलाय के दियो। तब नंददास ने वह पत्र लेके बाँच्यो। पाछें वा पत्र को प्रति उत्तर लिख्यो जो मेरे तो प्रथम रामचन्द्र जी सों विवाह भयो हुतो। सो बीच में श्री कृष्ण दौरि आइ के लूटि ले गये। सो रामचन्द्रजी में जो बल होतो तो मोकों श्री कृष्ण कैसे ले जाते? और श्री रामचन्द्रजी तो एक पत्नीव्रत हैं। सो दूसरी पत्नी कों कैसे संभार सकेंगे? एक पत्नी हू बराबरि सँभारि न सकें सो रावण हरि के ले गयो। और श्री कृष्ण तो अनन्त ब्रह्मांड के स्वामी हैं और इनकी पत्नी भये पाछें कोई प्रकार को भय रहे नाहीं है। एक कामाबच्छिन्न अनन्त पत्नीन कों सुख देत हैं। जामें मैंने श्री कृष्ण पति कीने हैं। सो जानोगे। सो मैं तो अब तन मन धन यह लोक परलोक सो कृष्ण को दीनो है। (और) अब तो मैं परवस होइ के रह्यों हूँ। ऐसो नंददास ने तुलसीदासजी कों पत्र लिख्यो। तामें एक पद यह लिख्यो। सो पद—

राग आसावरी

कृष्ण नाम जब तें श्रवन सुन्योरी आली भूली री हौं तो बावरी भई री।
भरि भरि आवें नैन चित न परत चैन मुख हू न आवे बैन।

भक्त हित श्री राम कृष्ण जु बर्यो नर अवतार।
दास तुलसी दोउ भ्राता कीउ उबारो पार ॥

ता पाछें तुलसीदासजी ने श्री गोसाईं जी को दंडवत् करि के कह्यो जो महाराज नन्ददास तो पहले बड़ो विषयी हुतो सो अब तो या कों बड़ी अनन्य भक्ति भई है ताको कारन कहा है ? तब श्री गुसाईं जी ने तुलसीदासजी कों कह्यो जो नन्ददास उत्तम पात्र हुते यातें पुष्टिमार्ग में आय कै प्रवृत्त भये। और अब व्यसन अवस्था याकों सिद्ध भई है। सो अब ये दृढ़ भये हैं। तब श्री गुसाईं जी के श्री मुख के वचन सुनिकै तुलसीदासजी प्रसन्न होय श्री गुसाईं जी कों दंडवत् करि कै पाछें आप बिदा होय कासी आये" "॥ (वार्ता प्रसंग ४)

यह वार्ता प्रसंग सं० ४ समय १६२६ वि० का प्रतीत होता है। श्री गोकुलनाथ वचनामृत के अनुसार तुलसीदासजी ने गोस्वामी विट्ठलनाथ के १२ वर्षीय पुत्र रघुनाथ जी को प्रणाम किया था जो १६११ वि० में जन्मे थे। १६२६ वि० के समय नन्ददास जी विरक्त हो कर सूकरक्षेत्र से पुन ब्रज में पधारे। अविनाशराय ने नन्ददास की विरक्ति का संवत् १६२८ दिया है जो संगत नहीं किन्तु जिस से यह अनुमान होता है कि तुलसीदास जी ब्रज में जो बस रहे होंगे। उस समय तक उनकी विशेष ख्याति नहीं हो पायी थी।

सो एक दिन नन्ददास के मन में ऐसी आई, जो जैसे तुलसीदासजी ने रामायण भाषा किये हैं। तैसे हमहू श्री मद्भागवत भाषा करें। पाछें नन्ददास ने श्रीमद्भागवत दसम भाषा संपूरन कियो। तब मथुरा के सब पण्डित मिलिकै श्री गुसाईं जी सों विनती कीनी जो महाराज हम श्रीभागवत की कथा कहि के निरवाह करत हुते। सो तुम्हारे सेवक नन्ददासजी ने भाषा में भागवत कही है। सो अब हमारी कथा कोई न सुनेगो तातें अब हमारी जीविका तो गई। सो अब आपके हाथ उपाय है। तब श्री गुसाईं जी ने नन्ददास को बुलाय कै कह्यो जो नन्ददास तुमने जो श्रीमद्भागवत भाषा में कीनो है सो इन ब्राह्मन की जीविका में हानि होत है। तातें तुम ब्रज लीला तो पंचाध्याई तांई की राखो और श्री जमुनाजी में पधराय देउ। सो नन्ददास ने श्री गुसाईंजी की आज्ञा प्रमान मानि कै ब्रज लीला तांई (भागवत) राखी और सब श्री जमुनाजी में पधराय दीनो। सो वे नन्ददास जी श्री गुसाईं जी के ऐसे आज्ञाकारी और बड़े कृपा पात्र हते ॥ (वार्ता प्रसंग ५) इस प्रसंग संख्या ५ से अनुमान होता है कि जो तुलसीदास 'रामचरितमानस' की पूर्ति के पश्चात् (जो अविनाशराय के अनुसार १६१२ वि० में हुई थी) द्वितीय बार ब्रज में पधारे और नन्ददास जी को 'रामचरितमानस' से 'भागवत' के भाषानुवाद की एवं तुलसीदासजी को 'रुक्मिणीमंगल' से 'पार्वती-जानकी मंगलों' की प्रेरणा मिली। अतएव डॉ० दीनदयालु गुप्त का यह अनुमान कि गोस्वामीजी १६१६ वि० में मथुरा पधारे थे ठीक प्रतीत होता है।[1]

---

१ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ २१८।

५ श्री गोकुलनाथजी के वचनामृत—१७६६ वि की इस हस्तलिखित प्रति से भी तुलसीदासजी और नन्ददासजी के भ्रातृत्व की पुष्टि होती है। लेख है—

एक बार श्री गुसांई बालक प्रसंग पाखण्डारी जो तुलसीदास मर्यादा मार्गी हुते। पर टेक कैसी हुती ते ऊपर दोहो कह्यो॥ दोहा॥ बनें तौ रघुबर ते बनें। बिगरें तो भरपूर॥ तुलसी औरन के बनें ता बनिबे में धूर॥ १॥ जीव कों सर्वथा अनन्यता चाहिये। ते तुलसीदास श्री गोकुल आये हुते॥ ता दिन श्री रघुनाथ जी को बिवाह हुतो॥ सो ठौर ठौर आनन्द होय रह्यौ हुतो॥ तब तुलसीदासजी नें पूछो जो कहा है॥ ठौर ठौर, आनन्द दीसत है॥ तब कोई व्रजवासी बाल्यो॥ जो आजें माही जो श्री रघुनाथ जी को बिवाह है॥ तब तुलसीदास नें कही जो कौन से बिवाह है श्री रघुनाथजी को॥ तब व्रजवासी नें कह्यो जो श्री जानकीजी सौं बिवाह है॥ सो तुलसीदास श्री रघुनाथ जी और जानकी जी को नाम सुनिके विह्वल है गये॥ कहाँ श्री रघुनाथ और जानकी कहाँ॥ तब काहू व्रजवासी नें श्री गुसांई जी को घर बतायो॥ सो उहाँ चले आये तब श्री गुसाईं जी नें श्री रघुनाथ जी सों कह्यो देखियो जो तुलसीदास आवत है तिन को अनन्य व्रत न जाय॥ तब श्री रघुनाथ जी नें तुलसीदास कों श्री रामचन्द्र जी के दरसन दीय॥ तब दर्शन होत मात्र साष्टांग दंडवत कीये॥ ता समै श्री रघुनाथ जी बरस पाँच के हुते॥ सो पचीस बरस की बात श्री रघुनाथ जी नें तुलसीदास कों श्री रामचन्द्र जी के दरसन दीये॥ तब दरसन होत मात्र साष्टांग दण्डवत् कीये॥ श्री रघुनाथ जी नें तुलसीदास सों कहीं॥ जो पर्जाने पर्जानि बिन अपुण्या म हैनें हम कों सामिग्री समर्पी हुती सो तो की इहाँ है है तब तुलसीदास बिस्मै होय गये॥ कह्यो जो मैं आजों परम तत्व जानत हो॥ सो तो श्री गुसांई जी के घर सहज ही दर्शन भए॥ तब एक बधाई करि कैं गाई॥ बरनौं प्रथम गोकुल गाम॥ नंददास की अन्य काव्य बारे सो तुलसीदास के छोटे भाई॥ तुलसीदास बड़े भाई॥ सो नंददास जी जब श्री गुसांई जी के सेवक भए॥ तब तुलसीदास नें कह्यो॥ भाई तम बिमीचार कीयो॥ तब नंददास जी नें कह्यो॥ बिमीचार तौ कियो परतु सुख बहुत पायो॥ २१॥ (पृष्ठ ५१ ५२)।[१]

६ श्री काका बल्लभजी महाराज का साक्ष्य—(क) इन महाराज का प्रादुर्भाव संवत् १७ १ वि० है।[२] इन्होंने अपने पचासवें वचनामृत में गोस्वामी तुलसीदास और नन्ददास का उल्लेख किया है उस से भी दोनों के भ्रातृत्व की प्रबल पुष्टि होती है—

'जो मर्यादा मार्ग में श्री रामचन्द्र जी के भक्त तुलसीदास बहोत बड़े कवीश्वर हुते ताके अनेक पद हैं। रामायण ग्रन्थ पदबन्ध कवित्त बन्ध चौपाई बन्ध ऐसे अनेक कीने हैं उन के भाई नन्ददास जी बहोत विषयी हुते श्री गोकुल आये के श्री गुसांई जी की सरन आये और अष्ट छाप में प्रख्यात भये पिछ तुलसीदासजी

१ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में प्रकाशित श्री गोकुल नाथ जी वचनामृत के अंक ५१ ५२ और ५ से उद्धरण प्रकरण। गुजराती हस्तलिखित कांकरोली।

२ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता खण्ड १, प्रथम संस्करण (विद्या विभाग काँकरोली) पृ० ७।

माई की खबर लेवे व्रज में आये। सो एती राम उपासी हते और व्रज में तो सब ठिकाने कृष्ण कृष्ण की धुनि सुनी। तब तुलसीदास ने एक साखी कही पाछे माई सों मिले तब कह्यो जो तैंने व्यभिचार धर्म क्यों कीनो अपने प्रभुन को छोड़ि अन्य धर्म के आचरन क्यों करत है। अब पिछों चालि" ॥

(ख) काका वल्लभजी महाराज ने भगवदीय नाम भक्तिमाला' लगभग पौने तीन सौ वर्ष पूर्व लिखी, जिसमें २५२ वैष्णवों का नामोल्लेख गुजराती दोहों में किया है और इस में नन्ददासजी के विषय में इस प्रकार लिखा है—

नंददास सखा रामपुरी कहीये रे सात्विक चंपकलता सखीना लहीये रे[1] ॥३ ८॥
स्पष्टत: नन्ददासजी के जन्म-स्थान रामपुर का उल्लेख कर महाराजजी ने 'अष्टसखा मृत' 'भाव प्रकाश' आदि की सूचनाओं का समर्थन किया है।

वार्ता-प्रामाण्य—भगवान् कृष्ण ने तुलसीदासजी को भगवान् राम के रूप में दर्शन दिये। किस की इच्छा से? कहते हैं कि जब मथुरवों ने तुलसीदासजी की खिल्ली उड़ाई कि तुम रामभक्त होकर कृष्णजी के दर्शन करने क्यों आये तो तुलसीदासजी भी अड़ गये और कृष्णजी को उनकी हठ पूरी करनी पड़ी भक्तवत्सल तो वे ही। स्यात् तथ्य यही हो जो वार्ताओं और जनश्रुतों में किंचित् फेर से है अर्थात् नन्ददासजी की भावना से कृष्णजी ने तुलसीदासजी को राम के रूप में दर्शन दिये और गोकुलनाथ जी के पुत्र रघुनाथजी और जानकीजी को तुलसीदासजी ने प्रणाम किया इन दोनों बातों में सम्प्रदाय की गंध आ सकती है। एक और तीसरी उक्ति यह है कि महाराष्ट्र के संतजन जसवंत की प्रार्थना पर कृष्णजी ने राम के रूप में तुलसीदासजी को दर्शन दिये।

तीसरी उक्ति असंगत भी है। भगवान् राम की आज्ञा से जसवंतजी तुलसीदासजी को गुरु बनाने पंचवटी से काशी पधारे और उन्होंने गुरु-मन्त्र लिया। कहा जाता है कि इन्होंने अपने गुरु तुलसीदासजी के साथ मथुरा की यात्रा की। मथुरा पहुँच कर जसवंत ने तुलसीदास से श्रीकृष्ण के दर्शन की प्रार्थना की तब तुलसीदास ने कहा—

मेरो नेम सुनो जसवंता मेरो मन और नहिं सुमंता
राम बिना वसूँ नहि कोई राम बिना वसूँ नहि कोई
और नयन धी को वसूँ जाऊँ कर और जो स्यागूँ।

इस पर जसवन्त ने मराठी में उत्तर दिया—

जो राम तो कृष्ण असे, मति काहीं संशय नसे ॥

अर्थात् जो राम है वही कृष्ण है इसमें कुछ भी संशय नहीं। जसवन्त ने यह भी कहा कि मैं आप को श्रीकृष्ण के मंदिर में ही राम के दर्शन कराऊँगा। इतना कह कर जसवंत तुलसीदासजी को कृष्ण मंदिर में ले गए वहाँ जसवंत ने प्रार्थना की—

---

१ वही, आरम्भिक पृ० ६।

मोर मुकुट नीचे परो, (और) किरिट मुकुट धरो सीस।
धनुष बाण करमो धरो (गुरु) तुलसी नमावत सीस॥

जसवन्त की इस भावना पर श्रीकृष्ण और राधाजी ने श्रीराम और सीताजी का रूप धारण कर तुलसीदासजी को दर्शन दिये। इसके पश्चात् गुरु-चेले गोकुल वृन्दावन जगन्नाथपुरी आदि स्थानों के दर्शन कर अयोध्या पहुँचे जहाँ चार महीने रहकर पुनः काशी लौटे। कुछ समय व्यतीत होने पर तुलसीदासजी ने जसवंत को घर लौट जाने की आज्ञा दी साथ ही अपने गले की माला और हनुमान्‌जी की एक मूर्ति प्रदान की, और जसवन्त गुरु-प्रसाद लेकर घर लौट गये।[1] गुरु गुड़ और चेला शक्कर। जसवन्त ने भगवान् राम की आज्ञा से तुलसीदासजी को गुरु बनाया था पर शिक्षा दी शिष्य ने गुरु को। इसको क्या कहा जाय—सम्प्रदाय भावना या आत्मश्लाघा? हाँ यह सम्भव है कि जब गोस्वामीजी मथुरा गये थे तो जसवंत भी उनके साथ रक्षक-रूप में रहे हों।

न जाने वार्ताओं में गुत्थी किसने मिलायी। अस्तु। पं० रामचन्द्र शुक्ल[2] और पं० चन्द्रबली पाण्डे ने[3] वार्ताओं को सन्देह की दृष्टि से देखा है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा को (चौरासी वार्ता को छोड़कर) दो सौ बावन वार्ता के श्रीगोकुलनाथ कृत होने में सन्देह है।[4] किन्तु श्रीद्वारकादास परीख श्रीकण्ठमणि शास्त्री और डा० दीनदयालु गुप्त उसे प्रामाणिक मानते हैं। इन्होंने इसकी प्रामाणिकता के विषय में जो तर्क दिये हैं उनका उल्लेख श्री प्रभुदयाल मित्तल ने कुछ इस प्रकार किया है[5]:—

(१) वार्ताओं की सभी प्रतियों में जो उपलब्ध हुई हैं ऐसा लिखा मिलता है 'श्री गोकुलनाथजी रचित' श्री हरिरायजी कृत'। किसी तीसरे व्यक्ति के नाम का उल्लेख नहीं।

(२) 'चौरासी वार्ता' की जो प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं उनमें ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी सं० १६९७ की लिखी हुई सब से प्राचीन है और कांकरोली विद्याभवन में विद्यमान है। यह प्रति श्री गोकुलनाथजी के तिरोधान होने से एकादश मास पूर्व उनके जीवन काल में लिखी गयी थी अतएव प्रामाणिक है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि ये वार्ताएँ १६९७ वि० तक लिखित रूप में प्रचलित हो चुकी थीं।

(३) 'दो सौ बावन वल्लभ की वार्ता' पर 'भावप्रकाश' नामक टीका भी प्राप्त है। 'भावप्रकाश' को हरिरायजी ने लिखा और हरिरायजी गोकुलनाथजी के बड़े भाई के पौत्र होने के नाते अंतेवासी और समकालीन थे। 'भावप्रकाश' की रचना का अनुमान १७२६ और १७३० वि० के मध्य समझा जाता है। सं० १७५२ की लिखी चौरासी और अष्टसखान की वार्ता की भावना-संयुक्त प्रति पाटन से मिल

---

१ तुलसीदास के महत्त्वपूर्ण शिष्य-संबन्ध जसवन्त डॉ० किशनलाल शर्मा। नागरी प्रचारिणी पत्रिका पृ० १४ संवत् २०११ वर्ष ६० अंक १।

२ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४ १२१।

३ विचार विमर्श में वैष्णवन की वार्ता लेख, पृ० ७५ १३०।

४ हिन्दुस्तानी पत्रिका १९३१ ई०।

५ अष्टछाप परिचय पृ० ५२-५५ अग्रवाल प्रेस मथुरा द्वितीय संस्करण, २००६ वि०।

चुकी है अतएव यह स्वयंसिद्ध है कि १७५२ वि० तक 'भाव प्रकाश' की रचना अवश्य हो गयी थी।

(४) श्री गोकुलनाथजी के समकालीन श्री देवकीनन्दनकृत 'प्रभुचरित चिन्तामणि' में वार्ताओं का उल्लेख है। चौरासी वार्ता का 'संस्कृत मणिमाला' नामक संस्कृतानुवाद उपलब्ध है जो अनुमानतः १७२७ वि० के लगभग रचा गया होगा।

(५) हरिरायजी के शिष्य विट्ठलनाथ भट्ट ने सं० १७२९ में 'सम्प्रदाय कल्पद्रुम' रचा। इसमें गोकुलनाथजी के रचे हुए ग्रन्थों में वार्ताओं का उल्लेख इस प्रकार है—

वचनामृत चौबीस किय वैसी बन गुरुदास।
वल्लभ विट्ठल वारता प्रकट कीन नृप मास॥

इसके अतिरिक्त गोकुलनाथजी के समय में लिखी हुई 'चौरासी वार्ता' की प्राचीन प्रति मिली है। उसमें सं० १७५२ लिखा हुआ है और 'भावप्रकाश' भी प्राप्त है।

"उपर्युक्त विवेचन से वार्ताओं की प्राचीनता और प्रामाणिकता के अतिरिक्त उनका गोकुलनाथजी एवं हरिरायजी द्वारा रचित होना भी सिद्ध है'।[1] अतएव जीवन-वृत्तान्तों के सम्बन्ध में उनका उपयोग होने में आपत्ति न होनी चाहिए। यह माना जा सकता है कि सम्प्रदाय के नाते उनमें नन्ददासजी को तुलसीदासजी की अपेक्षा अधिक महत्त्व प्रदान किया गया हो। किन्तु अब से शताब्दियों पूर्व जबकि तुलसीदास और नन्ददास के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में कोई विवाद उपस्थित न था वार्ताकारों और वचनामृत लिखने वालों को क्या पड़ी थी कि व्यक्तियों की जाति स्थान आदि के विषय में मिथ्या प्रचार करते? ऐसा करने में उनका क्या स्वार्थ था?

(घ) स्फुट समर्थन

'रामचरित मानस' की कतिपय टीकाओं में एवं अन्यत्र कुछ ऐसे वचन विकीर्ण और प्रच्छन्न मिलते हैं जिनसे सोरों-सामग्री की पुष्टि हो जाती है यथा —

(अ) रियासत सरीला जिला हमीरपुर की श्रीमती रानी कमल कुँवरि देवजू ने गोस्वामी तुलसीदास का जीवन चरित लिखा। इसकी १६५२ वि० की छपी हुई प्रति का उल्लेख भी रामनरेश त्रिपाठी ने 'तुलसी और उनका काव्य' के पृ० ४५ पर किया है। रानी ने जीवन चरित चौपाई दोहों में दिया और नन्ददास को तुलसीदास का गुरुभाई लिखा है। 'गुरुभाई' का उल्लेख मिथ्या नहीं क्योंकि तुलसीदास और नन्ददास दोनों ही गुरु नृसिंहजी से पढ़ते थे और ताऊ-चचा-जात भाई भी थे। त्रिपाठीजी ने जो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं वे हैं—

द्विज सनौढ़िया पावन जानौ रामपुर में जन्म बखानौ
संवत् से तैरासी जन्म भयो गुरुजन सोरों सें भ्रमती बरष हो गए अन्तरध्यान।
वनिता से अति प्रेम लगायो नैहर गई सोच उर लायो
सुरसरि पार गये घबराई एक मुरदा की नाव बनाई।

इस उद्धरण में विशेष ध्यान देने की बात यह है कि तुलसीदासजी सनाढ्य ब्राह्मण थे

---

१. अष्टछाप परिचय पृ ६१।

और गंगाजी को पार कर ससुराल गये थे। पर राजापुर में गंगाजी कहाँ ? सरयोग छिपा हुआ है।

(आ) टीकाकार और जीवनीकार (१) रामायण बालकाण्ड १। हर महल हिंदू प्रेस लाला प्यारेलाल के प्रबन्ध से छपी सं० १९२८ वि०। इसमें 'नर रूप हरि' का अर्थ 'नर हरि दास बाराह क्षेत्र निवासी' पृष्ठ ४ पर, और 'सूकर खेत' का अर्थ 'गंगा तीर सोरों घाट यहाँ बाराह अवतार भया' पृष्ठ २६ पर किया गया है।

(२) अलीगपुर-खीरी के पण्डित सीताराम मिश्र ने गोस्वामी तुलसीकृत रामायण की टीका में लिखा है—

'मन्दवास सनोढिया ब्राह्मण तुलसीदास के सोरे माई पूर्व देस के रहने वा थे। गोस्वामीजी का विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या से हुआ था। तारक नाम का पुत्र हुआ था।

(३) श्री सूरजमल अग्रवाल ने 'रामचरित मानस रामायण टीका सहित' में लिखा कि तुलसीदास ने अपना विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या से कर लिया।

(४) पं० रामेश्वर भट्ट ने १९०२ में तुलसीकृत रामायण में लिखा कि दीनबन्धु पाठक ने गुसाईंजी को एक सुयोग्य भक्त जानकर अपनी गुणवती कन्या का विवाह इनके साथ कर दिया।

(५) विद्यावारिधि पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र ने तुलसी-कृत रामायण की अपनी संजीवनी टीका में लिखा कि 'इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ।

(६) पं० बाबूराम मिश्र 'रामचरितमानस सटीक' में लिखते हैं कि 'वे (तुलसीदास) स्मार्त वैष्णव थे।'

(७) इसी प्रकार डॉ० श्यामसुन्दर दास ने इस उक्ति की पुष्टि की कि 'तुलसीदासजी के गुरु स्मार्त वैष्णव थे।

(८) सलीमपुर-खीरी के निवासी और रामायण के टीकाकार पं० नारायण प्रसाद मिश्र के १९१० ई० के वचन हैं कि 'प्रसिद्ध है कि दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से इनका (तुलसीदास का) विवाह हुआ था जिसके तारक नाम का एक पुत्र भी हुआ था।

(९) संवत् १९५५ वि० की ज्ञानसागर प्रेस बम्बई में छपे 'रामचरित मानस' के प्रारम्भ में प्रदत्त जीवन-चरित के पृष्ठ १ और ४२ पर 'सूकर खेत' का अर्थ गंगा किनारे का सोरों किया गया है।

(१०) मानस के अनन्य प्रेमी रायबहादुर लाला सीतारामजी ने तुलसीदास जी को तारी में उत्पन्न सनाढ्य ब्राह्मण माना है[१] यद्यपि तारी की सत्ता के विषय में उनकी धारणा निर्भ्रान्त नहीं रही। महात्मा रूपकलाजी ने भी उनका जन्म तारी में माना है।[२]

---

१ राजापुर का अयोध्याकाण्ड भूमिका।
२ तुलसी० राम्रानेरी हुलस पृ० १।

(११) तुलसी के अनन्य भक्त रामदासजी गौड़ भी गोस्वामीजी को तारी ग्राम समझते थे।

(१२) पण्डित गोविन्द बल्लभ भट्ट ने १९२१ ई० की माधुरी में जो लेख लिखा था उसमें इस बात का उल्लेख है कि 'श्री तुलसी-स्मारक-सभा, राजापुर के एक अधिकारी ने जब इसी जन्म-स्थान के विषय में पत्र-व्यवहार किया, तो उत्तर में उन्होंने प्राइवेट पत्र के साथ इस बात को स्वीकार किया कि गोस्वामीजी का जन्म स्थान सोरों या उसी के आस-पास कहीं होना चाहिए।

(१३) शिवनन्दन सहायजी ने अगस्त १९२१ में 'माधुरी' के २४ वें पृष्ठ पर अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है "जन्म-स्थान के सम्बन्ध में अभी तक ठीक निर्णय नहीं हुआ। राजापुर तथा तारी के बीच झगड़ा है। यद्यपि राजापुर में आपका स्मारक निर्मित हुआ था तथापि वहीं के बड़े बूढ़े लोग कहते हैं कि वह गोसाईंजी का जन्म-स्थान नहीं। विरक्त होने पर वे कुछ दिन वहाँ रहे अवश्य थे और आया जाया करते थे।"

(१४) अब से लगभग वर्ष पचास पूर्व श्री अयोध्याजी प्रमोदवन-कुटिया निवासी श्री सीतारामशरण भगवान् प्रसाद का सटीक वार्तिक प्रकाश युक्त श्री भक्त माल नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से १९१३ ई० में प्रकाशित हुआ। उसके ७४१ वें पृष्ठ पर उन्होंने अपने अनुसन्धान का निष्कर्ष इस प्रकार दिया है

"जन्मस्थान भी लोग कई ठिकाने मिलते हैं। बाँदा जिले में यमुना तीर राजापुर को बहुत लोग कहते हैं परन्तु राजापुर आपका जन्मस्थान नहीं है। श्री गोस्वामीजी का जन्मस्थान श्री गंगावाराह क्षेत्र (सोरों) के प्रान्त अन्तर्वेद में तरी नामक ग्राम या तारी था। आपने राजापुर में विरक्त होने के पीछे निवास कर भजन किया इसी से श्री गोस्वामीजी की विराजमान की हुई संकटमोचन श्री हनुमान् जी की मूर्ति है और श्री रामायण अयोध्याकाण्ड भी है। यह वार्ता वहाँ जा के भली प्रकार निश्चय की है, राजापुर में श्री गोस्वामीजी आज्ञा कर गये हैं कि देव-मंदिर छोड़ अपने रहने को पक्का गृह कोई न बनवावे ऊपर खपड़े ही छवावे और वैसा नहीं बनावे"—इत्यादि।

(घ) विदेशी अनुसंधान—(१) अंग्रेजों ने १८५७ ई० के पश्चात् अपनी राज्य सत्ता को सुदृढ़ करके भारत के विभिन्न स्थान, प्रान्त मंडल जिले आदि के विवरण लेख जनश्रुति आदि के आधार पर प्रस्तुत किये। १८७४ ई० में श्री एट किन टी० एट्किसन ने 'स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्शन एण्ड हिस्टोरिकल एकाउन्ट आॅव द नार्थ प्रोविंस आव इण्डिया' बुन्देलखण्ड जिल्द १ सम्पादित की। १८८६ ई० में डब्लू० डब्लू० हन्टर ने 'इम्पीरियल गजेटियर आॅव इंडिया' जिल्द ११ का सम्पादन किया। १९०८ ई० में 'इम्पीरियल गजेटियर आॅव इंडिया यू० पी० २ प्रोविंशल सीरीज और १९०९ ई० में बाँदा जिले का 'गजेटियर' प्रकाशित हुआ। इन के उपयुक्त उद्धरण अन्यत्र यथास्थान दिये जा चुके हैं, जिनका सार यह है कि सम्राट् अकबर के काल में 'रामचरितमानस' के रचयिता तुलसीदासजी सोरों के निवासी थे, उन्होंने

वहाँ से आकर राजापुर की नींव डाली और जनता को भगवद्भक्ति की ओर प्रेरित किया।

(२) सर ज्यौर्ज ए० ग्रियर्सन ने महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी आदि कतिपय भारतीय विद्वानों के साहाय्य से गोस्वामीजी की जीवनी और रचना पर स्वयं अनुसंधान कर इस ओर भारतीय तथा अभारतीय विद्वानों को प्रेरित किया। उनका अनुमान था कि गोस्वामीजी का जन्मस्थान वह तारी ग्राम था जो अंतर्वेद (दुआब में स्थित है। राजापुर के निकटवाला तारी ग्राम अंतर्वेद में नहीं है परन्तु सोरों के निकट वाला तो है, यही सोरों-सामग्री के अनुसार गोस्वामीजी की ननसाल थी। ग्रियर्सन महोदय की गवेषणा के अनुसार, गोस्वामीजी के पिता आत्माराम माता हुलसी गुरु नृसिंह श्वशुर दीनबन्धु पाठक पत्नी रत्नावली, और पुत्र तारक था जो उन्हीं के समय दिवंगत हो गया था। श्री एफ० एस० ग्राउज ने १८७९ में लिखा कि गोस्वामीजी की शिक्षा सोरों में हुई। तदनन्तर अनेक विदेशी लेखकों ने गोस्वामीजी की जीवनी के सम्बन्ध में इन्हीं दोनों का न्यूनाधिक अनुसरण किया है।

(ज) जनश्रुति

पूर्वी जिलों से प्राप्त निम्नलिखित जनश्रुति है जिसका उल्लेख ग्रियर्सन कर चुके हैं —

दुबे आत्माराम हैं पिता नाम जग जान
माता हुलसी कहत सब तुलसी के गुन खान।
गुरु नरहरि बखान नाम करि गुरु को सुमिरिये साधु
प्रगट नाम नहिं कहत जग कहे होत अपराधु।
दीन बन्धु पाठक कहत ससुर नाम सब कोइ।
रत्नावलि तिय नाम है सुत तारक पद होइ।।

सारों-सामग्री

द्वितीय भाग हस्तलिखित प्रतियों का विवेचन

प्राक्कथन—एटा-जनपद् सिरों से कुछ पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं जिनका उल्लेख सोरों-सामग्री के अंतर्गत होता है। वे गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-चरित पर प्रचुर प्रकाश डालती हैं। अतएव तत्सम्बन्धी चौदह हस्तलिखित पोथियों का समालोचनात्मक विवरण दिया जा रहा है।

(१) रत्नावलीचरित—(क) मुरलीधर चतुर्वेद की प्रति—'रत्नावली चरित' को मुरलीधर चतुर्वेद ने स्वयं अपने हाथ से लिखा है। यह छोटी सी जिल्द है जिस में लेखक की अन्य रचनाएँ भी सम्मिलित हैं। पुस्तक का प्रारम्भ संस्कृत में श्लोक-स्तव से होता है इस के लिखित पूर्व पृष्ठ पर छात्र पंक्तियों का उपयोग हुआ है। अपले पृष्ठ पर भी गणपति और सरस्वतीजी के लिए प्रणति और संस्कृत में तुलसीदासजी के लिए प्रशस्ति है। तत्पश्चात् १०॥ पृष्ठों १०१ पंक्तियों एवं १६१ हिन्दी-पद्यों में रत्नावली का जीवन चरित है। फिर छः छप्पय हैं जिन में से दो में भी तुलसीदास और नन्ददासजी के जन्मस्थानादि का उल्लेख है तीन में चतुर्वेदजी के जन्मस्थान सूकरक्षेत्र की महिमा है, और अन्तिम में उनकी वृद्धावस्था का वर्णन तथा आयु के ८१ वें वर्ष में प्रवेश का उल्लेख है। छप्पय-षट्क में १८ पंक्तियाँ हैं। तत्पश्चात् दस पंक्तियों में कृष्णदासकृत वंशावली के दस दोहे हैं।

अन्त में छप्पय चतुष्टय में वर्ष के बार और इष्ट से कटोपल निकालने की क्रिया का वर्णन है। साथ ही चतुर्वेदजी ने कार्तिक शुक्ला १० बुधवार संवत् १८२६ को अपने ८१वें वर्ष में जो प्रवेश किया उस का लग्नचक्र और पंचवर्गी चक्र, तथा चन्द्र-गणना के सम्बन्ध में संस्कृत की दो पंक्तियाँ दी गयी हैं।

यह पुस्तक सिली हुई तथा कत्थई रंग के देशी कपड़े की जिल्द से युक्त है। इसमें दस पत्र और अठारह लिखित पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ का आकार ८.६×५.० इंच और लिखित अंश ६.७×३.१ इंच है। सामान्यतः प्रत्येक पृष्ठ में १० पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में १६ शब्द हैं। आदि और अन्त वेदिका से वर्जित हैं। आद्यन्त पृष्ठों को छोड़कर सभी पर एक एक काली रेखा के दो हाशिए हैं। कागज देशी और टिकाऊ तथा मसि काली और चमकीली है। यद्यपि पुस्तक भले प्रकार रखी हुई प्रतीत होती है तथापि उस पर काल की छाप और दीमक के कुछ छिद्र लक्षित होते हैं। इसकी वर्तमान दशा बुरी नहीं कही जा सकती।

लिपि देवनागरी है और अपने समय की अन्य लिपि के समान है। 'ख' के स्थान पर 'ष' का प्रयोग हुआ है पर संस्कृत-शब्दों में 'ख' का भी। अधिकांश अक्षर आकर्षक हैं किन्तु निम्नलिखित अक्षरों के रूप विशेषतः द्रष्टव्य हैं र, ६, ग, च और म्म। शब्द परस्पर सटे हुए हैं उनमें व्यवधान नहीं। विराम-चिह्न

लिखित है—छपाकी नहीं पाई और नहीं पाई का चुन। जहाँ-जहाँ कोई अक्षर अथवा शब्द छूट गया है वहाँ हंसपद (काकपद) का प्रयोग हुआ है और छूटा हुआ अक्षर ऊपर हाशिए पर लिख दिया गया है।

रत्नावली का संस्कृत के महाकवि भवदत्त का रूपान्तर किया गया है। 'रत्नावली चरित' में जो छन्द प्रयुक्त है वह प्रायः विष्णुपद सवैया है। छन्द का भी प्रयोग हुआ है। चरित की भाषा ब्रजभाषा है पर छन्दों की ब्रजभाषा का निखरा रूप और स्वाभाविक है।

पुष्पिका केवल 'रत्नावली चरित' में विद्यमान है। वह इस प्रकार है: 'इति श्री रत्नावली चरित संपूर्णम् शुभम्। संवत् १८०६ श्रावण सुदि १ प्रतिपदायाम् गुरुवासरे लिखितम् चतुर्वेद मुरलीधरेण सोरों क्षेत्र पठनार्थम्। पत्रिका में उक्त तिथि का ११ जुलाई १७७२ ई० अंकित है।

(ख) रामबल्लभ की प्रति—उक्त 'रत्नावली चरित' की प्रतिलिपि 'रत्नावली' शीर्षक से भी उपलब्ध है। पुष्पिका में लिखित है कि मुरलीधर चतुर्वेद के शिष्य रामबल्लभ मिश्र ने सोरों में मार्गशीर्ष कृष्णा ६ रविवार १८६४ वि० तदनुसार ९ दिसम्बर १८०७ को यह प्रतिलिपि प्रस्तुत की थी। तिथि-वार गणना से ठीक है।

पाण्डुलिपि में ६ पत्र अथवा १२ पृष्ठ हैं जिनमें एक कोरा पृष्ठ भी सम्मिलित है। पृष्ठ का आकार है ६.०" × ६.५ इंच और लिखित भाग है ५.२ × ५.७ इंच। सामान्यतया प्रत्येक पृष्ठ में ११ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में ६ शब्द हैं।

पत्र देशी और मोटे कागज के हैं। किनारे घिसे हुए हैं। प्रारम्भिक प्रति पुष्पिकाएँ तथा छन्दसंख्या एवं विराम चिह्नों के निमित्त लाल स्याही का प्रयोग हुआ है। बीच के पृष्ठ पर विराम नहीं है। सभी पृष्ठों पर दो विशेषताओं के हाशिए हैं।

देवनागरी लिपि सुवाच्य है। इसके अक्षर स्पष्ट और सुन्दर हैं यद्यपि कहीं-कहीं अस्पष्ट भी हैं। लिपिकार ने मूल प्रति के ए, ऐ, ओ, औ, श, ष को ए, स कर, स्व कहीं-कहीं वर्तनी में परिवर्तन कर दिया है। कुछ अक्षर ऐसे हैं जो सन्धि नहीं। कहीं-कहीं 'इ' का 'ए' में कर दिया गया है यथा …। 'ष' को 'ख' कर दिया गया है जो तत्कालीन परिपाटी के विरुद्ध प्रतीत होता है। यद्यपि 'ष' और 'ख' का इसमें व्यवहार कम है, क्योंकि 'ष' का 'स' लिखा गया है।

यह पुस्तक पण्डित श्री … सोरों निवासी के पास थी। शिष्य पण्डित कृष्ण बिहारी शास्त्री का उपलब्धि से मुझे १० मई १९६३ वि० तदनुसार २० जनवरी १९३७ ई० को प्राप्त हुई।

यह बात स्पष्ट देखने योग्य है कि शिष्य ने गुरुदेव की कृति पर अपना नाम बनाने की प्रवृत्ति भी है। पहली से स्पष्ट है कि लिखा जा चुका है परिवर्तन किया गया। लिपिकार ने २१वीं पंक्ति का पाठ बदल दिया। गुरु देवता-स्तुति छन्द लिखना भूल गया है। यही नहीं शिष्य ने मंगल के छन्द तथा गुरुदेव के वन्दना छन्दों को भी छोड़ दिया। इससे ऐसा प्रतीत होता है? उन्होंने गुरुओं के पूर्व वन्दन और मंगल छन्दों को काट कर लिखे और उनका

सोरों-सामग्री

द्वितीय भाग हस्तलिखित प्रतियों का विवेचन

प्राक्कथन—एटा-जनपद् निवासी से कुछ पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनका उल्लेख सोरों-सामग्री के अंतर्गत होता है। ये गोस्वामी तुलसीदास के जीवन चरित पर प्रचुर प्रकाश डालती हैं। अतएव तत्सम्बन्धी चौदह हस्तलिखित पोथियों का समालोचनात्मक विवरण दिया जा रहा है।

(१) रत्नावलीचरित—(क) मुरलीधर चतुर्वेद की प्रति—'रत्नावली चरित' को मुरलीधर चतुर्वेद ने स्वयं अपने हाथ से लिखा है। यह छोटी सी जिल्द है जिस में लेखक की अन्य रचनाएँ भी सम्मिलित हैं। पुस्तक का प्रारम्भ संस्कृत में गणेश-स्तव से होता है इस के निमित्त पूर्ण पृष्ठ पर सात पंक्तियों का उपयोग हुआ है। अगले पृष्ठ पर भी गणपति और सरस्वतीजी के लिए प्रशस्ति और संस्कृत में तुलसीदासजी के लिए प्रशस्ति है। तत्पश्चात् १०॥ पृष्ठों १०१ पंक्तियों एवं १६२ हिन्दी-पद्यों में रत्नावली का जीवन-चरित है। फिर छः छप्पय हैं जिन में से दो में तो तुलसीदास और नन्ददासजी के जन्मस्थानादि का उल्लेख है तीन में चतुर्वेदजी के जन्मस्थान सूकरक्षेत्र की महिमा है और अन्तिम में उनकी जरावस्था का वर्णन तथा आयु के ८१ वें वर्ष में प्रवेश का उल्लेख है। छप्पय षट्क में १८ पंक्तियाँ हैं। तत्पश्चात् दस पंक्तियों में कृष्णदासकृत पंचाध्यायी के दस दोहे हैं।

अन्त में छप्पय-चतुष्टय में वर्ष के वार और इष्ट के अहीपल निकालने की क्रिया का वर्णन है। साथ ही चतुर्वेदजी ने कार्तिक शुक्ला १० बुधवार संवत् १८९९ को अपने ८१वें वर्ष में जो प्रवेश किया उस का जन्मचक्र और पंचवर्षी चक्र तथा चक्र-गणना के सम्बन्ध में संस्कृत की दो पंक्तियाँ दी गयी हैं।

यह पुस्तक सिली हुई तथा कत्थई रंग के देशी कपड़े की जिल्द से युक्त है। इसमें दस पत्र और अठारह लिखित पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ का आकार ८६×५० इंच और लिखित अंश ६७×११ इंच है। सामान्यतः प्रत्येक पृष्ठ में १० पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में १६ शब्द हैं। आदि और अन्त अवैरिक से वर्जित हैं। आद्यन्त पृष्ठों को छोड़कर सभी पर एक एक काली रेखा के दो हाशिए हैं। कागज देशी और टिकाऊ, तथा मसि काली और चमकीली है। यद्यपि पुस्तक भले प्रकार रखी हुई प्रतीत होती है तथापि उस पर काल की छाप और दीमक के कुछ चिह्न लक्षित होते हैं। इसकी वर्तमान दशा बुरी नहीं कही जा सकती।

लिपि देवनागरी है और अपने समय की अन्य लिपि के समान है। 'ष' के स्थान पर 'ख' का प्रयोग हुआ है पर संस्कृत-शब्दों में 'ष' का भी। अधिकांश अक्षर आकर्षक हैं किन्तु निम्नलिखित अक्षरों के रूप विशेषतः द्रष्टव्य हैं ट, ड, भ ष और ष्प। शब्द परस्पर सटे हुए हैं उनमें व्यवधान नहीं। विराम-चिह्न

लिखित है—एकाकी खड़ी पाई और खड़ी पाई का युग्म। जहाँ-कहीं कोई अक्षर अथवा शब्द छूट गया है वहाँ हंसपद (केरेट) का प्रयोग हुआ है और छूटा हुआ शब्द ऊपर उसके ऊपर लिख दिया गया है।

मंगलस्तव तो संस्कृत के महाकवि जयदेव का स्मरण दिलाता है। 'रत्नावली चरित' में जो छन्द प्रयुक्त है वह लघु किन्तु सप्रवाह है। छप्पय का भी उपयोग हुआ है। चरित की भाषा ब्रजभाषा है पर छप्पयों की ब्रजभाषा जो नितान्त सरल और स्वाभाविक है।

पुष्पिका केवल 'रत्नावली चरित' में विद्यमान है। वह इस प्रकार है इति श्री रत्नावली चरितं संपूर्णम् शुभम्। संवत् १८२९ श्रावण शुक्ल १ प्रतिपदायाम् शुक्र वासरे लिखितम् चतुर्वेद मुरलीधरेण सोरों क्षेत्र शुभ भवतु'। परीक्षा से उक्त तिथि को ११ जुलाई १७७२ ई० संगत है।

(ख) रामवल्लभ की प्रति—उक्त 'रत्नावली चरित' की प्रतिलिपि 'रत्नावली' शीर्षक से भी उपलब्ध है। पुष्पिका से विदित है कि मुरलीधर चतुर्वेद के शिष्य रामवल्लभ मिश्र ने सोरों में माघपौषे शुक्ला ६ शनिवार १८६४ वि० तदनुसार ५ दिसम्बर १८०७ को यह प्रतिलिपि प्रस्तुत की थी। तिथि-वार गणना से ठीक है।

पाण्डुलिपि में ६ पत्र अथवा १७ पृष्ठ हैं जिनमें एक शीर्षक पृष्ठ भी सम्मिलित है। पृष्ठ का आकार है ८.० इंच×६.२ इंच और लिखित भाग है ६.५×१.७ इंच। सामान्यतया प्रत्येक पृष्ठ में ११ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में ६ शब्द हैं।

पत्र मैले और मसि मलिन हैं। किनारे घिसे हुए हैं। आरम्भिक प्रशस्ति पुष्पिकांश तथा अधिकांशतः इस विराम चिह्नों के निमित्त रक्तमसि का प्रयोग हुआ है। बीच के पृष्ठ पर विराम नहीं हैं। सभी पृष्ठों पर रक्त रेखाओं के दो-दो हाशिए हैं।

देवनागरी लिपि सुवाच्य है। प्रत्येक अक्षर स्पष्ट और अलग है यद्यपि शब्द परस्पर संलग्न हैं। लिपिकार ने मूल प्रति के द ध ज्ञ क्ष ल स्व को छ, सु प्य ट, लव आदि कोमल ध्वनियों में परिवर्तित कर लिया है। कुछ अपवाद भी हैं जो अधिक नहीं। बहुधा मूल 'ष' को 'ख' में कर दिया गया है यथा पाइ—पाय। प्राय 'ष' को 'ख' कर दिया गया है जो तत्कालीन परिपाटी के विरुद्ध प्रतीत होता है। यद्यपि 'ष' और 'ख' तो उसने आधुनिक रूप में हैं तथापि 'षु' को रु लिखा गया है।

यह पुस्तक अलीगढ़ की तहसील सिकन्दरा राउ के अन्तर्गत पोरहा खास ग्राम के निवासी पण्डित युगल किशोर पोद्दार को उदैमरी ग्राम से माघ शुक्ला १० सं० १९६३ वि० तदनुसार २० फरवरी १९१७ ई० को प्राप्त हुई।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि शिष्य ने गुरुदेव की कृति पर कलम चलाने की असम्य धृष्टता की है। पाठों में जैसा कि निर्देश किया जा चुका है परिवर्तन किया गया। लिपिकार मूल प्रति की १२वीं पंक्ति को अर्थात् चरन सरन रज जासु कोइ। परस देहुजन रहित होइ' लिखना भूल गया है। यही नहीं शिष्य ने संस्कृत के छन्द तथा गुरुदेव के कतिपय छप्पयों को भी छोड़ दिया। भूल से अथवा जानबूझकर ? उन्होंने गुरुजी के तृतीय चतुर्थ और पंचम छप्पय तो ग्रहण कर लिये और प्रथम

द्वितीय तथा षष्ठ छोड़ दिये। षष्ठ का सम्बन्ध गुरुदेव के व्यक्तिगत जीवन से था अतः वह कदाचित् शिष्य को अग्राह्य रहा। अस्तु। किन्तु प्रथम और द्वितीय छप्पय शिष्य को क्यों अग्राह्य हुए? स्यात् इसलिए कि लिपिकार को गोस्वामीजी की अपेक्षा सोरों के माहात्म्य में अधिक रुचि थी, पर कहीं इसलिए तो नहीं कि रामपुर का उल्लेख उसकी समझ में सोरों की अभीष्ट महत्ता को, अतएव पण्डाओं की आय को भी कुछ न कुछ कम कर देने की आशंका प्रदान करता हो।

ब्राह्मणों की आजीविका-नाश के भय से नन्ददासजी को भागवत का अनुवाद रोक देना पड़ा और रामायण को हिन्दी में उपस्थित करने के कारण गोस्वामीजी को कष्ट सहना पड़ा था। अतएव रामवल्लभ मिश्रजी अपनी 'दूर-दर्शिता' से प्रेरित प्रतीत होते हैं।

(२) रत्नावली के दोहे—रत्नावली के दोहों के दो संस्करण हैं अर्थात् रत्ना समीकृत—'दोहा रत्नावली' और 'रत्नावली लघु दोहा संग्रह'। पहले की दो प्रतियाँ और दूसरे की भी दो प्रतियाँ उपलब्ध हैं जिनका परिचय नीचे दिया जा रहा है —

(क) गोपालदास की प्रति—'दोहा रत्नावली'—यह रत्नावली के २०१ दोहों का संग्रह है। पुष्पिका के अनुसार गोपालदास ने मुंशी माधोराय के लिए इसकी प्रतिलिपि भाद्रपद अमावस्या सोमवार १८२४ वि॰ अर्थात् २४ अगस्त १७६७ ई॰ को पूर्ण की। गणना से यह तिथि ठीक है। पुष्पिका के नीचे उर्दू में लिखा है कि मुंशी माधोराय इस प्रति के स्वामी थे जो जाति के सक्सेना कायस्थ एवं बदायूँ नगर के निवासी थे। यह प्रति बदायूँ के पं॰ शिवनारायण (लल्ला) वैद्यराज से बाबू गयाप्रसाद गुप्त को प्राप्त हुई थी।

इसमें १६ पत्र अथवा ३० पृष्ठ हैं जिनमें आवरण-पृष्ठ भी सम्मिलित हैं। श्वेत और टिकाऊ कागज के बने प्रत्येक पत्र का नाप है ८१ इंच × ६१ इंच और लिखितांश है ६ ५ इंच × ४१ इंच। प्रत्येक पृष्ठ में १२ पंक्तियाँ और दो रक्त रेखाओं के दो-दो हाशिए हैं तथा प्रत्येक पंक्ति में ६ अक्षर हैं। मंगलाचरण पुष्पिकादि एवं विराम-चिह्न चमकीली लाल मसि के हैं शेष पुस्तक चमकीली काली मसि में है। प्रति की दशा बुरी नहीं है। लिपि देवनागरी स्पष्ट है जिसका प्रत्येक अक्षर पृथक है यद्यपि शब्द व्यवधान रहित हैं अक्षरों की शिरोरेखाएँ ऊर्मिल हैं। कुछ अक्षरों की बनावट जटिल अथवा आकर्षक है यथा ब म त झ प ठ ङ की। ध्यानाकर्षक बात यह है कि पृष्ठ ७ में शिरोरेखा पर विलोम हंसपद विद्यमान है और छूटा हुआ अंश हाशिए पर लिखा गया है।

(ख) गंगाधर की प्रति—'दोहा रत्नावली'—दो-सौ एक दोहों के संग्रह की यह प्रतिलिपि गंगाधर ब्राह्मण ने की। इसकी पुष्पिका है "इति श्री लालपी रत्नावली की दोहा रत्नावली संपूरनम् शुभम् सम्वत् १८२९ भादौं सुदि ९ बारे लिखितम् गंगाधर ब्राह्मण शोग मारग समीपे बाराह क्षेत्रे श्रीरस्तु शुभमस्तु।" उक्त तिथि शुद्ध है यह ११ अगस्त १७७२ ई॰ को पड़ी थी।

इस पाण्डुलिपि में १० पत्र अथवा १८ पृष्ठ हैं। मुख पृष्ठ पर कुछ वर्ष हुए स्टेन्सर कागज सुरक्षा के निमित्त चिपका दिया गया था। प्रति में देशी टिकाऊ कागज

का उपयोग हुआ है। इसकी दशा बुरी नहीं है। प्रत्येक पृष्ठ पर दोनों ओर दो-दो रेखाओं के हाशिए हैं। विराम-चिह्नों के तथा कतिपय हाशियों की रेखाओं के निमित्त कदाचित् पीछे से लाल मसि का भी प्रयोग हुआ है किन्तु वह इतनी फीकी हो गई है कि काली सी प्रतीत होती है और काली भी फीकी पड़ गई है। मंगलाचरण एवं पुष्पिका गैरिक से वर्जित है।

पत्र का आकार ९ ६ इंच×६ ३ इंच और लिखितांश का ८ इंच×४ ३ इंच है। प्रत्येक पृष्ठ में लगभग १२ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में लगभग १४ अक्षर हैं। अन्तिम पृष्ठ पर पुष्पिका के पश्चात् लाल-सी मसि से किन्तु भिन्न सुलेख में मुरलीधर चतुर्वेद-कृत संस्कृत छन्दों में तुलसीदासजी की प्रशस्ति है। इसे (मोहल्ला चौसठ सोरों के निवासी) पं० रामस्वरूप निमेरिया ने अपने कागजों में से ढूँढकर प्रदान किया। इन्हीं से अयोध्या काण्ड और सुन्दर काण्ड के भी कुछ अंश चैत्र कृष्णा ११ गुरुवार तदनुसार १६ मार्च १९५० को मिले।

देवनागरी लिपि अशुद्ध है किन्तु पर्याप्त रूप से पढ़ी जा सकती है। शब्दाक्षर परस्पर सटे हुए हैं। लिपिकार ने थकार और उकार की पुच्छों को बहुत बढ़ाया है जो पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं।

यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि लिपिकार ने रत्नावली के ४२वें दोहे के द्वितीय चरण को अशुद्ध पढ़ा। उसने दक्षिण हाशिए पर 'ससि' शब्द के 'सि' के लिए 'सी' लिखा है। प्रतीत होता है कि उसे स्वयं दोहे के संवत् का निश्चय करने में सन्देह रहा होगा और ऐसा ही सन्देह उसके पाठकों को भी। किसी पाठक ने तो कदाचित् उसे शोधने के निमित्त पकार को फकार में परिवर्तित करना भी चाहा हो कुछ सावधानी एवं संकोच के साथ क्योंकि 'फर' का कुछ अर्थ नहीं निकलता। मसि से प्रतीत होता है कि फकार की पुच्छ पीछे की बनी है। यदि पकार को फकार में परिवर्तित कर दिया जाय तो संवत् १६२४ का अर्थ भासित होने लगेगा। पर यह संवत् ठीक नहीं। गोपालदास का वास्तविक पाठ शुद्ध है जो इस प्रकार है

सागर प रस ससी रतन
संवत भो दुखदाइ
पिय वियोग जननी मरन
करन न भूल्यो जाइ ॥४२॥

यहाँ ससी=१ रस=६ प=० और सागर=४ अतएव गोस्वामी तुलसीदास के गृह-त्याग का संवत् १६०४ वि० था।

(घ) रामचन्द्र की प्रति— 'रत्नावली लघु दोहा संग्रह'—अर्थात् रत्नावली के बनाये १११ दोहों का छोटा संग्रह। इसकी प्रतिलिपि बदरिया ग्राम में पंडित रामचन्द्र ने पौष कृष्णा ११ शुक्रवार १८७४ वि० को की।

इस प्रति में १२ पत्र अथवा २४ पृष्ठ हैं जिनमें से अन्तिम तो कोरा है और प्रथम मुखपृष्ठ है जिस पर कहते हैं मंगलरामजी शर्मा के हाथ से लिखा है 'दोहा रत्नावली और संवत् १९२५ वि० भी पड़ा है। लिपि देवनागरी है।

पत्र दरी और टिकाऊ है जिसका आकार ६ १ इंच×६ ३ इंच और पृष्ठ

का लिखितांश है ४·१ इंच×४·० इंच। पृष्ठ में लगभग ११ पंक्तियाँ और पंक्ति में लगभग ८ शब्द हैं। कुछ पत्रों को दीमक ने भेद डाला है अन्यथा प्रति की अवस्था ठीक है। पुष्पिका के कुछ भाग और दोहों की संख्याओं को पेंसिल से रंग दिया गया है।

इस प्रति के विषय में तीन आपत्तियाँ उपस्थित हैं। प्रथमतः इसकी लिखावट सुन्दर पर आधुनिक है। प्रत्येक पृष्ठ के हाशियों पर रक्ताभित मसि से चारों ओर बेलबूटे बनाये गये हैं जिनसे पुरातत्त्व के कलाकार रा० ब० काशीनाथ नारायण दीक्षित को इसके तत्कालीन होने में सन्देह हुआ था। द्वितीयतः यद्यपि प्रारम्भिक शब्दावली 'अथ रामावली कृत दोहा लिष्यते' में खकार के स्थान में षकार विद्यमान है तथापि पीछे अनेक स्थलों में खकार खकार ही लिखा गया है जो तत्कालीन तथा तत्स्थानीय प्रथा के विरुद्ध था। तृतीयतः जिस तिथि को यह प्रतिलिपि समाप्त हुई वह गणना से अशुद्ध है क्योंकि उस दिन शुक्रवार नहीं सोमवार था। अतएव यह प्रति अमान्य है।

(घ) ईश्वरनाथ की प्रति—'रामावली लघु संग्रह'—की एक और प्रति है जिसमें १११ दोहे हैं। लिपिकार हैं ईश्वरनाथ पंडित। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है इति श्री रामावली लघु दोहा संग्रिह सम्पूरनम् ॥लिषितम् ईसुरनाथ पंडीत सोरों की मिती माह सुदी तेरषि ११ सोमवार सवतु १८७५ में ॥गंगा॥ यह मिति गणना से ठीक है उस दिन ८ फरवरी १८१९ ई० थी।

इस पाण्डुलिपि में १० पत्र अथवा २ पृष्ठ हैं जिनमें से प्रथम और अन्तिम पर पुस्तक का नाम है और पत्र-संख्या भी। प्रथम से यह भी विदित होता है कि लिपिकार इसके स्वामी थे।

इसका पत्र देशी और टिकाऊ है आकार है ८·७ इंच×५·४ इंच और पृष्ठ का लिखित भाग ६·० इंच×४·१ इंच है। प्रत्येक पृष्ठ में सामान्यतया १० पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में ६ शब्द हैं। प्रत्येक पृष्ठ पर दोनों ओर तीन-तीन रेखाओं के हाशिए हैं, जिनमें से मध्य रक्त और शेष दो असित हैं। प्रति के किनारे घिसे हैं अन्यथा उसकी दशा ठीक है।

लिपि तो देवनागरी है, किन्तु इतनी भद्दी कि देखनेमात्र से जी ऊब जाय। अवाच्य तो नहीं किन्तु इसके बाचने में परिश्रम अवश्य करना पड़ता है। सभी अक्षर और शब्द एक दूसरे से सटे हुए हैं। सप्तम पृष्ठ पर एक शब्द लिखने से छूट गया था जो भिन्न हस्त के द्वारा रक्तिम मसि से लिख दिया गया है पुन मसि चमकीली काली है। दो बातें विशेष द्रष्टव्य हैं। प्रथम तो यह है कि प्रथम पृष्ठ की आठवीं पंक्ति में दो शब्द छूटे हैं। छूटे हुए स्थानों पर हंसपद लगाकर हाशियों में शब्द लिख दिये गये हैं। दूसरी बात यह है कि यकार के नीचे प्रायः बिन्दु लगाया गया जो बंगला भाषा के 'य़' का स्मरण दिलाता है। यह प्रति पण्डित पाड़ा (सोरों) के पण्डित बनीधर पचौरी के प्रपौत्र और श्री गोपालजी के पुत्र पं० प्यारेलाल जी के पुस्तकालय से पौष शुक्ला १४ मंगलवार अर्थात् ७ जनवरी १९३६ को प्राप्त हुई।

(५) रामचरित मानस—ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामी तुलसीदास ने 'मानस' की दो प्रतियाँ अपने भतीजे कृष्णदास को भेंट दी थीं, जिनमें से स्यात् एक

रत्नावली के निमित्त थी। दोनों के एक-एक काण्ड शेष हैं वे भी खण्डित रूप में। वे हैं —

(क) बालकाण्ड—यह पाण्डुलिपि देशी कागज पर लिखी हुई है जिसका आकार ११ इंच × ५.४ इंच है। प्रत्येक पृष्ठ में १२ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में सामान्यतः ३७ अक्षर हैं। लिपि सुवाच्य है। लिखने के लिए काली मसि का और विराम चिह्नों के लिए लाल का प्रयोग हुआ है। किनारे रंग हैं। इस काण्ड के ११ पत्र नन्ददासजी के वंशज मुरारीलालजी के यहाँ से सोरों में कार्तिक शुक्ला ९ शनि १९९२ वि० तदनुसार २ नवम्बर १९३५ को प्राप्त हुए थे। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है 'इति श्री रामचरित मानसे सकल कलि कलुष विध्वंसने विमल (वै) राग्य संपादिनी नाम १ सोपान समाप्तः संवत् १६४१ शाके १५०८ काशी नंददास पुत्र कृष्नदास हेत लिषी रघुनाथ दास ने काशी पुरी में। यह पुस्तक अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण है और इसमें दीमक ने मध्य-भाग छिद्र कर दिये हैं। इसका पाठ परिशिष्ट में दिया जा रहा है।

(ख) अरण्य काण्ड—यह प्रति देशी पत्र पर है जिसका आकार है ११.३ इंच × ५.७ इंच। इसके अक्षर काले हैं और रामनाम रक्त हैं। सामान्यतः प्रत्येक पृष्ठ में दस पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में ३७ अक्षर हैं। किनारे घिसे हुए हैं। लिपि सुवाच्य है। इसका पूर्ण पाठ परिशिष्ट-रूप से दिया जा रहा है। यह प्रति गोस्वामी तुलसीदास के आदेशानुसार सोरों निवासी उनके भतीजे कृष्णदास के लिए काशी में गोस्वामीजी के शिष्य लक्ष्मणदास ने आषाढ़ शुक्ला ४ शुक्रवार १६४२ वि० तदनुसार १० जून १५८६ ई० को प्रस्तुत की थी। मध्या से तिथि शुद्ध है। इस प्रति के ११ पत्र उक्त बालकाण्ड के साथ उपलब्ध हुए थे।

(४) सूकरक्षेत्र माहात्म्य—(क) मुरलीधर चतुर्वेद की प्रति—मुरलीधर चतुर्वेद ने यह प्रतिलिपि १८०१ वि० में की। इसके केवल दो पत्र ८.७५ इंच × ४.२५ इंच के उपलब्ध हैं। प्रारम्भ के पृष्ठ पर निम्नांकित कोष्ठकों के अन्तर्गत अंश को छोड़ कर यह लिखा हुआ है।

गनपति गिरा गिरीश गिरिजा गंगा गुरु चरन
बंदहुँ पुनि जगदीश रवि बराह बहि उद्धरन ॥१॥
बंदहुँ तुलसीदास पितु बड़ भ्राता पद जलज।
जिन निज बुद्धि विलास रामचरित मानस रच्यौ ॥२॥
मातुल श्री नंददास पितु श्री बंदहु चरन रज
कीनो सुजस प्रकास रास पंच अध्याय भनि ॥३॥
बंदहुँ कृपा निकेत पितुगुरु श्री नर सिंह पद
बंदहुँ शिष्य समेत बल्लभ आचारज सुपद ॥४॥
बंदहुँ कमला मात बंदहुँ पद रत्नावली
जासु चरन जल जात सुमिरि लहहिं सिय सुर मती ॥५॥
सुकुल बंश कुल भूस पितरन पद अरविंद (नमहुँ
रहहिं सदा अनुकूल कृष्नदास निज बंस गनि ॥६॥)

उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि सूकर माहात्म्यवर्णीय तुलसीदासजी रामचरितमानस के

कीरति की मूरति जहाँ राजे मनोरम की
          तीरथ बराह भूमि बेदनु में गाई है
ताही ग्राम रामपुर स्याम सर कीने तास
          स्यामायन स्यामपुर नाम सुखदाई है।
सुकुल विप्रबंस मे विप्र तहाँ सीताराम
          तासु पुत्र नंददास कीरति कवि पाई है।
ता सुत हौं कृष्णदास वर्षफल भाषा रच्यौ
          चूक होइ सोधें मम जानि लघुताई है ।।१।।
सोरह सौ सत्तानवे बिक्रम के वर्ष माह
          भई अति कोपादृष्टि बिस्व के बिधाता की
सीतल प्रवाह बाढ आई बहि देव धुनी
          बूडी जल जन्म भूमि रत्नावलि माता की
नारी नर बूडे कछु सेष बड़ भाग रहे
          बिलुमित बदरी के दुपद कथा ताकी
तासु सम काल मास तेरहि लगि कृष्णदास
          वर्षफल पूरी भई दया बीज-दाता की ।।२।।

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि फलित ज्योतिष की इस पुस्तक को कृष्णदासजी ने अपने विद्वान् पितृव्य चन्द्रहास की इच्छा से लिखा था। पुस्तक को समाप्त करने से पूर्व उन्होंने अपने वंश के विषय में संकेत किया है कि मैं उन नन्ददासजी का पुत्र हूँ जो सीतारामजी शुक्ल ब्राह्मण के पुत्र थे और मेरे पिता ने अपने ग्राम का नाम रामपुर से बदलकर श्यामपुर रख दिया था। उन्होंने दुःख के साथ इसका भी उल्लेख किया है कि रत्नावली की जन्मभूमि बदरी को गंगाजी की उस बाढ़ ने नष्ट कर दिया जो १६५७ वि० के आषाढ़ मास के अन्त में आई थी। उपर्युक्त तिथि वार गणना से शुद्ध है।

इस वर्षफल की प्रतिलिपि जो उपलब्ध है रत्ननाथ ने की थी। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है 'इति श्री कवि कृष्णदास विरचित भाषावर्ष फल सम्पूर्णम् संवत् १८७२ मार्गशिर कृष्णा तृतीया ३ गुरु वासरे सहसराम नगरे। शुभम्। शुभम्।" इसके अन्तिम अर्थात् १८वें पन्ने पर यह पुष्पिका है 'इति पुस्तक वर्षा विचार। गुरुवर भानुदत्त शिष्येण उपाध्याय सोमनाथ पुत्रेण रत्ननाथेन लिखितम्। सं० १८०२ मार्गशिर कृष्णा ४ पितृवासरे'। कदाचित् उक्त रत्ननाथ को अपने गुरु भानुदत्त और पिता सोमनाथ के नामानुसार गुरुवासर और पितृवासर शब्दों से रविवार और सोमवार अभीष्ट थे।

इस पाण्डुलिपि में १८ देशी पत्र हैं। यह जल प्रभावित प्रतीत होती है। इसकी जिल्द कभी नहीं बँधी, यद्यपि ऐसा करने का विचार रहा होगा ऐसा प्रतीत होता है। इसके पत्र ६·७ इंच×४·२ इंच और लिखित अंश ४·१ इंच×३·३ इंच है। इसके प्रत्येक पृष्ठ में सामान्यतः ९ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में सात शब्द। दो-दो लाल रेखाओं के हाशिए दोनों ओर हैं। छन्द-विरामचिह्नों के निमित्त रक्तमसि का उपयोग

हुआ है। पृष्ठ १२ और १६ पर कुछ शब्द और पृष्ठ १७ पर अन्तिम शब्द लालमसि के हैं। मंगलाचरण शीर्षक और लिपिकार की पुष्पिका पर गेरू फेर दिया गया है।

लिपि देवनागरी है जो नितान्त सुवाच्य है। शिरोरेखाएँ ऐसी ही क्रमिक हैं जैसी कि 'रत्नावली चरित' की उस प्रति में जो गोपालदास के द्वारा प्रस्तुत है। प्रथम पृष्ठ पर विलोमित हंसपद के द्वारा बकार के स्थान वकार ऊपर लिख दिया गया है। पश्चात् द्वितीय पृष्ठ पर अशुद्ध रकार के ऊपर शुद्ध रिकार लिखा गया है। कभी कभी हाशिए का उपयोग छूटे हुए शब्दों के लिए हुआ है। एक स्थल पर विकृताक्षर पर मुग्धा का बिन्दु अंकित कर दिया गया है और उसका उचित रूप हाशिए पर लिखा गया है। पृष्ठ १७ पर छूटा हुआ सकार विलोम हंसपद के साथ हाशिए में लिख दिया गया है और उस स्थल पर शिरो रेखा के निकट विलोम हंसपद दे दिया गया है।

(८) सेवादास की टीका—नाभादास कृत 'भक्तमाल' पर प्रियादास ने भक्तिरस बोधिनी' टीका की उस पर सेवादास ने अपनी टीका मार्गशीर्ष शुक्ला १० बृहस्पतिवार सं १८९४ वि० तदनुसार ७ दिसम्बर १८३७ ईसवी को पूर्ण की जो गणना से ठीक है।

पाण्डुलिपि में पृष्ठ के दोनों ओर तीन-तीन रक्त रेखाओं के हाशिए हैं। निर्देश चमकीली रक्त मसि में लिखे गये हैं शेष पुस्तक काली मसि में है। प्रधान विषय तो पृष्ठ के मध्य में दिया गया है और टीकाएँ मूल के ऊपर-नीचे हैं। अधिक टिप्पणियाँ छोटे अक्षरों में हाशिए पर लिखी गयी हैं।

जिस कागज का उपयोग हुआ है वह देशी और टिकाऊ है। सब मिलाकर २१८ पत्र हैं १२२ १९२ १९५ और १९६ संख्यक पत्र विद्यमान नहीं हैं। प्रथम और अन्तिम पृष्ठों पर सुरक्षा के हेतु, कागज चिपका दिया गया है। पत्र का आकार १२·७ इंच × ६·७ इंच है और लिखितांश का १०·० इंच × ५·० इंच। सामान्य रूप से प्रत्येक पृष्ठ में १६ से २० तक पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में लगभग ११ शब्द हैं।

लिपि देवनागरी है अक्षर सटे हुए हैं। इस प्रति के १४१वें पृष्ठ पर भक्तदासजी का और १६३वें पृष्ठ पर तुलसीदासजी का उल्लेख है। वर्णना की भयंकर किन्तु मनोरम मूर्ते विद्यमान हैं यथा ऐसे के लिए 'अैसे'। मुम्बई के खेमराज श्री कृष्णदास ने १९६७ वि० में भक्तमाल सटीक प्रकाशित किया है उसमें और प्रस्तुत प्रति में आश्चर्यजनक साम्य है किन्तु उस में सेवादास का नामोल्लेख नहीं है। प्रस्तुत पाण्डुलिपि श्रीधरदत्त शर्मा आयुर्वेदाचार्य को पण्डित कुंजबिहारीलाल वैद्य और सोरों के रामारामजी के द्वारा स्व० पण्डित मंगलराम शास्त्री के पूर्वज प्राप्त पुस्तकालय से २५ जनवरी १९४० ई० को उपलब्ध हुई थी

नाभादासजी ने 'भक्तमाल' में गोस्वामी तुलसीदास के विषय में केवल एक छंद लिखा है वह यह है

> कलि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीकि तुलसी भये।
> त्रेता काव्य निबन्ध करी सत कोटि रमायन
> इक अक्षर उच्चरें ब्रह्म हत्यादि परायन
> अब भक्तन सुख दैन बहुरि लीला बिस्तारी
> रामचरन रस मत्त रहत अहनिसि व्रतधारी

सोरों-सामग्री

तृतीय भाग प्रत्यालोचन

प्राक्कथन—'विशाल भारत' में तुलसी-सम्बन्धी लेखों को पढ़कर सोरों-सामग्री का अवलोकन करने लखनऊ विश्वविद्यालय के डॉ० दीनदयालु गुप्त १९३१ ई० में तत्पश्चात् प्रयाग विश्वविद्यालय के डॉ० माताप्रसाद गुप्त उसी वर्ष व्यक्तिगत रूप से सोरों-कासगंज आये। दीनदयालुजी एक वर्ष पश्चात् सोरों-सामग्री की परीक्षा करने के लिए पुनः आये और दोनों बार उन्हें सामग्री प्रामाणिक प्रतीत हुई किन्तु माताप्रसादजी ने इस पर कुछ सन्देह प्रकट किये हैं। डॉ० उदय नारायण तिवारी पं० चन्द्रबली पांडे आदि विद्वानों ने कतिपय शंकाएँ उठायी हैं। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने 'सोरों में प्राप्त गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त से सम्बन्ध रखने वाली सामग्री की बहिरंग परीक्षा' और 'सोरों में प्राप्त गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त से सम्बन्ध रखने वाली सामग्री की अन्तरंग परीक्षा' नामक दो लेख लिखे जो 'सम्मेलन पत्रिका' में संवत् १९९७ वि० के श्रावण भाद्रपद और फाल्गुन, चैत्र के अंकों में तदनन्तर 'तुलसीदास' नामक उनके प्रबन्ध में भी प्रकाशित हुए। अतएव उन एवं अन्य शंकाओं पर विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

(अ) अन्तरंग परीक्षा

गोस्वामी तुलसीदास की पत्नी रत्नावली ने अपनी पुस्तक 'दोहा रत्नावली' में ४२वाँ दोहा इस प्रकार दिया है—

सागर ख रस ससी रतन संवत भो दुखदाइ।
पिय वियोग जननी मरन करन न भूल्यो जाइ ॥४२॥

इस दोहे के प्रथम चरण में, ससी=शशि=१ रस=६ ख=ग=आकाश=०, सागर=४। रत्नावली इस प्रकार अपने पति-वियोग और मातृ-मृत्यु का संवत् १६०४ वि० देती है। 'दोहा रत्नावली' की दो प्रतियाँ उपलब्ध हैं एक तो गोपालदास की जो १८२४ वि० की है और दूसरी गंगाधर की जो १८२१ वि० की है।

गंगाधर ने उक्त दोहे के प्रथम चरण का जो पाठ दिया है वह इस प्रकार है—सागर कर रस ससि रतन। उन्होंने पाठान्तर रूप से हाशिये पर 'ससि' का इकार दीर्घ कर दिया है। प्रतीत होता है कि उन्हें स्वयं संवत् अस्पष्ट था। किसी पाठक ने ककार में पूँछ लगाकर उसे खकार बनाने की चेष्टा की है किन्तु कुछ हिचकिचाहट के साथ जैसा कि स्याही से स्पष्ट है। प्रति की मूल स्याही काली है और पूँछ लाल-सी मसि में लगाई गयी है। गोपालदास का पाठ शुद्ध और स्पष्ट है उनकी प्रति गंगाधर की प्रति से कुछ पुरानी है किन्तु वह कुछ पीछे मिली थी। 'तुलसी प्रकाश' के एक छन्द में 'सिद्धि रस सिन्धु इन्दु' संवत् का उल्लेख है, उसमें इन्दु=१, सिन्धु=४, रस=६

निधि=निधि=९ अर्थात् १४९९। यह शक संवत् है और रत्नावली के दिये हुए १६०४ वि० संवत् से मेल खाता है।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इसका की इसी दोहा रत्नावली का उपयोग किया और उन्हें 'सागर कर रस ससी रतन' का अशुद्ध पाठ ग्रहण करना पड़ा। उन्होंने 'सागर' का अर्थ 'सात' किया है 'चार' करना चाहिए था अतएव उन्होंने सम्पूर्ण चरण से १६२७ वि० संवत् ग्रहण किया है। उनकी 'अंतरंग परीक्षा' का मूलाधार यह अशुद्ध संवत् ही है। रत्नावली में जो संवत् दिया है वह वास्तव में १६०४ वि० है। भूल के शोध लेने पर 'अन्तरंग परीक्षा' के तर्क और कल्पना पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

(आ) बहिरंग परीक्षा

सोरों की हस्त-लिखित सामग्री पर डॉ० गुप्त ने विचार किया है। यद्यपि उन्होंने समस्त पुस्तकों की प्राचीनता को स्वीकार किया है और उन्हें उन्हीं शताब्दियों की लिखी बताया है जिनकी वे लिखी हुई हैं फिर भी अनेक स्थलों पर उन्हें निम्न लिखित सन्देह उपस्थित हुए हैं —

(१) रामचरितमानस का बालकाण्ड। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है— 'इति श्री रामचरित्र मानसे सकल कलिकलुष विध्वंसने विमल ज्ञान संपादिनी नाम १ सोपान समाप्त' संवत् १६४३ शाके १२०८ काशी नन्ददास पुत्र कृष्णदास हेत लिषी रघुनाथदास ने काशीपुरी में। डॉ० गुप्त मानते हैं कि देखने में प्रति इतनी काफ़ी पुरानी जान पड़ती है कि वह विक्रमीय सत्रहवीं शताब्दी की कही जा सके फिर भी उन्हें ये तीन सन्देह उत्पन्न हुए हैं —

(क) "पुष्पिका की अंतिम पंक्ति और अन्त से दूसरी पंक्ति के बीच में एक छोटी आड़ी रेखा इस प्रकार खींची गई कि उससे जान पड़ता है कि पुष्पिका उसके ऊपर ही समाप्त हो गई थी। इस शंका के समाधान में कहा जा सकता है कि दो विषयों के पार्थक्य को दिखाने के लिए ही आड़ी रेखाएँ खिंची प्रतीत होती हैं अर्थात् काण्ड की समाप्ति के और प्रतिलिपि के विवरण के पार्थक्य को। यदि पुष्पिका को आड़ी रेखा से पूर्व तक ही मान लिया जाय तो भी प्रति १६४३ वि अर्थात् १२०८ शक संवत् की लिखी हुई स्पष्ट है।

(ख) दूसरी शंका है कि 'अंतिम पंक्ति की लिखावट शेष प्रति और पुष्पिका की लिखावट से पूरा-पूरा मेल नहीं खाती।' यद्यपि 'अक्षरों के बीच के फ़ासले और उनकी बनावट में साम्य दिखाई पड़ता है' तथापि 'अन्तिम पंक्ति में अक्षरों के ऊपर स्याही फेरकर उन्हें बिगाड़ दिया है अतः इन लिखावटों का मिलान योग्यता और धन की इष्टियों से नहीं किया जा सकता।

इसके समाधान में निवेदन है कि मैंने बाल काण्ड' की उक्त प्रति के सभी उपलब्ध पृष्ठों को देखा है। उनमें अनेक स्थलों के अक्षर पुष्पिका की अन्तिम पंक्ति के अक्षरों के समान हैं। प्रामाणिक किरणों के द्वारा विदित हुआ कि पुष्पिका की अन्तिम पंक्ति पर मसि फेरी हुई नहीं है। सन्देह का कारण भेद और भ्रम का प्रभाव

हो सकता है। किरणों से यह भी प्रकट हुआ कि समग्र पुष्पिका के नीचे और कुछ लिखा हुआ नहीं और न पहली किसी लिखावट को मिटा कर नयी ही लिखी गयी है। प्रधान बात तो यह है कि हस्तलेख के विशेषज्ञ की सम्मति में समस्त उपलब्ध काण्ड और उक्त दोनों पुष्पिकाएँ एक ही लेखक के हाथ की लिखी हुई हैं (देखिये परिशिष्ट)। इसी प्रकरण में यह कह देना आवश्यक है कि काशी के एक तथाकथित लिपि-विशेषज्ञ प्राध्यापक की आपत्ति है कि उन दिनों 'कृष्ण' और 'विष्णु' आदि शब्दों के 'ष्ण' को 'ष्न' नहीं लिखा जाता था पर रामचरितमानस के प्राय सभी प्रामाणिक छपे और हस्तलिखित संस्करणों में 'ष्न' विद्यमान है और सर्वाधिक सर्व मान्य अयोध्या के 'बालकाण्ड' में भी। यह रूप 'सूरसागर' में भी उपलब्ध है यथा समाज के साथ प्रभुहरन स्वामी (२१४) कृष्न कृपा सब ही तें न्यारी (१०२०)। अतएव आपत्ति नितान्त निराधार है।

(ग) अंकाकार को पुष्पिका में संवत् १६४१ के '६' और '४' का एवं 'शाके' और १५०८ के बीच के अन्तर अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं किन्तु ध्यान देने की बात है कि पुस्तक में अन्य स्थलों पर इसी प्रकार के फासले हैं। यदि ऐसे अन्तर पुस्तक के अन्य स्थलों में न होते और केवल पुष्पिका में ही होते तो बात विचारणीय थी। '६ और '४' में इतना अन्तर रखने से लिपिकार का स्वार्थ-साधन भी क्या हो सकता था। विरल लेख तो उसका अभ्यास है। ऐसा प्रतीत होता है कि १५०८ को 'शाके' से इतना हटा कर लिखते समय लिपिकार की मनोवृत्ति हाशिये तक पहुँचने की थी। यों तो वह इस निमित्त बड़ी पाइयों का भी उपयोग कर सकता था किन्तु समय पर जो सूझ जाय वही ठीक है। उसे क्या पता था (और किसको भी क्या थी) कि लगभग पौने-चार सौ वर्ष पश्चात् उसकी लिखावट पर सहानुभूति-रहित आक्षेप भी होगा।

(२) रामचरित-मानस का आरण्य-काण्ड। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है

१ इति श्री रा

२ मायने सकल कलि कलुष विध्वंसने विमल वैराग्ये संपादिनी पट हुलन संवादे राम बन चरित्र

३ वर्णनो नाम तृतियो सोपान आरंण्यकांड समाप्त ॥३॥ श्री तुलसीदास गुरु की आग्यासों पेन

४ के भातासुत कल्यानदास सोरों क्षेत्र निवासी हेत लिखित लछिमनदास काशीजी मध्ये सं

५. वत् १६४१ असाड सुद ४ शुभ इति ॥

इस विषय में डॉ० गुप्त मानते हैं कि 'देखने में यह प्रति इतनी काफी पुरानी जान पड़ती है कि विक्रमीय सत्रहवीं शताब्दी की कही जा सके' पर वे शंका करते हैं कि इस पुष्पिका में यह ध्यान देने योग्य है कि 'इति' से '॥३॥' तक का अंश पहले काली स्याही से लिखा हुआ था पीछे से उस पर चमकदार स्याही फेरी गई है। इस पुनर्लेखन में केवल 'इति' और 'ध्ये' के एकार की मात्रा अपने पहले रंग में बचे हुए हैं शेष सभी काले कर दिये गए। इस अंश के अनन्तर 'श्री' से 'इति' तक का अंश

चमत्कार काली स्याही से लिखा हुआ है। इस पर फिर स्याही नहीं फेरी गई है केवल संवत् का १६४' पुनर्लेखन का परिणाम जान पड़ता है। इसके अतिरिक्त शंका चलती है कि "श्री तुलसी' से लेकर अन्तिम 'इति' तक की लिखावट शेष प्रति और पुस्तिका की लिखावट से शैली पति और अक्षरों के आकार के विषय में भिन्न ज्ञात होती है यद्यपि वह गोलाई और बत अक्षरों के बीच के फ़ासले और पंक्ति की सीधाई के सम्बन्ध में एकसी जान पड़ती है। 'क' 'ह' १ और '६ की और इकार की मात्रा की बनावट में दोनों अक्षों में कुछ अन्तर ज्ञात होता है।

समाधान में कहा जा सकता है कि बात ऐसी नहीं है। 'श्री तुलसी' से लेकर अन्तिम इति' पर्यन्त सभी पति और अक्षरों के आकार में भिन्नता नहीं जान पड़ती और इतना तो शंकाकार भी मानते हैं कि लिखावट (गोलाई, बत अक्षरों के बीच के फ़ासले और पंक्ति की सीधाई के सम्बन्ध में) एकसी जान पड़ती है। हस्तलेख विशेषज्ञ की सम्मति में भी पुष्पिका और समस्त उपलब्ध काव्य एक ही व्यक्ति के हाथ के लिखे हुए हैं (दे० परिशिष्ट)।

"इति' के देखने से ज्ञात होता है कि लाल मसि फीकी थी। अतः जान पड़ता है कि इति' को छोड़ पुष्पिका के समस्त लाल अक्षरों को पुन' काली स्याही से लिखा गया। 'वैराग्य' पर जो लाल मसि में भूल से एकार की मात्रा लग गयी थी वह काली स्याही के फेरते समय यों ही छोड़ दी गयी। वास्तव में वहाँ 'ग्ये' अशुद्ध था और 'ग्य' शुद्ध है।

जब यन्त्र के द्वारा इस पुष्पिका का परीक्षण किया गया तो विदित हुआ कि लाल अक्षरों पर काली मसि से लिखा गया और यन्त्र से यह भी विदित है कि "श्री" से 'निवासी" तक काले अक्षरों के सहारे लाल भी स्पष्ट है, किन्तु "हेत" से अन्तिम इति" तक लाल अक्षर स्पष्ट नहीं और संवत् "१६४१ में से केवल '४' के नीचे लाल ४ भी चमकता है। वैज्ञानिक परीक्षक का अनुमान है कि रक्त मसि फीकी हो जाने के कारण पुनर्लेखन की आवश्यकता पड़ी होगी' मिटाया कुछ नहीं गया (दे० परिशिष्ट)।

हमारा तर्क है कि डॉ० गुप्त संवत् १६४१ के १ को तो ठीक ही समझते हैं। '४' के नीचे '४' अंक के द्वारा चमकता ही है। 'रामचरितमानस' १६३१ वि० में लिखा गया और उसका सर्व-प्रथम १६६७ वि० में उत्पन्न हुई; अतएव १ अपरिहार्य है। इसमें संदेह नहीं कि ६ अपेक्षाकृत बड़ा है यद्यपि लिपिकार '६ को बड़े आकार का भी लिखता था जैसा कि पुस्तक के अन्य स्थल से स्पष्ट है।

यदि यह बात थोड़ी देर के लिए मान भी जाय कि ६ के स्थान पर कोई अन्य अंक था तो यह जानना चाहिए कि उसके स्थान पर कौनसा अंक हो सकता था। यह तो असम्भव है कि '६ के स्थान पर ५ अथवा इससे भी पूर्व का और कोई अंक रहा हो क्योंकि 'मानस' १६३१ वि० में लिखा गया था। इसलिए १६३१ के पूर्व किसी भी संवत् की कल्पना निरर्थक है। '६ के स्थान में यदि हो सकता था तो वह अंक '७ ८ अथवा ६ होता। और यदि इनमें से कोई था तो उनके बने संवतों की तिथि, पक्ष वार आदि का मेल भी होना चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं

है। मुझे भारत-सरकार के एपिग्राफ़िस्ट एवं पुरातत्त्व विभाग के संयुक्त-कार्यकार से विदित हुआ है कि पुष्पिका की तिथि आषाढ़ शुद ४ शुक्रवार संवत् १६४१ गणना के अनुसार ठीक है, और १७०१ १७४१ १८०१ १८४१, १६०१ अथवा १६४१ संवत् में उक्त तिथि पक्ष मास वार का योग न था पर वह योग १६४१ में था। अतः उक्त पुष्पिका के संवत् में किसी प्रकार के संदेह का अवकाश नहीं।

इसके अतिरिक्त यह और ध्यान देने योग्य है कि उक्त पुष्पिका में 'श्री तुलसीदास गुरु की आज्ञा सौं' के नीचे भी खास मसि के ये ही अक्षर, जैसा कि उल्लेख हो चुका है मत्त-द्वारा स्पष्ट हैं। तुलसीदासजी की आज्ञा तो उन्हीं के जीवन काल में अर्थात् १६८० वि० तक प्राप्त हो सकती थी। अतः ये शब्द भी उक्त प्रति की प्रामाणिकता के द्योतक हैं।

"सुद' शब्द को लेकर कुछ क्लिष्ट कल्पना कर डाली गयी है। उसका समाधान तो किसी भी कोश से हो सकता है। 'सुद' का अर्थ है शुक्ल पक्ष। एक विद्वान् को पुष्पिका में 'उनके' शब्द पर आपत्ति है कि खड़ी बोली का यह शब्द ब्रजभाषा में क्यों आ विराजा? निवेदन यह है कि वह शब्द चाहे ब्रजभाषा का हो चाहे खड़ी बोली का किन्तु उसका प्रयोग ब्रजभाषा के 'बड़िमा' एवं तुलसीदासजी के समकालीन महाकवि सूरदास ने 'भ्रमर गीत' में इस प्रकार किया है

"जो उनके गुन नाहिं और गुन भये कहाँ ते'। (२०)

तुलसीदासजी ने भी स्वयं 'गीतावली' (२ ११) में 'उनकी' को इस प्रकार प्रयुक्त किया है

"उनकी कहनि नीकी रहनि लखन-सी की"

सूर और तुलसी दोनों ने ही 'उन" का प्रयोग किया है यथा—

"उन तौ करी पाछिले की गति गुन तोरो बिच धार" सू सा० १,१७२

इस प्रकार यह पुष्पिका वैज्ञानिक एवं साहित्यिक परीक्षण से सर्वथा प्रामाणिक सिद्ध होती है।

(३) सूकरखेत माहात्म्य भाषा—डॉ० गुप्त को 'देखने में प्रति इतनी पुरानी जान पड़ती है कि उसे विक्रमीय १६वीं शताब्दी का कहा जा सके किन्तु उसके प्रत्येक शब्द का दूसरे शब्द से अलग लिखा जाना प्रत्येक शब्द में आने वाले अक्षर को शिरोरेखा के नीचे लिखा जाना और उन्हें प्रत्येक दूसरे शब्द के अक्षर-समूह से अलग रखा जाना खटकता है। प्रति का लिपि-काल संवत् १८७० दिया गया है इस समय के लगभग की एक भी प्रति ग्रंथाकार के देखने में नहीं आई है जिसमें उपर्युक्त लेखन-शैली बर्ती गई हो। उत्तर में यह निवेदन कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि इस पुस्तक की एक और खण्डित किन्तु प्राचीनतर प्रति विद्यमान है जिसे पण्डित मुरलीधर चतुर्वेद ने सं० १६ ६ विक्रमी में नकल किया था और जिसकी लिपि-शैली निःसंदेह प्राचीन है। इसके अतिरिक्त कहा जा सकता है कि सूकरखेत माहात्म्य १६२७ वि० में अर्थात् आज से ६१ वर्ष पूर्व छप भी चुका था।

(४) रत्नावली—इसके विषय में डॉ० गुप्त मानते हैं कि देखने में प्रति इतनी पुरानी अवश्य जान पड़ती है कि उसे विक्रमीय १६वीं शताब्दी की कही जा

सके। फिर भी खटका चलती है कि "रत्नावली अब दो संस्करणों में प्रकाशित है। एक पं० मन्नदत्त जी वैद्यभूषण कासगंज से प्राप्य है और दूसरा पं० प्रभुदयालु शर्मा धर्मानिकेतन इटावा से प्राप्य है। उसमें जो चौथा छप्पय दिया हुआ है, वह अमरत्व 'रत्नावली' प्रति में नहीं है।

कथन वस्तुतः सत्य है, किन्तु शंकाओं के बीच वह कुछ भ्रमोत्पादक हो गया है। अतः इसका स्पष्टीकरण आवश्यक है। मुरलीधर चतुर्वेद ने 'रत्नावली चरित' लिखा था। उसकी नकल उनके शिष्य रामवल्लभ मिश्र ने की। जिस छप्पय का उल्लेख है वह चतुर्वेदी की प्रति में अन्य अनेक छप्पयों के साथ विद्यमान है किन्तु मिश्रजी ने 'रत्नावली' सम्पूर्ण करने के पश्चात् केवल तीन छप्पय दिये हैं जिनमें यह नहीं है। वैद्यभूषण वाली 'रत्नावली' का सम्पादन श्री नाहरसिंह सोलंकी ने किया और उन्होंने उस छप्पय को भी सम्मिलित कर लिया। या तो उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था अथवा उन्हें वहाँ पाद-टिप्पणी दे देनी चाहिए थी। शंकाकार ने इस ओर इशारा कर अच्छा ही किया। मैंने उचित समझा कि सोरों की सामग्री को मूल रूप में जनता के समक्ष रख दिया जाय। इसी दृष्टि से 'तुलसी चर्चा' नामक पुस्तक में मई १९४१ तक की प्राप्त सभी आवश्यक सामग्री यथासम्भव रूपों की त्यों मैंने उपस्थित कर दी थी और प्रस्तुत प्रबन्ध में भी वह सब एवं तत्पश्चात् प्राप्त अन्य सामग्री उपस्थित की जा रही है।

मुरलीधर चतुर्वेद की रचना-शैली के विषय में भी शंका इस प्रकार उठायी गयी है— जब हम मुरलीधर चतुर्वेद-कृत 'रत्नावली' की जाँच करते हैं तो हमें एक बात उसमें खटकती है। वह है उसकी शैली और शब्द-विन्यास का अपेक्षाकृत आधुनिक होना। नीचे लिखी पंक्तियों में यह बात ध्यान देने योग्य है

तीन प्रेम तुम करी पार नाथ प्रेम के तुम अपार
मम तुप्रेम निज हिये धार उतरे प्रिय सुरसरित पार।
जग असार पद प्रेम धार जात मनज भव जदपि पार
प्रेम हीन जीवन असार नाथ प्रेम महिमा अपार॥

शंकाकार ने यह निर्देश नहीं किया है कि उक्त उद्धरण में आधुनिकता किन कारणों से है और न यह दिखाया कि अमुक शब्द अथवा या भाव उन दिनों प्रयुक्त नहीं होता था जिन दिनों की यह कृति है। नीचे कुछ प्राचीन छन्द उद्धृत हैं जिनकी शैली मिलती-जुलती है। नागरी प्रचारिणी पत्रिका (वर्ष ५६, अंक १ संवत् २००८) में श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की खोज नामक लेख में मेघनाथ या मेघू की कविता का कुछ अंश दिया है जिसका रचना-काल १५५७ वि० और लिपि-काल १७२७ वि० दिया गया है —

इहि संसार न कोऊ रह्यो। भात पुकार मेघू सों कह्यो
माता पिता पुत्र संताक। यहि सब दीसे माया जाक
आदि नाम ना कलजुग रहै। जोव सदा मुखो कौ कहै
कहा बहुत करि कोजै मानु। जो जानै गीता को ग्यानु॥

उक्त पत्रिका के वर्ष ५७ अंक १ संवत् २००९ में श्री वासुदेव गोस्वामी ने हरिराम

व्यास को सत्रहवीं शताब्दी का माना है और उनकी रचना में से निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की हैं—

कहाँ भागवत शुक अनुराग
कैसे समझें बिनु बड़ भाग
श्री गुरु सकल कृपा करी ॥
व्यास आस करि बरनौं रास
चाहत है वृन्दावन वास
करि राधे इतनी कृपा ॥
निजु दासी अपनी करि मोहि
नित प्रति श्यामा सेऊँ तोहि
नव निकुंज सुख पुंज में ॥
हरि बंसी हरि दासी जहाँ
मुहि करुना करि राखो तहाँ
नित्य बिहार अधार है ॥
कहत सुनत बाढ़े रस रीति
श्रोतहि वक्तहि हरिपद प्रीति
रास रसिक गुन गाइही ॥३०॥

इसके अतिरिक्त महाकवि सूरदास के गीतानुवाद की छन्द भाषा-शैली मुरलीधर चतुर्वेद की शैली से कितनी अधिक मिलती है। ब्रज भारती के वर्ष १० संख्या ४६ में श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी ने 'सूरगीता' का परिचय दिया था उसमें

धृतराष्ट्र उवाच

अति धर्म्म धाम कुरु खेत मध्य । सुत मेरे अरु पांडव प्रसिद्ध ॥
जुध हेतु जुरे जे सरब आय । सो करत कहा संजय बताय ॥

संजय उवाच

देखो पांडव सेना उदार । करि व्यूह रचन सम्यक प्रकार ॥
दुरजोधन आचारज समीप । ए वाकि कहे सुनिये महीप ॥
पांडव सैना दीरघ बिचारि । द्रोनाचारज लोचन निहारि ॥
है धृष्टद्युमन तव शिष्य बलिष्ठ । तिहिं करी ब्यूह रचना प्रतिष्ठ ॥
अति सूर धनुरधर वपु प्रचण्ड । अरजुन भीम जोधा प्रचण्ड ॥
जुजधान और भूपति बिराट । संग्राम बिशारद सब पाट ॥

इस शैली की तुलना 'रत्नावलि चरित' से कीजिये

बन्दौं विरंच ब्रह्मास ईश । बन्दौं सनकादिक मुनीश ॥
सती शारद हि शीश नाइ । सावित्री सिय पुनम नाइ ॥
अरुन्धती दमयन्ति नारि । अनसूया पुनि गान्धारि ॥
सती भई जे जगत माय । तिनहिं सबनु नई करि प्रनाम ॥

पार्वती-विवाह सम्बन्धी सूरसागर की निम्न लिखित पंक्तियों पर और विचार कीजिये :

सती हियें धरि सिव को ध्यान।
दच्छ जग्य में छाँड़े प्रान॥ ४२

और अन्त में साम्यकेनिपरित गोस्वामी तुलसीदास की ही शैली का अवलोकन कीजिये—

तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल
कोपेउ समर श्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम
अवलोकि खरतर तीर। मुरि चले निसिचर बीर
भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ। जो भागि रन ते जाइ
तेहि बधब हम निज पानि। फिरे मरन मन ठानि
आयुध अनेक प्रकार। सनमुख ते करहिं प्रहार
रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुष सर संधानि
छाँड़े बिपुल नाराच। लगे कटन बिकट पिसाच
उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन
चिक्करत लागत बान। धर परत कुधर समान
भट कटत तन सत खंड। पुनि उठत करि पाषंड
नभ उड़त बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुंड
खग कंक काक सृगाल। कटकटहिं कठिन कराल।

रा ३ १९ क १ ११

(४) रत्नावली लघु दोहा संग्रह—इसकी दो प्रतियाँ हैं। एक तो पं० रामचन्द्र बदरिया वाले के हाथ की सं० १८७४ में लिखी हुई और दूसरी ईश्वरनाथ पण्डित के हाथ की संवत् १८७५ की लिखी हुई। डा० गुप्त दोनों प्रतियों को इतनी पुरानी मानते हैं कि वे १९वीं शताब्दी की ही कही जा सकें। वे यह भी लिखते हैं कि 'रत्नावली लघु दोहा संग्रह के सम्बन्ध में अवश्य हमें कोई सन्देहजनक बात ज्ञात नहीं होती। फिर भी उनकी शंका इस प्रकार प्रस्फुटित होती है—"पर सोरों में मिली हुई प्रत्येक अन्य सामग्री के सन्देहातीत न होने के कारण इस 'लघु दोहा संग्रह' के सम्बन्ध में भी यदि किसी को पर्याप्त विश्वास न हो तो कुछ आश्चर्य नहीं।" इसके उत्तर में केवल यही निवेदन है कि यह शंका भावुकता-मात्र है। इस लघु संग्रह के २ ४ ७ ९, ११ १५, १६ १७ १८ और १९ संख्यक दोहे ही रत्नावली-तुलसीदास के जन्म-स्थान तथा अन्य परिचय के लिये पर्याप्त हैं।

(५) दोहा रत्नावली—डॉ० गुप्त लिखते हैं कि "दोहा रत्नावली" की यदि कोई प्राचीन प्रति है तो हमें देखने को नहीं मिली इसलिए उसके सम्बन्ध में हम कुछ भी कहने में असमर्थ हैं।" वे अन्यत्र कहते हैं कि पं० प्रभुदयाल वाले संस्करण का आधार कोई हस्तलिखित प्राचीन प्रति है या नहीं यह कहना कठिन है।"

यदि कोई वस्तु अवकाशाभाव से देखने को न मिल सकी तो क्या वह संसार में ही नहीं थी? लखनऊ विश्वविद्यालय के डॉ० दीनदयालु गुप्त उससे पहले ही सोरों हो गए थे। तत्पश्चात् उन्होंने 'गुसाईं तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावली' नाम का लेख लिखा जो जनवरी १९४ की 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका में छपा। उस अंक के द्वितीय पृष्ठ पर वे लिखते हैं 'रत्नावलि के दोहा संग्रहों में से एक में १११ दोहे हैं

और दूसरे में २०१ दोहे हैं। इन्होंने महात्मा तुलसी के जीवन पर भी एक नया प्रकाश डाला है। इन ग्रंथों की प्रामाणिकता की मैंने सोरों जाकर जाँच की है और मुझे इन ग्रंथों की प्रामाणिकता पर सन्देह करने का विशेष कारण नहीं ज्ञात होता है। हिन्दी के विद्वानों से निवेदन है कि वे इस सामग्री की निष्पक्ष रूप से जाँच करें।" ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ॰ दीनदयालु गुप्त के मत से किन्हीं लोगों में कुछ सन्देह उत्पन्न किये क्योंकि वे प्रकाकार के एक वर्ष पश्चात् दोबारा सोरों-सामग्री की परीक्षा करने आये। किन्तु फिर भी उन्होंने सोरों-सामग्री को प्रामाणिक ही पाया। जनवरी ११४१ की 'हिन्दुस्तानी' में उन्होंने महाकवि नन्ददास का जीवन चरित लिखा। उसके २८६वें पृष्ठ पर उन्होंने लिखा कि "मैंने दो बार सोरों जाकर इन ग्रन्थों का अवलोकन किया है। मुझे ग्रन्थ प्रामाणिक जान पड़े हैं। 'दोहा रत्नावली' की एक और प्रति बदायूं से प्राप्त हुई जिसको गोपालदास नामक व्यक्ति ने गयाधर से भी पहले १८२४ वि॰ में नकल किया था। इन दोनों की और लघु-दोहा-संग्रहों की प्रतिलिपियाँ पाठान्तर, सहित 'तुलसी चर्चा' में और प्रस्तुत प्रबन्ध में संकलित हैं।

एक विद्वान् को रत्नावली की रचना में 'हृदयेश' और 'था' खटकते हैं। वे पहले शब्द को बँगला के और दूसरे को आर्य समाज के साहित्य से प्रेरित प्रभावित मानकर उस रचना का रत्नावली के समय की नहीं समझते। समाधान-रूप से निवेदन किया जा सकता है कि जिन शब्दों का प्रयोग तुलसीदास जी ने किया है क्या उनका प्रयोग उनकी पत्नी नहीं कर सकती थी? तुलसीदास जी ने लिखा

"प्रभु चहेत प्रगुन हृदयेसा", रा ७ ११० य २
"तिन्ह के सब वैभव था विसवा", रा ७ ११७ ७

रत्नावली ने भी लिखा

हाय सहज ही हौं कही लह्यो बोध हिरदेस। दो॰ र १
विधत दुखित ह्वै चलि गये रतनावलि कर भूप। दो॰ र॰ २
जाके कर मैं कर दयो मात पिता था भ्रात। दो॰ र॰ ११६

(७) गोस्वामी तुलसीदास का घर— मुहल्ला योग मारग (योग मार्ग) में कुछ पही नामक एक मुसलमान ग्वाले (?) का कच्चा मकान है। कहा जाता है कि उसी मकान के स्थान पर पहले गोस्वामीजी का मकान था। यह मकान किसी पुराने मकान के भग्नावशेष पर बनाया हुआ जान पड़ता है। बाहर दीवारी का फाटक स्पष्ट ही किसी पुराने फाटक के भग्नावशेष पर बनाया हुआ है मुसलमानों की एक बस्ती है जिसमें कसाई भी हैं।" कवि के घर के सम्बन्ध में सोरों में एक जनश्रुति है 'तुलसी घर मरघट्ट में मल कटियन के बाम। पापी करनी आप सम तू वयों होय उदास।' ऊपर हमने जिस मकान की स्थिति देखी है उसके सम्बन्ध में यह जनश्रुति लागू हो सकती है इसमें सन्देह नहीं। इस मकान के साथ एक और परम्परा लगी चली आती है। सोरों के लोगों का यह विश्वास है कि इस मकान की मिट्टी कण्ठर (कर्णमूल प्रदाह) नामक रोग में गुणकारी होती है और इसीलिए वे अब भी इसे ले जाते हैं और कण्ठ मूल रोग में इसका प्रयोग करते हैं।' इस विषय में डॉ॰ गुप्त की धारणा है कि "इस

परम्परा से यह बात सिद्ध नहीं होती कि वह मकान, जिसकी मिट्टी लोग इस प्रकार से जाते हैं तुलसीदास का था।" किन्तु इस विषय में यह ध्यान देने योग्य है कि उक्त तथ्य निरी परम्परा ही नहीं इसका उल्लेख मुरलीधर चतुर्वेद ने सं० १८२१ में अर्थात् प्राज से १७१ वर्ष पहले 'रत्नावली चरित' में इस प्रकार किया है—'चरन सदन रज जातु कोइ बरत देह रुज रहित होइ।

डॉ० गुप्त आगे लिखते हैं इस मकान के सम्बन्ध में एक और बात है जिसे सोरों को तुलसीदास की जन्मभूमि मानने वाले लोग प्रकाश में नहीं लाते। मुझे स्थानीय जाँच से यह ज्ञात हुआ है कि उपर्युक्त मकान उससे मिले-जुले कुछ मकान भी पहले राजोरियों के थे (शुक्लों के नहीं) और वे राजोरिया घराने भी धीरे-धीरे नष्ट हो गए हैं यह बात लेखक को कुछ कठिनाई के बाद ज्ञात हुई क्योंकि सोरों का अधिकांश जन समाज यह चाहता है कि सोरों तुलसीदासजी की जन्म-भूमि मानी जाय और यह बात कदाचित् उसके मार्ग में बाधक होती। फलतः जब तक इस बात का कोई यह विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिल जाता कि यह घर शुक्लों का था प्रस्तुत लेखक उसे राजोरियों का ही मानेगा।"

समाधान रूप से निवेदन है कि जब तुलसीदास सोरों के थे ही तो सोरों का अधिकांश जन-समाज क्यों न चाहे कि सोरों गोस्वामी तुलसीदास की जन्मभूमि समझी जाय। यह इच्छा तो स्वाभाविक और उचित थी। योग-मार्ग के वे सभी मकान राजोरियों के थे शुक्लों के नहीं यह तथ्य नहीं। उस मोहल्ले में तो और भी आस्पद वाले ब्राह्मणों के घर थे और हैं। लेखकाकार कुछ दिन तक भाषा-विज्ञान के अनुसार 'राजोरिया' शब्द को 'राजापुरिया' का विकृत रूप समझते थे किन्तु उन्होंने अपनी यह धारणा पीछे से बदल दी। लेखकाकार ने स्वयं बताया है कि राजौरा आगरे जिले में आगरा शहर से बत्तीस मील की दूरी पर है यद्यपि एटा जिले में भी राजौर नामक स्थान है। अतएव यदि राजोरियों का निकास राजौरा अथवा राजौर से मानें तो इसमें सिद्धांत की क्या हानि हुई? दिल्ली अथवा लखनऊ का रहने वाला कलकत्ते में भी बैठकर अपने को देहलवी अथवा लखनवी कहता है। आगरे के रहने वाले हमारे परिचित एक सुनार और एक खत्री अपने नाम के आगे राजौरा लगाते हैं। मथुरा का मूल-निवासी मथुरिया कहा जाता है, तो राजौरा अथवा राजौर का मूल-निवासी राजोरिया कहा जा सकता है। पर क्या यह सिद्धान्त आवश्यक है कि राजोरिया शुक्ल नहीं हो सकता। क्या यह आवश्यक है कि राजोरिया ब्राह्मण ही हों और क्या यह असम्भव है कि राजोरियों के मकान में शुक्ल नहीं रह सकते अथवा शुक्लों के घर में राजोरिया नहीं रह सकते? समय के बीतने पर राजोरियों का मकान शुक्लों का कहलाने लगता है अथवा शुक्लों का मकान राजोरियों का।[1]

(ख) महाकवि नन्ददास का घराना। इस विषय में डॉ० गुप्त इस प्रकार लिखते हैं — 'यहाँ पर सनाढ्य शुक्लों का एक घराना है जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह नन्ददास की वंशपरम्परा में है। इस समय इस कुल में एक पंडित बाबूराम हैं

१ 'तुलसी प्रकाश' के अनुसार, गोस्वामी तुलसीदास के शिष्य पंडित [illegible] शुक्ल रामपुर से आकर राजोरिया वंशीय मनसुख के घने घर में सोरों आ बसे थे।

और उनका एक भतीजा है जो उनके भाई स्व० स्वर्गीय मुरारीलाल का पुत्र है जिनसे मानस की उपर्युक्त प्रतियों की प्राप्ति बताई जाती है। शंका इस प्रकार है "इस बात का यथेष्ट प्रमाण कोई नहीं है कि बाबूराम शुक्ल और उनके घर वाले नन्ददास के वंशज हैं। स्वर्गीय मुरारीलाल का कथन-मात्र इस सम्बन्ध में प्रमाण नहीं हो सकता। सोरों यात्रा में मैंने बाबूरामजी से मिलना चाहा पर वे बाहर चले गये थे। इसलिए मिलना न हो सका। पर जो कुछ मैंने उनके सम्बन्ध में वहाँ सुना उससे मुझे सन्देह हुआ कि वे भी अपने को नन्ददास का वंशज कहते हैं या नहीं।

गुप्तजी ने यह नहीं लिखा कि बाबूरामजी के विषय में उन्होंने क्या सुना लिख देना उचित था। न जाने उनका 'यथेष्ट प्रमाण' से क्या तात्पर्य है? राजा-महाराजाओं एवं कुछ समृद्ध वंशों को छोड़कर बहुत कम व्यक्ति ऐसे हैं जो अपने पुरखों की बीस-बीस पीढ़ियों का विवरण दे सकें। जनश्रुति में तो कुछ न कुछ विश्वास करना ही पड़ता है। गोस्वामीजी का जन्म-स्थान सोरों था इसमें केवल जन-श्रुति ही तो प्रमाण नहीं है स्वयं गोस्वामीजी की कृतियाँ एवं अन्य सामग्री भी है। अतएव अनुकूल जनश्रुति तो प्रमाण ही समझी जायगी। हम कल्पना नहीं कर सकते कि बाबूराम जी के भाई स्व० मुरारीलाल जी का कथन क्यों प्रमाण नहीं हो सकता। और यदि बाबूरामजी उस समय जबकि शंकाकार सोरों आये थे, कहीं बाहर गये हुए थे तो शंकाकार सत्यशोध के लिए और कुछ समय सोरों में ठहर सकते थे। पण्डित बाबूराम तो अपने को नन्ददासजी का वंशधर बताते हैं और सोरों के बहुत से लोग इस कथन में विश्वास करते हैं—यह क्या कम बात है?

(६) सोरों का नरसिंह मंदिर। इसके विषय में शंकाकार लिखते हैं—"सोरों में चौधरियों के मुहल्ले में पक्के मकान का एक खंडहर है। यह नरसिंहजी के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें प्राचीन अंश पूर्व और पश्चिम का है दक्षिण का अंश अपेक्षाकृत नवीन है और उत्तर की ओर कोई बनावट नहीं रह गई है। इसमें अब केवल हनुमानजी की एक मूर्ति है और कुछ नहीं।" शंकाकार को यहाँ दिया भ्रम हुआ है। शंका आगे चलती है—' नरसिंहजी के मन्दिर के सम्बन्ध में जाँच करते हुए मैं उस स्थान के पटवारी मुन्शी गिरिजाशंकर से मिला और उनसे मैंने उक्त मंदिर की खतौनी जमाबन्दी प्राप्त की। उस खतौनी में लिखा है 'मन्दिर नरसिंह जो महराज। प्रश्न यह है कि क्या यह शब्दावली इस बात की सूचना देती है कि उक्त मन्दिर किन्हीं नरसिंह चौधरी का था? कम से कम प्रस्तुत लेखक तो इस शब्दावली का आशय यही लेगा कि यह मन्दिर नृसिंह भगवान् का न कि किन्हीं नरसिंह चौधरी का था। 'जो' और महाराज शब्द तो कम से कम इसी ओर संकेत करते हैं।

गुप्तजी ने यह बहुत अच्छा किया कि उन्होंने पटवारी से यह सूचना प्राप्त की कि यह स्थान 'मन्दिर नरसिंह जी महाराज' के नाम से दर्ज है नहीं तो यह सन्देह बना रहता कि कदाचित् यह मन्दिर ईश्वर के चतुर्थावतार नृसिंह भगवान् का ही हो। 'जी' का प्रयोग तो मनुष्य प्रायः एक-दूसरे के लिए करते हैं। यह शब्द

आदरसूचक है और क्या मनुष्य क्या देवता सभी के लिए प्रयुक्त होता है कदाचित् मनुष्यों के लिए अधिक क्योंकि 'विष्णुजी' की अपेक्षा 'विष्णु भगवान्' ऐसा कहना कहना अधिक आदर-पूर्ण प्रतीत होता है। और महाराज शब्द तो राजाओं के लिए प्रयुक्त होता है यथा महाराज हर्षवर्धन महाराज कश्मीर। 'महाराज' शब्द ब्राह्मणों के लिए भी प्रयोग में आने लगा और इतना अधिक कि अब तो यह शब्द रसोइया अथवा पानी पिलाने वाले ब्राह्मण का भी द्योतक है। 'जी' और 'महाराज' दोनों शब्द मिलकर इस बात के साक्षी हैं कि गो० तुलसीदास के गुरु नरसिंह (अथवा नृसिंह) जी एक आदरणीय ब्राह्मण व्यक्ति थे जो अपने समाज में चौधरी समझे जाते थे।

एक बात और है। यदि यह मन्दिर नृसिंह भगवान् का होता तो इसमे नृसिंह भगवान् की मूर्ति भी होती। यह कैसे हो सकता है कि हनुमान्‌जी की मूर्ति तो बनी रहती और नृसिंह भगवान् की प्रधान मूर्ति जिनके नाम पर यह मन्दिर प्रख्यात होता वहाँ से हट जाती। अतः शंकाकार को इस विषय में फिर से विचार करना चाहिए।

(१०) सोरों में नरसिंहजी चौधरी के उत्तराधिकारी। गुप्त जी इस विषय में इस प्रकार लिखते हैं 'इसी मुहल्ले में चौधरियों के कुछ घर हैं जो हमारे कवि के गुरु नरसिंहजी चौधरी के वंशधर बताए जाते हैं। पंडित रंगनाथ आजकल इनके मुखिया हैं। अपनी सोरों यात्रा में मैं पंडित रंगनाथ चौधरी से मिला था। उनसे प्रश्न करने पर ज्ञात हुआ कि उन्हें केवल अपने आठ पूर्व-पुरुषों के नाम याद हैं और इनमें से नरसिंह चौधरी नहीं हैं। उपर्युक्त मन्दिर अवश्य उनके घराने के अधिकार में चला आ रहा है। किन्तु केवल इतनी बात से यह सिद्ध नहीं होता कि उनके कोई पूर्व-पुरुष नरसिंह चौधरी नाम के थे जो तुलसीदासजी के समकालीन थे या इतना भी कि मन्दिर का नाम 'नरसिंहजी महाराज का मन्दिर' उनके किन्हीं पूर्व पुरुष के नाम से सम्बन्धित होने के कारण पड़ा। एक बात अवश्य है जिससे यह ज्ञात होता है कि पंडित रंगनाथ और पंडित बाबूराम के घरानों में कुछ पूर्व-काल से सम्बन्ध चला आ रहा है। माफीरकी पुस्तक में जो मौजा होडलपुर में है दोनों घरानों का हिस्सा है। पंडित बाबूराम उसके चढ़े हुए द्रव्य का तीन-चौथाई और पंडित रंगनाथ एक-चौथाई लिया करते हैं। यह बात प्रस्तुत लेखक को उस गाम के पटवारी मुंशी महावीर शंकर से भी ज्ञात हुई थी।"

उक्त शंकाओं के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि यह क्या कम है कि उस समय पंडित रंगनाथजी ने अपने आठ पूर्व-पुरुषों के नाम बता दिये थे। संसार में कितने व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें अपने से चार पूर्व-पुरुषों के नाम स्मरण हैं। सोचने की बात है कि गुरु नरसिंहजी का नाम रंगनाथजी की आठ-पीढ़ियों में कैसे हो सकता था जिन्हें आज साढ़े-तीन सौ वर्ष से अधिक हो चुके हैं? अतएव रंगनाथजी ने अपने से आठ पूर्व पीढ़ियों में नरसिंहजी का उल्लेख नहीं किया तो उन्होंने सत्य का ही पालन किया। क्या रंगनाथजी अपने को नरसिंहजी का वंशधर नहीं मानते? यदि वे अपने को नरसिंहजी का वंशधर न मानते होते तो शंका की बात भी थी। किसी वंश में यदि कोई अत्यन्त प्रसिद्ध व्यक्ति हो जाता है तो उसमें उसकी चिरस्मृति 'प्रवर' रूप से बनी रहती है और यह आवश्यक नहीं कि उसके आगे-पीछे के सभी पुरुषों के

नाम स्मरण रहें। प्रकृत बात तो ऐसी ही है। शंकाकार बताते हैं कि पंडित रंगनाथ और बाबूरामजी के घरानों में सम्बन्ध भी चला आ रहा है। नरसिंहजी और नन्ददासजी का सम्बन्ध तो गुरु-शिष्य का था ही अतः तब से अब तक यह सम्बन्ध रूपान्तर से बना हुआ है। इसमें न तो कोई आश्चर्य की और न किसी विशेष महत्त्व की बात है। महत्त्वपूर्ण बात तो यही है कि स्वयं पंडित रंगनाथजी अपने को गुरु नरसिंहजी का वंशधर मानते और कहते हैं और सोरों के अन्य व्यक्ति भी उन्हें उस गुरु का वंशज मानते हैं। इस बात में अविश्वास करने का कारण भी क्या जब अन्य प्रमाणों से भी नरसिंहजी का सोरों में होना सिद्ध होता है? वस्तुस्थिति यह है कि सोरों के पण्डे अपनी सम्पत्ति के क्षेम के निमित्त अपनी पूर्ण वंशावली को प्रकट करने में आनाकानी किया करते हैं। आग्रह करने पर हमें जो पूर्ण वंशावली प्राप्त हुई वह यथास्थान दी जा चुकी है। अतएव गुरु नरसिंहजी के वंशजों के सम्बन्ध में उक्त शंका निराधार है।

(६) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की आपत्तियाँ और उनका समाधान

पत्र संख्या २६०४

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
मिति चैत्र ११ १ संवत् २००५
ता० २१ ४ १९४८

प्रियवर मास्टरजी

सस्नेह नमस्कार!

आपका १८ ४ ४८ का कृपापत्र मिला। धन्यवाद। सोरों-सामग्री की विस्तृत जाँच प्रयाग विश्वविद्यालय के लेक्चरर तथा मेरे सहयोगी डा० माताप्रसाद गुप्त ने की है। अन्त में गुप्तजी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यह सामग्री जाली है। इसी सम्बन्ध में पं० चन्द्रबली पाण्डेय एम० ए० के भी कई लेख हिन्दुस्तानी एकेडमी से प्रकाशित होने वाली 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका में प्रकाशित हो चुके हैं उन अकाट्य तर्कों को आप अपनी पुस्तिका में अन्यथा सिद्ध नहीं कर पाये हैं। ऐसी अवस्था में सोरों की सामग्री को जाली के अतिरिक्त क्या कहा जाय? मैं भाषा-शास्त्र का एक साधारण विद्यार्थी हूँ। मेरे अध्ययन का विषय भोजपुरी तथा अवधी है। रामायण की भाषा की परीक्षा के पश्चात् यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इसके लेखक की मातृभाषा अवधी के अतिरिक्त दूसरी नहीं थी। सोरों तो स्पष्ट ब्रजक्षेत्र में है। इस सम्बन्ध में पंडित रामचन्द्रजी शुक्ल ने अपने इतिहास के नवीन संस्करण में जो प्रमाण दिए हैं, वे एक प्रकार से अकाट्य हैं।

परम्परा से गोस्वामीजी की जन्मभूमि राजापुर ही बतलायी जाती है। हिन्दी साहित्य के प्रथम इतिहास लेखक गार्सां द तासी भी गोस्वामीजी की जन्म भूमि बाँदा जिले ही में मानते हैं। यह पुस्तक उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में पेरिस में फ्रेंच भाषा में छपी थी। जब तक आप इन सब बातों को अन्यथा सिद्ध न कर दें तब तक गोस्वामीजी की जन्मभूमि आप सोरों सिद्ध नहीं कर सकते।

गोस्वामीजी इस देश के महान् व्यक्तियों में से थे। गांधीजी की भाँति यदि

प्रत्येक नगर में भी उनका स्मारक बनाया जाय तो वह थोड़ा ही होगा। ऐसी स्थिति में आप उनके स्मारक के लिए जो उद्योग कर रहे हैं उसके लिए आपको अनेक बधाइयाँ।

आशा है आप प्रसन्न हैं।

भवदीय
उदयनारायण तिवारी
एम० एम० डी० लिट्
प्रधान मन्त्री

उक्त पत्र पर विचार

१ (क) डॉ० माताप्रसाद गुप्त के लेख (सोरों सामग्री की परीक्षा पर) सम्मेलन-पत्रिका के कुछ अंकों (संवत् १९९७ वि०) में तदुपरान्त 'तुलसीदास' नामक उनके शोध-प्रबन्ध में प्रकाशित हुए थे उनमें गुप्तजी ने सोरों-सामग्री पर कुछ सन्देह तो उपस्थित किये हैं, किन्तु उन्हें जाली नहीं बताया है,[1] प्रत्युत उसके कुछ अंश तो उन्हें ठीक भी लगे हैं।

मैंने डॉ० गुप्त के लेखों की प्रत्यालोचना सम्मेलन-पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेजी थी और उसमें मैंने उनके सभी सन्देहों का सविस्तर समाधान किया था और यह भी बताया था कि गुप्तजी ने वे लेख किन परिस्थितियों में लिखे थे। किन्तु हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने मेरी वह प्रत्यालोचना नहीं छापी। इसकी भी एक कहानी है। नागरी-प्रचारिणी-सभा ने भी यह लेख, बिना कोई कारण दिये लौटा दिया था। आलोचना और प्रत्यालोचन एक ही पत्र में छपने चाहिए थे। जब नहीं छपा तो मैंने वह लेख 'नवीन भारत' में प्रकाशित करा दिया उसका कुछ अंश १९४१ ई० में और कुछ १९४६ ई० में छपा था। प्रस्तुत प्रबन्ध में उसका केवल वह अंश है जिसका सम्बन्ध साहित्य से है व्यक्तिगत आक्षेप और भौंडापन से नहीं।

(ख) श्री चन्द्रबली पाण्डे ने सोरों की तुलसी-सामग्री का अवलोकन मूलरूप में कभी नहीं किया। उनकी आलोचना का मुख्य आधार डॉ० माताप्रसाद गुप्त के ही विचार हैं। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा रत्नावली के दोहों की भावुकता से प्रभावित हुए हैं। डॉ० दीनदयालु गुप्त रत्नावली के दोहों में वियोग-वेदना की स्वाभाविक व्यंजना सरलता और शिष्टता का अनुभव करते हुए लिखते हैं कि "रत्नावली के काव्य की तुलना केवल मीरा के काव्य से ही की जा सकती है अन्य कवयित्रियों के जैसे दयाबाई सहजोबाई, ताज आदि के काव्य उसके काव्य की तुलना में बहुत साधारण दर्जे के हैं।"[2] किन्तु श्री पाण्डेजी की राय में रत्नावली के दोहे कृत्रिम नीरस और शुष्क हैं। उत्तर में निवेदन है "जाकी रही भावना जैसी।

मुझे आशंका है कि उस समय तक पूर्ण रूप से सोरों-सामग्री पाण्डेजी तक नहीं पहुँच पायी थी। 'सूकर क्षेत्र माहात्म्य' के विषय में यह स्मरणीय है कि वह १९७ विक्रम संवत् में कृष्णदास द्वारा लिखा गया और १८७ ईसवी में अर्थात् अब से लग

१ इस शोध प्रबन्ध के प्रथम संस्करण में 'जाली' शब्द नहीं। किन्तु दूसरे संस्करण में जो इस पत्र के पश्चात् प्रकाशित हुआ इसका उल्लेख है।

२. हिन्दुस्तानी पृष्ठ १८ जनवरी १९४०।

नाम स्मरण रहे । प्रस्तुत बात तो ऐसी ही है । शंकाकार बताते हैं कि प
और बाबूरामजी के घरानों में सम्बन्ध भी चला आ रहा है ।
और नन्ददासजी का सम्बन्ध तो गुरु-शिष्य का था ही अत तब से
सम्बन्ध स्थानान्तर से बना हुआ है । इसमें न तो कोई आश्चर्य की
विशेष महत्त्व की बात है । महत्त्वपूर्ण बात तो यही है कि स्वयं प
अपने को गुरु नरसिंहजी का वंशधर मानते और कहते हैं और सोरों
उन्हें उस गुरु का वंशज मानते हैं । इस बात में अविश्वास करन
जब अन्य प्रमाणों से भी नरसिंहजी का सोरों में होना सिद्ध हो
यह है कि सोरों के पण्डे अपनी सम्पत्ति के क्षेम के निमित्त अप
प्रकट करने में आनाकानी किया करते हैं । आग्रह करने पर
प्राप्त हुई वह यथास्थान दी जा चुकी है । अतएव गुरु नरसिंह
में उक्त शंका निराधार है ।

(ड) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की आपत्तियाँ और

हिन्
मिनि

पत्र संख्या २६०४

प्रियवर मारुडाजी

सस्नेह नमस्कार !

आपका १८.४.४८ का कृपापत्र मिला । आ
जौब प्रयाग विश्वविद्यालय के लेक्चरर तथा मेरे स
है । अस्त म गुप्तजी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि य
पं० चन्द्रबली पाण्डेय एम० ए० के भी कई लेख
वाली 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका में प्रकाशित हो चुक
पुस्तिका में अन्यथा सिद्ध नहीं कर पाये हैं ।
वासी के अतिरिक्त क्या कहा जाय ? मैं भा
मेरे अध्ययन का विषय भोजपुरी तथा अवधी
पश्चात् यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इनक
दूसरी नहीं थी । सोरों तो स्पष्ट अवधे
पुस्तक में अपने इतिहास के नवीन सं
अकाट्य है ।

परम्परा से गोस्वामीजी की ज
साहित्य के प्रथम इतिहास लेखक गार्सा
जिले ही में मानते हैं । यह पुस्तक
फ्रेंच भाषा में छपी थी । जब तक
तक गोस्वामीजी की जन्मभूमि था
गोस्वामीजी इस देश के

इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। गोस्वामीजी की सर्वश्रेष्ठ रचना 'विनय पत्रिका' समझी जाती है, जो शुद्ध और उत्कृष्ट ब्रजी में है उनके लोक-प्रिय रामचरित मानस की भाषा अवधी है जो सोरों की भी है और उनके पार्वतीमंगल और जानकी मंगल अवधी में हैं। गोस्वामीजी को तो दोनों भाषा-बोलियों पर अधिकार था। श्री सचपस्ती राधा कृष्णन् अथवा डॉ० रवीन्द्रनाथ ठाकुर को अंग्रेजी भाषा पर जो अधिकार है या था उसको बाह स्वयं अंग्रेज विद्वान् भी मानते हैं किन्तु कालान्तर में उनकी भाषा मात्र के आधार पर उन्हें इंगलैंड-जात सिद्ध करने की चेष्टा कितनी उपहासास्पद होगी। अतएव किसी कवि के जन्मस्थान के निर्णय के निमित्त भाषा के अतिरिक्त अन्य साक्ष्यों पर भी विचार अपेक्षित है।

(घ) यदि पं० रामचन्द्र शुक्ल ने राजापुर के पक्ष में भाषा-सम्बन्धी सुन्दर और उठक कल्पनाएँ की हैं, तो साथ ही पं० गोविन्दवल्लभ भट्ट और पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने सोरों के पक्ष में अनेक शब्द और तर्क उपस्थित किये हैं। डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव अपने प्रबन्ध में लिखते हैं कि "भाषा के आधार पर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि तुलसी जन्म-काल से बाल्यकाल तक सोरों या उसके आस-पास रहे"।[1]

(च) पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने रामायण के 'सूकर खेत' को सरयू-घाघरा संगम पर माना है। उस विषय में उन्हें जितनी सूचना तब प्राप्त थी उससे अधिक का उल्लेख तो पूर्वपक्ष रूप से मैंने सूकरखेत-सम्बन्धी अध्याय में कर दिया है। किन्तु *जिस सूकरखेत का उल्लेख 'रामचरित-मानस' में है उससे केवल सोरों का तात्पर्य है।* इस विषय में अनेक प्रमाण हैं। डॉ॰ श्यामसुन्दरदास के प्राचीन लेखों से यह बात स्पष्ट है कि सूकरखेत सोरों है पं० शुक्ल और डॉ० दास 'मूल गोसाईं चरित' के आविर्भाव से पूर्व सूकरखेत को सोरों ही मानते रहे।[2] १९४४ की 'सरस्वती' में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन ने रामायण के सूकरखेत से सोरों का ही अर्थ ग्रहण किया है। पं० भद्रदत्त शर्मा ने 'तुलसी-चर्चा' में सूकरखेत का विशद विवेचन किया है, और मुझे भी 'तुलसी के चमत्कार' में और प्रस्तुत ग्रन्थ में और अधिक प्रकाश डालने का अवसर प्राप्त हुआ है।

(४) डॉ॰ उदयनारायण तिवारी ने बार्थ द तासी (१८३९ ई०) का उल्लेख किया है। सम्भवतः वे विल्सन (१८११ ई०) का उल्लेख करना भूल गये हैं, किन्तु उक्त दोनों लेखकों की कृतियाँ तो गोस्वामीजी का जन्मस्थान हाजीपुर बताती हैं, राजापुर नहीं। तिवारीजी का स्वयं उक्त कृतियों में आस्था नहीं यदि होती तो वे गोस्वामीजी के जन्मस्थान-स्मारक का प्रस्ताव हाजीपुर के लिए करते राजापुर के लिए नहीं। क्या हाजीपुर में गोस्वामीजी का जन्म-स्थान मान लेने से उनका जन्म स्थान राजापुर में सिद्ध हो जाता है? विल्सन ने तुलसीदासजी के विषय में जहाँ अनेक भ्रमात्मक बातों का उल्लेख किया है वहाँ उनका जन्मस्थान भी है। जो आधार न वादी के लिए प्रमाण है और न प्रतिवादी के लिए ही उसके सिद्धासिद्ध करने से लाभ भी क्या?

---

१ पुनर्संगम की बात पृ० ११२-११७।

२ दे० पूर्वाध्याय।

भग ६० वर्ष पहले छप भी गया था। वह 'माहात्म्य' अकेला ही गोस्वामी तुलसीदास नन्ददास सूकरखेत (सोरों) गुरु नरसिंह रत्नावली, रामपुर-श्यामपुर आदि के विषय में साक्ष्य रूप से पर्याप्त है। १९७४ ई० का छपा बाँदा गजेटियर भी स्पष्ट रूप से बताता है कि गोस्वामी तुलसीदास सोरों (जिला एटा) के थे और उन्होंने राजापुर (जिला बाँदा) की नींव डाली थी राजापुर के बड़े-बूढ़े भी ऐसा ही कह चुके हैं।

(ख) कदाचित् यह कहना अनुचित न होगा कि लखनऊ विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष डॉ० दीनदयालु गुप्त सोरों-सामग्री की परीक्षा करने दो बार, एक बार डॉ० माताप्रसाद गुप्त से कुछ पहले और दूसरी बार उनसे एक वर्ष पश्चात् पधारे थे और दोनों बार उन्होंने उस सामग्री को प्रामाणिक समझा। सामग्री का जो भाग माताप्रसादजी को देखने को न मिल सका उसे दीनदयालुजी पहले ही देख चुके थे। अतः इस विषय में सन्देह के लिए कोई अवसर नहीं है।

२ "गोस्वामी तुलसीदास" नामक पुस्तिका का जो उल्लेख हुआ है उसके विषय में केवल यह निवेदन है कि वह पुस्तिका तुलसी-स्मारक समिति कासगंज ने प्रकाशित करायी थी। उसमें तुलसीदासजी का सोरों सिद्धान्त के अनुकूल सरस परिचय-मात्र था और टिप्पणी-रूप से उक्त सामग्री के कुछ प्रधान उद्धरण भी थे। वह पुस्तिका तो खण्डन-मण्डन से नितान्त दूर है। हाँ 'तुलसी चर्चा' नामक पुस्तक में जिसकी प्रति हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग के पुस्तकालय में पत्र से पहले ही विद्यमान थी खण्डन-मण्डन अवश्य है और विस्तृत खण्डन-मण्डन एवं अद्यतन अनुसन्धान का समावेश प्रस्तुत प्रबन्ध में भी हुआ है।

३ (क) सोरों की सामग्री इतनी प्रचुर है कि गोस्वामीजी के जन्म-स्थान निर्णय के विषय में कोरी कल्पना को महत्त्व नहीं देना चाहिए। मेरी विनीत सम्मति में 'रामचरितमानस' की भाषा की वास्तविक परीक्षा के लिए, पहले उसका एक ऐसा संस्करण तैयार होना चाहिए जिसमें सभी प्रसिद्ध हस्त लिखित प्रतियों के पाठान्तर और वर्तनी मिल सकें। मैंने जब सोरों के 'अरण्य काण्ड' की स्वयं नकल की और तत्पश्चात् उसका काशिराज की प्रति से मिलान किया तो मुझमें उपर्युक्त इच्छा का उदय हुआ। श्री शंभुनारायण चौबे ने अच्छा काम किया है किन्तु इस दिशा में अभी बहुत कुछ शेष है। यदि 'रामचरितमानस' का ऐसा संस्करण तैयार हो जाय तो तत्कालीन वर्तनियों और पाठान्तरों का ही नहीं अपितु गोस्वामीजी के मानसिक विकास का क्रमिक परिचय भी प्राप्त हो सकेगा ऐसी मेरी प्रबल धारणा है। इस सम्बन्ध में मैं अपने कुछ विचार दशम अध्याय में व्यक्त कर रहा हूँ।

(ख) एक बात और है। मान भी लिया जाय कि 'रामचरितमानस' की भाषा अवधी ही है तो इससे यह निर्णय नहीं हो जाता कि गोस्वामीजी का जन्म-स्थान एटा जिला में न था। सब लोग जानते हैं कि विश्वविद्यालय के छात्र कुछ वर्षों में ही भाषाओं में कितने पटु हो जाते हैं। तुलसीदासजी ने संवत् १६०४ वि० में सोरों को छोड़ा था और तब से वे अयोध्या राजापुर, काशी आदि पूर्व के ही प्रदेशों में रहने रहे और उन्होंने १६३१ वि० में 'रामचरितमानस' को प्रारम्भ किया अर्थात् सोरों को छोड़ने के २७ वर्ष पश्चात्। इतने समय में उन्हें यदि अवधी पर भी अधिकार हो गया तो

इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। गोस्वामीजी की सर्वश्रेष्ठ रचना 'विनय पत्रिका' समझी जाती है, जो शुद्ध और उत्कृष्ट ब्रजी में है उनके लोक-प्रिय रामचरित मानस की भाषा अवधी है जो सोरों की भी है और उनके पार्वतीमंगल और जानकी मंगल अवधी में हैं। गोस्वामीजी को तो दोनों भाषा-बोलियों पर अधिकार था। श्री सर्वपल्ली राधा कृष्णन् अथवा डॉ॰ रवीन्द्रनाथ ठाकुर को अंग्रेजी भाषा पर जो अधिकार है या था उसको बाक स्वयं अंग्रेज विद्वान् भी मानते हैं किन्तु कालान्तर में उनकी भाषा मात्र के आधार पर उन्हें इंगलैंड-जात सिद्ध करने की चेष्टा कितनी उपहासास्पद होगी। अतएव किसी कवि के जन्मस्थान के निर्णय के निमित्त भाषा के अतिरिक्त अन्य साक्ष्यों पर भी विचार अपेक्षित हैं।

(ग) यदि पं॰ रामचन्द्र शुक्ल ने राजापुर के पक्ष में भाषा-सम्बन्धी सुन्दर और सतर्क कल्पनाएँ की हैं तो साथ ही पं॰ गोविन्दवल्लभ भट्ट और पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने सोरों के पक्ष में अनेक तथ्य और तर्क उपस्थित किये हैं। डॉ॰ देवकीनन्दन श्रीवास्तव अपने प्रबन्ध में लिखते हैं कि "भाषा के आधार पर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि तुलसी जन्म-काल से बाल्यकाल तक सोरों या उसके आस-पास रहे"।[1]

(घ) पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने 'रामायण के सूकर खेत' को सरयू-घाघरा संगम पर माना है। उस विषय में उन्हें जितनी सूचना तब प्राप्त थी उससे अधिक का उल्लेख तो पूर्वपक्ष रूप से मैंने सूकरखेत-सम्बन्धी अध्याय में कर दिया है। किन्तु जिस सूकरखेत का उल्लेख 'रामचरित-मानस' में है उससे केवल सोरों का तात्पर्य है। इस विषय में अनेक प्रमाण हैं। डॉ॰ श्यामसुन्दरदास के प्राचीन लेखों से यह बात स्पष्ट है कि सूकरखेत सोरों है, पं॰ शुक्ल और डॉ॰ दास 'मूल गोसाईं चरित' के आविर्भाव से पूर्व सूकरक्षेत्र को सोरों ही मानते रहे।[2] १६५४ की 'सरस्वती' में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन ने रामायण के सूकरखेत से सोरों का ही अर्थ ग्रहण किया है। पं॰ भद्रदत्त शर्मा ने 'तुलसी चर्चा' में सूकरखेत का विशद विवेचन किया है, और मुझे भी 'तुलसी के परिवार' में और प्रस्तुत ग्रन्थ में और अधिक प्रकाश डालने का अवसर प्राप्त हुआ है।

(४) डॉ॰ उदयनारायण तिवारी ने मार्सी द तासी (१८३६ ई॰) का उल्लेख किया है। सम्भवतः वे ग्रियर्सन (१८११ ई॰) का उल्लेख करना भूल गये हैं, किन्तु उक्त दोनों लेखकों की कृतियाँ तो गोस्वामीजी का जन्मस्थान हाजीपुर बताती हैं, राजापुर नहीं। तिवारीजी का स्वयं उक्त कृतियों में आस्था नहीं यदि होती तो वे गोस्वामीजी के जन्मस्थान-स्मारक का प्रस्ताव हाजीपुर के लिए करते राजापुर के लिए नहीं। क्या हाजीपुर में गोस्वामीजी का जन्म-स्थान मान लेने से उनका जन्म स्थान राजापुर में सिद्ध हो जाता है? ग्रियर्सन ने तुलसीदासजी के विषय में जहाँ अनेक भ्रमात्मक बातों का उल्लेख किया है वहाँ उनका जन्मस्थान भी है। जो आधार न वादी के लिए प्रमाण है और न प्रतिवादी के लिए ही उसके सिद्धासिद्ध करने से लाभ भी क्या?

---

१ तुलसीदास की भाषा, पृ॰ ११२, ११०।
२ दे॰ परिशिष्ट।

राजापुर के सम्बन्ध में 'तुलसी चरित' 'मूल गोसाईं चरित' और 'घट रामायण' की छीछालेदर राजापुर का पक्ष लेने वाले डॉ॰ श्यामबिहारी मिश्र पं॰ रामचन्द्र शुक्ल डॉ॰ श्यामसुन्दर दास और डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त ने भी की है। वास्तव में ये तीनों पुस्तकें इतिहास की दृष्टि से एकदम अप्रामाणिक हैं, जैसा कि मैं भी इनकी विस्तृत आलोचनाओं में बता चुका हूँ।

सोरों की हस्तलिखित सामग्री विपुल है प्रचुर है। इसका सविस्तर उल्लेख 'तुलसी-चर्चा' रत्नावली' 'तुलसीदास का दरबार' और प्रस्तुत प्रबन्ध में हो चुका है। इस सामग्री में ईसवी सन् १५८६, १६०० १६१२, १६४० १७५२, १७६७ १७७२ १८०७ १८१२, १८१७, १८१८ की एवं अन्य हस्तलिखित पुस्तकें हैं। प्रसिद्ध उल्लेखनीय पुस्तकों में हैं—वराह पुराण ब्रह्म पुराण धर्म-संहिता पृथ्वीराज रासो आईन-ए-अकबरी। अंग्रेजी-काल की छपी पुस्तकों में उल्लेखनीय हैं—१८७० ई॰ का छपा सूकर क्षेत्र माहात्म्य १८७४ ई॰ का बुन्देलखण्ड गजेटियर १८८६ ई॰ का इम्पीरियल गजेटियर, १९०८ ई॰ का इम्पीरियल गजेटियर (प्रोविंशल सिरीज) १९०९ ई॰ का बाँदा जिले का गजेटियर। यह सब छपा साहित्य भी गोस्वामी तुलसीदास को सोरों (जिला एटा) का मानता है और गजेटियर यह भी बताते हैं कि गोस्वामीजी ने राजापुर (जिला बाँदा) की नींव डाली।

राजापुर की प्राचीन परम्परा भी राजापुर के पक्ष में नहीं सोरों के ही पक्ष में है। उक्त गजेटियर तो सोरों के पक्ष में हैं ही। रेवरेंड एडविन ग्रीव्ज (१८९९ ई॰) अयोध्यावासी श्री सीतारामशरण भगवान्प्रसाद (१९११) और बाबू शिवनन्दनसहाय (१९१६ और १९२१ ई॰) ने राजापुर में पूछ-ताछ करके लिखा कि गोस्वामीजी का जन्म राजापुर में नहीं हुआ जैसा कि उन्हें वहाँ के बड़े-बूढ़ों से ज्ञात हुआ। राजापुर की तुलसी-स्मारक-समिति के भी एक कर्मचारी ने लिखा है कि "गोस्वामीजी का जन्मस्थान सोरों या उसी के आसपास कहीं होना चाहिए।"

सोरों-सामग्री

चतुर्थ भाग यदि सोरों-सामग्री न होती, तो ?

प्राक्कथन—यदि गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-चरित के विषय में, निष्पक्ष निर्णय के निमित्त उस समग्र सामग्री को विचार-क्षेत्र से बाहर रखें जो एटा-बदायूँ जिलों से प्राप्त है और अब मुख्यतः सोरों-कासगंज में विद्यमान है, तो विचारधारा की दो दिशाएँ हैं—निषेधात्मक और भावात्मक। इन्हीं दो रूपों में क्रमशः तुलसीदास जी के जीवन-चरित पर प्रकाश वांछनीय है।

(क) निषेधात्मक प्रामाण्य

निषेधात्मक प्रमाण निम्नांकित हैं:—

(१) राजापुर का समर्थन करने वाली हस्तलिखित पुस्तकें अप्रामाणिक हैं। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने 'मूल गोसाईं चरित' को श्यामसुन्दरदास ने 'तुलसी चरित' को अप्रामाणिक बताया है और इसलिए गोस्वामीजी का जीवन चरित विभिन्न रूप में उपस्थित हुआ है। पं० रामनरेश त्रिपाठी और मिश्रबन्धुओं को भी इन पोथियों में आस्था नहीं रही। मेरी समझ में भी ये दोनों ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं क्योंकि दोनों में ही इतिहास के विरुद्ध अनेक भयंकर भूलें विद्यमान हैं, मैंने इन ऐतिहासिक व्यतिक्रमों का दिग्दर्शन इसी प्रबन्ध में अन्यत्र कराया है।

(२) श्री रामबहोरि शुक्ल ने कतिपय सरकारी सनद आदि के आधार पर कुछ युक्तियाँ उपस्थित की हैं किन्तु राजापुर की किसी भी सनद में गोस्वामीजी की जन्म-भूमि का उल्लेख नहीं है अर्थात् उक्त सनदों में—

(क) यह कहीं नहीं लिखा कि राजापुर गोस्वामीजी का जन्मस्थान है और

(ख) उनसे यह भी विदित नहीं होता कि राजापुर गोस्वामीजी के जन्म से पहले विद्यमान था। निवास-स्थान और जन्मस्थान में तो बड़ा अन्तर है, बहुत से लोग कहीं पैदा होते हैं और जीविकादि के निमित्त कहीं रहने लगते हैं। राजापुर में जो प्रमाण विद्यमान हैं उनसे तो केवल यह सिद्ध होता है कि गोस्वामीजी ने राजापुर की नींव डाली। यह बात जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है बुन्देलखण्ड गजेटियर में (राजापुर के इतिहास का वर्णन करते समय) अब से चौरासी वर्ष पूर्व छपी हुई है और बाँदा जिले के पीछे के प्रकाशित गजेटियरों में छपी मिलती है और यही बात राजापुर के बड़े-बूढ़े भी कहते रहे हैं। १९२१ ई० तक इस प्राचीन जनश्रुति का प्रमाण है।

(३) पूर्वीय जिलों के कुछ सम्मान्य व्यक्ति अनुसंधान के निमित्त राजापुर गये और उन्हें यह पता चला कि तुलसीदासजी का जन्म राजापुर में नहीं हुआ था। इस विषय में प्रमाण ये हैं—

(क) श्री अयोध्याजी प्रमोदवन-कुटिया निवासी सीता रामशरण भगवानप्रसाद विरचित श्री भक्तमाल सटीक वार्तिक प्रकाश पुस्तक पृष्ठ ७४१ नवलकिशोर प्रेस

चाहिए। (९) अभी लिखा जा चुका है कि तुलसी साहब का वृत्तान्त 'घट रामायन' के अन्त में मिलता है। यह उनके किसी भक्त की रचना है जो पीछे से जोड़ दी गयी है क्योंकि 'घट रामायन' का रचना प्रारम्भ-काल पुस्तक के भीतर १६१६ है और पुस्तक के अन्त में १६१८ है और भाषा शैली भी भिन्न है। यह भूल तुलसी साहब के किसी शिष्य की है ऐसी अधिक सम्भावना विद्वानों को प्रतीत होती है। (१०) प्रकाशक लिखते हैं कि तुलसी साहब अवसर हाथरस से बाहर कम्बल ओढ़े दूर-दूर शहरों में चले जाया करते थे। यह सम्भव है कि वे कभी राजापुर या उसके निकट पहुँचे हों और किसी से सुनकर ही यह जानकारी प्राप्त की हो कि गोस्वामी तुलसीदासजी राजापुर में रहे थे अतः तुलसी साहब ने भूल से निवास-स्थान को जन्मस्थान समझ लिया हो। ऐसी भूल असम्भव नहीं जबकि राजापुर में यह जनश्रुति थी कि तुलसीदास ने राजापुर को बसाया और वहीं रहे थे। (११) तुलसी साहब हाथरस के मूल निवासी न थे और न इनका जन्म ही हाथरस में हुआ था जैसा कि उनके उपलब्ध जीवन-चरित्र में लिखा हुआ है। वे कभी-कभी हाथरस आते रहते थे किन्तु प्रायः घूमते रहते थे। (१२) हाथरस में कोई प्राचीन जनश्रुति ऐसी नहीं है कि गो॰ तुलसीदास का जन्म राजापुर में हुआ था। तुलसी साहब ने किसी जनश्रुति का उल्लेख 'घट रामायन' में नहीं किया जो कुछ उन्होंने लिखा वह तथाकथित अपने पूर्व-जन्म की स्मृति के आधार पर लिखा। हाथरस के किसी भी अन्य व्यक्ति ने राजापुर को गोस्वामीजी की जन्मभूमि नहीं लिखा। किन्तु बाँदा गजटियर में तो स्पष्ट उल्लेख है कि राजापुर की जनश्रुति के अनुसार गोस्वामीजी सोरों के थे और उन्होंने राजापुर की नींव डाली। यह प्राचीन जनश्रुति कम से कम १६२१ ई॰ तक विद्यमान रही। (१३) तुलसी साहब का उपदेश उन लोगों को होता था जो अपनी जीविका मस्तिष्क की अपेक्षा हाथ-पैर के परिश्रम से अधिकतर प्राप्त करते थे और जिनमें विद्या का प्रचार कम था। अतः उनकी बातों और धारणाओं के निराकरण और प्रतिवाद का अवसर ही न आता था हाथरस का शिष्ट समाज उन्हें नहीं जानता और गजटियर चुप है। (१४) तुलसी साहब की अपेक्षा बाँदा गजटियर ही अधिक प्रामाणिक है क्योंकि यह किसी एक व्यक्ति की कल्पना पर आधारित नहीं है अपितु जनश्रुति के आधार पर है—ऐसी जनश्रुति के आधार पर जिसकी जाँच पीछे से विद्वानों के द्वारा कई बार हो चुकी है। कुछ और बातें भी विचारणीय हैं।

(क) तुलसी साहब के पूर्व-जन्म का वृत्तान्त 'घटरामायन' के प्रायः अन्त में समाप्ति से कुछ पृष्ठ पूर्व है। सिद्धान्त अथवा सम्प्रदाय का प्रतिपादन करते समय जन्म-वृत्तान्त या तो पुस्तक के आरम्भ में होना चाहिए अथवा ठीक अन्त में। किन्तु यह वृत्तान्त न तो आरम्भ में है न ठीक अन्त में ही। यह निराधार क्षेपक है जैसा कि डॉ॰ बड़थ्वाल समझते हैं।

(ख) पुस्तक की भीतर की भाषा से वृत्तान्त की भाषा और विवेचन के अन्दर जिनमें संवतों का (विशेषतः जन्म के संवत् का) उल्लेख किया गया है शिथिल अतिशून्य और सम्यानुपात-हीन हैं।

(ग) सभी अन्य तिथियों के साथ मंगलवार जोड़ा गया है। अतः हो सकता है

कि जन्मतिथि गुणाक्षरन्याय से ठीक हो गई है।

(ख) 'बटरामायन' की पांडुलिपि जैसा कि मिश्रबंधुओं ने वैवाहिक विवरण में उल्लेख किया है, १८४२ संवत् अर्थात् १७८५ ई० की है। किन्तु इससे पहले ग्रियर्सन के जो नोट्स १८९३ में प्रकाशित हुए थे उनमें गो० तुलसीदास के जन्म का सन् १५१२ (अथवा संवत् १५६९ वि०) दिया गया था। अतएव संभव है ग्रियर्सन के आधार पर, अथवा उन व्यक्तियों के आधार पर जिन से ग्रियर्सन ने १५६९ की सूचना प्राप्त की तुलसी साहब के चेलों ने 'बटरामायन' के ग्रन्थ की ओर उक्त संवत् का उल्लेख कर दिया हो।

(ग) 'मूल गोसाईं चरित' नामक पुस्तक में गोस्वामी तुलसीदास का जन्म १५५४ वि० दिया गया है जो राजापुर का ही पक्ष लेने वाली सामग्री 'बटरामायन' के कथन से मेल नहीं खाती। सोरों-सामग्री के अनुसार सं० १५८९ विक्रम में रत्नावली का विवाह गो० तुलसीदास से हुआ था।

(घ) 'घटरामायन' के उस ग्रंथ में जहाँ तुलसी साहब के पूर्व जन्म का वृत्त दिया गया है कहीं तो प्रथम पुरुष का और कहीं उत्तम पुरुष का प्रयोग हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि यह ग्रंथ तुलसी साहब के किन्हीं चेलों का प्रक्षेप है।

(ख) भावात्मक प्रामाण्य

यदि गोस्वामी तुलसीदास से सम्बन्ध रखने वाली उस समग्र सामग्री को निष्पक्ष विचार के हेतु अलग रख दिया जाय जो एटा-जनपद् जिले से प्राप्त है और जो अब मुख्यतः सोरों-कासगंज में विद्यमान है तो भी गोस्वामीजी के वास्तविक जीवन-चरित पर प्रकाश डालने वाली ऐसी प्रचुर सामग्री भारत के विभिन्न कोनों में विद्यमान है जो सोरों-सामग्री का समर्थन करती है। वह इस प्रकार है —

(१) (क) नाभादास-कृत भक्तमाल। नाभादासजी गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे। यह पुस्तक लगभग १६४२ वि० में लिखी गयी थी। इसके अनुसार गो० तुलसीदास राम भक्त थे।

(ख) उक्त भक्तमाल में नाभादास ने नन्ददास के विषय में लिखा है कि *नन्ददासजी रामपुर ग्राम के निवासी और चन्द्रहास के बड़े भाई थे। ये सुकुल थे।* सोरों-सामग्री के अनुसार नन्ददासजी चन्द्रहास के सगे बड़े भाई थे। गो० तुलसीदास जी उनके ताऊ के पुत्र और नन्ददास से बड़े थे। वे लोग रामपुर ग्राम में रहते थे जो सोरों से लगभग दो मील पूर्व की ओर है और वे सनाढ्य सुकुल ब्राह्मण थे।

(२) 'श्री गुसाईंजी के सेवक चारि सम्प्रदाय की वार्ता गोकुल में चैत्र सुदी ५, १६९७ वि० में लिखी गयी जो अब विद्या-विभाग कांकरोली में विद्यमान है। इसमें लिखा है कि नन्ददासजी सनाढ्य ब्राह्मण थे और गो० तुलसीदास के छोटे भाई थे। इस हस्तलिखित प्रति का अवलोकन डॉ० दीनदयालु गुप्त ने किया है और उन्हें इसकी प्राचीनता पर संदेह नहीं है। डॉ० हरिहरनाथ टण्डन के शोधानुसार "यह पुस्तक सर्वथा प्रामाणिक है'।[१]

१ वार्ता-साहित्य का ऐतिहासिक एवं प्रामाणिक अध्ययन (डॉ० हरिहरनाथ टंडन) भाग १ पृ० १८१।

(३) श्री अष्टछाप की वार्ता श्री हरिरायजी-कृत भावप्रकाश वाली १७५२ वि० की प्रति, सिद्धपुर पाटन से प्राप्त अब कांकरोली में विद्यमान है। इसमें लिखा है कि नन्ददास सनाढ्य ब्राह्मण रामपुर के रहने वाले और तुलसीदासजी के छोटे भाई थे। तुलसीदासजी नन्ददास को भाव-भ्रम से विमुक्त कराने के लिए समझाते रहते थे। नन्ददास, श्री रणछोड़दासजी के दर्शन के लिए द्वारका जाना चाहते थे, तुलसीदासजी नाहीं करते थे किन्तु नन्ददास ने उनकी बात नहीं मानी। जब देखा कि नन्ददास द्वारका जाये बिना नहीं मानेंगे तो यात्रा-संघ के मुखिया की देखभाल में नन्ददास को द्वारका भेज दिया। एक बार एक यात्रा-संघ मथुरा से गया जा रहा था मार्ग में वह संघ काशी टिका तुलसीदासजी को जब इस संघ का पता चला तो उन्होंने नन्ददास के बारे में पूछताछ की और उन्हें विदित हुआ कि नन्ददास तो वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित हो गो० विट्ठलनाथ के कृपापात्र हो गये हैं। तब तुलसीदासजी ने संघ को नन्ददास के लिए पत्र दिया और वह पत्र कृष्ण कासिद और गोकुल के गुसाईंजी के द्वारा नन्ददास को मिला। उस पत्र में तुलसीदास ने इस बात पर खेद प्रकट किया था कि नन्ददासजी राम को छोड़ कर कृष्ण के भक्त बन गये। नन्ददास ने अपनी कृष्ण भक्ति के समर्थन में अपना उत्तर तुलसीदासजी को कासिद के हाथ काशी भेजा। तदनन्तर एक समय तुलसीदासजी नन्ददास से मिलने स्वयं काशी से मथुरा आये, और नन्ददास को पूछते-पूछते गोकुल भी। गोकुल की शोभा देखकर तुलसी बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें शोभा देख यह प्रतीत होने लगा कि नन्ददास ऐसे सुन्दर स्थान को छोड़ कर नहीं जायेंगे। वहाँ से पता लगाते श्रीनाथजी के मन्दिर में आये। फिर उन्होंने मथुरा में आकर यमुनाजी के दर्शन किये वहाँ से वे गिरिराजजी गये और अन्त में परासोली में नन्ददास से मिले। तुलसीदासजी ने नन्ददास से अपने साथ चलने के लिए कहा किन्तु नन्ददास व्रज छोड़ने के लिए सहमत न हुए। तुलसीदास और नन्ददास के उत्तर प्रत्युत्तर बड़े सुन्दर हैं। नन्ददास ने तुलसीदासजी को सूरदासजी से मिलाया। गोवर्द्धननाथजी के मन्दिर में पहुँचकर तुलसीदासजी ने भगवान् कृष्ण को माथा नहीं नवाया। तब नन्ददास की विनति पर भगवान् ने राम-रूप धारण किया और तुलसीदासजी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। नन्ददासजी तब तुलसीदासजी को गो० विट्ठलनाथ के दर्शन कराने गोकुल ले गये परिचय कराया और तुलसीदासजी की इच्छानुसार गो० विट्ठलनाथ ने अपने पाँचवें पुत्र रघुनाथजी और पुत्र-वधू जानकीजी के दर्शन कराये और तुलसीदासजी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। तदनन्तर गो० विट्ठलनाथजी से पुष्टि-मार्ग की महिमा सुनकर तुलसीदासजी काशी लौट गये। एक दिन नन्ददास के मन में आयी कि जैसे तुलसीदासजी ने भाषा में रामायण रची है वैसे ही मैं भी भाषा में भागवत रचूँ। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा[1] और डॉ० दीनदयालु गुप्त वार्ताओं को ऐतिहासिक अनुसन्धान के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण समझते हैं।

(४) श्री गोकुलनाथजी के वचनामृतों का संग्रह जतीपुरा की लगभग सं० १७०० की प्रति श्री द्वारकादास पुरुषोत्तम कांकरोली के पास है। इससे स्पष्ट है कि

---

१ अष्टछाप, भूमिका।

जब नन्ददास गोस्वामी विट्ठलनाथ के सेवक बने थे तो गोस्वामी तुलसीदास ने नन्ददास से अपना मत-भेद प्रकट किया।

(५) बावन वचनामृत गो० श्री काका वल्लभजी महाराज-कृत। इससे प्रकट है कि तुलसीदास मर्यादामार्ग में श्री रामचन्द्रजी के भक्त वैष्णव थे उन्होंने रामायण नामक ग्रन्थ पद्य-बद्ध चौपाई कवित्त में बनाया। उनके भाई नन्ददास थे जो वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित हुए और रामपुर के निवासी थे। तुलसीदासजी नन्ददास की सुध लेने व्रज में आये और उन्होंने उन्हें कृष्ण-भक्ति से हटाकर राम भक्ति की ओर लाना चाहा।

(६) 'भक्तिरस बोधिनी' अर्थात् 'भक्तमाल' पर प्रियादास की टीका जो उन्होंने १७६९ वि० में की। इससे विदित होता है कि गो० तुलसीदास अपनी सुसराल गये और पत्नी ने उन्हें जो वचन कहे वे उपदेशात्मक सिद्ध हुए। यह स्पष्ट है कि जब गोस्वामीजी ने वैराग्य लिया और वे अपनी सुसराल से सदा के लिए चले तो पत्नी से उनका वार्तालाप हो चुका था। सेवादासजी ने वृन्दावन में बैठकर मार्ग शीर्ष शुक्ला १० बृहस्पतिवार को सं० १८१४ वि० में प्रियादास पर जो टीका रची उसमें लिखा है कि गो० तुलसीदास भादों की अंधरात्रि में अपनी पत्नी रत्नावली से मिलने गंगापार बदरी गये थे।

(७) 'अष्ट सखामृत'—गोस्वामी गोकुलनाथ-कालीन प्राचीन कवि कृत। यह पुस्तक श्री रामप्रसाद वैद्य के यहाँ है। इसका विवरण 'ब्रज भारती' (माघ २००० वि० १४) में छपा था। इसमें इस प्रकार लिखा है—ब्रज में यह बात प्रसिद्ध है कि कृष्ण-भक्त नन्ददास राम भक्त तुलसीदासजी के छोटे भाई सनाढ्य ब्राह्मण सुकुल और कवि थे। नन्ददास के ग्राम का नाम रामपुर और इष्टदेव का नाम रामचन्द्र था किन्तु पीछे से उन्होंने ग्राम का नाम श्यामपुर और ग्राम के सरोवर का नाम श्यामसर बदल कर रख दिया और स्वयं कृष्ण भक्त बन गये तथा चन्द्रहास को जो उनके छोटे भाई थे अपनी पत्नी पुत्र और मकान का भार सौंप कर सूकरखेत से आकर व्रज में रहने लगे। एक बार इनकी इच्छा से तुलसीदासजी को भगवान् कृष्ण ने राम के रूप में दर्शन दिये और तुलसीदास ने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया। यह देखकर कि भाई तुलसीदास ने रामायण को भाषा में लिखा है नन्ददास ने भी भागवत को भाषा में रचा। सोरों-सामग्री में रामपुर का विवरण और भी अधिक विस्तार से है।

(८) 'अष्ट सखामृत'—प्राचीन कविकृत १७६७ वि० की प्रति गोस्वामी श्री १०८ गोकुलनाथजी महाराज (बड़ा मन्दिर, भुलेश्वर बम्बई) के पुस्तकालय में विद्यमान है। विषय उपर्युक्त है।

(९) 'दो सौ बावन वैष्णव वार्ता' सूरदास ठाकुरदास द्वारा संपादित लक्ष्मीवेंकटेश्वर छापाखाना बम्बई १९४० वि०। इसमें इस प्रकार छपा है—नन्ददासजी तुलसीदासजी के छोटे भाई थे। वे जाति के ब्राह्मण थे। नन्ददास द्वारका जाना चाहते थे पर तुलसीदासजी श्री रामचन्द्रजी के अनन्य भक्त थे इसलिए उन्होंने नन्ददास को द्वारका जाने की अनुमति नहीं दी। तो भी नन्ददास चले गये। जब तुलसीदासजी ने काशी में सुना कि नन्ददास गोसाईं विट्ठलनाथ के शिष्य हो गये हैं तो उन्होंने नन्ददास को

एक पत्र लिखा कि तुमने इष्टदेव को बदल कर अच्छा काम नहीं किया इसका उत्तर नन्ददास ने तुलसीदासजी को भेजा पत्र-व्यवहार पढ़ने के योग्य है। एक दिन नन्ददास के मन में आयी कि जैसे तुलसीदासजी ने भाषा में रामायण रची वसी ही मैं भी भाषा में भागवत लिखूं किन्तु परिस्थितिवश उन्हें यह विचार त्यागना पड़ा। एक बार तुलसीदासजी नन्ददास से मिलने काशी से आये और नन्ददास से काशी बसने के लिए आग्रह किया किन्तु नन्ददास सहमत न हुए। उत्तर प्रत्युत्तर पठनीय है। नन्ददास ने तुलसीदासजी को गोवर्धननाथजी के दर्शन राम रूप में कराये और तुलसीदासजी ने राम-रूप कृष्णजी को प्रणाम किया। गोकुल में आकर तुलसीदासजी ने गोस्वामी विट्ठलनाथ के दर्शन किये किन्तु उन्हें साष्टांग प्रणाम नहीं किया। जब गोसाईं विट्ठलनाथ को कारण का पता लगा तो उन्होंने अपने पाँचवें पुत्र श्रीरघुनाथजी और पुत्रवधू जानकीजी के दर्शन कराये और तुलसीदास ने उन्हें साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। दो सौ बावन वैष्णव वार्ता में बड़ी हो जाने के भय से अष्टछापी वैष्णवों के वृत्तान्त कुछ छोटे कर दिये गये हैं जो स्वाभाविक ही था।

(९) 'सम्प्रदाय कल्पद्रुम' को श्री विट्ठलनाथ भट्ट ने १७२९ वि० में लिखा जो लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस (बम्बई) में १९५० विक्रम संवत् अर्थात् १८९३ ई० में छपा। इसमें लिखा है कि गो० तुलसीदासजी गो० विट्ठलेश की प्रभुता देखने के लिए १६२० वि० के लगभग ब्रज में आये गोवर्द्धनधारी के दर्शन करने गये और उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि मेरा मस्तक तब नमेगा जब कृष्णजी राम-रूप में धनुष बाण हाथ में लेंगे। भगवान् ने तुलसी की इच्छा के अनुसार दर्शन दिया। तुलसीदासजी ने गो० विट्ठलनाथ से शरण-मन्त्र चाहा पर उन्होंने तुलसीदासजी को रामभक्त समझ कर अपने पाँचवें पुत्र श्री रघुनाथ के पास भेज दिया। तुलसीदासजी ने जाकर उनके दर्शन किये और वे भक्ति की याचना कर अपने स्थान को चले गये। इस ग्रन्थ से यह भी पता चलता है कि श्री वल्लभाचार्यजी कम से कम दो बार और विट्ठलनाथजी भी एक बार, सोरों में गंगा-पूजनादि के निमित्त पधारे थे।

(१०) 'भक्ति विलास' के लेखक श्री महादेवप्रसाद त्रिपाठी ने लिखा है कि तुलसीदासजी की धर्म-स्थिति तारी में हुई थी।

(११) स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्शन एण्ड हिस्टोरिकल एकाउण्ट ऑव द नार्थ वेस्टर्न प्रोविंस ऑव इण्डिया। एडविन टी० एटकिनसन द्वारा सम्पादित प्रथम जिल्द बुन्देलखण्ड इलाहाबाद १८७४ ई० का छपा। इसके पृष्ठ ५७२ १ पर लिखा है — ऐसी जनश्रुति है कि अकबर के शासन-काल में तुलसीदास नाम के एक महात्मा जो सोरों परगना अलीगंज, जिला एटा के निवासी थे यमुना किनारे उस जंगल में आये जहाँ अब राजापुर स्थित है। उन्होंने वहाँ एक मन्दिर बनवाया और वे स्वयं प्रार्थना ध्यान में प्रवृत्त हो गये। उनकी धार्मिकता के कारण बहुत से अनुयायी आकर वहाँ बसने लगे और जनसंख्या बढ़ने पर लोग धर्म और व्यापार दोनों की ओर प्रवृत्त हुए। तुलसीदास के उपदिष्ट नियमों का पालन आज भी राजापुर में होता है।

(१२) इम्पीरियल गजेटियर, जिल्द एकादश डब्ल्यू डब्ल्यू० हंटर कृत, द्वितीय संस्करण १८८६ ई०। इसके पृष्ठ १८५ १ पर लिखा है कि अकबर के

शासन-काल में तुलसीदास नामक एक भक्त ने सोरों से आकर राजापुर की नींव डाली, और बहुत से अनुयायियों को आकर्षित किया।

(१३) इम्पीरियल गजटियर ऑव इण्डिया यू० पी० द्वितीय (प्राविंशल सिरीज) कलकत्ता १६०८। इसके पृष्ठ ५० पर लिखा है—ऐसी जनश्रुति है कि रामायण के प्रसिद्ध रचयिता तुलसीदास ने राजापुर की नींव डाली और वहीं उनका निवास-स्थान भी बताया जाता है।

(१४) डिस्ट्रिक्ट गजटियर्स ऑव दि यूनाइटेड प्रॉविंसेज जिल्द २१ बाँदा १६०९। इसके पृष्ठ २८९ पर लिखा है कि अकबर-काल में तुलसीदास नामक एक महात्मा जो सोरों (तहसील कासगंज जिला एटा) के रहने वाले थे यमुना किनारे उस जंगल में आये जहाँ अब राजापुर स्थित है। ये वे ही तुलसीदास हैं जिन्होंने रामायण लिखी है।

(१५) स्केच ऑव द रिलीजस सेक्ट्स ऑव दी हिन्दूज एच० एच० विलसन कृत नवीन संस्करण १८६१ ई० पृष्ठ ६३ ६४ पर लिखा है कि भक्तमाल के अनुसार तुलसीदास अपनी पत्नी में बड़े अनुरक्त थे और उसी के उपदेश से राम भक्ति में प्रवृत्त हो संसार से विरक्त और वृन्दावन में नाभाजी से परिचित हुए।

(१६) 'द प्रोलोग टु द रामायण आव तुलसीदास' स्पेसीमन ट्रांसलेशन एफ० एस० ग्राउजकृत जर्नल आव एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल जिल्द ४५, १८७६ ई०। इसमें लिखा है कि गो० तुलसीदास ने सूकर खेत में शिक्षा पायी और यह भी बताया गया है कि सूकर खेत किस प्रकार 'सोरों' शब्द में परिवर्तित हो गया। रामायण के सम्पूर्ण अंग्रेजी अनुवाद (पंचम संस्करण १८९१ ई०) की भूमिका में 'भक्ति सिन्धु' का उल्लेख है जिसमें तुलसीदासजी के पिता का नाम आत्माराम लिखा है।

(१७) 'नोट्स ऑन तुलसीदास' जी० ए० ग्रियर्सनकृत 'इंडियन एण्टिक्वेरी जिल्द २२ सन् १८९३ ई०। ग्रियसन महोदय ने जनश्रुति के आधार पर यह सूचना दी है जो सोरों-सामग्री से मुख्यतः मेल खाती है—यों तुलसीदास के पिता थे आत्माराम माता हुलसी गुरु नरहरि, श्वशुर दीनबन्धु पाठक पत्नी रत्नावली और पुत्र तारक। ग्रियसन निम्नलिखित छन्द जनश्रुति के रूप में देते हैं —

दुबे आत्माराम है पिता नाम जग जान।
माता हुलसी कहत सब तुलसी के गुन खान।
अद्भुत बखरन नाम करि गुर को सुनिये साथ।
प्रगट नाम नहिं कहत जग कहे होत अपराधु
दीनबन्धु पाठक कहत ससुर नाम सब कोइ
रत्नावलि तिय नाम है सुत तारक गत होइ।

उन्होंने सूकर क्षेत्र अर्थात् सोरों में शिक्षा पायी। जन्म-स्थान के लिए कई स्थान बताये जाते हैं यथा—तारी (दुआब में) हस्तिनापुर, हाजीपुर, (चित्रकूट के निकट) बाँदा जिले का राजापुर। किन्तु इन सब में तारी का दावा सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होता है—यथा कि ग्रियर्सन लिखते हैं। (ध्यान देने की बात है कि गंगा-यमुना के दुआब में

और कासी नदी गंगा के बीच सहावर जिला एटा में तारी-नामक एक ग्राम विद्यमान है जहाँ सोरों-सामग्री के अनुसार गोस्वामी तुलसीदासजी की माता का जन्म हुआ था)। तुलसीदासजी ने अपने गुरु के नाम की ओर बालकांड में केवल संकेत किया है, क्योंकि गुरु का नाम नहीं लेना चाहिए। ग्रियर्सन ने जिस जनश्रुति का विवरण दिया है वह पठनीय है। यों तो जन-श्रुति में मिलावट हो जाया करती है और इधर की बातें उधर हो जाती हैं फिर भी उक्त जनश्रुति में सत्य का भावपूर्ण आभास मिलता है।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि उक्त जनश्रुतियों और गाथाओं का संकलन ग्रियर्सन महोदय ने अनेक विद्वानों के विपरीत महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी और बाबू रामदीनसिंह के परामर्श से किया जो उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों के निवासी हैं किन्तु यह जनश्रुति उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में स्थित सोरों-सामग्री से अधिकांश में मेल खाती है।

ग्रियर्सन यह भी लिखते हैं कि तुलसीदासजी एक बार किसी से वृन्दावन गये। वहाँ कृष्ण-भक्त नाभादासजी से उनकी भेंट हुई और वे एक दिन वहाँ कुछ वैष्णवों के साथ एक मन्दिर में गोपालकृष्ण के दर्शन करने गये। कुछ वैष्णवों ने व्यंग्य कसा कि तुलसीदासजी अपने इष्टदेव राम को छोड़कर अन्य देव के मन्दिर में दर्शनार्थ आये हैं। बस तुलसीदासजी बोल उठे—

का बरनौं छबि आज की भले बिराजौ नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै धनुष बाण लो हाथ।

तुलसीदासजी की अभिलाषा पूर्ण हुई और भगवान् कृष्ण ने राम के रूप में दर्शन दिये।

१८ (क)—ग्रियर्सन के उत्तरकालीन परिश्रमी लेखकों ने यथा जे० एम० मेकफी (१९३० ई०) किसान कीने आदि ने उक्त जनश्रुति के ही आधार पर तुलसी का जीवन-वृत्तान्त दिया है।

(ख) स्वर्गीय मिश्रबन्धु भी तुलसीदास के सम्बन्ध में हुलसी और आत्माराम को माता पिता और रत्नावली को पत्नी मानते हैं।

(ग) गोस्वामी तुलसीकृत रामायण के टीकाकार पं० सीताराम मिश्र (लखीमपुर खीरी) लिखते हैं कि नन्ददासजी सनाढ्य ब्राह्मण और तुलसीदासजी के छोटे भाई थे। और यों तुलसीदासजी का विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या से हुआ था और उनके पुत्र का नाम तारक था।

(घ) 'रामचरित मानस रामायण टीका सहित' टीकाकार सूरजभान अग्रवाल लिखते हैं कि तुलसीदास ने अपना विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या से कर लिया।

(ङ) तुलसीकृत रामायण संजीवनी टीका में पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र १९०४ ई० में लिखते हैं कि तुलसीदास का विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ।

(च) तुलसीकृत रामायण टीकाकार रामेश्वर भट्ट (१९०२ ई०) लिखते हैं कि दीनबन्धु पाठक ने गुसाईंजी को एक सुयोग्य रामभक्त जानकर अपनी गुणवती कन्या का विवाह इनके साथ कर दिया।

(छ) गोस्वामी तुलसीकृत रामायण। टीकाकार पं० नारायण प्रसाद मिश्र

(लखीमपुर खीरी) १९६० ई० में लिखते हैं कि तुलसीदास का विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ और उससे तारक नाम का एक पुत्र भी हुआ था।

(ज) रामचरित मानस सटीक। डॉ० श्यामसुन्दर दास लिखते हैं कि तुलसी दास के गुरु स्मार्त-वैष्णव थे। सोरों-सामग्री भी उन्हें स्मार्त-वैष्णव समझती है।

(झ) रामचरित मानस सटीक। टीकाकार पं० बाबूराम मिश्र (हिन्दी पुस्तक एजेंसी कलकत्ता) लिखते हैं कि तुलसीदास स्मार्त वैष्णव थे।

(ञ) बनारस कामिल के पं० रामजस ने १८६१ ई० में श्री तुलसीदासकृत रामायन में तुलसी गुरु के नाम लिखे हैं नरहरि नरहरिदास नृसिंह।

(ट) बैजनाथजी कुर्मी ने १८९० ई० में 'रामायण तुलसीकृत' के १६वें पृष्ठ पर गुरु नरहरि का और १६१वें पर माता हुलसी का उल्लेख किया है।

(ठ) 'मानस परिचर्या परिशिष्ट प्रकाश' (१८९८ ई०) के १३वें पृष्ठ पर 'सूकरखेत' का अर्थ किया गया है सोरों घाट जहाँ वाराह अवतार भयो।

(ड) 'मानस वचन' (१९११ ई०) में श्री चन्द्रमौलि सुकुल ने सूकरक्षेत्र को सोरों माना और हुलसी आत्माराम दीनबन्धु आदि नामों का उल्लेख किया।

(ढ) दास पुरुषभक्त श्री वास्तव ने श्री रामचरितमानस' (१९८६ वि०) में आत्माराम हुलसी नरहरिदास दीनबन्धु रत्नावली तारक और सूकरखेत (=सोरों) का उल्लेख किया है।

(ण) रामचरित मानस सटीक। भूमिका में पं० रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं वो तुलसीदास सनाढ्य शुक्ल ब्राह्मण थे।

(त) रासपंचाध्यायी। सम्पादक स्व० बाबू राधाकृष्णदास ने लिखा है कि दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता में नन्ददासजी सनाढ्य ब्राह्मण और तुलसीदास के छोटे भाई थे।

(१९) भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र (१९०७-१९४२ वि०) ने भक्तमाल में नन्ददास को तुलसीदासजी का अनुज और गो० विट्ठलनाथ का सेवक बताया है और यह भी लिखा है कि नन्ददास ने भाषा में भागवत रची किन्तु गो० विट्ठलनाथजी के कहने से उसे यमुनाजी में डाल दिया जैसा कि वल्लभ-सम्प्रदाय के अन्य ग्रन्थों में भी लिखा है।

(२०) गोस्वामी तुलसीदास का जीवन चरित रानी कैवल कुवरि बैजपुरा रियासत सरीला जिला हमीरपुर, १९५२ वि० में छपा था। उसके अनुसार तुलसी दास सनाढ्य ब्राह्मण थे और अपनी पत्नी में अत्यन्त आसक्त होने के कारण गंगा को पार कर अपनी सुसराल पहुँचे थे। ध्यान देने की बात है कि राजापुर तो यमुना किनारे है हाँ सोरों-सामग्री के अनुसार वे गंगा पार करके अपनी सुसराल बदरिया पहुँचे थे।

(२१) श्री अयोध्याजी प्रमोद वन कुटिया निवासी सीतारामशरण भगवान प्रसाद विरचित श्री भक्तमाल सटीक वार्तिक पुस्तक (नवलकिशोर प्रेस लखनऊ) सन् १९१३ ई०। ७४१वें पृष्ठ पर वार्तिककार लिखते हैं: जन्म-स्थान की खोज कई ठिकाने लिखते हैं बाँदा जिले में यमुनातीर राजापुर को बहुत लोग कहते हैं परन्तु राजापुर

आपका जन्मस्थान नहीं। श्री गोस्वामीजी का जन्मस्थान गंगा वाराह क्षेत्र (सोरों के प्रान्त अन्तर्वेद में) तारी नामक ग्राम था तारी था यह वार्ता वहाँ जाके भली प्रकार निश्चय की है।

(२२) रेवरेंड एडविन ग्रीव्स (तुलसी ग्रन्थावली निबंधावली, पृष्ठ ४५ पर) लिखते हैं। पर जन्म कहाँ हुआ? लोग बतलाते हैं राजापुर उनकी जन्म भूमि है। पर इस बात के विरुद्ध और लोग कहते हैं कि नहीं, उनका जन्म वहाँ नहीं हुआ पर गुसाईंजी ने वहाँ एक मंदिर बनवाया या गाँव बसाया। फिर हस्तिनापुर उनकी जन्मभूमि बतलाई गई और हाजीपुर भी (जो चित्रकूट के पास है) पर इन बातों का कुछ प्रमाण नहीं। फिर औरों ने कहा वह तारी में जन्मे पर दूसरे लोग कहते हैं—नहीं उनके माता पिता वहाँ रहते थे पर यह तुलसीदास के उत्पन्न होने के पहले था। इन सब बातों से अनुमान होता है कि अब तक ठीक-ठीक निर्णय नहीं हुआ कि तुलसीदास का जन्म कहाँ हुआ?

(२३) शिवनन्दनसहायजी (माधुरी पृष्ठ ४ अगस्त १९२३ ई०) जन्मस्थान के सम्बन्ध में लिखते हैं कि अभी तक ठीक-ठीक निर्णय नहीं हुआ। राजापुर तथा तारी के बीच झगड़ा है। यद्यपि राजापुर में आपका स्मारक निर्मित हुआ था तथापि वहीं के कुछ बूढ़े लोग कहते हैं कि वह गोसाईंजी का जन्म-स्थान नहीं। विरक्त होने पर वे कुछ दिन वहाँ रहे अवश्य थे और प्रायः आया करते थे।

सहायजी यह भी सूचित करते हैं कि "किसी किसी का मत है कि 'तारी' और 'सोरों' के बीच में कहीं पर गोसाईंजी का ससुराल था"।[1] इन शब्दों से स्पष्ट है कि सोरों-पक्ष नवीन नहीं यह पहले से ही उत्तर प्रदेश के पूर्वी भागों में विद्यमान था।

(२४) लाला सीतारामजी मानते हैं कि गोस्वामीजी सनाढ्य थे और तारी में उत्पन्न हुए। (अयोध्या काण्ड' में तुलसीदासजी का जीवन चरित्र १९२१ ई०)।

(२५) श्री गोविन्दवल्लभ भट्ट माधुरी १९२९। भट्टजी लिखते हैं—श्री तुलसी-स्मारक सभा राजापुर के अधिकारी[2] से जब इसी जन्म-स्थान के विषय में पत्र व्यवहार किया तो उत्तर में उन्होंने 'प्राइवेट' शब्द के साथ इस बात को स्वीकार किया कि गोस्वामीजी का जन्म-स्थान सोरों या उसी के पास-पास कहीं होना चाहिए।

(२६) सोरों सूकरखेत गंगा किनारे है इस विषय में प्रमाण हैं—गर्ग संहिता वराह पुराण, ब्रह्म पुराण पृथ्वीराजरासो आईने अकबरी वीरमित्रोदय एट' गजेटियर, आर्केलोजिकल सर्वे।

(२७) गो० तुलसीदास का जन्मस्थान (आत्म-परिचय) निम्नलिखित उन कतिपय अन्य वचनों में उपलब्ध है:—

(क) दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर (विनय पत्रिका)

(ख) भलि भारत भूमि भले कुल जन्म
समाज सरीर भलो लहिके। (कवितावली)

---

१. श्री गोस्वामी तुलसीदासजी १९१६ ई० पृ० ५५।
२. श्री गंगाप्रसाद जी, सेक्रेटरी, १० नवम्बर १९११ ई०।

(ब) रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी तुलसिदास हित हिय
हुलसी सी। (रामचरित मानस)
(प) कलनि कलक तजबी कलमि (विनय पत्रिका)
(फ) राम को गुलाम नाम राम बोला राख्यो राम (विनय पत्रिका)
(च) राम बोला नाम हौं गुलाम राम साहिको। (कवित्ता०)
(छ) कर्यो पुलार कल कृपा सिन्धु नर रूप हरि (रामचरितमानस)
(ज) मैं पुनि निज गुरसन सुनी कथा सो सूकर खेत (रामचरितमानस)
(झ) तुलसी तिहारो घर जायो है घर को (कवितावली)
(ञ) बद बारहिं बार सरीर धरौं
रघुबीर को ह्वै तब तीर रहौंगो (क)
(ट) को पहुँचाव रामपुर तम अवसान। (बरवै)
(ठ) कतन मनुवम जानु घर बकल कला गुन धाम
अविनासी अमय अमल भो मधु तनु धरि राम। (तु० स०)[1]
(१८)—तुलसी तेरी झोंपड़ी सलकहियन के पास।
कौन करे कोई करे तू क्स होय उदास॥

श्री रामनरेश त्रिपाठी अक्तूबर १९३१ में सोरों पधारे थे। किन्तु उनको उक्त दोहा पहले से ही स्मरण था और सोरों आकर उन्हें पता चला कि तुलसीदासजी का घर सोरों के योगमार्ग मोहल्ले में कसाइयों के निकट था।

(२६) श्री रामनरेश त्रिपाठी और भट्टजी ने कुछ ऐसे शब्दों की ओर ध्यान दिलाया है जो सोरों में ही या उसके आसपास बोले जाते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें गुजरात पंजाब और राजपूताना से आने वाले बोलते हैं यथा—

केवल सोरों के तामो और जो आंवरा चकजोरि कुटिल कीट जिवरा भो सो टोटक।

पंजाबी राजस्थानी-गुजराती भाय जायो मीजो (हाथ फेरा) मैन (मैण मोम) बोलें आठ गाँठी, मूकी बियो (दूसरा) म्हाको छाक (वाक्य) मारि अथवा मार (बधम) बेरा (याम), इत्यादि।[2]

डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव की सम्मति में तुलसीदासजी की मुद्रालंकृत पंक्तियों से 'राजापुर विषयक जीवन-वृत्त की अपेक्षा सोरों-विषयक जीवन-वृत्त की अधिक पुष्टि होती है।' और डॉ० श्रीवास्तव के ही शब्दों में "भाषा के आधार पर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि तुलसी जन्म-काल से बाल्यकाल तक सोरों या उसके पास-पास रहे।"

(३०) गोस्वामी तुलसीदासजी ने जवासा शब्द का प्रयोग कई बार अपने कुछ ग्रन्थों में किया है यथा: जिमि जवास परें पावस पानी',[5] अर्कजवास पात बिनु

---

१ इस विषय का सविस्तर विवेचन प्रथम अध्याय में हुआ है।
२. भाषा-सम्बन्धी विशेष विवरण के लिए पंचदश अध्याय देखिये।
३ और ४ तुलसीदास की भाषा पृ० २६२ २६७।
५. मा २, ५४ २।

सुकुल' और 'स्याम' निरर्थक हैं। सुकुल का अर्थ है शुक्ल (श्वेत) और सुकुल अथवा सुकुल नामक ब्राह्मण तथा स्याम का अर्थ है श्याम अथवा असित तथा श्री कृष्ण। तुलसीदास के गृहत्याग के पश्चात् नन्ददासजी कृष्ण भक्त हो गये थे और उन्होंने भक्ति के आवेश में अपने जन्म-ग्राम के नाम को रामपुर से स्यामपुर में परिवर्तित कर दिया। राम भक्त पति की पत्नी के नाते रत्नावली को कदाचित् यह परिवर्तन अच्छा न लगा क्योंकि पति वियोग में तो पूर्वजों का सुकुल बराना बसे श्याम सा प्रतीत होने लगा। वह कहती है 'यह सूकरखेती भूमि भगवान् वराह के चरणों से पवित्र और भागीरथी गंगा के तट पर है यह आपकी जन्मभूमि भी है न जाने आप इसको छोड़ कहाँ चले गये?'

उपालम्भ और खेद—रत्नावली को खेद है कि गाजे बाजे तथा धूम-धाम के साथ मेरा विवाह हुआ और मैं पति प्रिया भी थी किन्तु एक दिन रात को सहसा बिना किसी आडम्बर के मेरे प्राणनाथ मुझे सोती छोड़कर चले गये। पति-वियोग के विषय में उसका पश्चात्ताप उपालम्भपूर्ण है—

कर गहि लाए नाथ तुम बादन बहु बजवाइ
पदहु न परसाए तजत रतनावलिहि जगाइ। १७।
सोवत सों पिय जगि गए जगिहु गई हौं सोइ
कबहुँ कि अब रतनावलिहि आइ जगावहि मोइ। १९।¹
रतन प्रेम डंडी तुला पला जुरे इकसार
एक बार पीड़ा सहै एक गेह संभार। ४५।
दीनबन्धु कर घर पली दीनबन्धु कर छाँह
तौउ भई हौं दीन अति पति त्यागी मो बाँह। १६।

काल-निर्देश—रत्नावली सूचित करती है कि मैं विवाह के समय द्वादश द्विरागमन के समय षोडश तथा पति-वियोग के समय सत्ताइस वर्ष की थी। संवत् १६०४ वि० मेरे लिए बड़ा अशुभ रहा क्योंकि उसी वर्ष मेरे पति ने गृह का और माता ने देह का त्याग किया—

दीन बारहीं कर गह्यो सोरहिं गवन कराइ
सत्ताइस लागत करी नाथ रतन असहाइ। ४१।
सागर धरत ससी रतन संवत भो दुखदाइ
पिय वियोग जननी मरन करन न भूल्यो जाइ। ४२।

पश्चात्ताप—रत्नावली ने पश्चात्तापपूर्वक लिखा है कि अप्रासंगिक शब्दों के कारण पति से मेरा वियोग हुआ था। किन्तु वास्तव में मैं निर्दोष थी

सुभहु बचन अप्रासुके बरत रतन प्रकृत के साथ
जो मो कहुँ पति प्रेम संग ईस प्रेम को पाथ। ४।
कहि अनुसंतो बचन हूँ परिनति हिये बिचारि
जो न होइ पछिताव उर रतनावलि अनुहारि। ५।

---

१ सुनि सुनीति कुनीति इत आवत ही रह छोर।
उरतेहि तो अबलो तुलसी गबिन न होर। (तु स ७,५८)
यह इस बारे में रत्नावली के उपालम्भ का उत्तर है।

धिक मो कहुँ भो बचन लगि मो पति लह्यो बिराग
भई बियोगिनि निज करनि रहूँ उड़ावति काग। १०।
हौं न नाथ अपराधिनी तऊ छमा करि देउ
चरनन दासी जानि निज बेगि मोरि सुधि लेउ। ११।

देवर—रत्नावली ने अपने देवर नन्ददासजी का उल्लेख किया है जो वय में उनके पति से छोटे थे। राम भक्त गोस्वामी तुलसीदास ने उनके द्वारा रत्नावली के पास राम भक्ति का सन्देश भेजा था—

मोहि दीनो संदेस पिय अनुज नन्द के हाथ
रतन समुझि जनि पृथक मोहि जो सुमिरति रघुनाथ। ८७।

पति की राम भक्ति—रत्नावली को ज्योंही खेद हुआ कि मेरे पति के हृदय में तो भगवान् रामचन्द्र ने मेरा स्थान ले लिया त्योंही स्वयं उसका समाधान हुआ कि मेरा भाग्य सुन्दर है क्योंकि जिसके हृदय में राम बसते हैं उसका वास मेरे हृदय में है अतएव मेरे हृदय में एक के निवास से दोनों का निवास है—

राम बसत भूषित भयो पिय हिय निपट निकाम
अब किमि भूषित होइ है तहँ रतनावलिहि ठाम। २०।
राम जासु हिरदै बसत सो पिय मम उर धाम
एक बसत दोऊ बसहिं रतन भाग अभिराम। २१।

वियोग की तीव्रता—रत्नावली ने पति वियोग का तीव्र अनुभव किया जिसकी अभिव्यक्ति उसने न्यूनातिन्यून तेईस दोहों में की है—

हाय सहज ही हौं कह्यो लह्यो बोध हिरदेस
हौं रतनावलि जँचि गई पिय हिय काँच बिसेस। १।
जनमि बदरिका कुल भई हौं पिय कंटक रूप
बिंधत दुखित ह्वै चलि गए रतनावलि उर भूप। २।
हाय बदरिका बन भई हौं बामा बिस बेलि
रतनावलि हौं नाम की रसहिं बस्यो बिस मेलि। ३।
कहि अनुचित पवन हूँ परिमल हिये बिचारि
जो न होइ परिताप उर रतनावलि अनुहारि। ४।
धिक मोकहुँ मो बचन लगि मो पति लह्यो बिराग
भई बियोगिनि निज करनि रहूँ उड़ावति काग। १०।
जदपि गए घर सों निकरि मो मन निकरे नाहिं
मन सों निकरहु ता दिनहि जा दिन प्रान नसाहिं। १२।
नाथ रहौंगी मौन हौं धारहु पिय जिय तोष
कबहुँ न दउँ उराहनो देउँ न कबहूँ दोष। १३।
छमा करहु अपराध सब अपराधिनि के आइ
बुरी भली हौं आपकी तजउ न लेउ निभाइ। १४।
कबहुँ कि ऐहैं नाथ रवि कबहुँ कि होइ बिहान
कबहुँ कि बिकसै उर कमल रतनावलि सुखखान। १८।

सुबरन पिय संग हौं लसी रतनावलि सम कांचु
तिहि बिछुरत रतनावली रही कांच मन सांचु । ५४ ।
हौं न अधम पिय सों भई सेवा करि इन हाथ
अब हौं पावहु कौन बिधि सदगति दीनानाथ । १२ ।
कबहुं रह्यो नवनीत सो पिय हिय भयो कठोर
किमु न द्रवहि हिम उपल सम रतन फिरहि जिन मोर । ३६ ।
असन बसन भूषन भवन पिय बिन कछु न सुहाइ
भार रूप जीवन भयो छिन छिन जिय अकुलाइ । ४० ।

वियोग का जीवन—वियोग में इस पतिव्रता ने अपना जीवन किस प्रकार यापन किया वह निम्नांकित पंक्तियों में निहित है। पतिपद-सेवा से विहीन हो उसने पति पादुका-सेवा को अंगीकार किया। असमर्थ व्यक्ति की नौका रज्जु जीवन का अवलम्ब देती है—

पति पद सेवा सों रहित रतन पादुका सेइ
गिरत नावसों रज्जु तेहि सहित पार करि देइ । ३४ ।

(ख) रत्नावली की शैली

रत्नावली का गौरव—रत्नावली ने अधिक नहीं लिखा ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि उसके केवल २०१ दोहे और कतिपय पद उपलब्ध हुए हैं। उसने रचना के लिए दोहे नामक चार चरण वाले छन्द को अपनाया जिसके जगणारम्भ-हीन विषम चरणों में त्रयोदश और सम चरणों में एकादश मात्राएँ होती हैं तथा सम चरणों के अन्तिम दो स्वर क्रमशः दीर्घ और लघु होते हैं। हिन्दी के उन कवियों में जिन्होंने शिक्षा-प्रद उद्देश्यों के निमित्त इस छन्द का सफलतापूर्वक उपयोग किया है वे हैं तुलसीदास रहीम बिहारी वृन्द आदि। इस दिशा में रत्नावली का महत्त्व कम नहीं। उसकी लेखनी से कोई ऐसा निस्सरण न हुआ जिसे उसने माधुर्य प्रदान न किया हो।

वृत्त—छन्द परीक्षा की कसौटी पर उसका वृत्त ठीक उतरता है। हाँ केवल चार स्थलों पर अर्थात् ८७ ११५, १२८ और १४४ संख्यक दोहों में अ आ ग नामक अक्षरों की ध्वनि को कोमलता प्रदान करने की आवश्यकता है, और लगभग उतने ही स्थलों में पूर्ण बिन्दु का उच्चारण अर्द्ध-बिन्दु-सम होना चाहिए। प्रथम प्रकार का व्यतिक्रम तो न्यूनाधिक प्रचलित है द्वितीय तो वर्तनी का विषय है। उसकी रचना यतिभंग दोष से सर्वथा मुक्त है। अतएव यह कथन कि रत्नावली की रचना में छन्द सम्बन्धी दोष नहीं है अयुक्ति नहीं। यह बात बड़े गौरव की है कि वह ऐसे छन्द का उपयोग में सफल हुई है जो कदाचित् लघुतम अतएव अभिव्यंजन में कठिनतम है। कुशल कवि ही गागर में सागर भर सकते हैं।

अर्थगाम्भीर्य—रत्नावली ने उच्च विचारों को छोटे छन्दों में ही व्यक्त करने की प्रशंसा की है, मुक्तक का आदर्श भी यही है। उसके शब्द हैं—

रतन भाव भरि भूरि जिमि कवि पद भरत समास
तिमि उपरहु लघु पद करहि अरथ गंभीर बिकास ।।१६२।।

इससे स्पष्ट है कि यह विदुषी शब्दबहुल वाक्य की अपेक्षा अर्थगम्भीर वाक्य को अधिक प्रशस्य समझती है। उसने स्वयं माधुर्यपूर्ण सूक्ति को अपनाया है अतः पादपूर्ति अथवा अन्त्यानुप्रास के निमित्त शब्दान्वेषण की आवश्यकता कभी न पड़ी। उसकी रचना में ऐसा कोई शब्द प्रवेश न कर सका जो व्यर्थ हो अथवा अनावश्यक। अतएव प्रतीत होता है कि छंद और कोष पर उसका अधिकार था यह कोई कम बात नहीं।

भाषा—इसमें कोई मतभेद नहीं कि रत्नावली ने ब्रजभाषा में लिखा जो उसकी बोली थी। मैंने 'ब्रजभाषा' शब्द का प्रयोग किया है क्योंकि उसकी भाषा ब्रजभाषा तो थी किन्तु वह ब्रजभाषा ऐसी नहीं जैसी उसके समकालीन ठेठ ब्रज के निवासी महाकवि सूरदास की थी। रत्नावली और तुलसीदास उस तीर्थ-स्थान के निवासी थे जहाँ ब्रज और अवध निवासियों का सम्पर्क होता था अतः गोस्वामीजी का 'रामचरितमानस' और रत्नावली के दोहे ब्रजभाषा में हैं। कारक-चिह्नों और सर्वनाम के रूपों में इस भाषा का प्रभाव स्पष्ट है। उसने केवल दो तुर्की शब्दों का प्रयोग किया है अर्थात् 'तुपक' और 'चकमक' का अन्यथा उसकी रचना विदेशी प्रभाव से विमुक्त है। हो सकता है उसे विदेशी शब्दों के प्रचुर प्रयोग का अवसर ही न मिला हो क्योंकि उसका लालन-पालन कट्टर हिन्दू माता-पिता के द्वारा हुआ और विवाह भी ऐसे घराने में जो पौरोहित्य पर निर्भर था इसके अतिरिक्त भी साहित्य में उसकी प्रवृत्ति संस्कृत में रमती और गंगा-तटस्थ तीर्थ में उसका निवास। यद्यपि उसके पति का गृह 'मतकटियों' अर्थात् कसाइयों के मध्य अथवा सन्निकट था तथापि सम्भव है उसने उनके स्त्री-समाज से घनिष्ठ सम्पर्क को औचित्यहीन समझा हो। यह भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे अपढ़ गँवार और उनकी स्त्रियाँ हिन्दू-वातावरण में अरबी-फारसी के शब्दों का प्रचुर प्रयोग करती भी थे।

हाँ रत्नावली ने तद्भव अर्थात् संस्कृत के अपभ्रष्ट शब्दों का प्रयोग अवश्य किया है। प्रायः सारे शब्द इस प्रकार के हैं। अवशिष्टों में अधिकतर ऐसे हैं जिन्हें तत्सम कहा जाता है। अल्पसंख्यक ऐसे शब्द हैं जो स्थानीय प्रान्तीय अथवा अनिश्चित व्युत्पत्ति के हैं। उदाहरणार्थ 'पुनीत' शब्द का प्रयोग हुआ है। वैयाकरणों की सम्मति से पवित्र के अर्थ में 'पूत' ही शुद्ध है यद्यपि महाभारत में भी इसका प्रयोग हुआ है।

रीतिकालीन कुछ कवियों की भाँति रत्नावली शब्दाडम्बर में नहीं पड़ी। इस विषय में कदाचित् उसने जानबूझकर कोई प्रयत्न नहीं किया। उसके वाक्य व्याकरण से असम्मत नहीं। उसका लक्ष्य समासोक्ति है अतएव 'होना' क्रिया के कुछ रूप तथा कतिपय संयोजक शब्द छोड़ दिये गये हैं किन्तु इससे अर्थ अस्पष्ट नहीं होता।

रत्नावली का तर्क आत्मानुमान तथा स्वानुभव से प्रवाहित है, किन्तु अधिकतर प्रथम से ही। उसके तर्क में बल है और विवादोत्पादकता भी। उसकी शैली में है समानता किन्तु प्रहार भी लोकरुचि किन्तु नम्रता भी।

अलंकार—रत्नावली के दोहों में अलंकारों का अभाव नहीं। उसने अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है, किन्तु उसने अपने कवित्व को प्रकाशित करने की भावना से जान-बूझ कर ऐसा नहीं किया। उसकी भाषा शिष्ट (स्टैंडर्ड अनिमेटेड) अप्रयुक्त अथवा नितान्त नूतन प्रयोगों से रहित किन्तु सरल तथा प्रचलित है। इसमें सन्देह नहीं

कि उसकी रचना में अनेक सबल विशेषताएँ विद्यमान हैं किन्तु उनसे तो भाव को सुस्पष्टता ही प्राप्त होती है। उसके दोहों के द्वितीय और चतुर्थ चरणों में अन्त्यानुप्रास सर्वत्र विद्यमान रहता है अन्य प्रकार के अनुप्रास का स्वाभाविक प्रयोग भी बड़ा रुचिकर है।

विषय—रत्नावली के काव्य का विषय है अपने तथा अपने वंश के सम्बन्ध में आकस्मिक आत्मपरिचय तथा पति वियोग-जन्य शोक का वर्णन। इसके अतिरिक्त उसके काव्य का विषय है—स्त्री जाति को सतीत्व-सदाचार का उपदेश गृहस्थ-सम्बन्धी आवश्यक सुमन्त्र एवं पति माता-पिता सम्बन्धी मित्र अज्ञात व्यक्तियों के प्रति व्यवहार। उच्चतम दर्शन विषयक सुख और स्त्री शिक्षा पर भी यत्र-तत्र विचार प्रकट किये गये हैं जिनका विवरण अलग दिया जायगा।

रस—उसके प्राय सभी दोहे जिनका अपने व्यक्तित्व और वंश से विशेषतया वियोग से सम्बन्ध है, करुण विप्रलम्भ' से ओतप्रोत हैं। जगन्नाथ पंडित के अनुसार यह रस पति-पत्नी के उस प्रेम में विद्यमान रहता है जिसमें जीवित पति अथवा पत्नी के वियोग से उत्पन्न शोक भी प्रधान मात्रा में विद्यमान हो। इसके उदाहरण हैं दोहे संख्यक १ २ ३ ८ १० १५ २० ३२। ये निस्सन्देह विप्रलम्भ के उदाहरण हैं। अत इनकी गणना शृंगार रस में होनी चाहिए किन्तु पति-मिलन के अनिश्चय एवं शोकातिरेक के कारण यह करुण की ओर प्रवृत्त हैं। मिलन की नितान्त अनिश्चितता तो प्रेमी की मृत्यु के ही समकक्ष है। फलत इस रस को उक्त दोनों रसों का मिश्रण समझ कर 'करुण विप्रलम्भ' कहना उचित होगा। किन्तु कुछ ऐसे दोहे भी हैं जिनमें पति-मिलन की सुदूर आशा विद्यमान है अत ११ १४ २७ ३७ ४१ और ४४ संख्यक दोहों को शुद्ध विप्रलम्भ का उदाहरण समझना समीचीन रहेगा।

रत्नावली की रचना में एक और रस विद्यमान है जिसे शान्त रस कह सकते हैं। अभिनवगुप्त जगन्नाथ और मम्मट ने भी इस रस को माना है। प्रथम पैंतालीस दोहों के अतिरिक्त शेष सभी इस रस से परिपूर्ण हैं। कदाचित् इस विषय में जगन्नाथ पण्डित का मतभेद हो क्योंकि उनके मतानुसार इस रस की व्याप्ति तो प्रार्थना-ज्ञान द्वारा संसार-विरक्ति के विषय में होती है अर्थात् उस शान्ति के वर्णन में जो वेदान्त तथा अन्य दर्शन-शास्त्रों के अध्ययन द्वारा नित्य और अनित्य के विवेचन से उपलब्ध होती है। किन्तु उक्त रस के विरोधी-उदाहरण से जो उन्होंने उपस्थित किया है ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें जगद्भक्ति को शान्त रस का अंग मान लेना अभीष्ट नहीं रति में आचार-मिश्रण को तो और भी कम। अत उनके मत से रत्नावली का अड़तालीसवाँ दोहा शान्त रस का उदाहरण नहीं होना चाहिए। किन्तु मेरी विनीत सम्मति में तो उसमें शान्त रस है क्योंकि यदि यह रति का उत्पादक होता तो शृंगार रस होता किन्तु वह तो किसी संवेग को उत्पन्न नहीं करता। वह हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क को अधिक बोधित करता है। अतः उस में जो स्थायी भाव है वह केवल भाव (फ्रीलिंग) है संवेग नहीं। मेरी समझ में कोई भी स्थायीभाव स्थायीभाव नहीं कहा जा सकता यदि वह तत्सम्बन्धी संचारी भाव को उत्पन्न न करे। अतएव रति तब तक रति नहीं जब तक वह प्रेम के संचारी भाव को थोड़े समय के लिए भी प्रेरित न करे। वह शोक जो रुलाता नहीं

अथवा किसी प्रकार का खेद व मानसिक कष्ट नहीं देता करन नहीं। यह आवश्यक है कि हास्य रस किसी पाठक श्रोता अथवा द्रष्टा को हँसने-मुस्कराने का अवसर दे हाँ यदि वह व्यक्ति किसी कठोरतर पदार्थ का न बना हो अथवा अतिमानव या उप-मानव न हो। इसी भाँति शान्त रस मानव को निर्वेद, आनुकूल्य मानसिक सामंजस्य स्थिरता और संविद्हीन-तन्मयता प्रदान करता है। मेरी सम्मति है कि शान्त रस में सभी प्रकार का वह काव्य सम्मिलित है जो उपदेश आदि के द्वारा शान्ति-तत्त्व को पोषित करता है। रत्नावली के अवयव एक सौ छप्पन दोहे विद्यमान हैं जिनमें शान्त रस निहित है।

कौशल—रत्नावली का कवित्व वास्तव में प्रतिभाशाली है। उसकी कल्पना और कला कवि-गुण क साक्षी हैं। कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे। 'दीनबन्धु' उसके पिता का नाम था जिसका उसने एक ही दोहे में किस चातुर्य से दो बार उपयोग किया है, जिसका अर्थ भगवान् भी होता है। 'दीन' शब्द तो विरोधाभास सूचक है। वह यमक का प्रयोग करती हुई कहती है कि यद्यपि दीनबन्धु के घर में मेरा पालन-पोषण हुआ तथापि मुझे इतना दीन होना पड़ा—

दीन-बन्धु कर घर पली दीनबन्धु कर छाँह
तोउ भई हौं दीन अति पति त्यागी मो बाँह ।१६।

सत्रहवें दोहे के 'मुकुर' और 'स्याम' सम्बन्धी श्लेष कितने उत्कृष्ट हैं। रत्नावली के मन का जो मुकुर उनकी उपस्थिति में उज्ज्वल था वह उनके वियोग में उसे स्याम प्रतीत होने लगा ग्राम वन तुल्य हो गया और रत्नों की अवलि कांति हीन हो गयी। अपने इस भाव को प्रकट करते हुए उसने यह भी इंगित कर दिया है कि उसके पति के चले जाने क पश्चात् नन्ददासजी ने अपने जन्म-ग्राम 'रामपुर' का नाम श्यामपुर रख दिया था—

सजन सजनवन मुकुर मन मुकुर यह भयो पिय स्याम
रत्नावलि आभा गई तुम बिन बन सम गाम ।१७।

पच्चीसवें दोहे में पति-नाम को किस कौशल से व्यक्त किया है। हिन्दु-नारी होने के नाते वह अपने पति का नाम सीधे नहीं लेती किन्तु अपने काव्य में वह उस नाम को अमर कर देना चाहती थी अतएव उसने किस अनिंद्य कौशल से पर्यायोक्ति का उपयोग किया है—

जासु दलहिं लहि हरषि हरि हरत भगत भवरोग
तासु दास पद दासि ह्वै रतन लहत कत सोग ।२५।

रत्नावली का वैदग्ध्य दर्शनीय है। वह अपने भाग्य की प्रशंसा करती है कि मेरे पति के हृदय में भगवान् राम विराजमान हैं और मेरे हृदय में पति-देव। अतः मेरे हृदय में दोनों हैं—राम और तुलसीदास।

राम जासु हिरदे बसत सो पिय मम उर धाम
एक बसत दोऊ बसहिं रतन भाग अभिराम ।२६।

भक्ति का प्रकाशन कितना प्रशस्त है। हिन्दु-पत्नी कितनी संकोचशीला होती है यह उसके व्यवहार से स्पष्ट है। स्त्री-सुलभ लज्जा के कारण वह संकोचवश भी

अतएव पति के रहते वह उनकी यथेष्ट सेवा न कर सकी और उनके चले जाने के पश्चात् तो अवसर ही न मिला—

पति सेवत रतनावली सकुची धरि मन लाज
सकुचि गई कछु पिय गए सक्यो न सेवा साज ।१३।

विवाह और अन्तिम विदाय के समय उसके प्रति तुलसीदासजी का व्यवहार कितना स्व विरोधी रहा। उन्होंने विवाह के समय तो रत्नावली का पाणिग्रहण किया किन्तु विराम के समय वे चुपके से खिसक गये। पाणि-ग्रहण के समय तो बाजे-बाजे के साथ सबके समक्ष प्रथम हाथ बढ़ाने वाले पति देव थे किन्तु विदाय के समय उन्होंने एकान्त में पत्नी को जगाकर पैर छूने का अवसर भी न दिया।

कर गहि लाए नाथ तुम बादन बहु बजवाइ
पदहु न परसाए तजत रतनावलिहि जगाइ ।१४।

रत्नावली का रूपक सुन्दर है। उसने अपने पिता की तुलना माली से अपनी लता से तुषार की वियोग से और बसन्त की अभीप्सित सुख से की है—

मलिया सींची विविध विधि रतन लता करि प्यार
नहिं बसंत आगम भयो तब लगि पर्यो तुसार ।१७।

रत्नावली ने नारी-जीवन की तुलना शाक से की है और पति प्रेम की लवण से। जिस प्रकार लवण के बिना भाजी स्वाद-हीन होती है उसी प्रकार नारी का जीवन भी पति-प्रेम के बिना निरानन्द होता है। वह कहती है—

तिय जीवन तेमन सरिस लोनों कबहुं रचै न
पिय सनेह रस राम रस लौनों रतन मिलै न ।४२।

४२वें दोहे के श्लेष मनोरम हैं। बाट के दो अर्थ होते हैं माप और तोलने के निमित्त लोह-प्रस्तर आदि का खण्ड। गृह-सम्भार भी द्विर्थक है घर की देख रेख तुलने वाले पदार्थ। विवाह-बन्धन की तुलना तुला से है और दम्पति की तुला-पट-द्वय से। तुला में दो पलड़े होते हैं एक में बाटों का भार होता है और दूसरे में गृहस्थी के पदार्थ का। विवाह के द्वारा तुलसीदास और रत्नावली का सम्बन्ध हुआ दोनों वियोग-काल में पीड़ित हैं एक तो मार्ग के कष्ट से और दूसरा गृह-व्यवस्था की चिन्ता से। रत्नावली के कल्पना-मयी का सुन्दर उद्भवन है

रतन प्रेम डंडी तुला पला जुरे इकतार
एक बाट पीड़ा सहै एक गृह संभार ।४३।

पति के बिना पत्नी का जीवन वृथा है। संसार में पति-हीना की दशा ठीक वैसी है जैसी सागर में कर्णधार के बिना पोत की अथवा उच्चारण में स्वर के बिना व्यंजन की। रत्नावली कहती है—

कर आधार बिनु नारि तिमि जिमि स्वर बिनु हुम होत
करनधार बिनु उदधि जिमि रतनावलि नति पोत ।१४६।

दुष्ट का संग करने की अपेक्षा एकाकी रहना अच्छा है। समस्थान व्यक्तियों को अलग ही रहना चाहिए। उसने वृक्ष और दीमक का उदाहरण इस प्रकार दिया है—

मन इकिलो रहिबो रतन भलो न खल सहवास
जिमि तरु कोमल संग लहि पावक कम विनास।।१६४।।

इस उपदेश को हृदयंगम कर देने के निमित्त वह सवर्ण और असवर्ण का उदाहरण उपस्थित करती है। दो ह्रस्व स्वर मिलकर अपनी सत्ता को नष्ट किये बिना दीर्घ हो जाते हैं अथवा सवर्ण व्यक्ति विवाहादि सम्बन्ध के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हैं। परन्तु असवर्ण स्वर अपने स्वरूप को खोकर विकृत हो जाते हैं अथवा असमान जाति-धर्म के व्यक्ति विवाह-मित्रता आदि सम्बन्ध के द्वारा अपने व्यक्तित्व को नष्ट कर देते हैं। रत्नावली कहती है—

सवरन स्वर लघु हैं मिलत दीरघ रूप लखात
रतनावलि असवरन हैं मिलि निज रूप नसात।।१८१।।

रत्नावली ने भाग्य की तुलना सूर्य से की है। जिस समय सूर्योदय होता है शरीर की छाया बड़ी होती है किन्तु जब वह अस्त हो जाता है तो छाया भी नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार जब किसी का भाग्योदय होता है तो उसके अनेक इष्ट-मित्र बन जाते हैं, किन्तु दुर्भाग्य के समय इष्ट-मित्र तो क्या शरीर भी साथ नहीं देता। रत्नावली लिखती है—

उदय भाग रवि मीत बहु छाया बड़ी लखाति
अस्त भए निज मीत कहँ तनु छाया तजि जाति।।१८२।।[1]

(ग) रत्नावली के उपदेश

स्त्री शिक्षा पर रत्नावली के विचार

नारी का आदर्श—रत्नावली ने जैसा कि उल्लेख हो चुका है, कन्याओं और महिलाओं को सच्चरित्र एवं नम्रता तथा सत्य भाषण दयालुता धार्मिकता एवं कर्तव्यशीलता का उपदेश दिया है और उसने आलस्य क्रोध लोभ स्तेय मद्यपान, द्यूत और व्यभिचार से बचते रहने का यदा-कदा आग्रह भी किया है।

उसका कलत्रादर्श अनुपम है। वह नारी प्रशंसनीय है जो अपने पति को मित्रवत् परामर्श देती मातृवत् स्नेह करती और दासीवत् उसकी सेवा करती है।

देति मंत्र सुठि मीत सम महिहिं मातु समान
सेवति पति दासी सरिस रतन सुतिय बनि जान।।११०।।

स्त्री ही गृह की लक्ष्मी श्री और बुद्धि है। उसे अबला कहते हैं किन्तु सती होने पर वह सबला है

तू गृह श्री धी श्री रतन तू तिय सकति महान
तू अबला सबला बनै धरि उर सती विधान।।८१।।

अतः स्त्री को चाहिए कि वह गृह-सुख के लिए लक्ष्मी ज्ञान के लिए सरस्वती और दुष्ट दमन के लिए काली बन

---

१. देह दाम दुति माया प्रबल बहत बानि मन मोह।
धाम भूमि रवि दूरि लखि सिर पर छम छर खोह॥ दु. स. १७५

रतन रमा सी सुत सदन बसि सारद धरि ध्यान
बसन बसन हित कालिका बसि कर धारि कृपान ॥८६॥

गृह दक्षता—सुनारी गृहस्थ-कार्य में दक्ष होती है। उसको उचित है कि वह घर में सबप्रथम जागे और सबको सुलाकर सोवे। वेदगण भी उस नारी की प्रशंसा करते हैं जो अपना शरीर मन भोजन पान और गृह स्वच्छ रखती है। सती नारी मितव्यय गृह-वस्तुओं का जीर्णोद्धार और वंश-परम्पराओं का पालन करती है लाज कटकती और पति में अनुरक्त रहती है। वह उन वस्तुओं का विशेष ध्यान रखती है जिनका उपयोग उसका पति नित्यप्रति करता है और वह उन्हें प्रतिदिन समय पर तुरन्त उपस्थित करना नहीं भूलती।

रतनावलि सबसों प्रथम जग उठि करि गृह काज
सबनु सुवाइहिं सोइ तिय करि संभारि गृह साज ॥८७॥
तन मन धन भाजन बसन भोजन भवन पुनीत
जो राखति रतनावली तेहिं गावत श्रुत गीत ॥८८॥
धन जोरति मितव्यय करति घर की वस्तु सुधारि
सुप करम आचार कुल पति रत रतन सुनारि ॥९९॥
पति बरतत जेहिं वस्तु नित तहिं धरि रतन संभारि
समय समय तिन दे पियहिं आलस मदहिं बिसारि ॥१२२॥

रहस्य रक्षा—सती और बुद्धिमती नारी को उचित है कि वह अपने घर के रहस्य को प्रकट न करे और यारी मित्र न बनावे। जो स्त्री घर घर घूमने वाली हो उससे कम बोलना चाहिए और घनिष्ठता नहीं बढ़ानी चाहिए। घर शरीर, धन रति औषधि खाद्य-पदार्थ दान आचार के सम्बन्ध में भेद नहीं बताना चाहिए।

घर घर घूमनि नारि सों रतनावलि मित बोलि
इनसों प्रीति न जोरि बहु जनि बहु भेदनु खोलि ।७२।
सदन भेद तन धन रतन सुरति सभेषज अन्न
दान धरम उपकार पर राखि बधू परछन्न ।६३।

भृत्यों के प्रति व्यवहार—यह अत्यन्त स्पृहणीय है कि सुगृहिणी अपना गौरव बनाये रखे और भृत्यों को सन्तुष्ट भी। तन्निमित्त उस कर्मचारियों से यथावश्यकता ही बोलना चाहिए क्योंकि अनावश्यक प्रलाप सब अवगुणों का स्रोत है। पुराने कपड़ों को धुलवाकर यथावसर नौकरों को देते रहना चाहिए।

करम चारि जनसों भली कथा काज बतरानि
बहु बतानि रतनावली गुनि अकाज की खानि ।७१।
धरि धुवाइ रतनावली जिन पिय पाट पुरान
अपर समय जिन दे करहु करमचारि सनमान ।८७।

सतर्कता—अज्ञात व्यक्ति और फेरीवाले से सतर्क रहना चाहिए। अज्ञात व्यक्ति पर विश्वास उसकी दी हुई वस्तु का उपभोग और उसे घर में टिकाना अनर्थ-वह हो सकता है। फेरीवाल और भिक्षुकों का रूप धारण करने वाले भी बहुधा धोखा देते हैं।

मनभाये जन को रतन कबहु न करि बिसवास
बस्तु न ताकी पाइ कछु देइ न गेह निवास ।७८।
बनिक बेसवा सिल्पिजन कवि कबहुँ पतियाइ
रतनावलि जइ कम परि ठग जन ठगत भ्रमाइ ।७७।

पति के प्रति व्यवहार—नारी के लिए यह अनिवार्य-सा है कि वह शिष्टाचार और साधारण व्यवहार के नियमों से परिचित हो। पतिदर्शन तथा स्मित-वदन-युक्त होना उचित है। जो स्त्री अपने पति के समक्ष प्रसन्न-वदना रहती और गृहकार्य में दक्ष होती है वह अपने पति को प्रसन्न रखने तथा स्वकुल और पतिकुल के गौरव को बनाये रखने में सफल रहती है। उसे ऐसे व्रत ध्यान उपवास और तीर्थाटन से बचना चाहिए जो पति के प्रति कर्तव्य में बाधक सिद्ध हों। पत्नी के लिए ऐसे व्रत या अन्य धार्मिक कृत्यों का विधान नहीं। यदि स्त्री पतिव्रता है तो पतिसेवा के द्वारा स्वतः उसे पूर्ण सुख और स्वर्ग-निवास की उपलब्धि हो जायगी। ज्योंही पत्नी को पति के चरित्र-सम्बन्धी कोई अवगुण विदित हो त्योंही वह उचित अवसर पाकर एकान्त में उचित शब्दों में उसे सचेत कर दे किन्तु क्रोध और कठोर-शब्दों का प्रयोग इस निमित्त कदापि न होना चाहिए।

पति सनमुख हँसमुख रहति कुसल सकल गृह काज
रतनावलि पति सुखद तिय बरति सुमन कुल लाज ।११७।
उपासन तीरथ बरत जोग जग्य जप दान
रतनावलि पति सेव बिन सबहि अकारथ जान ।११८।
रतनावलि पति सों अलग कह्यो न बरत उपास
पति सेवति तिय सहज सुख पावति सुर पुर बास ।१२६।
पतिहि कुरीति न लखि रतन कहि मृदुबचन उचारि
पति सों रूठि न रोस करि तिय निज धरम संभारि ।१४२।

अन्य सम्बन्धियों के प्रति व्यवहार—माता-पिता भाई-बहन तथा पति के सम्बन्धियों के प्रति सन्नारी का व्यवहार आदरपूर्ण होना चाहिए। प्रातः तड़के जाग कर पति के माता-पिता का चरण-स्पर्श उनकी सेवा-सुश्रूषा उनकी आज्ञा तथा उपदेश का पालन करना उचित है। पति के तथा पति के माता-पिता के चरण तीर्थ-तुल्य पवित्र होते हैं। जो महिला उनकी सेवा करती है वह इस संसार में जीवन-पर्यन्त सुख और मृत्यु के उपरान्त पतिलोक प्राप्त करती है। पति, माता पिता सास ससुर और ननद के वचन औषधि के समान कटु किन्तु परिणाम में लाभप्रद सिद्ध होते हैं।

सासु ससुर पति पद परसि रतनावलि उठि प्रात।
सादर सिर नमहु निज पुनि सादर लेहि बात ॥८७॥
सासु ससुर पति पद रतन सुभ तिय तीरथ धाम।
सेवहि तिय पाप बस लहहि पुनि पति लोक ललाम ॥८८॥
मात पिता सासुहु ससुर ननद नाथ कटु बैन।
भेषज सम रतनावली पचत करत तन चैन ॥८९॥

किन्तु साथ ही रत्नावली सावधान करती है कि सुन्दर रमणी कदापि अपने सुवा पिता श्वशुर, भ्राता, देवर पुत्र और जामाता की बात देर तक एकांत में न सुने।

रत्नावली का उपदेश बतलाता है श्वश्रू को माता के, ननद को भगिनी के, देवर को पुत्र के तथा सपत्नी को मित्र के तुल्य समझना चाहिए। सपत्नी से कोई बात छिपानी उचित नहीं उसकी सखी को अपनी सखी और उसके पुत्र को अपना पुत्र मानना ठीक है। गुरुजन मित्र आत्मीय तथा भृत्यों के प्रति उपहारादि के द्वारा यथोचित आदर-प्रदर्शन आवश्यक है। उच्च कुल की नारियाँ अपने पति माता पिता मित्र, भ्राता आत्मीय तथा पड़ोसियों का उचित ध्यान रखती हैं।

सासु जिठानिहि जननि सम ननदहि भगिनि समान।
रतनावलि निज सुत सरिस देवर करहु प्रमान ॥८३॥
सौतिहि सखि लखि ब्यवहरहु रतन भेद करि दूरि।
तासु तनय निज तनय गनि सहहु सुजस सुख भूरि ॥१४॥
गुरु सखि बांधव भृत्य जन जथा जोग पुनि मित्र।
रतन इनहि सादर सदा बरतहु बितरहु बित्र ॥१५॥
पति पितु जननी बंधु हितु कुटुंब परोसि बिचारि।
जथाजोग आदर करहि सो कुलवती नारि ॥१६॥

उनके प्रति आदर सम्मान आदि की क्या मात्रा हो इस विषय में भी रत्नावली का परामर्श ध्यान देने योग्य है। वह कहती है यदि पति से कोई व्यक्ति वय में अधिक है तो उसे पिता के तुल्य समवयस्क है तो भ्राता के तुल्य और छोटा है तो पुत्र के तुल्य समझना चाहिए।

रतनावलि पति छांड़ि इक जेते नर जग मांहि।
पिता भ्रात सुतसम लखहु दीरघ सम लघु आंहि ॥१२॥

सन्तान लालसा—रत्नावली जानती थी कि स्त्रियाँ सन्तान धारण करने के लिए कितनी उत्सुक रहती हैं और वे इस निमित्त कभी-कभी कितने ही गर्हित उपायों का अवलम्बन भी करती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि नारी में अन्य प्राणियों की भाँति मातृत्व की जन्म-जात प्रवृत्ति विद्यमान रहती है किन्तु नारी का मातृत्व-प्राबल्य कभी कभी पत्नीत्व को अभिभूत कर उसे अधम मार्ग का अनुसरण करने के लिए बाध्य कर देता है। इसी से रत्नावली को सावधानी और सतर्कता के निमित्त लिखना पड़ा कि जो नारी सन्तान की अभिलाषा से पर पुरुष का उपभोग करती है अथवा तन्निमित्त जादू-टोनों के द्वारा दूसरों को क्षति पहुँचाती है वह अपयशोभागिनी तथा नरकगामिनी होती है। इस समस्या पर दूसरे दृष्टिकोण से भी विचार सम्भव है जो सन्तानोत्पत्ति की प्रबल किन्तु अनुचित प्रवृत्ति पर तुषार-पात करता है। कौन कह सकता है कि जो सन्तान सब प्रकार के अनुचित साधनों का अवलम्बन करके प्राप्त की जाय वह भविष्य में निराशा और दुःख न देगी। अतएव रत्नावली की समझ में तो दुष्ट पुत्रों को जन्म देने से बाँझ रहना कहीं श्रेयस्कर है क्योंकि सन्तान-हीन नारी केवल एक दुःख का अनुभव करती है किन्तु अनेक दुष्टों की जननी असंख्य का। केवल संतानोत्पत्ति की भावना से अधिक संतान की अभिलाषा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि केवल एक योग्य

पुत्र वंश की सभी नारियों को पुत्र-रूप से सुख पहुँचाता है। कहा है अकेला चन्द्रमा संसार को प्रकाश प्रदान करता है तारागण नहीं।

जो तिय संतति लोभवस करत अपर नर भोग।
रतनावलि नरकहिं परति जग निदरत सब लोग ॥११२॥
जो तिय संतति काज पर पुरुष धरहिं परलोय।
ते न लहहिं संतति रतन कोटि जनम लगि रोय ॥११३॥
रतन बाँझ रहिबो भलो भलो न सौउ कपूत।
बाँझ रहै तिय एक दुख पाइ कपूत अकूत ॥१६६॥
कुल के एक सपूत सों सकल सपूती नारि।
रतन एकही चंद जिमि करत जगत उजियारि ॥१६७॥

स्त्री-शिक्षा—विषय पर भी रत्नावली के कुछ विचार हैं। उसकी सम्मति में पति ही पत्नी का श्रेष्ठ अध्यापक है यद्यपि वह अपने माता-पिता और बड़े भाइयों से भी पढ़ सकती है। यों तो बच्चों का गुरु ब्राह्मण होता है पर पति ही पत्नी का अध्यापक एवं गुरु है। अध्यापक तथा उसकी योग्यता पर शिक्षा निर्भर रहती है। कहा है कि शस्त्र शास्त्र अश्व वीणा शब्द पुरुष और नारी पुरुष विशेष को पाकर योग्यायोग्य बनते हैं। बालकों को बचपन में रुचि-विरुचि के दृढ़ होने से पूर्व ही प्रशिक्षित करना चाहिए, जिससे वे बुरे अभ्यासों से बचे रहें। जो अभ्यास माता-पिता अपने बालकों में बनने देते हैं वे बड़े होने पर प्रयत्न करने पर भी नहीं छूट पाते। अतएव बालकों में बाल्यकाल से ही दयालुता, कर्तव्य और धर्म श्रद्धा का बीजारोपण करना समीचीन है।

जननि जनक भ्राता बड़ो होइ जु निज भरतार।
पढ़इ नारि इन चारि सों रतन नारि हित सार ॥११०॥
चतुर बरन कहुँ विप्र गुरु अतिथि सबन गुरु जानि।
रतनावलि जिमि नारि कहँ पति गुरु कह्यो प्रमानि ॥११९॥
शस्त्र शास्त्र वीणा तुरग बचन सुनारी लोग।
पुरुष विसेसहिं पाइ के बनत सुयोग अयोग ॥१७०॥[1]
बारेपन सों मातु पितु जसी डारत बानि।
सो न छुटाये पुनि छुटत रतन भयेहुं सयानि ॥१८॥
बाल बैस ही सों बरो दया धरम कुल कानि।
बड़े भये रतनावली कठिन परेगी बानि ॥२७॥

शिक्षा और परम्परा—रत्नावली सुधारक न थी। वह परम्पराओं का आदर करती थी अतः चाहती थी कि शिक्षा परम्पराओं का विरोध न करे। उसके गूढ़ मत से तो शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो जीवन में उपयोगी आदर्शात्मक चरित्र-निर्मात्री तथा मानव-समाज के लिए सहानुभूति-पूर्ण और कल्याणकारी सिद्ध हो। परम्परा गुरुजनों में आदर भाव उत्पन्न करे। नारी को ऐसे प्रशिक्षण की आवश्यकता है जो

---

१ अन्य छन्द रूपी शिक्षा पुरुष बात वश पाठ।
अति पुन योग विशेष से तुरत आदि पे ज्यादा म गु त ७,१

उसे अपने पति की सती साध्वी पत्नी बनने में तथा कुटुम्ब का उपयोगी अंग हो जाने में सहायक हो। शिक्षा ऐसी हो जो उसे सुयोग्य गृहिणी बनावे तथा भृत्य और प्रजाव व्यक्तियों से उचित व्यवहार करना बताये। अर्थात् स्त्री-शिक्षा ऐसी हो जिससे न केवल स्त्री के कुल का कल्याण हो अपितु उसके पड़ोस का और अन्त में विश्व का भी श्रेय हो।

शिक्षा का उद्देश्य—शिक्षा का उद्देश्य क्या है और बालक के साथ किस प्रकार व्यवहार किया जाय इस विषय में रत्नावली का परामर्श चारु प्रतीत होता है। उसकी सम्मति में बालक का लालन-पालन इस प्रकार हो कि वह दुष्ट न बने प्रत्युत वह दिन-प्रतिदिन गम्भीर होता जाय। शिक्षा उचित प्रणाली पर चल रही है या नहीं इसकी कसौटी यही है कि वह लोक-सम्मत हो। माय बाप को देखते ही प्रसन्नता से पुलकित हों और आशीर्वाद प्रदान करने लगें। जो शिक्षा किसी का उपकार नहीं करती और न लोक-समर्थन ही प्राप्त करती है वह वास्तव में नितान्त निरर्थक है। शिक्षा के द्वारा तो आत्म-कल्याण होना चाहिए और परिजनों का भला भी।

बालहिं लालहु अस रतन जो न औगुनी होइ।
दिन दिन गुन गुरुता लहै लखो लालन सोइ ॥१५८॥
बालहिं सीख सिखाइ अस लखि लखि लोक सिहायँ।
आसिष दें हरषें रतन नेह करें पुलकायँ ॥१५९॥

मधुर भाषण—मधुर वाणी पर रत्नावली का आग्रह है। अप्रिय अथवा कटु वचनों का प्रयोग न करना ही श्रेयस्कर है। जो भी शब्द मुख से निकलता है वह सुख या दुःख प्रदान करता है मधुर शब्द सुख उत्पन्न करता है और कटु वचन दुःख। मधुर भोजन देने की अपेक्षा मधुर वचन का उच्चारण अधिक अच्छा है क्योंकि मिष्ट भोजन का सुख तो अस्थायी होता है किन्तु मिष्ट वचन का स्थायी। कटु वचन कण्टक से भी बुरा है क्योंकि पहला तो चिकित्सक के चाकू से निकल जाता है किन्तु दूसरा हृदय को सदा के लिए चीर डालता है।

मधुर असन बनि देइ जोइ बोलो मधुरे बैन।
मधु भोजन छिन देत सुख बैन जनम भरि चैन ॥१६०॥
रतनावलि काँटो लग्यो बचनु दयो निकारि।
बचन लग्यो निकस्यो न कहुँ उन डारो हिय फारि ॥१६१॥

सन्मित्र—सच्चे मित्र का लक्षण है उसका स्थैर्य। वे ही सच्चे मित्र हैं जो विपत्ति में भी साथ देते हैं सम्पत्ति में तो सभी सग बनते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जो आपत्ति काल में भी पुरानी मैत्री का निर्वाह करते हैं वे ही वास्तव में सच्चे हितैषी हैं। पर ऐसे लोग थोड़े होते हैं।

सोइ सनेही जे रतन करहिं बिपति में नह
सुख सम्पत्ति लखि जन बहुत बनहिं नह के नह ॥१५७
बिपति परे जे जन रतन निबहैं प्रीति पुरानि
हितु मीत सतिभाय ते पै न बहुत जिय जानि ॥१५८

अप्रासंगिक वार्ता की निस्सारता—तुलसी की विदुषी पत्नी ने ऐसे अनेक

विषयों का उल्लेख किया है जो साधारण जीवन में उपयोगी हैं। अप्रासंगिक वार्ता का उदर्क असुखकर होता है। अप्रासंगिक शब्द कितने ही मधुर क्यों न हों विपाक्त होते हैं रत्नावली ने स्वयं दाम्पत्य प्रेम के समय अमर्त्यप्रेम का उल्लेख कर अपने पति को खो दिया था। प्रासंगिक बात भी परिणाम का भली भाँति सोच-समझ कर कहनी चाहिए। शेक्सपीयर ने कहा है कि स्वीट आर द यूजेज ऑफ एडवर्सिटी अर्थात् विपत्ति के लाभ सुखद होते हैं। समकालीना रत्नावली उसी उक्ति को दूसरे शब्दों में पुष्टि करती है। उसकी सम्मति में वह नारी सती और प्रशंसनीय है जिसका चरित्र विपत्ति में भी प्रोज्ज्वल है। मित्र और सम्बन्धियों में लेन-देन अप्रशस्त है क्योंकि ऐसे व्यवहार का अवांछनीय प्रभाव पारस्परिक प्रेम और विश्वास पर पड़ता है।

सुमहु वचन अप्रहत परम रतन प्रसुत के साथ
जो मो कहूँ पति प्रेम संग ईस प्रेम की बात।४
कहि अनुसंगी वचनहूं परिनति हिये विचारि
जो न होइ पछिताउ पर रतनावलि अनुहारि।५
विपति कसौटी पै विमल जासु चरित दुति होइ
जगत सराहत सोय तिय रतन सती है सोइ।११
स्वजन सखो सों जनि करहु कबहु ऋन व्योहार
ऋन सों प्रीति प्रतीति तिय रतन होति सब छार।६८

मितव्यय—रत्नावली समझती है कि अपव्यय से निर्धनता होती है और निर्धनता निराशा और दुःख की जननी है। जो व्यक्ति अपनी आय से अधिक व्यय करते हैं वे निधन हो जाते तथा दुःख और पश्चात्ताप को प्राप्त होते हैं।

जे न लाभ अनुसार धन चित व्यय करहिं विचारि
ते पाछे पछितात अति रतन रंकता धारि।१०

दुष्ट-त्याग—दुष्टा पत्नी धूर्त मित्र वाग्मोत्सवी भृत्य तथा सर्प-संकुल गृह को त्याग देना चाहिए अन्यथा मृत्यु भय सदैव बना रहता है।

दुष्ट नारि ठिमि मीत सठ उत्तर देनी दास
रतनावलि अहिवास घर मनहु काल जनु पास।१४५

कुसंग-त्याग—कुसंग का परिणाम भयानक होता है। दुष्ट जन चाहे कितना ही ज्ञानवान हो उसे मित्र नहीं बनाना चाहिए, क्योंकि मणिधारी नाग भी डस सकता है। अतएव दुष्ट-संग की अपेक्षा एकाकी निवास कहीं अच्छा है। दीमक के सम्पर्क में वृक्ष अपनी सत्ता खो देता है।

भल इकलो रहिबो रतन भलो न खल सहवास
जिमि तरु दीमक संग लहै आपन रूप विनास।१६२

धन की गतियाँ—हमारों को स्मरण रखना चाहिए कि धन की तीन गतियाँ होती हैं—दान भोग और नाश। जो अपनी सम्पत्ति का न तो उपयोग करता है और न दान ही वह उसे खो बैठता है।

दान भोग अरु नास ये रतन सुधन गति तीन
देत न भोगत तासु धन होत नास महँ लीन।१७४

व्यवहार निरुप—नारियों को अपनी बड़ी-बूढ़ियों के अनुभवों से लाभ उठाना और उनके प्रति उचित आदर भाव बनाये रखना चाहिए।

बिरध सखिनु ढिग बैठि तिय तेहि अनुभौ करि ध्यान
तहि अनुसारहि बरति तेहि राखि रतन सनमान ।११६

कोई कार्य अच्छा है या बुरा इसकी कसौटी यह है इस प्रकार कर्म करो कि सज्जन तुम्हारी प्रशंसा करें और तुम्हें देखकर प्रसन्न हों और तुम्हारी मृत्यु के पश्चात् शोक-सहित तुम्हारा गुण-गान करें—

असि करनी करि तू रतन सुजन सराहैं तोइ
तुव जीवन लखि मुद लहहिं मरे करें दुख रोइ ।१२१

(घ) रत्नावली के दार्शनिक विचार

भाग्यवाद—रत्नावली स्पष्ट रूप से भाग्यवादिनी है। मानव भाग्य-नियन्ता अथवा मानव-कार्य के पथ-प्रदर्शक तत्व को संयोग प्रसंग, अवसर अथवा भगवदिच्छा कहा जा सकता है। यह शक्ति अज्ञेय और अदृष्ट है। संयोगवश अमृत विष हो जाता है और विष अमृत सरस विषम बन जाता है और विषम सरस। मनुष्य कुछ चाहता है होता कुछ और है। भविष्य सर्वत्र पग-पग आगे बना रहता है। हम भला चाहते हैं होता बुरा है। रत्नावली पति-प्रेम में वृद्धि चाहती थी किन्तु उसे पति-वियोग सहना पड़ा। आंग्ल कवि लौंगफ़ैलो कहते हैं कि भविष्य का कभी विश्वास न करो चाहे कितना ही सुखद क्यों न हो।[1] टॉमस ग्रे के अनुसार भी वंश प्रमुख सौंदर्य धन और पद का मद मृत्यु-मुख में प्रवेश कर जाता है।[2] रत्नावली भी कहती है कि अपने शरीर धन, सुख सम्पत्तियों बल और सौन्दर्य पर किसी को गर्व नहीं करना चाहिए, क्योंकि कौन जानता है कि भाग्य अकस्मात् में तुम्हें कहाँ ले जाये? दूसरों को न सताना चाहिए क्योंकि सताने वाले को क्या नहीं हो सकता?

रतन दैव बस अमृत विस विस अमृत बनि जात
सूधी हू उलटी परै उलटी सूधी बात ।६।
रतनावलि औरहि कछू चाहिय होइ कछु और
पाँच पैंड आगे चलै होनहार सब ठौर ।७।
धन चाहत रतनावली बिधि बस अनभल होइ
हौं प्रिय प्रेम बढ़्यो चह्यो रह्यो दूसरों खोइ ।८१।
तन धन जन बल रूप को गरब करौ जनि कोइ
को जाने बिधि गति रतन छन महुँ कछु कछु होइ ।।८२।

---

१ ट्रस्ट नो फ्यूचर, हाउएवर प्लीजेंट।
२ द बोस्ट ऑफ हिरेल्ड्री द पॉम्प ऑफ पॉवर,
एण्ड ऑल दैट ब्यूटी ऑल दैट वेल्थ एवर गेव
अवेट्स अलाइक दि इनएविटेबल ऑवर।
द पाथ्स ऑफ ग्लोरी लीड बट टु द ग्रेव।

करहु दुखी जनि काहु को निदरहु काहु न कोइ
जो चाहै रतनावली आपनि का मति होइ ।१७९।

कर्मण्यता—किन्तु रत्नावली आलस्यमय कालयापन का उपदेश नहीं देती। वह अकर्मण्यता को प्रशस्त नहीं समझती और न कष्ट दुख से बचने को ही। उसका झुकाव तो क्लिष्ट और कर्मण्य जीवन की ओर है, और उपदेश है आलस्य त्याग कर अपना कर्तव्य निर्दिष्ट समय पर करो अथवा आवश्यक कर्तव्य अभी करो तभी सुख प्राप्त होगा कष्ट-पीड़ा की चिन्ता न करो यदि पाप किया हो तो उसका फल भोगो और पुनः निष्पाप बन जाओ क्योंकि ज्यों-ज्यों स्वर्ण तपता है त्यों-त्यों वह शुद्ध होता जाता है। रत्नावली का सदुपदेश भाग्यवाद परम चिन्तन का निष्कर्ष प्रतीत होता है अर्थात् कल्याणमय परमसत्ता की सर्वव्यापिनी शक्ति का स्वतः परिणाम। उसका भाग्यवाद साधारण भाग्यवाद नहीं जो अकर्म और अनाचार को तथा अस्तव्यस्तता नितान्त अव्यवस्था को जन्म दे

आलस तजि रतनावली जथा समय करि काज
अब की करिबी अबहिं करि तबहिं पुरै सुख साज ।८१।
स्रम सौं बाढ़त देह बल सुख संपति धन कोष
बिनु स्रम बाढ़त रोग तन रतन बढ़त दुख दोष ।१८४।
दुसह भोगि रतनावली मन महँ जनि दुखियाइ
पाप कलुष दुख भोगि तू पुनि निर्मल ह्वै जाइ ।१८।
ज्यों ज्यों दुख भोगहि तनहिं दूरि होत दुख पाप
रतनावलि निरमल बनत जिमि सुबरन सहि ताप ।२६।

भोग-निन्दा—रत्नावली यौवन प्रभुता और धन के दोषों से अवगत थी। भगवान् बुद्ध की भाँति वह समझती थी कि भोग से आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती। यौवन प्रभुत्व और धन अनेक दोषों के आगार हैं क्योंकि अविवेकी नर पशु की भाँति सोचता और कार्य करता है। ये तीनों और चौथा अविवेक अलग-अलग अनर्थों को उत्पन्न करते हैं समवेतरूप में चारों का तो कहना क्या? वास्तव में भोग से विषय शान्त नहीं होते, प्रत्युत वे इस प्रकार बढ़ते रहते हैं जिस प्रकार घी से अग्नि। तादृशानुमान विश्वासोत्पादक प्रतीत होता है।

तरुनाई धन देह बल बहु दोषनु आगार
बिनु बिवेक रतनावली पसु सम करत बिचार ।१७४।
यौवन प्रभुता भूरि धन रतनावलि अविचार
एकु एकु अनरथ करै किमु समुदित करि चार ।१८९।
रतनावलि उपभोग सों होत बिषय नहिं शान्त
ज्यों ज्यों हवि होमें अनल त्यों त्यों बढ़त नितान्त ।१७७।

यम-नियम—अतएव यम-नियम की आवश्यकता है। अनियन्त्रित विषय नाशोन्मुख होते हैं। रत्नावली इस दिशा में एक सुन्दर रूपक का स्मरण दिलाती है। मानव-शरीर रथ में इन्द्रियाश्व जुते हैं अत्यन्त चंचल होने के कारण वे रथ को पथ से हटा ले जाते हैं। जब मन-सारथी उन्हें रोकता है तब मन शान्त हो जाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि विषय उतने भयावह होते हैं जितने लाभकारी। उचित उपयोग से वे मित्रवद् और अनुचित से घातक सिद्ध होते हैं। रत्नावली ठीक कहती है कि जब नेत्र जिह्वा कर्ण और नासिकादि नियन्त्रण से बाहर हो जाते हैं तो इनमें से कोई भी एक मानव के प्राण ले लेता है और जब वश में होते हैं तो वे शक्ति और जीवन प्रदान करते हैं। सभी तत्ववेत्ता इस कथन से सहमत हैं कि इन्द्रियाँ ज्ञान का आधार हैं। अतएव उनके संयमन और सुमार्गीकरण की आवश्यकता है जिससे कल्याण की प्राप्ति हो।

पाँच तुरग तन रथ जुरे चपल कुपथ लै जात
रतनावलि मन सारथिहि रोकि सकै उतपात।१६७।
नैन मैन रसना रसन करन नासिका सोय
एकहि मारत प्रबल हूँ सबहत जियावत सोय।१२१।

स्वदोष-सुधार—रत्नावलि दोष चयन की भर्त्सना एवं आत्म-प्रेक्षण-द्वारा आत्मोन्नति की प्रशंसा करती है। दूसरों के दोष-दर्शन एवं रहस्योद्घाटन की अपेक्षा हमें अपने अवगुणों का निवारण करना चाहिए, क्योंकि जब लोग हमें निर्दोष देखेंगे तो वे अपने दोष भी दूर करने लगेंगे। निःसन्देह उपदेश की अपेक्षा उदाहरण अधिक श्रेयस्कर है।

रतन न पर दूषन लखहि आपनु दोस निवारि
तो हि लखहि निरदोस वे वे निज दोस बिसारि।१७८।

सदभ्यास—मन और आत्मोन्नति के निमित्त अच्छे अभ्यास डालने चाहिए। रत्नावली प्रारम्भिक जीवन के अभ्यासों का मूल्य समझती हुई बाल्यावस्था से ही दया-करुणा कलाप-पालन वंश-परम्परा आदि के प्रति आदर भाव प्रकट करने के पक्ष में है क्योंकि बड़े होने पर अभ्यास में कठिनता होती है। माता-पिता बालकों को जो अभ्यास डालते हैं बड़े होने पर वह प्रयत्न करने पर भी नहीं छूट पाता। यही कारण है कि सती बनने के लिए जीवन-काल चाहिए, भ्रष्ट हो जाने के लिए समय की अपेक्षा नहीं, यथा सुमेरु पर्वत पर चढ़ना कठिन है उससे गिर जाना ऐसा नहीं।

बाल बैस ही सों परी बया बरम कुल कानि
बड़े भए रतनावली कठिन परेगी बानि।२७।
बारे पन सों मातुपितु जैसी डारत बानि।
सो न छुटाए छुटि पुनि छुटति रतन अभेहुँ सयानि।२८।
सती बनत जीवन लगै असती बनत न बेर
गिरत बेर लागै कहा चढ़िबौ कठिन सुमेर।२६।

सरल जीवन उच्च-विचार—रत्नावली ने सरल जीवन और उच्च विचार का उपदेश दिया है।। स्वच्छ नेत्रों सरल वाणी और निर्मल वस्त्रों को निम्न, नम्र और सुस्निग्ध किन्तु विचारों और कार्यों को उच्च और उदार रखना चाहिए। साधनिष्ठ विनम्रता और परहित सदा प्रशंसनीय है। जो सभी शील लज्जा और सत्यवादिता के भूषणों से विभूषित होती है शोभा उसके अधीन रहती है। वचनों का पालन और असत्य का त्याग होना चाहिए क्योंकि मिथ्याभाषी की साख जाती रहती है। परन्तु मुख से जो सत्य निसृत हो वह मधुर भी हो। मधुर भोजन देने की अपेक्षा मधुर भाषण कहीं अच्छा है क्योंकि मधुर भोजन से तो क्षणिक, पर मिष्ट वचन से

दाम्पत्यजीवन सुख होता है। उपर्युक्त तीन आभूषणों में से नम्रता श्रेष्ठ है। अन्यत्र नारी के सांसारिक आभूषण—यथा स्वर्णनिर्मित और रत्न-जटित हार आदि सब वृथा हैं। चरित्र-निर्माण अनुपम पारितोषिक है। कोई स्त्री कितने ही उच्च कुल में क्यों न उत्पन्न हुई हो अथवा कितनी ही सुन्दर क्यों न हो यदि उसमें दया-करुणादि गुण और चरित्र विद्यमान नहीं तो कोई भी उसे अच्छा नहीं कहता। संसार के प्रत्येक रत्नाभूषणों में चरित्र ही प्रधान है। जिसके नेत्रों से सौष्ठव प्रतिभासित होता है वह संसार का गौरव है, किन्तु जो कुत्सित प्रेम-कार्यों का चिन्तन करती रहती है वह प्रथम तो कोटि वर्षों तक नरक में निवास तत्पश्चात् कुत्ती का जन्म धारण करती है। सती संसार का गौरव है

नयन वचन हिय बसन निज निरमल नीके धार
करतब रतन विचार तिमि ऊँचे राखि धवार ।१६१।
सत्य सरस बानी रतन सील लाज के तीन
भूषन साजति जो सती सोभा तासु नवीन ।१६२।
बचन आपनो सत्य करि रतन न अनिरत भाखि
अनृत भाखिबो पाप पुनि उठति लीक सों साखि ।१४१।
मधुर प्रसन्न बनि देउ कोउ बोलो मधुरे बैन
मधु भोजन छिन देत सुख बैन जनम भरि चैन ।१६०।
सुबरन मय रतनावली मनमुक्ता हारादि
एक लाज बिनु नारि कहुँ सब भूषन जग बादि ।१६६।
ऊँचे कुल जनमें रतन रूपवती पुनि होइ
धरम दया गुन सील बिनु ताहि सराहु न कोइ ।१६७।
भूषन रतन अनेक जग पै न सील सम कोइ
सील जासु नैनन बसत सो जग भूषन होइ ।१६४।
जो व्यभिचार विचार उर रतन धरै तिय सोइ
कोटि कलप बसि नरक पुनि जनमि कूकरी होइ ।१०१।

अवगुण—सच्चरित्र के निर्माण में क्षमा करुणा सत्य लज्जा आदि गुणों की अपेक्षा एवं दुर्गुणों के त्याग की आवश्यकता है। रत्नावली के मतानुसार नारी के अवगुण हैं—मद्यपान परगृहनिवास भ्रमण असमय में शयन पति से पृथक निवास और कुसंग। क्रोध पुन व्यभिचार गर्व लोभ चौर्य और मद्यपान से अधःपतन होता है। अधिक हँसना बढ़-चढ़कर बोलना बात काटना चुगली खाना कलंकारोपण आदि नारी के दोष हैं। कन्या के लिए गुरुन रीत रस गीत शृंगार और आलस्य वर्जित हैं। सन्त कहते हैं कि बालकों के साथ एकान्त में बैठने खेलने एवं हास परिहास करने से कन्या के चरित्र पर कलंक लगता है।

मदक पान पर घर बसन अपन समय बिनु काल
पृथक बास पति दुष्ट सम यह तिय दूषन बास ।७१।
कोप कुपा व्यभिचार मद लोभ चोरि मदपान
पतन करावत हार जे रतनावली महान ।७४।

बहु हँसनी बहु बोलनी चटपट चिमचट नारि
बड़ बोलनि झूलिनि रतन लहती दूषन भारि ।७२।
नाच विषय रस गीत गंधि भूषन भ्रमन विचार
अपराध आसक्त रतन कन्यहि हित न निगार ।९१।
तरिकन संग बैठनि हँसनि बैठनि रतन इकंत
मलिन करन कन्या चरित हरन सील कहँ सन्त ।९ ।

पातिव्रत का रूप—पातिव्रत के विषय में रत्नावली ने बारंबार ध्यान आकर्षित किया है। सतीत्व के विषय में उसकी कल्पना इस प्रकार है सती नारियों में वही श्रेष्ठ है जो अपने पति को ही पुरुष समझती तथा मन से उसकी सेवा में सुख मानती है। जो अपने पति पुत्र अथवा कुटुम्ब से अलग रहती है उसकी समृद्धि नहीं होती वह तो दोनों कुल का नाश करती है। जिसके दो पति होते हैं वह धिक्कार योग्य है। जो अपने निर्धन अथवा अपाहिज पति को त्यागकर सुयोग्य वर ग्रहण करती है वह भ्रष्ट समझी जाती है। जार-सेविनी की निन्दा होती है वह दोनों लोकों में कलंकित तथा विधवा होती है। रत्नावली की विचारधारा में नियोग को कोई स्थान नहीं क्योंकि जो नारी सन्तान प्राप्ति के निमित्त पर-पुरुष को भजती है वह नरक और लोकनिन्दा को प्राप्त होती है।

तन मन पति सेवा निरत तुमसे पति लखि जोय
इक पति कहँ पुरुष मनै सती सिरोमनि सोय ।१०।
पितु पति सुत कुल पृथक पाव न तिय कल्यान
रतनावलि पतिता बनति हरति दोउ कुल मान ।१०१।
दीन हीन पति त्यागि निज करति सुपति परवीन
सो पति नारि कहाइ धिक पावति पद अकुलीन ।१ ७।
धिक तिय सो पर पति भजति कहि निदरत सब लोग
बिगरत दोऊ लोक तेहि पावत विधवा जोग ।१०६।
जो तिय संतति लोभबस करत अपर नर जोग
रतनावलि नरकहि परति जग निदरत सब लोग ।११२।

पुरुष सम्पर्क—स्त्री को प्रलोभन के जाल-गर्त में डालने वाले हैं कुसंग और पुरुषों के साथ अबाध सम्पर्क। रत्नावली इनसे सतर्क रहने के लिए चेतावनी देती है। जिस प्रकार अणुमात्र स्फुलिंग कर्पास राशि को क्षणमात्र में भस्मसात् कर देता है उसी प्रकार क्षण-मात्र का कुसंग भी स्त्री को सतीत्व से वंचित कर देता है। अतएव पल भर के लिए व्यभिचारिणी का संग न करना चाहिए। अपने भाव को स्पष्ट करने के हेतु रत्नावली एक सुन्दर उदाहरण का उपयोग करती है। चूने के तनिक सम्पर्क से हरिद्रा का रंग परिवर्तित हो जाता है। अतएव स्त्री-पुरुष का अनियन्त्रित सम्पर्क नितान्त अवांछनीय है। स्त्री तो घृत-घट है पुरुष ज्वलदंगार और घृताग्नि का सान्निध्य अस्पृहणीय है। रत्नावली स्त्री पुरुष के अबाध सम्मिलन के विरोध में तो है ही, वह यह भी नहीं चाहती कि कोई स्त्री किसी भी सम्य से एकान्त में मिले क्योंकि एकाकिनी को देखकर महात्मा भी अपने माहात्म्य को खो देता है। इस कथन में उपदेश

की पथ्य अवश्य भाती है किन्तु सतर्कता के निमित्त यह अत्यन्त उपयोगी है।

चितगाहिहु रतनावली तुलहि देत जराइ
लघु कुसंग जिमि नारि को पतिव्रत देत दिपाइ ।१०४।
छनहु न करि रतनावली कुलटा तिय को संग
तनक सुधाकर संग सौं पलटति रजनी रंग ।१०५।
घी घड़ो घट है कामिनी पुरुष तपत अंगार
रतनावलि घी अगिनि को उचित न सँग विचार ।१११।
कबहुँ अकेली जनि करहु संतहु निकट पयान
देवि अकेली तिय रतन तजत संतहू ध्यान ।७२।

पति-महिमा—रत्नावली स्त्रियों से आग्रहपूर्वक कहती है कि पतियों का आदर करो, उन्हें सन्तुष्ट रखो और उनकी अर्चा भी करो। कारण यह है कि पत्नी के लिए पति ही अन्तिम गति है वही धन मित्र गुरु और देव है वह सर्वस्व है—संसार का सार है। पत्नी का वास्तविक अलंकार पति है पति बिना अन्य सब आभूषण वृथा है। क्या अयोग्य और अग्राहिय पति भी उतने ही आदर का पात्र है? रत्नावली का उत्तर है कि निश्चय ही सुपत्नी के लिए उसका पति देव-तुल्य और पूज्य है भले ही वह कामी दुश्चरित्र निर्धन गुणहीन अथवा स्नेह-रहित हो। नहीं नहीं जिस प्रकार माता अपने पुत्र का त्याग नहीं करती चाहे वह अन्ध बधिर, पंगु और रुग्ण क्यों न हो उसी प्रकार सती भी अपने पति को तलाक नहीं देती वह कितना ही कुरूप और दुष्ट क्यों न हो। भली पत्नी तो अपने क्रूर, कुटिल अलस और अकिंचन पति के साथ निर्वाह कर लेती है। क्या ऐसे पति से स्नेह करना अथवा उसकी पूजा करना सम्भव है जो कुपथगामी और सुधार के योग्य नहीं? रत्नावली का तुरन्त उत्तर है कि ऐसा करना सम्भव था और है भी। उसका सुझाव है जिस प्रकार वन में बाघिनी घास नहीं चरती चाहे वह कितनी ही भूखी क्यों न हो उसी प्रकार सती कष्ट तो सह लेती है किन्तु सुख के निमित्त अवगुणों का आश्रय नहीं करती। रत्नावली सुपत्नी से आशा करती है कि वह अपने पति से केवल प्रेम के निमित्त प्रेम करे अन्य किसी उद्देश्य से नहीं।

गति मति पति वित मीत पति पति गुर सुर भरतार
रतनावलि सरबस पतिहि बंधु बंधु जगसार ।८९।
पिय साँचो सिंगार तिय सब झूंठे सिंगार
सब सिंगार रतनावली इक पिय बिनु निरसार ।९०
नेह सील गुन वित रहित कामी हू पति होइ
रतनावलि भलि नारि हित पूज्य देव सम सोइ ।९१।
अंध पंगु रोगी बधिर सुतहि न त्यागति मात
तिमि कुरूप दुरगुनि पतिहि रतन न सती बिहाइ ।९२।
कूर कुटिल रोगी अलसी दरिद मंदमति नाह
चाह न नय अनपाइ तिय सती करति निरबाह ।९३।

जल चामिनि चामिप मवति भूपी चासु न याइ
रतन सती तिमि जुब सहृति सुब हित चप न कमाइ।१४।

तो क्या सुपत्नी को चाहिए कि वह अपने पति की अमद वासनाओं की भी पूर्ति करती रहे ? नहीं रत्नावली इससे सहमत नहीं। इस विषय में उसका उपयोगी परामर्श है कि यदि देखो कि तुम्हारे पति का स्वास्थ्य और चरित्र भ्रष्ट होता जा रहा है तो उपयुक्त अवसर देखकर एकान्त में समुचित शब्दों में उपदेश करो।

दाम्पत्य-साम्यवाद—अनेक पत्नियाँ सती तो होती हैं किन्तु वे धार्मिक कृत्यों में इतनी व्यस्त रहती हैं कि वे उचित रीति से पतिसेवा की ओर ध्यान नहीं दे पातीं। अतएव रत्नावली का कथन है कि नारी के लिए पति से भिन्न धार्मिक कृत्यों का विधान नहीं। यदि वह उसमें पूर्णतया अनुरक्त है तो वह इस जन्म में सुख और जन्मान्तर में स्वर्ग प्राप्त करती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि तीर्थ स्नान व्रत उपवास, दान पूजा भजन आदि से कोई लाभ नहीं यदि वे पति की इच्छा के विरुद्ध हों। जो अपना कर्तव्य समझती और निस्वार्थ भाव से पति की सेवा करती है वह घर बैठे ही समस्त तीर्थ-व्रतों का पुण्य-लाभ करती है। अतः नारी को उचित है कि वह उन समस्त वस्तुओं को सावधानी से रखे जिनका उपयोग पति करता है और उन्हें नित्यप्रति नियत समय पर प्रमाद रहित हो उपस्थित कर दिया करे। यदि पति भगवत्स्मरण करता है और नारी पति की सेवा श्रद्धापूर्वक करती है तो पति की भजन-पूजा पत्नी की भी भजन-पूजा है। अतएव पति को सदैव दान-दयादि के लिए प्रेरित करते रहना और उसके सत्कार्यों को अपने ही समझते रहना चाहिए। यह है रत्नावली के मतानुसार वैवाहिक जीवन में पति-पत्नीत्व का साम्यवाद।

अनाचार मन नास रत निज पति रतन लखाहि
ताहि औसर समुचित बचन रहसि बोधिये ताहि।१२३।
रतनावलि पति सौं अलग कह्यो न बरत उपास
पति सेवति तिय सकल सुख पावति पुर पुर बास।१२६।
तीरथ न्हान उपास व्रत सुर सेवा जप दान
स्वामि विमुख रतनावली निसफल सकल प्रमान।११६।
रतनावलि करतव समुझि सेइ पतिहि निषकाम
तप तीरथ व्रत फल सकल लहहि बैठि घर बाम।११४।
पति बरतत जेहि बस्तु नित तेहि धरि रतन सँभारि
समय समय नित दै पियहि आलस मदहि बिसारि।११५।
सुख पिय नित नित हरि भजत तु तिय सेवति ताहि
तासु भजन तिय सुख भजन रतन न मनहि भ्रमाहि।११८।
पुन्य धरम हित नित पतिहि रहि बढ़ाय उतसाह
ताहि पुन्य निज मुनि रतन पुन्य करत जो नाह।११७।

रत्नावली ने दाम्पत्य प्रेम का उच्चतम आदर्श उपस्थित किया है और उस स्त्री की प्रशंसा की है जो उसका पालन करती है। वह कहती है कि जो

नारी पति के जीवन-काल में और उसकी मृत्यु के पश्चात् भी पति की इच्छा के विरुद्ध आचरण नहीं करती वह इस संसार में यश और मृत्यूपरान्त पुलोक प्राप्त करती है। जब तक पति जीवित रहे पत्नी को उसकी सरक्षा में भक्तिपूर्वक रहना चाहिए। पति के दिवंगत होने पर कन्द, मूल फल शाक का आहार ब्रह्मचर्य का पालन और भगवद्भजन करते रहना चाहिए। स्मरण रहे कि रत्नावली ने यम-नियम का पालन और पूजार्चादि का विधान केवल पति-संतोष के लिए किया है। नारी का प्रत्येक कार्य भी पति के जीवन काल में अथवा उसकी मृत्यु के पश्चात् किया जाय वह भर्ता के निमित्त हो। रत्नावली उस सती की भूरि भूरि प्रशंसा करती है जो पति के जीवन-पर्यन्त जीवित रहती और उसके देहावसान पर अग्नि में प्रवेश करती है क्योंकि नारी का शरीर पति का ही तो है, उस पर उसका क्या अधिकार ? अतएव पति की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति में उसी की इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करना श्रेयस्कर है। इससे अधिक महात्याग अथवा उत्कृष्ट समर्पण क्या हो सकता है ?

> पति के जीवन निधन हूँ पति प्रसन्नता काम
> करति न सो जग जस लहति पावति गति अभिराम ।१२५।
> जीवत पति सासन महँ सेवहि ताहि सप्रेम
> मए अतीतत अनुसरहिं पति हित जप तप नेम ।१२८।
> बिनु पति पति जगपति सुमिरि साक मूल फल खाइ
> बिरमचजव्रत धारि तिय जीवन रतन बनाइ ।१२७।
> जन तिय सौ रतनावली पति सँग त्यागें देह
> जो सौं पति जीवत जियें मरत मरें पति नेह ।१२६।
> रतन देह पति को भयो तोहि कहा अधिकार
> पति समुहें पाछें रतन रहि पति चित अनुसार ।१३८।

दाम्पत्य के प्रतीक—दाम्पत्य प्रेम की चरम अभिव्यक्ति भगवान् विष्णु और भगवती लक्ष्मी में और उसका प्रतीक भगवान् शिव और भगवती पार्वती के अर्धनारीश्वर रूप में लक्षित होता है। रत्नावली कहती है कि विराग की बात मत सोचो अपने-अपने पति के प्रेम में रंग जाओ उमा और रमा तो बड़ी भाग्यशालिनी हैं क्यों कि वे सदा अपने पति देवों के चरणों में अनुरक्त रहती हैं।

> रतनावलि पति राग रँगि दै बिराग में आगि
> उमा रमा बड़ भागिनी नित पतिपद अनुरागि ।३५।

पति में पत्नी का लय—रत्नावली ऐसा प्रयत्न समझती है शास्त्र का उपदेश भी है कि पत्नी का व्यक्तित्व पति में लीन हो जाय। यही नारी जीवन की सार्थकता है। वह नारी प्रशंसनीय है जो पति के सुख से सुखी और पति के दुःख से विपन्न रहती और अपने व्यक्तित्व को त्याग कर पति में लीन हो जाती है। लय दो प्रकार का होता है शारीरिक और आध्यात्मिक। एक की परिपूर्णता तो पति की चिता में दग्ध हो जाने से होती है, और दूसरे की पूर्णता तो जीवन-पर्यन्त दाम्पत्य

समानीकरण से। रत्नावली ने नारी का सायुज्य पति में दो आधारों पर माना है। प्रथमतः शास्त्रों ने आदेश किया है कि पत्नी सदैव पति के अनुकूल रहे क्योंकि पति में और पति के द्वारा ही नारी को मुक्ति प्राप्त होती है। रत्नावली के शब्दों में पति ही मोक्ष है। द्वितीयतः रत्नावली समझती है कि दाम्पत्य प्रेम सब प्रकार के अन्य प्रेमों का अतिक्रमण करता है और परमानन्द होने के कारण उद्देश्य भी है। बुद्धिमान् पुरुष कहते हैं कि सब सुख ब्रह्मानन्द से कम हैं किन्तु रत्नावली के अनुसार पत्नी के लिए तो ब्रह्मानन्द भी दाम्पत्य-प्रेम का पासंग नहीं। हो सकता है कि रत्नावली के ये कथन साधारण विचारधारा के अनुसार अतिशयोक्ति-संकुल हों।

पति के सुख सुख मानती पति दुख देखि दुखाति
रतनावलि धनि द्वैत तजि तिय पिय रूप लखाति ।४७।
पति पति पति जिन मीत पति पति गुरु सुर भरतार
रतनावलि सरबस पतिहि बधु बंध जग सार ।४६।
सब रस रस इक ब्रह्म रस रतन कहत बुध लोइ
पै तिय कहँ पिय प्रेम रस बिन्दु सरिस नहिं सोइ ।४८।

विश्व-बन्धुत्व—तो क्या रत्नावली ने संकीर्ण प्रेम का अर्थात् केवल दाम्पत्य प्रेम का आदर्श उपस्थित किया है? नहीं ऐसा नहीं है। इसने परहित की जो कि मानव-चरित्र का प्रधान अंग है प्रचुर प्रशंसा की है। वह कहती है कि जो दूसरों के लिए जीता है वही वास्तव में जीता है यों तो काक कुक्कुर, कपि आदि भी अपने लिए जीते हैं। दूसरे के लिए क्षण भर जीना भी उचित है; जो दूसरों के लिए नहीं जीते वे मृतप्राय हैं। जो उपकार के विनिमय में अपकार करते हैं वे इस संसार में अपयश के भागी और मृत्यूपरान्त नरकगामी होते हैं।

परहित जीवन जासु जग रतन सफल है सोइ
निज हित कूकर काक कपि जीवहिं का फल होइ ।१५३।
रतनावलि छनहूँ जिये जदि परहित बस ग्यान
सोई जन जीवत जगहु आनि जीवत मृत मान ।१५४।
जो उपकारी को रतन करत मूढ़ अपकार
ते जग अपजस सहत पुनि मरें नरक अधिकार ।१६१।

परहित स्वयं साध्य है इसको फल की आवश्यकता नहीं। रत्नावली कहती है कि दूसरों का उपकार करो पर बदला न चाहो। भले लोग प्रत्युपकार नहीं चाहते। क्योंकि यह ओछा व्यवहार है। अपितु जो उपकार किया जाय अथवा जो दया प्रकट की जाय उसका उल्लेख भी आवश्यक नहीं। सज्जन दूसरों के प्रति जो उपकार करते हैं उनकी चर्चा नहीं करते प्रत्युत उन्हें गुप्त रखते हैं वे दूसरों के उपकारों का तो स्मरण रखते हैं किन्तु अपनों का विज्ञापन नहीं करते डोलते। रत्नावली परहित का संकुचित अर्थ नहीं करती यथा पक्षपात साम्प्रदायिकता जातिभेद। परहित इन सब से बढ़कर है उसका क्षेत्र समग्र संसार है। रत्नावली की उदारता विशालता और सभ्यता मननीय है, वह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का उपदेश देती हुई कहती है कि लघु

जन तो मेरे-तेरे में भेद समझते हैं किन्तु महापुरुष तो समस्त संसार को एक कुटुम्ब मानते हैं।

रतन करहु उपकार पर चहहु न प्रति उपकार
लहहिं न बदलो साधुजन बदलो सधु ब्योहार ।१५२।
परहित करि बरनत न बुध गुपत रखहिं दै दान
पर उपकृति सुमिरत रतन करत न निज गुन गान ।१५३।
ये निज ये पर मन इमि लघुजन करत विचार
चरित उदारन को रतन सकल जगत परिवार ।१५४।

जीवन-गाथा

गोस्वामीजी ने यदा-कदा अपने विषय में कुछ कहा है जिससे उनके जीवन चरित पर प्रकाश पड़ता है। उन्होंने जो कुछ कहा है वह क्रम-बद्ध तो नहीं है, केवल आत्मपरिचयात्मक वचन 'रामचरितमानस' 'कवितावली', 'विनयपत्रिका' आदि अनेक ग्रन्थों में दृष्टिगोचर होते हैं जिनका समालोचनात्मक विवरण दे देना आवश्यक प्रतीत होता है। उनके ये वचन कभी स्पष्ट कभी गूढ़ हैं।

(क) आत्म कथा

जन्म-स्थान—गोस्वामीजी अपने जन्मस्थान का निर्देश इस प्रकार करते हैं—

धर्म के सेतु जगमंगल के हेतु भूमि
भार हरिबे को अवतार लियो नर को।
नीति और प्रतीति प्रीति पाल चालि प्रभु मानु
लोक-बेद राखिबे को पनु रघुबर को।
बानर बिभीषन की ओर के कनावड़े हैं
सो प्रसंगु सुनें अंगु जरै अनुचर को।
राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजै बलि
तुलसी तिहारो घर जायो है घर को॥ क० ११२॥

अर्थात् 'धर्म के सेतु भगवान् संसार का कल्याण करने के लिए और पृथ्वी का भार उतारने के लिए ही मनुष्य के रूप में अवतीर्ण हुए। नीति, प्रीति और प्रतीति पालन करना प्रभु का स्वभाव है तथा लोक और वेद की मर्यादा रखना भी रघुवर का प्रण है। आप सुग्रीव और विभीषण के ऋणी हैं यह बात सुनकर दास का अंग-अंग जलता है (कि मुझ पर ऐसी कृपा क्यों नहीं करते ?)। अतः मैं आपकी बलिहारी जाता हूँ, अपने प्रण की रक्षा करके आपसे जो बने वही कीजिये। यह तुलसीदास तो आपके घर का घरजाया है। बरवै रामायण में 'रामपुर' का स्पष्ट उल्लेख है

तुलसी रामनाम सम मित्र न आन। जो पहुँचाव रामपुर तन अवसान ६७

राम के घर से तात्पर्य है रामपुर। महाकवि नन्ददास के पुत्र कृष्णदासजी ने और कवि मुरलीधर चतुर्वेद ने तुलसी का जन्म-स्थान सोरों के निकट रामपुर नामक ग्राम को लिखा है किन्तु श्री चन्द्रबली पाण्डे ने 'राम के घर' का अर्थ अयोध्या किया है जो समीचीन नहीं है जैसा कि इस पर चतुर्थ अध्याय में विचार हो चुका है। तुलसीदासजी के जन्म-स्थान वाला रामपुर कौन सा है इस विषय में तुलसीदासजी स्वयं निर्णय करते हैं।

जन्म-स्थान का परिचय—कवितावली में जन्म-स्थान की स्थिति इस प्रकार बतायी गयी है —

बारि तिहारो निहारि मुरारि भएँ परसें पद पापु लहौंगो।
ईसु ह्वै सीस धरौं पै डरौं प्रभु की समता बड़े दोष दहौंगो।

बरु बारहिं बार शरीर धरौं रघुबीर को ह्वै तव तीर रहौंगो।
भागीरथी बिनवौं कर जोरि, बहोरि न खोरि लगै सो कहौंगो।।१४७।।

अर्थात् हे मां तुम्हारे जल के स्नान के प्रभाव से यदि मैं विष्णु हो गया तो अपने चरणों से तुम्हारा स्पर्श होने के कारण मुझे पाप लगेगा (क्योंकि तुम्हारा जन्म विष्णु भगवान् के चरणों से है और यदि मैं भी विष्णु हो गया तो अपने चरणों से तुम्हारा स्पर्श होने के कारण मुझे पाप का भागी होना पड़ेगा) और यदि महादेव हो गया तो सिर पर धारण करने से मुझे डर है कि इस प्रकार अपने प्रभु भगवान् शंकर की समता करने के बड़े भारी अपराध से दुख पाऊंगा। इसलिए, भले ही मुझे बार-म्बार शरीर धारण करना पड़े मैं तो भी रघुनाथजी का दास होकर ही तुम्हारे तीर पर रहूंगा। हे भागीरथि मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ—मैं वही बात कहूंगा जिससे फिर दोष न लगे। उक्त उद्धरण की अन्तिम दो पंक्तियों में यह ध्वनि है कि तुलसीदासजी का जन्म गंगा-तट पर हुआ था और वे कामना करते हैं कि उनके भावी जन्म भी गंगा-तट पर हों और वे रामभक्त बने रहें।

विनय-पत्रिका में गंगा की स्तुति करते समय गोस्वामीजी ने अपने जन्म-स्थान की ओर निर्देश इस प्रकार किया है —

बिमल बिपुल बहसि बारि सीतल त्रयताप-हारि
भँवर बर बिभंगतर तरंग मालिका।
पुरजन पूजोपहार, सोभित ससि धवल धार,
भंजनि भव भार, भक्त कल्प थालिका।।१७।।

अर्थात् हे गंगाजी आप अगाध निर्मल जल को धारण किए हुए हैं यह शीतल है और तीनों तापों का हरण वाला है। आप सुन्दर भँवर और अति चंचल तरंगों की माला धारण किए हैं। नगर निवासियों ने पूजा के समय जो सामग्रियाँ भेंट चढ़ाई हैं उनसे आपकी चन्द्रमा के समान धवल धारा शोभित हो रही है। यह धारा संसार के जन्म-मरण-रूप भार को नाश करने वाली तथा मुग्ध भक्त के कल्प की स्थापिका है।

उक्त वचन की पुष्टि तुलसीदासजी 'विनयपत्रिका' में अपने जन्म-स्थान कुल आदि के प्रकरण में करते हैं

राम सनेही सों तैं न सनेहु कियो।
अगम जो अमरनि हूँ सो तनु तोंहि दियो।।
दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को।
जो पाइ पंडित परम पद पावत पुरारि-मुरारि को।।
यह भरतखंड समीप सुरसरि, थल भलो संगति भली।
तेरी कुमति कायर कलप बल्ली चहति बिषफल फली।।१३५।।

अर्थात् जिन्होंने तुझे देव-दुर्लभ मनुष्य शरीर दिया उन परम प्रेमी श्रीरामजी के साथ तूने प्रेम नहीं किया। उन्होंने सुकुल में जन्म और सुन्दर शरीर दिया है जो धन धर्म काम और मोक्ष का कारण है जिसे पाकर ज्ञानी लोग भगवान् शिव अथवा कृष्ण के परमपद को प्राप्त करते हैं। फिर यह भारतवर्ष देश पास ही देव

लिख दिया जाय। इस पाठांतर को प्रस अथवा लिपिकार की भूल नहीं समझा जा सकता। अतएव उसे प्रक्षेप ही समझना चाहिए। 'बाजो कुल मंगन' से यह अर्थ किया जाता है कि तुलसीदासजी भिखारियों के कुल में उत्पन्न हुए। किन्तु यह धारणा गोस्वामीजी की इन उक्तियों के प्रतिकूल पड़ती है—'दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर' 'हौं सुबरन कुबरन कियो' नृप ते भिखारि करि' 'भलि भारत भूमि भले कुल जन्मु समाजु सरीरु भलो लहिकै।

सहायजी का तर्क है कि 'कुल मंगन' का अर्थ उसी परिपाटी से करना चाहिए जिससे कुल-गुरु कुलदेवता कुल-पुरोहित आदि शब्दों का किया जाता है। कुल-मंगन का अर्थ है कुल के मंगने अर्थात् वे व्यक्ति जो उत्सवादि के अवसर पर दान व नेग जोग लेने के लिए उपस्थित रहते हैं न कि मंगन का कुल अर्थात् भिखारी का कुल। उक्त चरण में 'कुल मंगन' 'बजायो' क्रिया का कर्त्ता है अर्थात् कुल के मंगनों ने बधाई के बाजे बजाये। 'सुनि' क्रिया का कर्म है 'जायो'। चरण का अन्वय इस प्रकार होना चाहिए मैं (अर्थात् तुलसी) जायो सुनि (मेरे अर्थात् तुलसी के) कुल मंगन बधावनो बजायो जननी जनक को परिताप पाप भयो। इस अन्वय का अर्थ इस प्रकार है यह सुनकर कि मैं (तुलसीदास) उत्पन्न हुआ मेरे (अर्थात् तुलसीदास के) कुल के नेगियों ने बधाई के बाजे बजाये। मेरे (अर्थात् तुलसीदास के) माता-पिता को कष्ट और परिताप हुआ।[1]

प्रस्तुत चरण से सहायजी का निष्कर्ष है कि जिसके जन्म के उपलक्ष्य में बधाई के बाजे बजें उसके माता-पिता तुरन्त संकट को प्राप्त हो जायें यह असम्भव है। अतएव यह निश्चय है कि तुलसीदासजी के माता पिता की मृत्यु तुलसीदास के जन्म लेते ही नहीं हो गयी थी। तुलसीदासजी के जन्म के अवसर पर बधाई के बाजे बजाये गये। इससे यह सिद्ध है कि गोस्वामीजी अवैध सन्तान न थे। उनके माता-पिता अवश्य ही खाते-पीते सुसम्पन्न मिलनसार और आदरणीय व्यक्ति रहे होंगे क्योंकि ऐसे ही व्यक्तियों को समाज से बधाइयां प्राप्त होती हैं, और क्योंकि ये बधाइयां जन्म काल के समय मिलीं अतएव नेगियों को अवश्य नेग-जोग का प्रबल लालच रहा होगा जो कि दयालु और उदार व्यक्तियों से अधिकतर प्राप्त होता है। यह भी प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी अपने माता पिता की प्रथम सन्तान थे जिस कारण प्रचुर बधाइयाँ प्राप्त हुईं।

रजनीकान्त शास्त्री जी की समझ में 'स्वारथ के साथिन तज्यो' 'तनु तजेउ कुटिल कीट', 'औघट उलटि न हेरो' आदि वचन एक ऐसे हृदय के उद्गार हैं जो अपने प्रति अपने जननि जनक के क्रूर तथा नृशंस व्यवहार को याद कर के सदा जलता रहता था।[2] सहायजी इस धारणा का भी निराकरण करते हैं। कारण कि 'रामचरित मानस' में पिता-पुत्र के आदर्श कर्तव्यों का विवरण किया गया है। 'रामचरितमानस' भगवान् शिव से रूपान्तर से प्राप्त हुआ अतएव यह असम्भव है कि गोस्वामीजी ने उसका विवरण यों ही कर दिया होगा। गोस्वामीजी का भाव अपने माता

१ तत्त्वदर्श, २१-२-२४ और ८-३-२४।
२. मानस मीमांसा पृ. १२।

पिता के प्रति कटु था ऐसा कथन गोस्वामीजी के प्रति घोर अन्याय होगा क्योंकि इस प्रकार की कटुता के लिए गोस्वामीजी के स्वभाव और संस्कृति में कोई गुंजाइश नहीं। प्रत्युत उनके विचार अपने माता-पिता के प्रति अत्यन्त उच्च थे और वे उन्हें सीता राम भवानी-महेश और हनुमानजी की पंक्ति में बिठाते थे। 'विनय पत्रिका' का यह भजन इस विषय में निर्णायक है

> मातु पिता गुरु, गनपति सारद सिवा-समेत सम्भु सुक, नारद।
> चरन बंदि बिनवौं सब काहू देहु राम पद नेह निबाहू ॥ विनय० ३६॥[1]

सहायजी के तर्क से शास्त्रीजी की शंकाओं का समाधान अथवा उनकी धारणा का निराकरण सम्यक रूप से हो जाता है पर 'भयो परिताप पाप जननी जनक को' के लिए किंचित् और प्रकाश की अपेक्षा रहती है जिसका विवेचन इसी अध्याय के मातृ-पितृ वियोग नामक अगले प्रकरण में किया जायगा। यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी विनम्र थे और विनोदी भी। इसी से उन्होंने अपने को 'मंगन' और 'पाप' लिखा। श्री आदित्य नारायण सिंह शर्मा की धारणा है कि 'मंगन कुल' शब्द का प्रयोग नम्रता सूचक है।[2] भृगु-संहिता में ब्राह्मणों की जन्म-पत्रियों में जो सब्दावलि कभी-कभी उपलब्ध होती है वह है 'भिक्षुकस्य कुलेप्रजनि'। गोस्वामीजी के समकालीन नरोत्तमदासजी तो गर्व से कहते हैं 'ब्राह्मन को धन केवल भिच्छा', धन माँगत ब्राह्मन लाज नहीं।[3] गोस्वामीजी ने भी स्वयं कवितावली में स्पष्ट कर दिया है —

> मानिरसी जलुपान करौं अरु नाम है राम के लेत निते हौं।
> मोको न लेनो, न दैनो कछू कलि भूलि न रावरी ओर चितै हौं॥
> जानि कै जोर करौ परिनाम तुम्हें पछितैहौ प मैं न भितै हौं।
> ब्राह्मन ज्यौं उगिल्यौ उरगारि हौं त्यौं हीं तिहारे हिऍं न हितै हौं॥
>
> (कविता० १०२)

अर्थात् 'मैं गंगाजल पीता हूँ और नित्य राम के दो नाम लेता हूँ। हे कलिकाल मुझे तुमसे कुछ भी लेना देना नहीं है और मैं भूलकर भी तुम्हारी ओर नहीं देखूंगा। यदि तुम जान-बूझकर मेरे साथ जोर (अत्याचार) करोगे तो परिणाम में तुम्हीं पछताओगे मैं नहीं डरूँगा। जैसे गरुड़ ने ब्राह्मण को न पचने के कारण उगल दिया वैसे मैं भी तुम्हारे पेट में पचूँगा नहीं।

आस्पद—विनयपत्रिका में सुकुल आस्पद का स्पष्ट उल्लेख हुआ है —

> दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को ॥१३५॥

सोरों-सामग्री में कृष्णदासजी और कवि मुरलीधर चतुर्वेद ने भी तुलसीदासजी के सुकुल आस्पद का उल्लेख किया है।

नाम—गोस्वामीजी का नाम तुलसीदास था इसका उल्लेख कवितावली में है

---

१ सर्वे लारर ११ ८-२४।
२ गोस्वामी तुलसीदास के विषय में कुछ विवेचन, सरस्वती १ भाग ११।
३ सुदामा चरित पृ १४ भार्गव पुस्तकालय गायघाट, बनारस।

नाम तुलसी पै भोंडो भाग तें, कहायो दास
किये अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को
साहेबु समथ दसरत्थ के दयाल देव
दूसरो न तो सो तुम्हीं अपने की लाज को ॥। १३॥

अर्थात् नाम तो (मेरा) तुलसी है पर हूँ मैं भाग का खोटा और कहलाने लगा दास और आपने ऐसे दगाबाज को भी अंगीकार कर लिया। हे दशरथ नन्दन आपके समान कोई दूसरा स्वामी समर्थ अथवा दयालु नहीं है अपने शरणागत की लज्जा रखने वाले तो आप ही हैं।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त के विचार से गोस्वामीजी का नाम केवल तुलसी रहा होगा और दस नाम के साथ दास का प्रयोग बाद में हुआ होगा। श्री रजनीकांत शास्त्री ने भविष्य पुराण का जो उल्लेख किया है उससे प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी का नाम शर्मा था न कि तुलसीदास।

आध्यात्मिक नाम—गोस्वामीजी का आध्यात्मिक नाम 'राम बोला' था।

बाल पने सूधे मन राम सनमुख भयो
राम नाम लेत माँगि खात टूकटाक हौं।
परयो लोकरीति में पुनीत प्रीति राम राय,
मोह बस बैठो तोरि तरकि तराक हौं ॥क ७ ४०

अर्थात् बालपन में मेरा भोला मन राम के सम्मुख हो गया और मैं राम नाम बोलकर, रोटियों के टुकड़े माँग-माँग कर खाया करता था। मैं राम का गुलाम हूँ। अतएव भगवान् राम की कृपा से मेरा नाम राम बोला पड़ गया। 'कवितावली' और 'विनयपत्रिका' के निम्नलिखित छन्द इस उक्ति की पुष्टि करते हैं —

सुनिए कराल कलिकाल भूमिपाल तुम्ह
जाहि घालो चाहिए, कहौ धौं राखै ताहि को।
हौं तो दीन दूबरो बिगारो-ढारो रावरो न
मैंहू तेंहू ताहि को, सकल जगु जाहि को॥
काम, कोह लाइ कै देखाइयत आँखि मोहि
एते मान अकसु कीबे को आपु आहि को।
साहेबु सुजान, जिन्ह स्वानहू को पच्छु कियो,
राम बोला नामु हौं गुलामु रामसाहि को ॥क ७,१००॥

अर्थात् हे कराल कलिकाल महाराज सुनो जिसको तुम नष्ट करना चाहो उसकी रक्षा भला कौन कर सकता है। मैं तो दीन दुर्बल हूँ और आपका कुछ भी बिगाड़ा-बिराया नहीं। मैं भी और तुम भी उसी (ईश्वर) के हैं जिसका यह सारा संसार है। तुम जो काम क्रोध को मेरे पीछे लगाकर मुझे आँखें दिखलाते हो सो तुम इतना विरोध करने वाले कौन हो ? मेरे स्वामी (रामचन्द्रजी) बड़े विज्ञ हैं वे सब जानते हैं उन्होंने श्वान का भी पक्ष लिया था। मैं तो राम शाह का गुलाम हूँ और 'रामबोला' मेरा नाम है।

'रामबोला' नाम किस प्रकार पड़ा इसका स्पष्टीकरण विनयपत्रिका में इस प्रकार है :

राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम
काम यहै नाम द्वै हौं कबहूँ कहत हौं
रोटी-लूगा नीके राखै आगे हू की बेद भाखै
भलो ह्वैहै तेरो, ताते आनन्द लहत हौं ॥७६ १॥

अर्थात् मैं राम का गुलाम हूँ। लोगों ने मेरा नाम रामबोला रखा है। मैं रामजी का यही काम करता हूँ कि कभी-कभी इस नाम को दो प्रकार कह लेता हूँ।

माता हुलसी—गोस्वामीजी ने अपनी माता हुलसी का उल्लेख 'रामचरित मानस' के बालकाण्ड में इस प्रकार किया है :

रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हिय हुलसी सी ॥

अर्थात् राम-कथा भी रामजी को पवित्र तुलसी के समान प्रिय है और यह (मुझ) तुलसीदास का हित (माता) हुलसी के समान हृदय से करने वाली है।[1] इस उद्धरण से नितान्त स्पष्ट है कि तुलसीदासजी की माता का नाम 'हुलसी' था और उपर्युक्त पंक्ति में 'हुलसी' शब्द संज्ञा के ही रूप में प्रयुक्त हुआ है जैसा कि म० बालकराम विनायकजी का सुझाव है।[2] सोरों-सामग्री में यह नाम 'हुलसो' रूप से आया है। जनश्रुति है कि जब तुलसीदासजी ने किसी ब्राह्मण-कन्या के विवाह के निमित्त अब्दुर्रहीम खानखाना को यह सिफारिश लिख भेजी कि 'सुरतिय नरतिय नागतिय यह चाहत सब होय' तो रहीमजी ने ब्राह्मण को प्रचुर धनराशि देकर गोस्वामीजी के दोहार्द्ध की पूर्ति इस प्रकार लिख भेजी थी गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय।

गर्भ-वास काल

गर्भवास दस मास पालि पितु-मातु रूप हित कीन्हौं
जड़हि विवेक, सुसील खलहि अपराधिहि आदर दीन्हौं ॥ १७१ २ ॥

विनय-पत्रिका के इस उद्धरण से स्पष्ट है कि गोस्वामी जी ने अपनी माता के गर्भ में दस मास निवास किया था।

मातु-पितु-वियोग—कवितावली और विनयपत्रिका में यह उल्लेख है कि जन्म के शीघ्र ही पश्चात् तुलसीदासजी का वियोग अपने माता-पिता से हो गया था :—

मातु पिता जग जाइ तज्यो विधि हूँ न लिखी कछु भाल भलाई।
(कवितावली ५७)
जननी जनक तज्यो जनमि करम बिनु बिधिहु न सृज्यो अवडेरे ॥
(विनय० २२७)
तनु जन्यो कुटिलकीट ज्यों तज्यो मातु पिता हूँ। (विनय० २७५)

---

१ दे० सूर और गुरुओं मानस सम्पादन।
२ सरस्वती, ११ भाग ११ कवित रामायण में गोस्वामी तुलसीदास का जीवन चरित्र, [illegible]।

अन्तिम उद्धरण का तात्पर्य है कि मेरे माता-पिता ने मुझे जन्म देकर त्याग दिया अथवा मेरे माता-पिता ने मुझे जन्म देकर कुटिल कीट की तरह त्याग दिया। सोरों वाले 'कुटिल कीट' से 'कुटीला' नामक ऐसे कीड़े का आशय निकालते हैं जो सन्तान को जन्म देने के पीछे ही मर जाता है और कहते हैं कि तुलसीदास के माता पिता का देहान्त बालक के जन्म के कुछ ही समय पश्चात् हो गया था इसलिए गोस्वामीजी ने ऐसा लिखा है। अविनाशराय के लेख के अनुसार तुलसीदासजी केवल दस मास के थे जब उनके माता-पिता का देहान्त हुआ था। सोरों-सामग्री के अनुसार जन्म के समय मूल नक्षत्र न था किन्तु विशाखा नक्षत्र का द्वितीय चरण था। अतएव माता-पिता के द्वारा शिशु-त्याग की कल्पना का अवसर ही नहीं। गोस्वामीजी ने यह लिखा है कि उनके जन्म के समय बाजे बजाये गये इससे भी अभुक्त मूल की कल्पना का परिहार और साथ ही इस सुझाव का निरास होता है कि तुलसीदासजी पापकर्म की सन्तान थे। डॉ॰ माताप्रसाद ने इस ओर ध्यान दिलाया है कि उक्त पंक्ति में केवल माता नहीं पिता भी है' अतएव जननी और जनक के पाप की कल्पना नितान्त निराधार है।

'भयो परिताप पाप जननी जनक को' इस पंक्ति में 'पाप' से क्या आशय है? टीकाकारों ने इसका अर्थ किया है कि बधाई के बाजे सुनकर माता-पिता को परिताप और कष्ट हुआ। इस प्रकार 'पाप' का अर्थ कष्ट कर दिया गया है। मेरी विनीत सम्मति में 'पाप का अर्थ अशुभ व्यक्ति' होना चाहिए। गोस्वामीजी अपने विषय में कहते हैं कि 'मैं ऐसा अभागा अर्थात् अशुभ रहा कि मेरे जन्म के समय जब बधाई के बाजे बज रहे थे तो उनको सुनने के तनिक देर पीछे मेरे माता-पिता दोनों ही को मानसिक तथा शारीरिक कष्ट हुआ'। क्या कष्ट हुआ इसको गोस्वामीजी ने स्वयं स्पष्ट नहीं किया है हाँ उनके तथाकथित समकालीन कवि अविनाशराय ने जो प्रकाश डाला है वह समीचीन प्रतीत होता है —

जब बुद्ध सम्बन्धी तथा निज अनुज जीवाराम
हुलसि कुल गुरु भीमसंकर वेद विद्या धाम
निज पौरि इक ठौरे करे उच्छव भयो अभिराम
जाचक जुरे बहु आय तै सब दीन्ह पुरनकाम
बाजहिं बजनिया बाजने गावहिं बधाई नारि
चिर चिर जिये बालक असीसहिं जन पुकारि पुकारि
कुल लोक वेद प्रमान कीनो जन्म हर्ष विधान
सनमान पाय सर्व गये सब लोग निज निज धाम ॥ १७ ॥
उदर आत्माराम के उपज्यो शूल अति घोर
दई विविध औषध तऊ, आमय भयो न थोर ॥ १८ ॥
विकल रहत भय दिन भये दुखी सकल परिवार
हारे जीवाराम करि, नाना विध उपचार ॥ १९ ॥

---

१ तुलसीप्रकाश, पृष्ठ १०२ मुद्रित [illegible] १६५३।

मुरछित परशाप्त लखि बलनि गिरी हहराम
तुलसी गिरा पति दुख निरखि बिलपति अति अकुलाय ॥ १० ॥

बचपन के कष्ट—तुलसीदासजी का बचपन कष्टमय रहा। उन्हें अपनी जीविका के लिए भिक्षा तक माँगनी पड़ी। यद्यपि उनके माता-पिता खाते-पीते थे तथापि माता-पिता तथा बाबा (जीवाराम) की मृत्यु के पश्चात् आय का कोई साधन न रह गया था। उनकी दादी उन्हें अवश्य राम का भरोसा देती थीं और वे राम के नाम पर भिक्षा-वृत्ति करते थे। उनके वचन हैं

(क) बारे तें ललात बिललात द्वार द्वार दीन
जानत हों चारि फल चारि ही चनक को ॥ क ७ ७३ ॥

अर्थात् मैं बालपन से ही अत्यन्त दीन होने के कारण द्वार द्वार ललचाता और बिलखाता फिरा और चने के चार दानों को ही धर्म अर्थ काम और मोक्ष रूपी चार फल समझता था।

(ख) नीच निरादर भाजन कादर कूकर टूकनि लागि ललाई ॥ क, ७,२७

अर्थात् मैं नीच निरादर का पात्र और कायर कुत्ते के मुख में स्थित टुकड़े के लिए भी ललचाता था।

(ग) जियों ललात बिन नाम बदर लगि, दुकन दुखित मोहि हेरे
नाम-प्रसाद लहत रसाल-फल अब हौं बबुर बहेरे ॥ विनय० २९७ ॥

अर्थात् जब मैं राम-नाम के शरण नहीं हुआ था तब मैं पेट भरने को (द्वार-द्वार) ललचाता फिरता था। मेरी ओर देखकर दुःख को भी दुःख होता था। श्री राम की कृपा से पहले मेरे लिए जो बबूल और बहेड़े के वृक्ष थे उन्हीं पेड़ों से मुझे अब आम के फल मिल रहे हैं।

(घ) द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहू ॥ विनय ॥ २७५,१ ॥

अर्थात् हे नाथ मैं द्वार-द्वार पर दाँत निकाल कर और पैरों पड़कर अपनी दीनता का वर्णन करता फिरता था।

गोस्वामीजी की इन उक्तियों का स्पष्टीकरण भक्तिदासराय की इन पंक्तियों से हो जाता है —

निज धाम जीवाराम। पुत्रवत जननी मम काम ॥
तुलसीहि भक्त सनाम। सालत अनेक उपाय ॥
न कछ मम पद मास। अम्मा भये मंदरास ॥
तब मुकुल जीवाराम। सुत को भरायो नाम ॥
तुलसिहि पतेस बनाय। दादी रहीं दुखदाय
पुनि कछ है बरमास। पायें भये बैंबहाल
पुनि मुकुल जीवाराम। रोगी भये मति धाम
भइ नवद धम धम धाय। दारिद भयो गृह छाय
दुख रोग सौं दुख पाय। ये रमप वर्ष बिताय ॥ ४५ ॥
जननी जाया जास सुत। तेहि सुत भयो सभाय
सेस सनातन बंस को। रही पुरातन गाथ ॥ ४६ ॥

हुति काम गृह मन बाल। सब को भयो भ्रवसान
दूसर न कोऊ बाल। तेहि पुष न बरनो बाल
काका गये सुर लोक। तुलसी बढ़यो मन सोक
बाबो कह्यो समुझाय। होंय राम सहाय
गुरुदेव तेरे सोय। दें हैं सबै बुध पोय
तू राम भजि अविराम। पूर्जे सकल मन काम
बहु राम नाम सुनाय। धीरज बयो मन लाय
तुलसी बसे मन राम। अविराम टेरत राम
तब रामबोला नाम। कहि लोग टेरत गाम
बहु विध मुसीबत मास। भ्रम पेट सो रहि बास
बारत पुरातन चीर। तेहि कोउ बरत न धीर
जाको बसन सों बाइ। बाधन लय सकुचाइ
मिस नाम बन गृह बाय। बाचत कबहु बुध पाय
कोउ देत कोउ न देत। पछिताइ मन बलि देत ॥ ४७ ॥
पावत बिलके द्वार मिल धाइ अतिथि सनमान
तेहि सुत भौरनि अतिथि बनि, रावत भ्रापन प्रान ॥ ४८ ॥

गुरुदेव—गोस्वामीजी के गुरु नृसिंह जी थे। सोरों सामग्री के भ्रनुसार इनकी पाठ्याला सूकरक्षेत्र के चक्रतीर्थ में थी, और इस पाठ्शाला में हनुमानजी की मूर्ति भी थी। एक दिन सोरों में गंगाजी के किनारे एक वैश्य कुछ दान कर रहा था और तुलसीदास उस दान करते हुए बनिये को भ्रमीरता से देख रहे थे किन्तु उन्हें मिला कुछ नहीं। नृसिंह जी संयोग से वहाँ उपस्थित थे और तुलसी की दीन-हीन दशा से बड़े प्रभावित हुए और उन्हें घर ले भ्राए। गोस्वामी जी अपने गुरु का स्मरण 'रामचरित मानस' में इस प्रकार करते हैं :—

बंदों गुरु पद कंज कृपासिंधु नर रूप हरि
महा मोह तम पुंज जासु बचन रवि कर निकर ॥ १५ ॥

अर्थात् मैं परम दयालु अपने गुरु नृसिंह जी के चरण-कमलों में प्रणाम करता हूँ जिन के वचन महा अज्ञान को इस प्रकार दूर कर देते हैं जिस प्रकार सूर्य की रश्मियाँ अन्धकार को। और भी—

बंदौं गुरु पद पदुम परागा सुरुचि सुबास सरस अनुरागा
अमिय मूरि मय चूरन चारू, समन सकल भव रुज परिवारू
सुकृत संभु तन बिमल बिभूती मंजुल मंगल मोद प्रसूती
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी, किये तिलक गुनगन बस करनी
श्री गुर पद नख मनि गन जोती सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती
दलन मोह तम सो सप्रकासू बड़े भाग उर भ्रावहिं जासू
उघरहिं बिमल बिलोचन हिय के, मिटहिं दोष दुख भव रजनी के
सूझहिं रामचरित मनि मानिक गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।
यथा सुभंजन आंजि दृग साधक सिद्ध सुजान

कौतुक देखहिं सैल बन, भूतल भूरि निधान ।

गुरुपद रज मृदु मंजुल अंजन नयन अमिय दृग दोष बिभंजन
तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन बरनौं राम चरित भव मोचन'

रा १ २—१

इस वर्णन से स्पष्ट है कि गोस्वामी जी के गुरुदेव बड़े दयालु और विद्वान् थे और शिष्य पर उनका पर्याप्त प्रभाव पड़ा । अविनाशराय का स्पष्टीकरण इस प्रकार है —

ताहि दिवस नरसिंह गुरु सोरम गंगा तीर
राम करत इक बनिक सहुँ तुलसी भये अधीर ॥२१॥
पायो तुलसी नाहिं कछु, ठाढे दुखित उदास
गुरुवर बूझी बात तू कौन तनय कहँ बास ॥२२॥
दुखत आतमाराम सुत कह्यो जाहि पुर बास
मात पिता सुर पुर गये एक राम की आस ॥२३॥
समुझि सुकुल कुल बाल मन, दुखित भए गुरुराय
करुना करि कर गहि चले आपन सदन लिवाय ॥२४॥
तुलसिहि गुरु धीरज दयौ कह्यो पढ़ी चित लाय
अब लगि आयसु जाउ कहँ तूं है राम सहाय ॥२५॥
अवसर गुरु कहँ पाय तुलसीदास मन प्रमुदित भए ।
नरसिंह गुरु पद परसि सुमिरत राम कहँ निज गृह गए ॥
आपनि पितामहि सों कह्यो जो बारता गुरु सों भई
सुनि कह्यो राम कृपा करि नित जाउ पढ़ि अनुमति दई ॥२६॥
असन बसन तेहि भूमि को दिय परबन्ध कराय
पढ़ इक सुर गृह धाम हू धृति हत गुरु राय ॥२७॥

विद्यास्थान और पाठ्य-विषय—गोस्वामीजी का विद्यास्थान सूकर-खेत (सोरों) और मुख्य पाठ्य विषय था राम कथा । उनके वचन हैं —

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकरखेत
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत ।
तदपि कही गुरु बारहिं बारा । समुझि परी कछु मति अनुसारा
भाषाबद्ध करबि मैं सोई । मोरे मन प्रबोध जेहि होई ॥ (रा १,३० ३१)
बहुमत सुनि सुनि पंथ पुरानि जहाँ तहाँ झगरो सो ।
गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहिं लगत राज डगरो सो ॥विनय १७३॥

अविनाशराय ने गोस्वामीजी के अध्ययन पर इस प्रकार प्रकाश डाला है —

तहँ विप्रमनि इक बसत गुरुवर श्री नृसिंह सुभागनी
बहु धाम अधिपति राम हनुमत भगतवर विद्यागमी

---

१ गुरु का नामोल्लेख 'रामचरित' में अन्यत्र तथा अन्य ग्रन्थों में भी हुआ है । देखिये अध्याय दूसरा और ग्यारहवाँ ।

श्रुति सास्त्र धर्म पुरान सिच्छा वेद नित अनुक्रम रहैं
नित पाठ साला बैठि सो नित रैनि राम कथा कहैं ॥४२॥
गुरु सेवा तुलसी करत, पढ़त सविधि नित जाय
पहली प्रथम व्याकरण पुनि, कोश काव्य मन लाय ॥५८॥
नन्ददास हू तेहि अनुज पढ़न लगे पुनि आय
दोउ भ्रात गुरु भगति रत, बरसति सील सुभाय ॥५९॥
उपनयनादि विधान सब, कुल गुरु सों करवाय
वेद पढ़ायो गुरु सहित संध्या सविधि सिखाय ॥६०॥
विमल रामायन ललित बरनन शास्त्र पुरान
अनुज सहित तुलसी पढ़े पंडित भये महान ॥६१॥

भविनाथराय के मतानुसार गोस्वामीजी ने गान-वाद्य की भी शिक्षा प्राप्त की उसके निमित्त वे सीतारामजी के मन्दिर में हरिहर स्वामी के पास नन्ददासजी के साथ जाया करते थे और वे दोनों संगीत शास्त्र में प्रवीण हो गये। संगीत प्रवीणता तुलसीदास की और नन्ददासजी के ग्रन्थों में स्वतः प्रमाणित है क्योंकि उन्होंने अपने ग्रन्थों में अनेक राग लिखे हैं और उनके नामों का उल्लेख भी किया है। 'गीतावली' और 'विनय पत्रिका' दोनों ही गोस्वामीजी के संगीत-ज्ञान के साक्ष्य हैं।

हनुमद्भक्ति—घोरों-सामग्री के अनुसार गोस्वामीजी के गुरुदेव हनुमानजी के और रामजी के भक्त थे। गुरुजी की पाठशाला में हनुमानजी की प्रतिमा आज भी विद्यमान है। गुरुजी के प्रभाव से तुलसीदासजी भी भगवान् राम और हनुमानजी के भक्त बन गये जिसका उल्लेख गोस्वामीजी ने 'हनुमान बाहुक' में इस प्रकार किया है—

बालक बिलोकि बलि बारे तें आपनो कियो
दीनबंधु दया कीन्हीं निरुपाधि न्यारिये।
रावरो भरोसो तुलसी के रावरोई बल
आस रावरीये दास रावरो बिचारिए ॥बाहुक २१॥
टूकनि को घरघर डोलत कँगाल बोलि
बाल ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो है
कीन्हीं है सँभार सार अंजनी कुमार बीर
आपनो बिसारि हैं न मेरे हू भरोसो है ॥बाहुक २६॥
पालो तेरे टूक को परे हूँ चूक मूकिये न
कूर कौड़ी दू को हौं आपनी ओर हेरिये ॥
भोरानाथ भोरे ही सरोष होत थोरे दोष
पोषि तोषि थापि आपनो न अवडेरिये ॥
अंबु तू हौं अंबुचर, अंब तू हौं डिंभ सो न
बूझिए बिलंब अवलंब मेरे तेरिये।
बालक बिकल जानि पाहि प्रेम पहिचानि
तुलसी की बाँह पर लामी लूम फेरिये ॥बाहुक १४॥

हौं तो बिन मोल के बिकानो बलि बारे हीते,
ओट राम नाम की ललाट लिखि लई है।
कुंभज के किंकर बिकल बूड़े गोखुरनि
हाय राम राय ऐसी हाल कहूँ भई है ॥बाहुक ३८॥

अर्थात् हे दीनबन्धु मैं बलि जाता हूँ बालक को देखकर आपने लड़कपन से ही अप नाया और मायारहित अनोखी दया की। सोचिये तो तुलसी आपका दास है इसको आपका भरोसा आपका ही बल और आपकी ही आशा है। हे दीनों के पालन करने वाले कृपानिधान मैं टुकड़े के लिए दरिद्रतावश घर-घर डोलता फिरता था आपने बुलाकर बालक के समान मेरा पालन-पोषण किया है। हे वीर अंजनी-कुमार मुख्यतः आपने ही मेरी रक्षा की है अपने जन को आप न भुलायेंगे इसका मुझे भी भरोसा है। आपके टुकड़ों से पला हूँ, चूक पड़ने पर भी मौन न हो जाइये। मैं कुमार्गी दो कौड़ी का हूँ पर आप अपनी ओर देखें। हे भोलानाथ अपने भोलेपन से ही आप थोड़े दोष से रुष्ट हो जाते हैं सन्तुष्ट होकर मेरा पालन करके मुझे बसाइये अपना सेवक समझ कर दुर्दशा न कीजिये। आप जल हैं तो मैं मछली हूँ आप माता हैं तो मैं छोटा बालक हूँ देरी न कीजिये मुझको आपका ही सहारा है। बच्चे को व्याकुल जानकर प्रेम की पहचान करके रक्षा कीजिये तुलसी की बाँह पर अपनी लम्बी पूछ फैरिये। बलि जाता हूँ मैं तो लड़कपन से ही आपके हाथ बिना मोल बिका हुआ हूँ और अपने कपाल में राम नाम का आधार लिख लिया है। हाय राजा रामचन्द्रजी कहीं ऐसी दशा भी हुई है कि अगस्त्य मुनि का सेवक गाय के खुर में डूब गया हो'।

सम्प्रदाय—गोस्वामीजी के कुल स्मार्त वैष्णव थे। मुरलीधर चतुर्वेद ने रत्नावली चरित में गुरुदेव के विषय में लिखा है—

स्मारत वैष्णव सो पुनीत सकल वेद आगम प्रवीन ॥१०॥

वैष्णव वार्ताओं में तुलसीदासजी को रामानन्दी बताया गया है और 'भविष्य पुराण' में भी उन्हें काशीनिवासी किन्हीं राघवानन्द का शिष्य और रामानन्दी सम्प्रदाय में दीक्षित बताया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी बाल्यकाल में एवं तरुणावस्था में भी कुछ काल तक स्मार्त वैष्णव रहे किन्तु सम्भव है कि वे और नन्ददासजी काशी-यात्रा में रामानन्द सम्प्रदाय से प्रभावित रहे हों। वे वल्लभाचार्यजी के दार्शनिक सिद्धान्तों से भी प्रभावित थे। हो सकता है राम का अनन्य भक्त होने के कारण उन्हें रामानन्दी समझ लिया गया हो अथवा रामानन्द सम्प्रदाय में वे कुछ दिन रहे भी हों पर पीछे से वे इस सम्प्रदाय से अलग हो गये हों। गोस्वामीजी की रचनाओं से यह स्पष्ट है कि वे बाल्यकाल में और प्रौढ़ावस्था में और वृद्धावस्था में भी अन्त तक स्मार्त बने रहे। वे शिवजी हनुमानजी दुर्गाजी आदि के उपासक थे। 'रामचरित मानस' का रचनाकाल बताने वाली निम्नलिखित पंक्तियाँ भी इस विषय में मन्तव्य हैं —

संवत सोरह सै इकतीसा। करउँ कथा हरिपद धरि सीसा॥
नौमी भौम बार मधु मासा। अवधपुरीं यह चरित प्रकासा॥

इससे स्पष्ट है कि तुलसीदासजी ने रामनवमी मंगलवार की मानी और वह नवमी स्मार्तों की थी। यदि वे रामानन्दी होते तो वे बुधवार की नवमी मानते।

विवाह—गोस्वामीजी का विवाह सम्पन्न हुआ था, इस सम्बन्ध में उनके वचन इस प्रकार हैं :—

जोबन जुवति संग रंग रात्यो । तब तू महा मोह मद मात्यो ।।
तातें तजी धरम-मरजादा । बिसरे तब सब प्रथम बिषादा ।। वि० १३६

अर्थात् 'हे जीव जब तू युवावस्था में युवती के साथ विषय-वासना के रंग में रंग गया तब तू बड़े मोह और मद में मतवाला हो गया और इस कारण तूने धर्म की मर्यादा छोड़ दी और पहले (अर्थात् धर्म और लड़कपन के) कष्टों को भूल गया'। श्री रामनीकान्त शास्त्री के मत से तुलसीदासजी के व्यक्तित्व से इस उक्ति का विशेष सम्बन्ध नहीं, यह तो साधारण उक्ति है जो सभी जीवों के लिये न्यूनाधिक रूप में लागू होती है। किन्तु विवाह के सम्बन्ध में अन्य और भी वचन हैं —

सखा न सुसेवक न सुतिय न प्रभु आप
माय-बाप तुही साँचो तुलसी कहत।
मेरी तो थोरी है सुधरयो बिगरियो,
बलि राम रावरी सों रही रावरी चहत।। विनय० २६१।।

अर्थात् मेरे न तो कोई मित्र है, न सच्चा सेवक है न सुशीला स्त्री है और न कोई नाथ है। मेरे तो माँ बाप आप ही हैं, तुलसी यह सच्ची बात कह रहा है। मेरी तो थोड़ी सी बात है बिगड़ी होने पर भी सुधर जायगी किन्तु बलिहारी मैं आपकी शपथ खाकर कह रहा हूँ मैं तो आपकी बात ही रखना चाहता हूँ। इस उक्ति में पत्नी की ओर कटाक्ष प्रतीत होता है। गोस्वामी जी की पत्नी तो थी किन्तु वह उसे सुतिय न समझते हों क्योंकि उसी के कारण वे खिन्न हो कर घर से निकल पड़े थे। 'विनय पत्रिका' का एक और भजन है जो इस बात की पुष्टि करता है कि गोस्वामी जी का विवाह हुआ था वह यह है—

लरिकाई बीती अचेत चित चंचलता चौगुने चाय।
जोबन-जुर जुबती कुपथ्य करि, भयो त्रिदोष भरि मदन बाय।।
मध्य बयस धन हेतु गँवाई कृषी बनिज नाना उपाय।
राम बिमुख सुख लह्यो न सपनेहुँ निसिबासर तयो तिहूँ ताय ।।८३।।

अर्थात्—लड़कपन तो अज्ञान में बीत गया। उस समय चित्त में चौगुनी चंचलता और उमंग थी। जब युवावस्था रूपी ज्वर चढ़ा तो स्त्री-सेवन-रूपी कुपथ्य और काम रूपी वायु से भारी त्रिदोष हो गया। बीच की अवस्था धन के लिए खेती वाणिज्य व्यापार आदि विविध उपायों में बितायी। पर मैंने रामजी से विमुख होने के कारण सपने में भी सुख नहीं पाया और मैं रात दिन तीनों तापों से तपता रहा।

तुलसी विवाह के सम्बन्ध में 'हनुमान बाहुक' का निम्नलिखित साक्ष्य प्रबलतम प्रतीत होता है—

बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो,
राम नाम लेत माँगि खात टूक टाक हौं।
परयो लोक रीति में पुनीत प्रीति रामराय,
मोहबस बैठो तोरि तरकि तराक हौं।।

छोटे छोटे आचरन आचरत अपनायो
अंजनीकुमार सोध्यो राम पानि पाक हौं।
तुलसी गोसाईं भयो भोंडे दिन भूलि गयो
ताको फल पावत निदान परिपाक हौं ॥४०॥

अर्थात्—हे हनुमान् जी मैं बाल्यावस्था से ही सीधे मन से भगवान् राम के सम्मुख हुआ राम नाम उच्चारण करता हुआ जो कुछ टुकड़ा माँगने से मिलता उसे खा लेता। (पर इस प्रकार) राजा राम के प्रेम से पवित्र होकर भी मैं लोकरीति में पड़ गया अर्थात् मैंने विवाह कर लिया किन्तु अज्ञानवश उस वैवाहिक सम्बन्ध को जल्दबाजी में तोड़ बैठा। (तत्पश्चात्) मैंने छोटे छोटे आचरण किये किन्तु आपने मुझे फिर भी अपना लिया और भगवान् राम के पवित्र हाथों से मेरा सुधार करवाया। पिछले अधम दिन भूलकर मैं तुलसीदास गोस्वामी बन गया जिसका फल अन्त में आज भले प्रकार पा रहा हूँ। इस पंक्ति में 'लोक रीति' विवाह का द्योतक है। जनश्रुति है कि गोस्वामी जी की पत्नी ने उन्हें इस प्रकार डाँटा था[1]—

लाज न आवत आपको दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि चर्म मय देह मम तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ होति न तौ भव भीति॥
प्राण प्राण के जीव के जिव सुख के सुख राम।
तुम तजि तात सोहात गृह जिनहिं तिनहिं विधि बाम॥

और 'दोहावली' में भी पत्नी का वचन वर्णित है —

खरिया खरी कपूर सब उचित न पिय तिय त्याग
कै खरिया मोहि मेलिकै बिमल विवेक बिराग॥२५५

ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त फटकार से तुलसी को मार्मिक दुख तो हुआ होगा, जैसा कि 'तुलसी सतसई' के इन शब्दों से ध्वनित है —

को दुखरा? बहु बाम। तु० स० १, ६६
विपति सखे का? बाम। तु० स० १, ६२

किन्तु विरक्ति तुरन्त न हुई हो और गोस्वामी जी के बारे में जो यह बात प्रचलित है कि उनके तीन विवाह हुए वह कदाचित् ठीक हो। उक्त उद्धरण में गोस्वामी जी ने 'पाक' शब्द फ़ारसी से लिया है और इसी उद्धरण में 'तलाक' शब्द का अर्थ भले ही अरबी का 'तलाक' न हो किन्तु उसकी ध्वनि अवश्य निकलती है।

'छोटे छोटे आचरन' से गोस्वामी जी का क्या तात्पर्य है? वह कदाचित् 'विनय पत्रिका' के निम्न-लिखित भजन में सन्निहित है—

नयन मलिन पर नारि निरखि, मन मलिन विषय संग लागे।
हृदय मलिन बासना मान-मद जीव सहज सुख त्यागे॥
पर निंदा सुनि श्रवन मलिन भे बचन दोष पर गाये॥
सब प्रकार मलभार लाग निज नाथ चरन बिसराये ॥८२॥

---

१ रामचरित मानस की भूमिका तुलसी चरित चन्द्रिका पृष्ठ १। रामदास गौड़।

अर्थात्—पराई स्त्री को देखने से नेत्र मलिन हो गये। विषयों में फँसने से मन मलिन हो गया। वासना मान और मद से हृदय मलिन हो गया और जीव अपने स्वाभाविक सुख को त्यागने से मलिन हो गया। पराई निन्दा सुनते-सुनते कान मैले हो गये। दूसरों के दोष बार-बार कहने से वाणी मैली हो गयी। स्वामी के चरणों को भूल जाने से ये सब प्रकार के मलभार मेरे पीछे लगे फिरते हैं। जो हो, गोस्वामी जी को संसार की कटुता और विषमता का अनुभव हुआ और तज्जन्य ज्ञान का उदय भी। कदाचित् इसी कारण 'दोहावली' में उन्होंने मानवजीवन के लिये मध्यम मार्ग को ही प्रशस्त समझा। वे कहते हैं—

घर छोड़े घर जात है घर राखे घर जाय।
तुलसी घर बन बीच ही राम प्रेम पुर छाय ॥२५६॥

अर्थात्—तुलसीदास जी कहते हैं कि घर छोड़ने से यहाँ का घर नष्ट होता है और घर करने से अपना असली घर (परलोक) नष्ट हो जाता है। अतएव तू घर और वन के बीच में ही श्रीराम जी के प्रेम की पुरी बसा। यही भाव तुलसी सतसई (४७५ १ १९) में भी है।

विरक्ति—विरक्ति के प्रारम्भ काल में गोस्वामी जी के विषय में लोगों में परस्पर विरुद्ध धारणाएँ थीं—

कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो
कोऊ कहै राम को गुलामु खरो खूब है।
साधु जानैं महासाधु खल जानैं महाखल
बानी झूँठी-साँची कोटि उठत हबूब है॥
चहत न काहू सों न कहत काहू की कछू
सब की सहत उर अंतर न ऊब है।
तुलसी को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के
राम की भगति-भूमि मेरी मति दूब है॥ क० १०८

मेरे जाति-पाँति न चहौं काहू की जाति पाँति
मेरे कोऊ काम को न हौं काहू के काम को।
लोकु परलोकु रघुनाथ ही के हाथ सब,
भारी है भरोसो तुलसी के एक नाम को॥
[illegible]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि गोस्वामी जी जाति-पाँति, विषय-भोग मान-मर्यादा आदि सांसारिक प्रलोभनों से उपरत हो गये थे।

चित्रकूट-निवास—गोस्वामीजी ने कम से कम छः मास तक चित्रकूट पर निवास किया था, और कदाचित् उन्होंने चित्रकूट की यात्रा एक से अधिक बार की थी—

जप महाइ फल खाइ जपु राम नाम षट मास
सगुन सुमंगल सिद्धि सब करतल तुलसीदास ॥ रामाज्ञा ७
सब दिन चित्रकूट नीको लागत।
बरषा ऋतु प्रवेश विसेष गिरि देखत मन अनुरागत ॥
चहुँ दिसि बन सम्पन्न बिहँग मृग बोलत सोभा पावत।
जनु सुनरेस देसपुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत ॥
सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रंगमगे सृंगनि।
मनहुँ आदि अंभोज बिराजत सेवित सुर मुनि भृंगनि ॥
सिखर परसि घन घटहि मिलत बगपाँति सो छबि कबि बरनी।
आदि बराह बिहारि बारिधि मानो उठो है दसन धरि धरनी ॥
जल जुत बिमल सिलनि झलकत नभ बन प्रतिबिंब तरंग।
मानहुँ जग रचना बिचित्र बिलसति बिराट अँग अँग ॥
मंदाकिनिहि मिलत झरना झरि झरि भरि भरि जल आछे।
तुलसी सकल सुकृत सुख लागे मानो राम भगति के पाछे ॥
गीता २ ५०

अयोध्या—गोस्वामीजी ने अयोध्यापुरी के दर्शन किये थे वहीं से 'रामचरित मानस' का प्रकाशन भी किया था जैसा कि 'रामचरित मानस' की निम्नलिखित चौपाई से स्पष्ट है —

अवधपुरी यह चरित प्रकासा ॥ रा० १ ३४ ३

प्रयाग—गोस्वामीजी ने तीर्थराज प्रयाग के भी दर्शन किये थे और उन्होंने 'कवितावली' में इसका उल्लेख इस प्रकार किया है —

देव कहैं अपनी-अपनी अवलोकन तीरथ राजु चलो रे।
देखि मिटें अपराध अगाध निमज्जत साधु-समाजु भलो रे ॥
सोहै सितासित को मिलिबो तुलसी हुलसै हिय हेरि हलोरे।
मानो हरे तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे ॥१४४॥

सीतामढ़ी—प्रयाग और काशी के बीच में सीतामढ़ी स्थित है। इसका वर्णन इस प्रकार किया है —

जहाँ बालमीकि भए ब्याध तें मुनिंदु साधु
मरा मरा जपें सिख सुनि रिषि सात की।
सीय को निवास लव-कुस को जनमथल
तुलसी छुवत छाँह ताप गरै गात की ॥

बिप्र महीप सुरसरित समीप सोहैं,
सीताबट पेखत पुनीत होत पातकी।
बारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि
अंकित जो जानकी-चरन-जलजात की॥ क ७ ११८

काशीवास—गोस्वामीजी के जीवन का बहुत सा समय काशी में व्यतीत हुआ। भगवान् राम के अनन्य भक्त होते हुए भी उन्हें शंकर भगवान् में अत्यन्त आस्था और जन्मभूमि-तट-वाहिनी गंगाजी के प्रति असीम श्रद्धा थी। काशी में मरने का माहात्म्य भी है अतः गोस्वामीजी ने अपना मुख्य निवास-स्थान काशी ही रखा। उन्होंने काशी माहात्म्य का 'विनय पत्रिका' में और अन्नपूर्णा देवी का वर्णन कवितावली' में इस प्रकार किया है —

सेइय सहित सनेह देह भरि, काम धेनु कलि कासी
समनि सोक-संताप-पाप-रुज सकल-सुमंगल रासी॥
मरजादा चहुँ ओर चरनबर सेवत सुर पुर बासी
तीरथ सब सुभ अंग रोम सिवलिंग अमित अविनासी
अन्तर ऐन एन भल थन फल, बच्छ बेद बिस्वासी
गल कंबल बरुना बिभाति जनु लूम लसति सरिता सी
दंडपानि भैरव बिषान मल रुचि-खलगन भयदा-सी
लोल दिनेस त्रिलोचन लोचन करनघंट घंटा-सी
मनिकर्निका बदन-ससि सुन्दर, सुरसरि-सुख सुखमा सी
स्वारथ परमारथ परिपूरन पंचकोसि महिमा सी
बिस्वनाथ पालक कृपालुचित लालति नित गिरिजा सी
सिद्धि सची सारद पूजहिं मन जोगवति रहति रमा सी
पंचाच्छरी प्रान मुद माधव गव्य सुपंचनदा सी
ब्रह्मजीव-सम रामनाम जुग, आखर बिस्व-बिकासी
चारितु चरति करम कुकरम करि मरत जीव गन घासी
लहत परम पद पय पावन जहि चहत प्रपंच-उदासी
कहत पुरान रची केसव निज कर-करतूति कला-सी
तुलसी बसि हरपुरी राम जपु जो भयो चहै सुपासी॥२२॥

'रामचरित मानस' में भी काशी मोक्ष-दात्री है अतएव उसका बड़ा माहात्म्य है

मुक्ति जन्म महि जानि ज्ञान खानि अघ हानिकर
जहँ बस सम्भु भवानि सो कासी सेइय कस न॥ रा० ४ १[1]

अतएव गोस्वामीजी भी वहाँ आकर बसने के लिए रहने लगे थे —

---

१ काशी-माहात्म्य
कुन्द [illegible] बानारसी [illegible] सुख [illegible]।
[illegible] मनि [illegible]॥ [illegible] ४ ४१

घेरो रामराय को सुजस सुनि तेरो हर
पायें तर आइ रह्यो सुरसरि तीर हौं ॥ क० ७, १६६
जीबे की न लालसा दयालु महादेव मोहि
मालुम है तोहि मरबेई को रहत हौं ॥ क० ७ १६७

काशी में असी के दक्षिण में लोलार्क और गंगाजी के बीच उनकी कुटी थी :

रचि कंचन मय बहुबिध बीच सुवास बिचारि।
तुलसिदास आसन करे। तु० स० १ २१

मित्र—रामाज्ञा प्रश्न के निम्नलिखित दोहे में किन्हीं गंगारामजी का उल्लेख किया गया है जो जनश्रुति के अनुसार काशी में प्रह्लाद घाट के निवासी और गोस्वामीजी के मित्र थे—

सगुन प्रथम उनचास सुभ तुलसी अति अभिराम
सब प्रसन्न सुर भूमि सुर गोगन गंगाराम ॥१-७-७॥

विरोध—ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी का पांडित्य और यश कुछ लोगों को असह्य प्रतीत हुआ अतएव वे लोग गोस्वामीजी की जाति कुल, विवाह चरित्र आदि के सम्बन्ध में दोषारोपण करते थे जो कालान्तर में स्वयं नष्ट हो गया। इस प्रकरण से सम्बन्ध रखने वाले 'दोहावली' से कुछ उद्धरण ये हैं —

पुन्य पाप जस अजस के भावी भाजन भूरि।
संकट तुलसीदास को राम करहिंगे दूरि ॥१४६॥
भली कहैं बिनु जानेहुँ बिनु जाने अपवाद।
ते नर गादुर जानि जिय करिय न हरष बिषाद ॥३६८॥
पर सुख सम्पति देखि सुनि जरहिं जे जड़ बिनु आगि।
तुलसी तिनके भागतें चलै भलाई भागि ॥३८८॥
तुलसी जे कीरति चहहिं पर कीरति को खोय।
तिनके मुँह मसि लागि है मिटिहि न मरि है धोय ॥३८९॥
माँगि मधुकरी खात जे सोवत गोड़ पसारि।
पाप प्रतिष्ठा बढ़ि परी ताते बाढ़ी रारि ॥४९३॥
रामायन अनुहरत सिख जग भो भारत रीति।
तुलसी सठ की को सुनै कलि कुचालि पर प्रीति ॥ दोहा० ५४५॥

और भी —

कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो ॥क० ७, १०८॥
धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जोलहा कहौ कोऊ ॥क० ७ १०६
लोग कहैं पोच सो न सोच न संकोच मेरे ॥ विनय० ७६
बातन पीन कुसाहिब दीन मलीन धरे कथरी करवा है
लोक कहै बिधिहू न लिख्यो सपनेहूँ नहीं अपने बर बाहै ॥क० ७, ५६
एते पर हूँ जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै
ताको जोर देव दीन द्वारे गुदरत हौं

पाइकै उराहनो उराहनो न दीजो मोहि
कालकला कासीनाथ कहे निबहत हौं ॥ क० ७, १६६
गाँव बसत बामदेव मैं कबहूँ न निहोरे
अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे
बेगि बोलि बलि बरजिए करतूति कठोरे
तुलसी दलि रूँध्यो चहैं सठ साखि सिहोरे ॥ विनय० ८
खोद खोइ कूप बनायो पर कहूँ सो सठ फिरि तेहि कूप परै
सपनेहुँ सुख न संत द्रोही कहँ सुरतरु सोउ विष फरनि फरै ॥
हैं काके द्वै सीस ईस के जो हठि जनकी सीव चरै ॥ वि० १३७

पद और उपाधि—तीव्र विरोध के होते हुए भी गोस्वामीजी की प्रतिष्ठा बढ़ती गयी। विद्वान् तो वे थे ही वे निर्भीक भी थे जैसा कि उन्होंने लिखा है

तुलसिदास रघुबीर बाहुबल सदा अभय काहू न डरै ॥विनय० १३७ ६॥

सोरों में गुरु नृसिंह से विद्याध्ययन कर इन्होंने असीम विद्वत्ता प्राप्त कर ली थी। मुरलीधर चतुर्वेद ने गोस्वामीजी के लिए लिखा है कि वे थे—

गौर बरन विद्या निधान। विविध शास्त्र पंडित महान ॥र० च० ६६
सब्द अरथ बाँचहिं पुरान। तुलसी लहि धन सब मान ॥र० च० ६०

विनय-पत्रिका में पंडित-पद-प्राप्ति का उल्लेख इस प्रकार है —

जो पाइ पंडित परम पद पावत पुरारि-मुरारि को। वि० १३५॥

अर्थात् मैं 'पंडित' का परम पद प्राप्त कर भगवान् शिव और विष्णु को प्राप्त हुआ।

तुलसीदासजी को 'गोस्वामी' की उपाधि प्राप्त हो गयी यह कदाचित् जैसा कि डॉ० माताप्रसाद गुप्त समझते हैं गोसाईं कुण्ड पर तुलसीदास-मठ के अधीश बनने के कारण। गुप्त जी का आधार है न्याय-सिद्धान्त-मंजरी की पुष्पिका जो इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी में है। किन्तु गोस्वामीजी ने मठाधीश होने पर जो आचरण रखा उस पर स्यात् उन्हें पश्चात्ताप हुआ जैसा कि 'बाहुक' के निम्नलिखित उद्धरण से प्रतीत होता है —

छोटे खोटे आचरन आचरत अपनायो
अंजनीकुमार सोध्यो रामपानि पाक हौं।
तुलसी गोसाईं भयो भोंडे दिन भूलि गयो
ताको फल पावत निदान परिपाक हौं ॥४०॥
असन बसन हीन बिषम बिषाद लीन
देखि दीन दूबरो करै न हाय हाय को।
तुलसी अनाथ सो सनाथ रघुनाथ कियो
दियो फल सीलसिंधु आपने सुभाय को ॥
नीच यहि बीच पति पाइ भरुहाइगो
बिहाइ प्रभु-भजन बचन मन काय को
तात तनु पेखियत घोर बरतोर मिस
फूटि फूटि निकसत लोन रामराय को ॥४१॥

गोस्वामीजी को सब से श्रेष्ठ जो उपाधि मिली वह नाभादास जैसे समकालीन सन्तों की वाणी में प्रस्फुटित है —

त्रेता काव्य निबन्ध करी सत कोटि रमायन
इक अच्छर उच्चरे ब्रह्म हत्यादि परायन
पुनि भक्तन सुख देन बहुरि लीला बिस्तारी
रामचरन रस मत्त रहत अहनिसि ब्रत धारी
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लिए
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भए ॥

भक्तमाल छप्पय १२९

गोस्वामीजी के विषय में श्री मधुसूदन सरस्वती की सम्मति थी —

आनन्द कानने ह्यस्मिन् जंगमस्तुलसीतरुः
कवितामंजरी भाति रामभ्रमरभूषिता ॥

कदाचित् गोस्वामीजी को अपने विषय में ऐसी लोक धारणा का ज्ञान था तभी तो उन्होंने कवितावली के उत्तर काण्ड में लिखा —

रामनाम को प्रभाउ पाउ महिमा प्रतापु
तुलसी-सो जग मानियत महामुनी-सो ॥

उन्हें राज-सम्मान भी प्राप्त था

घर घर माँगे टूक पुनि भूपति पूजे पाय। दो० १ ६

काशी में दारिद्र्य और महामारी—गोस्वामीजी ने कवितावली में काशी की दरिद्रता और महामारी का उल्लेख किया है। इस महामारी का क्या रूप था यह विषूचिका थी या ताऊन इसका कोई निर्णायक उल्लेख नहीं। लोग दरिद्र और दुखी थे इसका कारण उनका चारित्र्य-दोष था अतएव भगवान् राम और भगवान् शंकर काशी-वासियों की विकलता से उदासीन रहे। किन्तु महात्मा गोस्वामीजी ने द्रवित होकर जानकीजी और पार्वतीजी तथा हनुमानजी से उनका दुःख निवारण करने के लिए इस प्रकार प्रार्थना की —

लिपत बसेरे अघ-औगुन घनेरे नर
नारिऊ अनेरे जगदंब चेरी-चेर हैं।
दारिद-दुखारी देखि भूसुर भिखारी भीरु
लोभ मोह काम कोह कलिमल घेरे हैं।
लोक-रीति राखी राम साखी बामदेव जानि
जन की बिनति मानि मातु कहि मेरे हैं
महामारी महेसानि महिमा की खानि
मोद-मंगल की रासि, दास कासीबासी तेरे हैं ॥क० १७४॥
लोगनि के पाप कैधौं सिद्ध-सुर-साप कधौं
काल के प्रताप कासी तिहूँ ताप तई है
ऊँचे नीचे बीच के धनिक, रंक, राजा राय
हठनि बजाइ करि डीठि पीठि दई है

देवता निहोरे, महामारिन्ह सों कर जोरे,
भोरानाथ जानि भोरे आपनी-सी ठई है।
करुनानिधान हनुमान बीर बलवान
जसरासि जहाँ तहाँ तैं हीं लूटि लई है ॥क० १७४॥

रचत बिरंचि हरि पालत, हरत हर
तेरे ही प्रसाद जग, अग-जग-पालिके।
तोहि में बिकास बिस्व तोहि में बिलास सब
तोहि में समात मातु भूमिधरबालि के॥
दीजै अवलंब जगदंब न बिलंब कीजै,
करुना तरंगिनी कृपा-तरंग-मालिके।
रोष महामारी परितोष महतारी दुनी
देखिये दुखारी, मुनि-मानस-मरालिके ॥१७५॥

संकर-सहर सर, नर नारि बारिचर
बिकल सकल महामारी माँजा भई है॥
उछरत उतरात हहरात मरि जात,
भभरि भगात जल-थल मीचु मई है॥
देव न दयाल महिपाल न कृपाल चित
बारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज पाहि कपिराज रामदूत
राम हू की बिगरी तुहीं सुधारि लई है ॥क० १७६॥

डा० माताप्रसाद गुप्त के विचार से उक्त महामारी ताऊन ही थी जो कवि के जीवन के अन्तिम वर्षों में काशी में संवत् १६७१ और संवत् १६८० के बीच किसी समय आयी होगी। ईलियट की 'ए हिस्ट्री आफ इण्डिया' बेनीप्रसाद की हिस्ट्री आफ जहाँगीर (पृ० २११ २१२ १९३०) विंसेंट स्मिथ का अकबर (पृष्ठ ११८) तथा जहाँगीरनामा (मुं० देवीप्रसाद का अनुवाद पृष्ठ २२८, ११३) के अनुसार भारत में प्लेग सबसे पहली बार संवत् १६६ में आयी थी। विजयानन्द त्रिपाठीजी इस बात में विश्वास नहीं करते कि गोस्वामीजी को प्लेग हो गयी थी क्योंकि उनकी मृत्यु सं० १६८० में हुई थी। त्रिपाठीजी का तर्क है कि बाहु-पीड़ा से प्लेग का और बरतोर का प्लेग की गिल्टी से तात्पर्य नहीं, यदि प्लेग से गोस्वामीजी का देहावसान हो गया होता तो 'हनुमान् बाहुक' का अनुष्ठान रोग की निवृत्ति के लिए कदापि नहीं किया जाता' और भगवान् राम और हनुमानजी की कृपा से उसका अन्त भी हो गया था —

आश्रम बरन कलि बिबस बिकल भए
निज निज मरजाद मोटरी सी डार दी।
संकर सरोष महामारी ही तें जानियत
साहिब सरोष दुनी दिन दिन दार दी।

---

१ श्री गोस्वामी तुलसीदासजी की सम्पूर्ण जीवनी, श्री रामचरितांक कल्याण १११ ई०

मारि मर मारत पुकारत सुनै न कोऊ
काहू देवतनि मिलि मोटी मूठि मारि दी।
तुलसी सभीत सुमिरे कृपालु राम
समय सुकरुना सराहि सनकार दी ॥ क, १८१ ॥

रुग्णावस्था और समय—'दोहावली' 'कवितावली' और 'विनय पत्रिका' के कुछ छन्दों में गोस्वामीजी ने अपने रोग की शान्ति के लिए प्रार्थना की है। 'दोहावली' और 'बाहुक' से यह विदित होता है कि वे बाहु-पीड़ा से पीड़ित थे। बाहु-वेदना पहले एक बाहु में प्रारम्भ हुई थी फिर समग्र शरीर में व्याप्त हो गयी। वेदना के कारण स्वरूप गोस्वामीजी ने वात का वृद्धावस्था का कलिकाल का एवं भूत प्रेत-बाधा का निम्नलिखित उल्लेख किया है। राम की कृपा से यह पीड़ा शान्त हो गयी थी —

रोग निकर तनु जरठ पनु तुलसी संग कुलोग।
राम कृपा लै पालिए दीन पालिबे जोग ॥ दो० १७८

अभिभूत वेदन विषम होत भूतनाथ
तुलसी विकल पाहि पचत कुपीर हौं।
मारिये तो अनायास कासीबास खास फल,
ज्याइये तो कृपाकरि निरुजसरीर हौं ॥ क ७ १६६

रोग भयो भूत-सो कुसूत भयो तुलसी को
भूतनाथ पाहि पदपंकज गहतु हौं।
ज्याइये तो जानकीरमन-जन जानि जिये
मारिये तौ मागी मीचु सूधियै कहतु हौं ॥ क ७ १६७

आधि-मगन-मन व्याधि-विकल-तन वचन मलीन भुठाई
एतेहुं पर तुमसों तुलसी की प्रभु सकल सनेह सगाई ॥ वि० १६५,४

तुलसी तनु सर सुख जलज भुज रुज गज बर जोर।
दलत दयानिधि देखिए कपि केसरी किसोर ॥ दो० २३४

भुज तरु कोटर रोग अहि बरबस कियो प्रवेस
बिहगराज बाहन तुरत काढ़िय मिटै कलेस ॥ दो० २३५

बाहु बिटप सुख बिहग थलु लगी कुपीर कुआगि
राम कृपा जल सींचिए बगि दीन हित लागि ॥ दो० २३६

अपराधी जानि कीजै सासति सहस भाँति
मोदक मरै जो ताहि माहुर न मारिये।
साहसी समीर के दुलारे रघुबीर जू के
बाँह पीर महाबीर बेगि ही निवारिये ॥ ह० बा० २

आपने ही पाप तें त्रिताप तें कि साप तें
बढ़ी है बाँह बेदन कही न सहि जाति है।
औषध अनेक जन्त्र मंत्र टोटकादि किये
बादि भये देवता मनाये अधिकाति है ॥ ह० बा० १०

भाम की कि काल की कि रोष की त्रिदोष की है,
बेदन बिषम पाप ताप छल छाँह की।
करमन कूट की कि जंत्र मंत्र बूट की,
पराहि जाहि पापिनी मलीन मन माँह की॥
पैहहि सजाय, नत कहत बजाय तोहि,
बावरी न होहि बानि जानि कपिनाँह की।
आन हनुमान की दोहाई बलवान की,
सपथ महाबीर की जो रहै पीर बाँह की॥२९॥
काल की करालता करम कठिनाई कीधौं
पाप के प्रभाव की सुभाय बाय बावरे
बेदन कुभाँति सो सही न जाति राति दिन,
सोई बाँह गही जो गही समीर डाबरे॥ ह० बा० १७
पाँय पीर पेट पीर बाँह पीर मुँह पीर,
जरजर सकल सरीर पीर मई है।
देव भूत पितर करम खल काल ग्रह
मोहि पर दवरि दमानक सी दई है॥ ह० बा० १८
बाहुक सुबाहु नीच लीचर मरीच मिलि
मुँह पीर केतु जा कुरोग जातुधान है।
राम नाम जप जाग कियो चहौं सानुराग
काल कैसे दूत भूत कहा मेरे मान है॥ ह० बा० १९

बावीसी, मीनकी सनीचरी काशी की दीनता—मीन की सनीचरी और रुद्र बीसी में कलि के उत्पात बढ़ गये थे जैसा कि 'कवितावली' और 'दोहावली' से विदित है —

एक तो कराल कलिकाल सूल मूल तामें
कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की
बेद धर्म दूरि गए भूमि चोर भूप भए
साधु सीद्यमान जानि रीति पाप पीन की।
दूबरे को दूसरो न द्वार राम दयाधाम
रावरीऐ गति बल बिभव बिहीन की
लागैगी पै लाज वा बिराजमान बिरुदहि
महाराज आजु जौं न देत दादि दीन की॥ क० ७ १७७
ठाकुर महेस ठकुराइनि उमा सी जहाँ
लोक बेद हूँ बिदित महिमा ठहर की
भट रुद्रगन पूत गनपति सेनापति
कलिकाल की कुचाल काहू तौ न हरकी
बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बड़ो बारानसी
बूझिये न ऐसी गति संकर-सहर की

कैसे कहै तुलसी वृषासुर के बरदानि
बानि जानि सुधा तजि पीवनि जहर की ॥ क० ७ १७०
अपनी बीसी आपुही पुरिहिं लगाए हाथ ।
केहि बिधि बिनती बिस्व की करौं बिस्व के नाथ ॥ दो० २४०

श्री स्वामी कन्नूपिल्लाई के अनुसार जैसा कि डॉ० माताप्रसाद गुप्त लिखते हैं इस रुद्रबिसति का समय १६२३ संवत् से १६४२ संवत् है किन्तु म० म० सुधाकर द्विवेदी की गणना के आधार पर सर ग्रियर्सन के मतानुसार संवत् १६५५ से संवत् १६७५ तक और मिश्रबन्धुओं के अनुसार संवत् १६६५ से १६८५ संवत् तक है। तथा च सुधाकर द्विवेदीजी के अनुसार मीन राशि में शनि का प्रवेश प्रथमबार चैत्र शुक्ला ५ संवत् १६४० को अथवा उसके लगभग हुआ और संवत् १६४२ के ज्येष्ठ तक उसकी स्थिति रही तथा द्वितीय बार उसका प्रवेश चैत्र शुक्ल द्वितीया संवत् १६६९ को हुआ और स्थिति १६७१ संवत् के ज्येष्ठ तक रही। डॉ० गुप्त ने मीन की सनीचरी के विषय में सुधाकर जी की गणना ठीक समझी है और रुद्रबीसी के सम्बन्ध में पिल्लाई जी की गणना को अधिक विश्वस्त समझा है।[1] गोस्वामीजी के लेखानुसार रुद्रबीसी में मीन की सनीचरी थी क्योंकि कवितावली के उत्तर काण्ड के १७० वें छंद में रुद्रबीसी का उल्लेख है और १७७ वें में मीन की सनीचरी का 'जो कोढ़ में की खाजसी' थी। स्पष्ट है कि रुद्रबीसी में मीन की सनीचरी पड़ी थी और दोनों ही संवत् १६४२ में समाप्त हुईं। अतएव सम्राट् अकबर के राज्यकाल में गोसाईं जी के कष्ट का और काशी की दीनता का समय १६२३ से १६४२ वि० तक रहा इस संकटकाल में विषूचिका महामारी से काशी नगरी संतप्त रही और गोस्वामीजी को व्यक्तिगत रोग और लांछन लगे पर संवत् १६४३ से गोस्वामीजी की प्रतिष्ठा स्थापित हो गयी होगी, ऐसी मेरी विनम्र धारणा है। सोरों-सामग्री के अनुसार कृष्णदासजी अपने ताऊ गो० तुलसीदास से मिले थे और उन्होंने अपने भतीजे को 'रामचरितमानस' की एक प्रति १६४३ वि० में प्रदान की थी। स्यात् कोई उत्सव रहा हो जिसके उपलक्ष में कृष्णदासजी को आमन्त्रित किया गया हो।

आगामी कतिपय पृष्ठों में गोस्वामीजी के उन कूट वचनों की चर्चा होगी जो उन्होंने अपने विषय में लिखे हैं।

(ख) कूट और गूढार्थ

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने विषय में निम्न लिखित कूट और गूढार्थ वचनों का भी प्रयोग किया है —

वंश परिचय—

रामसनेही सों तैं न सनेह कियो
अगम जो अमरनि हूँ सो तन तोहि दियो।
दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को।

१ तुलसीदास, तृतीय संस्करण पृष्ठ १७४ १७८।

जो पाइ पंडित परमपद पावत पुरारि मुरारि को
यह भरत खण्ड समीप सुरसरि थल भलो संगति भली
तेरी कुमति कायर कलपबल्ली चहत विष फल फली ॥१३५॥

इस उदाहरण की द्वितीय पंक्ति में गोस्वामीजी ने अपने पिता 'आत्माराम' और माता 'हुलसो' का उल्लेख कैसी गूढ़ रीति से किया है। यदि 'अगम जो अमरनि' इन शब्दों का सीधा अर्थ ऐसा किया जाय कि 'जो अमरों के लिए अगम्य है' और इसे 'तन' का विशेषण माना जाय तो भाव स्पष्ट नहीं होता, क्योंकि तन तो नाशवान् होता है वह न अमर है और न अगम्य है। यदि यह अर्थ किया जाय कि 'देवताओं के लिए भी जो अज्ञेय है उसने तन दिया' तो आपत्ति होगी कि निर्गुण अथवा सगुण ब्रह्म ने तन दिया। किन्तु तन देने का कार्य तो ब्रह्म नहीं करते मनुष्य अपने कर्म से देह पाता है, जैसा मनुस्मृति का वचन है—

यो यदैषां गुणोदेहे साकल्येनातिरिच्यते
स तदा तद् गुण प्रायं तं करोति शरीरिणम्।

अतः कूट का अर्थ क्या होना चाहिए? अगम का अर्थ है परब्रह्म अर्थात् तुलसीदासजी के राम। गीता कहती है 'मां तु वेद न कश्चन'। और 'अमरनि का अर्थ है जो न मरे' अर्थात् 'आत्मा'। गीता कहती है 'न जायते म्रियते वा कदाचित्'। दोनों शब्दों का अर्थ हुआ 'राम आत्मा अथवा आत्मा राम'।

तत्पश्चात् कूट में 'हु—सो' की विद्यमानता है जिसमें मध्याक्षर का लोप हो गया है। पूर्ण शब्द था 'हुलसो'। मुरलीधर चतुर्वेद ने 'रत्नावलीचरित' में तुलसीदासजी की माता का नाम हुलसो ही लिखा है यद्यपि तुलसीदासजी और कवि रहीम ने हुलसी रूप को ग्रहण किया है। माता-पिता के नामों के पश्चात् 'सुकुल' आस्पद का उल्लेख है। क्या तुलसीदासजी अपने शरीर को सुन्दर कह कर आत्मश्लाघा कर सकते थे? नहीं। अतएव कुछ विद्वान् 'सुन्दर' से अभिप्राय ग्रहण करते हैं (तन अर्थात् तपस्या से आढ्य—) सनाढ्य जाति का। फिर कहा गया है थल भलो। इसमें 'थल' का अर्थ है खेत 'भ' द्योतक है भूधर का और ल है अपने उच्चारण स्थान दन्त का। 'भ लो' दोनों मिल कर भगवान् वराह के द्योतक हैं जिन्होंने पृथ्वी को दन्त पर धारण किया था। इस प्रकार युक्ति-पूर्वक गोस्वामीजी ने माता-पिता 'हुलसो' और 'आत्माराम' सुकुल आस्पद सनाढ्य जाति और 'गंगातीरस्थ सूकरक्षेत्र' का उल्लेख कर दिया है। कूट का प्रस्तुत अर्थ सभी को ग्राह्य न हो परन्तु [illegible] में अनेक शास्त्रों के परम विद्वान् पंडित दशरथ शास्त्री और अलीगढ़ के पंडित रामचन्द्र शास्त्री ने इसी प्रकार अर्थ किया है। तुलसीदासजी ने स्वयं इस कूटार्थ-शैली का उपयोग 'तुलसी सतसई' के अनेक दोहों में किया है। निम्नलिखित उदाहरण पर्याप्त होगा—

जनक-सुता बस जान-सुत शरण-ईश भ-भोर
तुलसिदास बस पद चरित भव-सागर गो थोर ॥३, १॥

यहाँ जनक सुता=जानकी वस जान सुत=राम शरण ईश=लक्ष्मण और भ=भरत और भ=शत्रुघ्न है (देखिए दोहे २ ४२ २, ४४)। इस शैली के तुलसीसतसई के

निम्नलिखित दोहे में तुलसीदासजी के पिता 'आत्माराम'जी के दर्शन होते हैं

बरन अनूपम जासु बर सकल कला गुन धाम।
अविनासी अव्यय अमल सो यह तनु धरि राम ॥६, १॥

इस दोहे को स्पष्ट करने के लिए विलक्षण उपकरण की आवश्यकता नहीं। पर उसका भाव 'अनुपम यत्न-पूर्वक सम्मिश्र मेरा यह शरीर आत्माराम' से उत्पन्न हुआ है। 'आत्मा' अमल अव्यय और अविनाशी तत्व है जिसके आधार हैं राम' जो सम्पूर्ण श्रेष्ठ कलाओं और गुणों के आधार हैं। विशेष यत्न की अपेक्षा इस कारण रही कि एक तो यह अध्यात्म चर्चा होने के कारण कठिन है दूसरे तुलसीदासजी के पिता का नामोल्लेख कूट-द्वारा हुआ है।

तुलसी और तारी—मैंने कई बार पं० दशरथ शास्त्री के दर्शन किये और उन्होंने मेरा ध्यान 'रामचरितमानस' की कुछ पंक्तियों की ओर आकर्षित किया था। किन्तु उन दिनों मैं बाह्य साक्ष्य की ओर अधिक प्रवृत्त था और मैंने उनके वचनों पर विशेष ध्यान न दिया था। तुलसी और गुरु नरसिंह के विषय में तो सब जानते ही हैं। रत्नावली का भी उल्लेख तुलसीदासजी ने रूपान्तर से रामायण में कहीं किया बताया जो मुझे विस्मृत हो गया है। 'रामचरितमानस' की निम्नलिखित अर्द्धालियों में तुलसी और तारी का जो उल्लेख 'रामचरितमानस' में हुआ है उसका सम्बन्ध गोस्वामीजी की माता और उसके जन्म-स्थान से विस्तारपूर्वक बताया गया—

रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हिय हुलसी सी ॥

रा० १ १० ग १२

राम कथा सुन्दर कर तारी। संशय बिहग उड़ावनि हारी ॥

रा० १, ११३ १

पंडित रामनरेश त्रिपाठी और श्री चन्द्रबली पांडे को 'हुलसी' का उक्त उल्लेख संगत प्रतीत नहीं होता। उनका तर्क है कि राम और तुलसी अर्थात् भगवान् विष्णु और वृन्दा का जो सम्बन्ध है वह तुलसीदास और हुलसी का होना चाहिए। साहश्य के आधार पर हुलसी उनको तुलसीदास की माता नहीं लगती। श्री राम किंकर का उत्तर है कि राम-जानकी का जो सम्बन्ध है वह तुलसीदास के लिए पुत्र और माता का है।[1] उन्होंने सीताजी को माता माना है। रामपत्नी तुलसीदास की माता के तुल्य है अतएव तुलसी और हुलसी का सम्बन्ध पुत्र और माता का ही हो सकता है। कर्मसिता और जगज्जननी का उल्लेख करते समय अपना और अपनी पत्नी का उल्लेख करना तो अमार्जनीय धृष्टता हो सकती थी जो तुलसीदास जैसे विरक्त और कुशल कवि के लिए असम्भव था। तारी का विवेचन अन्यत्र किया गया है।

गुरु नरसिंह—गोस्वामीजी के गुरु नरसिंहजी थे। 'विनय पत्रिका' में इसका गूढ़ उल्लेख है —

श्री हरि गुरुपद कमल भजहु मन तजि अभिमान
जेहि सेवत पाइय हरि सुख निधान भगवान ॥२०३॥

---

१ तुलसी कौन ? तुलसी की माता अथवा पत्नी ? हिन्दुस्तान १८ अप्रैल १९५४।

'तुलसी सतसई' में भी

रसना-सुत पहिचान बिनु कछु न कबस भुलान।
जाके कोउ हरि गुरु बिना चरित भये रवि ग्यान ॥४७॥

इसी प्रकार 'रामचरित मानस' में भी—

राम-नाम नर केसरी कनक कसिपु कलि काल ॥१,२७॥
मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नर हरी ॥५,३,१॥

गुरु-नाम का उल्लेख है। अन्तिम उदाहरण की ओर डॉ० गुलाबराय ने ध्यान आकर्षित किया है[1]। अतएव इन तीनों उद्धरणों से इस धारणा को पुष्टि मिलती है कि तुलसीदासजी के गुरु नरसिंहजी थे जिनको वे स्पष्टतः पहले ही प्रणाम कर चुके थे—

बन्दे गुरु पद कंज। कृपा सिन्धु नर रूप हरि
महा मोह तम पुंज जासु बचन रविकर निकर ॥रा० १ ५॥

मुबेबजी विद्यालंकार ने :[2]

वन्दे गुरु पदाम्भोजं नर रूपं स्वयं हरिं
यद् वाक्य सूर्योदयत स्तमो नश्यति साम्प्रतम् ॥

इस श्लोक को 'वाचालि संहिता' का बताकर इस अभिप्राय से उपस्थित किया है कि गोस्वामीजी का सोरठा इसी का अनुवाद है, अतएव नरसिंहजी को उनका गुरु मान लेना उचित नहीं। इस आपत्ति पर प्रथम अध्याय में विचार हो चुका है। इसके अतिरिक्त कहा जा सकता है कि गोस्वामीजी ने जान-बूझकर वाचालि संहिता का यह वचन ग्रहण कर लिया जिसके द्वारा न केवल गुरु-महिमा की अपितु उनके नाम की भी अभिव्यक्ति होती थी। गोस्वामीजी ने अन्यत्र भी तो गुरुदेव के इस नाम का उल्लेख किया है जैसा कि अभी ऊपर बताया जा चुका है। बचपन में ही तुलसीदासजी उनकी शरण में आ गये थे और उन्होंने इनकी पीठ पर हाथ रखा था

बूझ्यो ज्योंही कह्यो, मैं हूं चेरो ह्वैं हौं रावरो जू
मेरो कोऊ कहूँ नाहि चरन गहत हौं।
मींजो गुरु पीठि अपनाइ गहि बोलि
सेवक सुखद सदा बिरद बहत हौं ॥वि० ७६,१॥

इन्हीं गुरु से गोस्वामीजी ने रामकथा सूकर-क्षेत्र में बार बार बचपन में तब सुनी थी जब वे उसके माहात्म्य को पूर्णतया समझ नहीं पाते थे :

मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकर खेत
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत ॥रा० १, ३०॥
तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा।

माता का त्याग—गोस्वामीजी का सम्पर्क माता-पिता से सवा वर्ष तक रहा अर्थात् दस मास गर्भ में और तीन मास जन्म के पश्चात्। देहली-दीपक-न्याय से यह रहस्य विनय-पत्रिका में इस प्रकार स्पष्ट हो रहा है—

---

१ तुलसीदास एक विश्लेषण : तुलसीदास का जीवन वृत्त, पृष्ठ ५ अभिनवांक रिवेन्स दिल्ली, १९५९ ई।

२. कल्याण सचित्र मासिक विशेष काण्ड-चैत्र-वैशाख सं० २००९।

गर्भवास दस मास पालि पितुमातु रूप हित कीन्हों ।।१७२ २

'गर्भवास दस मास' और 'दस मास पालि' अर्थात् माता-पिता ने गर्भ में दस मास तक वास कराकर और जन्म के पश्चात् दस मास तक पालन-पोषण कर मुझे रूप प्रदान किया।' पिछले दस मास का समर्थन अविनाशराय की इन पंक्तियों से होता है। तुलसी और आत्माराम की मृत्यु से पूर्व—

पाय सित इंदु सम बाल बढ़िवे लग्यो
मास दस बेस सिसु सम्य पढ़िबे पग्यो ।।३५।।

सनाढ्यत्व—तुलसीदासजी ने विनय-पत्रिका के ११९वें पद में अपना आस्पद 'सुकुल' तो स्पष्ट ही लिखा है और उसी में 'सुन्दर' के द्वारा अपने सनाढ्यत्व की ओर संकेत भी किया है। इसके अतिरिक्त वे अपने सनाढ्यत्व को युक्ति से बताते हुए भगवान् रामचन्द्र के प्रति कहते हैं—

बहुत प्रीति पुजाइबे पर पूजिबे पर थोरि
देत सिख सिखयो न मानत, मूढ़ता अस मोरि ।।वि० १५८।।

सनाढ्य ब्राह्मणों को अपने सनाढ्यत्व पर बड़ा गर्व है। कहते हैं कि दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजी ने सनाढ्यों का पूजन कर यज्ञान्त में ७०० ग्राम दान में दिये थे जिसका उल्लेख गोस्वामीजी के समकालीन महाकवि केशव ने अपनी कविप्रिया में इस प्रकार किया है

ब्रह्मा जू के चित्त तें प्रगट भये सनकादि
उपजे तिनके चित्त तें सब सनौढ़िया आदि ।।१।।
परशुराम भृगुनंद तब उत्तम विप्र विचारि
दये बहत्तर ग्राम तिन तिनके पायँ पखारि ।।२।।
जब पावन बैकुण्ठ पति रामचन्द्र यह नाम
मथुरा मण्डल में दिये तिन्हें सात सौ ग्राम ।।३।।[1]

यह भी कहा जाता है कि उन ग्रामों के नामों पर सनाढ्यों की अल्लें चल रही हैं। पंडित रामचन्द्र शास्त्री इस विषय में सनाढ्य 'गौरवादर्श' और 'भविष्य पुराण' का भी उल्लेख करते हैं।[2]

गृहत्याग और यात्रा—पत्नी-गृहत्याग के समय तुलसीदासजी की विरक्ति और चित्रकूट-वास की आकांक्षा इस प्रकार व्यक्त है

अब चित चेति चित्रकूटहि चलु।
कोपित कलि लोपित मंगल मगु बिलसत बढ़त मोह माया मलु ।।२४।।

'कोपित कलि' का इंगित कुपित पत्नी की ओर है जिसे वे कल्याण मार्ग से हटाने वाली और मोहमायामल को बढ़ाने वाली समझे थे। वे बदरिया से गंगाजी के किनारे किनारे यात्रा में प्रवृत्त हुए

---

१ कविप्रिया दूसरा प्रभाव ' १, प्रकाशक लाला भगवानदीन मुद्रक मेरानन्द प्रेस अमृतसर संवत् १९८२ वि ।

२ तुलसी समाचार, पृष्ठ १६।

तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुबंस बीर
बिचरत मति देहि मोह-महिष-कालिका ।।बि० १७।।

'मोह महिष कालिका' का प्रयोग कितना सार्थक है। वे गंगाजी के किनारे-किनारे घूमते घूमते प्रयाग होते हुए सब-सोच-बिमोचन चित्रकूट (बि० २१) पहुँचे थे।

हनुमद्दर्शन—गोस्वामीजी सात्त्विक जीवन-व्यतीत करते थे। उनके हृदय में राम-दर्शन की कामना का उदय हुआ। कहते हैं एक पेड़ पर से ध्वनि आयी कि राम के प्रति अनुराग बढ़ाओ—

समुझि समुझि गुन ग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ
तुलसिदास अनयास रामपद पाइ है प्रेम पसाउ ।।बि० १००।।

तुलसी ने पूछा कैसे ? उत्तर मिला हनुमान्‌जी के द्वारा। फिर पूछा पहचान ? उत्तर मिला रामकथा सुनते समय जिसके अश्रु बहते रहें और शरीर रोमांचित हो जायें

यत्र-यत्र रघुनाथ-कीर्तनं तत्र तत्र कृत मस्तकाञ्जलिम्
बाष्पवारि-परिपूर्ण-लोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ।।

लोकश्रुति चलती है कि तुलसीदासजी ने एक दिन किसी व्यक्ति को रामकथा श्रवण करते समय अत्यन्त रोमांचित तथा अश्रुयुक्त देखा और उन्हें ऐसा लगा कि वे भगवान् रुद्र के अवतार हनुमान्‌जी हैं। अतएव उन्होंने हनुमान्‌जी की शरण चाही।

जयति रामायण श्रवण सजात रोमांच लोचन सजल सिथिल बानी
राम पद पद्म मकरंद मधुकर पाहि दास तुलसी शरन शूल पानी ।।बि० २९

गोस्वामीजी ने हनुमान्‌जी के चरण पकड़ लिये। हनुमान्‌जी ने पैर छुड़ाने चाहे पर गोस्वामीजी की अपत्ति अटल रही

आपसे कहु सौंपिये मोहि जो पै अतिहि घिनात
दास तुलसी और बिधि क्यों चरन परिहरि जात ।।बि० २१७।।

हनुमान्‌जी अंततः प्रसन्न हुए और तुलसी ने राम-दर्शन का वर माँगा—

कबहिं देखाइहौ हरि चरन
समन सकल कलेस कलिमल सकल मंगल करन ।।बि० २१८।।

वर साधारण न था। हनुमान्‌जी ने टालना चाहा पर तुलसीदास जी अड़ ही गये।

कृपा सिंधु सुजान रघुबर प्रनत आरति हरन
दरस आस पियास तुलसीदास चाहत मरन ।। बि० २१८।।

और हनुमान्‌जी को उनकी प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ी।

रामदर्शन—जनश्रुति है कि हनुमान्‌जी ने चित्रकूट में रामघाट पर राम दर्शन के समय, गोस्वामीजी को संकेत करने के निमित्त तोते का रूप धारण कर यह दोहा मौनी अमावास्या को १६०७ वि० में बोला था—

चित्रकूट के घाट पै भई संतन की भीर
तुलसिदास चंदन घिसें तिलक देत रघुबीर ।।[1]

---

1 रामचरित मानस संक्षिप्त जीवनी पृष्ठ १२, (रामायण मन्दिर) सीता देवी २ ० ।

इससे स्पष्ट है कि रामचन्द्रजी ने अपने भक्त तुलसीदास के चन्दन लगाया था। उस समय तुलसीदासजी को पूज्य-पूजक का असमंजस और संकोचानन्द उत्पन्न हुआ। तुलसी तो सनाढ्य होने के कारण राम के पूज्य थे और राम थे तुलसी के आराध्य देव। अतएव रामदर्शन के समय तुलसी को संकोच हुआ और आनन्द भी, इसी से उन्होंने कहा—

कैसे देउँ नाथहिं खोरि।
काम लोलुप भ्रमत मन हरि भगति परिहरि तोरि।
बहुत प्रीति पुजाइबे पर पूजिबे पर थोरि।
देत सिख सिखयो न मानत, मूढ़ता असि मोरि॥बि० १५८॥

रामदर्शन पाकर तुलसी कृतार्थ हुए और बोले—

ताके गति है हनुमान की।
ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की॥ बि० १ ॥

अयोध्यागमन—लोग कहते हैं कि गोस्वामीजी १६११ वि० के प्रारम्भ में अयोध्या पहुँच गये थे और वहाँ मन्दिर में भगवान् राम को साष्टांग प्रणाम कर उन्होंने यह प्रार्थना की—

नीलाम्बुज श्यामल कोमलांगं सीता समारोपित वाम भागम्।
पाणौ महा सायक चारु चापं नमामि रामं रघुवंश नाथम्॥ रा० २ १

वे प्रयाग सीतावट, दण्डकारण्य, कुरुक्षेत्र चित्रकूट आदि अनेक नगर वन पर्वतों में पर्यटन कर चुके थे और अयोध्या देर से पहुँचे अतएव उन्होंने क्षमा याचना भी की—

ज्यों ज्यों निकट भयो चहौं कृपालु त्यौं त्यौं दूरि पर्यो हौं
तुम चहुँ जुग रस एक राम, हौं राबरो जदपि अघ अवगुननि भर्यो हौं
बीच पाइ यहि नीच बीच ही छरनि छर्यो हौं
हौं सुबरन कुबरन कियो नृपतें भिखारि करि सुमति तें कुमति कर्यो हौं
अगनित गिरि कानन फिर्यों बिनु आगि जर्यो हौं
चित्रकूट गये हौं लखि कलि की कुचालि सब अब अपडरनि डर्यो हौं
माथ नाइ नाथ सों कहौं हाथ जोरि खर्यो हौं
चीन्हों चोर जिय मारि है तुलसी सो कथा सुनि प्रभु सो गुदरि निबर्यो हौं
॥ बि० २६६॥

काशी-वास—तुलसीदासजी स्मार्त थे और शिवजी की भी पूजा करते थे अतएव उन्होंने साम्प्रदायिक संकट उपस्थित होने पर काशी में विश्वनाथ शंकर की प्रार्थना या की क्योंकि

जिन कहूँ बिधि सुगति न लिखी भाल तिन की गति काशीपति कृपाल।
बिसालमवन बिरिसुला रमन कहु तुलसिदास मम त्राय प्रमन ॥ बि० ११

अतएव अन्त समय तक काशी रहने का निश्चय भी किया—

सेइय सहित सनेह देह भरि काम धेनु कलि काशी॥ बि० २२॥

इस निश्चय के अनुसार उन्होंने अस्सी घाट पर एक गुफा में जप और निवास के लिए

प्रबन्ध किया। उनका दूसरा स्थान मुकुन्दरायजी के बाग के दक्षिण और पश्चिम के बीच के कोने में स्थित है जो तुलसीदासजी की बैठक के नाम से प्रसिद्ध है। यह कोठरी केवल श्रावण शुक्ला सप्तमी को खुलती है। अस्सी पर उन्होंने हनुमान्‌जी का जो मन्दिर बनवाया था उस पर सिद्ध बीसा यन्त्र उत्कीर्ण है। उन्होंने उससे थोड़ी दूर पर संकटमोचन हनुमान्‌जी का दूसरा मन्दिर बनवाया[1] और काशी में कुछ रचना भी की।

चोर-वार्ता—काशी में भी गोस्वामीजी को कष्ट पहुँचाने का प्रयत्न किया गया। कुछ लोगों ने 'रामचरित मानस' को चुरवाकर नष्ट कर देने का विचार किया। इस कुकृत्य के लिए, कहा जाता है चोरों को पुरस्कार भी देने का वचन दिया गया था। पर जब रात्रि में चोर कुटी पर पहुँचे तो वहाँ उन्होंने धनुर्धारी पहरेदार को देखा। उसे देख चोर भाग गये और उन्होंने तथा और लोगों ने भी गोस्वामीजी से क्षमा प्रार्थना की। इस घटना का उल्लेख गोस्वामी ने इस प्रकार किया है—

समाचार साथ के अनाथनाथ कासों कहौं
नाथ ही के हाथ सब चोरऊ पहरु
निज काज सुरकाज आरत के काज, राज
बूझिये बिलंब कहा कहूँ न गहरु ॥ वि० २१०

बन्धन—इस घटना के कारण गोस्वामीजी की ख्याति बढ़ी। कोई उन्हें भक्त कहता तो कोई योगी कोई सिद्ध तो कोई तान्त्रिक। यह समाचार जब कोतवाल[2] को विदित हुआ तो उसे भी चमत्कार देखने की अभिलाषा हुई, अतएव तुलसीदास जी को बुला भेजा गया। पर तुलसीदासजी ने नम्रतापूर्वक कहा कि 'मैं तो राम राम जपता हूँ मेरे पास कोई चमत्कार नहीं'। इस उत्तर से कोतवाल अप्रसन्न हुआ और उसने तुलसीदासजी को हवालात में डाल दिया। वहाँ दुःखी हो उन्होंने हनुमान्‌जी का स्मरण किया। स्मरण करते ही हनुमत्कृपा से चारों ओर बन्दर ही बन्दर छा गये और सब का काम-काज तथा घूमना-फिरना बन्द हो गया। कोतवाल भी गोस्वामीजी को मुक्त करने और क्षमा माँगने के लिए बाध्य हो गया। तुलसीदास जी इस घटना का उल्लेख इस प्रकार करते हैं—

कटु कहिये गाढ़े परें सुनु समुझि सुसाईं
करहिं अनभलेउ को भलो आपनी भलाई
× ×
चूक चपलता मेरिये तू बड़ो बड़ाई
होत आदर ढीठ ह्वौं अति नीच निचाई
बंदि छोरि बिरदावली निगमागम गाई
नीको तुलसीदास को तेरि ये निकाई ॥ वि० ३२

---

१. तुलसी स्मारक पृष्ठ २१ २२।

२. कुछ लेखक कोतवाल के स्थान पर अकबर, जहाँगीर अथवा शाहजहाँ का उल्लेख करते हैं किंतु शाहजहाँ की कल्पना असंगत है क्योंकि वे गोस्वामी जी की मृत्यु के पश्चात् सिंहासन पर आरूढ़ हुए थे।

व्रजयात्रा—कहते हैं कि गोस्वामीजी एक बार आषाढ़ मास में नन्ददासजी से मिलने मथुरा पहुँचे। यमुना में बाढ़ आयी हुई थी, अतएव उन्होंने निम्नलिखित पद गाकर उसके दर्शन किये

जमुना ज्यों ज्यों लागी बाढ़न
त्यों त्यों सुकृत सुभट कलि भूपहिं निदरि लगे बहु काढ़न
ज्यों ज्यों जल मलीन त्यों त्यों जमगन मुख मलीन लहै आढ़न
तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघ मेघ लगे डाढ़न ॥ वि० २१

राम की अनन्यता—व्रज में ही कृष्ण के कुछ उपासकों ने तुलसीदासजी से पूछा कि आप भगवान् राम को क्यों भजते हैं, वे तो भगवान् विष्णु की बारह कलाओं के ही अवतार हैं। आप श्रीकृष्ण को भजें जो सोलह कलाओं के पूर्णावतार हैं। इस पर तुलसीदासजी ने विनोदपूर्वक उत्तर दिया कि मैं तो दशरथ-नन्दन राम की पूजा किया करता था अच्छा हुआ आपने बता दिया कि वे अवतार भी हैं और उन्होंने यह दोहा कहा —

जो जगदीश तो अति भलो जो महीस तो भाग
जनम जनम तुलसी चहत राम-चरन अनुराग ॥दो० स० ७, १२४

इष्टदेव के प्रति अनन्य भक्ति—तुलसीदास जी गृह-बन्धन से मुक्त थे और नन्ददासजी भी विरक्त हो चुके थे और व्रज में रहने लगे थे। दोनों भाइयों में परस्पर प्रेम था वे साथ रहना चाहते थे। परन्तु इधर तो नन्ददासजी व्रज को छोड़ कहीं जाना नहीं चाहते थे और उधर तुलसीदासजी मरण-पर्यन्त काशीवास का व्रत ले चुके थे। कहते हैं कि तुलसीदासजी उषा काल में एक पद गाने लगे और नन्ददासजी लेटे-लेटे ही उसे सुनते रहे। 'सीस दिस ही मैं हौं' उसके ये शब्द उन्हें खटके। उनके मन में यह अभिलाषा उत्पन्न हुई कि भाईजी को राम-रूप में भगवान् कृष्ण के दर्शन कराऊँ। अतएव प्रातःकाल वे दोनों गोवर्द्धन नाथ जी के मन्दिर में दर्शन करने गये। जब देखा कि तुलसी-मस्तक नहीं झुका तो नन्ददासजी ने एक दोहा बोला। तुरन्त भगवान् कृष्ण के स्थान राम रूप में होने लगे। दोनों भाइयों और सभी दर्शकों ने सम्मिलित कीर्तन किया —

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।

इस घटना की चर्चा से व्रज मण्डल गूंज उठा।[1] गोस्वामीजी ने उषा काल में विनयपत्रिका का यह पद गाया था—

जानकी जीवन की बलि जैहौं।
चित कहै रामसीयपद परिहरि अब न कहूँ चलि जैहौं।
उपजी उर प्रतीति सपनेहु सुख प्रभु पद विमुख न पैहौं।
मन समेत या तन के बासिन्ह इहै सिखावन दैहौं।
स्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं रसना और न गैहौं।

---

१ तुलसी समाचार वर्ष ११।१४१

रोकिहौं नयन बिलोकत औरहि, सीस ईस ही मैं हौं।
नातो नेह नाथ सों करि सब नातो-नेह बहैं हौं।
यह छर भार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैं हौं ॥वि० १०४॥

गोकुल दर्शन—दूसरे दिन दोनों भाइयों ने गोकुल जाकर श्रीकृष्ण को प्रणाम किया। तुलसीदासजी ने यह पद गाया जिसमें भगवान् का गुण-गान है और वल्लभाचार्य जी के लिए आदर-ध्वनि भी है—

गोपाल गोकुल वल्लभी प्रिय गोप गोसुत वल्लभम्
चरनारविन्द महं भजे भजनीय सुर मुनि दुर्लभम्
× × ×
कच कुटिल सुन्दर तिलक भ्रू राका मयंक समाननम्
अपहरण तुलसीदास त्रास बिहार वृन्दाकाननम् ॥ कृ० गी० २१

गोकुल से चलकर वे नन्दग्राम होते हुए वृन्दावन पहुँचे। वहाँ नाभा जी से उनकी भेंट हुई और नाभा जी ने अलग-अलग कागज पर प्रशस्ति के छप्पय तुलसीदासजी और नन्ददास जी को भेंट किये जो अब भक्तमाल में सम्मिलित हैं।

एक साधु को फटकार—एक बार एक साधु अलख अलख कहता हुआ गोस्वामीजी से भिक्षा माँगने आया और कहने लगा कि बाबा अलख-अलख कहो'। गोस्वामी जी ने उसकी बात पर कोई ध्यान न दिया तो वह गालियाँ देने लगा। इस पर उन्होंने झुँझला कर निम्नलिखित दोहा कहा :—

हम लखि लखहि हमार लखि हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहिं का लखहि राम नाम जपु नीच ॥ दो० १९

यह सुन कर साधु लज्जित हो उनके चरणों में गिर पड़ा। तुलसी सतसई में यह घटना इस प्रकार व्यक्त की गयी है

अलख कहहि देखन चहहि ऐसो परम प्रवीन।
तुलसी जग उपदेश हीं यनि बुध अबध मलीन ॥ ४ ४६

पत्रोत्तर—तदनन्तर जब वे मथुरा आये तो कृष्णदासजी ने अपने ताऊ को प्रणाम किया रत्नावली का पत्र दिया रामपुर लौट चलने का आग्रह किया और 'रामचरित मानस' की प्रति माँगी। तुलसीदासजी ने कहा कि प्रति काशी से लिखवाकर भेज दूँगा। कृष्णदास जी केवल चार दिन के लिये आये थे अतः वे घर लौट गये। नन्ददासजी ने भी एक दिन को सूकरखेत चलने के लिए आग्रह किया परन्तु तुलसीदासजी विरक्त हो जाने के कारण जन्म भूमि लौटने के लिए असहमत रहे और रत्नावली के पत्र का उत्तर नन्ददास को दे कर काशी लौट गये। पत्र में लिखा था

जाके प्रिय न राम बैदेही
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रहलाद बिभीषन बंधु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज बनितन्हि भये मुद मंगलकारी।
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जहि फूटै बहु तक कहौं कहाँ लौं॥

तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह रामपद, एतो मतो हमारो ॥ वि० १७४[1]

कुछ लोग उक्त पद को मीराबाई के निम्नलिखित पद का उत्तर समझते हैं।[2]

स्वस्ति श्री तुलसी कुल भूषन दूषन हरन गोसाईं।
बारहिंबार प्रनाम करहुँ अब हरहु सोक समुदाई॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबन्ह उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरु भजन करत मोहिं देत कलेस महाई॥
मेरे मात पिता के सम हौ हरि भक्तन सुखदाई।
हम को कहा उचित करिबो है सो लिखिए समझाई॥

मैं भी ऐसा ही समझता हूँ। प्रथम तो मीराबाई गोस्वामीजी के समय में विद्यमान थी और जैसा कि डा० रामकुमार वर्मा लिखते हैं मीरा की मृत्यु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कथनानुसार संवत् १६२० से संवत् १६३ तक मानना उचित है। बृहद् काव्य दोहन में भी यह बात मानी गई है।[3] द्वितीयतः जनश्रुति को अकारण अविश्वसनीय क्यों माना जाय? तीसरा कारण और है। इस घटना के समय तुलसीदासजी को गृह-त्यागे लगभग २४ वर्ष हो चुके थे। रत्नावली की उक्ति तब चाहे जितनी कटु रही हो तुलसीदास जैसे कोमल-प्रकृति पुरुष का क्रोध कभी का शान्त हो चुका होगा। अतएव रत्नावली के पत्र का उत्तर इतना कठोर न दिया गया होगा। वह रामभक्ति के विरुद्ध भी न थी। अतएव उसकी निम्नलिखित उक्ति इस विषय में प्रमाण समझनी चाहिए—

मोहिं दीनो संदेस पिय अनुज नन्द के हाथ।
रतन समुझि जनि पृथक मोहि जो सुमिरत रघुनाथ॥ २०[4]

ग्रन्थ पर 'सही'—तुलसीदासजी की रचना विरोधियों को न सुहायी। उन्होंने यह कहना प्रारम्भ कर दिया कि गोस्वामी जी के लिखे भाव सत्य नहीं हैं। अतएव वहाँ गोस्वामीजी ने भगवान् विश्वनाथ को अपनी रचना सुनायी। रात को पुस्तक मन्दिर में रख दी गयी। प्रातः जब पट खोला गया तो उस पर भगवान् की 'सही' पड़ी थी।[5] तुलसीदासजी की विनय है

मारुति-मन रुचि भरत की लखि लखन कही है।
कलि कालहु नाथ नामसों परतीति प्रीति एक किंकर की निबही है।
सकल सभा सुनि लै उठी जानी रीति रही है।
कृपा गरीब निवाज की देखत गरीब को साहब बाँह गही है।
बिहँसि राम कह्यो सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ सही है। वि० २७९

---

१ तुलसी समाचार पृ० ११ श्री भवानीदास कृत गोसाईं चरित।
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल कृत, पृष्ठ १८४ १८५।
३ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास तृतीय संस्करण पृष्ठ ५८१।
४ दोहारत्नावली।
५ रामचरित मानस, पृष्ठ ११ (मूल गोसाईं चरित) गीता प्रेस सं २००८।

यह 'सही' कहाँ पड़ी 'रामचरितमानस' पर अथवा 'विनय पत्रिका' पर ? मेरे विचार से यह पुस्तक 'रामचरितमानस' होनी चाहिए जैसा कि नन्ददास की तथाकथित तुलसी-प्रशस्ति में इसका उल्लेख है । 'रामचरित मानस' ही तो तुलसी-द्वेषियों को अखरता था । यह ठीक है कि तुलसीदासजी 'विनय पत्रिका' के द्वारा 'सही' चाहते थे

विनय पत्रिका दीन की बापु आपुही बाँचो
हिये हेरि तुलसी लिखी सो सुभाय सही करि बहुरि पूछिये पाँचो
(वि० २७७)

पर विनय-पत्रिका किस निमित्त थी ? रामचरित मानस' के प्रामाण्य के निमित्त ही तो अतएव रामचरित मानस' पर सही पड़ जाने से 'विनय-पत्रिका' अर्थात् मर्जी स्वीकृत हो गयी ।

रामचरित मानस का पाठान्तर तथा गोस्वामी तुलसीदास का हस्तलेख

(क) पाठान्तर

पाठभेद के रूप—कुछ साहित्यिकों की ऐसी धारणा है कि 'रामचरितमानस' में क्षेपकों का बाहुल्य है। यह धारणा पूर्णतया सत्य नहीं है यद्यपि यह सत्य है कि रामाश्वमेध या लवकुशकाण्ड नाम का अष्टम सोपान रामचरितमानस के किन्हीं-किन्हीं संस्करणों में जोड़ दिया गया है और उनमें इस बात का निर्देश नहीं किया गया कि यह अष्टम सोपान गोस्वामीजी की रचना नहीं है। अन्य सातों सोपानों में भी पाठान्तर बाहुल्य है। पाठान्तर का रूप है वर्तनी-भेद शब्द-परिवर्तन अर्धालियों में घटा-बढ़ी और चौपाइयों में न्यूनाधिकता।[1] कुछ वर्णन किसी प्रति में है, किसी में नहीं।

कतिपय उदाहरण—संवत् १९६० के लगभग श्री हरिप्रसाद भगीरथ ने[2] रामचरितमानस का सटीक संस्करण प्रकाशित किया जिसके चालीसवें पृष्ठ पर सूकर खेत के स्थान पर कुत्सित पाठ इस प्रकार दिया गया है

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा रुधिर कुरुखेत

यद्यपि मुंगेरवासी पण्डित श्री रघुवंश ने इस संस्करण के आरम्भ में जो 'श्री गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत' दिया है उसके तेईसवें पृष्ठ पर यह पाठ उद्धृत किया जा चुका था 'मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सु सूकरखेत।' श्री रामनरेश त्रिपाठी बताते हैं कि मुंशी सुखदेवलाल और श्री विजयानन्द त्रिपाठी 'कृपासिंधु नर रूप हरि' में 'हरि' के स्थान पर 'हर' मानते हैं यद्यपि सभी प्राचीन प्रतियों में 'हरि' पाठ है और यदि मानसमयंक के बालकाण्ड में आठवें पृष्ठ पर 'धींग धरम ध्वज धंधक धोरी' और बारहवें पर 'बन्दौं नाम राम रघुबर को' है तो वर्तमान प्रचलित प्रतियों में 'धिंग धरम ध्वज धंधक धोरी' और 'बंदौं राम नाम रघुबर को' पाठ मिलते हैं।[3] उक्त प्रकार के अनेक पाठान्तरों की ओर त्रिपाठीजी ने ध्यान आकर्षित किया है। तापस प्रकरण भी किन्हीं प्रतियों में है, किन्हीं में नहीं।

विकृत रूप—मानस-पाठ के विषय में रामदासजी गौड़ लिखते हैं "बहुधा प्राकृत के नियमों से अनभिज्ञ सज्जन उन शब्दों के अशुद्ध या तोड़े-मरोड़े होने का भी दोष लगाते हैं जो वस्तुतः एकदेशीय या स्थानीय हैं। इतना ही नहीं आए दिन प्रेसों से पण्डितों द्वारा शोधी हुई जो तुलसी-कृत रामायणें निकला करती हैं उन्हें अर्धशिक्षित जनता अधिक पसन्द करती है। पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र पं० रामेश्वर

---

१ देखो बनपुरी के मुं० सुखदेवलाल के संस्करण में मयम्बद परिवर्तन (विजयानन्द त्रिपाठी, पृ० १८८)

२ कालबादेवी रोड, रामवाड़ी, मुम्बई।

३ तुलसीदास और उनका काव्य पृ० १५२।

भट्ट आदि ने तो खोज कर उसका रूप ही बदल दिया। गोसाईंजी की रचना को लोगों ने यहाँ तक अपनाया कि घटाने या बढ़ाने में, संशोधन या परिवर्तन में, किसी बात में तनिक भी संकोच नहीं किया। इससे जनता इतने भ्रम में पड़ गई कि आज शुद्ध पाठ का यदि आदर है तो उच्च श्रेणी के हिन्दी प्रेमियों में ही।'' ऐसे संस्करण भी निकले हैं कि 'यदि गौड़जी के शब्दों में "आज गोस्वामीजी की पुण्यात्मा देखे तो पहचान न सके कि यह हमारी ही रचना है।' गौड़जी के ये उद्गार सर्वथा समीचीन हैं।

शुद्ध पाठ— 'मानस' का शुद्ध पाठ उपस्थित करने का सर्वप्रथम प्रयास 'खड्गविलास प्रेस' के अध्यक्ष बा० रामदीनसिंह का है। उन्होंने अपने प्रेस से 'रामचरितमानस' का गुटका प्रकाशित किया जिसमें बालकाण्ड का पाठ श्रावणकुञ्ज अयोध्या-वाली १६६१ वि० की प्रति के और अयोध्याकाण्ड का पाठ राजापुर वाली अयोध्याकाण्ड की प्रति के अनुसार है। इसी प्रकार अन्य काण्ड काशीराज की प्रति के तथा अन्य प्राचीन हस्तलिखित पोथियों के अनुसार हैं। रायबहादुर लाला सीताराम ने भी राजापुर की प्रति के अनुसार अयोध्याकाण्ड का पाठ उपस्थित किया है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने अधिक से अधिक शुद्ध संस्करण निकाला। हाँ उसमें समास और विराम चिह्न सुविधा के लिए लगा दिये गये हैं। मानस-मराल शंभुनारायण चौबे ने निष्काम अध्यवसाय और अनवरत परिश्रम से 'रामचरितमानस' का एक संस्करण' उपस्थित किया जिसके आधार हैं श्रावणकुंज वाली १६६१ वि० की प्रति राजापुर वाली प्रति सं० १७१० वाली सम्पूर्ण प्रति जो इस समय काशी-नरेश के सरस्वती भंडार में है १७२१ की प्रति जो भारत कलाभवन में है, १७६२ की सम्पूर्ण प्रति तथा मिर्जापुर के प्रसिद्ध रामायणी श्री रामगुलामजी के शिष्य छक्कन लालजी की प्रति की प्रतिलिपि जिसे म० म० सुधाकर द्विवेदी के पिता ने उपस्थित किया था। १७६२ की प्रति को चौबेजी ने खोज निकाला था और उन्हीं की कृपा से अब यह भारत-कला भवन में सुरक्षित है। चौबेजी ने उक्त छः प्रतियों को आधार मान कर, पाठभेद का निर्देश पाद-टिप्पणियों के द्वारा किया है। उन्होंने गौड़जी की प्रेरणा से अपने विचार नागरी प्रचारिणी-पत्रिका में भी प्रकट किये थे। इस पत्रिका के पौष सं० १९९८ के विक्रमांक में 'मानस' के उन अंशों का निर्देश है जिन्हें आपने प्रक्षिप्त समझा है। खेद है कि चौबेजी के संस्करण में भी पाठभेद छूट गए हैं यथा पृष्ठ २७६ पर

राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर भाखी

इस अर्धाली का पाठान्तर इस प्रकार है जिसका उल्लेख चौबेजी ने नहीं किया है

राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी

तथापि चौबेजी का परिश्रम हमारे लिए गर्व की बात है। गीताप्रेस गोरखपुर से 'रामचरितमानस' का सपाठभेद संस्करण छपा है और डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने भी तथाकथित वैज्ञानिक शैली पर शुद्ध पाठ निर्धारित करने का प्रयत्न किया है।'

सोरों-प्रति १६४३ वि० की—शोध-शोधकों की जानकारी के निमित्त 'राम

१ वही, पृ० १३०।
२. रामचरितमानस ([illegible] मूल) [illegible] सम्वत् २००५ वि०।
३ रामचरितमानस का पाठ, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, ई० स० [illegible]।

चरितमानस के उन खण्डित बाल और अरण्य काण्डों का प्रकाशन वाञ्छनीय है जो सोरों में पं० गोविन्द वल्लभ शास्त्री के संग्रह में हैं। ये खण्ड 'रामचरितमानस' की उन प्रतियों के हैं जिन्हें गोस्वामी तुलसीदास ने अपने चचेरे भाई महाकवि नन्ददास के पुत्र कवि कृष्णदास के लिए अपने शिष्यों से काशी में १६४३ वि० में नकल करा कर प्रदान किया था।[1] भविष्य में यह १६४३ वि० की प्रति के नाम से अभिहित होगी। इन खण्डित काण्डों का ध्यानपूर्वक पारायण करने एवं उनके पाठ को अन्य कतिपय छपे और तथाकथित शुद्ध संस्करणों से मिलाने के पश्चात् मेरी धारणाएँ संक्षेप में इस प्रकार हैं —

१ यों तो पाठान्तर सभी काण्डों में दृष्टिगोचर है किन्तु 'अरण्य काण्ड' में वह सब से अधिक है। १६४३ वि० वाला 'अरण्य काण्ड' खण्डित होता हुआ भी बहुत कुछ नवीन प्रकाश डालता है। मैं चाहता था कि पाठान्तर के स्थलों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करूँ किन्तु इसमें बहुत समय और स्थान की अपेक्षा है। अतएव मैं १६४३ के 'अरण्य काण्ड' और 'बाल काण्ड' की प्रतिलिपियाँ परिशिष्ट में उपस्थित कर रहा हूँ।

२ सोरों की और काशिराज की प्रतियों के 'अरण्य' और 'बाल काण्डों' में यद्यपि पाठान्तर विद्यमान है तथापि अन्य प्रतियों की अपेक्षा उनमें सामंजस्य कहीं अधिक है।

३ काशिराज की प्रति का पाठ अधिक प्रशस्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी ने स्वयं अथवा विद्वानों की प्रेरणा से कभी-कभी कहीं-कहीं, थोड़ी बहुत पाठ-वृद्धि की है और काट-छाँट भी। यह बड़ी स्वाभाविक बात थी। गोस्वामी जी को क्या पता था कि बीसवीं शताब्दी के कुछ लोग उनकी ही रचना में क्षेपकों की कल्पित गंध का अनुभव करने लगेंगे ? प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी ने कई बार अपनी कृति का संशोधन किया और समय-समय पर अपने लिए उसकी नकलें करते रहे। अतः पाठान्तरों का भी प्रचार होता रहा। विद्वान् लेखकों को ज्ञात होगा कि उनकी निजी कृतियों में क्रमिक परिवर्तन प्रायः होता रहता है कभी-कभी तो कृति मूल रूप से कई गुनी हो जाती है।

४ 'रामचरितमानस' के मूल संस्करण में ठेठ व्रजभाषा और अवधी भाषा के रूपों का बाहुल्य था। उदाहरणतः १६४३ की प्रति में भयौ करौ, कर्यौ आदि वर्तनी उपलब्ध होती है राजापुर के अयोध्याकाण्ड में और श्रावणकुंज के बालकाण्ड में जो ऐसी वर्तनी दृष्टिगोचर होती है किन्तु कुछ छपे संस्करणों में भयउ करउ करउँ आदि रूप विद्यमान हैं। पं० रामजसन (१८६१ ई०) बैजनाथजी कुर्मी (१८९० ई०) तथा जानकीदासजी (१८८२ ई०) ने मानस के अपने संस्करणों में भयौ करौ कहाँ आदि वर्तनी-रूप दिये हैं। क्या अच्छा हो कि 'रामचरितमानस' के सभी प्राचीन संस्करणों के दर्शन विद्वानों के लिए फ़ोटो-रीत में उपलब्ध हो जायँ। मेरा अनुमान है कि 'रामचरितमानस' में अवधी भाषा अभी का स्थान थोड़ा-थोड़ा

---

१ 'रामचरित मानस' की दो प्रतियों में से कदाचित् एक प्रति कृष्णदासजी के लिए और दूसरी नन्ददासजी के लिए थी।

करके छीनती रही है। या तो गोस्वामीजी का प्रेम अवधी की ओर बढ़ता गया अथवा उनको अवधी का अभ्यास बढ़ता गया अथवा अन्य विद्वानों की प्रेरणा से गोस्वामीजी ने अवधी रूप को अपनाया अथवा उनके पश्चात् लोगों ने अपनी प्रतियों में भाषा को अवधी रूप देने का प्रयत्न किया हो। वास्तविकता क्या है, इसका कुछ न कुछ आभास मिल तो सकता है, किन्तु तब जब सभी विद्यमान प्राचीन प्रतियों के ऐसे सभी संस्करण उपलब्ध हों जिनके पाठ और वर्तनी में बाल-बाल अन्तर न हो। मेरी ऐसी विनम्र धारणा है कि 'रामचरितमानस' के प्रारम्भिक संस्करणों में मुख्यतया व्रजभाषा और अवधी के रूप थे।

(ख) गोस्वामीजी का हस्तलेख

तुलसीदासजी के हस्तलेख के छः नमूने विचार जगत् में प्रचलित हैं यथा

(१) सावनकुंज की प्रति—'रामचरितमानस' के बालकाण्ड की यह प्रति है जो अयोध्या के सावनकुंज नामक मन्दिर में है, और जिसके विषय में कहा जाता है कि गोस्वामीजी ने स्वयं इसे शोधा था। डॉ० माताप्रसाद का कथन है कि इसका लिपि-काल १६६१ वि० दिया हुआ है पर वास्तव में यह १६६१ वि० होना चाहिए,[1] यद्यपि पुष्पिका के तिथि-वार-मास शुद्ध उतरते हैं। मेरी विनीत सम्मति में कल्पना की अपेक्षा जनश्रुति का सम्मान अधिक करना चाहिए। उक्त प्रति के हाशिये पर जो संशोधन हैं उनके विषय में श्री रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं: 'इसमें तो सन्देह नहीं कि यह प्रति इस समय तक प्राप्त प्रतियों में सब से प्राचीन है। पर उसके तुलसीदास द्वारा संशोधित होने में मुझे सन्देह है जब तक यह न स्वीकार कर लिया जाय कि तुलसीदास संशोधन करने में काफ़ी लापरवाही करते थे या वे स्वयं अशुद्ध लिखते रहे हों। पर ऐसे उद्भट विद्वान् और महाकवि के लिए ये दोनों शंकाएँ व्यर्थ हैं।'[2] त्रिपाठीजी ने अपनी धारणा की पुष्टि में विभिन्न क्रमभंग और कहीं-कहीं आवश्यक शब्द और चौपाई आदि की छूट और व्यतिक्रम की ओर ध्यान आकर्षित किया है जिनका उद्धरण यहाँ अभीष्ट नहीं। पर धारणा बना लेने से पूर्व यह विचार लेना अच्छा होगा कि महापुरुषों के पास प्रायः समयाभाव रहता है और वे अपने मसौदाशिष्यों को भी कार्य सौंप दिया करते हैं।

(२) वाल्मीकि रामायण—१६४१ की वाल्मीकि रामायण की प्रति गोस्वामीजी के हाथ की लिखी बताई जाती है। उसकी पुष्पिका से विदित होता है कि किसी तुलसीदास ने मुसम्पन्न दत्तात्रेय नामक व्यक्ति के लिए इसकी नकल की थी। किन्तु यह बात कल्पना-गम्य नहीं कि गोस्वामीजी 'रामचरितमानस' के कारण लब्ध प्रतिष्ठ और सर्वमान्य हो जाने पर भी दूसरों के लिए लिपिकर्म करते होंगे। वास्तव में गोस्वामीजी के समय में तुलसीदास नाम के एक अन्य सज्जन थे जो लिपि-कर्म करते थे और वे जाति कायस्थ थे। इन्होंने 'वीरमानुदय' काव्य की नकल की थी। जिसकी पुष्पिका इस प्रकार है: 'पूर्णमिदं श्री वीरभानूदय काव्यम् ॥ श्रम ॥ संवत् १६५८

१ तुलसीदास, पृ० ३६२।
२ तुलसीदास और उनका काव्य पृ० २३१।

समये फाल्गुन शुक्लपक्ष द्वितीयां सोमवासरे लिखितमिदं कायस्थ तुलसिदासेन कृष्णदास पुत्र ॐ नाद काशिवासी विश्वेश्वर संनिधे।" इसका उल्लेख हीरानन्द शास्त्रीजी ने १९२१ ई० में मिमोयर्स ऑव दि आर्केओलोजिकल सर्वे ऑव इंडिया (संख्या २१) में किया है।

(३) राजापुर का 'अयोध्याकाण्ड'—राजापुर के 'अयोध्याकाण्ड' को गोस्वामी जी के हाथ का लिखा बताया जाता है। इसकी लिखावट उक्त 'वाल्मीकि रामायण' की लिखावट से नहीं मिलती। श्री रामनरेश त्रिपाठी को इसमें कई स्थानों पर ऐसी त्रुटियाँ दिखाई पड़ीं 'जिनके आधार पर यह साहस के साथ कहा जा सकता है कि यह न तो तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई है, और न तुलसीदास ने उसे कभी पढ़ा ही होगा'।[1] इस कथन की पुष्टि में त्रिपाठी जी ने अनेक शब्द और चौपाइयों की भूल-चूक के उदाहरण दिये हैं और अनुमान किया है कि यदि गोस्वामी जी उसे देख भी लेते तो उन्हें चौपाई की कमी अवश्य खटकती। परन्तु मेरी विनीत सम्मति में ऐसी धारणा को अन्तिमता न देनी चाहिए, क्योंकि जैसा कि कहा जा चुका है, गोस्वामी जी महापुरुष थे' उनका कार्यक्रम अतिविस्तृत हो रहता होगा, समय की कमी भी रहती होगी और अपनी पोथियों को शोधवाने वालों की न्यूनता भी न रहती होगी। आजकल के महापुरुष भले ही अपने फ़ोटोग्राफ़ का प्रूफ़ ले लें पर गोस्वामी जी को तो न जाने कितने ऐसे संशोधन करने पड़ते होंगे। अतएव राजापुर और अयोध्यावाली प्रतियों के संशोधन के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय को स्थगित रखना समुचित प्रतीत होता है। डॉ॰ त्रिपाठी जी ने एक महत्त्वपूर्ण जनश्रुति तथा 'मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑव हिन्दोस्तान' में दिये हुए कतिपय फोटोचित्रों और पुष्पिकाओं तथा रायबहादुर लाला सीताराम के उस लेख की ओर ध्यान आकर्षित किया है जो कभी माधुरी में छपा था। इसका सारांश यह है कि राजपुर की पोथी पर लेखक के हस्ताक्षर नहीं। इस प्रति में प्रत्येक काण्ड के अंत में लेखक का नाम दिया हुआ है कहीं रघु तिवारी और कहीं रघुतीवारी'। कुछ हो पुरानी होने के नाते प्रति महत्त्वपूर्ण है।

(४) रामगीतावली—डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त १६६६ की 'रामगीतावली' की हस्तलिखित प्रति का उल्लेख करते हैं जो रामनगर (बनारस) के किन्हीं चौधरी छुन्नी सिंह के पास है। इस पर जो संशोधन है वह तुलसीदासजी के हाथ का बताया जाता है। प्रति तो किसी भगवान् ब्राह्मण की लिखी है जैसा कि पुष्पिका से प्रकट है। चौधरी साहब के मतानुसार पंचायत नामे के और इस पुस्तक के संशोधन-लेखों में साम्य है।

(५) पंचायतनामा—१६६९ वि॰ का लिखा पंचायतनामा है। गोस्वामीजी के एक मित्र टोडर नाम के थे उनके उत्तराधिकारियों में जायदाद का बटवारा टोडर की मृत्यु के पश्चात् हुआ यह पंचायतनामा अब काशिराज के निजी संग्रह में है। इसकी केवल छः पंक्तियाँ तुलसीदास जी की लिखी कही जाती हैं। इसकी प्राप्ति का स्थान विश्वसनीय समझा जाता है और तिथि भी जमा से पुष्ट है।

---

१ वही, पृष्ठ १११।

(६) सोरों का अरण्यकाण्ड १६४३ वि०—पृष्ठ है १६४३ वि० की प्रति पर संशोधन। गोस्वामीजी ने रामचरितमानस की जो प्रति संवत् १६४३ में अपने शिष्यों के द्वारा अपने भतीजे कृष्णदास के लिए नकल करायी थी। उसे उन्होंने स्वयं शोधा है ऐसा अनुमान है, यद्यपि अक्षर कभी-कभी शिष्योंके लिखने से और गोस्वामीजी के शोधने से, रह गये हैं। ग्रन्थकारकी दृष्टिसे ऐसी छूट भावान्वित अवधान (एक्सपेक्टेंट अटेंशन) के कारण बहुत सम्भव है यदि कोई दूसरा यह कार्य करे तो भूल-चूक की सम्भावना अपेक्षाकृत कम (अथवा नहीं) होती है। 'अरण्य काण्ड' में एक स्थल पर अर्द्धाली 'अहै सदा अब सम पन बधिका' लिखने से रह गयी थी जिसे गोस्वामी जी ने स्वयं पूरा कर दिया है। लिखावट की शैली पंचनामे की शैली से बहुत मिलती है। शोध रसियों के लिये तो 'पंचनामे' की लिपि में भी ऐतिहासिक सामग्री मिल सकती है क्योंकि उसके अक्षरों में भी वैषम्य है। उदाहरणतः एकार दो प्रकार से लिखा गया है और पंचनामे का अकार प्रस्तुत लिपि से भिन्न सा है। इस विषय में पाठक स्वयं किसी निश्चय पर पहुँच सकते हैं। मैं उस अर्द्धाली का चित्र दे रहा हूँ जिसे मैं गोस्वामी जी के हाथ की समझ रहा हूँ।

रचना-समय

प्राक्कथन—इस परिच्छेद में गोस्वामी जी की तथाकथित एवं मान्य कृतियों के सिंहावलोकन के अनन्तर उनके रचनाकाल पर विचार होगा और प्रचलित एवं अद्यावधि मान्य कृति कालक्रम के विपर्यास का आभास मिलेगा।

लगभग चालीस कृतियाँ—लगभग चालीस पुस्तकें गोस्वामी तुलसीदास की लिखी बतायी जाती हैं, किन्तु उनमें से केवल बारह को अधिकतर प्रामाणिक समझा जाता है। निम्नलिखित पुस्तकें अप्रामाणिक समझी जाती हैं कारण कि उनके भाव, भाषा और शैली अविश्वसनीय हैं अथवा वे अमुद्रित होने से परीक्षा के लिये उनके स्वामियों से सहज उपलब्ध नहीं हैं—'अंकावली' 'बजरंग बाण' 'बजरंग साठिका' 'भरतमिलाप' 'विजय दोहावली' 'बृहस्पतिकाण्ड' 'छन्दावली रामायण' 'छप्पय रामायण' 'धर्मराय की गीता', 'ध्रुव प्रश्नावली' 'गीता भाषा' 'हनुमान् स्तोत्र' 'हनुमान् चालीसा', 'हनुमान् पंचक' 'ज्ञानदीपिका' 'पदबंध रामायण' 'राम मुक्तावली' 'रसभूषण' 'साखी तुलसीदास जी की', 'संकटमोचन' 'सतसई उपदेश' 'सूर्यपुराण' 'तुलसीदास जी की बानी' और 'उपदेश दोहा'।[1]

पं० रामेश्वर भट्ट ने 'कुंडलिया रामायण' 'कड़खा रामायण' 'रोला रामायण' और 'झूलना रामायण' का भी उल्लेख किया है।[2] डॉ० रामकुमार वर्मा सूचित करते हैं कि तुलसीदास जी के ग्रन्थों की संख्या 'सरोज' के अनुसार है १८ 'गोड्स ऑन तुलसीदास' के अनुसार २१ 'बंगवासी की तुलसी ग्रन्थावली' के अनुसार २०, 'मिश्रबन्धु के नवरत्न' के अनुसार २५, पर प्रामाणिक रूप से सर ग्रियर्सन और पं० रामचन्द्र शुक्ल एवं लाला सीताराम के अनुसार यह संख्या १२ है।[3]

प्रामाणिक पुस्तकें—निम्नलिखित बारह पुस्तकें तुलसीदास-कृत समझी जाती हैं—'रामलला नहछू' 'रामाज्ञा प्रश्न' 'जानकी मंगल' 'रामचरित मानस' 'पार्वती मंगल' 'गीतावली', 'कृष्णगीतावली' 'विनयपत्रिका', 'बरवै रामायण' 'दोहावली' 'कवितावली' 'हनुमानबाहुक' तथा 'वैराग्य संदीपनी'।[4] इन बारह पुस्तकों का संग्रह काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने 'तुलसी ग्रन्थावली' में किया है। श्री राम गुलाम द्विवेदी के आधार पर सर ग्रियर्सन इन्हें प्रामाणिक समझते हैं एवं पं० रामचन्द्र शुक्ल लाला सीताराम, पं० रामनरेश त्रिपाठी श्री सद्गुरुशरण अवस्थी डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र, डॉ० माताप्रसाद गुप्त तथा अन्य कतिपय विद्वान् भी ऐसा ही मानते हैं। *भाषा और भाव की दृष्टि से 'कुण्डलिया रामायण' को तुलसीदास की कृति मान* लेने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। डॉ० गुप्त 'तुलसी सतसई' के अधिकांश को प्रामा

---

१ तुलसीदास (डॉ० माताप्रसाद गुप्त) पृ० १२६।

२ 'तुलसीदास कृत रामायणम्' में तुलसीदासजी का जीवन-चरित, पृष्ठ ७।

३ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ३११।

४ 'छोटा रामायण' और 'छोटा रामायण संग्रह' हैं 'रामचरित मानस' के दोहादि, इसके अतिरिक्त हैं 'कलिधर्माधर्म निरूपण' 'छप्पय रामायण' 'हनुमान् चालीसा' और 'संकट मोचन'।

धिक समझते हैं। 'ज्ञान दीपिका' तो तुलसीदास के प्रबन्ध अर्थात् 'रामचरितमानस' की सिनोप्सिस अर्थात् रूपरेखा प्रतीत होती है यद्यपि उसकी रचना की मिति बचना से अशुद्ध है इस अशुद्धि का कारण मूल प्रतिलिपिकार की असावधानी हो सकता है। 'हनुमान् चालीसा' गोस्वामी जी के बाल्यकाल की रचना संभव है। 'रामलला नहछू' और 'वैराग्य संदीपनी' के सम्बन्ध में डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव का मत है कि भाषा के आधार पर ये रचनाएँ अन्य समस्त रचनाओं की तुलना में संदिग्ध कही जा सकती हैं।[1]

विवरण—उक्त बयोदस पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण कदाचित् अप्रासंगिक न होगा। 'रामलला नहछू' चार चरण के बीस सोहर छन्दों में लिखा गया है, जिसमें रामविवाह के अवसर पर अयोध्या में रामचन्द्र जी के नखच्छेद का वर्णन स्त्रियों के गाने के उद्देश्य से उपलब्ध है। 'रामाज्ञा प्रश्न' में रामचरित काव्यरूप विद्यमान है। इसमें सात काण्ड हैं, प्रत्येक काण्ड में सात दोहे हैं। इन दोहों के द्वारा जाना जा सकता है कि अमुक कार्य में सफलता मिलेगी या असफलता। 'जानकी मंगल' में २१६ छन्द ब्रजावली में हैं और इसमें विश्वामित्र जी के साथ राम-लक्ष्मण के मिथिला-गमन से लेकर सीताराम के विवाह तक का वर्णन वाल्मीकि जी के अनुसार है। 'रामचरित मानस' तो गोस्वामी जी का ब्रजावली में सबसे अधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है जिसमें जन्म से लेकर वनवास से लौटने तक रामचन्द्र जी का वर्णन है। यद्यपि इसके वृत्तान्त का आधार मुख्यतः अध्यात्म रामायण' है तथापि अन्य ग्रन्थों से भी कुछ लिया गया है। पार्वती मंगल' में ब्रजावली में पार्वती जी के विवाह का वर्णन १६४ छंदों में है और जिस प्रकार का वर्णन 'रामचरित मानस' में मिलता है उससे ईषत् भिन्न है। जानकी मंगल की भाँति यह भी विवाहोत्सव पर गाने के उद्देश्य से लिखा गया है। 'गीतावली' में रामचन्द्र जी का जीवन चरित अनेक गेय छन्दों में वाल्मीकि जी की परिपाटी से वर्णित है। इसमें सात काण्ड और ३२८ पद हैं। 'कृष्ण गीतावली' में कृष्णपरक ६१ गीत ब्रजभाषा में हैं। इसमें कृष्ण जी के गोकुल-सम्बन्धी बचपन और बाल्य-चापल्य एवं गोपियों के विरह-विलाप का वर्णन कुछ शीघ्रतापूर्वक किया गया है। जितनी सफलता सूरदास जी को 'सूर रामायण' में राम-सौष्ठव के वर्णन में प्राप्त हुई उतनी ही तुलसीदास जी को कृष्ण-सौष्ठव के वर्णन में। 'विनय-पत्रिका' भी ब्रजभाषा में राम के प्रति निजी विनय-पदों का परमोत्कृष्ट काव्य-संग्रह है। यह भगवान् राम के लिए एक प्रकार की अर्जी है। कहते हैं कि इसका अवसर इस प्रकार उत्पन्न हुआ *एक हत्यारा राम राम चिल्लाता आया। तुलसीदास जी ने उसे राम* भक्त समझ कर उस पर करुणा की जिसके कारण लोग तुलसीदास जी से क्रुद्ध हो गये। उन्हें शान्त करने के निमित्त तुलसीदास जी को अपनी साधुता सिद्ध करने के लिये शिव-नन्दी को हत्यारे के हाथ से भोजन कराना पड़ा। लोग तो शान्त हो गये पर कलियुग ने इस चमत्कार से क्रुद्ध हो तुलसीदास जी को डरा-धमकी की धमकी दी। अतएव गोस्वामी जी ने हनुमान् जी का आवाहन किया और रक्षा चाही। बरवै रामायण' सात काण्ड की ६९ बरवै छन्दों में छोटी सी पुस्तिका है जिसमें भगवान्

1 'तुलसीदास की भाषा' पृ० ११७-११८।

रामचन्द्र के जीवन की प्रधान घटनाओं का उल्लेख है। 'दोहावली' में ५७३ दोहे हैं जिनमें से ८५ तो 'रामचरित मानस' के हैं ३५ 'रामाज्ञा प्रश्न' के और ७ 'वैराग्य संदीपनी' के हैं। इसमें ज्ञान-धर्म की शिक्षा है। 'कवितावली' काव्य की दृष्टि से गोस्वामी जी का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसमें सात काण्ड कवित्त, घनाक्षरी छप्पय, सवैया आदि ३२५ छन्द में हैं। साहित्य-सौन्दर्य के अतिरिक्त इसमें महत्त्वपूर्ण आत्म-परिचयात्मक उल्लेख भी मिलते हैं। 'हनुमान् बाहुक' से विदित होता है कि तुलसी दास जी की बाहु में कभी पीड़ा रही थी और उनकी बाल्यावस्था का भी कुछ आभास मिलता है।

गोस्वामी जी की रचनाओं के कालक्रम का गम्भीर विवेचन अभीष्ट नहीं पर तद्विषयक सिंहावलोकन आवश्यक प्रतीत होता है जो इस प्रकार है :

दोहे—अनुमानतः गोस्वामी जी समय-समय पर दोहे लिखते रहे जो आज 'दोहावली' और 'तुलसी सतसई' नामक संग्रहों में उपलब्ध हैं। पं० रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार, दोहावली में सं० १६१० १६७१ तक के दोहे सम्मिलित हैं।[1] 'दोहावली' का यह दोहा

तुलसी जान्यो दशरथ हि धरमु न सत्य समान।
रामु तजे जिहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान ॥२१४॥

उस पंचनामे में शीर्षक रूप से विद्यमान है जो १६६९ में लिखा गया था। कुछ दोहों में बर-तोरी और बाहु-पीड़ा का भी उल्लेख है। डॉ० श्यामसुन्दरदास 'मूल गोसाईं चरित' के आधार पर दोहों को संवत् १६४० का मानते हैं। १६४० में गोस्वामी जी ७२ वर्ष के वृद्ध थे अतएव डॉ० माताप्रसाद गुप्त की आपत्ति के लिए विशेष अवकाश नहीं। दोहे जैसे मुक्तक छन्द यदा-कदा कवि की लेखनी से निःसृत होते रहते हैं। अतएव त्रिपाठी जी का मत अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

'सतसई' के प्रथम अध्याय में निम्नलिखित दोहा उपलब्ध है

अहि-रसना थन-धेनु रस गनपति-द्विज गुरुवार।
माधव सित सिय जनम तिथि सतसइया अवतार ॥१ ६॥

इस दोहे से प्रतीत होता है कि सतसई का आविर्भाव वैशाख शुक्ला ९ गुरुवार को संवत् १६४२ में हुआ था क्योंकि अहि रसना=२ थनधेनु=४ रस=६ गनपति द्विज=१ सिय जनम तिथि=९। डॉ० गुप्त ने नवमी तिथि मानी है किन्तु जानकी-जयन्ती, पञ्चांगों के अनुसार फाल्गुन कृष्णा अष्टमी को मनायी जाती है। यह तिथि डॉ० माताप्रसाद गुप्त के मतानुसार शुद्ध नहीं।[2] अतः संभव है कि इस रचना का प्रारम्भ १६४२ में हुआ और यह संवत् १६७१ तक चलती रही हो।

'रामाज्ञाप्रश्न'—डॉ० माताप्रसाद को इसकी रचना का काल इसके निम्नलिखित दोहे में दिखाई पड़ता है

सगुन सत्य ससि नयन गुन अवधि अधिक नय बान
होइ सुफल सुभ जासु जसु प्रीति प्रतीति प्रमान ॥ ७, ७ १॥

---

१ 'तुलसीदास और उनकी कविता' पृष्ठ १०१।
२ 'तुलसीदास', पृष्ठ २१८।

वे लिखते हैं कि "'चन्द्रमा, वेद, गुण, नीति और बाण के पारस्परिक की अवधि (समय) में यह सगुन (—आज्ञा), जिसका सुफल यह है कि प्रीतिप्रतीति के अनुसार ही सुफल होती है सत्य है।' कवि-प्रयुक्त सांकेतिक शब्दावली में चन्द्रमा १ वेद २, गुण ३ नीति ४, और बाण ५ में अन्तर १ का है, और कविप्रथा के अनुसार इस प्रकार दी हुई तिथियाँ उल्टे क्रम से पढ़ी जाती हैं इसलिए उपर्युक्त दोहे से हमें कृति के लिए १६२१ की तिथि प्राप्त होती है।"[1]

पंजाब में हस्त-लिखित हिन्दी पुस्तकों की खोज में ज्येष्ठ शुक्ला दशमी रविवार संवत् १६५५ की एक प्रति प्राप्त हुई थी।[2] यह तिथि मुद्रित षोडश रामायण में संगृहीत रामाज्ञा प्रश्न की पुष्पिका में मिलती है और गणना से शुद्ध है। सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने १८९३ ई० में इसका उल्लेख इण्डियन एण्टिक्वेरी के ६६ वें पृष्ठ पर किया था। इस आधार पर डॉ० श्यामसुन्दरदास ने इस रचना को १६५५ वि० का माना है। परन्तु पं० रामनरेश त्रिपाठी इसे 'मानस' से पहले सं० १६२० के लगभग की समझते हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा का झुकाव डॉ० गुप्त की ओर है। गंगाराम ज्योतिषी से *गोस्वामी जी का परिचय सम्भवतः इसी समय हुआ होगा। अविनाशराय के मतानुसार,* गोस्वामी जी ने गृहत्याग से पूर्व १५६७ वि० में काशी की प्रथम यात्रा की थी अतएव 'रामाज्ञा' का निर्माण काल १५६७ वि० तक पीछे जा सकता है। किन्तु उस समय रत्नावली अल्पवयस्क और उनकी दादी तुलसीदास जी के साथ थे। वे कथा बाँचने के लिए ख्याति पाने लगे थे और रचना के लिए उन्हें तब पर्याप्त समय न मिल सका होगा। अतएव गृहत्याग के पश्चात् सं० १६२१ के लगभग 'रामाज्ञाप्रश्न' का निर्माण अधिक युक्तियुक्त है।

'कवितावली' और 'बाहुक'—कवितावली' और 'बाहुक' भी 'बरवै' और 'दोहावली' की भाँति संग्रह-ग्रन्थ हैं। कवितावली' और 'बाहुक' का रचनाकाल कवि ने नहीं दिया है यद्यपि उनमें रुद्रबीसी मीन की शनीचरी तथा महामारी का उल्लेख है।

'मूल गोसाईं चरित' के आधार पर डॉ० श्यामसुन्दरदास ने लिखा है कि 'कवितावली का कथा भाग और सीता-वट विषयक कवित्त सं० १६२८ और १६३१ के बीच बनाया गया, और शेष १६६९ वि० के पीछे। वे 'बाहुक' की रचना को 'मूल गोसाईं चरित' के अनुसार मानते हैं।'[3] पं० रामनरेश त्रिपाठी 'बाहुक' और 'कवितावली' की रचना १६६० से १६७१ तक मानते हैं। उनके मतानुसार यदि क्षेमकरी वाला छन्द तुलसीदास के अन्तिम दिन वाला सिद्ध हो जाय तो उसकी रचना उनके मतानुसार १६८० तक पहुँच जाय। डॉ० रामकुमार वर्मा के मतानुसार कवितावली के कुछ कवित्तों का रचना-काल १६६९ है, क्योंकि उनमें मीन के शनि का संकेत है और 'बाहुक' का रचना-काल १६८० है और यदि उनके अनुसार 'बाहुक' में वर्णित बाहु

१ 'तुलसीदास' पृ० २२९।
२. वही पृ० २०६-७।
३ 'गोस्वामी तुलसीदास' पृष्ठ ८१ । ।
४ 'तुलसीदास और उनकी कविता', पृ० ११८।

पीड़ा से कवि की मृत्यु न मानी जाय तो यह रचना संवत् १६६६ के लगभग मान लेनी चाहिए।[1]

किन्तु 'कवितावली' के अनुसार खबीसी में मीन की सनीचरी इस प्रकार पड़ी थी जैसे कोढ़ में खाज।

कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की ॥ क ७ १७७ ॥

खबीसी १६२१ से १६४२ वि० तक और उसी के अन्तर्गत मीन की सनीचरी १६४० से १६४२ वि० तक रही[2]। बाहु-पीड़ा प्लेग न थी वह वातरोग था जैसा कि स्वयं गोस्वामीजी बताते हैं। अतएव 'कवितावली' की समाप्ति १६४२ वि० में मानी जा सकती है। इसी प्रकार 'हनुमान बाहुक' (१८ ४१) में बरतोड़ मुखपीड़ा और बाहु पीड़ा का जो उल्लेख है वह भी १६४२ वि० तक का हो सकता है। काशी की महामारी और दरिद्रता भी १६४२ से पहले की होनी चाहिए। यह महामारी विषूचिका हो सकती है। अविनाशराय के अनुसार, तुलसी की माता का देहान्त इस रोग से हुआ था जिससे स्पष्ट है कि इसी का प्रकोप गोस्वामी जी के समय में विद्यमान था। 'कवितावली और हनुमान बाहुक' की भाषा भी कितनी सुव्यवस्थित है। क्या १०२ वर्ष का वृद्ध ऐसी कविता लिख सकता था जबकि देह इन्द्रियाँ स्मरण-शक्ति एवं कल्पना शिथिल हो जाती हैं? इस अवस्था में वृद्ध बालक के तुल्य हो जाता है। अतएव तब 'रामलला नहछू' या 'बरवै' जैसी क्षीण रचना भी कठिनता से ही सम्भव हो सकती थी।

'कृष्ण गीतावली'—डॉ० रामकुमार वर्मा 'गीतावली' और 'कृष्णगीतावली' को युग्म मानते हुए दोनों को समकालीन रचना मानते हैं।[3] डॉ० माताप्रसाद गुप्त इसका रचना काल सं० १६५८ के लगभग मानते हैं क्योंकि उन्हें पदावली रामायण 'रामगीतावली' तथा 'कृष्णगीतावली' परस्पर सापेक्ष लगती हैं। डॉ० श्यामसुन्दर दास 'मूल गोसाईं चरित' के आधार पर इसे १६१६ से १६२८ वि० की रचना समझते हैं।[5] पं० रामनरेश त्रिपाठी के अनुमान से इसकी रचना १६२८ और १६३० वि० के बीच में हुई होगी क्योंकि उनके मतानुसार तुलसीदास जी उन दिनों काशी में प्रायः वल्लभकुल के गोसाइयों के सम्पर्क में अधिक रहते थे और सम्भवतः उन्हें प्रसन्न करने के लिए 'कृष्ण गीतावली' का निर्माण हुआ हो।[6] किन्तु मेरी विनीत सम्मति में इसका निर्माण व्रज में व्रजयात्रा के समय, नन्ददास और व्रज के गोसाइयों के प्रभाव से, सं० १६२१ के पश्चात् १६३६ वि० तक होना अधिक संगत है। १७६६ वि० के 'श्री

---

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ ४४० ४१४ ४१५।
२ 'तुलसीदास' पृ १७४
वही, पृष्ठ १७६। मीन की सनीचरी और महामारी पर विस्तृत विचार अन्य अध्याय में हो चुका है।
३ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ ४१२ ११।
४ तुलसीदास पृ २२४।
५ गोस्वामी तुलसीदास पृ ७७-७८।
६ तुलसीदास और उनका कवित्व पृ० ४०३।

थी थी। एडविन ग्रीव्स के मतानुसार, व्याकरण विन्यास और शब्द-रूप तुलसी के ऐसे अधीन थे जैसे दास अपने स्वामी के वे उन्हें यथेच्छ तोड़-मरोड़ कर आवश्यकतानुसार छोटा-बड़ा कर लेते थे।[1] उदाहरणत., रामायण में ही, 'ऐसा' शब्द एकादश रूप से लिखा गया है कभी एक शब्दांश (सिलेबल) का कभी दो का कभी तीन का यथा अस, ऐसे, ऐसेउ।[2]

उपमाएँ—कुछ लोगों के विचार से 'फूले फलै न बेत' यह कथन भ्रमात्मक है क्योंकि बेत पुष्पित होता है अतएव तुलसी-भक्तों के द्वारा 'बेत' का अर्थ 'वियत्' अर्थात् आकाश कर दिया जाता है। चकवा-चकवी का रात्रि में वियोग हंस का नीर क्षीर विवेक चातक का स्वाति-नक्षत्रीय जल-पान और चकोर का अग्नि भक्षण आदि की सत्यपरता में सन्देह प्रकट किया जाता है यद्यपि सन्देह-भाव आक्षेप का बल हरण कर लेता है। कटि की उपमा सिंह की से नयनों की मृगी के से ग्रीवा की कंबु से भ्रू की धनुष से हस्त पाद और मुख की कमल से परिचित हैं और इनके बार-बार प्रयोग करने से काव्य में वैचित्र्य उत्पन्न हो जाता है। गोस्वामी जी ने इस सब का उल्लेख किस कौशल से किया है

खंजन, सुक, कपोत, मृग, मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना॥
कुंदकली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहि भामिनी॥
बरुन पास मनोज, धनु, हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा॥
श्रीफल, कनक, कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं॥

रा० ३ २९ ख १०-११

डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने गोस्वामी जी की निम्नलिखित उपमाओं की उत्कृष्टता पर विशेष और भावपूर्ण प्रकाश डाला है[3]

एक छत्र एक मुकुट मनि सब बरनन पर जोउ
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ॥ रा० १, २०
सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई छबिगृह दीपसिखा जनु बरई॥ रा० १ २३० ७
पेड़ काटि तैं पालउ सींचा मीन जियन निति बारि उलीचा॥

रा० २, १६

ज्यों मुख मुकुर मुकुर निज पानी, गहि न जाइ अस अद्भुत बानी॥

रा० २ २११, ३

सुनहु पवन सुत रहनि हमारी जिमि दसननि महुँ जीभ बिचारी॥

रा० ५ ६, १

राम सिन्धु, घन सज्जन धीरा, चन्दन तरु हरि-सन्त समीरा॥

रा० ७, ११६ १०

शंका-समाधान—डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने 'रामसखा नेहहूँ' में ऐतिहासिकता

---

१ द रेलेवेन्स ऑफ लिटरेचर, पृ० ६
२. वही, २७
३ मानस में राम कथा पृष्ठ १०२ १०७

परकीयारति एवं प्रबन्ध-शैली सम्बन्धिनी कतिपय त्रुटियों को उपस्थित किया है।[1] पर डा॰ विमल कुमार जैन 'कौशला को बेटि' का तात्पर्य वशिष्ठ-पत्नी अरुन्धती से ग्रहण कर अनैतिहासिकता का परिहार कर देते हैं।[2]

'गीतावली' (बाल २१ २४ २४) और 'कृष्ण गीतावली' (२४ ४२ ४१ ४४) के पद 'सूरसागर' में भी मिलते हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये पद वास्तव में तुलसीदास जी के हैं किन्तु सूर सागर का पाठ नितान्त 'तरल' होने के कारण उसमें सम्मिलित हो गये।[3] मेरी विनीत सम्मति में वे सूर को तुलसी की विरचन श्रद्धांजलियाँ ही हैं।

'रामचरित मानस' का अध्ययन गहन हुआ है और आलोचक उसके अनेक स्थलों पर समय-समय पर शंकाएँ उपस्थित करते रहे हैं। डा॰ माताप्रसाद गुप्त 'रामचरित मानस' की समग्रता में एकरूपता का अनुभव नहीं करते क्योंकि उनके अनुसार, इस "ग्रन्थ के कुछ अंश ऐसे हैं जिनमें परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है और ये अन्य अंशों से इतनी भिन्नता रखते हैं कि जान पड़ता है कि काव्य का जो स्वरूप अब हमारे सामने है वह कम-से-कम तीन विभिन्न प्रयासों का परिणाम है।[4] श्री जयरामदास 'दीन' ने उनतालीस शंकाओं का संकलन कर उनके समाधान का प्रयत्न किया है।[5] प्रयत्न सुन्दर है यद्यपि उसमें मतभेद के लिए पर्याप्त अवकाश अवश्य है जिसकी चर्चा विस्तारभय से यहाँ वांछनीय नहीं। पर गोस्वामीजी की रचनाओं में कतिपय दोषों को मान लेने से उनके गौरव में कोई न्यूनता नहीं आती।

१ तुलसीदास पृष्ठ २४ २११
२ तुलसीदास और उनका साहित्य
३ तुलसीदास, पृष्ठ ११६
४ वही, १७०
५ मानस-शङ्का-समाधान गीता प्रेस गोरखपुर १ ०१ वि

दार्शनिक विचार

(क) प्राक्कथन

उपक्रम—देशी-विदेशी दोनों प्रकार के विद्वानों का तुलसीदास जी के दार्शनिक विचारों पर मतभेद है। कुछ आलोचक तो गोस्वामीजी को दार्शनिक ही नहीं समझते और उन्हें रामानन्दजी का अनुयायी-मात्र मानते हैं किन्तु अधिकांश में विद्वान् उनको उच्च कोटि का दार्शनिक मानते हैं। मैं प्रस्तुत अध्याय में गोस्वामी जी के दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन अपने दृष्टिकोण से करना चाहता हूँ किन्तु ऐसा करने से पूर्व यह उचित प्रतीत होता है कि प्रमुख लेखकों की विचारधारा पर किंचित् प्रकाश डाल दिया जाय।

ग्रियर्सन—ग्रियर्सन ने गोस्वामीजी को रामानन्दजी का परम्परागत शिष्य माना है[1] किन्तु यह धारणा कई कारणों से ठीक नहीं। प्रथमतः गोस्वामी जी ने वर्णाश्रम धर्म का पालन किया द्वितीयतः उन्होंने 'अध्यात्म रामायण' को अपनाया जिसे रामानन्दी प्रमाण नहीं समझते[2] तृतीयतः उन्होंने वल्लभाचार्यजी को परोक्ष प्रणामांजलि अर्पित की जिनके सम्प्रदाय में उनके चचेरे भाई नन्ददासजी दीक्षित हो चुके थे चतुर्थतः स्मार्त वैष्णव होने के नाते वे पंचदेवों की आराधना करते थे जो रामानन्दियों को मान्य नहीं।

ईसाई धर्म का प्रभाव ?—ग्रियर्सन[3] और कार्पेन्टर[4] की भी यह कल्पना है कि ईसाई धर्म का कुछ प्रभाव तुलसी पर अवश्य पड़ा था। ग्राउज[5] यह तो मानते हैं कि तुलसीदासजी की सगुण-पूजा में और ईसाइयों की आराधना पद्धति में कुछ साम्य है परन्तु उनकी समझ में कृष्ण और क्राइस्ट के नाम-साम्य का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं प्रत्युत उन के मतानुसार तुलसीदास जी की भक्ति-धारा एतद्देशीय ही है। डॉ० रानाडे[6] भी इस तर्क में विश्वास नहीं करते कि कबीर या तुलसी पर ईसाई मत का प्रभाव इस कारण था कि ६३९ ई० में कन्नौज के महाराज यशोवर्मन ने सीरिया के एक ईसाई-दल का स्वागत किया था और अकबर ने भी अपने शासन-काल में पादरियों का। वेस नगर का स्तम्भ ईसा से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व का है जिसे विष्णु भक्त

---

१ जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १९०३ पृष्ठ ४४८ एवं इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स जिल्द १० १९१८, पृष्ठ ५७० जिल्द १२ १९२१ पृष्ठ ४७२।

२ श्रीमद् रामानन्द दिग्विजय पृष्ठ ४८ बलरामपुर।

३ जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १९०३ ई०।

४ थियोलॉजी ऑफ तुलसीदास रेवरेंड जे० एन० कार्पेन्टर कृत पृष्ठ १११ १५२ ५३

५ रामायण ऑफ तुलसीदास, भूमिका एफ० एस० ग्राउज कृत, पृष्ठ १४ १५

६ हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलॉसफी, जिल्द ७ मिस्टिसिज्म, पृष्ठ १६ १७

हीलियोडोरस नामक यूनानी राजदूत ने स्थापित किया था।' इस स्तम्भ से सिद्ध है कि भक्ति का सूत्रपात तो ईसा से शताब्दियों पूर्व हो चुका था।

कार्पेन्टर—कार्पेन्टर के मतानुसार 'गोस्वामीजी ने धर्म की ठेकेदारी (सेर्डोटेलिज्म) के विरुद्ध कोई आवाज नहीं उठायी प्रत्युत उन्होंने ब्राह्मणाधिकार लिये हैं।' उन्होंने न कोई सम्प्रदाय चलाया और न किसी नये सिद्धान्त का प्रतिप ही किया बस रामानन्द जी की ही तुरी बजायी है। पर ग्रीब्ज की सम्मति उन्होंने किसी का अनुसरण नहीं किया और ग्राउज के मतानुसार 'गोस्वामी जी दार्शनिक सिद्धान्त अधिकांश में सदानन्द के 'वेदान्तसार' पर और उनकी राम-परक भागवत' के साम्य पर आधृत हैं।

डॉ० मेकफुमल—डॉ० मेकफुमल' गोस्वामीजी को अधिकांश में परम्परावादी मानते हैं और वे तुलसी-मार्ग से ऊब कर ईसामसीह-जैसे योग्य और दिव्य पुरुष के आगमन की आशा और अभिलाषा प्रकट करते हैं। उनके विचार से तुलसी के इस कथन में कि राम का नाम राम से भी बड़ा है' न कोई मौलिकता है न आध्यात्मिकता। गांधीजी के मतानुसार तो राम नाम (आध्यात्मिक) व्याधियों के लिये पर्वत-सम प्राचीन औषधि है उनका दावा था कि राम-नाम (शारीरिक) व्याधियों के लिये भी महौषधि है।

पोद्दारजी और लालाजी—श्री रामदास गौड़ के मतानुसार तुलसीदासजी सरल हृदय और प्रबल भक्त स्मार्त वैष्णव थे न वे दार्शनिक थे न उनका किसी सम्प्रदाय से सम्बन्ध था। अवधवासी लाला सीताराम के मतानुसार 'तुलसीदासजी ने अपने 'रामचरित मानस' में दर्शन के विविध वादों की चर्चा की है यथा अद्वैतवाद की शिवजी के द्वारा विशिष्टाद्वैत की लक्ष्मण जी के द्वारा और रामानन्द-मत की भरत के द्वारा। किन्तु डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र की दृष्टि में यह धारणा समीचीन नहीं।' अतएव तुलसीदास जी के ग्रन्थ को मतों का संग्रह नहीं मानना चाहिए।

त्रिपाठी जी और पांडेजी—श्री विजयानन्द त्रिपाठी ने शंकराचार्य जी के दृष्टिकोण से 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी' की व्याख्या की है। श्री चन्द्रबली पांडे के मता

---

१ ऐंशेंट इंडिया ई० जे० रैप्सन कृत पृ० १२४ १२७

२. द थियॉलोजी ऑफ तुलसीदास जे० एन० कार्पेन्टर-कृत पृ० १२

३ थीज्म इन मिडीवल इंडिया पृ० ५०१ ५१ जे० ई० कार्पेन्टर-कृत।

४ रामायण ऑफ तुलसीदास भूमिका पृ० ११

५ तुलसीदास के ऑफ ... पृ० १११ डॉ० विलियम आर्थर मेकफुमल।

६ कर्म भक्ति का ... पृ० १ ११

७ रामनामु : दि इनकम्पेरेबिल मेडिसिन, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, पृ० ११ ... डे० ... २६ जनवरी १९४७

८ 'रामचरित मानस की भूमिका' रामदास गौड़ पृ० १२ १४

९ रामचरित मानस के लोकप्रिय होने का कारण रायबहादुर अवधवासी लाला सीताराम कल्याण जुलाई १९३०

१० तुलसी-दर्शन पृ० ९६ १० डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र।

नुसार, तुलसीदास जी व्यवहार और परमार्थ का भेद करने में शंकराचार्य जी से प्रभावित हुए, किन्तु ज्ञान और भक्ति के वर्णन में उनसे दूर हो गये हैं।[1]

डॉ० दास और डॉ० बड़थ्वाल—डॉ० श्यामसुन्दर दास और डॉ० पीताम्बर बड़थ्वाल दोनों ही तुलसीदासजी के दर्शन में अद्वैतवाद का वर्णन करते हैं।[2] तुलसीदास जी ज्ञानी भक्त की प्रशंसा करते हैं किन्तु भक्ति-योग का तात्पर्य शरणापत्ति या प्रपत्ति से नहीं है क्योंकि भक्ति तो सगुण से निर्गुण तक पहुँचने का साधन है।[3]

गुप्तजी और अवस्थी जी—र्॰ रामचन्द्र गुप्त का मत है कि परमार्थतः सारा संसार राममय है किन्तु व्यवहारतः राम-रावण में भेद करना ही पड़ता है कम-से-कम भक्ति के विषय में गोस्वामीजी रामानुज के अनुयायी थे। यद्यपि पर-मार्थ की दृष्टि से उनकी आस्था अद्वैत वेदान्त में थी तथापि भक्ति के दृष्टिकोण से वे भेद मानते थे।[4] गुप्त जी को गोस्वामीजी की यह बात पसन्द न आयी कि राम का नाम राम से बढ़कर है।[5] गोस्वामीजी ने जो कुछ लिखा है उससे वानप्रस्थ अथवा संन्यासी का कल्याण न हुआ हो किन्तु गृहस्थ का कल्याण अवश्य हुआ है और इस सम्बन्ध में गोस्वामीजी के प्रयत्न ऐसे ही प्रशंसनीय हैं जैसे महाराष्ट्र में स्वामी रामदास के। किन्तु श्रीसद्गुरुशरण अवस्थी यह श्रेय तुलसी को नहीं देना चाहते। इस विषय में जो कुछ श्रेय है वह अवस्थी जी के विचार से या तो तुलसीदास जी के इष्ट देव का है अथवा वाल्मीकि जी का अथवा अन्य पूर्वगामी लेखकों का जिन्होंने राम-कथा गायी है। अवस्थी जी के मतानुसार यदि गोस्वामीजी का कोई निजी वैशिष्ट्य है तो वह है साधु धर्म का प्रतिपादन।

डॉ० लाल और डॉ० भटनागर—डॉ० श्री कृष्णलाल के अनुसार तुलसीदास जी सन्त थे और महात्मा भी किन्तु दार्शनिक नहीं थे। वे भक्त थे ज्ञानी नहीं।[9] डॉ० रामरतन भटनागर ने गोस्वामी जी की कुछ रहस्यमयी उक्तियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया यथा—सियाराम मय सब जग जानी। राम-कथा स्वयं रहस्यमय है अतएव अद्भुत है विचित्र है और अगम्य है"[10] और तुलसीदास जी ने 'रामाश्रित जीवन' का उपदेश दिया है।[11]

चतुर्वेदी जी—महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी तुलसीदास जी को शांकर

---

१ तुलसीदास पृष्ठ २६२ श्री चन्द्रबली पांडे।

२ गोस्वामी तुलसीदास पृष्ठ १७४ १७७ डॉ श्यामसुन्दरदास और डॉ पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल।

३ वही, पृष्ठ २२२

४ गोस्वामी तुलसीदास, पृष्ठ ४६

५ वही, पृष्ठ ६२ ६६।

६ वही पृष्ठ १७२

७ तुलसी के चार दल प्रथम खिण्ड पृष्ठ ६६

८ वही, पृष्ठ २

९ मानस-दर्शन, पृष्ठ १११

१० रहस्यवाद पृष्ठ १४१ १४२

११ तुलसीदास आलोचनात्मक अध्ययन पृष्ठ २१२

अद्वैत का अनुयायी मानते हैं। उनका आधार है गोस्वामी जी की ऐसी कुछ उक्तियाँ यथा 'यन्माया वश वर्ति अमृतत्व' 'रज्जौ यथाहेभ्र्म' सियाराम मय सब जग जानी 'नेति नेति' निर्विकल्प' 'चिदाकाश' निर्गुण' तुरीय', 'निराम्यान गोतीत' सोऽहँ सोऽहि ताहि नहिं भेदा', 'करम कि होहिं स्वरूपहिं चीन्हें', आदि शब्दावली भी शंकराचार्य जी के सर्व-कर्म-सन्यास का स्मरण दिलाती है।[1] 'जानत तुम्हहि तुमहि हो जाई' यह 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' का अनुवाद है।

डॉ० मिश्र—डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र ने गोस्वामी जी के दार्शनिक विचारों का अध्ययन अधिक विस्तार और गम्भीरता से किया है। उनके विचार से गोस्वामी जी ने अद्वैत सिद्धान्तों को आत्मसात् कर लिया है। शंकराचार्य जी की भाँति वे भी भक्ति को मुक्ति के दृढ़ीकरण के लिए प्रधान मार्ग मानते हैं किन्तु मुक्ति के दृढ़ीकरण अथवा स्थायीकरण से क्या तात्पर्य है यह स्पष्ट नहीं। इसके अतिरिक्त शंकराचार्य जी ने भक्ति को मुक्ति के लिये माना है, किन्तु तुलसीदासजी के लिये वह भक्ति साध्य भी है। मिश्र जी आगे कहते हैं कि यह ठीक है कि भक्ति माया का एक रूप है और निर्गुण से सगुण हो जाना ही जीव का आदर्श है अतएव परम सत्ता निर्गुण ब्रह्म[2] है क्योंकि अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है किन्तु यह भी ठीक है कि अनभ्यस्त विवर्त (?) से जीव को सत्य-ज्ञान होता है और भक्ति के द्वारा मुक्ति अयाचित ही प्राप्त हो जाती है अतएव यदि गोस्वामी जी ने भक्ति पर अधिक आग्रह किया है तो इस कारण वे अद्वैत के अनुयायी अमान्य नहीं।[3] भक्ति के साधनों का उल्लेख करते समय डॉ० मिश्र ने लिखा है कि तुलसीदास जी गुरों का स्थान ब्रह्म के बराबर समझते थे (रा० ५, ४४ १ ३ ४१ २१)। डॉ० मिश्र प० रामचन्द्र शुक्ल से सहमत हैं कि तुलसीदास जी की आस्था पारमार्थिक सत्ता में तथा प्रवृत्ति व्यावहारिक भक्ति में थी।[4]

डॉ० गुप्त—डॉ० माता प्रसाद गुप्त के मतानुसार गोस्वामीजी ने अध्यात्म रामायण' के दर्शन का ही संशोधित रूप उपस्थित किया है[5] यद्यपि गुप्तजी यह भी स्वीकार करते हैं कि 'रामचरित मानस' और 'विनय पत्रिका' के कुछ विचार (जिनका उन्होंने उल्लेख किया है) 'अध्यात्मरामायण' से मेल नहीं खाते। उनके मतानुसार, रामचरित मानस' से पूर्वकालीन ग्रन्थों में हनुमद्भक्ति का कोई साक्ष्य नहीं। यदि गुप्त जी के कथन का यह आशय है कि तुलसीदास जी ने हनुमद्भक्ति का आविष्कार किया तो उनका ध्यान बुधकौशिक कृत 'राम-रक्षा-स्तोत्र' के 'मनोजवं मारुत तुल्य वेगं (३३)

---

१ तुलसी ग्रन्थावली, तृतीय खण्ड, विमला दृष्टा पृ० ६४ ७०-७२ ७८, ११, ११४
२. तुलसी दर्शन पृष्ठ १३१ १०८
३ वही, २ ६ ३१
४ वही, पृ० ३१८
५ तुलसी दर्शन पृष्ठ २११
६ तुलसीदास पृष्ठ १८१ १८२
७ वही पृष्ठ २३८-४०

इसे मात्र शंकराचार्य-कृत 'श्रीहनुमत्पंचरत्न स्तोत्र' की ओर आकर्षित किया जा सकता है।[1]

व्यौहार जी—श्री व्यौहार राजेन्द्रसिंह जी के अनुसार गोस्वामीजी ने विरोधी विचारों का सामंजस्य एक विचारधारा में किया है। उनके मतानुसार तुलसीदासजी ने शंकर और रामानुज का समन्वय किया है।[2] किन्तु इस विषय में यह आपत्ति उठती है कि क्या व्यौहार जी ने दोनों आचार्यों का प्रतिनिधित्व ठीक-ठीक किया है? क्या उदाहरणतः रामानुजाचार्य जी कभी यह मानने को प्रस्तुत होंगे कि भक्ति के कारण निर्गुण-सगुण हो जाता है? तुलसी का वचन है

फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसा॥ रा० ४ १६ १

मेरा दृष्टिकोण—मैंने गोस्वामी जी के दार्शनिक सिद्धान्तों का अध्ययन अपने रूप से किया है।[3] मैं भी मानता हूँ कि गोस्वामीजी स्मार्त वैष्णव थे और किसी आचार्य-विशेष के अनुयायी नहीं थे। जहाँ तक पारिभौतिक विचारधारा का सम्बन्ध है, वे शंकर और वल्लभ के मध्य में स्थित हैं, जिसका विवेचन आगामी पृष्ठों में होगा। इसके अतिरिक्त आचार और मनोविज्ञान के सम्बन्ध में गोस्वामी जी के जो विचार हैं उनकी ओर आज तक किसी समालोचक का ध्यान नहीं गया है। मेरी समझ में गोस्वामी जी के मनोविज्ञान-सम्बन्धी चर्चा हिन्दी-साहित्य में सर्व प्रथम एवं आविष्कार की है। मैंने इस तथा अन्य विभागों में भी जो विनम्र प्रयत्न किया है उसे सार रूप से उपस्थित करने में प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ।

(ख) प्रमाण

प्रत्यक्षादि—गोस्वामीजी ने प्रत्यक्ष और अनुमान का मूल्य समझा किन्तु शब्द को उच्चतर स्थान दिया।

अनुभव—इन तीनों प्रमाणों से उत्पन्न ज्ञान का परिपाक विज्ञान में हो जाता है किन्तु सर्वश्रेष्ठ प्रमाण अनुभव है जो तुरी वर्णनों के क्रम में उल्लिखित है, और जो योगवासिष्ठ के अनुसार सर्वेन्द्रियों का अध्यक्ष तथा केवल अनुभूति प्रतिपत्ति संवित् का सार है (२, १६, १७-१६)। तुलसी के शब्दों में

सोऽहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा

आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा॥

रा० ७।११७।१२

(ग) ब्रह्म

निर्देश—गोस्वामीजी ने ब्रह्म की चर्चा अन्वय-व्यतिरेक से की है, अर्थात् भावात्मक और निषेधात्मक रीति से। निषेधात्मक रूप है 'नेति-नेति' अर्थात् 'न इति न इति', इसके द्वारा निर्गुण की चर्चा गुण ऐसे शब्दों से की जाती है, यथा अनाम

१ 'भक्ति सुधाकर' पैराबेल मेरठपुर पृष्ठ ११-५१
२ गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना पृष्ठ १६
३ द फिलॉसफी ऑफ तुलसीदास अमुद्रित (आगरा विश्वविद्यालय)

निरंजन अकाम, अकल अज अद्वैत अनीह अरूप, अमल अविनाशी निर्विकार, निरवधि मनोगोतीत मायारहित अनामय अगम अनंत (रा० ७, ११० म १ ३, १ १८९, ई २, ७ २२, ७ ११ २)।

मायाच्छन्न पुरुष के द्वारा निर्गुण अगम्य है (रा० १, ११ क)। किन्तु उसकी महिमा अपार है क्योंकि वह बिना इंद्रियों के ही बर्तता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् (१ ११) की भाँति तुलसी कहते हैं—

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥

रा० १, ११७ ५-७

सगुण—गोस्वामीजी के भावात्मक वर्णन के अनुसार ब्रह्म सच्चिदानन्द व्यापक विश्वरूप भगवान् एवं परमकृपालु है और भक्तों के लिए पृथ्वी पर अवतीर्ण होता है (रा० १ १२ १ ५)। सनकादि ऋषियों की स्तुति के अनुसार वह गुण-सागर, सुख-मन्दिर, अतिनागर, शोभाकर ज्ञान निधान, मानप्रद पावन सुयश सर्व सर्वगत सब्ज दुराप अलतामंजन सर्व-हृदय निवास दीनबन्धु अनेकनाम भव-वारिधि-कुम्भज सेवा सुलभ सकल-सुख-दायक विनय-विवेक-विरति-विस्तारक, काम-क्रम-स्वभाव-गुण पालक, तरन-तारन सर्व-दोष-हर्ता त्रिभुवन भूषण (रा० ७ ३६)

निर्गुण-सगुण का अभेद—यद्यपि तुलसीदासजी के मतानुसार निर्गुण और सगुण में कोई भेद नहीं निर्गुण ही भक्त-प्रेम के कारण इस प्रकार सगुण बन जाता है जिस प्रकार जल शीत के कारण हिम हो जाता है

सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥

रा० १ ११५ १ ३

तथापि उन्हें सगुण रूप ही अधिक भाता है और इस विषय में उन्हें अगस्त्य सुतीक्ष्ण और काक का समर्थन प्राप्त है (रा० १ १२ १२ १५, ३ १० ११ १८ ७ १०९ म १२ १६)।

परात्पर राम—राम में निर्गुण और सगुण दोनों का पर्यवसान है। वे दशरथ नन्दन विष्णुजी के अवतार, स्वयं श्रीपति विधि-हरि हर को नचाने वाले सगुण गुणातीत हैं। सुतीक्ष्ण स्तुति करते हैं—

निर्गुण सगुण विषम सम रूपं। ज्ञान गिरा गोतीतमनूप
ममलमखिलमनवद्यमपारं। नौमि राम भंजन महि भारं॥ रा० ३, १० ११ ११

लक्ष्मण सीताजी को समझाते हैं

भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परइ कि सोई॥

रा० ३ २७ ४

मनु-शतरूपा के अनुसार वे हैं वे

संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना॥

रा १, १४३, ६

और वे हैं परात्पर

परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई। रा० १, १३६ १

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। रा० २ ९२, ७

रामनाम—किन्तु गोस्वामीजी राम-नाम को राम से भी ऊपर उठा देते हैं कदाचित् ऐसा वे साधक के दृष्टिकोण से करते हैं। नाम और रूप दोनों ही ईश्वर की उपाधियाँ हैं जो अनिर्वचनीय और सुबोधों के समझने योग्य हैं—

नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी रा० १ २०, २

इन दोनों में रूप नाम के अधीन है क्योंकि बिना नाम के न प्रत्यभिज्ञान होता है न ध्यान—

देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥
रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचानें॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥
रा० १ २० ४६

अगुण सगुण ब्रह्म के दो रूप हैं और दोनों ही रूपों में वह अनिर्वचनीय अथाह अनादि और अनुपम है, किन्तु मेरे मत से तो तुलसीदासजी कहते हैं नाम दोनों से बढ़कर है—

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरें मत बड़ नामु दुहू तें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥
रा० १ २२ १ २

निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार
कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार॥ रा० १ २३

और वे समर्थन के लिए उन कतिपय व्यक्तियों का उल्लेख करते हैं जिनका उद्धार 'राम' ने किया किन्तु साथ ही कहते हैं कि 'राम-नाम' ने तो असंख्य प्राणियों का कल्याण किया है (रा० १ २४ २५)।

(घ) माया

वह कौन-सी शक्ति है जिसके कारण निर्गुण सगुण हो जाता है ? वह है भ्रम अथवा माया। गोस्वामीजी ने 'माया' का प्रयोग लौकिक और दार्शनिक दोनों ही अर्थों में किया है। लौकिक अर्थ में नट कौतुक नारी की मोहकता, अथवा राक्षसों के अतिमानव कपट-कौशल को माया कहते हैं। दर्शन-शास्त्रों में प्रकृति और प्रपंच भी माया के पर्याय हैं और गोस्वामीजी ने उनका उल्लेख किया है (वि० १३६ १-७ रा० १ ११ १२) तथा कौतुक का भी (वि० १८० ४) जो लीला का पर्यायवाची है।

प्रमा के स्तर से—मूढ़ दृष्टि से असत् को सत् मान लिया जाता है और ऐसा करने से वह असत् संसार सत् भासता है (वि० १२ १२)। माया की समस्या पर दो दृष्टिकोणों से विचार हो सकता है—प्रमा से और तत्त्व से।

प्रमा के स्तर से माया स्वप्नवत् है। जब तक मनुष्य भयंकर स्वप्न देखता रहता है, तब तक उसे दुःख होता रहता है। सांसारिक हाथी घोड़े योद्धा लोग

परिजनों सन्तान भूमि धन धाम प्रासाद आदि से सर्वोपम सुख मिल सकता है पर वास्तव में वे हैं 'सपनो दिन द्वै' (क० ७ ४१)।

लक्ष्मणजी निषाद के प्रति व्यवहार और परमार्थ के भेद का निरूपण करते हैं। जगत् व्यवहार है राम ब्रह्म परमार्थ है।

जोग बियोग भोग भल मन्दा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ॥
जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू। संपति बिपति करमु अरु कालू ॥
धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू ॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं ॥
रा० २, ९१ ३-८

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा ॥
सकल बिकार रहित गत भेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा ॥
रा० २ ९२ ७-८

सत्य का तारतम्य—स्वप्न प्रातिभासिक प्रपंच व्यावहारिक और ब्रह्म पारमार्थिक सत्य है। जिस प्रकार जाग्रतावस्था से स्वप्न मिथ्या सिद्ध हो जाता है उसी प्रकार तुरीयावस्था से जाग्रतावस्था मृषा हो जाती है। जगत् हमें उसी प्रकार प्रभावित करता है जिस प्रकार कोई भयंकर स्वप्न। वह मिथ्या होते हुए भी ऐसे भासता है

रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानुकर बारि ॥
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥ रा० १ ११७
एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई ॥
जौं सपनें सिर काटै कोई। बिनु जागें न दूरि दुख होई ॥
रा० १ ११७, १-२

तात्त्विक रूप से—तात्त्विक स्तर से तो 'माया' परब्रह्म राम की रचना-शक्ति है जिसने प्रपंच और चराचर की सृष्टि की है :

मम माया संभव संसारा। जीव चराचर बिबिधि प्रकारा ॥ रा० ७ ८६ख ८
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी ॥
तव प्रेरित मायाँ उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए ॥ रा० ५,५८ २ ३

मनोमाया—मिथ्याभिमान मैं-तू मुझे-तुझे, अथवा मेरे-तेरे का बृहद् रूप है। तुलसीदास जी कहते हैं—

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया ॥ रा० ३ १४ २

इस माया के अनेक रूप हैं जैसे काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य दम्भ पाखंड, तृष्णा इच्छा एषणाएँ। माया की सेना का उल्लेख आगामी किसी अध्याय में होगा।

विद्याविद्या—माया द्विविध है—विद्या और अविद्या। अविद्या से मनुष्य प्रपंच में लिप्त होता और कष्ट पाता है पर विद्या से वह भव-बन्धन से मुक्त होता और सुख पाता है। भगवद्भजन को विद्या व्यापती है उसे अविद्या इस प्रकार नहीं व्यापती जिस प्रकार नाटक के पात्र को आरोपित रूप नहीं व्यापता। तुलसीदास जी कहते हैं—

हरि सेवकहि न ब्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि बिद्या॥

रा० ७ ७८ख १

नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न ब्यापइ माया॥

रा० ७, १०३ख,ग

माया और ईश्वर—माया जीव-जगत् को ही प्रभावित करती है, ईश्वर को नहीं क्योंकि वह ईश्वर के अधीन है (रा० ७ ७७ख १)। ईश्वर और माया का संबन्ध पति-पत्नी का सा है। राम तो मायापति (वै० सं० ४ वि० १७७) और माया-चालक (गी० ५,२९,२) हैं और माया उनकी शक्ति है। माया स्वयं तो शून्य है, किन्तु वह ब्रह्म-रूपी अंक के संपर्क से प्रकट हो जाती है (दो० २००)।

सत् अथवा असत्—सर्वश्री रामनरेश त्रिपाठी[1] विजयानन्द त्रिपाठी[2] विनायक राव[3] और गिरिधर शर्मा[4] का विश्वास है कि तुलसीदास जी माया को असत् मानते हैं अतएव शंकराचार्य के निकट हैं। उनकी इस धारणा का एक प्रधान कारण यह भी है कि तुलसी ने उन्हीं परम्परागत उपमाओं का उपयोग किया है जिनका शंकर ने। उदाहरणतः उन्होंने जगदाभास की तुलना स्वप्न से रज्जु-सर्प से अथवा शुक्ति रजत् से की है। किन्तु इतना कहने से तो यह प्रतीत नहीं होता कि तुलसीदास जी जगत् की सत्ता ही नहीं मानते प्रत्युत् वे उसकी सत्ता को अपेक्षाकृत तुच्छ समझते हैं। वे संसार की तुलना बादल की बिजली से करते हैं जो चंचल और अस्थिर है (देह गेह नाहु जैसे घन दामिनी) और वे उन लोगों का उपहास भी करते हैं जो यह घोषित करते फिरते हैं कि संसार झूठ है :—

झूठो है झूठो है, झूठो सदा जग संत कहंत जे अन्त लहा है।
ताको सहै सठ संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है।
जान पनो को गुमान बड़ो तुलसी के बिचार गंवार महा है॥ क० ७ ३९

वियोगी जी का सुझाव—श्री वियोगी हरि का कथन है कि ऐसी उपमाएँ तो उस जगत् के लिए लागू हैं जो हरि विहीन है किन्तु तुलसी का समस्त संसार तो सीता राम-मय (रा० १ ७ख २) है अतएव तुलसी-वाले जगत् के लिए वे कैसे लागू हो सकती हैं? तुलसी का झुकाव सगुण ब्रह्म की ओर है और भक्ति की ओर भी। किन्तु जिस प्रकार तुलसी के राम निर्गुण-सगुण से ऊपर हैं उसी प्रकार सीता जी (अर्थात् उनकी शक्ति) भी सदसत् से परे हैं।

सुन्दरतम कल्पना—तुलसी की सुन्दरतम कल्पना विनयपत्रिका के निम्न लिखित पद में अभिव्यक्त है

केसव कहि न जाइ का कहिए?
देखत तव रचना बिचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए॥

---

१ तुलसीकृत रामायण सटीक पृ ३११ १४

२. कल्याण का रामायणांक अध्याय ११२ पृष्ठ १०१ १०५

३ रामायण बालकाण्ड पृ १९-२४ अयोध्याकाण्ड पृ ११७-१२८, किष्किन्धाकाण्ड, पृ० ३३ ३४

४ गोस्वामी जी के दार्शनिक विचार, तुलसी ग्रंथावली, पृष्ठ ९१ ११०

सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे ।
धोये मिटै न मरै भीति दुख, पाइय यहि तनु हेरे ॥
रविकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं ।
बदन हीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं ॥
कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि माने ।
तुलसीदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचान ॥ १११ ॥

भक्ति और माया—तुलसीदास* जी ने भक्ति को रामप्यारी और माया को नर्तकी बताया है। कवि ठहरे, किन्तु एक दो स्थलों पर उन्होंने जगज्जननी जानकी जी की भी उपमा माया से दे डाली है। अस्तु, इससे तुलसीदास जी के सिद्धान्त पर कोई अन्तर नहीं पड़ता। नर्तकी की कल्पना तो अध्यात्म रामायण' से ली गयी है

पुनि रघुबीरहि भगति पियारी। माया खलु नर्तकी बिचारी ॥
भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया ॥
रा० ७ ११५ख,४ ५

स्वयोषा तथा माया नर्तकी बहुरूपिणी ॥ अ० रा० ७, ६, ११
राम त्वमेव भुवनानि विधाय तेषां
संरक्षणाय सुर-मानुष तिर्यगादीन्
देहान्बिभर्षि न च देह गुणैर्विलिप्त
स्त्वत्तो बिभेत्यखिल मोहकरी च माया ॥ अ० रा० १ १ ६२

माया को पार करने का उपाय—माया को अभिभूत करना अत्यन्त दुष्कर है किन्तु मुख्य ज्ञान भक्ति और रामकृपा से ऐसा सम्भव है। ज्ञानमार्ग में अनेक संकट और बाधाओं से भरा है (रा० ७, ११८ क-ख) काल स्वभाव और कर्म (भाग्य) का भी विवेक पर प्रभाव पड़ता है (रा० १ ६ १ २)। अतएव भगवान् राम ही प्राणी को भव-सागर से पार करते हैं। भगवान् की माया से जीव भ्रान्त हो जाते हैं और फिर उन्हीं की कृपा से मुक्त हो जाते हैं।

नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहि छोहा ॥ रा० ४ २ २

(ङ) त्रिमूर्त्ति

राम के अधीन—तुलसीकृत रामायण में रामचन्द्र जी ब्रह्मा विष्णु और महेश के नचाने वाले हैं (रा० २ १२६ १)। उनके एक अंश से त्रिमूर्तियाँ उत्पन्न हुई हैं (रा० १ १४१, ६)। राम इनकी वन्दना से प्रतीत हैं 'जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को' (रा० २ २४० ५)। हनुमान् जी ने रावण से कहा था कि यदि राम तुम्हारे प्रतिकूल हो जायँ तो सहस्रों शिव सहस्रों विष्णु और सहस्रों ब्रह्मा तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते —

संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही ॥ रा० ५ २२ ८

विष्णु जी के, और विशेषतः ब्रह्माजी और शिवजी के सम्बन्ध में लक्ष्मण (रा० २, २६ ८, ६ ७४ ग १४) हनुमान् (रा० ५, २२, ८) और शंकर (रा १ २६ २) के द्वारा अवज्ञापूर्ण शब्द उच्चरित हुए हैं। वैदिक-काल में त्रिमूर्तियों को जो महत्ता अत्यधिक

तदनन्तर पुराण-काल में प्रसंग प्रसंग एवं सम्पटित रूप से प्राप्त थी वह घट चली थी। सर्वप्रथम ब्रह्माजी की महत्ता पर कुठाराघात हुआ था और तुलसीदास जी के समय में तो परात्पर सत्ता से सीधा सम्बन्ध स्थापित-सा हो गया था।

त्रिमूर्ति-पत्नियाँ—उमा, लक्ष्मी और ब्राह्मी की गरिमा में भी ह्रास हो गया था। आदि-शक्ति के भ्रू-कटाक्ष मात्र से असंख्य उमाएँ, लक्ष्मियाँ और सरस्वतियाँ उत्पन्न होती हैं जो राम-विवाह के अवसर पर गीत गाने के लिये अन्य देवियों के साथ उपस्थित थीं (रा० १ ३२१ ५-७, १ ३१७ ६)। उस समय उनके पतिदेव भी विराजमान थे (रा० १ ३२ ६)। तुलसीदास जी ने तो सीता-शोभा की तुलना सरस्वती जी लक्ष्मी जी और पार्वती जी की शोभा से करने में कौशल-पूर्वक संकोच किया है (रा० १ २४६ २४७)। आदि शक्ति की कल्पना का आधार ऋग्वेद का वागाम्भृणी सूक्त (१० १२५) प्रतीत होता है।

राम और विष्णु—तुलसीदास जी कभी-कभी राम का तादात्म्य विष्णु जी से कर देते हैं क्योंकि राम के लिये उन्होंने 'श्रीरमण' 'रमानिवास' 'हरिस्वयम्' लिखा है। राम कभी तो विष्णु हैं और कभी उनसे बहुत ऊँचे हैं। इन्द्र ने उन्हें 'रमानिवास' (रा० ६ ११२ ११३) वेदों ने 'रमेश' (रा० ६ १२८ छं० ४) और शिवजी ने 'श्री रमण' 'रमारमण' (रा० ६ ११ छं०) कहा है। मन्दोदरी राम को विष्णु मानती है (रा० ६ १०१ छं)। रावण के निधन पर ब्रह्मा शिव इन्द्र आदि तो उपस्थित होते हैं विष्णु नहीं। स्यात् तुलसीदास जी ने उस समय अपने मन में राम और विष्णु का तादात्म्य कर लिया हो। यदि अयोध्यावासी गौरी शिव गणेश सूर्य और विष्णु की अर्चना करते हैं तो भरत चित्रकूट में शिव-विष्णु का गुण-गान करते हैं (रा० २ २७२ ४ ६ २ ११२)। राम-विष्णु का तादात्म्य होने पर भी लक्ष्मी और विष्णु, राम को नगर पर आरूढ़ देखकर जनकपुरी में मोहित हो जाते हैं (रा० १ ३१६ ३)।

शिव-वैष्णवों का ऐक्य—तुलसीदास जी ने शिवजी के लिए अत्यन्त आदर भक्ति का प्रदर्शन उनका यथावत् चित्रण तथा मंगलाचरणों में स्मरण किया है। दक्षिण के रामेश्वर में राम-द्वारा शिवलिंग स्थापना हुई है। राम ने शिवजी और शिवानुयायियों के लिये अत्युच्च आदर प्रदर्शित किया है यद्यपि अधिकतर तो शिव जी ने ही राम की पदार्चना की है। तुलसी के लिए राम तो शिवजी और विष्णुजी से बहुत ऊँचे हैं क्योंकि वे दोनों ही उनकी सेवा में सपत्नीक उपस्थित रहते हैं।

(च) अवतार

अवतार का अर्थ—अवतार का शाब्दिक अर्थ है 'उतरना' अर्थात् भगवान् का पृथ्वी पर उतरना। लोग समझते हैं कि भगवान् गर्भ में आते और जन्म लेते हैं यह समझ ठीक है किन्तु सोलह आने नहीं। ऋक् और यजुर्वेद में लिखा है 'प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते' अर्थात् भगवान् गर्भ में रहते और अनुत्पन्न होते हुए भी अनेकधा उत्पन्न होते हैं। उक्त श्रुति में 'अजायमान' और 'विजायते' विरोध द्रष्टव्य है। 'जायते' न लिखकर 'विजायते' क्यों लिखा गया उपसर्ग की क्या आवश्यकता थी? अतएव शंकराचार्य जी ने लिखा कि भगवान् अवतार

के समय उत्पन्न होते हुए-से प्रतीत होते हैं। ईसाइयों में डोसिटिस्ट सम्प्रदाय मानता है कि ईसा मसीह का शरीर दिखावटी शरीर था। भारतीय शास्त्रों में अवतार का शरीर अप्राकृत माना गया है अतएव तुलसीदासजी ने रामावतार के निमित्त 'प्रकट' शब्द का उपयोग किया है भए प्रकट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी

रा० १ १९१ छ०

अवतार-शरीर का तत्त्व—ऊपर बताया गया है अवतार का शरीर प्राकृत अर्थात् त्रिगुणात्मक नहीं होता। वह अप्राकृत होने के कारण जन्म-मरण रहित होता है। राम का शरीर 'इच्छा' का बना हुआ था—

इच्छामय नर वेष सँवारे। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारे॥ रा० १ १५२ १

यह शरीर 'इच्छामय' 'निजेच्छा निर्मित' 'त्रिगुणातीत' एवं 'चिदानन्दमय' था

निज-इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥ रा० १ १९२

चिदानन्दमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥

रा० २ १२६ ५

अवतार के समय राम घन-श्याम वर्ण के मालाधारी और चारों हाथों में शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुए थे। उन्होंने कौसल्या की प्रार्थना पर बाल रूप धारण कर लिया था (रा० १ १९१ छं ४)।

अवतार का समय और उद्देश्य—कृष्ण जी की भाँति गोस्वामी जी भी कहते हैं कि जब-जब दुष्ट राजाओं का अत्याचार प्रजा को अत्यन्त पीड़ित करता है तब-तब वे ब्राह्मण ऋषि मुनि देव आदि की रक्षा करने और धर्म-व्यवस्था की पुनः स्थापना के लिये भगवान् अवतार लेते हैं (वि० ५५ ४ २४८ २ गी० १ ४७ २)। वे अपनी इच्छा से (दो ११६ १२४) और भक्त के हित के लिए ऐसा करते हैं।

भगति हेतु मनुज सरीरा। रा० ७ ११३ ख, १२

नर तन धरेहु संत सुर काजा। रा० २ १ ६ ६

अवतार का परिकर—भगवान् अपने दलबल के साथ अवतार लेते हैं। अकेला तो प्राकृत राजा भी कहीं नहीं आता-जाता। अध्यात्म[1] लिखा मिलता है कि रामावतार के समय विष्णु जी राम हो गये लक्ष्मी जी सीता शेषनाग जी लक्ष्मण चक्र भरत और शंख शत्रुघ्न। तुलसीदास जी ने लक्ष्मण के लिए अनन्त (रा० १ २१ ४) अहीश (रा० ६ ७१ ११) आदि शब्दों का अनेक बार प्रयोग किया है। भगवान् के लिये जो भालु और वानर युद्ध-स्थल में लड़ मरे थे उन्हें इन्द्र द्वारा जीवित कराया गया वे देवताओं के अंशावतार थे (रा० ६ ११ १८)।

दशावतार—यों तो अवतारों की संख्या अहिर्बुध्न्य संहिता के अनुसार ३९ और भागवत (२ ७ १-३९) के अनुसार २२ है पर मुख्यावतारों की संख्या दस मानी जाती है यथा

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्किश्च ते दश।

---

1 अध्यात्म रामायण ४ ६ ५७

विनय-पत्रिका में गोस्वामी जी ने इन्हीं दस का उल्लेख किया है उन्होंने राम, कृष्ण बुद्ध और कल्कि को यथांजलियाँ अर्पित की हैं। यद्यपि व्रज में गोस्वामी जी ने कारणवश कृष्ण के दर्शन राम के रूप में किये थे तथापि भगवान् कृष्ण के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी जिसे उन्होंने कृष्ण गीतावली में प्रकट भी किया है। तुलसीदास जी ने 'विनय पत्रिका' के ५२वें पद में किसी भी अवतार की इतनी प्रशंसा नहीं की जितनी बुद्ध जी की किन्तु वेदों की निन्दा करने के कारण 'दोहावली' के ४६४ वें दोहे में उन्हें निन्दित भी समझा। इतिहासकारों का मत है कि बौद्धों ने प्राचीन आर्य-धर्म का ही विरोध नहीं किया अपितु संस्कृति और आर्याचार का भी अतएव उन्हें भारत से लुप्त होना पड़ा था। जैनियों ने धार्मिक मतभेद रखते हुए भी प्राचीन आचार और संस्कृति से भागुकूल्य रखा अतएव वे आज भी भारत में विद्यमान हैं। तुलसीदास जी इष्टदेव वादी थे उनके इष्टदेव थे रामचन्द्र जो दशरथ-नन्दन विष्णु जी के अवतार (रा० १ ४० ७ ४० १) परब्रह्म के अवतार (रा० ७ ७२ क १ ४० सं०) तथा स्वयं सच्चिदानन्द भगवान् [रा० ७ २५, ७१ (ख) १ ७२ (क)] थे। अतएव सीताजी भी लक्ष्मी की थे नहीं हैं (रा० १ १४७ १)।

राम के प्रति तुलसीदास जी का भाव—तुलसीदास जी आजन्म स्मार्त वैष्णव रहे। उनके हृदय में राममक्ति का उदय इस धारणा से हुआ कि राम विष्णुजी के अवतार हैं। राम के इष्टदेव बन जाने पर, तुलसी को 'अध्यात्म रामायण' एवं राम परक दोनों उपनिषदों से यह प्रेरणा मिली कि राम और विष्णु एक ही हैं। निम्बार्क चैतन्य जैसे महापुरुषों के अनुयायियों के सम्पर्क में आकर उनकी राम-निष्ठा और भी प्रदीप्त हो उठी। वल्लभाचार्य जी श्रीकृष्ण को अक्षर ब्रह्म से भी ऊँचा मान कर, भागवत के अनुसार, 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' का प्रतिपादन करते थे। जब वल्लभाचार्य जी ने सोरों में भागवत की कथाएँ कहीं थीं तब गोस्वामी जी लगभग ११ वर्ष के थे और उन्होंने आचार्य जी की कथा अवश्य सुनी होगी। आचार्य जी का तथा उनके अनुयायियों का जनता पर प्रचुर प्रभाव पड़ा था। तुलसीदास कैसे अछूते रह सकते थे उन्होंने भी अपने राम को परात्पर ब्रह्म घोषित कर दिया।

सुर समुर

त्रिमूर्तियों के अधीन देव—त्रिमूर्तियों के अधीन अनेक देवी-देव हैं। ऋक और अथर्व वेदों के अनुसार उनकी संख्या तेंतीस है जिनमें एकादश स्वर्ग के एकादश पृथ्वी के और एकादश जल के हैं। वैदिक काल में देवियों की संख्या कम थी जो पौराणिक काल में वृद्धिगत हो गयी।[1] उक्त तीन प्रकारों के अतिरिक्त तीन प्रकार और थे—इष्टदेव, कुलदेव और ग्रामदेव। अनन्य भक्ति के निमित्त भक्त जिस एक देवता को मनोनीत कर लेता है उसे इष्टदेव अथवा इष्ट-देवी कहते हैं (दो० १२१) यथा तुलसी के इष्टदेव राम थे। वंश-कुल की संरक्षा जिस देवता से होती है उसे कुल-देव अथवा कुल-देवी कहते हैं यथा राम के कुल-देव सूर्य थे (रा० १ १२२, छ० २)। ग्राम अथवा

१ वैदिक मिथोलोजी, पृ० १२४-१२५

नगर की संरक्षा के लिए भी ग्राम-देवी और ग्राम-देव होते हैं। राम की माताओं ने यह सुनते ही कि कल दशरथ जी राम का राज्याभिषेक करेंगे ग्राम-देवी की पूजा की थी (रा० २, ७ ५)।

पंच देव—पुराण-काल में पंच देवोपासना प्रचलित हो गयी थी। पंच देव हैं गणेश दुर्गा शिव सूर्य और विष्णु। अयोध्यावासियों ने चित्रकूट पर इनकी पूजा की (रा० २ २७२ ४ ५)। सीता-राम ने गौरी और गणेश आदि की अर्चना विवाह-मण्डप में की थी (रा १ ३२२ छं० १)। स्वयं तुलसीदास जी ने निम्नलिखित देवताओं की प्रार्थना की है गणेश जी (वि० १ भी १ १०१ ६) हनुमान् जी (वि० २१ २९) देवी जी (वि० १५ १६) भैरव जी (वि० ११-१२) नरनारायणजी (वि० ६०) सीता जी (वि० ४१ ४२) लक्ष्मण जी (वि० ३७-३८) भरत (वि० ३९) शत्रुघ्न (वि० ४०) बिन्दु माधव (वि० ६१ ६३) शिवजी (वि० ३-१४)।

देवताओं का व्यवहार—तुलसीदास जी ने लिखा कि देव विमानों में बैठकर आकाश में सपत्नीक विचरण करते हैं। रामोत्सवों पर देव-पत्नियाँ नाचती और पुष्प वर्षा करती हैं उनके पति भी गाते-बजाते ढोल पीटते महत्वपूर्ण अवसरों पर पुष्प वर्षा करते तथा नाचते हैं और ऐसे अवसर 'रामचरित मानस' में न जाने कितने बार आये हैं। देवताओं में संवेग भी होते हैं यथा चिन्ता भय आश्चर्य द्विविधा आदि मनोविकार। वे अनुकूल घटना के घटने पर प्रसन्न होते और निराश होने पर रोते हैं। वे रावण के उत्पात से डरते-भागते और रोते-बिसूरते थे। वे राग-द्वेष विवर्जित नहीं थे। दूसरे की मति भ्रष्ट करने के लिए वे सरस्वती और कामदेव का उपयोग करते थे। अनिच्छुक कामदेव ने शिवजी के मन को विचलित करने का प्रयत्न किया। जब नारद-तपस्या से भय उत्पन्न हुआ तो कामदेव को पुष्पबाण चलाने का कार्य सौंपा गया। मन्थरा की मति को मोपरा करने के लिये सरस्वती की मनोनीत हुई चित्रकूट में भरत की मति को पलटने के लिए सरस्वती जी का पुनः आह्वान हुआ परन्तु इस बार सरस्वती ने इन्द्र को करारी डाट पिलाई और वे अपने लोक को लौट आयीं (रा० २ २९४ १ ८)।

देवता कभी-कभी मनुष्यों की शक्ति एवं पुण्य की परीक्षा लेते हैं। सुरों ने हनुमान् जी की परीक्षा लेने सुरसा को भेजा था। जब कभी कोई अवतार होता है तो मानव अथवा पशु के शरीर-रूप में देवता भी अवतीर्ण होते हैं जैसा कि पहले लिखा जा चुका है। यद्यपि अमर हैं तथापि वे मृत्यु से डरते हैं

सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल। अस कहि कोपि गगन पर धायल ॥
हाहाकार करत सुर भागे। खलहु जाहु कहँ मोरें आगे ॥

रा० ६, ६६ ६-७

उन्हें मानव सहायता की अपेक्षा रहती है। दशरथ जी ने इन्द्र की सहायता की थी और ज्योंही अंगद ने देखा कि रावण ने देवताओं का पीछा किया तो वह सहायतार्थ उछला और रावण का पद पकड़ कर उसे भूमि पर ले आया (रा० ६ ६६ ८)। देवता सांसारिक सुषमा पर यों ही लट्टू हो जाते हैं जनकपुर और अयोध्या की जो सजावट राम के विवाह और अभिषेक पर हुई थी वे उससे मुग्ध थे। वे मनुष्यों की

स्त्रियों पर मोहित हो जाते और उनसे अनुचित सम्बन्ध भी स्थापित करते हैं। यथा इन्द्रद्वारा गौतम-पत्नी अहल्या और जलन्धर-पत्नी वृन्दा दोनों परम साध्वी और सती थीं उनके साथ कपट का व्यभिचार देवताओं के लिए कलंक-मात्र है।

तुलसी की उग्रता—कदाचित् इसीलिए तुलसीदासजी ने देवताओं का लाघव दिखाया और उन्हें धिक्कारा है। उनकी दृष्टि में देवता स्वार्थी असमर्थ अयोग्य निष्ठुर, मनोमलीन मक्कार दुष्टकर्मा होते हैं। वे सेवा अधिक हैं देवा कम। वे कुत्सित हैं उनका निवास उच्च और कार्य नीच है उन्हें दूसरे की सम्पदा असह्य है। वे मनुष्यों में भय शोक व्यथा आदि का संचार करते हैं। भरत-मिलाप से देवताओं को धुकधुकी होने लगी थी (वि० १४५ १४६, २६४ १९१ रा० २, ११, १, २४० ७ २९१)।

इन्द्र का रूप—ऋग्वेद का लगभग चतुर्थांश इंद्र की स्तुति से परिपूर्ण है किन्तु कालवश उसकी महिमा घट गयी कृष्णजी ने भी उसमें सहयोग दिया। 'रामचरित मानस' में रामोत्सवों पर पुष्प वर्षा करने के लिए इंद्र देवताओं के साथ रहे और उन्होंने जनकपुर और अयोध्या में अन्य देवताओं के आश्चर्य भय और सुख में भाग लिया। तुलसी ने तीन बार इंद्र और अहल्या के व्यभिचार का अपरोक्ष उल्लेख किया है और नारद-व्यामोह के उपाख्यान में देवराज के द्वेष का भी। चित्रकूट में जनकागम इन्द्र की चिन्ता और भय का कारण हुआ उसने वहाँ अयोध्यावासियों के साथ जो कुचाल चली उसे रामचन्द्रजी ने ताड़ लिया था। इस कुचाल पर तुलसी को रोष आ गया। वे बोले —

कपट कुचालि सींव सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू॥
काक समान पाकरिपु रीती। छली मलीन कतहुँ न प्रतीती॥

रा० २ ३०१ १ २

तुलसीदासजी को राम से पुष्टि भी मिली।

लखि हियँ हँसि कह कृपा निधानू। सरिस स्वान मघवान जुबानू॥

रा० २,३ १ ८

देवेतर योनियाँ—तुलसीदासजी ने देवताओं के अतिरिक्त देवयोनियों तथा अन्य पूजनीय प्राणियों और वस्तुओं का उल्लेख किया है यथा चित्ररथ (रा १ ६२, ४ १४ ख १ ११ अ २०क ६ ८७ १४)। अप्सरा गन्धर्व किन्नर आदि राम राज्याभिषेक तथा अन्य शुभ अवसरों पर गीत गाते, और विश्राम चित्रकूट में राम को प्रणाम करने आते हैं (रा० २ १३१ १)। सीताजी ने सिद्धियों को बुला भेजा जिससे वे अयोध्या में राम की बरात का आतिथ्य करें (रा० १०२, ८)।

गो-ब्राह्मणादि—अन्न-जात ब्राह्मण और अतिथि आदरणीय होते हैं। चित्रकूट में अयोध्या और जनकपुर के निवासियों तथा अन्य लोगों ने भी देवाचन और पितृ-श्राद्ध के पश्चात् फलाहार किया था (रा २, २७६)। गाय पशु; गंगा-यमुनादि नदियाँ बड़ पीपल तुलसी आदि वृक्ष गौएँ तथा हिमालय विन्ध्याचल और चित्रकूट पर्वत भी पवित्र माने गये हैं।

जीव

व्याख्या के दो दृष्टिकोण—गोस्वामीजी ने जीव की व्याख्या दो दृष्टिकोणों से की है—मनोवैज्ञानिक और पारमार्थिक। प्रथम दृष्टिकोण से जीव अभिमानी जड़ और परिच्छिन्न है अतएव वह सुखी-दुःखी ज्ञानी-अज्ञानी मानी-अभिमानी कहा जाता है (रा० ७ १११ २४ १८७ १ ११८, ४)। पारमार्थिक दृष्टिकोण से वह अवि नाशी नित्य चेतन सुखराशि और अमल है (रा० ७ ११ २ ४ १२ १ ७ ११७ १)। माया के प्रभाव से जीव इस प्रकार कलुषित हो जाता है जिस प्रकार भूमि के सम्पर्क से जल (रा० ४ १५ १)।

जीव और ईश्वर—जीव ईश्वर का अंश है। जो अपने को शुद्ध अग्नि और गंगा समझते हैं वे मूर्ख हैं। जैसे ही मदिरा में गंगाजल हो पर सन्त उसका आचमन नहीं करते, किन्तु जब वह गंगाजी में डाल दी जाती है तो गंगाजल ही हो जाती है। ऐसा ही अन्तर जीव और ईश्वर में है। जीव न तो माया को जानता है न ईश्वर को और न अपने को ही पहचानता है। ईश्वर ही बन्ध और मोक्ष प्रदान करता है अतएव राम को ही अपना गुरु पिता माता भाई पति और देव समझना चाहिए (रा० १ ६१ १ २ २६१ १ १ २० १ २० ६)। जीव ईश्वर के अधीन है ईश्वर स्वतन्त्र है जीव अनेक हैं किन्तु ईश्वर एक है अतएव जीव का तादात्म्य ईश्वर से नहीं हो सकता (रा० ७ ११४ २ ४ ७ १८७)। जीव के सम्बन्ध में गोस्वामीजी का दृष्टि-कोण अद्वैतवादी कल्पना नहीं है। यदि कहा जाय कि मायाच्छन्न जीव ईश्वर के अधीन है अन्यथा वह ईश्वर ही है तो यह स्मरण रखना चाहिए कि जहाँ अद्वैतवादी शंकराचार्य जी गीता के 'ममैवांशो जीव' (१५, ७) की व्याख्या करते समय 'अंश' को 'अंश इव' मान लेते हैं वहाँ तुलसीदासजी अड़े रहते हैं

ईश्वर अंस जीव अबिनासी चेतन अमल सहज सुखरासी ॥रा० ७ ११७ १

तीन अवस्थाएँ—जीव की तीन अवस्थाएँ हैं—जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति (रा० ७ २०० दो० २४६)। निद्रा में जीव शिवतुल्य है स्वप्न में वह सृष्टि करता है और जाग्रदवस्था में वह दुःखी और सांसारिक हो जाता है (दो० २४६)। ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी ने तुरीयावस्था को मुक्त जीवात्मा के लिए रख छोड़ा है क्योंकि यह चतुर्थ अवस्था त्रिगुणातीत है, यद्यपि मेरी विनीत सम्मति में तुरीयावस्था सभी तीनों अवस्थाओं का आधार है अतएव यह जीव में सदा विद्यमान रहती है।

जीव विभाजन—तुलसीदासजी ने जीवों के चार विभाग किए हैं उनके विभाजन-सिद्धान्त सर्वथ भिन्न रहे। वे चार हैं—(१) मुक्ति के लिए मानव प्रयत्न (२) व्यक्तिगत स्वभाव (३) पारस्परिक व्यवहार, (४) सिद्धान्त रहित परिसंख्या। प्रथम विभाग के अनुसार जीव विषयी साधक और सिद्ध हैं (रा० २ २७७ २) द्वितीय के अनुसार हैं पटसम कागसम अथवा पनससम (रा० १ ११४ दं) तृतीय के अनुसार हैं मित्र शत्रु और उदासीन और चतुर्थ के अनुसार हैं साधक सिद्ध विमुक्त उदासीन कवि, कोविद, कृतज्ञ संन्यासी योगी शूर, तपस्वी ज्ञानी, धर्मात्मा पंडित विज्ञानी।

जीव-प्रकार और योनियाँ—गोस्वामीजी जीव के परम्परागत चार प्रकार बताते हैं उद्भिज, स्वेदज अंडज और जरायुज (रा० ७ ११८ ४)। जीवों की चौरासी लाख योनियाँ होती हैं, जिनमें जीव भ्रमण करता है और अन्त में मानव-शरीर को प्राप्त करता है (रा० ७ ६६ २ ३)।

पुनर्जन्म—जीव अपना जीर्ण शरीर उसी प्रकार मृत्यु के समय त्याग देता है जिस प्रकार मनुष्य फटे पुराने वस्त्रों को (रा० ७ १८०)। भगवान् शिव के शाप से काक भुशुण्ड को सहस्रों जन्म लेने पड़े उन्हें कभी देवता कभी मनुष्य कभी ब्राह्मण और अन्त में काक होकर शरीर धारण करना पड़ा था (रा० ७, ११७ ३, १८१, १ ८)। ईश्वर से विमुख जीव काल कर्म और स्वभाव के वश हो कर भटकता डोलता है (रा० ७ ६६ ३) और अपने कर्मों के अनुसार जन्म-मरण के कष्ट अनेक योनियों में पाता है (रा० २ १२, २)। जो अपने गुरु की निन्दा करता है वह मण्डूक बनता है, जो देवता की निन्दा करता है वह रौरव नरक में जाता है, जो सन्तों को गालियाँ देता है वह उल्लू बनता है और जो मूर्ख प्रत्येक मनुष्य को कोसता है वह चमगादड़ बनता है (रा० ७ २०७ १२ १४)।

मानव-शरीर की महिमा—शरीर पंच तत्त्वों से अर्थात् पृथ्वी अप् तेज वायु और आकाश से निर्मित होता है, (रा० ४ १२, २)। शास्त्रों में सूक्ष्म शरीर की मात्रा का निर्देश किया गया है किन्तु तुलसीदासजी ने इस विषय पर कोई प्रकाश नहीं डाला है। मानव शरीर की बड़ी महिमा है (रा० ७ २०७ ३ ६)।

> नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही ॥
> नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी ॥
> सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होंहि बिषय रत मंद-मंद तर ॥
> काँच किरिच बदले ते लेहीं। करते डारि परस मनि देहीं ॥

निष्कर्ष—तुलसीदासजी जीव को दो दृष्टिकोणों से देखते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जीव जड़ परिच्छिन्न परवश सुखी-दुखी और अज्ञानी ज्ञानी है (रा० ७ ११३, २४, १८७ १ ११६, ४ ४ १३, १)। पारिभौतिक दृष्टि से वह नित्य अभिमानी चेतन शुद्ध और सुखी है (रा० ७ ६६ २ ४ १२, १ ७ ११७ १)। शुक और मर्कट के उदाहरणों से प्रतीत होता है कि जीव मूलतः शुद्ध था जो मायावश बद्ध हो गया (रा० ७ ११७ २)। जब गोस्वामीजी जीव को मूलतः चेतन सनातन और शुद्ध मानते हैं तो वे सांख्य योग और वेदान्त के निकट आते और जड़वादी न्याय वैशेषिक और मीमांसा से दूर हटते हैं। जब वे जीव को नित्य और चेतन मानते हैं तो रामानुज निम्बार्क और वल्लभ आदि आचार्यों के निकट हो जाते हैं। जीव को ईश्वर का अंश मानकर वे जीवात्मा को सर्वव्यापक मानने वाले अद्वैत सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक और मीमांसा से अपनी असहमति प्रकट करते हैं और वैष्णवाचार्यों से सहमत होते हैं। तथापि उन्हें विश्वास है कि 'सोऽहम्' की अखण्डावस्था भ्रममायादि को खण्ड-खण्ड कर देती है अतएव जीवात्मा चेतन और आनन्द स्वरूप है और यह आत्मा उन्हें शंकर के निकट और वल्लभ के निकटतर पहुँचा देती है। किन्तु गोस्वामी जी जीव को कुछ आचार्यों की भाँति शुद्ध राशि भी मानते हैं पर यथा वल्लभाचार्यजी

ऐसा मानने के लिए अपनी सम्मति प्रदान कर देंगे ? गोस्वामीजी मानते हैं जीव एक बार माया के अधीन हो चार प्रकार की जीव कोटियों और चौरासी लक्ष योनियों में भ्रमण कर त्रितापों का अनुभव कर सुख-दुःख पाता रहता है। मानव के स्तर से तो योनि का निर्धारण कर्म के अनुसार होता है निम्न के स्तर से माया के द्वारा। जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति रामकृपा से मिलती है और उसी कृपा से मुक्ति का अवसर भी प्राप्त होता है (रा० ७ ११७ ४)। इस प्रसंग में आचार्य वल्लभ के पुष्टि मार्ग का स्मरण हो आता है किन्तु गोस्वामीजी वल्लभादि आचार्यों के मर्यादा-मार्ग का निराकरण नहीं करते हैं, और इसी कारण मानव-शरीर की महिमा भी गाते हैं। वे ऐसे जीवों को नहीं मानते जो मध्वकल्पना के अनुसार तिरस्कृत होने के कारण नित्य बद्ध हैं। तुलसी के अनुसार तो यद्यपि जीव को अनेक जन्म धारण करने और प्रभूत कष्ट सहने पड़ते हैं तथापि आध्यात्मिक परामर्श और भगवत्कृपा के द्वार सब के लिए सदैव खुले रहते हैं।

मुक्ति

आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक ताप से पीड़ित हो मनुष्य इनसे मुक्ति चाहता है। बार-बार शरीर धारण करने से संसार का दुःखद चक्र चलता रहता है इससे छूट जाना ही अभीष्ट है। मुक्ति, मोक्ष निर्वाण और अपवर्ग ये चारों शब्द अभावात्मक हैं। इनके द्वारा दुःख के त्याग पर आग्रह है। क्या परम कल्याण का कोई भावात्मक रूप भी है और यदि है तो वह क्या है ?

मुक्ति का स्वरूप—जिस प्रकार चन्द्र रात्रि का भूषण है और सूर्य दिन का उसी प्रकार तुलसी के मत से दास का भूषण भक्ति भक्ति का ज्ञान, ज्ञान का ध्यान ध्यान का त्याग और त्याग का शान्तिपद है। यह पद सम्पूर्णतया शुद्ध और निष्कलंक है। जो उसको प्राप्त करता है वह सुखसागर पर निवास करता है। इससे विविध प्रकार के पापों से उत्पन्न दुःखों का निवारण होता है। शान्ति-जल से अहंकाराग्नि राग-द्वेष एवं लोभ-वासना का शमन हो जाता है। शान्ति की अतीन्द्रिय अवस्था भेद-वासना विवर्जित और अत्यन्त शुद्ध है (वै० सं० ४१ ६२)। शान्ति की इस अवस्था के लिए गोस्वामी जी शान्ति शब्द का प्रयोग करते हैं। उन्होंने इसके निमित्त अन्य शब्दों का भी उपयोग किया है यथा निर्वाण (रा० ७ ११४ ११५) परमगति और परमपद (रा० २ ८४, ३, ७ २०१ १)।

मुक्ति के प्रकार—तुलसीदासजी ने दो प्रकार की मुक्ति का उल्लेख किया है, अर्थात् विदेह मुक्ति तथा जीवन्मुक्ति का और मुक्त पुरुषों के भेदों का भी (दो० २२५)। उन्होंने परम्परागत चार प्रकार की मुक्ति की भी चर्चा की है—सालोक्य सामीप्य सारूप्य और सायुज्य। पर किन्तु मुक्ति के प्रकरण में गोस्वामीजी ने राम के लोक का निर्देश नहीं किया है स्यात् वे वैकुण्ठ को ही राम का लोक मानते हैं जो 'निजधाम' 'ममधाम' 'निजपद' आदि शब्दों के द्वारा अभिहित हुआ है। मारीच ने 'निजपद' प्राप्त किया (रा० ३, १४ ८-९, १५) बाली (रा० ४ १२ १) और कुम्भकर्ण (रा० ६ ६१) निजधाम पहुँचे। जटायु को 'हरिधाम' अथवा 'ममधाम' मिला (रा० ३, ४१)

तुलसीदास जी ने सामीप्य (क्लोसेशिप विद् गॉड) का कोई उदाहरण नहीं दिया है। जटायु को सारूप्य मुक्ति भी प्राप्त हुई वह गृध्र-रूप को छोड़ भगवद्रूप हो गया (रा० ३ ४ १)। जटायु को ही नहीं उन सभी राक्षसों को भी जो युद्धक्षेत्र में लड़ मरे वे सारूप्य प्राप्त हुआ (रा० ६ १४० १४)। शबरी, कुम्भकर्ण और रावण को सायुज्य-मोक्ष प्राप्त हुआ (रा० ३ ४४ ख १२, ४ १२० १)। भगवदीय तत्त्व में पूर्णतः घुलमिल जाने को सायुज्य कहते हैं। यह सायुज्य शबरी को राम के चरणों के द्वारा तथा रावण और कुम्भकर्ण को राम के मुख-द्वारा प्राप्त हुआ। तुलसी के मत से सायुज्य मुक्ति सालोक्य (हरिलोक) से अधिक श्रेयस्कर है। राम स्वयं घोषणा करते हैं कि जो रामेश्वर की यात्रा करेगा वह देहत्याग के पश्चात् सीधा मेरे लोक जायगा और जो मेरे बनाये सेतु तक जायगा वह भवसागर को पार कर जायगा किन्तु गंगाजल से जाकर जो वहाँ चढ़ायेगा वह सायुज्य पायगा (रा० ६ ५, १२)।

कैवल्य—गोस्वामी जी ने मुक्ति के अर्थ में 'कैवल्य' का प्रयोग किया है (वि० १ ८ ४१ २)। 'केवल' और 'केवलत्व' शब्दों का प्रयोग श्वेताश्वतर (१ २) और मैत्री उपनिषद् (६ २१) में क्रमशः हुआ है। सांख्य और योग दर्शन के ग्रन्थों में यह शब्द पर्याप्त परिचित है। तुलसीदासजी ने इसकी व्याख्या तो नहीं की है पर उन्होंने इसका प्रयोग 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड के तृतीय श्लोक में इस आशय से किया है कि भगवान् शिव सन्तों को कैवल्य भी प्रदान करते हैं। काक ने गरुड़ को बताया कि कैवल्य परमपद और भी दुर्लभ है

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद ॥ रा० ७ २०१ २

प्रतीत होता है तुलसीदास जी को ऐसा लिखते समय पुरुषार्थ चतुष्टय—धर्मार्थकाम मोक्ष—का परम पुरुषार्थ अभीष्ट था।

अपुनरावृत्ति—मुण्डकोपनिषद् (१ २ ६) के आधार पर आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मुक्त जीव की पुनरावृत्ति मानी है किन्तु गोस्वामी तुलसीदास मोक्ष से प्रत्यावर्तन नहीं मानते

तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे ॥ रा० ३,४४ छं

उन्हें श्रीमद्भगवद्गीता से यह समर्थन प्राप्त है

यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ ८ २१

मुक्ति और भक्ति—किन्तु मोक्ष किस प्रकार प्राप्त हो? गोस्वामी जी कहते हैं कि ज्ञान भी तन्निमित्त एक साधन है (रा० ७ २०१ १)। गीता के अनुसार, ज्ञान से सब कर्म दग्ध हो जाते हैं (४ ३७) इससे अधिक पवित्र अन्य कोई पदार्थ नहीं (४ ३८) और यह प्रत्यक्षतया मोक्ष-प्रद है (४ ३२, ३३ ३५, ३६)। कठ (६ १०) श्वेताश्वतर (१ ८ ११, ३ १२) और मैत्री (६ ३४) तीनों ही उपनिषदों ने ज्ञान की श्रेष्ठता स्वीकार की है। तुलसीदास जी समझते हैं कि ज्ञान-मार्ग का अनुसरण करना मानो असि-धारा पर चलना है (रा० ७ २ १ १) किन्तु वे यह और कह देते हैं कि बिना भगवद्भक्ति के मोक्ष इसी प्रकार असम्भव है जैसे निराधार जल की स्थिति। भगवद्भक्त इस रहस्य को जानते हैं कि रामभक्ति के द्वारा मुक्ति स्वयं चली आती है

राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं । अन इच्छित आवइ बरिआईं ॥

रा० ७ ११९ २४

यद्यपि माया-जन्य भेद मिथ्या है, तथापि बिना ईश्वर की सहायता के चाहे जितना प्रयत्न किया जाय वे दूर नहीं किये जा सकते । जो राम-कृपा के बिना मुक्ति की कामना करता है वह बुद्धिमान् नहीं (रा० ७ ११४ ११५)।

किन्तु मुक्ति उच्चतम लक्ष्य भी नहीं । भक्ति मुक्ति का साधन है पर स्वयं साध्य भी है । शरभंग ऋषि भगवान् में लीन नहीं हुए क्योंकि उन्होंने भेद-भक्ति चाही थी (रा० ३ ११ १)। दशरथ जी को भी भेद भक्ति अभीष्ट रही—

ताते उमा मोच्छ नहिं पायो । दसरथ भेद भगति मन लायो ॥

रा० ६ ११८ १४

स्वयं भगवान् राम ने पुरुषों के तारतम्य का उल्लेख करते हुए भक्त को सब श्रेष्ठ माना है । तुलसी की यह उक्ति भागवत के अनुरूप है—

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी । कोउ एक होइ धर्म ब्रतधारी ॥
धर्मसील कोटिक महँ कोई । बिषय बिमुख बिराग रत होई ॥
कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई । सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई ॥
ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ । जीवन मुक्त सकृत जग सोऊ ॥
तिन्ह सहस्र महुँ सब सुख खानी । दुर्लभ ब्रह्म लीन बिग्यानी ॥
धर्मसील बिरक्त अरु ग्यानी । जीवनमुक्त ब्रह्म पर प्रानी ॥
सब ते सो दुर्लभ सुरराया । राम भगति रत गत मद माया ॥

रा० ७ ७७ १४

यदि भक्ति श्रेष्ठ नहीं है तो प्राप्तमुक्ति ब्रह्मलीन सनकादिक ऋषि मोक्ष समाधि को त्याग कर राम-गुन गान क्यों सुनते थे ?

सनकादिक नारदहि सराहहिं । जद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहहिं ॥
सुनि गुन गान समाधि बिसारी । सादर सुनहिं परम अधिकारी ॥

रा० ७ ४२ ४

इसी प्रकार मुनि वसिष्ठ ने भी भगवान् राम से वर माँगा कि

जनम-जनम प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु ॥ रा० ७ ४९

मुक्ति के मार्ग

प्राक्कथन—मुक्ति के तीन मार्ग हैं—ज्ञान भक्ति और कर्म। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार, मन की प्रत्येक दशा में तीन तत्त्व होते हैं—संविद् (कॉग्निशन) वेदन (एफ़ेक्शन) और इच्छा (कोनेशन)। जिस प्रकार किसी भुजा के हटा देने पर त्रिभुज की त्रिभुजता नष्ट हो जाती है ठीक उसी प्रकार उक्त किसी एक तत्त्व के विलय होने पर मन मन नहीं रह जाता और जिस प्रकार त्रिभुज की भुजाओं में तारतम्य होता है उसी प्रकार मन के तीनों तत्त्वों में—प्रकृति के सत्त्व गुण रजोगुण और तमोगुण की भाँति—तारतम्य होता रहता है। मोक्ष-प्राप्ति के लिए जिस किसी एक मार्ग का अवलम्बन लिया जायगा उसमें अन्य दोनों मार्गों का भी कुछ न कुछ समावेश होगा। *शाण्डिल्य ऋषि ने तीनों मार्गों की एकता को माना है यद्यपि कुछ मनीषियों ने किसी* एक मार्ग को प्रधान मान कर अन्य मार्गों की उपेक्षा की है। ज्ञान-मार्गी बहुधा कर्म संन्यास की शिक्षा देते हैं क्योंकि—

ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशैः ।। श्वेताश्वतर, १ ८

कर्ममार्गी क्रियाशीलता पर आग्रह करते हैं क्योंकि—

कर्मणैव हि संसिद्धि मा स्थिता जनकादयः ।। गीता ३, २०

और कभी-कभी वे 'तर्कोऽप्रतिष्ठः' आदि वाक्य के मिथ्याभ्रम से ज्ञान की अवहेलना करते हैं। भक्ति-मार्गी जन ज्ञान और कर्म को गौण समझकर उनकी अवहेलना करते हैं क्योंकि उनके अनुसार भगवान्

भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।। गीता ८ २२

तुलसीदास जी ने भी कर्म की उपेक्षा-सी की है और यह कहते हुए भी कि 'ग्यानहि भगतिहि नहिं कछु भेदा' भक्ति को प्रधानता प्रदान की है।

(क) कर्म

कर्म की व्यापकता—विश्व में कर्म की प्रधानता है जो जैसा करता है वैसा पाता है। कोई किसी को न सुख देता है न दुःख सब अपने किये का फल भोगते हैं। भगवान् चराचर के स्वामी हैं और वे पाप-पुण्य के अनुसार व्यक्ति को उसका पुरस्कार देते हैं। ईश्वर की योजनाएँ सनातन और अप्रतिहत हैं

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा ।।
रा० २, २१९ २

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सब भ्राता ।।
रा० २, ९२, २

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदय बिचारी ।।
करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई ।।
रा० २, ७७ ४

कौसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुख सुख छति लाहू॥
कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता॥
ईस रजाइ सीस सबही के। उतपति थिति लय बिषहु अमी के॥
देबि मोह बस सोचिअ बादी। बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी॥

रा० २ २८२ २ १

ईश्वर कर्म सिद्धान्त का अध्यक्ष है। राम कहते हैं

कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता॥

रा० ७ ४१ २ १

कारण में कार्य का निवास—तुलसीदासजी कार्य को कारण में मानते हैं क्योंकि क्या बबूल से आम अथवा जल से नवनीत की उत्पत्ति हो सकती है (वि० ११० १ १९८, २)? क्या कौवों से पायस अथवा पुष्करिणी की सुक्ता से मुक्ता सम्भव है (रा० २ २६१ २)? यह तुलसी का सत्कार्यवाद है। भरत का पश्चात्ताप पूर्ण कथन है—कारण से कार्य कठिन होता है यथा अस्थि से वज्र और प्रस्तर से लौह (रा० २ १८० १)। भरत की उक्ति से परिणामवाद की ध्वनि निकलती है। किन्तु गोस्वामीजी ने यह समझने के लिए कि निर्गुण ब्रह्म सगुण किस प्रकार हो जाता है हिम-जल का उदाहरण इस प्रकार दिया है—

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥

रा० १ ११६, २

इस उपमा के द्वारा गोस्वामीजी वल्लभाचार्यजी के अविकृत परिणामवाद को स्वीकार करते हैं। कार्य-कारण-सिद्धान्त के अनुसार जो जो करता है वह भोगता है किन्तु इसके अपवाद का उल्लेख भी गोस्वामीजी के द्वारा इस प्रकार हुआ है

कोउ करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानै जोगु॥ रा० २, ७७
देखी सुनी न आजु लौं अपनायति ऐसी।
करहिं सबै सिर मेरे ही फिरि परै अनैसी॥ वि० १४७ ४

कर्म की भ्रमग्रस्तता—तुलसीदासजी के अनुसार मुक्ति के साधन अनेक हैं यथा—ज्ञान वैराग्य, जप तप यज्ञ। ये एवं अन्य अनेक और समर्थ हैं; किन्तु गोस्वामीजी इनमें से किसी की सिफारिश नहीं करते (वि० ११४ १ ११६ ५)। कारण यह है कि योग व्रत संयम, जप, पूजा अग्नि उपवास दान यज्ञ तप तीर्थ आदि निरर्थक हैं (वि० ६० १ ६७ २, १०७ १ क० ७ ६२ ६६ ७१ ७७ ८६ ८७)। पुनश्च वेद-पुराणों का अध्ययन तथा अन्य देवता गणेश महेश आदि तात्कालिक फल प्रद नहीं हैं (क० ७ ५५)। गोस्वामीजी इस विषय में पाँच कारण उपस्थित करते हैं। प्रथमतः वैदिक कृत्य यथा यज्ञ स्वाध्याय आदि करने में कठिन हैं (वि० १११ २) द्वितीयतः तप, तीर्थ उपवास दान आदि पर काम क्रोध लोभ आदि का प्रभाव पड़ जाता है और ज्ञान-विवेक नष्ट हो जाते हैं (वि० १७१ २ ४)। तृतीयतः इन धर्मादि कार्यों और तत्सम्बन्धी विचारों के विषय में किसी का एक मत नहीं है क्योंकि मत अनेक हैं मुनि अनेक हैं और पन्थ अनेक हैं और वे भी परस्पर विरुद्ध।

मुक्ति के मार्ग

प्राक्कथन—मुक्ति के तीन मार्ग हैं—ज्ञान भक्ति और कर्म। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार मन की प्रत्येक दशा में तीन तत्त्व होते हैं—संवित् (कॉग्निशन) वेदन (एफेक्शन) और इच्छा (कोनेशन)। जिस प्रकार किसी भुजा के हटा देने पर त्रिभुज की त्रिभुजता नष्ट हो जाती है ठीक उसी प्रकार उक्त किसी एक तत्त्व के विलग होने पर मन मन नहीं रह जाता, और जिस प्रकार त्रिभुज की भुजाओं में तारतम्य होता है, उसी प्रकार मन के तीनों तत्त्वों में—प्रकृति के सत्त्व गुण रजोगुण और तमोगुण की भाँति—तारतम्य होता रहता है। मोक्ष-प्राप्ति के लिए जिस किसी एक मार्ग का अवलम्बन लिया जायगा उसमें अन्य दोनों मार्गों का भी कुछ न कुछ समावेश होगा। वाशिष्ठ ऋषि ने तीनों मार्गों की एकता को माना है यद्यपि कुछ मनीषियों ने किसी एक मार्ग को प्रधान मान कर अन्य मार्गों की उपेक्षा की है। ज्ञान-मार्गी बहुधा कर्म संन्यास की शिक्षा देते हैं, क्योंकि—

ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशैः ॥ श्वेताश्वतर १ ८

कर्ममार्गी क्रियाशीलता पर आग्रह करते हैं क्योंकि—

कर्मणैव हि संसिद्धि मा स्थिता जनकादय ॥ गीता ३, २

और कभी-कभी वे 'तर्कोऽप्रतिष्ठः' आदि वाक्य के मिथ्याश्रय से ज्ञान की अवहेलना करते हैं। भक्ति-मार्गी जन ज्ञान और कर्म को गौण समझकर, उनकी अवहेलना करते हैं क्योंकि उनके अनुसार भगवान्

भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ॥ गीता ८ २२

तुलसीदास जी ने भी कर्म की उपेक्षा-सी की है और यह कहते हुए भी कि 'ग्यानिहि भगतिहि नहिं कछु भेदा' भक्ति को प्रधानता प्रदान की है।

(क) कर्म

कर्म की व्यापकता—विश्व में कर्म की प्रधानता है जो जैसा करता है वैसा पाता है। कोई किसी को न सुख देता है न दुःख सब अपने किए का फल भोगते हैं। भगवान् चराचर के स्वामी हैं और वे पाप-पुण्य के अनुसार व्यक्ति को उसका पुरस्कार देते हैं। ईश्वर की योजनाएँ सनातन और अलक्षित हैं

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥
रा० २, २१९ २

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सब भ्राता ॥
रा० २, ९२, २

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी ॥
करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई ॥
रा० २ ७७ ४

कोसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुख सुख छति लाहू॥
कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता॥
ईस रजाइ सीस सबही कें। उतपति थिति लय बिषहु अमी कें॥
देबि मोह बस सोचिअ बादी। बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी॥

रा० २, २८२, २१

ईश्वर कर्म-सिद्धान्त का अध्यक्ष है। राम कहते हैं

कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता॥

रा० ७ ४१ २१

कारण में कार्य का निवास—तुलसीदासजी कार्य को कारण में मानते हैं क्योंकि यथा बबूल से आम अथवा जल से नवनीत की उत्पत्ति हो सकती है (वि० १३० १, ११६, २)? यथा कोदों से चावल अथवा पुष्करिणी की सुक्ता से मुक्ता संभव है (रा २ २६१ २)? यह तुलसी का सत्कार्यवाद है। भरत का पश्चात्ताप पूर्ण कथन है—कारण से कार्य कठिन होता है यथा अस्थि से वज्र और प्रस्तर से लोह (रा० २ १८० १)। भरत की उक्ति से परिणामवाद की ध्वनि निकलती है। किन्तु गोस्वामीजी ने यह समझाने के लिए कि निर्गुण ब्रह्म सगुण किस प्रकार हो जाता है हिम-जल का उदाहरण इस प्रकार दिया है—

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥

रा १, ११६, २

इस उपमा के द्वारा गोस्वामीजी वल्लभाचार्यजी के अविकृत परिणामवाद को स्वीकार करते हैं। कार्य-कारण-सिद्धान्त के अनुसार तो जो करता है वह भोगता है किन्तु इसके अपवाद का उल्लेख भी गोस्वामीजी के द्वारा इस प्रकार हुआ है

और करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानइ जोगु॥ रा० २, ७७
बेदी सुनी न पावु सीं अपनामति ऐसी।
करहिं सर्व सिर मेरे ही फिरि परै अनैसी॥ वि० १४७ ४

कर्म की अप्रशस्तता—तुलसीदासजी के अनुसार मुक्ति के साधन अनेक हैं यथा—ज्ञान वैराग्य, जप तप यज्ञ। ये एवं अन्य अनेक और समर्थ हैं किन्तु गोस्वामी जी इनमें से किसी की सिफारिश नहीं करते (वि० ११४ १ ११६ ५)। कारण यह है कि योग यज्ञ संयम जप, पूजा बलि उपवास दान, मख तप तीर्थ आदि निरर्थक हैं (वि० ६७ १ ८७ २, १ ७ १, क० ७ ६२ ६१ ७१ ७७ ८६, ८७)। पुराण वेद-पुराणों का अध्ययन तथा यदि देवता बचत कहेतु आदि तात्कालिक फल प्रद नहीं हैं (क० ७, ५५)। गोस्वामीजी इस विषय में पाँच कारण उपस्थित करते हैं। प्रथमतः वैदिक कृत्य यथा यज्ञ स्वाध्याय आदि करने में कठिन है (वि० १३१ २) द्वितीयतः तप तीर्थ उपवास, दान आदि पर काम क्रोध लोभ आदि का प्रभाव पड़ जाता है और ज्ञान-विवेक नष्ट हो जाते हैं (वि० १७३ १ ४)। तृतीयतः इन धर्मादि कार्यों और तत्सम्बन्धी विचारों के विषय में किसी का एक मत नहीं है क्योंकि मत अनेक हैं मुनि अनेक हैं और पन्थ अनेक हैं और वे भी परस्पर विरुद्ध।

अतएव यह जानना प्रायः असम्भव है कि कौनसा मत ठीक है (वि० १७३, ३)। महाभारत में भी लिखा है कि 'नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्'। चतुर्थतः इन्द्रियनिग्रह का साधन अत्यन्त कठिन है क्योंकि शरीर प्रायः सबल या दृढ़ नहीं होता है (क० ७ ८७) पंचमतः यज्ञ-दानादि व्यय-साध्य हैं (क० ७ ८७)। अतएव गोस्वामीजी मनुष्य को इनसे उपरत होकर भगवत्प्रेम करने की शिक्षा देते हैं।

कर्म की उपादेयता—तथापि गोस्वामीजी सत्य तप दान और यज्ञ की महिमा मानते हैं। (रा० ७ १८७ १, २०७ ११) क्योंकि वे, जैसा कि गीता का उपदेश है मानव को पवित्र करते हैं (१८ ५)। किन्तु भागवत का वचन है कि—

इते प्रवर्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनधृतः।
सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप ॥ १२ ३, १८

अतएव गोस्वामीजी के विचार से भी धर्म चतुष्पाद है और चार पादों में से केवल एक पाद कलियुग में प्रधान रहता है तथा दान के द्वारा मनुष्य का कल्याण होता है (रा० ७ १०३)। गोस्वामीजी यह भी कहते हैं कि सतयुग में ध्यान त्रेता में यज्ञ द्वापर में पूजन और कलियुग में केवल नाम-जप पर्याप्त है।

ध्यानु प्रथम जुग मख बिधि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें॥
नाम काम तरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥
रा० १ ४२, २ १

इसी उपदेश की पुनरावृत्ति गोस्वामीजी ने उत्तरकाण्ड (१०३ १ ३) में इस प्रकार की है—

कृत जुग सब जोगी बिग्यानी। करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी॥
त्रेता बिबिध जग्य नर करहीं। प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं॥
द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा॥
कलि जुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥
रा ७ १०३ १ ३

कर्मत्याग और रामार्चन—गीता (१८ ६६) में भगवान्‌कृष्ण अर्जुन को आश्वासन देते हैं कि सर्व धर्मों का परित्याग कर तू केवल मेरी शरण में आ जा मैं सब पापों से तेरी रक्षा कर दूंगा। तुलसी के राम भी रामचरितमानस' के उत्तर काण्ड में भरत से कहते हैं—

त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनिनायक॥
संत असंतन्ह के गुन भाषे। ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे॥
रा० ७ ४१ ४

तुलसी के मत से कर्म बन्ध का प्रेरक है अतएव उसको निष्काम रूप से करना चाहिए अथवा ज्ञानाग्नि से दग्ध कर देना चाहिए (रा० ७ ११७, २) जैसा कि गीता भी कहती है (२, ७०-७१ ४, १६) अथवा उसे अविरल भक्ति से नष्ट कर देना चाहिए। वल्लभाचार्यजी ने 'अणु भाष्य' में बताया है कि—

एकैषां पुष्टि मार्गीयाणां भक्त्यागमुमयी प्रारब्धाप्रारब्धयो-
र्मोयं विनैव नाशो भवति ॥

तुलसी के काक भी यही है कहते हैं—

भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा

रा० ७ २०१ ४

निष्कर्ष—तुलसीदासजी कर्म-सिद्धान्त को मानते हैं और यह सिद्धान्त उनकी सम्मति में ईश्वरेच्छा के अधीन (रा० ७ १२ ३) और व्यावहारिक है।

जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू। संपति बिपति करमु अरु कालू॥
धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं॥

रा० २ ९१ १४

तुलसी को सत्कार्यवाद और अविकृत-परिणामवाद अभीष्ट है। तथापि कर्म भला हो या बुरा बन्ध का प्रेरक है अतएव उसका त्याग ही श्रेयस्कर है (रा० ७ ९३ ४)। ज्ञान-प्राप्ति के अनन्तर कर्म नष्ट हो जाता है क्योंकि कर्म कि होहिं स्वरूपहि चीन्हें रा० ७ ११७ २। ज्ञान और भक्ति दोनों ही मोक्षप्रद हैं। कहा है—

ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥ रा० १ २० १
भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा॥

रा० ७ २०१, ४

(ख) ज्ञान

ज्ञान के विषय में गोस्वामीजी वल्लभाचार्यजी का अनुसरण करते प्रतीत होते हैं।

ज्ञान का स्वरूप—ज्ञान परमार्थ की पहचान कराता है और इस पर प्रकाश डालता है कि 'तू कौन है?' (दो २९१ १८)। एक बार गोस्वामीजी ने एक साधु को जो मस्त मलंग चिल्लाता था यह उपदेश दिया कि तू 'मेरे तुमको' और इन दोनों के मध्यस्थ को पहचान ले पूर्व इसके कि तू मध्यस्थ और असत्य की चर्चा करे (दो० ११)।

ज्ञान-विज्ञान—शास्त्रों में ज्ञान और विज्ञान में इस प्रकार भेद किया है ज्ञानं शास्त्रतः आचार्यतश्च आत्मादीनां अवबोधः विज्ञानं विशेषतः तदनुभव (गीता पर शांकर भाष्य ३ ४१)। तुलसीदासजी ने भी ज्ञान और विज्ञान को पर्याय किन्तु उनके भेद को भी, माना है। ज्ञान सानुमान प्रत्यक्ष है किन्तु विज्ञान है अनुमान-रहित प्रत्यक्ष। उन्होंने लिखा है कि ज्ञान में मान नहीं होता, पर उनके द्वारा सर्व व्यक्तियों में ब्रह्म की प्रतीति होती है

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं॥ रा० ३ १६ ४

विज्ञान ज्ञान से ऊँचा होता है—

जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ॥

तब बिग्यान निरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ॥ रा० ७ ११८ ११६

विज्ञान का तादात्म्य भगवान् राम से किया गया है जो कि ज्ञानी की अपेक्षा विज्ञानी को अधिक चाहते हैं (रा० ७ २१२, २ १३०, ३)। ज्ञान का सम्बन्ध विराग से और विज्ञान का समता से है

ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी॥ रा० ७ ११० १
ग्यान कि होइ बिराग बिनु, रा० ७ ११९
बिनु बिग्यान कि समता आवइ॥ रा० ७ ११७ २

श्री अंजनीनंदन शरण के अनुसार[1] विज्ञान वह अवस्था है जिसमें आत्मवृत्ति परमात्मा में लीन हो जाती है, सब में समता भाव हो जाता है तीनों गुणों और अवस्थाओं से परे तुरीयावस्था आ जाती है सारा जगत् ब्रह्ममय दिखायी देता है तथा जीव जीवन्मुक्त हो परमानन्द में मग्न और ब्रह्म लीन रहता है।

विराग और समता—तुलसीदासजी काक भुशुण्ड के मुख से उपदेश दिलाते हैं कि बिना विराग के ज्ञान उत्पन्न नहीं होता जैसा कि अभी कहा जा चुका है। प्रश्न उठता है कि क्या विराग की स्थिति ज्ञान से पूर्व होती है अथवा उसके पश्चात्; क्योंकि बिना विराग के निष्पक्ष निर्णय और सत्य ज्ञान सम्भव नहीं? तुलसीदासजी ने विराग से ज्ञान की उत्पत्ति मानी है ग्यान कि होइ बिराग बिनु। किन्तु ज्ञान-वैराग्य का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध ही उचित प्रतीत होता है। बिना विज्ञान के समता नहीं हो सकती बिनु बिग्यान कि समता आवइ। मेरे विचार से समता और विराग कदाचित् एक ही पदार्थ के दो रूप हैं। संवित् (नोइङ्) के दृष्टिकोण से वह समता है और वेदन (फ़ीलिङ्) के दृष्टिकोण से विराग है।

ज्ञान के उपकरण—तुलसीदासजी ने भक्ति और वैराग्य के साथ ज्ञान शब्द का प्रयोग किया है (रा० २, १२२)। परम्परागत चार पदार्थ हैं धर्म अर्थ काम और मोक्ष, जिनका यथार्जन करना चाहिए, पर ज्ञान भक्ति और कर्म साधन हैं। ज्ञान भक्ति और वैराग्य का विभाजन संगत हो सकता है यदि हम वैराग्य को अनासक्तिमय कर्म का पर्याय समझ लें।

ज्ञान और भक्ति—गोस्वामीजी के अनुसार, ज्ञान और भक्ति में कोई अन्तर नहीं क्योंकि दोनों ही भव-यातना का अन्त कर देते हैं :

भगतिहि ग्यानहि नहि कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा॥
रा० ७ ११५ ७

फिर भी कुछ मनीषी जैसा कि तुलसीदासजी मानते हैं उन दोनों में भेद मानते हैं। पहला भेद तो यह है कि ज्ञान विराग योग और विज्ञान सभी पुल्लिंग हैं। पुरुष प्रकृत्या शक्तिशाली होता है और स्त्री निर्बल (रा० ७, ११५ ८, ११४), किन्तु यह तो शाब्दिक भेद है क्योंकि यह तर्क तभी निर्बल पड़ जाता है जब गोस्वामीजी कहते हैं कि सुन्दरी इतनी सबल होती है कि वह सन्तों पर भी प्रभाव डाल सकती है (रा० ७, ११४ ११६)। दूसरा भेद यह है कि ज्ञान का मार्ग कठिन है और भक्ति

१ 'मानस पीयूष' पृष्ठ १०८, तृतीय संस्करण अयोध्या २००८ वि०।

का अपेक्षाकृत सरल है। ज्ञान-दीपक तो विषय-वायु से बुझ सकता है किन्तु भक्तिमणि उससे अप्रभावित रहती है।

ज्ञान के लिये भक्ति आवश्यक है जैसा कि भगवान् राम के उस उपदेश से स्पष्ट है जो उन्होंने काक भुसुण्ड को दिया था यह सारा संसार मेरी माया से उत्पन्न है। इसमें विविध प्रकार के चराचर जीव हैं। वे सभी मुझे प्यारे लगते हैं क्योंकि मुझ से उत्पन्न हुए हैं। फिर भी मनुष्य मुझ को सब से अधिक भाते हैं। उन मनुष्यों में भी द्विज द्विजों में भी वेदपाठी वेदपाठियों में भी धर्मरत और धर्मरतों में भी विरक्त मुझे प्रिय हैं विरक्तों में भी ज्ञानी, और ज्ञानियों में भी विज्ञानी। विज्ञानियों में भी मुझे अपना ऐसा दास प्रिय है जिसे मेरी ही गति है और जिसे कोई दूसरी आशा नहीं। भक्तिहीन ब्रह्मा भी मुझे सब जीवों के समान ही प्रिय है। परन्तु भक्तिमान् अत्यन्त नीच प्राणी भी मुझे प्राणों के समान प्रिय है यह मेरी घोषणा है (रा० ७ ११०-१११)। इसका तात्पर्य यह हुआ कि भक्ति-समन्वित ज्ञान भी मोक्षप्रद होता है। कहा है

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥
जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥
सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना॥

रा० ३ १२

विज्ञान रहित भक्ति की अपूर्णता—ज्ञान और भक्ति का अन्य सम्बन्ध भी है। तुलसीदासजी की एक चौपाई है जिसकी एक टीका से विदित होता है कि बिना राम-भक्ति के ज्ञान व्यर्थ है, और दूसरी टीका से यह विदित होता है कि बिना ज्ञान के राम भक्ति अपूर्ण है। प्रकरण इस प्रकार है वशिष्ठजी राजा जनक को समझाते हैं कि विषयी साधक ज्ञानवान् और सिद्ध ये तीन प्रकार के जीव वेदों ने बताये हैं। इन तीनों में जिसका चित्त श्रीराम के स्नेह से सरस रहता है साधुओं की सभा में उसी का बड़ा आदर होता है पर

सोह न राम पेम बिनु ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जलजानू॥

रा० २ २७७ ।

बिना ज्ञान के विश्वास दृढ़ नहीं होता विश्वास के बिना प्रीति नहीं होती और बिना प्रीति के भक्ति नहीं होती

जानें बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई॥

रा० ७ ८९,४

इस उक्ति का यह तात्पर्य है कि ज्ञान से विश्वास होता है, विश्वास से प्रेम और प्रेम से भक्ति उत्पन्न होती है।

ज्ञान पर माया—ज्ञान पर माया का प्रभाव पड़ जाता है। प्रभु की माया प्रबल है। ज्ञानियों और भक्तों में अग्रगण्य नारदजी यहाँ तक कि शिवजी और ब्रह्माजी भी माया से व्याप्त हो जाते हैं। अतएव संत जन यह जान कर मायापति ईश्वर की भजना करते हैं (रा० ७ ८२ ८७)।

ज्ञानी का स्तर—ज्ञानी की वही स्थिति है जो किसी कुटुम्ब में वयस्क की होती है। श्रीराम ने नारदजी से कहा था यदि मनुष्य सब आशाओं का त्याग करके केवल मेरी आराधना करे तो मैं उसकी देखभाल उसी प्रकार करता हूँ जैसे माता अपने शिशु की। यदि शिशु अग्नि या साँप की ओर झपटता है तो माता तुरन्त उसकी रक्षा करती है। किन्तु जब उसका पुत्र बड़ा हो जाता है तो माता अपना प्रेम इस रूप से प्रकट नहीं करती। ज्ञानी लोग मेरे लिये तो वयस्क पुत्रों के समान हैं और भक्त शिशु के समान। पहले प्रकार के व्यक्ति तो अपनी शक्ति से रक्षा पाते हैं और दूसरे प्रकार के मेरी शक्ति से (रा० ३ ४४, ३ ४)। अतएव ज्ञानी लोग भक्ति का त्याग नहीं करते

यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पाएहुँ ग्यान भगति न तजहीं॥

रा० ३ ४४ ५

ज्ञानमार्ग की बाधाएँ—श्वेताश्वतर, मैत्री छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदों में यह विवेचन किया गया है कि ज्ञान का अधिकारी कौन है। तुलसीदासजी यह जानते थे अतएव उन्होंने कहा ज्ञान का मार्ग संकटमय है और उसके साधन कठिन हैं

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥

रा० ७ ४७ २

अपने भाव को और अधिक स्पष्ट करने के निमित्त उन्होंने भक्ति की तुलना मणि से की है जो सदैव उज्ज्वल बनी रहती है किन्तु उन्होंने ज्ञान की उपमा दीपक से दी है जो कि आँधी के झोंकों से बुझ भी सकता है। ज्ञान-मार्ग पर चलना मानो तलवार की धार पर चलना है (रा० ७, २०१ १ ३) जैसा कि कठोपनिषद् का भी वचन है (३ १४)।

ज्ञान-दीपक—यद्यपि 'वेदान्तसार' (४ १८) में सदानन्दजी ने ज्ञान की उपमा दीपक से दी है तथापि तुलसी का ज्ञान-दीपक अनुपम है। उसका निरूपण इस प्रकार है —

सात्त्विकी श्रद्धा-रूपी सुन्दर गाय हृदय-रूपी घर में आकर बसे। श्रुतियों ने जो असंख्य जप, तप व्रत यम नियम धर्म और आचार का वर्णन किया है वे धर्मी चार-रूपी हरे तृण हैं जिन्हें वह गाय चरे। आस्तिक भाव-रूपी छोटा बछड़ा है जिसे वह गाय दूध पिलावे। मोई अर्थात् निवृत्ति जिससे पैर बाँधने की रस्सी है। विश्वास दूध दुहने का पात्र है। निर्मल मन दुहने वाला अहीर है। इस प्रकार उपलब्ध परम धर्म-मय दूध को निष्काम भाव-रूपी अग्नि पर औटा कर तथा क्षमा और सन्तोष-रूपी वायु से ठंडा कर, धैर्य तथा शम-रूपी जामन से उस दूध को जमावे। तब मुदिता रूपी कमोरी में तत्त्व बिचार रूपी मथानी से दम के आधार पर सत्य और सुन्दर वाणी रूपी रस्सी से उस दही को मथे और मथकर उसमें से निर्मल सुन्दर और अत्यन्त पवित्र वैराग्य रूपी मक्खन निकाल लिया जाय तदनन्तर योग-रूपी अग्नि प्रकट करके उसमें समस्त शुभाशुभ कर्म-रूपी ईंधन लगा दिया जाय। जब ऐसा करने से ममता-रूपी मल जल जाय तो अवशिष्ट ज्ञान रूपी घी बुद्धि-रूपी वायु से ठंडा किया जाय। तब विज्ञान-रूपिणी बुद्धि उस ज्ञानरूपी निर्मल घी से चित्त-रूपी दीये को भरे और समता

रूपी दीवट पर उसे दृढ़तापूर्वक रखे। जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं और सत्व रज तम इन तीन गुण-रूपी कपास से तुरीयावस्था-रूपी सुन्दर और कड़ी बत्ती बनाई जाय और तेजोराशि विज्ञानमय दीपक जलाया जाय। इस प्रकार दीपक को जलाने से मदादि-रूपी पतंग जल जाते हैं। 'सोऽहमस्मि' नामक अखंड वृत्ति इस ज्ञान-दीपक की परम प्रचंड लौ है। जब आत्मानुभव के सुख का सुन्दर प्रकाश फैलता है तो संसार के मूलक (भेद और भ्रम) का नाश हो जाता है बलवती अविद्या का मोह आदि परिवार-रूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है और जड़-चेतन की गाँठ खुलती है। (रा० ७ ११७-५ २०१ १)।

ज्ञान-दीपक की विफलता—पर ज्योंही जड़-चेतन की गाँठ सुलझने लगती है त्योंही माया ऋद्धि सिद्धियों को भेजकर बुद्धि को अनेक प्रकार के लोभ दिखाती है। ऋद्धि सिद्धियाँ अपने आँचल और छल से निकट जाकर अपने आँचल की वायु से उस ज्ञान-दीपक को बुझा देती हैं। यदि बुद्धि सयानी हुई तो वह उन ऋद्धि-सिद्धियों को हानिप्रद समझ कर उनकी ओर देखती नहीं। जब माया की पार नहीं बसाती तो देवता विघ्न उपस्थित करते हैं। हृदय-रूपी घर में इन्द्रियों के द्वार अनेक झरोखे के समान हैं, वहाँ देवता अड्डा जमाते हैं, और ज्योंही वे विषय-रूपी हवा को आते देखते हैं त्योंही हठपूर्वक वे किवाड़ खोल देते हैं। बस हृदय-रूपी घर में विषय प्रभंजन के आते ही विज्ञान-दीपक बुझ जाता है, गाँठ भी नहीं छूटती आत्म-प्रकाश भी मिट जाता और बुद्धि व्याकुल हो जाती है। इन्द्रियों और देवताओं को ज्ञान नहीं सुहाता क्योंकि उनकी प्रीति विषय-भोगों में रहती है। अतः जब बुद्धि को विषय-वात ने बावली बना दिया, तो ज्ञान-दीपक दुबारा किस प्रकार जले? दीपक के बुझ जाने पर जीव अनेक प्रकार से संसार में क्लेश पाता है (रा० ७ २०१ ६ २०२) क्योंकि उसे पुनः प्रज्वलित करने का उपाय बड़े झंझट का है।

सत्पथ और ज्ञान—पाप पुण्य और ज्ञान में क्या सम्बन्ध है? तुलसी से दो सहस्र वर्ष पूर्व सुकरात का उपदेश था कि पुण्य ज्ञान है अतएव पाप जान-बूझ कर नहीं किया जा सकता। तुलसीदासजी के मत से पाप का ज्ञान तो सबको समान रूप से होता है किन्तु पुण्य का थोड़ों को ही होता है (दो० ३४५)। उनके अनुसार ज्ञानी राग-द्वेष और काम-क्रोध से विवर्जित हो शान्ति प्राप्त करता है (व० सं० २६ ६०)।

ज्ञान-माध्यम—यह तो सब को विदित है कि ज्ञान लिखित अथवा मौखिक शब्दों के द्वारा प्रदान किया जाता है किन्तु वह कदाचित् दृष्टि के द्वारा भी दिया जा सकता है। राम ने अपने पिता दशरथ को दृष्टिमात्र से दृढ़ ज्ञान प्रदान किया था।

रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना। चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ग्याना॥

रा० ६ ११८ ३

ज्ञान : मानवोध और दिव्य—मनुष्य अल्पज्ञ है। ईश्वर ही सर्वज्ञ है। सीतापति का ज्ञान अखंड है। यदि सभी का ज्ञान समान रूप से पूर्ण होता तो बताओ ईश्वर और उसके प्राणियों में क्या भेद रहा (रा० ७, ११४ ९ १)? निस्सन्देह यह बात उस जीव के लिए ही लागू है जो मायाच्छन्न और जड़ है (रा० ७ १८७ १ २०) यद्यपि वास्तव में वह चेतन है। ज्ञान प्राप्ति के अनन्तर जीवात्मा काम करता हुआ

कर देता है (रा० ७, ११७, १) और मोक्ष प्राप्त कर लेता है (रा ७ १८७ २, ७, ३, २०)।

(ग) भक्ति

(प्रथम खण्ड)

भक्ति के लक्षण—तुलसीदासजी ने भक्ति का जो विवेचन किया है उसके अनुसार भक्ति को चिन्तन मनन मंत्र प्रार्थना तप उपवास आदि की आवश्यकता नहीं किन्तु उसके लिये सरलता और अनन्यता की परम आवश्यकता है। भगवान् राम का उपदेश है मैं उसके वश में हूँ जो न किसी से बैर करे, न लड़ाई झगड़ा न आशा रखे न भय करे जो कोई भी कार्य सकाम प्रारम्भ नहीं करता जिसकी घर में ममता नहीं जो मान-हीन पाप-हीन और क्रोध-हीन है जो भक्ति करने में निपुण और विज्ञानवान् है जिसे सन्तजनों के संसर्ग से सदा प्रेम है जिसके लिये स्वर्ग और मोक्ष भी तृण के समान है जो भक्ति के लिये हठ करता है किन्तु दूसरे के मत का खंडन करने की मूढ़ता नहीं करता किन्तु सब कुतर्कों को बहा देता है जो मेरे गुणों और नामों में अनुरक्त है और ममता मद-मोहादि से रहित है। भक्ति का सुख वही जानता है जो परमानन्द को प्राप्त है (रा० ७ ६८ १४)।

साधन-त्रय में भक्ति—गोस्वामीजी ने भक्ति को ज्ञान भक्ति और वैराग्य के मिक में स्थान दिया है। चित्रकूट में राम सीता और लक्ष्मण क्रमशः ज्ञान भक्ति और वैराग्य प्रतीत होते हैं—*ममति म्यामु वैराग्य जनु, सोहत धरें शरीर* (रा० २, १२२)। कृष्णसिया रामायण (१ १०) में यही तुलना ब्रह्म और तुलनाओं के साथ विद्यमान है। राम की तुलना ब्रह्म महादेव मदन और परमार्थ से सीता की ब्राह्मी पार्वती, रति और प्रीति से और लक्ष्मण की *ब्रह्म-सुत गणेश ऋतुपति और योग* से की गयी है। ये उपमाएं अत्यन्त व्यंजक हैं। पहली उपमा ज्ञान की परमता की द्योतक है जिसकी शक्ति भक्ति है और जो वैराग्य के द्वारा प्राप्य है।

नवधा भक्ति—गोस्वामीजी ने नवधा भक्ति की चर्चा की है (रा० १ २० ४), किन्तु जब वे नव प्रकार की भक्तियों का वर्णन करते हैं तो उनकी सूची भागवत' (७ ५, २३) की सूची से भिन्न है क्योंकि इस विषय में उन्होंने 'अध्यात्म रामायण (१ १०, २२ २७) का अनुसरण किया है। रामचन्द्रजी शबरी से कहते हैं 'मैं तुम से अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ तू सावधान होकर सुन और मन में धारणकर। पहली है सन्तों का सत्संग दूसरी है मेरे कथा-प्रसंग में प्रेम *तीसरी है अभिमान रहित गुरु-चरणों की सेवा चौथी है* कपट रहित गुणों का गान पाँचवीं है मेरे मंत्रों का जाप और मुझ में अटल विश्वास छठी है इन्द्रियों का निग्रह शीलता वैराग्य और धर्मरति सातवीं है सम्पूर्ण जगत को मुझ में समभाव से ओत प्रोत देखना और सन्तों को मुझ से भी अधिक मानना आठवीं है यथालाभ सन्तोष और स्वप्न में भी पराये दोषों को न देखना और नवीं है सरलतापूर्वक सब के साथ छल-रहित बर्ताव करना, हृदय में मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्था में हर्ष और दैन्य का न होना", (रा ३, ४१ ४ ४४ १ १)।

अन्य वर्गीकरण—गोस्वामीजी ने बहुधा कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिनसे यह प्रतीत होता है कि भक्ति का कोई अन्य वर्गीकरण भी उनके ध्यान में था। उदाहरणतः, सुतीक्ष्ण की अविरल भक्ति का (रा० ३ १५ ११) शरभंग और दशरथ की भेद भक्ति का उल्लेख हुआ है (रा० ३ ११ १ ६, ११८ ३)। तथा दृढ़ भक्ति (रा० १ ५६) अनपायिनी भक्ति (रा० ५ ३८ १) और गूढ़ भक्ति (रा० ३ १२ ४) आदि का भी उल्लेख है। गूढ़ भक्ति तदाकार-वृत्ति का उदाहरण है। तुलसीदास का निष्कैवल प्रेम (रा० ६ ४६) भागवत (१ २ ६) की अहैतुकी भक्ति के सदृश है। तुलसीदास का वचन है अहेतु राम बिनु हेतु सनेही (रा० ५, १८ ३)।

भक्ति-मुक्ति का सम्बन्ध—भक्ति और मुक्ति का क्या सम्बन्ध है? इस प्रश्न का उत्तर गोस्वामीजी दो प्रकार से देते हैं प्रथमतः सगुणोपासक मुक्ति चाहता ही नहीं द्वितीयतः मुक्ति भक्ति पर आश्रित है और भक्ति का एक साधारण परिणाम मात्र है

सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं ॥

रा० ५, १३८ ४

जिस प्रकार भूमि के बिना जल नहीं रह सकता उसी प्रकार मोक्ष भी भक्ति के बिना असम्भव है। अतएव ज्ञानी उपासक मोक्ष की अवहेलना कर भक्ति की कामना करते हैं क्योंकि भगवद्भक्ति से उपचारमुख्य मोक्ष स्वयं प्राप्त हो जाता है

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद ॥
राम भजत सोइ मुकुति गुसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं ॥

रा० ७ २ १ २

भक्ति और कर्म का सम्बन्ध—गीता का उपदेश है कि कर्मों को करते रहना चाहिए क्योंकि वे मनुष्य को पवित्र करते रहते हैं —

यज्ञ-दान-तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ १८ ५

किन्तु तुलसीदासजी भरत जी से कहलाते हैं कि रामभक्ति के बिना ये सब व्यर्थ हैं—

बादि बसन बिनु भूषन भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू ॥
सरुज सरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरि भगति जायँ जप जोगा ॥
जायँ जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सबु बिनु रघुराई ॥

रा० २, १७८ २३

और आगे चलकर काक से गरुड़ को उपदेश दिलाते हैं कि साधना तपस्या यम यम दम दान पवित्रता ज्ञान ध्यान सब का पर्यवसान भगवत्-पदाम्बुज में हो जाता है जिसके बिना कोई भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता (रा० ७ १४७ ३)। इतना ही नहीं भक्ति का स्फुलिंग सब कर्मों का परिपाक इस प्रकार कर देता है जिस प्रकार जठराग्नि भोजन का

भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा ॥
भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी ॥

रा० ७, २०१ ५

भक्ति और ज्ञान—तुलसीदासजी ने भक्ति और ज्ञान के गुणों पर तुलनात्मक विचार किया है। ज्ञान में अभिमान का अभाव और समता का भाव रहता है। यह सत्व रज तम तथा अणिमा महिमादि आठ सिद्धियों के अतिरिक्त है। धर्म से विरति विरति से योग योग से ज्ञान और ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह मार्ग कठिन है किन्तु भक्ति-मार्ग अपेक्षाकृत सरल है। ज्ञान भक्ति का अन्तर बताने के लिये एक उपमा का प्रयोग हुआ है। वह है ज्ञानी वयस्क के समान है जिसे अपने माता-पिता के संरक्षण की कम आवश्यकता पड़ती है किन्तु भक्त तो शिशु के समान है जिसे निरन्तर देखभाल की आवश्यकता है। पहला तो अपनी ही शक्ति से और दूसरा भगवान् की शक्ति से, सुरक्षित रहता है। यही कारण है कि ज्ञानी भी भक्ति का परित्याग नहीं करते (रा० ३ ३६ ४५)। एक और कारण है जिससे भक्ति ज्ञान से अधिक श्रेयस्कर है। जीव परतंत्र है, किन्तु ईश्वर स्वतन्त्र है (रा ७ ११४ ४-११२)। इसके अतिरिक्त ज्ञान भक्ति का सोपान है। ज्ञान से प्रतीति प्रतीति से प्रीति और प्रीति से भक्ति उत्पन्न होती है या यों कहा जाय कि ज्ञान से प्रतीति उत्पन्न होती है और प्रीति प्रतीति एवं भक्ति के सम्बन्ध को दृढ़ कर देती है। 'दोहावली' में गोस्वामीजी ने प्रीति की तीन श्रेणियाँ मानी हैं। सर्वोच्च प्रीति ऐसी टिकाऊ होती है जैसी प्रस्तर की रेखा। दूसरे प्रकार की ऐसी है जैसा रेते पर चिह्न जो तब तक बना रहता है जब तक कि वायु का झोंका उसे मिटा नहीं देता और तीसरी ऐसी जैसी पानी की लकीर। प्रेम और भक्ति का सम्बन्ध कारण-कार्य का है।

भक्ति और माया दोनों ही स्त्रीलिंग हैं, किन्तु ज्ञान पुंल्लिंग है। जिस प्रकार पुरुष स्त्री के वश में रहता है इसी प्रकार ज्ञान माया के अधीन रहता है। किन्तु जिस प्रकार नारी नारी के रूप पर मोहित नहीं होती उसी प्रकार भक्ति भी माया से प्रभावित नहीं होती (रा० ७ ११३ ८ ११४ ११५, १)। अन्यथा जैसा कि गोस्वामीजी ने स्पष्ट कहा है ज्ञान और भक्ति में कोई अन्तर नहीं क्योंकि दोनों ही संसार के कष्टों को नष्ट और पूर्व कर्मों को दग्ध कर देते हैं (रा० ७ २०१ ४५ ७ ११३ ७)।

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा॥

रा ७ ११३ ७

भक्ति माया से अप्रभावित—कहा जा चुका है कि भक्ति और माया दोनों ही नारी-रूप हैं और नारी-नारी पर मोहित नहीं होती। अतएव भक्ति भी माया पर मोहित नहीं होती। इसके अतिरिक्त भक्ति और माया दोनों ही का सम्बन्ध भगवान् से है। भक्ति तो भगवान् की पत्नी है और माया नर्तकी। इस कारण भक्ति माया पर अपना प्रभुत्व जमा सकती है, उसके अधीन नहीं हो सकती (रा० ७ ११५, १४)।

भक्ति-मणि—जिस प्रकार ज्ञान की तुलना दीपक से, उसी प्रकार भक्ति की समता अमृत से (रा ७ २०६) कवच से और मणि से की गयी है। मणि वाली उपमा अत्यन्त लोकप्रिय है। अतएव उसका कुछ उल्लेख आवश्यक है। मणि का रूपक इस प्रकार है —

श्री राम की भक्ति चिन्तामणि के समान सुन्दर है। जिस हृदय के भीतर यह

मणि बसती है वह दिन रात प्रकाशित रहता है। उसे दीपक, घी और बत्ती की आवश्यकता नहीं। मोह-रूपी दरिद्रता उसके समीप नहीं आती। लोभ रूपी वायु इस मणि-दीप को नहीं बुझा सकती क्योंकि वह दूसरे की सहायता से प्रकाशित नहीं होती। इसके प्रकाश से अविद्या का घोर तिमिर नष्ट हो जाता है और मदादि पतंगों का समूह पराजित हो जाता है। जिसके हृदय में भक्ति बसती है काम क्रोध लोभ आदि दुष्ट उसके पास नहीं फटकते। उसके लिये विष अमृत और शत्रु मित्र हो जाता है। इस मणि के बिना कोई सुख नहीं पाता। जिसके पास यह मणि होती है उसे मानस रोग नहीं व्यापते और स्वप्न में भी लेश मात्र दुख नहीं होता। जगत् में वे ही मनुष्य चतुरों के शिरोमणि हैं जो भक्ति-मणि के लिए भली-भाँति प्रयत्न करते रहते हैं। यद्यपि संसार में यह मणि प्रकट रूप से विद्यमान है तथापि बिना राम प्रसाद के उसे कोई प्राप्त नहीं कर सकता। उसके पाने के उपाय भी सुगम हैं पर अभागे मनुष्य उन्हें ठुकरा देते हैं। यदि वेद-पुराण पवित्र पर्वत हैं तो रामकथाएँ खानें हैं सन्त पुरुष विशेषज्ञ हैं सुमति कुदाल है ज्ञान और वैराग्य दो नेत्र हैं। जो प्राणी उसे प्रेम के साथ खोजता है वह उस भक्ति मणि को प्राप्त कर लेता है जो सब सुखों का आकर है (रा० ७ २०५, १-८)।

भक्ति राज-पथ है—भगवान् राम अयोध्यावासियों से कहते हैं 'यदि तुम इस लोक और परलोक के सुख का मार्ग चाहते हो तो समझ लो कि वह सुगम और सुखद मार्ग मेरी भक्ति है। ज्ञान अगम्य है, उसकी प्राप्ति में अनेक विघ्न हैं उसका साधन कठिन है और मन चंचल है। यदि अनेक प्रयत्न करने पर कोई ज्ञान प्राप्त कर भी ले किन्तु भक्ति रहित हो तो वह मुझ को प्रिय नहीं लगता। भक्तिमार्ग में न योग की आवश्यकता है न यज्ञ जप तप और उपवास की। इतना आवश्यक है कि मन में कुटिलता न हो स्वभाव सरल हो और जो कुछ मिले उसी से सदा सन्तोष रहे (रा० ७ ४८ १)। भक्ति का अधिकारी कौन हो सकता है? भगवान् राम का उत्तर है कपट छोड़ कर जो भी सर्वभाव से मुझे भजता है वही मुझे परम प्रिय है चाहे वह पुरुष हो स्त्री हो नपुंसक हो अथवा चराचर कोई भी जीव हो' (रा० ७ ११२)। ठीक इसी प्रकार भगवान् कृष्ण ने भी गीता में आश्वासन दिया है (९ ३२)। ज्ञान-मार्ग कृपाण की धारा के समान है इस मार्ग से हटते देर नहीं लगती। जो इस मार्ग को निर्विघ्न निबाह ले जाता है वह परम पद कैवल्य को प्राप्त होता है किन्तु यह प्राप्ति कठिन है। भगवद्भक्ति से तो अनचाहे मुक्ति मिल जाती है (रा० ७ २०१ १ २)। भक्ति के लिये कोई भेदभाव नहीं। राम शबरी से कहते हैं —

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥
रा ३ ४१ २

भक्ति के उपकरण—गोस्वामीजी ने भक्ति के कुछ उपकरणों का उल्लेख किया है यथा स्तुति प्रार्थना नाम-जप निरन्तर सत्संग विनम्रता। मनु और शतरूपा ने 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर मन्त्र का जप किया था (रा १

(७१)। भक्ति का एक अन्य प्रमुख उपकरण सत्संग है जो बिना गुरुत्व के और विप्रपद-पूजा के असंभव है। राम भक्ति शिव-भक्ति के द्वारा प्राप्त होती है जैसा कि स्वयं राम ने घोषित किया है (रा० १ ४, १ ५, २ ७ ६८)। भक्ति-प्रवाह की अवस्थाएँ हैं: विप्रपद-पूजा कर्त्तव्यपालन वर्णाश्रम धर्म विषयों से विरक्ति भगवल्लीला और कृत्यों में अनुराग। भगवत्प्रेम उसी को प्राप्त होता है जो सत्संग करता है, जो अपने कर्त्तव्य में निरत रहता है जो माता पिता और देवताओं की सेवा करता है जो भगवान् के गुणों का गान करते समय उल्लसित होता है तथा जो हृदय का शुद्ध और सरल है (रा० ३ २० २१)।

भक्ति-प्रवाह—भक्ति का प्रवाह इस प्रकार है सन्त समागम के द्वारा राम कथा के लिए प्रोत्साह मिलता है जिससे भ्रम नष्ट हो जाता है। भ्रम के नष्ट होने पर राम के चरणों में दृढ़ अनुराग उत्पन्न होता है। यदि ऐसा अनुराग न हो तो कोई चाहे कितना ही ध्यान प्रार्थना मंत्र और अनासक्ति का उपयोग करे, उसकी पहुँच राम तक नहीं हो सकती (रा० ७ ८५, १)। भक्त को अपनाने से पूर्व राम सर्वप्रथम उसमें अभिमान कभी नहीं रहने देते क्योंकि यह जन्म-मरण का कारण और समस्त क्लेशों तथा शोकों का देने वाला है। इसीलिए भगवान् कृपा करके अपने सेवक के अभिमान को दूर कर देते हैं। ठीक भी है जब बच्चे के शरीर में फोड़ा हो जाता है तो माता अपना हृदय कठोर करके उस फोड़े को चिरवा डालती है। यद्यपि बच्चा दुःख पाता और रोता है, तथापि उसकी माता रोग-शान्ति के निमित्त उस पीड़ा की चिन्ता नहीं करती। इसी प्रकार भगवान् राम भी अपने दास का अभिमान हर कर उसका हित ही करते हैं (रा० ७ ३ ४ १ ८, १०६)।

भक्त और भगवान्—भगवान और भक्त के सम्बन्ध अनेक हैं यथा माता पिता और बच्चे का-सा पति-पत्नी का-सा मित्र-मित्र का सा अथवा सेव्य-सेवक का सा। वल्लभमार्गीय भक्त भगवान् के प्रथमोक्त सम्बन्ध को अधिक प्रशस्त समझते हैं पर वृन्दावन की गोपियाँ जयदेव मीरा और सूफी द्वितीयोक्त मार्ग को। सूरदास का झुकाव तृतीय के लिए है। तुलसीदासजी ने राम को जगत्पिता और सीता को जगन्माता कहा है (रा० १, २७८, १ २) किन्तु उन्हें सेव्य-सेवक भाव ही अधिक रुचता है अर्थात् भगवान् मालिक हैं और वे चाकर हैं। इसी सम्बन्ध के द्वारा भव-बाधा छूट सकती है (रा० ७ २ ४)। किन्तु कुछ वैष्णवों की भाँति गोस्वामीजी भी कहने लगते हैं कि सेवक स्वामी से बड़ा है। काक गरुड़ से कहते हैं

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक रामकर दासा॥ रा० ७ २०५, ८

यह कथन इतना ही रहस्यमय है जितना कि यह कहना—

कहउँ नाम बड़ राम तें निज बिचार अनुसार॥ रा० १ ३२

प्रपत्ति और प्रसाद

(द्वितीय खण्ड)

प्रणति भाव—जिस प्रकार दर्शन आश्चर्य से प्रारम्भ होता है उसी प्रकार धर्म 'अधीनता' की भावना से। ईश्वर धर्मों में अधीनता का रूप है किसी प्रकार का

आदर, श्रद्धा सम्मान प्रशंसा अर्चना पूजा। अपमिश्रित हीनता का भाव निम्नलिखित रूपों में प्रकट होता है : आदर प्रणाम दण्डवत् नमन दैन्य अविरोध आज्ञापालन, प्रार्थना स्तुति स्तव, शरणापत्ति प्रपत्ति आदि।

प्राचीन समर्थन—भारत के प्राचीन साहित्य में प्रपत्ति का बीज विद्यमान है। कुछ वैदिक सूक्तों की प्रार्थना प्रीति की अपेक्षा, अधिकतर भय से प्रेरित है। ऋग्वेद का वरुण-सूक्त इस विषय में उदाहरण है (२ ११, १ १५)। प्रपत्ति का परिणाम प्रसाद है जिसका उद्गम कठ (१ २ २२), मुण्डक (३ २ ३) श्वेताश्वतर (६ १८) नामक उपनिषदों के अनुसार मोक्ष है। ईश्वरीय प्रसाद के लिए प्रपत्ति आवश्यक है जिसका आधार अक्रतु अर्थात् इच्छा की निष्क्रियता है जैसा कि कठ (१ २ २०) और श्वेताश्वतर (३ २०) में उल्लेख है। श्वेताश्वतर में ईश्वरीय प्रसाद के साथ तपस्या का भी महत्त्व है (६ २१) और ईश्वरीय प्रसाद अमृतत्व प्रदान करता है (१, ६)। गीता में अर्जुन भगवान् की शरण में आते और शिष्यवत् उपदेश चाहते हैं (२, ७) भगवान् शरण-स्थान हैं (९ १८)। वे स्वयं घोषणा करते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ गी० १८, ६६

बुद्ध जी के अनुयायी भी कहते थे 'बुद्धं शरणं गच्छामि' 'धम्मं शरणं गच्छामि'। पश्चिम में ईसा मसीह के अनुयायियों ने प्रपत्ति और प्रसाद के सिद्धान्त को और भी आगे बढ़ाया और पूर्व में वल्लभों ने उस पर आग्रह किया। रामानुज और उनके अनुयायियों के मतानुसार नारायण-पत्नी श्री अनुकम्पा का प्रतीक हैं और वे पाप कर्मियों के लिए मध्यस्थता (इंटरसेशन) करती हैं। भक्ति के दोनों मार्गों में जिन्हें वल्लभाचार्यजी ने प्रशस्त समझा है मर्यादा मार्ग तो उन लोगों के लिए है जो श्रुति स्मृति के विधानों का पालन करते हैं और पुष्टि-मार्ग वह प्रेम-मार्ग है जिसका संचालन भगवान् स्वयं करते हैं। वल्लभजी के मत से जीवन का लक्ष्य ही भगवद् भक्ति की प्राप्ति है।

प्रपत्ति का रूप—भगवान् के प्रति प्रेम की अनन्यता ही प्रपत्ति है। प्रपत्ति में सर्व धर्मों का त्याग है और त्यागी को श्रद्धावान् और अनसूय होना चाहिए। ऐसे भक्त को ही भगवान् आश्वासन देते हैं कि मैं सब पापों से तेरी रक्षा कर लूंगा (गी० १८ ६५-७१)। जो लोग ईश्वर के प्रसाद की कामना करते हैं वे पाखण्ड को छोड़ कर शुद्ध हृदय से उसकी शरण में आ जाते हैं। वे उसकी माया का अतिक्रमण करते और निरभिमान हो जाते हैं (भा० २ ७ ४२ ४ २९ ५०)। 'महाभारत' में भी कहा है कि नारायण को वही देख सकता है जिस पर वे कृपा करते हैं।

प्रपत्ति के तत्त्व—भगवत्प्रसाद का साधन प्रपत्ति अथवा शरणापत्ति है। अहिर्बुध्न्य संहिता के अनुसार शरणापत्ति के छः प्रकार होते हैं। (१) भगवान् की इच्छा के अनुकूल वर्तन (२) विरोध का त्याग (३) भगवदीय रक्षा में विश्वास (४) भगवान् को रक्षक रूप से वरण (५) परम दैन्य और नैराश्य एवं (६) आत्म समर्पण

आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा
आत्म-निक्षेप कार्पण्ये षड्विधा शरणागति ।

तुलसीदास और प्रसाद—तुलसीदासजी भगवत्कृपा के लिए निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग करते हैं रामकृपा (रा० १, ७ ४) हरिकृपा (रा० ५, ६ २) रामप्रसाद (रा० ७ १२८ ३ ४) दया और अनुकूलता (रा० ३ ४६, २), छोह (रा० ४ ४, १-२) अनुग्रह (रा० ५, ६ ३)।

राम-कृपा—राम सुन्दर ही नहीं कृपालु भी हैं। वे प्रणतपाल हैं (रा० ६, १२७ २)। भरतजी राम की कृपालुता का वर्णन करते हुए कहते हैं जो क्रूर, कुटिल दुष्ट, कुबुद्धि कलंकी नीच शील रहित नास्तिक और निश्शंक हैं उन्हें भी शरण में सम्मुख आया सुनकर एक बार प्रणाम करने पर ही राम अपना लेते हैं, और शरणागत के दोषों को देखकर भी कभी हृदय में नहीं लाते प्रत्युत उसके गुणों को सुनकर साधु समाज में उनका वर्णन करते हैं। बन्दर आदि पशु नाच में और तोते आदि पक्षी पाठ में प्रवीण हो जाते हैं किन्तु तोते का गुण और पशु के नाचने की गति पढ़ाने वाले और नचाने वाले के अधीन होती है। इसी प्रकार भगवान् अपने भक्तों की बिगड़ी बात सुधार कर और सम्मान प्रदान कर उन्हें साधु-शिरोमणि बना देते हैं। भला राम के अतिरिक्त ऐसा कृपालु और कौन होगा ? (रा० २ २९९ ३ ०)।

गुरु-कृपा से भगवत्कृपा—कौसल्याजी कहती हैं कि गुरु-कृपा से भगवत्कृपा प्राप्त होती है। उनके वचन हैं हे तात मुनि की कृपा से ही ईश्वर ने तुम्हारी बहुत सी बलाओं को टाल दिया। तुम दोनों भाइयों ने यज्ञ की रखवाली करके गुरु के प्रसाद से सब विद्याएँ प्राप्त कीं। तुम्हारे चरणों की धूल लगते ही मुनि-पत्नी अहल्या तर गयी तुम्हारी यह कीर्ति पूर्ण रीति से विश्व में व्याप्त हो गयी। कच्छप की पीठ तथा वज्र और पर्वत से भी कठोर शिवजी के धनुष को तुमने राजाओं के समाज में तोड़ दिया। तदनन्तर तुम विश्व-विजय के यश को और जानकी को प्राप्त कर तथा सब भाइयों को ब्याह कर घर आये। तुम्हारे सभी कर्म ऐसे हैं जो मनुष्य की शक्ति से बाहर हैं वे केवल विश्वामित्रजी की कृपा से ही सम्पन्न हुए हैं। (रा० १ ३५० १ ३)। ब्राह्मण के आशीर्वाद का इतना प्रभाव है भगवत्कृपा का तो कहना क्या ?

भगवत्कृपा का रूप—भगवान् राम स्वयं भरतजी से भगवत्कृपा के माहात्म्य का वर्णन करते हैं यह अविनाशी जीव (अण्डज स्वेदज जरायुज और उद्भिज) चार खानों और चौरासी लाख योनियों में चक्कर लगाता और माया की प्रेरणा से काल कर्म स्वभाव और गुण के वश में होकर, सदा भटकता रहता है। अकारण स्नेह करने वाले भगवान् दया करके कभी-कभी जीव को मनुष्य का शरीर दे देते हैं। यह शरीर भवसागर को पार करने के लिए पोत के समान है ईश-कृपा ही अनुकूल वायु है सद्गुरु कर्णधार है। इस प्रकार दुर्लभ साधन के सुलभ होने से अनेक जीवों ने उसे प्राप्त किया है। जो ऐसे साधन पाकर भी भवसागर से न तरे वह कृतघ्न और मन्द बुद्धि आत्म-हन्ता की गति को प्राप्त होता है (रा० ७ ४३ ६७)। भगवान् राम ने भगवत्कृपा का रहस्य काक से भी प्रकट किया है हे पक्षी सुन मेरी कृपा से अब

समस्त शुभ गुण तेरे हृदय में बसेंगे। भक्ति ज्ञान विज्ञान वैराग्य योग मेरी लीलाएँ और उनके विविध रहस्य—इन सबके भेद को तू मेरे ही प्रसाद से जान जायगा। तुझे साधन का कष्ट नहीं होगा। अब माया से उत्पन्न कोई भ्रम तुझे नहीं व्यापेगा" (रा० ७ १२८ १४)। काक ने यह रहस्य गरुड़ को इस प्रकार बताया "हे तात यद्यपि जीव ईश्वर का अंश है अतएव अविनाशी चेतन निर्मल और सुख राशि है तथापि माया के वश में होकर वह तोते और वानर की भाँति अपने आप बँध जाता है। जड़-चेतन में ग्रन्थि पड़ जाती है। यद्यपि ग्रन्थि मिथ्या ही है तथापि उसके छूटने में कठिनता है। तभी से जीव जन्म-मरण-शील हो गया। अब न तो गाँठ छूटती है और न वह सुखी होता है। वेद-पुराणों ने बहुत से उपाय बताये हैं, पर वह ग्रन्थि छूटती नहीं प्रत्युत अधिकाधिक उलझती ही जाती है। जीव के हृदय में अज्ञानान्धकार विशेष रूप से छा जाता है, जिससे गाँठ दीख नहीं पड़ती अतएव छूटे तो कैसे? जब कभी ईश्वर संयोग उपस्थित कर देते हैं तब कदाचित् वह ग्रन्थि छूट जाती है (रा० ७ ११७ २४)

अस संजोग ईस जब करई। तबहुँ कदाचित् सो निरुअरई॥

यदि 'कदाचित्' से 'शायद' का तात्पर्य ग्रहण किया जाय तो प्रसाद-सिद्धान्त पर ही पानी फिर जायगा अतएव प्रतीत होता है कि गोस्वामी जी ने उसका प्रयोग 'कभी' के अर्थ में किया है जैसा कि वल्लभाचार्य जी ने भी।[1]

तथापि तुलसीदास जी कहते हैं कि राम-कृपा से विवेक उत्पन्न होता है जो काम क्रोध का उन्मूलन कर भवसागर के कष्टों का निवारण करता है। इस कृपा से भगवान् के गुण-श्रवण में रुचि उत्पन्न होती है और उसके द्वारा जीवात्मा इस प्रकार निश्चिन्त रहता है जैसे बालक माता की, पत्नी पति की अथवा भृत्य स्वामी की संरक्षा में। भगवान् ही विवेक प्रदान करते हैं जिसके द्वारा सत्य को ग्रहण करने और मिथ्या को त्यागने की शक्ति प्राप्त होती है। गोस्वामीजी ने राम-कृपा की उपमा सर से की है जहाँ केवल वह पहुँच सकता है जिसे राम-कृपा प्राप्त है। उसी के द्वारा उक्त सर में स्नान कर सम्पूर्ण कठिनाइयों से और त्रितापों से छुटकारा मिलता है (रा० १ २८ ११)। भगवान् शिव उमाजी से कहते हैं कि राम की दया से काम, क्रोध लोभ भ्रान्ति आदि सब नष्ट हो जाते हैं, और वही मनुष्य द्वन्द्व-जाल से पार जाता है जिस पर महामायावी भगवान् अनुकूलता प्रकट करते हैं (रा० १ ४१ २)। हनुमान् भी अपने दोषों को स्वीकार करते हुए भगवान् राम से कहते हैं भगवन्, मुझमें दोष अनेक हैं किन्तु सेवक किसी प्रकार अपने स्वामी से ऊँचा नहीं हो सकता सम्पूर्ण सृष्टि के जीव पहले आपकी माया के बन्धन में आते हैं और पुनः आपकी कृपा से मुक्त हो जाते हैं—

नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहि छोहा॥ रा० ४ ४, १२

---

१ (क) कदाचित् [illegible]। तत्त्वार्थदी० ४?

(ख) [illegible]। [illegible] तत्त्वार्थदीप० प्रकरण १८।

पुष्टिमार्ग का प्रभाव—हनुमान् जी का उक्त वचन हमें पुष्टिमार्ग का, अथवा प्रपत्ति और प्रसाद के उक्त सिद्धान्त का, स्मरण कराता है जिसका प्रभाव कदाचित् तुलसीदासजी पर भी पड़ा हो। कारण यह है कि वल्लभाचार्य जी की एक गद्दी सोरों में भी विद्यमान है, और गोस्वामी जी के चचेरे भाई कृष्ण भक्त महाकवि नन्ददास भी वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित थे। कल्पना है कि इसी प्रभाव के कारण तुलसीदासजी ने 'कृष्णगीतावली' की निम्नलिखित पंक्तियों में आचार्य वल्लभ को गुप्तरीति से श्रद्धांजलि अर्पित की है

गोपाल गोकुल-वल्लभी-प्रिय गोप गोसुत-वल्लभम्
चरनारविंद भजहु भजे भजनीय सुर-मुनि-दुर्लभम्
घनस्याम काम अनेक छवि लोकाभिराम मनोहरम्
किंजल्क-वसन किसोर मूरति भूरि गुन करुनाकरम्॥ २१

मध्यस्थासक्ति अथवा पुण्यकार—कृपा की छोटी भगिनी मध्यस्थासक्ति है। मध्यस्थ दूसरे को प्रार्थना आदि के द्वारा कल्याण प्राप्त कराता है। 'बाइबिल' में भगवत्प्रसाद की एवं पश्चात्ताप-पूर्ण पापियों के लिये ईसामसीह, अब्राहम लॉट मूसा, सैमुअल, डेविड स्टीवन और पॉल की मध्यस्थासक्ति की चर्चा है। 'कुरान' में भी भगवान् को कृपालु और क्षमाशील बताया गया है (सूरा० १ २८, २१)। ईसाई धर्म में मध्यस्थासक्ति अपरोक्ष है किन्तु इस्लाम में परोक्ष है। पहले में तो ईसामसीह अथवा अन्य कोई महापुरुष मध्यस्थ बन सकते हैं किन्तु दूसरे में भगवत्कृपा के निमित्त प्रार्थना में हजरत मोहम्मद का नामोल्लेख ही पर्याप्त है। हिन्दू धर्म में प्रसाद और मध्यस्थासक्ति के सिद्धांत को सर्वमान्यता प्राप्त नहीं। उदाहरण-स्वरूप स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रसाद-सिद्धांत को नहीं मानते, किन्तु रामानुज और वल्लभ दोनों भगवत्कृपा चाहते हैं। भारत में श्री-वैष्णवों ने मध्यस्थासक्ति के सिद्धांत का प्रचार किया है। उनके लिये भगवान् नारायण आर्यसमाज-प्रतिपादित ईश्वर के सदृश हैं किन्तु श्री जी दयालु हैं अतएव भक्त की ओर से नारायण-प्रसाद के लिये मध्यस्थासक्ति करती हैं।

मध्यस्थासक्ति का सिद्धान्त किसी न किसी रूप में वैदिक काल से विद्यमान है। पौरोहित्य के यथार्थ में ही मध्यस्थासक्ति व्याप्त है। संस्कृत भाषा के 'पुरोहित' और 'पुरोधा' शब्दों से उस व्यक्ति का तात्पर्य है जो वकील की भाँति दूसरे के हित को किसी देवता अथवा ईश्वर के समक्ष उपस्थित करे।[1] जिन व्यक्तियों को सांसारिक झंझटों से प्रार्थना के लिये अवकाश नहीं मिल पाता, अथवा जो साधना के लिये उपस्थित नहीं हो सकते उनकी अनुपस्थिति में पुरोहित को उसी प्रकार प्रतिनिधित्व सौंप दिया जाता है जैसे मुख्तारनामा के द्वारा किसी मुख्तार को। यह भी एक प्रकार की मध्यस्थासक्ति ही है। तुलसीदास जी ने 'पुरोहित' शब्द के विपर्यस्त रूप

१ गुरु और गोसाईं की मध्य और भगवान् के बीच मध्यस्थता। 'एन्साइक्लोपीडिया ऑव रिलीजन एण्ड एथिक्स' खंड १०, एल० ए० 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' पृष्ठ ५१४-५१५, जिल्द २१।

उपरोहित का उपयोग शतानन्द जी और वशिष्ठ जी के लिये किया है जो क्रमशः राजा जनक और महाराज दशरथ के पुरोहित थे।

निष्कर्ष—तुलसीदासजी ने कर्म के सिद्धान्त को ईश्वरीय इच्छा के अधीन कर दिया है। उनका विश्वास अन्तरासक्ति में है। उन्होंने यह उल्लेख किया है कि जब भगवान् शिव ने काक भुशुण्ड को शाप दिया तो काक के गुरुदेव ने शिवजी की प्रार्थना की और उनको कृपासिन्धु भगवान् दीन-दयालु कृपालु आदि शब्दों से अभिहित कर, अपने शिष्य के लिये अनुग्रह की कामना की। प्रार्थना स्वीकृत हुई (रा० ७ १०८ १०७-२)। भगवती पार्वती भी आर्त्त भक्तों के लिये भगवान् शिव से अन्तरासक्ति करती हैं। तुलसीदासजी स्वयं अपने लिये रामप्रसाद के निमित्त सीताजी की अन्तरासक्ति की आकांक्षा करते हैं।

मनोविज्ञान

मानव का मन मानसिक रोग और उसका उपचार

प्राक्कथन—भारतीय-दर्शन-शास्त्र में मनोविज्ञान के लिये कोई अलग स्थान न था क्योंकि प्राचीन ऋषि ज्ञान की एकरूपता मानते थे और वे दार्शनिक चर्चा ही न करते अपितु तदनुसार जीवन भी व्यतीत करते थे। वेदों में उपनिषदों में और पुराणों में मनोवैज्ञानिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। उदाहरणतः, ऋग्वेद में मनस् मनीषा अहं, चित्त आदि शब्द देखने में आते हैं और उपनिषदों में सत्व रजस्, तमस् अहंकार चैतस् चैतन्य प्रज्ञा प्रज्ञानघन बुद्धि ज्ञान भक्ति कर्म चित्त चिन्ता जाग्रत-स्थान स्वप्न-स्थान सुषुप्ति-स्थान तुरीय दम इन्द्रिय विषय धृति धारणा ध्यान प्रत्याहार, धृति क्रतु, काम निष्कामत्व मति मनस् मनीषा मनोमय कोष विज्ञानमय कोष आनन्दमय कोष महाभूत मेधा मोह राग वासना विज्ञान वराग्य श्रद्धा संज्ञा संकल्प समाधि सम्मोह स्मृति तर्क। इसमें सन्देह नहीं कि इनका प्रयोग मन-माना और कभी निरर्थक भी हुआ है और इनका अर्थ घटता-बढ़ता रहा है। किन्तु सांख्य योग न्याय आदि षड्दर्शनों में इनके अर्थ अधिक सुनिश्चित हैं। पुराणों ने और महाभारत ने भी मनोविज्ञान के विकास में सहयोग दिया है किन्तु कदाचित् वैष्णव शैव और तांत्रिक विचारधारा से प्रभावित हो सूक्ष्म संकेतों का वर्णन मूर्त शब्दों में हुआ है। गोस्वामीजी से पहले मनोविज्ञान की अवस्था पर विचार करना प्रस्तुत प्रयोजन से बाहर है अतएव उन्हीं के मनोवैज्ञानिक विचारों की चर्चा यहाँ अभीष्ट है।

तुलसी की देन—गोस्वामीजी की देन जहाँ भाषा साहित्य तथा धर्म की दिशा में रही है मनोविज्ञान की दिशा में भी उनकी देन है। वे वे व्यक्ति हैं जिन्होंने हिन्दी में मनोवैज्ञानिक चर्चा सर्वप्रथम की है। और वह भी ऐसी क्षमता से जो अद्यतन पाश्चात्य अनुसंधानों से समर्थित है।

मानस-गुनी—मनोविज्ञान-सम्बन्धी विचारक को मनोवैज्ञानिक अथवा मनोविज्ञानी कहते हैं। गोस्वामीजी ने एक और अच्छा शब्द दिया है वह है मानस-गुनी' यद्यपि कुछ प्रतियों में इसका पाठान्तर 'मानस गुनी' विद्यमान है अतएव कुछ टीकाकार दोनों पाठों से 'महामानस गुनी' का अभिप्राय ग्रहण करते हैं। अस्तु। रावण ने राम के विरुद्ध छल करने का मारीच से प्रस्ताव किया जिससे मारीच को संकोच हुआ। रावण ने उस पर क्रोध किया तो वह सोचने लगा

तब मारीच हृदय अनुमाना। नवहि बिरोधें नहिं कल्याना॥

सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कबि मानस-गुनी॥ रा० ३ २१ २

मन-स्थान—कदाचित् मायवादों अथवा पांचरात्रों से प्रभावित होकर गोस्वामीजी, मन्दोदरी के मुख से राम का वर्णन इस प्रकार से कराते हैं राम भगवान् हैं उनका अहंकार शिव है बुद्धि ब्रह्मा मन चन्द्रमा और चित्त महत् है।

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान् ।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान् ॥ रा० ६ २१

ऋग्वेद और यजु के पुरुष-सूक्त में चन्द्रमा परम पुरुष के मन से उत्पन्न हुआ बताया गया है। मन बुद्धि चित् और अहंकार वाला अन्तःकरण वेदान्त की विचार धारा के अनुसार है।

मन और शरीर—शरीर पर मनोवेगों की अभिव्यक्ति होती है। कुछ उदाहरण ये हैं —जब रामचन्द्र जी अयोध्या से लौट आये तो प्रेम के कारण भरत जी को रोमांच हो गया, नेत्र अश्रुओं से परिपूर्ण हो गए और शरीर काँपने लगा। उस समय राम और भरत का मिलन ऐसा प्रतीत होता था—

जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही ॥ रा० ७ ११ छं १

प्रेम के कारण भरत जी के मुख से शब्द नहीं निकलता था वे गद्गद थे (रा० ७ ११ छं २)। इस अवसर पर राजमाताएँ सोने के थाल से नीराजन कर रही थीं किन्तु उन के अश्रु आनन्दाश्रु से युक्त थे। जनक-जैसे ब्रह्म ज्ञानी भी सीता-विदाई के समय प्रेमाश्रु न रोक सके थे (रा० १, ३७० १)। वास्तव में प्रीति और घृणा छिपाए नहीं छिपतीं (रा० २ २६४ १)।

पशु-पक्षी भी अपने संवेगों को प्रकट करते हैं। विवाह के अनन्तर जब सीताजी अयोध्या आने लगीं तो उनके पालतू तोता मैना भी वियोग-जन्य संवेग प्रकट करने लगे (रा १ ३७ १२) क्योंकि पशु-पक्षी भी अपना हित और अहित समझते हैं (रा २, १६, १ २६४ १)। जब सुमन्त रामचन्द्र जी को छोड़कर अयोध्या लौटने लगे तो उनके घोड़े करुणापूर्वक हिनहिनाने लगे। उनकी आँखों से आँसू बहते थे वे न घास खाते और न पानी पीते किन्तु वन्य हरिण की भाँति शोक से शिथिल होकर तड़फड़ाते पग रथ को खींचना नहीं चाहते थे और जब कोई व्यक्ति राम सीता या लक्ष्मण का नाम लेता तो वे तुरन्त हिनहिनाकर उसकी ओर देखने लगते (रा० २ १४२ ४ १४३ १४)।

तुलसी को इस बात में विश्वास रहा होगा कि हम जो कर्म करते हैं उसका संस्कार (अथवा पश्चिमी मनोविज्ञान का ऐनग्रेम) मस्तिष्क पर पड़ता है। रावण ने शिवजी को प्रसन्न करने के लिए अपने हाथों सिर काट-काट कर अग्नि में होम कर दिये थे और उन मस्तकों के जलते समय उसने अपने ललाट पर लिखे हुए विधाता के अक्षर देखे थे।

जरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला। बिधि के लिखे अंक निज भाला ॥
रा० ६ ४३ १

कैकेयी ने मंथरा से लिये कहा था कि काने लंगड़े और कुबड़े लोग कुटिल और कुचाली होते हैं (रा० २ १२)। ऐसी अमहीमता जन्म से कुसंगता से या ग्रन्थियों से संभव है जैसा कि आधुनिक मनोविश्लेषक समझते हैं।

चार अवस्थाएँ—तुलसी ने जीव की परम्परागत चार अवस्थाओं का उल्लेख किया है। सोते समय जीव भगवान् शिव के समान है स्वप्न में सक्रिय है और जागरित अवस्था में सुख-दु ख का अनुभव कर दीन-मलीन होता है। जागरित अवस्था को प्राप्त होते ही स्वप्न असत् प्रतीत होता है। स्वप्न में भिखारी राजा और राजा स्वर्गेश हो जाता है किन्तु जागने पर न किसी को हानि होती है और न किसी को लाभ।

इसी प्रकार परमार्थ की प्राप्ति पर व्यवहार असत् प्रतीत होता है (रा० २, ६१ १ १)। तुलसीदासजी को स्वप्नों की भविष्य-बोधकता में विश्वास है। राम-वनवास से पूर्व कैकेयी को (रा २, २ ४), मातुल-गृह में पिता की मृत्यु से पूर्व भरत को (रा० २ १५७ १) और चित्रकूट में भरत के आगमन से पूर्व सीताजी को दुःस्वप्न हुआ था (रा० २, २२६ २)। त्रिजटा राक्षसी ने रावण-मृत्यु-विषयक स्वप्न का उल्लेख कर जनक-नन्दिनी को सान्त्वना प्रदान की थी (रा० ५, १० १४) उसने स्वप्न में देखा था कि किसी बन्दर ने लंका जला दी राक्षसों की सारी सेना मार डाली नंगा रावण गधे पर सवार, दक्षिण दिशा को जा रहा था, उसके सिर मुंडे हुए और बीसों भुजाएँ कटी हुई थीं। उस राक्षसी ने यह भविष्यवाणी भी की थी कि यह स्वप्न चार दिन के पश्चात् सत्य हो कर रहेगा।

यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गए दिन चारी॥

शास्त्रों में दुःस्वप्नों की शान्ति के लिए उपायों का विधान है गोस्वामीजी ने इस विषय में कुछ शान्ति-कर्मों का उल्लेख किया है जो सभी विफल सिद्ध हुए। मैंने 'ड्रीम्स : मेनली फ्रॉम इण्डियन पॉइन्ट ऑव व्यू'[1] नामक लेख में स्वप्न के कारणों और शान्ति-कार्यों पर प्रकाश डाला है अतएव यहाँ अधिक चर्चा अनावश्यक है। उक्त तीनों अवस्थाओं के अतिरिक्त चतुर्थ अर्थात् तुरीयावस्था का भी नामोल्लेख हुआ है (रा० ७ २००)।

समय का अनुभव — पूर्व रूप—गोस्वामीजी काल को अनुभव-पूर्व मानते हैं, (दो० १७७)। ईश्वर काल से परे है काल भगवान् से उत्पन्न होता है और भगवान् में ही समा जाता है। रामजी 'काल करम सुभाउ गुन भच्छक' (रा० ७ ४७ ४) हैं। उनका भ्रुकुटि काल है, तथा लव निमिष, परमाणु वर्ष युग और कल्प उनके बाण हैं (रा० ६ १ दो० १३०)। साठ लव का एक निमेष साठ निमेष का एक परमाणु साठ परमाणु का एक पल, साठ पल की एक घड़ी साठ घड़ी का एक दिन तीस दिन का एक मास बारह मास का एक वर्ष बारह सहस्र वर्ष की एक चतुर्युगी—अर्थात् ४८०० वर्ष का कृत ३६०० का त्रेता २४०० का द्वापर, १२०० का कलियुग होता है। ये सब दिव्य वर्ष हैं। मनुष्यों के ३६० वर्ष देवताओं के एक वर्ष के समान हैं। इस प्रकार दिव्य चतुर्युगी को महायुग कहते हैं जिसे मन्वन्तर भी कहते हैं। २००० मन्वन्तर अर्थात् आठ अरब चौंसठ करोड़ मानव वर्षों का एक कल्प होता है जो ब्रह्मा का अहोरात्र है। ब्रह्माजी के सौ वर्षों का महाकल्प होता है। समय की यह कल्पना अनुभव पूर्व है।

समय और अनुभव—किन्तु गोस्वामी जी जानते हैं कि समय सापेक्ष भी है। काक ने गरुड़ से बतलाया कि किस प्रकार दो घड़ी में सौ कल्प बीते और कल्पनातीत दूरी पार की गयी। उनका अनुभव था : राम के उदर में करोड़ों ब्रह्माण्ड विचित्र लोक, करोड़ों ब्रह्मा और शिव अगणित तारा-गण तथा सूर्य और चन्द्रमा अगणित लोक पाल एवं यम और काल अगणित विशाल पर्वत और भूमियाँ असंख्य समुद्र नदी, तालाब वन, देवता मुनि सिद्ध नाग मनुष्य और किन्नर देख गये जो पहले कभी न देखे थे, न सुने थे और जो मन की कल्पना में नहीं समा सकते थे। वे एक-एक ब्रह्माण्ड

---

१ इंडियन फिलॉसॉफिकल कांग्रेस, १९३६ ई०।

में एक-एक सौ वर्ष रहे और इस प्रकार अनेक ब्रह्माण्डों में घूमते फिरे। प्रत्येक लोक में भिन्न-भिन्न ब्रह्मा, भिन्न-भिन्न विष्णु, भिन्न-भिन्न शिव एवं भिन्न-भिन्न मनु, दिक्पाल, मनुष्य-गन्धर्व, भूत-वेताल, किन्नर, राक्षस, पशु-पक्षी आदि थे। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में उन्होंने अपना रूप देखा, अनेक अनुपम वस्तुएँ देखीं, प्रत्येक भुवन में न्यारी अवधपुरी, भिन्न सरयू और भिन्न प्रकार के नर-नारी। वहाँ तक दशरथ जी, कौसल्या जी और भरत आदि भाई भी भिन्न भिन्न रूपों के थे। वहाँ उन्होंने रामावतार और उनकी बाल लीलाएँ भी देखीं किन्तु भगवान् रामचन्द्र दूसरी प्रकार के न थे। इस प्रकार अनेक ब्रह्माण्डों में घूमते-घूमते मानों सौ कल्प बीत गये, किन्तु इस सब अनुभव में केवल अट्ठाईस मिनट ही लगे थे (रा० ७ ११८ १२४)। जाग्रत और स्वप्न के ज्ञान में तारतम्य है। स्वप्नावस्था में तो समय बड़ा अवकीला हो जाता है। 'योग वाशिष्ठ' में लिखा है कि मनुजी का जीवन-काल ब्रह्माजी का क्षण-मात्र है और ब्रह्मा जी का जीवन काल विष्णुजी का एक दिवस है तथा विष्णुजी का सम्पूर्ण-युग भगवान् शिव का केवल एक दिन है।[1]

वंशानुक्रम और परिस्थिति—तुलसीदास निश्चय ही वंशानुक्रम में विश्वास करते हैं। उन्होंने लगभग अपने सभी ग्रन्थों में वर्णाश्रम सिद्धान्त को माना है। पहले कहा जा चुका है कि ऋग्वेद (१० ९० १२), यजुर्वेद (३१ ११) और भगवद्गीता (४, १३) वर्णव्यवस्था को जन्म से मानते हैं जैसा कि 'प्रजापतय' और 'सृष्टम्' इन दो शब्दों से विदित होता है। अतएव तुलसीदासजी के अनुसार गुणशील-हीन किन्तु जन्म जात विप्र गुण-ज्ञान प्रवीण-शूद्र से अधिक श्रेष्ठ है

पूजिय विप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना। रा० ३, ४२ १

तथापि वे यह मानते प्रतीत होते हैं कि कतिपय अर्जित गुणों का वंशानुक्रमण नहीं होता। अतएव यह आवश्यक नहीं कि भले का पुत्र भला ही हो क्योंकि यह संभव है कि भले का पुत्र बुरा, दानी का कृपण और धर्मात्मा का पापी हो, जिस प्रकार अग्नि का धूम

होइ भले के अनभलो होइ दानि के सूम
होइ कपूत सपूत के ज्यों पावक में धूम॥ दो० ३९८

गोस्वामीजी वातावरण की भी महिमा मानते हैं जिसके कारण मनुष्य भला-बुरा अथवा बड़ा-छोटा बन जाता है

तुलसी भलो सुसंग ते पोच कुसंगति होइ॥ दो० ३९८
गु० संगति गुन होइ सो लघु संगति लघु नाम॥ दो० ३९९
तुलसी गुन लघुता लहत लघु संगति परिनाम॥ दो० ३९०
अति कुसंग बहु सुगमता ताको नास निदान॥ दो० ३९२

मूल प्रवृत्तियाँ—तुलसीदासजी ने कुछ मूल प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है जो सभी मनुष्यों में जन्मजात हैं। वे हैं काम, क्रोध, अभिमान, लोभ, निद्रा, भय, क्षुधा और पिपासा (वि० १७२ २ १८७ २ २०१ ४, २६० २)। यह वर्णन संस्कृत के निम्नलिखित श्लोक से साम्य रखता है—

---

[1] द योग वशिष्ठ एण्ड इट्स फिलॉसफी, डॉ० भीखनलाल आत्रेय, पृ० ३४।

इसी प्रकार परमार्थ की प्राप्ति पर व्यवहार असद् प्रतीत होता है (रा० २, ९१, १ ३)। तुलसीदासजी को स्वप्नों की भविष्य-बोधकता में विश्वास है। राम-वनवास से पूर्व कैकेयी को (रा० २ २० ४) मातुल-गृह में पिता की मृत्यु से पूर्व भरत को (रा० २ १५७ ३) और चित्रकूट में भरत के आगमन से पूर्व सीताजी को दुःस्वप्न हुआ था (रा० २, २२६, २)। त्रिजटा राक्षसी ने रावण-मृत्यु-विषयक स्वप्न का उल्लेख कर जनक-नन्दिनी को सान्त्वना प्रदान की थी (रा० ५, १०, १४) उसने स्वप्न में देखा था कि किसी बन्दर ने लंका जला दी राक्षसों की सारी सेना मार डाली गयी रावण नंगा, गधे पर सवार, दक्षिण दिशा को जा रहा था, उसके सिर मुंडे हुए और बीसों भुजाएँ कटी हुई थीं। उस राक्षसी ने यह भविष्यवाणी भी की थी कि यह स्वप्न चार दिन के पश्चात् सत्य हो कर रहेगा।

यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गए दिन चारी॥

शास्त्रों में दुःस्वप्नों की शान्ति के लिए उपायों का विधान है गोस्वामीजी ने इस विषय में कुछ शान्ति-कर्मों का उल्लेख किया है जो सभी निष्फल सिद्ध हुए। मैंने 'ड्रीम्स मेन्सी फ्रोम इण्डियन पोइन्ट ऑव व्यू'[1] नामक लेख में स्वप्न के छ: कारणों और शान्ति-कार्यों पर प्रकाश डाला है अतएव यहाँ अधिक चर्चा अनावश्यक है। उक्त तीनों अवस्थाओं के अतिरिक्त चतुर्थ अर्थात् तुरीयावस्था का भी नामोल्लेख हुआ है (रा० ७ २००)।

समय का अनुभव—पूर्व क्रम—गोस्वामीजी काल को अनुभव-पूर्व मानते हैं, (दो० १७७)। ईश्वर काल से परे है काल भगवान् से उत्पन्न होता है और भगवान् में ही समा जाता है। रामजी 'काल करम सुभाउ गुन भच्छक' (रा० ७ ३७ ४) हैं। उनका अनुप काल है, तथा लव निमिष, परमाणु वर्ष युग और कल्प उनके बाण हैं (रा० ६ १ दो० १६०)। साठ लव का एक निमेष साठ निमेष का एक परमाणु साठ परमाणु का एक पल, साठ पल की एक घड़ी साठ घड़ी का एक दिन तीस दिन का एक मास बारह मास का एक वर्ष बारह सहस्र वर्ष की एक चतुर्युगी—अर्थात् ४८०० वर्ष का कृत ३६०० का त्रेता २४०० का द्वापर, १२०० का कलियुग होता है। ये सब दिव्य वर्ष हैं। मनुष्यों के ३६० वर्ष देवताओं के एक वर्ष के समान हैं। इस प्रकार दिव्य चतुर्युगी को महायुग कहते हैं जिसे मन्वन्तर भी कहते हैं। २००० मन्वन्तर अर्थात् आठ अरब चौंसठ करोड़ मानव वर्षों का एक कल्प होता है जो ब्रह्मा का अहोरात्र है। ब्रह्माजी के सौ वर्षों का महाकल्प होता है। समय की यह कल्पना अनुभव पूर्व है।

समय और अनुभव—किन्तु गोस्वामी जी जानते हैं कि समय सापेक्ष भी है। काक ने गरुड़ से बतलाया कि किस प्रकार दो घड़ी में सौ कल्प बीते और कल्पनातीत दूरी पार की गयी। उनका अनुभव था : राम के उदर में करोड़ों ब्रह्माण्ड विविध लोक, करोड़ों ब्रह्मा और शिव अगणित तारा-गण तथा सूर्य और चन्द्रमा अगणित लोक पाल एवं यम और काल अगणित विशाल पर्वत और भूमियाँ असंख्य समुद्र नदी, तालाब, वन, देवता मुनि सिद्ध, नाग, मनुष्य और किन्नर देखे गए जो पहले कभी न देखे थे न सुने थे और जो मन की कल्पना में नहीं समा सकते थ। वे एक-एक ब्रह्माण्ड

1 ईस्टर्न फिलॉसॉफिकल कॉंग्रेस १९३६ ई०।

में एक-एक सौ वर्ष रहे और इस प्रकार अनेक ब्रह्माण्डों में घूमते फिरे। प्रत्येक लोक में भिन्न-भिन्न ब्रह्मा भिन्न-भिन्न विष्णु, भिन्न-भिन्न शिव एवं भिन्न-भिन्न मनु, दिक्पाल मनुष्य-गंधर्व भूत-वेताल किन्नर राक्षस पशु-पक्षी आदि थे। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में उन्होंने अपना रूप देखा अनेक अनुपम वस्तुएँ देखीं प्रत्येक भुवन में न्यारी अवधपुरी, भिन्न सरयू और भिन्न प्रकार के नर-नारी यहाँ तक दशरथ जी कौसल्या जी और भरत आदि भाई भी भिन्न भिन्न रूपों के थे वहाँ उन्होंने रामावतार और उनकी बाल लीलाएँ भी देखीं किन्तु भगवान् रामचन्द्र दूसरी प्रकार के न थे। इस प्रकार अनेक ब्रह्माण्डों में घूमते-घूमते मानों सौ कल्प बीत गये किन्तु इस सब अनुभव में केवल अड़तालीस मिनट ही लगे थे (रा० ७ ११८ १२४)। जाग्रत और स्वप्न के काल में तारतम्य है। स्वप्नावस्था में तो समय बड़ा लचकीला हो जाता है। 'योग वासिष्ठ' में लिखा है कि मनुजी का जीवन-काल ब्रह्माजी का क्षण-मात्र है और ब्रह्मा जी का जीवन-काल विष्णुजी का एक दिवस है तथा विष्णुजी का सम्पूर्ण-युग भगवान् शिव का केवल एक दिन है।'

वंशानुक्रम और परिस्थिति—तुलसीदास निश्चय ही वंशानुक्रम में विश्वास करते हैं। उन्होंने सर्वत्र अपने सभी ग्रन्थों में वर्णाश्रम सिद्धान्त को माना है। पहले कहा जा चुका है कि ऋग्वेद (१० ९० १२), यजुर्वेद (३१ ११) और भगवद्गीता (४ १३) वर्णव्यवस्था को जन्म से मानते हैं जैसा कि 'अजायत' और 'सृष्टम्' इन दो शब्दों से विदित होता है। अतएव तुलसीदासजी के अनुसार गुणशील-हीन किन्तु जन्म से ब्राह्मण शूद्र से अधिक श्रेष्ठ है

पूजिय विप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना ॥ रा० ३ ४२ १

तथापि वे यह मानते प्रतीत होते हैं कि कतिपय अर्जित गुणों का वंशानुक्रमण नहीं होता। अतएव यह आवश्यक नहीं कि भले का पुत्र भला ही हो क्योंकि यह संभव है कि भले का पुत्र बुरा दानी का कृपण और धर्मात्मा का पापी हो जिस प्रकार अग्नि का धूम

होइ भले के अनभलो होइ दानि के सूम
होइ कपूत सपूत के ज्यों पावक में धूम ॥ दो० ११८

गोस्वामीजी वातावरण की भी महिमा जानते हैं जिसके कारण मनुष्य भला-बुरा अथवा बड़ा-छोटा बन जाता है

तुलसी भलो सुसंग तें पोच कुसंगति होइ ॥ दो० ३२८
गुरु संगति गुरु होइ सो लघु संगति लघु नाम ॥ दो० ३२९
तुलसी गुरु लघुता लहत लघु संगति परिनाम ॥ दो० ३९
बसि कुसंग चह सुजनता ताकी आस निरास ॥ दो० ३३२

मूल प्रवृत्तियाँ—तुलसीदासजी ने कुछ मूल प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है जो सभी मनुष्यों में जन्मजात हैं। वे हैं काम क्रोध अभिमान लोभ निद्रा भय क्षुधा और पिपासा (वि० १०१ २ १८७ २ २ १ ४ २१० २)। यह वर्णन संस्कृत के निम्नलिखित श्लोक से साम्य रखता है—

१ द योग वासिष्ठ एण्ड इट्स फिलॉसफी, डॉ० भीखनलाल आत्रेय

ज्ञानी तपस्वी, शूर कवि, विद्वान् और गुणी है जिसकी विडम्बना लोभ ने न की हो। लक्ष्मी के मद ने किसको कुटिल नहीं बना दिया और प्रभुता ने किसको बहरा नहीं कर दिया ? ऐसा कौन है जो मृगनयनी के नेत्र-बाण से बिद्ध न हुआ हो जिसे त्रिगुणों का सन्निपात न हुआ हो जिसे मद और मान ने अछूता छोड़ा हो जिसे यौवन के ज्वर ने आपे से बाहर न किया हो जिसके यश का नाश ममता ने न किया हो, जिसे मत्सर ने कलंक न लगाया हो, जिसे शोक-पवन ने विचलित न कर दिया हो और जिसे चिन्ता-सर्पिणी ने न डसा हो (रा० ७ ६६ ४१०१ २)।

चिन्ता की एक भगिनी है जिसका नाम माया देवी है। वह बड़ी विचित्र है क्योंकि जो उसकी सेवा करता है उसे तो शोक और सन्ताप प्राप्त होता है और जो उससे बचता है उसे सुख (दो० २२८)। माया से आवश्यकताओं की उत्पत्ति होती है। ऐसा कौन धीर पुरुष है जिसके शरीर-रूपी काष्ठ में मनोरथ रूपी घुन न लगा हो जिसे पुत्र धन और लोक-प्रतिष्ठा की प्रबल इच्छाओं ने मलीन न कर दिया हो ? माया का यह परिवार महाबली और अपार है (रा० ७ १०१ ३-४)।

माया की सेना विशाल और विश्व-व्याप्त है। इसके सेनापति काम क्रोध और लोभ हैं तथा दम्भ कपट, और पाषण्ड योद्धा हैं (रा० ७ १ २ दो० २६१)। तुलसीदासजी का यह अभिप्राय है कि माया महासेनापति है जिसके नीचे काम क्रोध कपट पाषण्ड नामक प्रमुख योद्धा हैं, प्रवृत्तियाँ और संवेग सिपाही हैं। मेरी कल्पना से एतम् यम परामर्शदाता हैं।

यद्यपि माया समस्त संवेगों और प्रवृत्तियों का स्रोत है तथापि तुलसीदासजी उसका तादात्म्य मोह से कर देते हैं जो काम-लोभ के अनुकूल है माया के अधीन है। माया-रूपी मोह की एक प्रबल धारा है जो काम क्रोध लोभ और मद से संकुल है (रा १ २६ दो० २६६)। मोह की उपमा विपिन-से और नारी की ऋतुओं से दी गयी है (रा १ २५, १ ३)। मोह के कारण मनुष्य सन्मार्ग से विचलित हो स्वार्थी बन जाता और अनेक पापापराध करके परलोक को नष्ट कर लेता है (रा० ७ ६३ २)। मोह उस हृदय में उत्पन्न होता है जो ज्ञान और वैराग्य से हीन है (रा० १ १२६ १)। लोभ कदाचित् अधिक माया के 'मद' अन्य को न्यूनतम करता और अपने व्यापक रूप में प्रेम और परहित को भी समाविष्ट कर लेता है। लाभ से लोभ की वृद्धि होती (रा० १, २१० १) और प्रभुता से मद की उत्पत्ति होती है। प्रभुता पाकर किस को मद नहीं होता (रा १ ८१ ४) ? मत्सर का निवास हृदय में तब तक रहता है जब तक धनुर्धारी राम का प्रवेश नहीं होता (रा० ५ ४७ १)। सज्जन कभी परद्रोह नहीं करते (रा० ७, ६४ १)। रात-रूप काम के जो उलूक ममता रात्रि में रामभक्ति-सूर्योदय तक उड़ते-बोलते हैं (रा० ५, ४७ २)। मान अभिमान अथवा गर्व दुष्ट-समुदाय का सदस्य है जो हृदय को कलुषित करता, और मोह की वृद्धि करता रहता है (रा० १ १२६ १ २)। मिथ्या मायन और कपट का बड़ी प्रभाव प्रेम पर पड़ता है जो अम्ल का दुग्ध पर। संशय और शोक अज्ञान उत्पन्न करते हैं (रा० ७ १२, ४)। स्वार्थ से मोह और मोह से पाप (रा० ७ ६१, २) होता है। स्वार्थी मनुष्य लपट कामी क्रोधी और लोभी होते और पारिवारिक कलह को

जन्म देते हैं वे माता पिता गुरु और विप्र की बात नहीं सुनते अतएव स्वयं नष्ट होते और दूसरे का नाश करते हैं (रा० ७ ९२ २१)। यह संसार स्वार्थी मित्रों से परिपूर्ण है माता-पिता तक स्वार्थ रत होते हैं (रा० ७ ९९ २)। स्वार्थ सम्पूर्ण अवगुणों का मूल है।

स्थायी भाव—तुलसीदास ने नव-रस का उल्लेख किया है (वि १९६ १)। परम्परा से नव-रस माने गये हैं वे ये हैं —शृंगार करुण शान्त हास्य वीर भयानक बीभत्स रौद्र और अद्भुत। कुछ लोगों ने भक्ति और वात्सल्य को भी माना है यद्यपि साधारणतः उनका समावेश शृंगार में किया जा सकता है। गोस्वामीजी ने प्रीति वात्सल्य और परहित का विशेष उल्लेख किया है। दान का प्रारम्भ घर से होता है अतएव माता के वात्सल्य का ही परहित अथवा प्रेममात्र में परिपाक हो जाता है। कौशल्या तथा अन्य माताओं ने राम के वन से लौटने पर ऐसा प्रेम प्रकट किया जैसा गायें अपने नवजात बछड़ों के लिये (रा० ७ १४ ५)। वात्सल्य से वशीभूत हो वे यह नहीं समझ पाती थीं कि मेरे पुत्रों ने दानव दल का संहार किस प्रकार किया होगा (रा० ७ १६ ४)। वात्सल्य और सन्तति-कामना से प्रेरित हो मनु और शतरूपा ने यह वरदान माँगा था कि कि भगवान् हमारे पुत्र रूप से उत्पन्न हों (रा० १ १७७)। यह है वात्सल्य की महिमा। वात्सल्य का अन्तिम रूप परहित है, जो अनुपम पुण्य है (रा० ७ ४१ १) जिसमें यह भावना विद्यमान है उसे इस संसार में कुछ भी अप्राप्य नहीं है उसकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं और वह देह-त्याग के पश्चात् स्वर्ग में निवास करता है (रा० ३ ३१ ५)।

प्रेम रस—प्रेम और शृंगार का ऐसा ही निकट सम्बन्ध है जैसा राम और भरत का (रा० ७ ११ छं० १) किन्तु यह भी ठीक है कि कभी-कभी बिना भय के प्रीति नहीं होती (रा० ५ ५८) यद्यपि मेरे विचार से यह बात शुद्ध प्रेम में लागू नहीं है क्योंकि किसी भी सांसारिक चिन्ता और विचार से शुद्ध प्रेम प्रेरित नहीं होता यथा जब राम ने वानरों पर परम प्रीति प्रदर्शित की तो वे यह भूल गये थे कि हम कौन हैं कहाँ थे और कहाँ से आये हैं (रा० ७ १२ १)? उन्हें अपने घर नितान्त विस्मृत हो गये थे यहाँ तक कि स्वप्न में भी उनका स्मरण न होता था क्योंकि भगवच्चरण में उनका प्रेम ऐसा ही था (रा० ७ १४ १)। भय संकोच और प्रेम के भाव एकत्र हो सकते हैं इसका अनुभव सती को तब हुआ था जब वह राम की परीक्षा लेकर पितृ-गृह के लिये प्रस्थान करने वाली थी (रा १ ८४ ४)। प्रेम और प्रतीति भी साथ रहते हैं। गठबन्धन (अर्थात् विवाह) की अपेक्षा विश्वास अधिक श्रेष्ठ है और वह इस प्रकार बढ़ता है जैसे भूमि में अनाज (दो ४२३)। स्त्रियाँ तो अपने घर की भित्ति पर ऐंपन से अपने हाथ का थापा रख देतीं और उसकी पूजा करती हैं जिससे उनकी सारी मनःकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं यह प्रेम और प्रतीति का फल है (दो ४२४)। प्रेम सब प्रकार के विचार और हेतुओं से विमुक्त रहता है क्योंकि वह शुद्ध है और स्वयं साध्य है। शुद्ध प्रेम या तो अनन्य होता है या साम्य। अनन्य प्रेम शंका रिक्ता से रहित और केवल एक-विषय-परक होता है। पुनश्च वह या तो एकांगी होता है या पारस्परिक। तुलसीदासजी ने अनन्य एवं एकांगी प्रेम के लिये चातक उर्ग मत्स्य और भ्रमर के उदाहरण दिये हैं। चातक स्वामि-व्रत के अतिरिक्त

और किसी जल को स्वीकार नहीं करता सर्प सपेरे की बीन को आत्मसमर्पण कर मणि रहित हो जाता है मछली मर जाती है परन्तु पानी का संग नहीं छोड़ती, हरिण व्याध के बाण को अपना शरीर भेंट कर देता है, (दो० १०८ ३१२,३१७-३२० रा० २, २०१, २ १२५)। इन प्राणियों के लिये प्रेम साधन नहीं साध्य है किन्तु कामी के लिये नारी साधन-मात्र है। ऐसी गर्हित दृष्टि का अस्त तलाक या अन्य किसी प्रकार के वियोग में होता है। प्रेमियों का आदर्श-मिलन तन्मयता है जैसे दूध और जल की (रा० १ ८१)। हितकारी वचन बैर का उन्मूलन करता और परहित प्रेम की जड़ जमा देता है (दो० ४१४)।

काम—तुलसीदासजी ने, आधुनिक मनोविश्लेषण के जन्मदाता सिगमण्ड फ्रॉयड की अपेक्षा काम अर्थात् यौन प्रवृत्ति पर कुछ कम ध्यान नहीं दिया। 'काम' शब्द में सब प्रकार की कामनाएँ निहित हैं। ऋग्वेद में लिखा है

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसोरेतः प्रथमं यदासीत्॥ १० १२९ ४

अर्थात् आरम्भ में काम उत्पन्न हुआ जो मन का प्रथम बीज था। उपनिषदों में भी काम शब्द इच्छा के अर्थ में प्रयुक्त है, यथा आत्मेच्छ (१ ५, २)। काम का यह रूप अयौन था। छान्दोग्य का वचन है

सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय ६ २ ३

यहाँ काम का रूप यौन और अयौन के मध्यस्थ है। परमात्मा को अकेलापन अखरा अतएव उन्होंने दूसरे की इच्छा की। वे नारी बन गये और उन्होंने पति-पत्नी का रूप ग्रहण किया। उससे मानवों की सृष्टि हुई (बृहदारण्यक १ ४ ३)। काम का यह रूप यौन है। मूर्त रूप में काम कामदेव हो गये। चार पदार्थों में काम का स्थान है और इस पर अनेक ग्रन्थ हैं जैसे 'रति रहस्य' रति मंजरी 'रस मंजरी' अनंग रंग'। महर्षि वात्स्यायन ने काम की जो परिभाषा दी है वह आधुनिक युग के हैवलोक एलिस की से बहुत-कुछ मिलती है।

कामदेव के अधीन कौन नहीं?—कामदेव सब पर प्रभाव डालते हैं। कौन उनके अधीन नहीं हो जाता (रा० १ १२५ ४)। उन्होंने पुष्पवाटिका में तथा सीता हरण के पश्चात् राम को वशीभूत किया था (रा० १ २६१ १ ३ रा ३ ४२ २)। राम और सीता को संयोग और वियोग में जो प्रेम की अनुभूति हुई थी तुलसीदास ने उसकी पुष्टि की है (रा० १ २६१ ४ २६६ २६८, ५, १४ १२)। अपराधिनी कैकेयी के सम्मुख दशरथ अवाक थे क्योंकि कामदेव ने उन्हें जर्जर कर दिया था (रा २, २५ दो०)। नारद जी ने एक बार भगवान् शंकर से यह आत्मश्लाघा की थी कि मैंने काम पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है किन्तु वे भी एक कन्या के फेर में पड़ गये (रा० १ १२७ ४)।

कामदेव अन्धे हैं—प्रेमी प्रमत्त रूप से, किन्तु मूर्खतावश, अपने गुणों को तथा अपनी प्रेयसी के सौन्दर्य को औचित्य से अधिक मूल्यवान् समझता है। वानर मुख नारद जी स्वयंवर में बैठे हुए अपने को सर्वांगसुन्दर समझ रहे थे (रा० १ १३१ १३२ १)। अतएव तुलसीदासजी मानते हैं कि प्रेम और बैर दोनों ही अन्धे हैं

तुलसी बैर सनेह दोउ रहित बिलोचन चारि ॥ दो० २२६

गोस्वामीजी से मतीमान् किन्तु समकालीन, इंगलैण्ड के महाकवि शेक्सपीयर की भी उक्ति ऐसी ही है

लव लुक्स नॉट विद दि आइज बट विद द माइंड,
एण्ड देयरफ़ोर इज विंग्ड क्यूपिड पेंटेड ब्लाइंड।

विवेक-हर काम—विषय-जन्य सुख विवेक को हर लेते हैं। इस सम्बन्ध में सुग्रीव ने हनुमान् जी से (रा० ४ २१ २) और लक्ष्मण जी से भी स्वीकार किया है कि विषय के समान कोई मद नहीं है क्योंकि यह क्षण-मात्र में मुनियों के मन में भी मोह उत्पन्न कर देता है (रा० ४ २२, ४)। तदनन्तर वे राम जी से कहते हैं कि देवता मनुष्य और मुनि सभी व्यक्ति विषयों के वश हैं मैं तो पामर पशु और पशुओं में भी अति कामी बन्दर हूँ। वास्तव में वही जागता है जिसे स्त्री का नयन-बाण नहीं लगता (रा० ४, २१, २)। जो जीवों के द्रोह में रत मोह के वश राम से विमुख और काम में आसक्त है, क्या उसे स्वप्न में भी सम्पत्ति और शान्ति प्राप्त हो सकती है (रा० ६ १०१)? ज्ञान-निधान मुनि भी मृगनयनी के विधु-मुख को देखकर विवश हो जाते हैं (रा ७ ११५)। जो पुरुष नारी का त्याग कर सकते हैं वे विरक्त और मतिधीर होते हैं विषयासक्त कामी पुरुष ऐसा नहीं कर सकते (रा ७ ११४)।

काम का प्रतिकार—कामी के वचनों से सन्यासी ऐसी अविचलित रहती है जैसे शंकर जी का धनुष (रा० १ २८१ १)। मोह का उतार है ज्ञान और क्षमा शक्ति का अर्जन। विष्णु जी ने नारद जी से कहा था कि ज्ञान और विराग से हीन हृदय में मोह व्याप्त होता है। मतिधीर एवं ब्रह्मचर्यव्रत निरत पुरुषों को काम क्या कष्ट दे सकता है (रा० १ १२६ १)? निस्सन्देह संन्यासी का अपरिहार्य लक्षण विराग है (रा० १ २८१ २)। पार्वती जी ने शंकर जी की प्राप्ति के निमित्त सहस्रों वर्ष तक निराहार घोर तपस्या की तथापि उनका प्रेम कामना-हीन था। जब समझाने के लिये सप्तर्षि उनके पास पहुँचे और बोले कि शंकर जी ने कामदेव को भस्म कर दिया है अतएव आपकी तपस्या व्यर्थ है तो वे ऋषियों से बोलीं आपके इस कथन से कि महादेव जी ने कामदेव को भस्मसात् कर दिया है यह प्रतीत होता है कि वे परिवर्तनशील हैं किन्तु मैं तो उन्हें सदा से जानती हूँ वे निर्विकार योगी हैं। मैंने मनसा वाचा और कर्मणा उनकी सेवा की है वे कृपालु हैं अतएव मेरे प्रण का अवश्य पूरा करेंगे। आपका यह कथन कि उन्होंने कामदेव को नष्ट कर दिया है आपकी विवेकशून्यता को व्यक्त करता है। अग्नि का स्वभाव परिवर्तित नहीं होता हिम उसके निकट नहीं रह सकता यदि निकट आयगा तो नष्ट हो जायगा इसी प्रकार महादेव जी के समक्ष काम भी (रा० १ ११३ १४)। भगवती पार्वती का प्रेम अपने पति के प्रति सत्य था और उन्हें अपने प्रेम पर विश्वास भी। राम के प्रति सीता जी की भी यही भावना थी उन्हें विश्वास था कि—

जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥

रा० १ २६१, ३

राम को प्रेम प्यारा है—उन्नत प्रेम के रूप का दर्शन भगवान् के सान्निध्य में

होता है। चित्रकूट में रामचन्द्र जी के आश्रम के निकट हाथी सिंह बन्दर, सूकर एवं हरिण बैर छोड़कर विहार, और नीलकंठ कोकिल शुक, चातक, चक्रवाक चकोर आदि पक्षी कर्ण-सुखद तथा मनोरम कलरव करते थे (रा० २ १३८ १)। कोल किरात, भील आदि वनवासी पवित्र सुन्दर एवं अमृतोपम स्वादिष्ट मधु को तथा कन्द मूल फल आदि को दोनों में भरकर और उनके गुण और नाम आदि बता-बताकर अत्यन्त विनय के साथ रामचन्द्र जी को भेंट करते थे। जब रामचन्द्रजी उन्हें उसका मूल्य देते, तो वे प्रेम के कारण यह कहकर न लेते थे

मानत साधु प्रेम पहिचानी ॥ रा० २ २२५, १

और राम को भी तो प्रेम ही प्यारा था

रामहि केवल प्रेम पिआरा। जानि लेउ जो जाननि हारा ॥ रा० २ ११७, १

ग्रन्थि का रूप—इच्छाओं के दमन से मानसिक ग्रन्थियां बन जाया करती हैं। तुलसीदासजी के अनुसार ग्रन्थियां जड़ और चेतन के संयोग से अर्थात् अज्ञान और मन के कारण पड़ जाती हैं। यद्यपि ग्रन्थि वास्तव में मिथ्या होती है तथापि उसका खोलना कठिन है और जब तक वह नहीं खुलती तब तक सुख नहीं मिलता। जब से जीव 'स्वार्थी' होने लगता है तब से यह ग्रन्थि पड़ने लगती है। इसको सुलझाने के लिये जितना प्रयत्न किया जाता है उतनी ही यह उलझती जाती है

जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई
तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रन्थि न होइ सुखारी
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई ॥

रा० ७ ११७ ५ १

ग्रन्थि रोग-कारक है—ग्रन्थि के कारण शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। व्याधियों के समान आधियाँ भी कष्टप्रद होती हैं। इन्हें गोस्वामीजी ने मन सम्भव-शोक बताया है (रा० १ ११७ छं० १)। आयुर्वेद से अनभिज्ञ रोगी अपने वैद्य से कुपथ्य माँगा करता है इसी प्रकार आधियों से पीड़ित मनुष्य अपने रोग के निदान से अनभिज्ञ होने के कारण काम-क्रोध रत रहता है। यह तो विवेचक ही कह सकता है कि अमुक रोग का क्या कारण है और उसकी शान्ति का क्या उपाय है? भगवान् विष्णु ने नारद जी की महिमिति-ग्रन्थि (सुपीरियोरिटी काम्पलेक्स) को दूर किया था (रा० १ १२४ १४, १२२ १६० १) क्योंकि नारद जी को यह घमण्ड था कि मैंने काम पर पूर्ण विजय प्राप्त की है, किन्तु इस संसार में ऐसा कौन है जिसे मोह ने अन्धा न किया अथवा काम ने नहीं नचाया (रा० ७ ६६, ४)।

कारण का विश्लेषण—काक गरुड़ से कहते हैं सब व्याधियों का मूल मोह अर्थात् अज्ञान है। व्याधियों से बहुत से शूल उत्पन्न होते हैं। काम वात है, लोभ कफ है और क्रोध पित्त है। इन तीनों के मिल जाने से सन्निपात हो जाता है। वैषयिक मनोरथों से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। ममता दाद है ईर्ष्या खुजली हर्ष-विषाद गठिया और पर-सुख-द्रोह क्षय है। कुटिलता कोढ़ है, अहंकार डमरू तथा दम्भ कपट, मद और मान नेहरुआ हैं। तृष्णा जलोदर, एषणाएँ तिजारी मत्सर और अविवेक ज्वर हैं। इनमें से, एक ही रोग से मनुष्य मर जाते हैं। तुलसी के वचन हैं

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला । तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला
काम बात कफ लोभ अपारा । क्रोध पित्त नित छाती जारा
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई । उपजइ सन्यपात दुखदाई
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना । ते सब सूल नाम को जाना
ममता दादु कंडु इरषाई । हरष बिषाद गरह बहुताई
पर सुख देखि जरनि सोइ छई । कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई
अहंकार अति दुखद डमरुआ । दंभ कपट मद मान नेहरुआ
तृस्ना उदर बृद्धि अति भारी । त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी
जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका । कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका
एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि ।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि ॥

रा० ७ २०७ १६ २०८

असावधान मन की व्याधियाँ—इस प्रकार जगत् में समस्त जीव रोगी हैं क्योंकि वे हर्ष शोक प्रीति-भय आदि से समन्वित हैं। रोग-निवारण के लिये अनेक उपाय हैं, यथा नियम, धर्म आचार तप ज्ञान, यज्ञ जप दान और औषधियाँ भी किन्तु अनेक उपचारों के रहते हुए भी व्याधि कम नहीं होती (रा० ७ २०९) क्योंकि केवल कतिपय लोग इन रोगों को जानते हैं (रा० ७ २०१ १)। विषय-रूप कुपथ्य को पाकर मुनियों के हृदय में भी ये रोग अंकुरित हो उठते हैं फिर साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या?

रेचन—आधुनिक मनोविज्ञानों का विश्वास है कि इच्छाओं और मूल प्रवृत्तियों का अवदमन दमन अथवा रूपान्तरीकरण होता है। स्मृतियों के पाठकों को विदित है कि ब्रह्मचर्य के पालन पर कितना आग्रह किया गया है। सन्तों के द्वारा कामिनी-कांचन त्याग का परामर्श कदाचित् कुछ लोगों को अखरता भी है। प्राचीन ऋषियों ने संवेगों के नियमित अभिव्यंजन का महत्व समझा अतएव उन्होंने होली पर आचार शिथिलता और गोवर्द्धन पर द्यूत-क्रीडा के लिये किंचित् स्वातन्त्र्य दे दिया है। विदेशों में भी मे-डे तथा एप्रिल-फूल मनाये जाते हैं। विवाहों के अवसर पर स्त्रियाँ शृंगारिक एवं अश्लील गीत गाती हैं। पार्वती-परमेश्वर एवं सीता राम के विवाह के दोनों अवसरों पर तुलसीदासजी स्त्रियों से गालियाँ गवाना नहीं भूले (रा० १ १२१ १ १६१ १४ पा मं १२० का० मं० १६७ १७६, रा० न० ८ ११ १८)। इस प्रकार के गीत तुलसीदासजी के समय में गाये जाते थे और इनका प्रचार आज भी ब्रज और अवधपी प्रान्त में है। तुलसीदासजी को ऐसे गीत सुनने में कदाचित् आनन्द आता होगा क्योंकि वे विनोदी थे। उनकी वर्णन-शैली से यह प्रतीत होता है कि वे इस प्रथा को बुरा नहीं समझते थे यद्यपि वे गालियों के दोषों से भी अनभिज्ञ न थे। उन्होंने कहा है कि ब्रह्मा जी ने गाली को अमृत और विष के निचोड़ से रचा है इसलिये गाली प्रेम और वैर दोनों की ही जननी है इस रहस्य को बुद्धिमान् समझते हैं ग्रामीण नहीं

ममिय मारि गारेउ गरल गारि कीन्ह करतार।
प्रेम बैर की जननि जुग जानहिं बुध न गँवार॥ दो० ३२५

आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार भी मसलीन शब्द सदा-सदा रेचक अतएव हितकारी सिद्ध होता है।

उचित उपचार—यदि उचित उपाय का अवलम्बन किया जाय तो मानसिक रोग अर्थात् व्याधि का उन्मूलन हो सकता है। उपचार द्विविध है नकारात्मक और भावात्मक। नवरस-विरति विषय-कुपथ्य त्याग और पर-द्रोह-त्याग नकारात्मक है (रा० २, १२७) में संयम है। इसके अतिरिक्त व्याधि मुक्ति के निमित्त, रोगी को आवश्यकता है सद्गुरु-रूपी वैद्य के वचनों में विश्वास की भक्ति-रूपी संजीवनी बूटी की और श्रद्धा समन्वित बुद्धि-रूपी अनुपान की (रा० ७ २ १ १४)। सत्संग से रोगी का मनोविनोद होता है।

मनोविश्लेषक तुलसी—तुलसीदासजी रोग के निदान और उपचार का उल्लेख करते समय, आधुनिक मनोविश्लेषक-से प्रतीत होते हैं। आधि-व्याधि की शान्ति प्रतिदान-ज्ञान से हो सकती है। गोस्वामीजी का वचन है

जाने ते छीजहिं कछु पापी॥ रा० ७, १ ६, ५

सांसारिक कष्ट और दम्भ के विनाश के लिए, वे समता का उपदेश देते हैं। समता का लक्षण है अत्यन्त आदर मान पर हर्ष न होना निरादर होने पर जल न मरना और हानि-लाभ सुख-दुःख भलाई-बुराई में चित्त को सम रखना (वि० २६८ १ १२६)। अनुकूल साधन अनुकूल समय और अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति पर, तीनों कालों में एक-रसता का नाम समता है (दो ५१६) जिसकी प्राप्ति विनय विरति और विवेक के द्वारा होती है। सनकादि चारों ऋषियों ने भगवान् राम से समता की प्राप्ति के लिये प्रार्थना की थी (रा० ७ ३७ २ १)। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि गोस्वामीजी 'स्वार्थ' के स्वरूप से पूर्णतः परिचित थे इससे न देवता न मुनि न मनुष्य मुक्त है माता पिता भी नहीं। यह पाप और दुराचार के लिये प्रेरणा देता (रा० ७ १४, १ ६१ १२ ६६, १ २०७ ७)।

समता का रूप—समता परोपकार का सम्यक् रूप है और यह विनय विराग या विवेक से पुष्ट होती है। ईसा-धर्म और इस्लाम में अपराध-पाप को मान लेने की प्रथा प्रचलित है इससे छिपा हुआ मन का चोर प्रकट हो जाता है। धर्म निरपेक्ष मनोविश्लेषक भी रोगी के मन को पढ़कर लगभग यही बात करता है। वह निश्चय ही मोहिनी-शक्ति के द्वारा रोगी को निद्रावस्था में ले जाता है उसके स्वप्नों का विवेचन करता है अथवा उन्मुक्त-सम्बन्ध (फ्री एसोसियेशन) के उपाय का अवलम्बन करता है। तुलसीदासजी ने विवेक की संस्तुति की है जो निःस्वार्थ और निर्मल जीवन से प्राप्य है। इन सब का परिणाम है परोपकार। आजकल के मनोविज्ञानियों का भी यही मत है कि स्वार्थ सब विपत्तियों का स्रोत है उससे व्यथा और व्यथा से क्षोभ उत्पन्न होता है, व्यथित मनुष्य अपने ऊपर क्रोध किया करता है। मानसोद्यान में स्वार्थ अनभीष्ट घास-पात के समान है जिसका उन्मूलन ही श्रेयस्कर है और संसार का अभिशाप यह जेल एवं पागलखानों को भरता रहता है।

राममक्ति की रामबाणता—इतना रहा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से। गोस्वामीजी और भी गहरे जाते हैं। वे अति-मनोविज्ञान (पर-साइकोलोजी) में निमज्जन कर व्याधियों के लिये राम-नाम औषध प्रदान करते हैं। यह है भगवद् भक्ति अथवा रामभक्ति। रामभक्ति क्या है? रामकथा-श्रवण, राम-स्तुति तथा राम नाम-जप। जिसके पास ऐसी भक्ति-मणि है उसको आधि-व्याधियाँ नहीं सतातीं वह स्वप्न तक में इन से तनिक भी आक्रान्त नहीं होता (रा० ७ २०५, ४१)। राम भक्ति संजीवनमूल है, (रा० ७ २ ६, ४) क्योंकि राम के प्रसाद से अनेक काम लोभ मद मोह सब छिन्न भिन्न हो जाते हैं (रा० १ ४९, २)।

मानसिक स्वास्थ्य का निकष—यह है जीवन का लक्ष्य और साधन किन्तु इसकी क्या कसौटी है कि उक्त योग (नुस्खे) से मन स्वस्थ हो रहा है? तुलसीदासजी का उत्तर है कि मन को नीरोग तब समझना चाहिये जब हृदय में वैराग्य रूपी बल आए सुबुद्धि-रूपी क्षुधा नित्य प्रति बढ़े विषय और आशा रूपी दुर्बलता घट जाए, तथा वह रोगी विमल-ज्ञान-रूपी जल में स्नान कर ले और उसका हृदय रामभक्ति से ओतप्रोत हो जाय।

आत्म-साक्षात्कार का मित्र मूल्य—आत्मज्ञान से परमार्थ की प्राप्ति होती है। 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यः' (बृहदा० २, ४ ५) तथा 'नायमात्मा बल हीनेन लभ्यः' (मुण्डक० ३ २, ४) आदि औपनिषद् वाक्य आत्मज्ञान पर आग्रह करते हैं। मानसिक चिकित्सा के निमित्त श्री सी० जी० युङ् आत्म-ज्ञान की प्रशंसा करते हैं। मनुष्य अपने विषय में जितना सज्ञान होता जाता है उतना ही विशाल-हृदय और उदार-चेता भी। तुलसीदासजी भी इस बात को भली भाँति जानते हैं और उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा भी है कि ज्ञान से व्याधियों का दमन हो जाता है किन्तु पूर्णत उन्मूलन नहीं

जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी॥

रा० ७ २०१, २

तुलसीदास के दो योग—गोस्वामी जी ने दो नुस्खे लिखे हैं जिनमें एक मनो विश्लेषणात्मक है दूसरा अति-मनोवैज्ञानिक। पहला तो कदाचित् विफल भी हो जाय, किन्तु दूसरा नितान्त अचूक है। अभी निवेदन किया जा चुका है कि मनोविश्लेषणा त्मक योग समता का है जिसमें तीन 'वि' तत्त्व हैं अर्थात् विनय विवेक और विराग। इन तीनों में से पहला तो इन्द्रियों को नियमित मन को संयमित तथा दूसरे के लिये मार्ग प्रस्तुत करता है दूसरा ज्ञान-द्वारा भले-बुरे की पहचान और संसार का वास्तविक स्वरूप उपस्थित कर तीसरे के मार्ग को प्रशस्त करता है और तीसरा इच्छा तथा स्वार्थ का नाश करता है। इन तीनों का संयुक्त परिपाक ही समता है जो परो पकार अथवा लोक-संग्रह के और अन्तत सुख अथवा आनन्द के रूप में आविर्भूत होती है।

निष्कर्ष—निष्कर्षत तुलसीदास के अनुसार, ज्ञान अथवा विवेक तो केवल एक तत्त्व है। उन्होंने तो 'समता' की संस्तुति की है जिसमें विनय विवेक और विराग तीन तत्त्व होते हैं। हेर फ्लोरर ने पूर्ण आत्मानुभव (कम्प्लीट सेल्फ रियलाइज़ेशन) को

कल्पना की है जो तुलसीदासजी के निकट है। किन्तु तुलसीदासजी जानते हैं कि ये त्रिविध 'वि' कुछ दशाओं में कदाचित् विफल हो जायें अतएव उनका अन्तिम मुख्य राम भक्ति है क्योंकि जैसा कि कार्ल जैस्पर्स ने पीछे बताया 'असीम' पर निर्भरता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अनन्त से मिल कर आत्मा स्वयं अपने को असीम और स्वतन्त्र अनुभव करने लगता है।[1]

---

१ विल द वौल्ट टु दि बर्गविल द मास्टर फौल्स इम्पैक्ट एन इन्फिनिट एक्स ग्रो — अमेरिकन जर्नल ऑफ साइकोलोजी फिलिप जोसेफ हैरिस, पृष्ठ ८१७।

आचार-शास्त्र

(क) प्रारम्भिक वक्तव्य

इस अध्याय में आचार-शास्त्र के सम्बन्ध में गोस्वामी तुलसीदास के विचारों को चार विभागों में उपस्थित किया जायगा। प्रथम तो यह विचारणीय है कि क्या व्यक्ति कार्य करने में स्वतन्त्र है और जो कुछ वह करता है उसके लिये वह कहाँ तक उत्तरदायी है ? हम को उत्तर मिलेगा कि गोस्वामी जी के अनुसार ईश्वरेच्छा बलवती है और व्यक्ति व्यवहार में स्वतन्त्र माना जा सकता है। द्वितीयतः यह विचार करना है कि भले-बुरे का स्वरूप क्या है ? गम्भीर विचार के पश्चात् यह विदित होगा कि उन्होंने भले-बुरे की व्याख्या दो दृष्टिकोणों से की है—अतिभौतिक और व्यावहारिक। अतिभौतिक स्तर से इस मत के अनुसार सत्य ही श्रेय है और असत्य अहित है। व्यावहारिक स्तर से धर्म अपने निषेधात्मक रूप में अहिंसा और भावात्मक रूप में परोपकार है तथा अधर्म अपने सूक्ष्म रूप में स्वार्थ और स्थूल रूप में परपीड़न है। तृतीयतः यह जानना है कि समाज रचना कैसी है और व्यक्ति का उसमें क्या स्थान है ? इस सम्बन्ध में उनके वर्णाश्रम-सम्बन्धी विचारों का विवेचन अभीष्ट है कि वर्ण च्युति की दशा में नाम जपादि का क्या प्रभाव होता है ? चतुर्थतः यह जिज्ञासा है कि समाज में स्त्री का क्या स्थान है ? विदित होगा कि यद्यपि तुलसीदासजी ने सीता सुमित्रा और कौशल्या के रूप में नारी का चरित्र अति श्रेष्ठ रूप में अंकित किया है तथापि उन्होंने कारणवश नारी की निन्दा भी की है। अन्त में शिव-भाव का निर्देश होगा जिसे उन्होंने उन सभी मनुष्यों के लिये प्रशस्त समझा है जो उस पर चलने के अभिलाषी हैं।

(ख) स्वतन्त्रता और नियति

क्या व्यक्ति स्वतन्त्र है ?—मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से मनुष्य कार्य करने में स्वतन्त्र है 'स्वतन्त्रः कर्ता' (पाणिनि १, ४ ५४)। व्यक्ति अपनी इच्छा का उपयोग जैसे चाहे वैसे करे। वह चाहे तो अपना हाथ उठा ले चाहे तो कविता-पाठ करने लगे और चाहे तो अपनी अँगुलियों की ओर देखने लगे। तथापि यह सत्य है कि उसके सभी कार्य उसके चरित्र और स्वभाव पर निर्भर हैं। जिस प्रकार प्रत्येक पंक्ति के दो सिरे होने आवश्यक हैं उसी प्रकार कार्य भी स्वतन्त्र और नियत होता है। किन्तु अतिभौतिक दृष्टिकोण से बात भिन्न है। जैन-मत में जीव को मुक्तावस्था से पूर्व तक कार्य करने में स्वतन्त्र माना गया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती का अनुयायी ईश्वर और प्रकृति के समान जीव की भी स्वतन्त्र सत्ता समझता अतएव उसे कार्य करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में परतन्त्र मानता है। उसके मतानुसार, जीव अपनी स्वतन्त्रता के कारण भला कार्य करे या बुरा किन्तु जो लोग जीव को ईश्वर के अधीन मानते हैं वे अन्य प्रकार से सोचते हैं। अद्वैत वेदान्ती परमार्थ की दृष्टि से जीव और

ईश्वर में भेद नहीं मानते हाँ व्यावहारिक दृष्टि से वे जीव को कार्य करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में परतन्त्र मान लेते हैं। किन्तु जो लोग व्यवहार और परमार्थ के भेद में तथा माया की सत्ता में विश्वास नहीं करते वे जीव को ईश्वरेच्छा के अधीन समझते हैं।

कर्म-सिद्धान्त—चार्वाक को छोड़कर कोई भी भारतीय दर्शन ऐसा नहीं जो किसी-न-किसी रूप में कर्म-सिद्धान्त को न मानता हो। प्रत्येक अनुभव सूक्ष्म-शरीर पर अपना संस्कार छोड़ जाता है, और संस्कार की यह प्रवृत्ति है कि वह पुन-पुन उत्पन्न होना चाहता है, इस प्रकार मनुष्य के सूक्ष्म-शरीर में जन्म-जन्मान्तरों के असंख्य संस्कार विद्यमान रहते हैं। यद्यपि संस्कार क्रियाशील हैं, तथापि वे संचित होकर क्रियारहित-से विद्यमान रहते हैं, किन्तु अनुकूल अवसर के प्राप्त होते ही वे सक्रिय हो जाते हैं। कार्यारम्भ करते ही उनकी संज्ञा प्रारब्ध होती है। प्रत्येक क्रियमाण कार्य प्रारब्ध पर निर्भर रहता है।

कर्म-सिद्धान्त में ईश्वरेच्छा की पूर्वनिश्चितता—एक बार कर्म-सिद्धान्त में विश्वास कर लेने से ईश्वरेच्छा की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है। कल्पना कीजिये कि कोई शिशु ईंटों से रेलगाड़ी खेलना चाहता है। तन्निमित्त वह सात ईंटों को एक के पीछे एक सीधी पंक्ति में खड़ी करता है। तदनन्तर वह प्रथम इष्टिका पर लघु पदाघात करता है। क्या होता है? पहली ईंट दूसरी पर, दूसरी तीसरी पर, तीसरी चौथी पर, चौथी पाँचवीं पर, पाँचवीं छठी पर छठी सातवीं पर गिरती है, और इस प्रकार सभी ईंटें गिर पड़ती हैं। यदि प्रश्न उठे कि सातवीं ईंट क्यों गिरी तो उत्तर मिलता है, क्योंकि छठी गिरी छठी क्यों गिरी? क्योंकि पाँचवीं गिरी इत्यादि। मोटी दृष्टि से सातवीं छठी पाँचवीं चौथी तीसरी दूसरी के गिरने का कारण प्रत्येक से पहली ईंट है। ईंट ईंट के गिरने का कारण हुई। इस उत्तर में सत्य है किन्तु पूर्ण सत्य नहीं। वास्तव में कारण है पहली ईंट का गिरना किन्तु पहली ईंट के गिरने का कारण है शिशु का पदाघात। इसी प्रकार कर्म-सिद्धान्त की शृंखला के बन जाने पर, पिछली कड़ी का कारण पूर्व कड़ी मान ली जाती है। अतएव कर्म-सिद्धान्त व्यवहार-जगत् में ही लागू है। उसको संचालन करने के लिये ईश्वरेच्छा की कल्पना आवश्यक हो जाती है। कार्य-कारण-शृंखला इतनी लम्बी है कि साधारण दृष्टि से इसका ओर-छोर नहीं दीखता। जैसे किसी अथाह नदी के किनारे पर बैठा हुआ शिशु नदी के प्रवाह को अनादि समझता है वैसे ही वयस्क भी संसार को अनादि कह देता है। संसार में प्रवाहानादित्व है पर उसमें 'अजन्यत्वानादित्व'[1] मान लेने के लिये कारण प्रतीत नहीं होता।

अकर्मण्यता—गोस्वामीजी ने स्पष्ट कहा है कि जीव जो चाहे वह कर सकता है। वह स्वतन्त्र है भाग्य पर तो आलसी विश्वास करते हैं

कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा ॥ रा० ५, ५९, २

तथ्य यह है कि

जथा सो फुनिय जाहिय सो चोग्हा ॥ रा० २, १६, ५

अर्थात् जो जैसा करता है वह वैसा भरता है। तुलसीदासजी ने कुछ नास्तिकायों का

१ आउटलाइन्स ऑफ इंडियन फिलासफी, [illegible] पृष्ठ ११२।

उल्लेख किया है जिसके सम्पादन से अनिष्ट की अप्रियता नष्ट हो जाती है, यथा भरत जी को ननसाल में दुःस्वप्न हुआ तो दुष्फल को दूर करने के लिये भगवान् शिव और गणेशजी की पूजा करायी गयी और ब्राह्मणों को भोजन दिया गया (रा० २, १२७, १४)। सीताजी को भी चित्रकूट में दुःस्वप्न हुआ था और तदनन्तर प्रातः काल स्नाना चंनादि भी किये गये (रा० २ २२६ २-३) यद्यपि दोनों ही उदाहरणों में शान्ति कर्म व्यर्थ रहे। तुलसीदासजी ने अनेक बार मुहूर्तों का उल्लेख किया है (रा० २ २७२ १ रा २ १२४)। अपना से शुभमुहूर्त निकालने का विचार-मात्र नियति का निर्देशक है। भाग्य के पर्याय हैं दैव विधि (रा० १ २२४ ४)। गोस्वामीजी का निश्चय है कि कार्य का अन्तिम कारण भगवदिच्छा ही है।

हरीच्छा के कुछ उदाहरण—भगवदिच्छा का अनेक बार उल्लेख हुआ है। कुछ उदाहरण ये हैं। सतीमोह के सम्बन्ध में भगवान् शिव कहते हैं कि जो होना है वही होगा तर्क करने से क्या लाभ ?

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावहि साखा ॥ रा० १ ७४ ४

नारदजी के शब्दों को सुन कर जब मैंना पार्वती विवाह के सम्बन्ध में बड़ी चिन्तित हुई तो पार्वती अपनी माता को इस प्रकार धैर्य दिलाती हैं

अस बिचारि सोचहि मत माता। सो न टरइ जो रचइ बिधाता ॥
करम लिखा जौ बाउर नाहू। तौ कत दोसु लगाइअ काहू ॥
तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका। मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलंका ॥

रा० १ १२० १ ४

एक बार नारदजी ने भगवान् विष्णु को शाप दिया था। यह बात पार्वतीजी ने भगवान् शिव से सुनी तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। इस पर पशुपतिनाथ ने कहा

जेहि जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहि छन होइ। रा० १, १२१

और नारदजी को एक सुन्दर परामर्श दिया जो उन्हें पसन्द नहीं आया। इस विषय में याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजी से कहते हैं—

संभु दीन्ह उपदेस हित नहिं नारदहि सोहान।
भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान। रा० १ १२५

हिमवान् पार्वती-विवाह के सम्बन्ध में अपनी पत्नी मैना को उपदेश करते हैं—

प्रिया सोचु परिहरहु सबु सुमिरहु श्री भगवान।
पारबतिहि निरमयउ जेहिं सोइ करिहहि कल्यान। रा० १ ६५

जब भगवान् राम ने सुमंत्र से अयोध्या लौट जाने के लिये कहा तो धनिष्ठुक मंत्री बोले थे—

केहि जाइ कहि राम रजाई, कठिन करम गति कछु न बसाई

रा० २, ९९ ४

चित्रकूट में रामचन्द्रजी अपनी माताओं को सान्त्वना देते हैं —

अंब ईस आधीन जगु काहु न देइअ दोसु। रा० २ २४५

जब राम की माताएँ सीताजी से चित्रकूट में मिलीं तो इस भावना का उदय हुआ —

सो सब सहिय जो दैव सहावा। रा० २, २४६ १

चित्रकूट की सभा में भरतजी की घोषणा है —

जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता ॥

रा० २२१२, १

भगवान् सबको नचाते हैं—गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा था

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ १८, ६१ ॥

गोस्वामी तुलसीदासजी भगवान् शिव के मुख से पार्वतीजी को उपदेश का उल्लेख इस प्रकार करते हैं :

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहिं नचावत रामु गोसाईं ॥ रा० ४ १२४

रामजी सुग्रीव को आश्वासन देते हैं कि हे मित्र मैंने जो कुछ कहा है वह सब सत्य है और मेरे शब्द अमोघ हैं। इस पर काक पक्ष से कहते हैं —

नट मरकट इव सबहि नचावत। रामु खगस बेद अस गावत ॥

रा० ४ व १२

भाग्य सब के लिये लागू है। काक ने गरुड़जी को जो उपदेश दिया उससे ऐसा प्रतीत होता है कि भाग्य की आज्ञा का पालन सब को करना पड़ता है।

भाग्य की महत्ता और अपरिहार्यता—प्रकृत्या भाग्य अदृष्ट निश्चित और अपरिहार्य है। प्रतिकूल होने पर, वह अत्यन्त कठोर अपमानजनक और दुःखद होता है। तुलसीदासजी कहते हैं—

तुलसी जस भवतब्यता तैसी मिलइ सहाइ।

आपु न आवइ ताहि पै ताहि तहाँ लै जाइ ॥ रा० १ १८८ दो० ४५०॥

दुर्भाग्य के कारण भविष्य-ज्ञान नष्ट हो जाता है, जैसे प्रतापभानु कपट मुनि की बातें नहीं समझ पाये थे और जब ब्राह्मण उसे शाप दे चुके तो उन्हें विदित हुआ कि राजा प्रतापभानु निर्दोष था। उन्हें कहना पड़ा कि

भूपति भावइ मिटइ नहिं जदपि न दूषन तोर। रा० १ १७४।

याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजी से कहते हैं

भरद्वाज सुनु जाहि जब होइ बिधाता बाम।

धूरि मेरु सम जनक जम ताहि ब्याल सम दाम। रा० १ २०५

गूढ़ दृष्टि से देखा जाय तो भाग्य पूर्व-कृत कर्मों का संचित रूप है। मंथरा कहती है जो जसा बोता है वैसा काटता है जैसा देता है वैसा लेता है कोई राजा हो मुझे तो दासी से रानी होना नहीं (रा० २, १६ ३)। वह पुन कहती है दैव दैव फिरि सो फलु ओही (रा० २ १८ ४)। वशिष्ठ और भरद्वाज भी भरत को सान्त्वना देने के लिए भाग्य की महिमा गाते हैं (रा० १ २ ७२)। एक कहते हैं —

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनि नाथ।

हानि लाभु जीवन मरन, जसु अपजसु बिधि हाथ ॥ रा० २, १७२

दूसरे कहते हैं —

सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधि करतब पर किछु न बसाई।

रा० २, २०१, ४

मन-शरीर का सामंजस्य—ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी वर्तमान और भूत कार्यों में सम्बन्ध स्थापित करने के लिये मन और शरीर के सामंजस्य में विश्वास करते हैं। वे मंथरा के विषय में कैकेयी से कहलाते हैं कि काने लंगड़े और कुबड़े लोग कुटिल और कुकर्मी होते हैं (रा० २, १५)। सीता राम और लक्ष्मण वनवास में जा रहे हैं देखकर लोग अनुमान करते हैं

राम लखन सब अंग तुम्हारे। देखि सोचु अति हृदय हमारे॥
मारग चलहु पयादेहि पाएँ। ज्योतिषु झूठ हमारे भाएँ॥

रा० २, ११९, १८

भाग्यवाद और भविष्यवाणी—भविष्यवाणी भाग्यवाद का प्रमाण है। भविष्य का निर्देश अंगस्फुरण स्वप्न शकुन ज्योतिष और अन्तर्दृष्टि से होता है। गोस्वामीजी ने सभी प्रकार के भविष्य-द्योतक उदाहरण दिये हैं। कुछ ये हैं भगवती पार्वती की कृपा से सीताजी के वाम अंग फड़कने लगे (रा० १ २,६–८)। जब राम और सीता ने भरत के मातुल-गृह से लौटने का अनुमान किया तो उनके शुभांग फड़कने लगे रा० २, ७ १)। जब मंथरा कैकेयी को बहका रही थी तो रानी ने उससे कहा था कि मेरी दाहिनी आँख नित्य फड़कती है (रा० २, २०, १)। गुह भरत से युद्ध करने के लिये अपनी सेना ले जाने वाला था कि इतने में जब बाईं ओर छींक हुई तो भविष्यवक्ताओं ने कहा कि युद्ध में विजय होगी किन्तु एक वृद्ध ने कहा कि भरत से मिलाप तो होगा किन्तु युद्ध न होगा (रा० २, १९२ २–३)। इसी प्रकार जब राम ने लंका पर चढ़ाई की तो अच्छे शकुन होने लगे सीता और रावण के वाम अंग फड़कने लगे (रा० ५, ३४ २–४ १२४ ३)। स्वप्न भी भविष्य के द्योतक हैं। गोस्वामीजी ने स्वप्न की चर्चा बार बार की है कैकेयी (रा० २ २०४) भरत (रा० २ १५७ ३) सीता (रा० २, २२६ २) और त्रिजटा के (५, १० १–४)। स्वप्नों में विश्वास प्राचीन काल से चला आ रहा है यथा 'छान्दोग्योपनिषद्' के अनुसार यदि सकाम अनुष्ठान करते समय किसी नारी का दर्शन हो तो अवश्य सफलता प्राप्त होगी। गोस्वामीजी शकुनों के भी कुछ उदाहरण देते हैं—शृगालों और श्वानों का रोदन गधों का रेंकना धूमकेतु का उदय प्रतिमा का रोदन भू का डोलना वज्र का पतन। रावण को अपशकुन हुए थे (रा० १ १८० ४ छं)। शुभ शकुनों का भी उदाहरण मिलता है। जब पार्वतीजी सीताजी से प्रसन्न हुईं तो उनको मालूम हुआ कि मंगल मूरति मुसुकानी (रा १ २६८ ३)। तुलसीदासजी मानते हैं कि पुस्तक-सहित ब्राह्मण क्षेमकरी अच्छे वृक्ष पर बैठा, नकुल दधि और मत्स्य आदि के दर्शन शुभ हैं।

नकुल सुदरसन दरसनी छेमकरी चक चाष।
दस दिसि देखत सगुन सुभ पूजहिं मन अभिलाष॥ दो० ४६०॥

गोस्वामीजी को प्रचलित ज्योतिष में विश्वास था यद्यपि वे जानते थे कि सभी लग्न ठीक नहीं बैठते। वे स्वयं ज्योतिषी थे। 'रामाज्ञा प्रश्न' तथा दोहावली के कुछ दोहों से उनके ज्योतिष ज्ञान की पुष्टि होती है। मंथरा अयोध्या के लिए साढ़सती थी उसने ज्योतिषियों से यह जानकारी प्राप्त कर ली थी कि भरत राजा

बनेंगे (रा० २ १७ २ २१, ४)। अपनी माता की कुचाल पर भरतजी ने अपने को ग्रह-ग्रहीत समझा है (रा० २ १८१)। यात्रा, विवाह अथवा राज्याभिषेक के निमित्त शुभ-मुहूर्त निर्धारित किये जाते थे (रा १, २७२ ३ १ १४५, २ १२४)।

आकाश-वाणी देव घोषणा पुष्प-वर्षा आदि से पूर्व-कल्पित नियति की पुष्टि होती है। भरतजी की प्रार्थना के उत्तर में त्रिवेणी से आशीर्वादात्मक ध्वनि आई, गंगाजी ने भी सीताजी को वनवास के अन्त में सकुशल अयोध्या लौट आने का आश्वासन दिया था (रा० २ २०३, २-३)। जब राम लंका से अयोध्या पहुँचते हैं तो देवगण आकाश में गीत-नाद करते हैं (रा० ७ २१)। सीता को पुष्प-वाटिका में नारदजी के उन वचनों का स्मरण हो आया जिन्होंने उसके भविष्य पर प्रकाश डाला था (रा० १ २६२)।

तुलसी का भाग्यवाद—तुलसीदासजी के लेखों से प्रकट होता है कि केवल भगवान स्वतन्त्र हैं और व्यक्ति विधि के वश में है (वि० १११ ४ १४१ ५, १५६,२) तथापि उनके कुछ वचन यह सुझाते प्रतीत होते हैं कि व्यक्ति कर्म करने में स्वतन्त्र है। इस विषय में लक्ष्मणजी की उक्ति का निर्देश हो ही चुका है। ज्योतिष-शास्त्रोक्त उपायों के द्वारा कुफल-निवारण पूजा-पाठ वरदान आदि से ऐसा आभास मिलता है। शुक और मर्कट की उपमाओं से यह विदित होता है कि जीवात्मा शुद्ध और मुक्त है किन्तु जब वह कर्मपाश में आबद्ध हो जाता है तो मानों वह भाग्य का दास हो जाता है। संचित कर्मों के फलाभिमुखी समुदाय को भाग्य कहते हैं। सूक्ष्म-शरीर के संस्कार त्रिविध हैं संचित प्रारब्ध और क्रियमाण इन्हीं पर मनुष्य का भविष्य अवलम्बित है। किन्तु भाग्य से भी परे हरीच्छा है। हम कभी-कभी हरीच्छा और भाग्य को एक समझ लेते हैं। तुलसीदासजी गीता के इस उपदेश को मानते हैं कि सभी प्राणी ईश्वर की इच्छा से नाचते हैं। ये महापुरुष यह भी समझते हैं कि भाग्य अदृष्ट और कठोर है वह प्राय किसी को भी नहीं छोड़ता और अंगस्फुरण स्वप्न शकुन आदि में व्यक्त हो सकता है। गीता (४ १६) कहती है कि ज्ञान से हमारे सब कार्य भस्म हो जाते हैं। पर गोस्वामी जी सोचते हैं कि भक्ति के द्वारा भी ऐसा हो सकता है (रा० ७ २०३ २०४)। भगवान् की माया से बन्ध और उसकी कृपा से मोक्ष होता है (रा० ४, ४ १-२)।

उत्तरदायित्व—कार्य का उत्तरदायित्व किस पर है? यदि तुलसीदासजी की भांति यह माना जाय कि कर्म के लिये मूल प्रेरणा ईश्वर की इच्छा से होती है और मोक्ष की प्राप्ति भगवत्कृपा से, तो व्यक्ति के उत्तरदायित्व का प्रश्न ही नहीं? पारमार्थिक दृष्टिकोण से यह निवेदन किया जा सकता है कि वैयक्तिक उत्तरदायित्व की आवश्यकता ही नहीं किन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण से व्यक्ति कर्म करने में स्वतन्त्र है अतएव वह जैसा करता है वैसा भरता है (रा० २ १६ ३)। ईश्वर को दोष नहीं लगता। आचार-सम्बन्धी व्यतिक्रमों के लिये व्यक्ति ही दोषी है क्योंकि उसके पास विवेक-शक्ति-समन्वित शरीर विद्यमान है

> नाहिन कछु अवगुन तुम्हार, अपराध मोर मैं माना।
> ग्यान भवन तनु दियहु, नाथ सोउ पाय न मैं प्रभु जाना॥ वि० ११४॥

तथापि गोस्वामीजी ने पर भोक्तृत्व की भी चर्चा की है, कर्ता कोई है तो भोक्ता कोई अन्य है—

कोउ करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानै जोगु ॥ दो० २४१ ॥

तुलसीदासजी को आश्चर्य इस बात का है कि मनुष्य के काम क्रोध लोभ आदि उसे इच्छा के विरुद्ध बुराई की ओर ले जाते हैं, अर्थात् इच्छा तो सुकर्मों की ओर है किन्तु प्रवृत्ति पर-वश है। ऐसी पापा-पापी तो न कहीं देखी न सुनी

देखी सुनी न आजु लौं अपनायत ऐसी ॥ वि० १४०

सुयोधन कहा करता था

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः, जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।

गोस्वामीजी ने व्यक्ति की भावना का सुन्दर चित्रण किया है। उन्होंने समाधान का उल्लेख नहीं किया है किन्तु समाधान यही हो सकता है कि व्यवहार जगत् में यही सिद्धान्त ठीक है कि जो जैसा करता है वैसा भरता है। यह प्रतीति जो यदा-कदा होती है कि करता कोई है तथा भरता कोई और है इस कारण है कि हम विशेष परिस्थिति में कारण की सूक्ष्मता पर विचार नहीं कर पाते अन्यथा व्यवहार-जगत् में कार्यकारण के सिद्धान्त में कोई व्यतिक्रम नहीं, और व्यतिक्रम की प्रतीति अल्पज्ञान-जन्य है।

भला बुरा

मूर्तिमान् सत्य—ईश्वर धर्मों में भगवान् को मूर्तिमान् सत्य माना गया है। यदि यह बात सत्य है तो कोई पाप अथवा दोष, न्यायतः, भगवान् पर आरोपित नहीं किया जा सकता। अतएव ईसा धर्म को भगवत्सत्ता के साथ शैतान की समानान्तर सत्ता भी माननी पड़ी। अद्वैतवादियों को यह समानान्तरता अभीष्ट नहीं। कुरान में स्पष्ट कहा है कि ईश्वर सबका दोनों का कर्ता है (सूरा ११ ८)। कुछ वैष्णव अधर्म की उत्पत्ति भगवान् के पृष्ठ से मानते हैं। भागवत में लिखा है

अधर्मः पृष्ठतो यस्मान्मृत्युर्लोकभयंकरः ॥ ३ १२, २५

किन्तु भक्तों को भगवान् में अधम की स्थिति को मानने में संकोच होता है क्योंकि नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त में अशुचिता के लिए स्थान ढूँढना असंगत और अनुचित है। अतएव माया की उत्पत्ति हुई और उससे सुख-दुःख पाप-पुण्य धर्माधर्म आदि द्वन्द्वों की भी।

पाप-पुण्य-स्रोत—दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि माया ने पाप-पुण्य तथा अन्य विकारों की भी रचना की है यथा मद और काम अविवेक जो समस्त संसार में व्याप्त हो रहे हैं (रा ७ ७० १२)। भगवान् राम भी भरतजी से यही बात कहते हैं

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक ॥ रा० ७ ४१

सबसे बड़ा गुन यह है कि दोनों को न देखा जाय क्योंकि इन दोनों का भेद देखना ही माया है। पण्डितराज भी कहते हैं कि 'निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधिः को निषेधः'।

आधिभौतिक दृष्टिकोण से माया गुण-दोषों की जननी है यद्यपि उसकी सत्ता

प्रातिभासिक है। यदि माया सदसत् का अपरोक्ष कारण है तो ब्रह्म परोक्ष। ब्रह्म की ही सत्ता है माया की तो उपसत्ता है। यों तो गुण-दोष का कथन व्यक्तिगत सीमाओं के कारण है। तुलसीदासजी लिखते हैं

जड़ चेतन गुन दोष मय, बिस्व कीन्ह करतार
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार
अस बिबेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहिं मनु राता
काल सुभाउ करम बरिआईं। भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाई
सो सुधारि हरि जन जिमि लेहीं। दलि दुख दोष बिमल जसु देहीं।

रा० १ १२। २

ऊपर कहा जा चुका है कि पाप-पुण्य माया-कृत हैं (रा० १ १२, ७ ६४ ७ प० १ २) व्यवहार में इन दोनों में भेद किया जाता है परमार्थ में नहीं। उपनिषदों का भी यही मत है कि सत् और असत् का भेद केवल वाचिक है (छान्द ७ २ १)। ब्रह्मलोक इस भेद से रहित है (छान्द ८ ४ १ २)। दोनों का यह भेद स्वप्न और जाग्रत में अनुभूत होता है (बृहद्० ४ ३ ११ १७)। किन्तु आत्मा सत् और असत् के प्रभाव से मुक्त है न तो वह सत्कार्य से भूयान् और न असत् कार्य से कनीयान् हो सकता है (कौषीतकी ३ ८)। आत्मा धर्माधर्म से परे है (कठ २ १४) वे दोनों ही परमावस्था में लीन हो जाते हैं (बृहद्० ४ ३ ११ ३०)। ज्ञाता अपाप है। बृहदारण्यक में 'पुरुष' शब्द का अर्थ किया गया है 'वह जो पाप को जला चुका हो' (पूर्व+उष्)।

धर्माधर्म—जो कुछ ऊपर कहा जा चुका है उसको मानते हुए पुण्य की उत्पत्ति सत्य से है। महाराज दशरथ ने कैकेयी से कहा है—

सत्य मूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान बिदित मनु गाए॥ रा० २, २८ ३

भगवान् राम ने भी सुमन्त जी को ऐसा ही उपदेश दिया है

धर्म न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना॥ रा० २ ६५, ३

दशरथ जी के अनुसार—

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचन न जाई॥ रा २ २८ २

इसी प्रकार अधर्म का पिता है स्वार्थ। भगवान् राम भरतजी से कहते हैं कि मनुष्य स्वार्थ-वश अनेक प्रकार के पाप करते हैं परोपकार के सदृश कोई धर्म नहीं और पर-पीड़ा के समान कोई अधर्म नहीं। जो मनुष्य दूसरों को कष्ट पहुँचाते हैं उनको अनेक जन्म लेने पड़ते हैं और वे अपना परलोक बिगाड़ लेते हैं। कहा है

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

तुलसीदासजी भी लिखते हैं

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।
निनय सकल पुरान बेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर॥
नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा।
करहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना॥

रा० ७ ४१, १२

अर्थवादी (प्रैग्मैटिस्ट) की भाँति तुलसीदासजी लिखते हैं

हित पुनीत सब स्वारथहि अरि असुद्ध बिनु चाड़।
निज मुख मानिक सम दसन भूमि परे ते हाड़॥ दो० ३३०

मुख ही अच्छाई का माप है। जब तक दाँत जबड़े में लगा रहता है तब तक मूल्यवान् है किन्तु ज्योंही वह जबड़े से अलग हो जाता है त्योंही वह हड्डी के समान हेय हो जाता है।

अतिभौतिक दृष्टिकोण से पुण्य-पुण्यत्व दोनों ही का स्रोत माया है। आचार की दृष्टि से कुत्सित स्वार्थ से उत्पन्न होता है और शुद्ध परहित से। तुलसीदासजी अधर्म के स्रोत के सम्बन्ध में निश्चित से प्रतीत होते हैं। किन्तु धर्म की उत्पत्ति के विषय में वे सत्य और परहित के मध्य में असमंजस-से हैं पर इन दोनों में से उन्हें धर्म का स्रोत परहित में ही मानना चाहिए। सत्य तो अतिभौतिक शास्त्र और आचार-शास्त्र की मध्यवर्ती सीमा पर स्थित है और परहित निश्चय रूप से आचार के अन्तर्गत है। अतएव ऐसा कहना सत्य से दूर न होगा कि तुलसीदासजी परहित को पुण्य और पर पीड़ा को पाप मानते हैं (रा० ७ ४१ १ वि० १४१ २ दो० १४२)। इस मत की पुष्टि 'रामचरित मानस' के अन्तिम पृष्ठों में काक के द्वारा हुई है अत एव इसे अन्तिम ही समझना चाहिए (रा० ७ २०७ ७-८)। मनसा वाचा कर्मणा परहित धर्म है और स्वार्थ अधर्म है। परहित में स्वार्थाभाव हो सकता है किन्तु पर-पीड़ा में स्वार्थ निश्चय रूप से बना रहता है। अतएव परोपकार रति निष्कंटक है (दो० ४६७) इसके द्वारा भवसागर से निस्तार हो जाता है

जानत हूँ मम बचन कर्म परहित कीन्हे तरिए॥ वि० १८९ ३

प्रधान पुण्य—तुलसीदासजी के अनुसार कुछ मुख्य सुकृत ये हैं विप्र चरण पूजा (रा० ७ ४७ ४) प्रार्थना तप यम दम दान पवित्रता ज्ञान ध्यान (रा० ७ १४८ १) दया करुणा (रा० ७ १८३ १) शम दम (वि० २०४) सरलता तीर्थ-यात्रा (क० ७ १४४) अहिंसा (रा० ७ २०७ ११)। इन सब सुकृतों का पर्यवसान भगवान् के गुण और कीर्तन के द्वारा राम भक्ति में होता है (रा० ७ १४ ४ ११)।

अवगुण विशेष—प्रधान अवगुण हैं अविद्या पिशुनता परपीड़ा स्वार्थ रामद्रोह, शिवद्रोह। क्या पिशुनता से बढ़ कर और कोई अघ हो सकता है (रा० ७ १८७ ३)? और भी

पर निन्दा सम अघ न गरीसा॥ रा० ७ २०७ ११

जो लोग इस पाप को करते हैं वे कभी सुख नहीं पाते। विष्णु-द्रोही और शिव-द्रोही अथवा विष्णु निन्दक और शिव-निन्दक पाप कमाते हैं (रा० १ १)। हिन्दू-समाज में गो-हत्या पाप है (रा० २ १८७ २ ६ ४७ १)। आचार-जगत् में परपीड़न के समान कोई पाप नहीं इसे स्वार्थ से प्रेरणा प्राप्त होती है और यह मोह को उत्पन्न कर परलोक का नाश कर देता है—

नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महाभव भीरा॥
करहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वारथरत परलोक नसाना॥

दण्ड की आवश्यकता—पाप-सहिष्णु नहीं होना चाहिए। दुष्ट और पापिष्ठ का दमन अवश्य कर देना चाहिए। पाप-निवृत्ति के लिए केवल उपदेश पर्याप्त नहीं यथा कोई करोड़ों उपाय करके केले को सींचे वह तो काटने पर ही फलता है। इसी प्रकार नीच पुरुष विनय से नहीं मानता डाटने पर ही झुकता है (रा० ५, ५१)। बिना भय के प्रीति नहीं होती (रा ५ ५०)। मूर्ख से विनय कुटिल से प्रीति कृपण से नीति स्वार्थी से ज्ञान लोभी से वैराग्य क्रोधी से शान्ति और कामी से भगवद्-कथा की चर्चा करने से वैसा ही फल होता है जैसा ऊसर में बीज बोने से (रा० ५, ५० १ २)।

धर्म-चर्चा की सरलता, धर्माचरण की कठिनता—पुण्य-धर्म की चर्चा करना अत्यन्त सरल है उसके अनुसार आचरण करना ऐसा नहीं। दूसरों को उपदेश देने में लोग बड़े कुशल होते हैं किन्तु स्वयं उस उपदेश का पालन कितने करते हैं (रा० ६, १०० १) ? राक्षसराज रावण ने यही तो किया था वह अपनी पत्नी को उपदेश देता किन्तु स्वयं उसका पालन न करता था।

सत्संग से पुण्यार्जन—सत्संग निश्चय ही लाभ है और कुसंग हानि। आँधी के साथ धूल भी आकाश की ओर चढ़ जाती है किन्तु पानी के संसर्ग से वह कीचड़ बन नीचे बैठती है। घर में तोता-मैना को जैसी शिक्षा होती है उसी के अनुकूल वे राम नाम लेते या गाली देते हैं। कुसंग से धुआँ कालिख कहलाता है वही धुआँ सुसंग में सुन्दर स्याही बन कर पुराण लिखने के काम आता है और वही बाष्पमय धुआँ जल अग्नि और पवन के संग से बादल होकर जगत् को जीवन देने वाला बन जाता है। ग्रह औषधि जल वायु और वस्त्र ये सभी कुसंग और सुसंग पाकर संसार में भले बुरे पदार्थ हो जाते हैं (रा० १ १२, ४ ६, ११)। सत्संग में अधिक दिन रहने से सब संशय नष्ट हो जाते हैं। संतसमाज को छोड़ राम चर्चा कहीं नहीं होती जिसके बिना माया का निस्तार नहीं होता। माया-निस्तार के बिना रामचरण में वह प्रीति नहीं होती जिसके द्वारा परम गति प्राप्त होती है (रा० ७ ८४ २ १ १०३ १)। सन्त-समागम के समान दूसरा कोई लाभ नहीं (रा० ७ २१८)। यह बात शिवजी ने पार्वतीजी से कही थी और रामजी ने भी सनकादिक ऋषियों से कहा था कि ऐसे समागम के द्वारा संसार से निस्तार होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि सत्संग की प्राप्ति बड़े भाग्य से होती है और उसके द्वारा बिना प्रयास के ही भव यातना दूर हो जाती है (रा० ७ ३३, ४)। सत्संग मोक्ष का कारण है और कामि संग बन्ध का (रा० ७ ३३)। अतएव गोस्वामीजी का परामर्श है :

भजहि राम तजि काममद करहि सदा सतसंग। रा० १ १०

जीवन के तीन मार्ग—तुलसीदासजी के अनुसार जीवन अखण्ड है और धर्म तथा सदाचार में गहिरा सम्बन्ध है। अतएव उन्होंने तीन भिन्न किन्तु समान जीवन मार्ग सुझाये हैं। पहला मार्ग तो दीर्घ और कठिन है और कर्मठ लोगों के लिए ठीक है। दूसरा सब से छोटा और विचार-शील पुरुषों के अनुरूप है, और तीसरा भावुक पुरुषों के लिये अनुसरणीय है। तथापि तीसरा मार्ग सर्व-साधारण के लिये उचित है और गोस्वामीजी उसकी प्रशंसा करते हैं। प्रथम मार्ग में बारह व्रतों का विधान है

भगवद्भक्ति; द्वैत-बुद्धित्याग विमुख-त्याग मन बुद्धि चित्त अहंकार से उपरति पंच ज्ञानेन्द्रियों पर नियन्त्रण काम क्रोध आदि षड्रिपुओं पर विजय रस रक्त मांस मेद अस्थि मज्जा और शुक्र इन सात धातुओं से बने हुए शरीर पर विचार परोपकार में वृत्ति यह धारणा कि रामव्यापी पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश मन बुद्धि और अहंकार-वाली अष्टधा प्रकृति से परे हैं अहंकार-युक्त शरीर की व्यर्थता; दस इन्द्रियों का निग्रह मन का दमन दूसरों के लिये त्याग जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति का अतिक्रमण गोपाल अर्थात् इन्द्रियों के नियन्ता का भजन और प्रेमी भक्त के साथ राम का भजन (वि० २०३)। सब से छोटा किन्तु अध्यात्म-समन्वित मार्ग भी निर्धारित है। भगवान् के प्रेम की प्राप्ति के निमित्त जीव को मैं-तू, तेरा मेरा मुझे-मेरा आदि भावनाओं का त्याग कर देना चाहिये (वै० सं० ११ वि० ११८ ४ १२० ५)। सारा संसार अहंकार की अग्नि से प्रदीप्त है किन्तु जो शान्ति रूपी शीतल जल का स्पर्श कर लेता है वह इस अग्नि में नहीं जलता। ऐसी अग्नि से बचने के निमित्त राग-द्वेष का त्याग अनिवार्य है (वै० सं० ५३ ५४ ५५)।

गोस्वामीजी ने एक तीसरा मार्ग भी सुझाया है। उसका अनुसरण किया जा सकता है अतएव उन्होंने उसे प्रशस्त समझा है। वे उसे शिव-भक्ति-मार्ग या संक्षेप में केवल शिव-मार्ग कहते हैं जिसका अर्थ है कल्याण-मार्ग। यह मार्ग समता संतोष विवेक और सत्संग पर आग्रह करता है, तथा काम क्रोध लोभ मोह मद राग द्वेष के निःशेष परिहार पर भी। साधक के कर्ण राम-कथामृत पान करें, मुख भगवन्नाम का उच्चारण करे उसके हृदय में हरि का निवास हो उसका सिर भगवान् के चरणों में हो उसके कर सेवा में रत हों और उसके नेत्र कृपालु राम के सर्वत्र दर्शन करें—यही भक्ति है, यही वैराग्य है यही ज्ञान है और इसी से भगवान् प्रसन्न होते हैं। अतएव इस शुभ व्रत का आचरण करना चाहिए। यह शिवजी का बताया हुआ मार्ग है और कल्याणकारी है। इस पर चलने से स्वप्न में भी भय नहीं रहता (वि २०५)।

निष्कर्ष—अतिभौतिक दृष्टि से सत्य से बढ़ कर और कोई धर्म नहीं आचार की दृष्टि से परहित के समान कोई पुण्य नहीं (रा० २ २८ ३ २, ९५, ३ ३ ४२ ५, ७ ४१ १ ७ २०७ ७)। व्यवहारतः अहिंसा धर्म का नकारात्मक और परहित उसका भावात्मक रूप है। इसी प्रकार अतिभौतिक रूप में असत्य पाप है और आचार के स्तर से स्वार्थ जिसका स्थूल रूप पर-पीड़न है (रा० २, ९८ ३ ७ ४१ १ ९९, ३)। आचरण के तीन मार्गों में से तुलसीदासजी ने 'शिवमार्ग' को ही प्रशस्त समझा जो सभी पुण्य-काम जीवों के लिये कल्याणप्रद है।

(घ) स्थान और कर्तव्य

वर्णाश्रम—तुलसीदास जी ने कलियुग के वर्णन में विभिन्न वर्ण और आश्रमों का उल्लेख करते हुए बताया है कि कौन व्यक्ति शोचनीय है (रा ७ १२१ १२६ २, १७२ १७४)। वर्णन से यह प्रतीत होता है कि वे वर्णाश्रम-धर्म के व्यतिक्रम को बुरा समझते थे।

वर्णाश्रम-धर्म में तुलसी की आस्था स्मृतियों के अनुसार है जिसमें प्रत्येक

वर्ण के लिये कर्त्तव्यों का निर्देश हुआ है। उदाहरणतः मनुस्मृति ने ब्राह्मण के लिये अध्ययन, अध्यापन यजन याजन, प्रतिग्रह और दान क्षत्रिय के लिये दान, यजन अध्ययन इन्द्रिय-निग्रह वैश्य के लिये गोपालन दान यजन अध्ययन कृषि व्यापार और शूद्र के लिये सेवा का विधान किया है।

चारों वर्णों के विभाजन का आधार जन्म है। ऋग्वेद (१० ९९, १२) के अनुसार ब्राह्मण परम पुरुष का मुख था क्षत्रिय भुजाएँ और वैश्य जंघाएँ, शूद्र उसके चरणों से उत्पन्न हुआ। वेद मनुस्मृति और गीता (१ ४ ११ ४ १२) भी वर्ण व्यवस्था को जन्म से मानते हैं। तुलसीदास जी भी ऐसा ही मानते हैं।

साधारण और विशेष धर्म—धर्म दो प्रकार का होता है साधारण और विशेष। साधारण तो मनुष्य मात्र के लिए है। मनुजी के अनुसार वह दशविध है धृति क्षमा दम अस्तेय शौच, इन्द्रिय निग्रह धी विद्या सत्य और अक्रोध। गोस्वामी जी स्थल-स्थल पर इनकी महिमा विविध प्रकरणों में गाते रहे हैं। विशेष धर्म वर्ण आश्रम वर्णाश्रम तथा समाज-स्थान के अनुसार होता है। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण हैं। स्मृतियों में इनके अलग अलग कर्त्तव्यों का वर्णन है। ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम हैं, जिनके अलग अलग धर्म हैं। तदनन्तर वर्णाश्रम के अनुसार कर्त्तव्यों का विधान है यथा ब्राह्मण ब्रह्मचारी और क्षत्रिय ब्रह्मचारी के आचारों में अन्तर है। समाज में स्थान के अनुसार भी स्मृतियों में कर्त्तव्यों का भेद है—यथा राजधर्म प्रजाधर्म नारी-धर्म पितृधर्म पुत्रधर्म भ्रातृधर्म स्वामिधर्म सेवक-धर्म पतिधर्म पत्नी-धर्म। गोस्वामी जी ने दशरथ और कौशल्या राम और सीता राम और लक्ष्मण राम और भरत वशिष्ठ और राम विश्वामित्र और राम राम और हनुमान्, राम और अंगद राम और सुग्रीव राम और अयोध्यावासी आदि के वर्णन में जीवन के विभिन्न सम्बन्धों के आदर्शों का ऐसा सुन्दर चित्रण किया है जैसा कदाचित् विश्व में अन्यत्र उपलब्ध नहीं।

(क) नारी का स्थान

नर-नारी का अपार्थक्य—भगवान् शिव के अर्धनारीश्वर-रूप से एवं मनु[1] के लेख से यह प्रतीत होता है कि स्त्री पुरुष का सम्बन्ध अविच्छेद्य है। प्लेटो ने लिखा है कि पहले नर-नारी का एक ही शरीर था किन्तु पीछे से देवताओं के कोप से स्त्री और पुरुष शरीरतः अलग कर दिये गये। प्राचीन काल में कोई यज्ञ बिना पत्नी के सफल नहीं हो सकता था।[2] अनेक स्त्रियाँ वैदिक मंत्रों की ऋषि हैं। त्रिमूर्तियाँ सपत्नीक हैं यथा—ब्रह्मा-ब्रह्माणी विष्णु-लक्ष्मी शिव पार्वती। देवताओं की भी पत्नियाँ हैं। जैसे इन्द्र की इन्द्राणी। प्राचीन भारत के संस्कृति-गगन में अनेक महिला-तारएँ उपलब्ध हैं यथा—संध्या वाक्, सूर्या शची अपाला, अदिति अरुन्धती लोपामुद्रा अनसूया शाण्डिली देवहूति कात्यायनी मैत्रेयी गार्गी सुलभा शाश्वती ममता सावित्री मदालसा शैव्या दमयन्ती सुकन्या शकुन्तला विदुला, गान्धारी माद्री कन्याकुमारी। नारी गृहलक्ष्मी समझी जाती थी।

---

१ मनुस्मृति १ ३२। २. वही।

नारी का प्राचीन स्तर—भारत के प्राचीन साहित्य में नारी के स्वभाव और स्तर के सम्बन्ध में परमोत्कृष्ट विचार उपस्थित किये गये हैं। वह पुरुष के साथ समानाधिकार का उपभोग करती और पुरुष से भी दृढ़तर और बलीयसी (ऋक ५, ६१ ६-८) होने के कारण उसकी इच्छाओं की एवं सुख-साधनों की पूर्ति करती थी (बृहद्० १ ४)। विवाह के पश्चात् ऐसी आशा की जाती थी कि वह अपने श्वसुर श्वश्रू देवरों और ननदों पर पूर्णाधिकार प्राप्त कर ले (ऋक १० ८५, २६ ४८)। वह अपने पतिगृह में आदर-मान के योग्य समझी जाती थी (महाभारत अनु० ११ १-७) क्योंकि देवता भी वहीं रमते हैं जहाँ स्त्रियों का आदर होता है (मनु० ३ ५६)। वास्तव में वह पतिगृह की रानी थी (अथर्व० १४ १ ४३)।

आश्चर्य है कि उक्त साहित्य में ऐसे उद्‌गार भी मिलते हैं जिन्हें अनुचित समझना चाहिए। समस्त बुराई की जड़ (महाभारत अनु० ८ १२ २२ २६) छुरेकी तीक्ष्ण और अग्नि सी जलती हुई (वही० ११ ४० ४२) वह धनिक को ग्रहण कर लेती और निर्धन को त्याग देती है (रामायण ३ ११ ५-६) अपवित्र असत्यनिष्ठ और क्रूरा नारी का (मनु ९, १७ १८) हृदय वस सालावृक का सा होता है (ऋक १० ६५ १५) जो हँसा-हँसा कर मार डालती है। किन्तु ये उद्‌गार अपवाद हैं सिद्धान्त नहीं।

नारी-गौरव का ह्रास—किन्तु मध्यकालीन भारत में स्त्री की निन्दा और उससे घृणा करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गयी थी। कदाचित् कारण यह था कि जैन और बौद्ध मठों में स्त्रियों का भी प्रवेश [भिक्षुणी के रूप में होता था। इससे आचार में शिथिलता आ गयी थी। अतएव ऐसे कथन की आवश्यकता पड़ गयी कि नारी परमार्थ के साधन में अड़ंगा है। तत्कालीन सन्त लोग नारी और नारीत्व की निन्दा एक स्वर से करते हैं। योगवासिष्ठ में लिखा है कि 'अविचारशील मनुष्य को स्त्री कुछ काल के लिये ही सुन्दर प्रतीत होती है वास्तव में उसके शरीर में कोई सौन्दर्य नहीं अज्ञानवश हम उसे सुन्दर समझते हैं (१ २१ ८)। सन्त कबीर ने नारी निन्दा की है

चलो चलो सब कोइ कहै पहुँचे बिरला कोय।
एक कनक अरु कामिनी दुरगम घाटी होय॥

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने भी कामिनी-कांचन के त्याग पर आग्रह किया है।

विदेश में नारी का स्तर—ऐसी प्रवृत्ति पश्चिम में भी लक्षित होती है। एक लैटिन कहावत है कि 'नारी घर का कष्ट है (Woe) है,' शेक्सपीयर की उक्ति के अनुसार 'सुन्दरी और सुरा एवं द्यूत और ढोंग सम्पत्ति को घटाते तथा आवश्यकताओं को बढ़ाते हैं।'[1] पोप की उक्ति भी उचित है कि 'हँसी को नंगे पैर चलते देखने की अपेक्षा नारी को रोते देखना कष्टकर नहीं'।' उसी नाम की यह और लोकोक्ति है' कि 'मनुष्यों में (अनेक) अवगुण होते हैं। पर स्त्रियों में केवल दो न उनकी अपनी

---

१ जे० ई० इंग्लिश प्रवर्ब्स ११७० और उसके संस्करण।

में श्रम है न उसकी करनी में। एलेग्जेंडर पोप ने लिखा कि मनुष्यों में से कुछ तो व्यवसाय की ओर और कुछ सुख की ओर प्रवृत्त होते हैं किन्तु प्रत्येक नारी हृदयतः फेमेनेम्स पतिता (Rake) होती है।[1] तुलसीदास के समीपस्थ समकालीन शेक्सपियर ने लिखा कि 'हे नारी तेरा नाम हीनता है।'[2] ईव रतन के समय भगवान् ने उससे कहा था कि 'तेरी इच्छा तेरे पति के निमित्त होगी और वह तुझ पर शासन करेगा।'[3]

शास्त्र निषेध—प्राचीन काल में स्त्रियाँ वेद मन्त्रों के दर्शन तथा ब्रह्म विद्या एवं भौतिक विज्ञानों का अध्ययन करती थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका यह गौरव पीछे से घट गया यहाँ तक कि उनकी उपस्थिति में वेद-पाठ करना तथा उनके लिये यज्ञोपवीत धारण करना अनुचित समझा गया और वे इस विषय में शूद्रवत् समझी गयीं। मुसलमानों के राज्यकाल में उनमेंसे बहुत सी साधारण शिक्षासे भी वंचित रहने लगीं। ऐसी परिस्थिति में तुलसीदास जी ने पार्वती जी से कहलाया है स्त्री होने के कारण मैं श्री रघुनाथ जी का विमल यश सुनने की अधिकारिणी नहीं हूँ—

जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। रा० १ ११३ १

संरक्षा—चंचल और वासनामय होने के कारण नारी पर देखभाल रखने की आवश्यकता है। अथर्ववेद (१४ १ ५२) में उसे पोष्या माना गया है। बचपन में उसे पिता की यौवन में पति की और वृद्धत्व में अपने पुत्र की संरक्षा में रहना चाहिए, क्योंकि मनुजी के अनुसार 'न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।'[4] पार्वती-विदाई के समय मैना वियोग-दुःख से कहती है

कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं॥ रा० १ १०२.१

नारी का पराधीन रहना अच्छा है, क्योंकि जया कि भगवान् राम लक्ष्मण को बताते हैं

महावृष्टि चलि फूटि किआरीं। जिमि सुतंत्र भए बिगरहिं नारी॥ रा० ४, १६ ४

नारी के ऊपर नियंत्रण भी कड़ा होना चाहिए। महासागर की उक्ति है

ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥ रा० ५ ५९ ३

जो इस श्लोक का भावानुवाद है

दुर्जना शिल्पिनो दासा दुष्टाश्च पटहास्त्रियः
ताडिता मार्दवं यान्ति नैते सत्कार भाजिनः। धर्म संहिता।

और जो टेलर व बाटर पोर्ट (१२८० १६२४ ई०) की इस सुप्रसिद्ध उक्ति से परम समानता रखती है —

---

१ मौरल एसेज एपिस्टिल् १ २
२ हैमलेट १, २, १४६।
३ द होली बाइबल जेनेसिस ३ १६।
४ मनुस्मृति ९ ३३, ५ १४। महाभा० अनु ४५ १३, याज्ञ० १३४।
५ मनुस्मृति ९, ३३। ६ २४ ६, ५-११ १ १७७-१८० वायुपुराण ३ ८४ महाभारत अनु० ४५ १४।

ए बुमन ए स्पेनियल एण्ड ए वालनट ट्री
द मोर यू बीट दैम द बैटर दे बी।[1]

नारी के प्रति नारी—जिन आदर्श नारियों का उल्लेख गोस्वामी जी ने किया है उन्होंने स्वयं नारी को अविवेक मोह अविश्वसनीय काम-क्रोध-समन्वित एवं दुर्बल बताया है। पार्वती जी ने भगवान् शिव से कहा कि नारी स्वभावतः जड़ और अज्ञ है (रा॰ १ १४१ २)। अनसूया जी सीता से कहती हैं कि—

सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभ गति लहइ॥ रा॰ ३, ५

शबरी भी मानती है कि

अधम ते अधम अधम अति नारी॥ रा॰ ३ ४१ २

नारी के सम्बन्ध में ये उद्गार देवी ऋषि पत्नी और साधारण स्त्री के हैं।

नारी के आठ अवगुण—किन्तु पुरुषों का क्या मत है? कामी रावण भी अपनी पत्नी मन्दोदरी से कहता है कि नारी में अनेक दोष होते हैं, और स्वभाव से डरपोक वह सम्पत्ति-काल में भी चिन्तित रहती है

समय सुभाउ नारि कर साचा। मंगल महुँ भय मन अति काचा॥
रा॰ ५, ३६, १

आगे चलकर अन्य अवसर पर नारी के आठ अवगुणों का यह उल्लेख

साहस अनृत चपलता माया। भय अबिबेक असौच अदाया॥ रा॰ ६ २२, २

शुक्रनीति के इस श्लोक के अनुसार है

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः। ३, १६३

स्त्रीत्व के प्रति राम की कठोरता—भगवान् राम ने नारीत्व की ओर भी अधिक निन्दा की है नारद जी का मोह दूर करने के लिये वे कहते हैं कि स्त्री अत्यन्त दारुण दुःख देने वाली है वह मोह-रूपी वन के लिए वसन्त ऋतु के समान है ग्रीष्म रूप ही कर जप तप नियम-रूपी जल के स्थानों को सोख लेती है तथा काम, क्रोध मद मत्सर आदि मेंढकों को वर्षा ऋतु होकर हर्ष प्रदान करने वाली है। दुर्वासना रूपी कुमुदों के लिए स्त्री शरद् ऋतु के समान है। विषय-जन्य नीच सुख देने वाली स्त्री धर्म रूपी कमल वन को हिमऋतु बन कर नष्ट डालती है ममता रूपी जवास का वन स्त्री-रूपी शिशिर को पाकर हरा भरा हो जाता है। वह पाप-रूपी उल्लुओं के लिये सुख देने वाली अन्धकारमयी रात्रि है और बुद्धि बल शील और सत्य-रूपी मछलियों के लिये बंसी के समान है। युवती स्त्री अवगुणों की मूल पीड़ा देने वाली और सब दुःखों की खान है (रा॰ ३ ४३ ४७)।

कैकेयी और मन्थरा—स्त्री चरित्र अगम्य है। मंथरा कैकेयी के पास पहुँच कर राम और कौशल्या के विरुद्ध जहर उगलने लगी। जब कैकेयी ने हँस कर पूछा कि क्या बात है तो मंथरा कोई उत्तर न देकर उसास लेने और आँसू ढारने लगी (रा॰ २, १३ १)। यद्यपि महाराज दशरथ राजनीति में दक्ष थे तथापि वे भी कैकेयी की चाल को न समझ पाये। उसने बनावटी मुसकराहट से अपना प्रेम प्रदर्शित किया

१ [illegible]

था। अयोध्यावासियों ने भी इस रानी को बहुत भला-बुरा कहा (रा० २, ४७ १ ४८
उनकी सम्मति में

सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ। सब बिधि अगहु अगाधु दुराऊ॥
निज प्रतिबिम्बु बरुकु गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई॥
काह न पावकु जारि सक का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ॥ रा० २ ४८

तुलसी के भरत व्यास के युधिष्ठिर की भाँति[1] कहते हैं कि—

बिधिहु न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी॥
रा २ १६२

नर-मोहिका—स्त्री में मोहिनी शक्ति है। कौन उसके अधीन नहीं हो जाता जो उसका त्याग करते हैं उन्हें दृढ़ और संयम-शील होना चाहिए। मृगनयनी और चन्द्रमुखी के दर्शन से संतों का मन भी छिन जाता है (रा० ७ ११४ ११५) किन्तु यह विचित्र बात है कि नारी नारी पर मोहित नहीं होती (रा० ७ ११५)।

नारी के कर्त्तव्य—नारी का प्रधान कर्त्तव्य पति-पूजा है। अपनी पुत्री पार्वती को मना का उपदेश है कि शंकर जी की आज्ञा का पालन सदा करो और यह समझो कि पति ही नारी के समस्त धर्मों का सार है।

करेहु सदा संकर पद पूजा। नारि धरमु पति देव न दूजा। रा० १ १२५, २

भरत जी के अनुसार सीता जी अपने पति को देव-तुल्य समझती हैं। अत्रि-पत्नी अनसूया जी ने उन्हें यह उपदेश दिया था[2] —

मातु पिता भ्राता हितकारी। मित प्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥
वृद्ध रोग बस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा॥
रा० ३ ७ १५

इसके अतिरिक्त भगवान् राम ने नारी का एक और कर्त्तव्य बताया है यह है सास ससुर की आज्ञा का श्रद्धा-पूर्वक पालन (रा० २, ६१, ३), यद्यपि सीताजी ने तो पति पूजा को ही सर्वश्रेष्ठ माना है (रा २ ६४)

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई॥
सास ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुन्दर सुसील सुखदाई॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते॥
रा० २, ६४ १२

अनसूया जी के अनुसार स्त्री के लिए मोक्ष का साधन पति-सेवा है। वे कहती हैं—

---

१ महाभारत अनु ११४।
२ तुलना कीजिए : महाभारत अनुशासन पर्व।

बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिव्रत धर्म छाँड़ि छल गहई ॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई ॥

रा० ३ ७ ४

नारी की श्रेणियाँ—अनसूया जी ने नारी की चार श्रेणियाँ इस प्रकार की हैं— जगत् में चार प्रकार की पतिव्रताएँ हैं। उत्तम श्रेणी की पतिव्रता के मन में ऐसा भाव बसा रहता है कि जगत् में मेरे पति को छोड़कर दूसरा पुरुष स्वप्न में भी नहीं है'। मध्यम श्रेणी की पतिव्रता पराये पति को इस प्रकार देखती है समान अवस्था वाले को भाई के रूप में बड़े को पिता के रूप में। निकृष्ट श्रेणी की स्त्री धर्म को विचार कर तथा अपने कुल की मर्यादा को समझकर पाप से बची रहती है। चौथी है अधम नारी जो अवसर न मिलने से या भाग्यवश पतिव्रता बनी रहती है अन्यथा पति को धोखा देकर व्यभिचार करती और मृत्यूपरान्त सौ कल्प तक रौरव नरक में पड़ी रहती है (रा ३ ७ १ ३)।

तुलसीदास के पक्ष में तर्क—गोस्वामी जी ने अपने ग्रन्थों में नारी के सम्बन्ध में जो लिखा है उसे कुछ लोग प्रशस्त नहीं समझते। कुछ विद्वान् इस विषय में तुलसीदासजी को निर्दोष सिद्ध करने के लिये कई तर्क उपस्थित करते हैं। पहला तर्क यह है कि गोस्वामी जी ने अपनी व्यक्तिगत भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति न करके कथा का वर्णन किया है, जिसमें प्रसंग और पात्र के अनुसार अनेक प्रकार के भाव और विचार व्यक्त किये गये हैं। उदाहरणतः भरत अथवा राम की वाणी शोक और आत्मग्लानि की कातर वाणी है और शबरी तथा ग्राम नारियों के शब्द उनकी भक्ति तथा कृतज्ञता को ही व्यक्त करते हैं। सती ने आत्मग्लानि के कारण 'नारि सहज जड़ अज्ञ' कहा था। निम्न उक्ति का सम्बन्ध शूर्पणखा से है

भ्राता पिता, पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी ॥
होइ बिकल मन सकहि न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी ॥

रा० ३, २१ ३

रावण की उक्ति भी प्रमाण नहीं हो सकती क्योंकि वह सत्पात्र नहीं है। डॉ० नगेन्द्र इस तर्क को अधिक संगत नहीं समझते क्योंकि उनकी सम्मति में तुलसी-जैसे भक्त कवि की कविता को एकान्त वस्तु-परक मानना असंगत है उन्होंने अपना काव्य तो 'स्वान्तः सुखाय' लिखा था।[2]

तुलसीदासजी के पक्ष में दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि उन्होंने सभी स्त्रियों की निन्दा नहीं की जिनको निन्द्य समझा है उन्हीं की निन्दा की है। सीता कौशल्या सुमित्रा अनसूया और मन्दोदरी के प्रति श्रद्धा भी व्यक्त की गयी है[1]। किन्तु, जैसा कि डॉ० नगेन्द्र समझते हैं सीताजी राम की पत्नी थीं कौशल्या और सुमित्रा राम की माताएँ थीं अनसूया ऋषि-पत्नी थी और मन्दोदरी का गुण इस लिये गाया गया है कि वह राम के लिए अपने पति से भी लड़ बैठती थी। 'अतएव कहा जा सकता है कि तुलसीदासजी ने केवल राम के नाते इन नारियों में श्रद्धा प्रकट की है।

१ वही।
२ इण्टरव्यू एक विचारक पृष्ठ ३१ [illegible] दिल्ली, १९६६

तुलसीदास के पक्ष में तीसरा तर्क यह उपस्थित किया जाता है कि उन पर देश-काल का प्रभाव था।[1] गोस्वामी जी ने तो परम्परा का अनुसरण किया है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। प्रस्तुत रूप से डॉ॰ नगेन्द्र का प्रश्न है कि यदि ऐसी बात है तो सूर ने ऐसा क्यों नहीं किया, क्या तुलसी-जैसे क्रान्त-द्रष्टा कवि के लिए ऐसी परम्परा का अनुसरण उचित था ?[2]

तुलसी के पक्ष में चौथा तर्क यह है कि वे सन्त थे[3]। उन्होंने अपने ग्रन्थों में जहाँ अनेक बातें साधारण गृहस्थों के लिए कही हैं वहाँ कुछ बातें सन्तों के लिए भी कही हैं, और नारी की निन्दा तो उन्होंने अपने और अपने समान-धर्मी सन्तों के मन को सचेत करने के लिए ही की है। तुलसीदासजी की कई कटूक्तियाँ, यथा महासागर की और रावण की संस्कृत के नीति-वचनों का अनुवाद-मात्र है जिसकी चर्चा यथा-स्थान हो चुकी है।

कटूक्तियों के दो कारण—डा॰ नगेन्द्र ने गोस्वामी जी की कटुता के दो कारण बताये हैं—एक तो यह कि उन्होंने पत्नी की डाट खाई थी और दूसरा यह कि उनकी भी उपासना पुरुष-भाव से पुरुष-रूप भगवान् के लिए है। अन्य दो पद्धतियों के अनुसार, नारी-भाव से पुरुष-रूप भगवान् की उपासना होती है अथवा पुरुष भाव से नारी-रूपा शक्ति की। पिछली दो पद्धतियों में नारी भाव की आवश्यकता एवं महत्ता स्पष्ट है, किन्तु प्रथम पद्धति में जो तुलसीदास जी की है नारी भाव की आवश्यकता नहीं है।[4]

निष्कर्ष—निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि यद्यपि तुलसीदास जी ने नारी के प्रति जो उद्‌गार लेख-बद्ध किये हैं उनमें से कुछ तो हीन पात्रों के मुख से निःसृत होने के कारण और कुछ खिन्नता-दीनता से सम्बन्धित होने के कारण ध्यान देने योग्य नहीं हैं। पर महत्त्वपूर्ण पात्रों की उक्तियाँ तो प्रभाव डालती हैं और भगवान् राम के मुख से भी नारी-निन्दा हुई है। तुलसीदासजी ने यत्र-तत्र अपनी ओर से भी नारी के प्रतिकूल कुछ वचन लिखे हैं यद्यपि उनमें से कुछ प्राचीन श्लोकों के भाव और अनुवाद मात्र हैं। इस प्रकार गोस्वामी जी दोषारोपण से सर्वथा मुक्त तो नहीं परन्तु उनके उद्‌गार सकारण हैं। एक तो उन्हें अपनी पत्नी से उपदेश मिला और दूसरे उन्होंने अपने पूर्ववर्ती ऋषि-सन्तों की परम्परा एवं तत्कालीन देशी-विदेशी विचार धारा का अनुसरण किया। अतएव यदि गोस्वामी जी सर्वथा निर्दोष नहीं तो कोप भाजन भी नहीं हैं। कौशल्या सुमित्रा और सीता के चरित्र-चित्रण में 'वाल्मीकि रामायण' 'अध्यात्म रामायण' और 'हनुमन्नाटक' सहायक हैं किन्तु तुलसीदासजी ने असीम चातुर्य और सावधानी के साथ उनके चरित्र के उत्तम स्थलों को अपनी प्रतिभा से रंग कर उज्ज्वल कर दिया है। इस सहृदय सन्त को यह कभी सह्य नहीं हो

१ देखिए मीरा चतुर, जब्बर मशीनरि की बदम विमर्शिका' प्रो॰ रामकुमार द्वारा 'तुलसी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' पृष्ठ १२।
२ तुलसीदास एक विश्लेषण पृष्ठ ९५।
३ वही, पृष्ठ २२ २६।
४ वही, पृष्ठ २९-३०।

सकता था कि कौशल्या अपने पुत्र को वनवास देने वाले पति के प्रति कटुता प्रकट करे और उसकी मृत्यु के पश्चात् कैकेयी को कुवाच्य कहे कि भगवान् राम अपने श्रीमुख से कैकेयी की बुराई करें, कि सीताजी कैकेयी की कटु आलोचना करें अथवा लक्ष्मण जी को डाँटने में सीमा से बाहर हो जायें और लक्ष्मण भी सीताजी को उद्दण्डता पूर्वक उत्तर दें। वाल्मीकि जी का वर्णन ऐतिहासिक है अतएव सत्य है तुलसीदासजी का चित्रण आदर्शमय है, अतएव उच्च है।

(च) तुलसीदासजी का आचार-परक निष्कर्ष

गोस्वामीजी का आचार-दर्शन संक्षेप में इस प्रकार है आचार का स्रोत माया है और माया ब्रह्म पर आश्रित रहती है। ईश्वर कार्य करने में परम स्वतन्त्र है किन्तु जीव परवश्य शुक और रज्जु-बद्ध मर्कट के समकक्ष है। व्यक्ति का कार्य क्रम हरीच्छा से पूर्व-नियत है और उस कार्य-क्रम का किंचित् आभास ज्योतिष-अथवा आकृति-विज्ञान एवं शकुन विचार से मिल सकता है। हरीच्छा का व्यावहारिक रूप कर्म-सिद्धान्त है जिसके कारण पुनर्जन्म होता है। व्यक्ति में विवेक निहित है अतएव वह अपने कार्य के लिए उत्तरदायी है यद्यपि अज्ञानवश कभी-कभी ऐसी प्रतीति भी होती है कि कर्ता कोई है और भोक्ता कोई अन्य है। सत्कार्यों का फल सुखद होता है अतएव वे विहित हैं। सफल सदाचार के निमित्त सत्संग वांछनीय है। पर मार्ग —वैराग्य अथवा ब्रह्मभाव अथवा जन्म-मरण के संकट से मुक्ति—राम-नाम जप के द्वारा अत्यन्त सरल है।

कर्म सिद्धान्त सब के लिए लागू है यह नियत और अपरिहार्य है। इसके अनुसार जो जैसा करता है वह वैसा भरता है। पाप के निवारण अथवा शमन के लिए शान्ति-कर्मों की आवश्यकता है, यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि ऐसा करने से पाप की निवृत्ति हो ही जाय, क्योंकि ज्ञान माया तप तथा अन्य गुणों के रहते हुए भी पाप तो रक्त-बीज राक्षस की भाँति बढ़ता रहता है। अतएव भगवत्प्रसाद ही समस्त पापि व्यापियों के लिए रामबाण है —

करतहुँ सुकृत न पाप सिराहीं। रक्तबीज जिमि बाढ़त जाहीं॥
हरनि एक अघ-असुर जालिका। तुलसिदास प्रभु-कृपा-कालिका॥ वि० १२८

अतिभौतिक दृष्टिकोण से, सत्य धर्म है और असत्य अधर्म है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से पुण्य द्विविध है—अहिंसा और परहित। पुण्य का अभावात्मक रूप अहिंसा है और भावात्मक रूप परहित है इसी प्रकार पाप भी द्विविध है—स्वार्थ और परपीडन। पाप का मूलरूप स्वार्थ और विभाव तथा सामाजिक रूप है परपीडन। प्रत्येक व्यक्ति को वर्णाश्रम धर्म का पालन करना और कालीकाल से बचना चाहिए। विशेषतः कल्याणमय 'पिपमार्ग' का अनुसरण प्रशस्त और वांछनीय है वि०२०२।

राजनीति

राम राज्य

प्राक्कथन—राम-राज्य राज-तन्त्र का शुद्ध रूप था किन्तु वह ऑटोक्रसी अथवा डस्पोटिज्म से अप्रभावित था। कारण कि राजा प्रधान अवसरों पर अपने मंत्रियों से जो ऋषि अथवा क्षत्रिय ब्राह्मण होते थे और सम्पूर्ण परिषद् का भी परामर्श लेता था।[1] 'पंच' शब्द पाँचजनों की सभा का द्योतक है (रा० २ ५, २)। राज्य के कार्य में प्रजा हस्तक्षेप करना नहीं चाहती थी तथापि उसका हाथ अवश्य था। प्राचीन भारत में राजा के लिए असीम सम्मान प्रदर्शित किया जाता था क्योंकि वह पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। यदि कोई राजा अत्याचारी होता तो प्रजा उसे सिंहासन से च्युत कर यमलोक को पहुँचा देती थी। प्रजा अपने अधिकार का प्रयोग शक्ति-संचय के निमित्त नहीं किन्तु दोष निवारण के लिये करती थी। पौराणिक कथा है कि ऋषियों ने वेन की जंघा को मथ कर पृथु नाम का पुत्र उत्पन्न किया और उसे सिंहासन पर आरूढ़ कर दिया था। वेन-पुत्र पृथु की चर्चा ऋग्, अथर्व और शतपथ में उपलब्ध है और 'विष्णु पुराण' तथा अन्य पुराण किंचित् हेर-फेर के साथ साथ विवरण को उपस्थित करते हैं। तुलसीदासजी के अनुसार राजा वेन ने लोक-वेद विरुद्ध अनाचार की सीमा पार कर दी थी रा० २ २२६। अतएव क्रुद्ध प्रजा ने उसको मार दिया। ऋषियों ने मृत नरेश की जंघा से एक अत्यन्त काले ह्रस्वकाय मनुष्य को उत्पन्न किया वह निषाद हो गया और उसमें मृत राजा के पाप समा गये। तब ऋषियों ने शव की भुजाओं को मथा और उस से तेजपुंज पृथु उत्पन्न हुआ जिससे प्रजा सन्तुष्ट रही।

व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य—राम-राज्य लोकतंत्रात्मक था। उसकी प्रजा का प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण स्वतन्त्रता का उपभोग करता था जन-साधारण स्त्री-पुरुषों ने राम वनवास के अवसर पर रानी कैकेयी की निःसंकोच कटु आलोचना की थी (रा० २ ४१ १)। राम के लिये प्रजा का प्रेम इसी बात से स्पष्ट है कि वह राम के पीछे-पीछे वन जाने के लिये कितनी व्यग्र थी। राम के कहने से लोग लौट जाते किन्तु प्रेम के कारण तुरन्त लौट आते थे और जब वे उन्हें सोता छोड़ गये तो वे जलहीन मत्स्य की भाँति विकल हो गये थे (रा० ९, ८३ २, ८५, २, ८६ १)। यह प्रेम एकांगी नहीं था। राम भी उन्हें प्यार करते थे। कवितावली (७ ११८) और गीतावली (७ २५-२७) में तुलसीदासजी ने सीता-वनवास की चर्चा की है जो वाल्मीकि रामायण' और 'अध्यात्म रामायण' में कुछ अधिक विस्तार से हुई है। राम ने सीता को वनवास इस कारण दिया कि उनके राज्य का एक अत्यन्त साधारण व्यक्ति उन पर कलंक आरोपित कर रहा था। लोकतन्त्र में प्रत्येक व्यक्ति का, यदि वास्तव

---

१ आत्म-शासन मनमाना-शासन।   २ वाल्मीकि १ २,११ २ ६,१२ १

में नहीं तो सिद्धान्ततः समस्त, समान अधिकार है। अतएव राम ने यह जानने की चिन्ता नहीं की कि कलंक का आरोप किसी प्रभावशाली दिशा से है अथवा किसी नगण्य व्यक्ति से। तुलसीदासजी ने आरोप का उल्लेख तो किया है (गी० ७, २७ १) किन्तु सीतावनवास के लिये वे एक अन्य कारण उपस्थित करते हैं। वह यह है राम को द्वादश सहस्र एवं पचपन वर्ष तक अपने एवं अपने पिता के निमित्त जो अपने पुत्र के वनवास के कारण असामयिक मृत्यु को प्राप्त हुए थे, राज्य करना था। सीता वनवास के पूर्व-दिवस की संध्या को राम का निजी राज्य-काल समाप्त होने वाला और दशरथजी का प्रारम्भ होने वाला था। वे अपने पिता की ओर से शासन करने वाले थे अतएव वे सीताजी को इस राज्यकाल में अपने वामांग में नहीं रख सकते थे। पत्नी को वनवास देने के अतिरिक्त कोई उपाय न था (गी० ७ २५)। राम ने व्यापक उत्तरदायित्व को अपनाया। यदि उन्हें राज्य का लोभ होता तो वे अनेक विवाह कर सकते थे¹ क्योंकि उन दिनों बहु विवाह न दोष था न अपराध। सूर्यवंश में उनके अनेक पूर्व-पुरुषों ने एक से अधिक पत्नियाँ अंगीकार कीं और स्वयं उनके पिता दशरथ की भी तीन पटरानियाँ थीं। राम ने अश्वमेध के समय जीवित पत्नी के स्थान पर उसकी स्वर्ण-प्रतिमा अपने वामांक में स्थापित की। इससे प्रतीत होता है कि उन्हें अपनी पत्नी से कितना अधिक प्रेम था कदाचित् अपनी प्रजा के लिये और भी। यही कारण है कि प्रजा भी उनके लिये तब मरती थी और आज भी करोड़ों भारतवासी रामराज्य की सुखद-स्मृति बनाये हुए हैं।

धर्मराज्य—यदि विपरीत-रुचि राजाओं के उदाहरणों को छोड़ दिया जाय तो कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत में राज्य-सत्ता कभी धर्म-निरपेक्ष नहीं रही, उसके कार्य लोक और वेद के अनुसार संचालित होते थे (रा० १ ४१ १ १८१ २, ११ ७, २९, २, ४१ १)।

ईश्वर का प्रतिनिधि—राजा को उत्पत्ति दिव्य है उसमें ऐश्वर्य है (रा १ ४१ ४)। दिव्य प्रतिनिधित्व की कल्पना भारत में ही नहीं रही अन्यत्र भी है यथा जापानी लोग भी अपने राजा को ऐसी ही दृष्टि से देखते रहे हैं। भारत में यह धारणा अज्ञात काल से है क्योंकि मनुस्मृति के अनुसार ईश्वर ने इन्द्र वायु, यम सूर्य अग्नि वरुण चन्द्र और कुबेर से राजा का निर्माण किया (७ ३ ५।)

ज्येष्ठ-पुत्र का उत्तराधिकार—राम-राज्य की दूसरी विशिष्टता धर्म एवं अन्यत्र यह है कि ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होता है। प्रतापभानु अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे अतएव वे सिंहासनारूढ़ हुए और उनके भ्राता अरिमर्दन उनकी आज्ञा का पालन करते थे (रा० १ १८० ३)। वशिष्ठजी ने भरत से कहा कि वेद का विधान और लोकाचार यह है कि वही मुकुट को धारण करता है जिसे पिता देता है (रा० २ १७५, २)। राम किंचित् खेद से इस प्रथा का उल्लेख इस प्रकार करते हैं मैं और मेरे भाई साथ उत्पन्न हुए और हम बचपन में साथ खाये,

---

¹ वाल्मीकि रामायणम् का यह श्लोक विचारणीय है :
इष्टान् राजु संकल्पान् रामस्य समाप्य निवेदः ।
समाप्य दक्षिणे सुधरे भरतस म २ प ११।

सोते और खेलते रहे, हमारा कर्णच्छेदन यज्ञोपवीत विवाह, संक्षेप में हमारे सभी संस्कार साथ-साथ हुए हैं। हमारे निष्कलंक वंश में यही एक दोष है कि ज्येष्ठ ही अपने छोटे भ्राताओं को छोड़ कर सिंहासन पर आरूढ़ होता है (रा० २, १०, २४)। राम का यह कथन केवल लोक-दिखावा न था, क्योंकि लंका से लौटने पर वे अयोध्या के सिंहासन पर बैठे तो किन्तु एकाकी नहीं। राम-पंचायतन के राज्य-मंच पर केवल राम और सीता के लिये नहीं अपितु उनके भाई भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न के लिये भी आसन थे। छठे हनुमान् तो सेवक थे। कदाचित् राम-पंचायतन ही पंचायत राज्य का प्रथम बीज है, जो तब से अरिष्टशासन अल्पशासन और जनतंत्र आदि अनेक रूपों में पल्लवित हुआ है।[1]

राजा की योग्यता—राजा की योग्यताओं कर्तव्यों और भावों का विवरण इस प्रकार है उसे उचित नीति ऐश्वर्य, (रा० १ १२७ २) बल प्रताप और शील का निकेतन (रा० १ १५० २) होना, तथा वेद विधि से प्रजा का संरक्षण और शासन करना चाहिये (रा० १ १५१)। मनुजी के अनुसार उसे सत्यवादी विवेकी बुद्धिमान् और न्यायी होना धर्म अर्थ काम वेद और धर्मशास्त्र का अध्ययन करना तथा काम क्रोध लोभ अन्य दोषों से सतर्क रहना चाहिये (७, २६ ३१)। तुलसीदासजी ऐसा मानते-से हैं कि शीलनिधि (रा० १ १२७ १) और सत्यकेतु (रा० १ १८ १) दोनों ही राजा इन सब अथवा बहुत से गुणों से समन्वित थे। राजा को यह ध्यान रखना चाहिये कि मेरे राज्य में यति मुनि तो कष्ट नहीं पाते अन्यथा वह अग्नि के बिना ही भस्मसात् हो जाता है अतएव उसका कर्तव्य है कि वह ब्राह्मणों को संतुष्ट रखे (रा० २ १२६ १२)। यह कथन मनुजी के अनुकूल है जिनका यह आदेश है कि मृत्यु को प्राप्त होता हुआ भी राजा किसी वेद-पाठी पर कर न लगाए और उसे भूखा न मरने दे। विद्वान् की जीविका के लिये उचित प्रबन्ध होना आवश्यक है (७ १३१ १३६)। राजा को उचित है कि वह अपनी प्रजा से प्रेम करे और उसके कल्याण की रक्षा करे क्योंकि—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी॥
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥
रा० २ ७१ १ १७२ २

राजा के लिये नीति का ज्ञान तो आवश्यक है ही उसे सब के साथ मृदु वचनों के द्वारा तथा योग्य व्यवहार करना चाहिये। प्रतापभानु ने जो वर चाहा था उसमें आशा-वादी नरेश की आदर्श इच्छाएं सम्मिलित हैं (रा० १ २ ४)। वे ये हैं—

जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ।
एक छत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ॥ रा० १ १६४

भले-बुरे राजाओं के लिये उपमाएँ—समय की गति राजा की योग्यता पर निर्भर है। वायु तो वायु ही है वह न अच्छी है न बुरी किन्तु स्वच्छ या अपवित्र वस्तु के संसर्ग से वह सुगन्ध या दुर्गन्ध हो जाती है। इसी प्रकार समय समय है यदि राजा

---

१ अरिस्टोक्रेसी ओलिगार्की डिमोक्रेसी।

बुरा है तो लोग उस समय को कठिन बताते हैं, और यदि भला है तो उसे सुखमय कहते हैं

कथा अमल पावन पवन पाइ कुसंग सुसंग।
कहिय कुबास सुबास तिमि काल महीस प्रसंग ॥ दो० ५०५

कुनृप खजूर के समान है जिसकी कंटकमय शाखाएँ गिर पड़ती हैं वह स्वयं नष्ट हो जाता है और अपनी अनीति के कारण अपनी जाति का पतन करता है दो० ५१४ ५१५। इसके विपरीत माली, सूर्य और किसान के समान सुनृप है दो० ५०७। जिस प्रकार माली कुम्हलाते हुए पौधों में पानी लगाता है उस प्रकार उदार नरपाल असहाय और दीनों की रक्षा करता है। जैसे सूर्य समुद्र से अलक्षित रूप से जल का ग्रहण कर लेता है वैसे निज नरेश जनता पर परोक्ष रूप से कर लगाकर जनता का हित करता है तथा जिस प्रकार किसान खेत जोतता खाद डालता बीज बोता, पानी देता एवं देखभाल करता है और जब फसल तैयार हो जाता है तब उसे काट लेता है इसी प्रकार राजा भी अपनी प्रजा का हित करता है—

माली भानु किसान सम नीति निपुन नरपाल।
प्रजा-भाग बस होहिंगे कबहुँ कबहुँ कलिकाल ॥ दो० ५०७
बरषत हरषत लोग सब करषत लखै न कोइ।
तुलसी प्रजा-सुभाग ते भूप भानु सो होइ ॥ दो० ५०८

शासक के सिद्धान्त—तुलसीदासजी ने शासक के लिये कुछ सिद्धान्तों का निरूपण किया और उनके पालन करने का उपदेश दिया है। राजा को कभी नीति की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। रामने, वन के लिये प्रस्थान करते समय प्रजा को परामर्श दिया था कि तुम भरत की आज्ञा का पालन करना और भरत के लिए, जो उस समय मातुल-गृह में थे ये यह संदेश छोड़ गये थे 'जब भरत आयें तो कहना कि अब तुम राजा हो गये हो अतएव नीति को न भूलना; मन वाणी और कर्म से प्रजा का हित करना निरपेक्ष होकर अपनी माताओं की आज्ञा का पालन करना भाई का कर्तव्य निभाना और पिताजी की माताओं को तथा अन्य सम्बन्धियों की देखभाल रखना जिससे उन्हें मेरे जाने का दुःख न हो' (रा० २, १५२ १)। इसी प्रकार अप-मान का बदला लेने के लिए शूर्पणखा रावण को उपदेश देती है—

राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। श्रम फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ॥
संग तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान तें लाजा॥
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी॥
रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि।
अस कहि बिबिध बिलाप करि लागी रोदन करन॥ रा० ३ २० ४-२८

प्रतापभानु अपनाने कपट मुनि के फेर में पड़ गये थे उस विषय में तुलसी का उपदेश है:

रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु।
अजहुँ देत दुख रबि ससिहि सिर अवसेषित राहु॥ रा० १ १७०॥

कुछ अन्य उपदेश—अति साहस बुरा है। मनुष्य को सतर्क और सावधान

रखना चाहिए। शास्त्री, मर्मज्ञ, स्वामी, शठ धनवान, वैद्य, बन्दी, कवि और मनो सिद्धानी इन नौ पुरुषों से विरोध करना ठीक नहीं (रा० १ ११ २। शास्त्र का पाठ मन बार-बार करना चाहिए और राजा को चाहे कितना ही सुसेवित वह क्यों न हो, अपने वश में नहीं समझना चाहिये

सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिय। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिय

रा० ३ ४१, ४

जब सचिव, वैद्य और गुरु भय अथवा आशा से मीठा बोलने लगें तो समझ लेना चाहिये कि राज्य धर्म और स्वास्थ्य का शीघ्र नाश हो जायगा

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस

राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास ॥ रा० ५, ३७

रावण के सचिव रावण की हाँ-में-हाँ मिलाते थे जिससे अन्त में उसे दुःख भोगना पड़ा (रा० ५, ३७ १)। दूसरे की पत्नी की इच्छा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह स्त्री या तो अपयश देती है अथवा दुःखचर का कार्य करती है। विभीषण और माल्यवान ने रावण से कहा था कि यदि आप कल्याण बुद्धि प्रशंसा सुगति और अनेक प्रकार के सुख चाहते हैं तो पर-नारी के ललाट को चतुर्थी के चन्द्रमा के समान समझें (रा० ५, ३७ १ ४० १)। सतर्कता के निमित्त अपरिचित व्यक्ति को अपना नाम नहीं बताना चाहिए, नहीं तो कभी-कभी पछताना पड़ता है। यह राजनीति है कि राजा अपना नाम किस-किसी को और जहाँ-तहाँ न बताए

सुनहु महीस असि नीति जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप ॥ रा० १ १६१ ॥

शत्रु, योद्धा और राजा के साथ व्यवहार में विशेष सावधानी की आवश्यकता है, क्योंकि ये लोग छल-बल से अपना काम बना लेना चाहते हैं

बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहइ निज काजा

रा १ १८८, १

तीन प्रकार की जनता—निषादराज गुह ने अपने अनुयायियों से घाट पर एकत्र हो जाने और यह जानने के लिए कि भरत क्यों आ रहे हैं यह कहा था कि लोग तीन प्रकार के होते हैं—मित्र शत्रु और मध्यमति (उदासीन) (रा० २, १९१)। शत्रु और मित्र का पहचानना कठिन नहीं क्योंकि वैर और प्रेम छिपाने से नहीं छिपते :

बैरु प्रीति नहिं दुरइ दुराए ॥ रा० २, १९१, १ ॥

उचित व्यवहार—प्रत्येक के साथ यथायोग्य व्यवहार उचित है। राम में यह गुण था। राम का व्यवहार जनक विश्वामित्र वामदेव, जाबालि मन्त्री, नगर वासी नर-नारी उत्तम मध्यम और निम्न वर्गों के व्यक्तियों से उचित रहा इसी प्रकार सीता का भी (रा० ७ १११ १-४)। किन्तु राम को दुष्ट का कोई लिहाज न था क्योंकि उनके विचार से शठ से विनय कुटिल से प्रीति कृपण से नीति स्वामी से ज्ञानचर्चा लोभी से वैराग्य का वर्णन क्रोधी से शम और कामी से हरिकथा की चर्चा इस प्रकार व्यर्थ है जैसे ऊसर भूमि में बीज-वपन (रा० ५, ५० १ २)। भय के बिना प्रीति नहीं होती नीच व्यक्ति विनय से नहीं मानता किन्तु डाँटने से ही नम्र होता है, यथा' केले में कितना ही जल दिया जाय वह तब तक नहीं फलता जब तक उसे काटि

सँख्या नहीं (रा० ५, ६०, ६१)। लक्ष्मण जी का मत है कि अपमान को सहन नहीं करना चाहिए, क्योंकि लात मारने से धूल भी सिर पर आ चढ़ती है (रा० २ २३०)।

राजमद—राजा के लिए सब से बड़ी बात यह है कि वह राज-मद से बचता रहे। जब भरतजी सीता राम से मिलने चित्रकूट आ रहे थे तो लक्ष्मणजी राम से इस प्रकार बोले विषयी जीव प्रभुता पाकर, मोहवश मूढ़ हो जाता है भरत नीतिज्ञ हैं, साधु और सुजान हैं और रामभक्त भी जैसा कि सब लोग जानते हैं, किन्तु वे भी राजा बनकर धर्म की मर्यादा मिटाकर चले हैं। वह कुटिल कुबन्धु अवसर देख राम को अकेला समझ, और कुसमय जान कर सेना के सहित इसलिये आया है कि अकंटक राज्य करे। मद के कारण

ससि गुर तिय गामी नघुषु चढ़ेउ भूमिसुर जान।
लोक बेद तें बिमुख भा अधम न बेन समान॥ रा० २ २२८

यद्यपि राम ने लक्ष्मण की यह बात नहीं मानी कि भरत को राजमद हो गया था तथापि उन्होंने यह स्वीकार किया कि राजमद सब से बुरा नशा है और इसका थोड़ा सा भी चसका उस राजा को बिभोर कर देता है जिसने साधु-सभा का सेवन नहीं किया हो—

सब तें कठिन राज मद भाई।
जो अँचवत नृप मातहिं तेई। नाहिं न साधु सभा जेहिं सेई

रा० २ २३१ १४

तुलसी स्वयं कहते हैं

नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं

रा० १ ५९ ४

प्रजा के प्रति—यथा राजा तथा प्रजा यह भारतीय सिद्धान्त है। अतएव सुशासन के निमित्त ऐसे योग्य राजा की आवश्यकता है जो बुद्धिमान् धर्मात्मा शान्त और वशी हो। काल तो ईश्वर का सूर्य काल का राजा सूर्य का और लोक राजा का अनुसरण करता है

काल बिलोकत ईस रुख भानु काल अनुहारि।
रबिहि राउ राजहि प्रजा बुध ब्यवहरहिं बिचारि॥ दो० ५०४

इस उक्ति का तात्पर्य है कि जिस प्रकार सूर्य समुद्र से वाष्प ग्रहण करता है और फिर कुछ समय पश्चात् उसे मेघ के रूप में सम्पूर्ण पृथ्वी पर बरसा देता है उसी प्रकार राजा अपनी प्रजा से कर ग्रहण कर उसे भिन्न रूप में लौटा देता है। दूध मक्खन भोजन वस्त्र आदि का कर प्रजा से उसकी अनुमति से ही ग्रहण करना चाहिए, अन्यथा वह बड़बड़ाने लगती है

सुधर सुराज सुजान फल पाक पकाउ सम जानि।
सुजन प्रजाजन हित लेहिं कर सामादिक अनुमानि॥ दो० ५०६॥

उत्तम पुरुष वह है जो वृक्षों के पके फल लेता है मध्यम वह है जो पकने की बाट न देख कर कच्चे ही तोड़ कर घर पकाता है और नीच वह है जो अधीर होकर पत्तों ही को नोच डालता है। इसी प्रकार उत्तम राजा को सोच-समझकर उसी कर लेना

चाहिए जब भाग्य एक आय और कृषकों को सुविधा हो, मध्यम नरेश फसल के बिना पके ही कर उगाता है और अधम तो अकाल पड़ने पर भी कृषकों को कष्ट पहुँचा कर कर उगाने का प्रयत्न करता है। एक और उदाहरण है गाय अच्छा दूध तभी देती है जब उसका बछड़ा उसे पी चुके किन्तु जो व्यक्ति उसके पैर बाँधकर दुहने का प्रयत्न करता है उसे कुछ भी दूध हाथ नहीं लगता। इसी प्रकार राजा की प्रजावत्सलता से सन्तुष्ट होकर प्रजा स्वयं कर दे देती है (दो० ११२)। अतएव कर के विषय में प्रजा की सम्मति नितान्त वांछनीय है। राजा को विचार-शील (दो ५०४) और दृढ़नीति होना चाहिए (दो० ११६) अतएव किसी भी कार्य के प्रारम्भ से पूर्व भली भाँति विचार कर लेना श्रेयस्कर है, क्योंकि उसी के नियमों से प्रजा का कल्याण होता है और वह सन्मार्ग से नहीं बिगड़ती

मसेहु बसत पद पोच भय नृप नियोग बय नम,
सुलिय सुभूपति भूमिमत सोइ सँवारित हैम ॥दो० ५०९॥

मूर्ख-बहुल-जनता—इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रजा को सन्तुष्ट रखने के लिये उसकी इच्छा का जानना परम आवश्यक है किन्तु सबको सब भाँति प्रसन्न रखने का प्रयत्न भी व्यर्थ है। यह प्रयत्न इतना ही कठिन है जितना कि पोर से खींच कर बारीक सूत का कातना। क्या सीताजी अपयश के योग्य थीं अथवा श्री कृष्ण स्यमंतक मणि के चोर थे? किन्तु लोग इन पर भी दोषारोपण करने से न चूके

अपजस जोग कि जानकी मनि चोरी की कान्ह,
तुलसी लोग रिझाइबो करषि कातिबो नान्ह ॥ दो० ४१२॥

भेड़ चाल से सावधान रहना चाहिए। जनता में अधिकतर मूर्ख होते हैं जो विषय विशेष की गम्भीरता तक बहुत कम पहुँच पाते हैं वे शीघ्र ही मधुर-दर्शी नेताओं के प्रशंसात्मक भाषणों और नारों में बह जाते और अनाचार करने लगते हैं —

तुलसी भेंड़ी की धंसनि जड़ जनता सनमान।
उपजत ही अभिमान भो खोवत मूढ़ अपान ॥ दो० ४१५

उदाहरण रूप से निवेदन किया जा सकता है कि बहराइच में सय्यद सालार मसऊद गाजी (गाजी मियाँ) की दरगाह है। वहाँ ज्येष्ठ मास में प्रतिवर्ष मेला लगता है और अन्धविश्वासी लोग विविध मनोरथों को लेकर जाते हैं। कहते हैं कि ये गाजी मियाँ महमूद गजनवी के भांजे थे और गाजी होने की इच्छा से अवध की ओर बढ़ आये थे किन्तु ये श्रावस्ती के राजा सुहृद् देव के हाथों मारे गये। अतएव तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रतिवर्ष भीड़ की भीड़ बहराइच की यात्रा के लिए जाती है और गाजी मियाँ से अनेक मनोरथों की पूर्ति चाहती है किन्तु क्या किसी व्यक्ति ने इस बात के जानने का प्रयत्न किया कि गाजी मियाँ की कृपा से किस अन्धे को आँखें मिलीं किस बाँझ को सन्तान, और किस कोढ़ी को कंचन-काया?

लही आँखि कब आँधरे बाँझ पूत कब ल्याइ।
कब कोढ़ी काया लही जग बहराइच जाइ ॥ दो० ४१६

तुलसीदासजी के इस दोहे से विदित होता है कि जन-साधारण जनता कितनी अन्ध और अविचार-शील होती है।

अधिकारियों पर दृष्टि—अधिकारियों का अनुचित विश्वास न करना चाहिए, किन्तु उनके प्रति सावधान रहना चाहिए। क्योंकि अच्छे अधिकारी भी अवसर पाकर दुर्व्यवहार करने लगते और अन्त में विरुद्ध होकर राजा को हानि पहुँचाते हैं। दुष्ट अधिकारी अपने स्वामी से अधिक अत्याचारी होते हैं अर्थात् यदि राजा एक प्रकार से बुराई करता है तो उसके अनुगामी तीन प्रकार से। वे सज्जनों से भी कुटिलता करते समता में भी विषमता बरतते और सब कामों को नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं —

अधिकारी बस औसरा भलेउ जानिब मंद।
सुधा सदन बसु बारहें चउथें चउथिउ चंद॥ दो० ४९९
त्रिबिध एक बिधि प्रभु अनुग अवसर करहिं कुठाट
सूधे टेढ़े सम बिषम सब महँ बारह बाट॥ दो० ५००
प्रभु तें प्रभु गन दुखद लखि प्रजहिं सँभारै राउ।
कर तें होत कृपान को कठिन घोर घन घाउ॥ दो० ५०१

यही कारण है कि नारदजी ने महाराज युधिष्ठिर से उनके मन्त्रियों एवं अन्य अधिकारियों के सम्बन्ध में बड़े विस्तार से प्रश्न किये थे (महाभा० सभापर्व)।

आडम्बर—राजा के आडम्बर हैं सिंहासन छत्र राजवस्त्र चँवर और रानी। कोष मित्र, नगरी दुर्ग देश सेना और प्रजा की भी आवश्यकता है (रा० २ १०५, २ १०६ २)। गोस्वामीजी ने इन सबका वर्णन एक रूपक के द्वारा किया है जिसका उल्लेख अभी किया जायगा। राजा शीलनिधि को ये सब उपकरण प्राप्त थे। उसकी राजधानी की परिधि सात योजन थी और वह बैकुण्ठ से भी अधिक सम्पन्न थी। उसके सभी निवासी मूर्तिमान् रति और कामदेव थे जिनके पास असंख्य घोड़े हाथी और सेना थी। सब इन्द्रों के समान उसका ऐश्वर्य था और वह स्वयं भी अमित नीति और वैभव का स्तम्भ था (रा० १ १३० १ १)।

राजसत्ता और राज्य—कवि होने के नाते तुलसीदासजी ने अपने विचारों को रूपकों में मूर्त्त किया है। राम चित्रकूट में निवास करते थे उनकी उपस्थिति से उपवन पर कल्याणकारी और मनोहर प्रभाव पड़ा था। रूपक है चित्रकूट-वन पवित्र देश है विवेक नरेश है शान्ति और सुमति दो सुन्दर और पवित्र रानियाँ हैं, विराग सचिव है राम-निवास संचित है चित्रकूट राजधानी है यम-नियम भट हैं राजा सकलांग सम्पन्न राममरणाश्रित और उत्साह-भीना है। विवेक-नरेश ने कामादि दलबल सहित मोह-महीपाल को पराजित कर दिया है। राज्य में सर्वत्र सुख सम्पदा और सुकाल है। वन प्रदेश के मुनि-कुटीर ही नगर पुर और ग्राम हैं। पशि-गण प्रजा हैं। खग मृग सिंह व्याघ्र सूकर महिष वृक आदि अपना स्वाभाविक वैर भाव को छोड़कर एकत्र विचरते हैं। इन्हीं की बनी सुसज्जित सेना है। झरनों का निर्झरण और मृगों का मदन विविध राजकीय वाद्य हैं चक चकोर, चातक शुक पिक का गुंजन सुन्दर संगीत है हंस मोर हैं अलिगण मर्यादे मीर मोर नर्तक हैं सफल और सपुष्प विटप तथा लता और तृण का समुदाय राजा का मंगल-मोदमय दरबार है (रा० २ २१५ २१७)।

एक रूपक और है जो राजा और राज्य के विषय में गोस्वामीजी के विचारों पर प्रकाश डालता है प्रयाग तीर्थराज है उसकी राजधानी अक्षय वट सचिव सत्य प्रिय माधव

कोष पदार्थ-चतुष्टय वैसे पुण्य-स्थल और अगम्य दुर्ग उसका विस्तार है, तथा उसके सैन्य के सिपाही हैं नेम और बल जो कलुष-दल को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। उसका राज-छत्र है प्रसय वट और चँवर हैं गंगा-यमुना की ऊर्मियाँ। उसके सेवक हैं आप्त-काम साधु पुरुष और बन्दी-जन हैं वेद-पुराण (रा २, १०५, १०६)।

सचिव की योग्यता—उक्त रूपक में सत्य को सचिव माना गया है। प्रतीत होता है कि तुलसीदासजी के अनुसार मन्त्री का मुख्य गुण सत्यवादिता है। उसे चतुर धर्मात्मा नीतिज्ञ (रा० १ १८१ १) तथा मनुजी के अनुसार बुद्धिमान्, धर्मशास्त्रज्ञ और युद्धकुशल सच्चरित्र और सुवंशज होना चाहिए, ७ ५४। राजा अकेला राज्यभार को नहीं सम्हाल सकता। अवश्य उसे सुयोग्य सात-आठ मंत्री नियुक्त कर लेने चाहिएँ। इसके अतिरिक्त राजा को ऐसे राजदूतों की भी आवश्यकता है जो विज्ञ मानस-गुणी शुचि दक्ष अनुरक्त देशकालविद् निडर, वाग्मी कुलोद्भव मेधावी एवं वपुष्मान् हों (मनु ७ ५५ ६४)। प्रतापभानु का धर्म-रुचि नामक मंत्री शुक्राचार्य के समान नीतिज्ञ था। दशरथजी के यहाँ आठ मंत्री थे जिनमें से एक सुमंत्र भी थे वशिष्ठजी परामर्श-दाता थे। रावण के यहाँ भी शुक्र, प्रहस्त विभीषण आदि अनेक मंत्री थे (रा० ५, ५६, २ १ ६० १२ १ १३ १)। अंगद ने राम के निमित्त दौत्य किया था।

गुप्तचर—गुप्तचर राजा के नेत्र होते हैं। प्राचीन भारत में गुप्तचरों का ताना-बाना रहता था। चाणक्य ने अपने चिरस्मरणीय ग्रन्थ अर्थशास्त्र में गुप्तचरों की योग्यता कर्त्तव्य तथा प्रथा का विशद् वर्णन किया है। जनकजी ने अयोध्या में चार चर यह जानने के लिये भेजे थे कि कहीं भरतजी वनवासी राम के विरुद्ध तो नहीं हैं (रा २ २७१ ४)। हनुमानजी तथा अन्य वानरों ने सीताजी का खोज लेने के लिये चर-रूप से कार्य किया था। जब विभीषण भगवान् राम की शरण में आए तो वानरों ने उन पर चरत्व का सन्देह किया था। रावण प्रेषित शुक्र गुप्तचर लक्ष्मणजी के पास आये भी गये (रा० ५, ५३)। रामचन्द्रजी ने हनुमानजी को ब्राह्मण वेष में भरत के पास यह जानने के लिये भेजा था कि मेरे वनवास-काल में अयोध्या की वस्तु-स्थिति क्या रही और मुझे अपने राज्य में लौटना चाहिए कि नहीं क्योंकि जैसा कि वाल्मीकिजी ने लिखा है पैतृक-सिंहासन किस को नहीं सुहाता?

शत्रु के प्रति व्यवहार—शत्रु के साथ चतुर्विध उपायों का अवलम्बन किया जाता है—उच्चाटन वशीकरण मारण और आकर्षण (वि० १ ८)। इनके अतिरिक्त चार और हैं—साम दाम दण्ड और भेद। हनुमानजी ने पिछले चतुष्टय का उल्लेख सुग्रीव से किया और उन्हें सीता की खोज के लिए प्रोत्साहित किया (रा० ४ २१, १)। राजदूत अंगद ने रावण के चार मुकुट रामचन्द्रजी की ओर फेंक बताये थे जिनकी उपमा तुलसीदासजी ने साम दाम दण्ड और विभेद से दी है और कहा है कि यह चतुर्था नीति राजा में सदैव रहनी चाहिए, किन्तु यह रावण को छोड़ रामचन्द्रजी के पास आ गयी थी (रा० ६ ३९ ४३)।

सामादि उपायों में राष्ट्र की अभिवृद्धि के लिए, पंडितों ने साम और दण्ड की बहुत प्रशंसा की है (मनु० ७ १०९)। विभीषण के द्वारा रावण को परामर्श है कि सुमति और कुमति सब के हृदय में रहती हैं किन्तु

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना । जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ॥

रा० ५ ४० १

तुम्हारे हृदय में कुमति बसी हुई है अतएव तुम शत्रु को मित्र और मित्र को शत्रु समझते हो । अपने मित्र और मंत्रियों के परामर्श से जो राजा कार्य करते हैं वे सफल होते हैं अन्यथा हानि उठाते हैं ।" रावण ने अपने स्वामिभक्त मंत्रियों की मंत्रणा की अवहेलना की और न विभीषण और न माल्यवान् की सुनी अतएव उनमें से एक तो राम की शरण में आ गया और दूसरा घर चला गया । इस प्रकार राक्षसराज दो अच्छे मंत्री खो बैठा । इधर राम ने शरणागत विभीषण का स्वागत यह कहकर किया

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि ॥ रा० ५, ४४

राम की नीतिमत्ता द्रष्टव्य है यदि विभीषण करोड़ों ब्राह्मणों का वध करके शरण में आता तो भी राम उसे विमुख न करते

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू । आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू ॥ रा० ५ ४४ १

विभीषण भी राम को कितना उपयोगी सिद्ध हुआ उसे अपने भाई-भतीजों के मर्मों को बताने में तनिक भी संकोच न हुआ ।

सेना—प्राचीन भारत में सेना चतुरंगिणी होती थी । कामदेव की सेना भी ऐसी थी (रा० १ ८७ ५) । अमरकोष के अनुसार चतुरंगिणी में हस्ती अश्व रथ और पदाति होते हैं । रावण की सेना असंख्य और विविध प्रकार से सुसज्जित थी उसमें चतुरंगिणी की बहुत-सी टुकड़ियाँ थीं जिनमें अनेक प्रकार के वाहन रथ तथा अन्य यान थे । बहुत से रथों की ध्वजा-पताकाएँ थीं । मतवाले हाथियों के झुण्ड के झुण्ड थे जो आषाढ़मेघ से प्रतीत होते थे । रंग-बिरंग के वेश धारण किये हुए वीरों के समूह सुशोभित थे । सेना ऐसी विशाल थी कि उसकी गति से दिशाओं के हाथी डिगने, समुद्र क्षुब्ध होने और पर्वत डगमगाने लगते और धूल इतनी उड़ती कि सूर्य छिप जाता पवन रुक जाता और पृथ्वी अकुला उठती । ढोल नगाड़े ऐसे बजते थे मानो प्रलय कालीन मेघों का गर्जन हो रहा हो । भेरी नफीरी शहनाई आदि से उत्पन्न वीरों को सुख देने वाला मारू-राग बजता तथा वीर अपने-अपने बल-पौरुष का वर्णन सिंह नादपूर्वक करते थे । (रा० ६, १०१ १ ५) ।

रावण को सूचना मिली थी कि राम की सेना विशाल है, जिसमें अठारह पद्म तो केवल बानरों के सेनापति थे जिनमें मुख्य थे द्विविद मयन्द नल नील अंगद गद विकटास्य दधिमुख केसरी निशठ शठ और जाम्बवान् जो सभी बल में सुग्रीव के समान थे (रा० ५, ५६) । लंका के चार द्वार थे अतएव प्रधान सेनापति सुग्रीव ने अपनी सेना के चार विभाग किये (रा० ६ ३८ २) । स्वच्छ कृपाणें और तलवारें ऐसी चमकती थीं जैसे बिजली । हाथी रथ और घोड़ों का गर्जन मेघवत् था । आकाश में छायी हुई अनेक बानरों की धूपें इन्द्रधनुष-सी सुन्दर लगती थीं (रा० ६, १११ १) । सेना की प्रगति बाजे के साथ होती थी जो वीर-हृदयों में उमंग उत्पन्न करता था । यदि कोई योद्धा पीठ दिखाकर भागता तो उसे बुलाकर उसमें उत्साह का संचार किया जाता । कभी-कभी रावण को कहना पड़ा कि 'मैं जिसे रण से भागा हुआ सुनूँगा उसे भयानक दुधारी

तलवार से मारूँगा, मेरा सब कुछ खाया भाँति भाँति के भोग किये और अब रणभूमि में अपने प्राण प्यारे हो गये। रावण के इन उग्र वचनों को सुनकर वीर डर जाते और लज्जित हो तथा प्राणों का मोह छोड़ कर युद्ध के लिए लौट जाते (रा० ६, ९१, ४)। एक और बार रावण ने योद्धाओं से कहा था कि 'यदि युद्ध में शत्रु के सम्मुख किसी का मन विचलित हो तो अच्छा है वह अभी भाग जाय। युद्ध से भागना ठीक नहीं। मैंने अपनी भुजाओं के बल पर वैर बढ़ाया है जो शत्रु चढ़ आया है उसे मैं स्वयं समझ लूँगा'। (रा० ६ १०० २१)। ऐसे शब्दों से योद्धाओं में भय तथा अथवा विश्वास का सचार हो जाता था उनका विश्वास था कि प्राणों का मोह छोड़ शत्रु के सम्मुख लड़ते-भिड़ते मृत्यु का आलिंगन करने में योद्धा का गौरव है

सन्मुख मरन बीर कै सोभा ॥ रा० ६, ९१, ५

अस्त्रशस्त्र—अनेक प्रकार के अस्त्रशस्त्र विद्यमान थे। राक्षस-सोम ब्रह्मास्त्र (रा० ५, १९) और नागपाश (रा० ५, १९, १) का प्रयोग करते तथा भिन्दिपाल बरछी तोमर, मुद्गर, फरसा भाला कृपाण परिघ गिरिखंड (रा ६ ४१ ४), त्रिशूल (रा० ६ ९२) बाण (रा० ६ ७० १) शक्ति (रा० ६, ७४ ४) आदि चलाना जानते थे। हनुमान्, अंगद और विभीषण गदाधारण करते थे (रा० ६, ११८, २४), तथा रावण और मेघनाद शक्ति, बाण एवं धनुर्बाणों से अधिक काम लेते थे (रा० ६, १९, १)। राम-लक्ष्मण धनुर्धारी थे। राम का धनुष शारङ्ग कहलाता था कदाचित् शृंग निर्मित होने से (रा० ६ ११० छं० ५)। धनुर्धारियों के दोनों ओर तूणीर लटके रहते थे (रा० ६ ८९ १)। उनके नाराच वस्तुओं को यथेष्ट स्थान पर रख सकते और शत्रु का हनन कर निषंग में लौट आते थे। इन बाणों में राक्षस-माया को निवारण करने की शक्ति भी थी। सुनते हैं प्राचीन भारत में आग्नेयास्त्र से सर्वत्र अग्नि और वरुणास्त्र से सर्वत्र जल की उत्पत्ति हो जाती थी। रामचन्द्र जी का बाण तो महासागर तक का शोषण कर सकता था। उस कराल विशिख के संधानमात्र से समुद्र की अन्तर्ज्वाला जग उठी और मकर मीन आदि जल-जन्तु ऐसे अकुलाने लगे (रा० ५, ६० १ ४) जैसे आजकल 'एटम बम' से। भरत ने तो हनुमान् जी को उन्हें अपने बाण पर बिठा कर लंका भेजने का प्रस्ताव किया था—

तात गहरु होइहि तोहि जाता। काजु नसाइहि होत प्रभाता ॥
चढ़ु मम सायक सैल समेता। पठवौं तोहि जहँ कृपा निकेता ॥ रा० ६ ६०, ११

युद्ध-कौशल—वानरों और राक्षसों का युद्ध-कौशल प्राचकालीन-सा था। वे एक-दूसरे को काटते-बकोटते और लात घूँसों की लड़ाई लड़ते। राम रावण और भरत के अस्त्रों की अपेक्षा साधारण राक्षसों और वानरों का युद्ध बालकों के लिए अधिक रोचक प्रतीत होता है —

एक एक सन भिरहिं पचारहिं। एकन्ह एक मर्दि महि पारहिं ॥
मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं। सीस तोरि सीसन्ह सन मारहिं ॥
उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं। गहि पद अवनि पटकि भट डारहिं ॥
निसिचर भट महि गाड़हिं भालू। ऊपर ढारि देहिं बहु बालू ॥
रा० ६, १०५, २४

आज भी लोग क्रोध में कह देते हैं कि खोद कर गाड़ दूंगा, यद्यपि उचित क्रिया परिणत नहीं होती। दोनों दल चिल्लाते और एक-दूसरे को द्वन्द्व युद्ध के लिये ललकारते थे (रा० ६ १०५, २ ११४ ११७ म० ६ ११ ४० ४१)। किन्तु युद्ध-कौशल उन्नत प्रकार का भी था।

आकाश-युद्ध—योद्धा लड़ते-लड़ते आकाश में चढ़ जाते थे यथा मेघनाद ने अपने मायामय रथ में आकाश में उड़कर वज्रवत् अट्टहास किया था जिससे वानर सेना में आतंक छा गया। वह इच्छानुसार रूप बदलता और अन्तर्धान हो जाता था (रा० ६ ८८ ६)। किन्तु ऋक्ष-वानरों के प्रधान भी आकाश में राक्षसों का पीछा कर सकते थे। एक बार इस राक्षस ने राम पर नागपाश फेंका जिसे नष्ट करने के लिये गरुड़ को आना पड़ा किन्तु रावण ऐसी माया भी जानता था जिसे राम के अतिरिक्त और कोई छिन्न-भिन्न नहीं कर सकता था। उसने राम और लक्ष्मण के दस के दस रूप ढाले और राम ने उस माया का निराकरण बाण-निक्षेप के द्वारा कर दिया (रा० ६ १११ ५०)। लड़ते-लड़ते रावण ने राम के रथ पर ऐसी बाण वर्षा की कि वह एक क्षण के लिये तिरोहित ही हो गया। रावण के सिर और भुज कटते किन्तु उनके स्थान पर नये निकल आते (रा० ६ १११ ६ १२२)। जो सिर कट जाते थे वे वायुमंडल में उड़कर यह ध्वनि प्रसारित करते कि 'राम कहाँ ? लक्ष्मण कहाँ ? और इस प्रकार वानरों के हृदयों में भय का संचार कर देते थे (रा० ६ ११७ ४)। हनुमान् जी की पूँछ पकड़ कर रावण आकाश में उड़ गया और वहाँ वे दोनों युद्ध करते ऐसे प्रतीत होते थे मानो सुमेरु और कज्जलगिरि घात प्रतिघात कर रहे हों (रा० ६ १११ १४)। रावण भी वेश बदल कर अन्तर्धान हो सकता था (रा० ६ १२० १)। उसने अपनी माया से अपने इतने रूप रच डाले जितने वानर युद्ध कर रहे थे (रा० ६ १२० २)। एक बार उसने अपने आप से भयंकर जीव प्रकट किए यथा वेताल भूत पिशाच जो हाथों में धनुष-बाण लिए हुए थे और योगिनियाँ भी जो एक हाथ में तलवार और दूसरे में मनुष्य-कपाल लिए खून पी-पी कर नाचती-गाती थी। इनसे वानर बड़े भयभीत हुए यहाँ तक कि लक्ष्मण और हनुमान् भी अचेत हो गये। किन्तु राम के केवल एक बाण ने इस समस्त माया का नष्ट कर दिया (रा० ६ १००, छन्द १५)। रावण के सिर और भुज कटकर गिरते तो नये निकल आते थे क्योंकि उसकी नाभि में अमृत भरा हुआ था। जब यह रहस्य विभीषण से विदित हुआ तब राम ने एक बाण से राक्षसराज की नाभि के अमृत का शोषण कर लिया और तीस बाणों से उसके शरीर को छिन्न भिन्न कर दिया (रा० ६ १२५, छन्द १५)।

वायुयान—जैसा कि अभी कहा जा चुका है युद्धों में रथों का उपयोग होता था। मेघनाद और रावण अपने रथों का संचालन भूमि तथा आकाश में कर सकते थे (रा० ६ ८४)। राम के पास कोई रथ न था किन्तु जब इन्द्र को यह ज्ञात हुआ कि राम को पैदल लड़ना पड़ता है तो उसने अपना अनुपम रथ मातलि नामक सारथि के सहित भेज दिया (रा० ६ १११ १२)। वह रथ तेजस्वी दिव्य और अनुपम था उसके घोड़े अजर, अमर और मनोहर थे। राम ने इस यान को

स्वीकार कर लिया और युद्ध के पश्चात् तुरन्त लौटा भी दिया (रा० ६, ११३ १२) देवगण अपने-अपने वायुयानों में बैठकर युद्ध को देखने आते, और जब कभी प्रसन्नता का अवसर आता तो पुष्पवर्षा करते। पुष्पक नाम का विमान कुबेर का था जिसे रावण छीन लाया था। युद्ध के अवसान पर राम-सीता और लक्ष्मण उसमें बैठकर और विभीषण को तथा कुछ प्रमुख ऋक्ष और वानरों को साथ लेकर, अयोध्या लौटे थे। तत्पश्चात् उन्होंने उसे उसके वास्तविक स्वामी के पास भेज दिया।

युद्ध का समय—युद्ध नित्य प्रति सूर्योदय से प्रारम्भ हो सूर्यास्त तक चलता था। रात्रि के अवसान और सूर्य के उदय के समय ऋक्ष और वानर लंका के चारों द्वारों पर एकत्र हो जाते थे (रा० ६, १०० २१)। प्रभात के समय राम अपने योद्धा हनुमान् अंगद आदि को भेजते थे (रा० ६ १०९, २)। रावण भी प्रातःकाल ही युद्ध का प्रारम्भ करता (रा० ६ १२४ २)। किन्तु सूर्यास्त के समय समस्त युद्ध अवरुद्ध हो जाता था (रा० ६ ७२ २)। रावण का सारथि भी सायंकाल के समय रावण को घर ले जाता, (रा० ६ १२२ छन्द)। किन्तु कभी-कभी इस समय की अवहेलना भी हुई।

अजेय-यज्ञ—विजय का साधन केवल सेना न थी। तन्निमित्त यज्ञों की भी शरण ली जाती थी। विजय के निमित्त मेघनाद ने अजेय-यज्ञ का आयोजन किया, और वह महिष के रक्त-मांस की आहुति दे ही रहा था कि इतने में वानरों ने वहाँ जाकर यज्ञ को भ्रष्ट कर दिया, (रा० ६ ८७-८८)। रावण ने भी इसी प्रकार का यज्ञ प्रारम्भ किया था किन्तु वानरों ने आकर उसे भी खण्डित कर दिया (रा ६ १ ९ ११०।) दोनों बार यज्ञ-सम्बन्धी सूचना और उसके निरास का उपाय विभीषण ने बताया था, क्योंकि उसके मत से जो भी इस यज्ञ को परिपूर्ण कर लेता वह सर्वथा अजेय हो जाता, (रा० ६, १०९ १)।

धर्म-रथ—तुलसीदासजी राम के विषय में तनिक भी संदेह के लिए कभी प्रस्तुत नहीं। उसका निरास करने के लिए वे सर्वत्र व्यग्र एवं कटिबद्ध रहते हैं। यह सोचना कि इन्द्र प्रेषित दिव्य रथ ने राम-विजय में सहायता की होगी तुलसीदास के लिए असह्य है। जब विभीषण ने राम का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि आप तो पैदल लड़ते हैं और आपका शत्रु रथासीन है तो राम ने केवल यह उत्तर दिया 'सुनो मित्र विजेता के पास एक भिन्न प्रकार का रथ होता है। शौर्य और धर्म उस रथ के चक्र, सत्य और शील उसकी ध्वजा और पताकाएँ, तथा बल विवेक दम और परहित ये चार उसके घोड़े हैं जो क्षमा दया और समता-रूपी डोरियों से रथ में जुते हुए हैं। ईश भजन उसका चतुर सारथी है वैराग्य ढाल है सन्तोष कृपाण है दान परशु है, बुद्धि शक्ति है विज्ञान कोदण्ड है, अचल-मन तिरस्त्राण है शम-यम-नियम बाण हैं और विप्र-गुरु-पूजा कवच है इसके समान विजय का दूसरा उपाय नहीं। जिसके पास ऐसा धर्ममय रथ हो उसे जीतने के लिए शत्रु नहीं मिलते। जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो वह वीर संसार रूपी महान् और अजय शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकता है (रा० ६ १०२-१०३)।

नीति—नीति ही समग्र धर्म नहीं है, वह धर्मांश है। राम को युद्ध करना और

शत्रुओं को मारना पड़ा। न तो उनका युद्ध धार्मिक था और न उन्होंने हठधर्मिता से किसी का हनन किया। वे वैसा भी कर सकते थे क्योंकि वे विद्या के मूढ़ एवं देखने में दर्शनीय थे, तथापि उनमें भुज-बल और दृढ़-संकल्प भी विद्यमान थे। उन्होंने और उनके भाई ने रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद का वध किया था क्योंकि उन्हें आवश्यकतानुसार रक्तपात के लिए भी कोई सकोच न था। वे नीति में अद्वितीय अभिवादन-शील और व्यवहार-कुशल थे। उनका व्यवहार आदर से युक्त अथवा कृपा से पूर्ण रहता था। वे निरभिमान इतने थे कि छोटे से छोटे वानर का कुशल-क्षेम पूछ लेते (रा० ४ २४ २)। उन्होंने विभीषण का स्वागत ही नहीं किया अपितु युद्धान्त से पूर्व ही उसका राज्याभिषेक भी कर दिया अर्थात् उसका तिलक कर उसे लंकेश शब्द से अभिहित किया (रा० ६,४१ १४१)। रावण की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने सुग्रीव हनुमान् और अंगद के साथ विभीषण को लंका के सिंहासन पर आरूढ़ कराने लक्ष्मणजी को भेजा था (रा० ६ १११ २-४)। विभीषण ने जो बहुमूल्य उपहार भेजे उन्हें राम ने अस्वीकृत कर दिया (रा० ६ १४१ १ १४४)। तथापि उन्होंने उन सब वानरों का बड़ा उपकार माना जिन्होंने युद्ध में उनकी सहायता की थी और उनसे कहा था कि मेरी सफलता का कारण तुम्हारा प्रयत्न है (रा० ६ १४१ २)। वे अपने सम-सामयिक सभी प्रकार के साधु सत एवं ऋषि-मुनियों के सम्पर्क मं रहते और उनसे अत्यन्त आदर के साथ निस्संकोच मिलते। अयोध्या को लौटते समय उन्होंने प्रयाग में भरद्वाज ऋषि से पुन' भेंट की (रा० ६ १२६ २)। यद्यपि वे भरत से अत्यन्त स्नेह करते थे तथापि निरचयार्थ उन्होंने हनुमानजी को प्रयाग से अयोध्या यह जानने के लिए भेजा कि राजधानी की वस्तु-स्थिति कैसी है (रा० ६ १२६ १)। उन्हें अपनी नगरी नदी और जनता से प्रेम था अतएव उन्होंने विभीषण सुग्रीव अंगद तथा अन्य वानरों से अपनी मातृ भूमि का भावपूर्ण उल्लेख किया (रा ७ ११ १४)। गुरु वशिष्ठ से इन व्यक्तियों का परिचय कराते समय उन्होंने बताया कि 'ये मेरे गुरुदेव हैं इनका आदर करो और गुरुदेव के समक्ष यह कहा कि "मैंने युद्ध में दानवों का जो दमन किया वह सब इनके प्रयत्न से' और क्योंकि इन्होंने अपने प्राण मेरे लिए संकट में डाले ये मुझे भरत से भी अधिक प्रिय हैं' (रा० ७ १७ ४)। एक अन्य अवसर पर उन्होंने हनुमान् जी से कहा था कि तुम मुझे लक्ष्मण से भी अधिक प्रिय हो (रा० ४ ४ ४)। उन्होंने वानर राज सुग्रीव एवं निषाद राज गुह को कई बार और भिन्न-भिन्न अवसरों पर अलग-अलग यह बताया कि तुम मुझे भरत के समान प्यारे हो (रा० ४ २१ ४-७ ४२, २)। राज्याभिषेक के उपरान्त उन्होंने प्रमुख वानर भ्रष्टा आदि सहयोगियों को बुलाया और अत्यन्त कृपा-पूर्वक उन्हें अपने पार्श्व में बिठाकर कहा "तुम लोगों ने मेरी इस्तमाहत्तम सेवा की है। मैं आपके मुँह पर आपकी क्या प्रशंसा करूँ। आपने मेरे कारण अपने घर के सुख को त्यागा अतएव आप लोग मेरे अत्यन्त प्रिय हैं। मेरे छोटे भाई मेरा मुकुट मेरा वैभव मेरी पत्नी मेरा जीवन मेरा घर और मेरे प्रमी-परिजनों में से कोई भी मेरी दृष्टि में इतना प्यारा नहीं जितना आप लोग। मैं कोई बात झूठी नहीं कह रहा मेरे ये भाव हार्दिक हैं। मनुष्यों का स्वभाव है कि वे अपने साथियों को अधिक चाहते हैं किन्तु मुझे तो अपने सेवकों से विशेष प्रेम है। हे सहयोगियो अब

घर लौट आयो वहाँ घटल श्रद्धा से मेरी पूजा करना और मुझे विश्व का सनातन और सर्वव्यापक कल्याण-कर्ता समझ कर मेरी भक्ति में अनुरक्त रहना' (रा० ७ १४–१५)। राम ने अपनी विमाताओं के लिए विशेष आदर का प्रदर्शन किया और जब-कभी साक्षात्कार का अवसर आया तो कैकेयी के लिए उन्होंने विशेष आदर प्रदर्शित किया। जब उसने राम से वन जाने के लिए कहा तो वे उससे सस्मित-वदन विनम्र वचन बोले और वनवास से लौटने पर उससे सर्वप्रथम मिले (रा० ७ २१ १)। भरतजी चित्रकूट में मिलने गये तो राम ने राजमहिलाओं में सबसे प्रथम भेंट कैकेयी से की (रा० २ २४४ ४ २४५)। 'वाल्मीकि रामायण' 'महाभारत' और 'अध्यात्म रामायण' के राम की अपेक्षा 'रामचरितमानस' के राम कहीं अधिक नीतिज्ञ हैं।

राज प्रथाएँ—राम चरित के अन्य लेखकों की भाँति गोस्वामीजी ने कुछ राज-प्रथाओं का उल्लेख किया है। सन्तति-कामना से पुत्रेष्टि और युद्ध-विजय की कामना से अश्वमेध-यज्ञों का अनुष्ठान होता था। दशरथजी के चारों पुत्र पुत्रेष्टि-यज्ञ से उत्पन्न हुए थ, (रा० १ २२० ३) तथा मेघनाद और रावण ने अश्वमेध-यज्ञ का आयोजन किया था (रा ६ ६७ १ १०६, १४ १२०)। यद्यपि मनुजी ने आठ प्रकार के विवाहों का विधान किया है (३ २१) तथापि साम्यतः विवाह स्वयंवर के रूप में क्षत्रियों के यहाँ अधिक प्रचलित था ऐसा प्रतीत होता है। विश्वमोहिनी (रा० १ १२७ ३) सीता (रा० १ २७२, १) दमयन्ती द्रौपदी, संयुक्ता आदि के स्वयंवर प्रसिद्ध हैं। अभिषेक बड़े आडम्बर से सम्पन्न किये जाते थे। इस अवसर पर राज पुरोहित सर्वप्रथम तिलक लगाता तदनन्तर प्रमुख ब्राह्मण (रा० ७ २६ १ ३)। धार्मिक कृत्य विधि-विधान पूर्वक होते थे (रा० २ ६-७ २)। राजमाताएँ शुभावसरों पर गीत गाती और आमोद प्रमोद-पूर्वक अपने पुत्रों की आरती उतारती (रा० ७ २१ ३), भिक्षुकों को दान और ब्राह्मणों को उपहार दिये जाते (रा० ७ ११ ५,) बन्दी ऊर्ध्व बाहु होकर अपने स्वामियों का यशोगान करते (रा० १ २८१, ४, २८२)। जब बन्दी भाट, और मागध उच्च स्वर से वेद-पाठ अथवा विरुदावली-गान करते तो प्रजा धन घोड़े हाथी वस्त्र रत्न और वस्त्र भेंट करते थे, (रा० १ २१५ २२६, ३ २१२ ३)। विदूषक नाच गीत, हाव भाव अथवा हास्यजनक गीतों के द्वारा मनोरंजन करते थे (रा० १ ११४, ४)। महाराज को अभिवादन करते समय सचिव जय जीव कहा करते थे। विवाह से पूर्व बरातें बड़ी सज-धज के साथ निकलतीं यथा शिवजी की (रा० १ ११५, ४) और रामचन्द्रजी की (रा० १ ३१ ३३६ ३४१ ३ ४)। तुलसीदासजी ने पार्वती-परमेश्वर और सीता-राम के विवाहों का वर्णन 'रामचरितमानस' में बड़े उत्साह से किया है। वे इतने से ही सन्तुष्ट न हुए, उन्होंने 'पार्वती मंगल' और 'जानकी मंगल' की रचना से अपनी तृषा को और अधिक तृप्त किया। अन्य अवसरों पर भी भजन-कीर्तन होते थे। राम के स्वागत के लिए अवध की राजधानी में, बड़ी सजधज और उमंग के साथ, सड़कों पर और वीथियों में होकर जन-समूह निकला था (रा० ७ १६, १-२)। विवाह अभिषेक अथवा स्वागत के अवसर पर सजावट होती नर्तक नृत्य खेल दिखाते (रा० १ ३१५ ३४८ ३) हाथी और रथ सजाकर प्रदर्शित किये जाते। महर्षियों और महा-मुनियों का आदर करने के निमित्त राजा अपना

आसन छोड़ कर आगे बढ़ता और चरणस्पर्श करता (रा० १ २३८ १)। ऋषि-मुनि भी अपने राजा का स्वागत बड़े प्रेम से करते। उनमें से कुछ की परिस्थिति तो ऐसी थी कि वे राजा का स्वागत उसी प्रकार कर सकते थे जिस प्रकार राजा राजा का यथा महाराज जी ने भरत का। दशरथ के शुभागमन पर जनकजी ने स्वर्ण-पात्रों में मिष्टान्न, फल आभूषण सुवास वस्त्र और रत्न, तथा अनेक पशु-पक्षी भेंट किये थे (रा० १ ३१७ १ १)। उस समय नगाड़े ढोल तम्बूरे झाँझ, तुरही और शंख बजे (रा० १ ३२६, १)। यह सुनकर कि राम वनवास से लौट आये हैं सब स्त्री-पुरुष प्रसन्नता से स्वागतार्थ दौड़ पड़े। महिलाएँ भी मंगल-गीत से गीत गाती हुई और दही दूब रोचन फल फूल तुलसी आदि शुभ वस्तुओं को स्वर्ण-पात्रों में लेकर निकलीं (रा० ७ ८ १)। मनुजी ने कहा है कि अभ्यागतों का सत्कार उनकी स्थिति के अनुसार आसन जल भोजन मधुर वचन आदि से (३ १०२ ११८) और राजा पुरोहित गुरु मित्र श्वशुर मातुल और स्नातक का मधुपर्क से करना चाहिए। जंग-प्राणों को पद-पास निभाने के पश्चात् सीता-विवाह का भोज मण्डप पण्डालों में हुआ। भोजन भक्ष्य भोज्य लेह्य और चोष्य इन चार प्रकारों का तथा मधुर, लवण अम्ल कटु कषाय और तिक्त इन छः रसों का था। छप्पन प्रकार के व्यंजन रत्न-जटित स्वर्ण के थालों में सजाकर परोसे गये थे (रा० १ ३११, १३)। जनकजी ने जो दहेज और विदाई-उपहार दिये वे वर्णन से बाहर हैं यथा विविध फल और मिठाइयों के थाल वस्त्राभूषण से सुसज्जित पलंग दास और दासियाँ दस सहस्र हाथी पच्चीस सहस्र रथ एक लाख घोड़े बहुत-सी गाय-भैंसें गाड़ी-भर स्वर्ण वसन रत्न (रा० १ ३१५, २४)।

राजधानियों का वैभव—महाराज जनक और दशरथ की राजधानियाँ वैभव शालिनी थीं। जनकपुर सुन्दर नगर था जो सरोवर, बावड़ी नदी और कूप से परिपूर्ण था। उसके चारों ओर फल-फूल के उद्यान थे मध्य में सुन्दर बाजार और रत्न जटित विशाल वीथें थीं। सड़कों और चौराहों पर सुवासित जल का छिड़काव होता रहता था। कुबेर के समान धनी व्यापारी भाँती-भाँती वस्तुएँ बाजार में प्रदर्शित करते हुए दुकानों पर बैठते थे। स्त्री-पुरुष सभी स्वाभाविक सुन्दर, पवित्र सज्जन, सुजान धर्मात्मा पुण्यात्मा बुद्धिमान् और दक्ष थे। जनक जी के प्रासादों और पर कोटों को देखकर देवता भी चकित हो जाते थे। उनका दुर्ग संसार में अप्रतिम था। प्रासादों के भीतरी भाग की भित्तियाँ कुन्द और मरकत की जिनमें अनेक प्रकार के रत्नजटित स्वर्ण-द्वार लगे हुए थे। नगर-द्वार विशाल और वज्रमय थे। अश्वागार गजागार से परिपूर्ण थे। सचिव सेनापति और योद्धाओं के भी आवास ऐसे थे जैसे राजा के। नगर के बाहर बहुत-से राजाओं ने अपने डेरे डाल रखे थे (रा० १ २४४ १ २४७)। वैवाहिक मण्डप के स्तम्भ स्वर्णमय और केले के आकार के थे जिनमें पन्ने के पत्ते और आम के फल-फूल बने हुए थे। हरी-हरी बल्लियों के सीधे और गठीले बाँस ऐसे बनाये गये थे कि पहचाने नहीं जाते थे ऐसी ही सुन्दर और रत्नमय पानों की लताएँ भी थीं। माणिक्य मरकत वज्र और फिरोजा आदि रत्नों को काट-छाँट कर कमल तथा भौंरे बनाये गये थे। खम्भों पर देवताओं की मूर्तियाँ अंकित थीं। गज मुक्ताओं के झुरे हुए थे और मंगल के सामान स्वर्ण के थाल और रेशम की डोरी

से बँधे हुए मरकत के फल-गुच्छ, एवं मंगल कलश ध्वजा, पताका चँवर और मण्डप के मणि-दीप बहुत सुन्दर लगते थे। (रा० १, १२ १२१)।

नगर की सज्जा—अयोध्या और जनकपुर जैसे नगर उपयुक्त अवसरों पर अलंकृत किये जाते थे। राम-विवाह के उपलक्ष्य में कौशेय ध्वज-पताकाओं और चौरियों से सुन्दर बाजार सुसज्जित किये गये थे। इन अवसरों पर प्रत्येक मोड़ पर हरिद्रा, दूर्वा दधि, अक्षत और मालाओं से युक्त स्वर्ण-कलशों और तोरणों से घर मंगल-मय बना लिये जाते थे तथा चन्दन केसर, कस्तूरी और कर्पूर से निर्मित सुगन्धित द्रव्य से गलियों का सिंचन होता था। चन्द्रमुखी एवं सौभाग्यवती स्त्रियाँ षोडश शृंगारों से सजकर, जहाँ-तहाँ झुण्ड के झुण्ड मिलकर, मंजुल वाणी से मंगलगान करती थीं (रा० १ ३२८ ४, ३२६ १२)। दशरथ के आगमन पर जनकपुर में भी इसी प्रकार की सजावट हुई थी। प्रत्येक व्यक्ति का अपना गृह अलंकृत था, सार्वजनिक विपणि चंदापथ चतुष्पथ और नगर द्वार भी अलंकृत थे। सड़कों पर अरगजा से छिड़काव किया गया और जहाँ-तहाँ सुन्दर चौक पूरे गये। केतु-पताकाओं और तोरण-मण्डपों से बाजार ऐसा सुशोभित हुआ जिसका वर्णन नहीं हो सकता। सुपारी केला आम मौलिश्री, कदम्ब और तमाल आदि वृक्षों के आसपास मणि जटित थे। घर घर मंगल-कलश स्थापित किये गये। सुभगाएँ झुण्ड की झुण्ड मिलकर चलीं जो रूप-लावण्य में रति से भी सुन्दर और गान-वाद्य में सरस्वती के समान प्रतीत होती थीं (रा० १ ३०६ १४ ३०७)।

समाज-मस्तिष्क के लिए राज-सम्मान—प्राचीन भारत में राजा सब पर शासन करता था। उससे आशा की जाती थी कि वह ऐसा बुद्धिमान् धर्मात्मा और शक्तिशाली हो कि दीन-हीनों की सहायता कर सके (वि० ११६ १० ११)। तथापि ब्राह्मण विशेषतः विद्वान् वैसे ही स्वातन्त्र्य का उपभोग करते थे जैसा कि आधुनिक प्रजातन्त्र में लोक-सभा अथवा न्यायालय। अपने विद्या बल से होम-यज्ञ-द्वारा वे देवताओं को प्रसन्न कर लेते थे (रा १ १६८ १)। वशिष्ठ और विश्वामित्र की आध्यात्मिक शक्ति अतुलनीय कोटि की थी। यही कारण था कि महाराज दशरथ और जनक उनका विशेष आदर करते और महत्त्वपूर्ण विषयों में उनसे परामर्श भी लेते। उदाहरणतः ज्योंही दशरथजी ने सुना कि विश्वामित्रजी मुझ से मिलने आ रहे हैं त्योंही वे कुछ विप्रों को साथ लेकर चल दिये और प्रणाम कर उन्हें लिवा लाये तथा उन्होंने अपने सिंहासन पर बैठा कर उनका सत्कार किया (रा० १ ३१८ १२)। एक बार दशरथ ने वशिष्ठजी के घर जाकर उनके चरणों की वन्दना की और कहा कि मुझे सन्तति हीनता का कष्ट है (रा १ २२० १२)। एक बार पुन जब उन्हें यह प्रतीत हुआ कि मैं वृद्ध हो चला तो गुरु-गृह जाकर उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि मैं अब अपना राजमुकुट अपने पुत्र राम को दूँ और इस विषय में उनके आशीर्वाद की अभिलाषा भी की (रा० २, १ १४)। इसी प्रकार राम भी ऋषि भरद्वाज वाल्मीकि अत्रि अगस्त्य आदि से वनवास काल में सम्मान मिले और लंका से लौटते समय प्रयाग में भरद्वाज जी से पुनः मिले थे। ऐसा ही भरत ने किया। सुग्रीव ने हनुमान् को राम का भेद लेने के लिए ब्राह्मण के वेश में भेजा था और राम ने भी उन्हें इसी वेश में भरत के पास यह जानने के

लिए भेजा था कि अयोध्या को क्या दशा है। ब्राह्मण वेष का यह कारण था कि वे लोग उन दिनों समझते थे कि ब्राह्मण सदा एवं सर्वत्र इसी प्रकार सुरक्षित है जिस प्रकार आधुनिक समय में रेडक्रॉस। राम ने चित्रकूट में भरत जी को यह आश्वासन दिया था कि गुरु वशिष्ठ जी की कृपा से राजकार्य सुचारु रूप से चल जायगा। उनके शब्द थे "गुरु-प्रभाव राज्य का संचालन तथा अच्छा प्रतिष्ठा, धर्म, पृथ्वी धन घर आदि सभी का रक्षण कर देगा गुरु-प्रसाद ही घर-वन में समाज-सहित तुम्हारा-हमारा रक्षक है। माता-पिता गुरु और स्वामी की आज्ञा का पालन धर्म-रूपी पृथ्वी को धारण करने में इसी प्रकार समर्थ है जिस प्रकार शेष भगवान्। अतएव हे तात तुम वही करो" (रा० २, ३०६ १२)। वशिष्ठ जी ने ब्राह्मणों से कहा "विप्रो यह दिन और घड़ी शुभ है, आज्ञा करो कि आज रामचन्द्र सिंहासन ग्रहण करें। इस प्रस्ताव से ब्राह्मण प्रसन्नता-पूर्वक सहमत हुए। जब आवश्यक आयोजन हो चुका तो राम ने ब्राह्मणों को प्रणाम करते हुए उस दिव्यास और भव्य सिंहासन को ग्रहण किया। तदनन्तर द्विजों ने वैदिक मन्त्रों का उच्चारण और देवताओं ने जयघोष किया। सर्वप्रथम वशिष्ठ जी ने तिलक लगाया तदनन्तर अन्य ब्राह्मणों ने भी (रा० ७ ११ २४ २९ २१)। इस प्रकार भारत के मस्तिष्क ने महत्त्वपूर्ण अवसरों पर शासन-पीठ के संचालन में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया था।

कल्याणमय प्रजा-सत्ता—राजतन्त्र में इस प्रकार प्रजा-सत्ता के कल्याणमय बीज विद्यमान थे। जो समाजवाद भारत में चिरकाल से विद्यमान है वह अर्वाचीन पश्चिम के से भिन्न है। यहाँ तो राजा सेठ या और कोई धनिक दान के लिए द्रव्योपार्जन करता था। दान देना प्रत्येक के लिए पुण्य समझा जाता था। जिसके पास धन होता वह कुआँ या धर्मशाला बनवाता तड़ाग खुदवाता बाग लगवाता अथवा विद्यालय स्थापित कराता था। जो ऐसा करता वह वास्तव में उस संस्था का जन्मदाता और स्वामी समझा जाता किन्तु जो कुछ वह दूसरों के लिए करता उसका उपभोग वह स्वयं न करता था क्योंकि भारत में दानी अपने दान का स्वयं उपभोग नहीं करता है। जो धनिक बाग-बगीचे लगवाते थे उन्हें जनता के लिये खुले रखते थे न केवल सैर करने के लिए, किन्तु उसके फल पुष्पादि का उपयोग कराने के लिए भी। इंगलैंड में राजा उस वस्तु का भी स्वामी है जो संसार में विद्यमान नहीं, मेरा अभिप्राय "द विस्टन हम्बुस्ट"[1] नामक भू-सम्पत्ति से है। किन्तु भारत में इसके विपरीत धनिया नरेश के पास होता तो बहुत कुछ था किन्तु उसका स्वामित्व बहुत कम का था। दान देने में होड़ लगती थी, जिस कारण पूँजीपति और श्रमजीवी सन्निकट रहकर परस्पर प्रेम और आदर की भावना से एकता के सूत्र में आबद्ध थे। भारतवर्ष में मनुष्य की पहचान इस माप से नहीं थी कि अमुक ने बैंक में कितना रुपया एकत्र कर लिया है किन्तु इस माप से कि उसने समाज की कितनी सेवा की है। राजा ब्राह्मणों को भूल नहीं सकता था अर्थात् उनकी अवहेलना नहीं कर सकता था गुरु की विद्यमानता में उसका शासन गुरु के चरणों में था। आज का राष्ट्रपति तो सम्पादक और दल-नेता का आदर-सम्मान करता

१ द मास्टरपीस ऑफ यूरोप लिलियन वैनेर डुमरो, पृ० २११ मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क, १९५४।

है। वर्तमान युग में रूस का प्रतिज्ञा-पत्र 'दस आदेशों' से अधिक मूल्यवान् है। प्रजातन्त्र पहले था और अब भी है, किन्तु पहले आग्रह था गुण पर, अब है संख्या पर। संख्या के देखे तो राजा भोज और गंगा तेली में कोई अन्तर नहीं किन्तु गुण की दृष्टि से अन्तर बहुत है। जब प्रजा-सत्ता-रूपी घड़ी का लटकन गुण से संख्या की ओर अधिक बढ़ा त्योंही कोई न कोई विपत्ति आयी। एक साधारण व्यक्ति के अधिकार को सम्मानित बनाये रखने के कारण, राम को अपनी प्रियतमा को वनवास देना पड़ा। अपवाद निराधार था यदि राम चाहते तो उस पर कोई ध्यान न देते। किन्तु अपवाद का सम्बन्ध उनके व्यक्तित्व से था अतः प्रजा-सत्ता के संख्यात्मक रूप पर भी उन्हें ध्यान देना पड़ा था।

रावण की मनमानी—रावण सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र नरेश था। उसके पास मन्त्री सचिव सब कुछ थे किन्तु वह महत्त्वपूर्ण अवसरों पर उनकी बात मानता न था। उसने अपने भाई विभीषण और कुम्भकर्ण पत्नी मन्दोदरी मित्र मारीच मन्त्री शुक आदि की मन्त्रणा की अवहेलना की। उसके राजतन्त्र में प्रजासत्तात्मक सिद्धान्तों के प्रति कोई आदर न था न गुण के लिए, न संख्या के लिए। उसने ब्राह्मणों तक पर कर लगा दिया अतएव वह उनकी सहानुभूति को खो बैठा। दिव्य वरदानों से संपुष्ट (रा० १ १६ २) उसके पास कल्पना-संभव सांसारिक सभी वैभव विद्यमान था। उसने वरुण कुबेर, वायु यम और दिक्पाल जैसी दिव्य शक्तियों पर विजय प्राप्त कर ली थी। तुलसीदास जी के अनुसार, उसका ऐश्वर्य सुरेन्द्र-सम था अतएव निर्द्वन्द्व होकर वह राज्य का उपभोग करता था (रा० १ २ १) तथापि वह संसार का त्रास था और निरंकुश एवं अत्याचारी होने के कारण सब का घृणा-पात्र भी। अपने बाहुबल से अखिल विश्व को अधीन कर उसने एक भी व्यक्ति को स्वतन्त्र न छोड़ा। समग्र संसार पर अधिकार कर वह मनमानी करता था (रा० १ २११)। उसके शासन में पुण्य घटने और अवगुण बढ़ने लगे अतएव भले लोग कष्ट पाते और बुरे विलास करते थे। वेदविहित-कार्य का सम्पादन उत्साह-पूर्वक होता। गौ-ब्राह्मणों के नगरों पुरों और ग्रामों में राक्षस आग लगाते। उनके कुकृत्यों की कोई सीमा न थी। जीवन धन और पत्नी की सुरक्षा का अभाव था माता-पिता के लिए आदर न था और न भाइयों के लिये प्रेम ही। ऐसे अत्याचारों से पीड़ित हो यह पृथ्वी कांप उठी और गाय का रूप धारण करके देवता और ऋषियों के साथ सृष्टि-कर्ता ब्रह्माजी के पास सुरक्षा के निमित्त पहुँची जिसके परिणाम-स्वरूप भगवान् विष्णु राम-रूप में अवतीर्ण हुए, (रा० १ २११ १८)।

राजा राम के नित्य और नैमित्तिक कर्म—राम वशी और शक्तिशाली शस्त्र शास्त्रों में दक्ष शास्त्रों में पारंगत स्वभाव के मृदु, वाणी के मधुर, वज्र से कठोर और पुष्प से कोमल थे (रा ७ ४२)। वे ब्राह्मणों के प्रति आदर-पूर्ण निम्नातिनिम्न के लिए स्नेह-पूर्ण शत्रुओं के लिए क्षमाशील एवं सब के लिए दयालु थे। नित्य प्रातःकाल सरयू में स्नान कर के वे ब्राह्मण और ऋषियों की सभा में विराजते और वशिष्ठ जी से वेद और पुराण की कथाएँ सुनते थे। वे भाइयों के साथ भोजन, एवं नारद,

१ 'पॉलिटिक्स' ऐरिस्टोटल ३ ।

सनकादि (रा० ७ ४८ ४६, १ गी० ७, २१) का आतिथ्य करते । वे उत्सवों पर प्रजा से भेंट करते । उनसे मिलना सरल था (गी० ७ २१ १२) । उन्होंने करोड़ों अश्वमेध यज्ञ किये और असंख्य दान-दक्षिणा से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया (रा० ७ ४६ १) । उनकी पत्नी सीताजी सर्वदा पतिव्रता और अनुरक्त रहीं । वे घर का छोटा-मोटा काम भी अपने हाथों करतीं तथा अभिमान और आलस्य प्रवंचना से नितान्त रहित हो प्रासादों में कौशल्या तथा अन्य राजमाताओं की सेवा-सुश्रूषा करतीं और देवरों के सुख का ध्यान रखती थीं ।

राम की राजधानी—राम की राजधानी अयोध्या बड़ी सुन्दर नगरी थी । इसके उत्तर में पहन-बला सरयू के तट पर विशाल घाटों की अविरल पंक्तियाँ सुशोभित थीं । इनमें से कुछ मात्र गज और अश्वों के लिए कुछ स्त्री-पुरुषों के लिए तथा शेष केवल पूजा पाठ पाप के निमित्त निदिष्ट थे जहाँ कोई स्नान न कर सकता था । सब से सुन्दर था राजघाट जहाँ चारों वर्णों के लोग आ-जा सकते थे । घाटों के ऊपर देव मन्दिर थे नदी के तट पर यत्र-तत्र यति-मुनि निवास करते और ध्यान-मग्न रहते थे । कुछ धर्मात्माओं ने तुलसी की झाड़ियाँ लगा रखी थीं । नगर का बाह्य प्रदेश अत्यन्त आकर्षक था । बावड़ियाँ और ताल बहुरंग कमल और मनोहर सीढ़ियों से समन्वित थे । उद्यानों और उपवनों में मयूर और पिक अपने कलरव से मानो पथिकों का आह्वान करते थे (रा० ७ ४१ ४२) । नगर की शोभा अनिर्वचनीय थी । अयोध्या की अट्टालिकाएँ स्वर्ण और रत्नों से निर्मित थीं । नगर के चारों ओर एक परकोटा था । उस पर बने हुए विविध रंग के कंगूरे नवग्रह से प्रतीत होते थे जिन्होंने मानो अपनी सेना से अमरावती को घेर लिया हो । सड़कें अनेक रंगों के कांचों की बनी हुई थीं । जगमग नभ चुम्बी श्वेत प्रासादों पर कलश अपने प्रकाश में सूर्य चन्द्रमा से भी बढ़कर प्रतीत होते थे । प्रासादों के झरोखे मणियों के बने थे । घरों में मणियों के दीपक शोभा देते थे । मूँगों की देहलियाँ और मणियों के खम्भे तथा मरकत-जटित स्वर्णिम भित्तियाँ ऐसी सुन्दर थीं कि मानो ब्रह्माजी ने ही उन्हें विशेष रूप से बनाया हो । प्रासादों के प्रांगण स्फटिक और द्वार के स्वर्ण-कपाट हीरकमय थे (रा० ७ ४६ ३०) । सायंकाल को प्रासादों की स्फटिक भित्तियों में दीपों और रत्न-जटित शिखरों के प्रतिबिम्ब ऐसे लगते मानो आकाश के तारागण पृथ्वी पर आ बसे हों । (गी० ७ २ १२) ।

अयोध्या के चतुष्पथ और राजमार्ग सुन्दर थे । वाल्मीकि जी के अनुसार, उन पर सुगन्धित जल का छिड़काव होता था और वे पुष्पों से सुसज्जित बने रहते थे । बाजारों में वस्तुएँ बिना मूल्य के मिलती थीं । बजाज सर्राफ एवं अन्य व्यापारी अपनी दुकानों पर बैठे हुए, कुबेर के समान प्रतीत होते थे । नगर के आबाल-वृद्ध पुरुष समान रूप से सुन्दर सदाचारी और सुखी थे (रा० ७ ३० ३०) ।

नागरिकों की सम्पन्नता—रामराज्य में निर्धनता ढूंढ़े नहीं मिलती थी । वाल्मीकि जी के अनुसार, प्रत्येक भवन सप्ततल का होता था गोस्वामी जी लिखते हैं कि अयोध्या के घर-घर में सुन्दर चित्रशालाओं में रामचरित अंकित था । सभी लोगों के यहाँ पुष्पवाटिकाएँ थीं, जिनमें अनेक प्रकार की ललित लताएँ बसन्त की भाँति सदैव पुष्पित रहतीं, मधुकर गुंजन करते और त्रिविध समीर बहता रहता था । बालकों ने बहुत

से पक्षी पाल रखे थे जो बोलने में मधुर और उड़ने में सुन्दर लगते थे और जिन्होंने तोता-मैना को राम रघुपति आदि नाम रटा दिये थे। मयूर, हंस, सारस और कपोत घरों के ऊपर बैठते तथा मणि-भित्तियों और छतों पर अपनी प्रतिच्छाया को देखकर अनेक प्रकार से कूकते थे (रा० ७ दो० २०, ४)।

राम का राजनीतिक सिद्धान्त—रामचन्द्र जी राजमद के अवगुणों से परिचित थे (रा० २ २३१ १)। अतएव उनके व्यवहार में नम्रता और सज्जनता थी। उनका सिद्धान्त था कि प्रजा को सुखी रखो और यही उपदेश उन्होंने भरत जी को दिया था (रा० २ ३०६, ३ ३०७)। वे समझते थे कि पुत्र पिता और माता की सिखा पर चलने से कोई हानि नहीं होती (रा० २ ३१५, ३)। एक बार उन्होंने गुरुओं को और ब्राह्मणों को आमन्त्रित कर नगर-वासियों को मानव शरीर की महिमा, मनुष्य के कर्त्तव्यों संसार के कष्टों और माया की परिवर्तन-शीलता पर लम्बा उपदेश दिया तथा उनसे अपने आज्ञापालन की याचना की। उन्होंने अपने बारे में कहा था कि "मैं स्वाद दम्भ और निराधार कल्पना से विमुक्त हूँ मैं तो उसके वश में हूँ जो किसी से न बैर करे, न लड़ाई-झगड़ा न आशा रखे और न भय करे, तथा उसके जो कोई भी आरम्भ फल की इच्छा से नहीं करता जिसकी ममता घर में नहीं है जो मान-हीन पाप-हीन एवं क्रोध-हीन है जो निपुण और विज्ञानी है, और जो सत्संग करता, विषयों को तृणवत् समझता एवं शठता और कुतर्क से दूर तथा भक्ति से परिपूर्ण है" (रा० ७ ४६ ११)।

राम-राज्य का गौरव—जिसने भी राम-कथा लिखी उसने राम राज्य के गौरव का गान किया। रामचन्द्र जी ने ग्यारह सहस्र और पचास वर्षों तक राज्य किया ऐसा तुलसीदासजी कहते हैं यद्यपि 'वाल्मीकि रामायण' और 'अध्यात्म रामायण' के अनुसार उन्होंने केवल दस सहस्र वर्षों तक राज्य किया था। वाल्मीकि जी ने कहा है कि राम के शासन में प्रजा शान्ति और समृद्धि का उपभोग करती थी, वैधव्य कष्ट का रोग और सर्प की बाधाएँ दूर हो गयी थीं चोरी और बाल-मृत्यु का नाम मिट गया था। प्रजा भी राम के गुणों का अनुकरण करती थी। फल-फूल सस्य और वैभव का आधिक्य था और वर्षा समय पर होती थी। व्यास जी ने भी महाभारत के वनपर्व में लिखा है कि राम ने दस अश्वमेध यज्ञ किये और इन अवसरों पर प्रत्येक को छूट दे दी गयी थी कि गोशालाओं में आकर यथेष्ट अन्न प्राप्त कर ले। अध्यात्म रामायण के अनुसार राम राज्य में पृथ्वी सदा शस्य-श्यामला रही एवं वृक्ष सफल रहे मनुष्य सत्कर्मी थे और स्त्रियाँ पतिव्रता। किसी को सन्तति की मृत्यु का अवसर न आया। स्वयं रामचन्द्र जी बहुधा अपने भाइयों और वानरों के साथ विमान में बैठकर देश का निरीक्षण करते। वे शिवलिंग स्थापित करने के लिए उपदेश देते और स्वयं भी कई स्थानों पर शिव लिंग स्थापित कर चुके थे (अ० ७ ४ २१ २६)। किन्तु तुलसीदासजी का वर्णन सबसे बढ़कर है। उन्होंने राम राज्य की तुलना शरद से की है (रा० १ ४२ १) जबकि वर्षा के पश्चात् वातावरण न गरम होता है न शीत तथा सभी वस्तुएँ शुद्ध और स्वच्छ प्रतीत होती हैं। राम राज्य आदर्शों से परिवेष्टित था और राम उसके एकच्छत्र विधायक थे। वाल्मीकि जी भी प्रथम सर्ग में ऐसा सुझाते प्रतीत होते हैं कि अयोध्या

का सम्बन्ध सिन्धु कम्बोज बल्ख आदि से भी था।

राम राज्य में तीनों लोक सुखी थे। कहीं किसी प्रकार का दुःख न था और न किसी को किसी से द्रोह था। सब प्रकार के भेद भाव नष्ट हो गये थे। लोग धर्मात्मा थे अतएव वे वेद और वर्णाश्रम के अनुसार जीवन व्यतीत कर (वि० ४४ ७-८) तथा डर शोक रोग से रहित हो पूर्ण सुख का अनुभव करते थे। ऐसा कोई न था जो त्रिविध ताप से पीड़ित हो। सभी अपने पड़ोसी से प्रेम करते और अपनी जन्म जात-स्थिति से सन्तुष्ट थे। सारे संसार में धर्म के चार स्तम्भ (अर्थात् तपस्या ज्ञान दया और दान) स्थापित हो चुके थे। कोई भी कभी पाप का स्वप्न न देखता। स्त्री पुरुष समान रूप से रामार्चा में निरत होकर उच्चतम स्वर्ग का सुख भोगते थे। अकाल-मृत्यु और रोग नाम-मात्र को न थे। प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ और सुन्दर था। कोई भी निर्धनता शोक अथवा विपत्ति से ग्रस्त न था। न कोई अज्ञानी न कोई अभागा था। सभी लोग स्नेह-युक्त धर्मात्मा पुण्यात्मा चतुर और बुद्धिमान् थे। प्रत्येक व्यक्ति अपने पड़ोसी के गुणों की प्रशंसा करता और स्वयं भी विद्वान् बुद्धिमान् कृतज्ञ और सरल था (रा ७ ४२,४ ४१ २)। संसार में कोई भी व्यक्ति काम क्रोध और स्वभाव-जन्य रोगों से पीड़ित न था (रा० ७ ४१ १)।

राम के शासन में क्या स्त्री क्या पुरुष सभी अपने-अपने धर्म में तत्पर थे। उन्हें अनेक प्रकार की सुविधाएँ, घर एवं वन में उपलब्ध थीं। शिक्षा कृषि उद्यम व्यापार, नौकरी कला-कौशल आदि के द्वारा सम्पन्न वे राग-द्वेष से भय-क्रोध से तथा दमन या अत्याचार से सर्वथा मुक्त थे। इनके लिए अवसर ही उत्पन्न न होता था क्योंकि सभी लोग अपने कार्यों में प्रेम-पूर्वक दत्तचित्त थे (दो० १८२ १८१)। यदि न्याय की माँग की जाती तो वह तुरन्त मिलता यहाँ तक कि कुत्ते और पक्षी के साथ भी न्याय किया जाता था (मि० ११५, ४० पी० ७ २४ २)।

स्वयं प्रकृति प्रसन्न प्रतीत होती थी। वन-वृक्ष फल-पुष्प-समन्वित थे। गज सिंह पक्षी और मृग अपने स्वभाव-जन्य वैर को भूलकर सामंजस्य से रहते थे। पक्षियों की कूक मृग-शावकों की विचरता वायु की शीतलता और सुगन्ध तथा मधुमक्खियों की गूँज सुखद थी। तनिक-सी याचना पर प्रत्येक लता और वृक्ष अपनी मधुरिमा प्रदान करते और गाय बड़ी प्रसन्नता से मार्ग में ही दुग्धपात करती थी। पृथ्वी शस्य से आवृत थी। पर्वतों में विविध रत्नों के आकर दृष्टिगोचर होते थे। प्रत्येक नदी शीतल शुद्ध और सुस्वादु जल से उमड़ती थी। समुद्र अपनी मर्यादा में रह कर अपने तट पर अयमार्थ मुक्ता छोड़ जाता था। सरोवर कमलों से परिपूर्ण थे।

राम राज्य में बौद्धकाल की भाँति केवल अहिंसा को सारा महत्त्व प्रदान नहीं किया गया था। मनुजी ने धर्म के जो लक्षण बताये हैं उनमें अहिंसा का कोई स्थान नहीं यद्यपि अक्रोध में उसका समावेश हो सकता है। अहिंसा की अपेक्षा 'धर्म' की परिधि अधिक विस्तृत है। उनका सम्बन्ध अंगांगी है। राम को अनेक राक्षसों का रक्तपात करना पड़ा था और शान्ति-काल में भी उन्होंने एक व्यक्ति को संसार से विदा कर दिया जो अपने धर्म को छोड़कर दूसरे के अधिकार पर अतिक्रमण

करना चाहता था (दो० ७ २४ २)। तथापि राम मूर्तिमान् प्रेम और पराहित थे अतएव वे अपने बाण का प्रयोग तभी करते थे जब उसकी अत्यन्त आवश्यकता होती। रक्षा के लिए उनके पास दुर्ग थे आयुध थे और योद्धा थे तथा लुटेरों के लिए प्राण की शक्तियाँ भी। वे अपनी प्रजा को चाहते, और अपने माता पिता एवं भ्राताओं से प्रेम करते थे। अपनी पत्नी के प्रति भी उनका प्रेम अनन्य था किन्तु राज्य के हित में उसका भी त्याग कर देने में उन्हें कोई संकोच न हुआ। राम ने दिव्य राज्य के निवासियों के हृदय में आत्म शान्ति के निमित्त आत्म-त्याग किया था।

निष्कर्ष—गोस्वामीजी के अनुसार राज्य धर्म निरपेक्ष नहीं था। उसका शासन वेद और शास्त्र की विधियों के अनुसार होता था क्योंकि उसका उद्देश्य था न केवल भौतिक उन्नति की प्राप्ति किन्तु समाजस्थ व्यक्ति की आधिदैविक और आध्यात्मिक उन्नति भी जैसा कि राम के उस उपदेश से स्पष्ट है जो उन्होंने अयोध्या-वासियों को दिया था। राजतन्त्र दिव्य था और उसका उत्तराधिकार ज्येष्ठ पुत्र का था। एकतन्त्र में भी पंचों के परामर्श का आदर होता था। परामर्शदाताओं में मंत्री एवं विद्वान् बुद्धिमान् तथा दूरदर्शी गुरुजन होते थे। नियम-विधान का अधिकार, जैसा कि श्री रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं राजा को न था यह अधिकार तो धर्मप्रतिनिधियों का था जो सर्वथा निर्लोभ थे।[1] श्री रामचन्द्र द्विवेदी कहते हैं कि वाल्मीकि प्रजातन्त्र के, किन्तु तुलसीदासजी राजतंत्र के, समर्थक थे क्योंकि वाल्मीकि रामायण के अनुसार दशरथ जी ने रामाभिषेक के निमित्त राज्य-परिषद् का आह्वान किया जिसने महाराज का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया किन्तु तुलसीकृत रामायण के अनुसार महाराज मंत्रणा के लिए वशिष्ठजी के घर पधारे थे।[2] राम राज्य को 'एकतन्त्रात्मक' अथवा 'प्रजा सत्तात्मक एकतन्त्र' अथवा 'एक प्रकार का पंचायत राज्य' कहा जा सकता है किन्तु जैसा कि महाकवि पोप ने कहा है श्रेष्ठ रूप में शासित राज्य ही श्रेष्ठ है। राम राज्य वास्तव में प्रजासत्तात्मक ही था क्योंकि उसका लक्ष्य था जन-कल्याण (भले ही राजा को उसके निमित्त कितनी ही असुविधा क्यों न हो), और उसमें वाणी और विचार के स्वातन्त्र्य के लिए सब को समान अवसर था। वह इस रूप में समाजवादी भी था कि धनी सिद्धान्ततः सम्पूर्ण सम्पत्ति के स्वामी थे किन्तु प्रयोग और उपभोग में न्यून थे। व्यक्तिगत स्वामित्व का लाभ सर्व-साधारण जनता अथवा उसकी कोई महती संस्था उठाती थी। इस प्रकार रामराज्य साम्प्रदायिकता के द्वेष भाव से और वर्ग-युद्ध के विष से सर्वथा मुक्त था; और इसका लक्ष्य था व्यक्तिगत एवं सामाजिक कल्याण जिसकी उपलब्धि कृपाण के शासन भय से नहीं किन्तु सहयोग, करुणा और प्रेम से सम्भव थी।

---

१. तुलसी ग्रन्थावली, भाग ३ निबन्ध ३ श्री गोस्वामीजी और राजनीति, पृ० १६७

२ तुलसी साहित्य रत्नाकर, पृ० १८८–१९१। वाल्मीकि २ १

परिशिष्ट

परिशिष्ट

१६६१ वि०

(सब जानत प्रभु प्रभु)ता सोई। तदपि कहे बिनु रहा न कोई॥
महादेव अस कारन राखा। भगति प्र× × × ×भाषा॥
ऐक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद परधामा॥
ब्यापक बिस्व (रूप भगवा)ना। तेहि धरि देह चरित कृत नाना॥
सो केवल भगतन्ह हित लागी। परम कृपाल प्रनत (अनुरागी)॥
जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहि करुना करि कीन्ह न कोहू॥
गई बहोरि गरीब निवा(जू)। (स)रल सबल साहिब रघुराजू॥
बुध बरनहि हरि जस अस जानी। करत पुनीत हेत निज बानी॥
(ते)हि बल मै रघुपति गुन गाथा। कहिहौं नाइ राम पद माथा॥
मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई॥
दोहा अति अपार जे सरितबर जौ नृप सेतु कराहि।
चढि पिपीलका परम बिनु श्रम पारहि जाहि॥२३॥
ऐहि प्रकार बल मनहि दिढाई। कहिहौं रघुपति कथा सुहाई॥
ब्यास आदि कबि पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि चरित बखाना॥
चरन कमल बंदौ तिन्ह केरे। पुरवहु सकल मनोरथ मोरे॥
कलि के कबिन्ह करौ परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा॥
जे प्राकृत कबि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने॥
भऐ जे हैं होई हि जे आगे। प्रनवौ सबहि कपटु सब त्यागे॥
होहु प्रसन्न देहु बरदानू। साधु समाज भनिति सनमानू॥
जे प्रबंध बुध नहि आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कबि करही॥
कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कह हित होई॥
राम सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहि अदेसा॥
तुम्हरी कृपा सुलभ सोउ मोरे। सियनि सुहावनि टाट पटोरे॥
करहु अनुग्रह अस जिय जानी। बिमल जसहि प्रभु हरै सुबानी॥
दोहा सरल कबित कीरति बिमल सो आदरहि सुजान॥
सहज बैर बिसराइ रिपु जो सुनि करहि बखान॥२४॥
सो न होइ बिनु बिमल मति मोहि मति बल थोर॥
करहु कृपा हरि जस कहौ पुनि पुनि करौ निहोर॥२५॥
कबि कोबिद रघुपति चरित मानस मंजु मराल॥
बाल बिनय सुनि सुरुचि लखि मो पर होहु दयाल॥२६॥

---

१ यहाँ से प्रारम्भ।

बंदौं मुनि पद कंज रामायण जिन्ह निरमयो ॥
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित (दूषण) न सहित ॥२७॥
बंदौं चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस ॥
जिन्हहि न सपनेहु खेद (ब बरनत) रघुपति बिसद जस ॥२८॥
सोरठा बंदौं बिधि पद रेनु भव सागर जेहि कीन्ह जहँ ॥
(संतसुधा) ससि धेनु प्रगटे खल बिष बारुनी ॥२९॥
दोहा : बिबुध बिप्र बुध ग्रह चरण बंदि कहौं क(रि जोरि ॥
होहु) प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि ॥३०॥
पुनि बंदौं सारद सुर सरिता । यु(गल पुनीत मनो) हर चरिता ॥
मज्जन पान पाप हर ऐका । कहत सुनत एक हर अबिबेका ॥
[1](गुरु पितु मातु महे)स भवानी । प्रनवौं दीनबंधु दिन दानी ॥
सेवक स्वामि सखा सीय पी के । हित नि(रु पधि स)ब बिधि तुलसी के ॥
कलि बिलोकि जग हित हर गिरजा । साबर मंत्र जाल जि(न्ह सिरजा) ॥
अन मिल आखर अरथ न जापू । प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू ॥
सो महेस मो प(र अ)नुकूला । करिहि कथा मुद मंगल मूला ॥
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ । बरनौं (रा)म चरित चित चाऊ ॥
भनिति मोर सिव कृपा बिभाती । ससि समाज मिलि मनहु सुराती ॥
जो यह कथा सनेह समेता । कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता ॥
होइहहिं राम चरन अनुरागी । कलि मल रहित सुमंगल भागी ॥
दोहा सपनेहु साचेहु मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ ॥
तौ फुर होउ जो कही सब भाषा भनिति प्रभाउ ॥३१॥
बंदौं अवध पुरी अति पावनि । सरजू सरि कलि कलुष नसावनि ॥
प्रनमौं पुर नर नारि बहोरी । ममता जिन्ह पर प्रभुहि न थोरी ॥
सिय निंदक अघ ओघ नसाए । लोक बिसोक बनाइ बसाए ॥
बंदौं कौसल्यादि प्राची । कीर (ति) जासु सकल दिसि माची ॥
प्रगटे जहँ रघुपति ससि चारू । बिस्व सुखद खल कमल तुसारू ॥
[2](द)सरथ राउ सहित सब रानी । सुकृति सुमंगल मूरति मानी ॥
करउँ प्रनाम करम मन बानी । करहु कृपा सुत सेवक जानी ॥
जिन्हहि बिरचि बड़ भयउ बिधाता । महिमा अवधि राम पितु माता ॥
दोहा बंदौं अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद ॥
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ ॥३२॥
प्रनवौं परिजन सहित बिदेहू । जाहि राम पद गूढ़ सनेहू ॥
जोग भोग महँ राखेउ गोई । राम बिलोकत प्रगटेउ सोई ॥
प्रनवौं प्रथम भरत के चरना । जासु नेम ब्रत जाइ न बरना ॥
राम चरन पंकज मन जासू । लुबुध मधुप इव तजै न पासू ॥

---

१ बद दूर।
२ एक बढ़ है।

बंदौ लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुख दाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जसु जाका॥
(से)ष सहस्र सीस जग कारन। सो अवतरेउ भूमि भय टारन॥
सदा सु सानुकूल रहु मोपर। कृ(पा सि)धु सौमित्र गुनाकर॥
रिपुसूदन पद कमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी॥
म(हाबीर बि)नवौ हनुमाना। राम जासु जस आपु बखाना॥
दोहा प्रनवौ पवन कुमार खल बन पाव(क ग्यान घन)॥
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥१३॥
कपि पति रीछ निसाचर (राजा। अंगदा)दि ज कीस समाजा॥
बंदौ सबके चरन सुहाए। अधम सरीर राम जिन्ह पाए॥
[1](रघुपति चरन उपा)सक जेते। खग मृग सुर नर असुर समेते॥
बंदौ पद सरोज सब केरे। जे बिनु काम राम के (चेरे)॥
(सुक सनका)दि भक्त मुनि नारद। जे मुनिवर बिग्यान बिसारद॥
प्रनवौ सबहि धरनि धरि सीसा। कर(हु कृपा ज)नु जानि मुनीसा॥
जन(क) सुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुना निधान की॥
ताके (जुग पद) कमल मनाऊं। जासु कृपा निर्मल मति पाऊं॥
पुनि मन बचन कर्म रघुनायक। चरन कमल बंदौ (सब ला)यक॥
राजिव नैन धरे धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुख दायक॥
दोहा गिरा अर्थ जल (बी)चि सम कहियत भिन्न अभिन्न॥
बंदौ सीता राम पद जिनहि परम प्रिय खिन्न॥१४॥
बंदौ राम नाम रघुबर के। हेतु कृसानु भानु हिम कर के॥
बिधि हरि हर मय बेद प्रान से। अगुन अनूपम गुन निधान से॥
महा मंत्र जोई जपत महेसू। कासी मुक्ति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गन राऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ॥
जानि आदि कबि नाम प्रतापू। भयउ सिद्ध करि उलटा जापू॥
सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपे जे पिय के संग भवानी॥
हरषे हेतु हेरि हर हिय को। किय भूषन तिय भूषन तिय को॥
नाम प्रभाव जानि सिव नीको। काल कूट फला दीन्ह अमी को॥
दोहा बर्षा रितु रघुपति भगति (तु)लसी सालि सु दास॥
राम नाम बर बरन जुग सावन भादौ मास॥१५॥
आखर मधुर मनोह[2](र दो)ऊ। बरन बिलोचन जन जिय जोऊ॥
सुमिरत सुखद सुलभ सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥
कहत सुनत सुमिरत सुठि नीको। राम लखन सम प्रिय तुलसी को॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज संघाती॥

---

१ पृ० यहां आरम्भ होता है।
२ पृ० ६ से।

नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक बिसेषि जन त्राता॥
भगति सुतिय कल करन बिभूषन। जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन॥
स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। कमठ सेष सम धर बसुधा के॥
जन मन मंजु कंज मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से॥
दोहा एक छत्र एक मुकुट मनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ॥१६॥
समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सु समुझि (सुसा)धी॥
को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेद समुझिहहिं साधू॥
देखिय रूप नाम अधीना। रूप (ग्यान न)हिं नाम बिहीना॥
रूप बिसेषि नाम बिनु जाने। करतल गत न परत पहिचाने॥
सुमिरिय ना(म रूप बिनु) देखे। आवत हृदय सनेह बिसेषे॥
नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत बनत न जात ब(खानी)॥
(अगुन) सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥
दोहा राम नाम मनि दीप (धरु जीह देहरी) द्वार।
तुलसी भीतर बाहिर हु जो चाहसि उजियार॥१७॥
नाम जीह जपि जागहिं योगी। × × × ॥
(चले जात सिव सती)[1] समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपा निकेता॥
सती दसा संभु की देखी। उर उपजा संदेह (बिसे)षी॥
संकर जगत बंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावहिं सीसा॥
तिन्ह नृप सुतन्ह कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद पर धामा॥
भए मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहत न रोकी॥
दोहा ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानहिं बेद॥५०॥
बिष्नु जु सुर हित नर तनु धारी। सोउ सर्बज्ञ यथा त्रिपुरारी॥
खोजै सो कि अज्ञ इव नारी। ज्ञान धाम श्रीपति असुरारी॥
संभु गिरा पुनि मृषा न होई। सिव सर्बज्ञ जान सबु कोई॥
अस संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदय प्रबोध प्रचारा॥
जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी। हर अन्तर जामी सब जानी॥
सुनहु सती तव नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिय उर काऊ॥
जासु कथा कुंभज ऋषि गाई। भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई॥
सो मम इष्ट देव रघुबीरा। सेवहिं जाहि सदा मुनि धीरा॥
छंद मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जिहि ध्यावही।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावही॥
सोई राम व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निज तंत्र नित रघुकुल मनी॥

१ मय एक।

'(सो)रठा लाग न उर उपदेश जदपि कहेउ शिव बार बहु।
बोले बिहसि महेश हरि माया बल जानि जिय ॥ ७५ ॥
जौ तुमरे मन अति संदेहू। तौ किनि जाइ परिछा लेहू॥
तब लगि बैठ अहौं बट छाहीं। जब लगि तुम्ह ऐहो मोहि पाहीं॥
जैसे जाय मोह भ्रम भारी। करेहु सो जतन बिबेक बिचारी॥
चली सती शिव आयसु पाई। करैं बिचार करौं का भाई॥
इहाँ शंभु अस मन अनुमाना। दछ सुता कहु नहि कल्याना॥
मोरे कहे न संशय जाहीं। बिधि बिपरीत भलाई नाहीं॥
होइए सो जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा॥
अस कहि लगे जपन हरि नामा। गईं सती जहँ प्रभु सुख धामा॥
दोहा : पुनि पुनि हृदय बिचार करि धरि सीता करि रूप।
आगे से चलि पंथ तेहि जिहि आवत नर भूप ॥ ७६ ॥
लछिमन दीख उमा कृत बेषा। चकित भए भ्रम हृदय बिसेषा॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु प्रभाव जानत मति धीरा॥
सती कपट जान्यो सुर स्वामी। सब दरसी सब अन्तर जामी॥
सुमिरत जाहि मिटै अज्ञाना। सोई सर्बज्ञ राम भगवाना॥
(स)ती कीन्ह चहँ तहउँ दुराऊ। देखहु नारि प्रभाव सुभाऊ॥
निज माया बल हृदय बखानी। बोले (बिहँ)सि राम मृदु बानी॥
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू॥
कहेउ ब'(होरि क)हाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु किहि हेतू॥
दोहा : राम बचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति सं(कोच)॥
सती सभीत महेश पह चली हृदय बड़ सोच ॥ ७७ ॥
मैं शंकर कर कहा न माना। निज अज्ञान राम पर आना॥
जाइ उतर अब देहौं काहा। उर उपजा अति दारुन दाहा॥
जाना राम सती दुख पावा। निज प्रभाव कछु प्रगट जनावा॥
सती दीख कौतुक मग जाता। आगे राम सहित श्री भ्राता॥
फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुन्दर बेषा॥
जहँ चितवहि तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीश प्रबीना॥
देखे शिव बिधि बिष्णु अनेका। अमित प्रभाव एक तें एका॥
बंदत चरन करत प्रभु सेवा। बिबिध बेष देखे सब देवा॥
दोहा सती बिधात्री इन्दिरा देखी अमित अनूप।
जिहि जिहि बेष अजादि सुर तिहि तिहि तन अनुरूप ॥ ७८ ॥
देखे रघुपति जहँ तहँ जेते। शक्तिन सहित सकल सुर तेते॥
जीव चराचर जो संसारा। देखे सकल अनेक प्रकारा॥
पूजहिं प्रभुहि देव बहु बेषा। राम रूप नहिं दूसर देखा॥

---

१ [illegible] से।
२ छूट गया।

जब सोके रघुपति बहुतेरे । सीता सहित न बेष घनेरे ॥
सोई लछिमन सोई रघुबर सीता । देखि सती अति भई सभीता ॥
हृदय कम्प तनु सुधि कछु नाही । बदन मूदि बैठी मग माही ॥
बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी । कछु नहि दीखत दच्छ कुमारी ॥
पुनि पुनि नाइ राम पद सीसा । चली सती जहँ रहे गिरीसा ॥
दोहा : गई समीप महेस पद हँसि पूछी कुसलात ॥
लीन्हि परीछा कवन बिधि कहहु सत्य सब बात ॥ ७९ ॥
सती समुझि रघुबीर प्रभाऊ । भय बस सिव सन कीन्ह दुराऊ ॥
कछु न परिछा लीनि गुसाईं । कीन्ह प्रनामु तुम्हारिय नाईं ॥
जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई । मोरे मन प्रतीति अति सोई ॥
तब संकर देखेउ धरि ध्याना । सती जो कीन्ह मरमु सबु जाना ॥
बहुरि मायहि सिर नावा । प्ररि सतिहि जिहि झूट कहावा ॥
हरि इछा भावी बलवाना । हृदय बिचारत संभु सुजाना ॥
सती कीन्ह सीता कर बेषा । सिव उर भएउ बिषाद बिसेषा ॥
जो अब करो सती सन प्रीति । मिटै भगति पथ होइ अनीति ॥
दोहा परम प्रीत न जाइ तजि किए प्रम बड़ पाप ।
प्रगट न कहत महेस कछु हृदय अधिक संताप ॥ ८० ॥
तब संकर प्रभु पद सिर नावा । सुमिरत राम हृदय अस आवा ॥
एहि तन सतिहि भेट मोहि नाही । सिव संकल्प कीन्ह मन माही ॥
अस बिचारि संकर मति धीरा । चले भवन सुमिरति रघुबीरा ॥
चलत गगन भै गिरा सुहाई । जय महेस भलि भगति दृढ़ाई ॥
अस पन तुम्ह बिनु करै को आना । राम भगत समरथ भगवाना ॥
सुनि नभ गिरा सती उर सोचा । पूछा सिवहि समेत सकोचा ॥
कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला । सत्य धाम प्रभु दीन दयाला ॥
जदपि सती पूछा बहु भाती । तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती ॥
दोहा (सती) हृदय अनुमान किय सब जान्यो सरबग्य ।
कीन्ह कपट मैं संभु सन नारि सहज जड़ अग्य ॥ ८१ ॥
(सोर)ठा : जल पय सरिस बिकाहि देखहु प्रीति की रीति भलि ।
बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई [1](परत ही) ॥ ८२ ॥
हृदय सोचु समुझि निज करनी । चिंता अमित जात नहि बरनी ॥
कृपा सिंधु सिव पर(म) अगाधा । प्रगट न कहेउ मोर अपराधा ॥
संकर रुख अवलोकि भवानी । प्रभु मोहि तजेउ हृदय अकुलानी ॥
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई । तपै अवा इव उर अधिकाई ॥
सतिहि ससोच जानि बृषकेतू । कही कथा संदर सुख हेतू ॥
बरनेत पंथ बिबिध इतिहासा । बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा ॥

---

१ पृ० ११ ।
२ मध्य पृष्ठ ।

पुनि तहँ संभु समुझि पन आपन। बैठे बट तर करि कमलासन॥
संकर सहज सरूप सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा॥
दोहा : सती बसहिं कैलास तब अधिक सोच मन माहिं।
मरमु न कोऊ जानि कछु जुग सम दिवस सिराइ॥ ८३॥
नित नव सोचु सती उर भारा। कब जैहौं दुख सागर पारा॥
मैं जु कीन्ह रघुपति अपमाना। पुनि पति बचन मृषा करि जाना॥
सो फलु मोहि बिधाता दीन्हा। जो कछु उचित रहा सो कीन्हा॥
अब बिधि अस न बूझिअहि तोही। संकर बिमुख जिआवसि मोही॥
कहि न जाइ कछु हृदय गलानी। मन महुँ रामहि सुमिरि सयानी॥
जौं प्रभु दीन दयाल कहावा। आरत हरन बेद जसु गावा॥
तौ मैं बिनय करौं कर जोरी। छूटै बेगि देह यह मोरी॥
जौं मोरे सिव चरन सनेहू। मन क्रम बचन सत्य ब्रत एहू॥
दोहा तौ सम दरसी सुनिय प्रभु करहु सो बेगि उपाइ।
होइ मरन जिहि बिनहि श्रम दुसह बिपति बिहाइ॥ ८४॥
एहि बिधि दुखित प्रजेस कुमारी। अकथनीय दारुन दुख भारी॥
बीते संबत सहस सतासी। तजी समाधि संभु अबिनासी॥
राम नाम सिव सुमिरन्ह लागे। जानेउ सती जगत पति जागे॥
जाइ संभु पद बंदन कीन्हा। सनमुख संकर आसन दीन्हा॥
लगे कहन हरि कथा रसाला। दछ प्रजेस भए तिहि काला॥
देखा बिधि बिचारि सब लायक। दछहि कीन्ह प्रजापति नायक॥
बड़ अधिकार दछ जब पावा। अति अभिमान हृदय तब आवा॥
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥
दोहा दछ लिए मुनि बोलि सब करन लाग बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग॥ ८५॥
किंनर नाग सिद्ध गंधर्बा। बधुन्ह समेत चले सुर सर्बा॥
बिष्नु बिरंचि महेस बिहाई। चले सकल सुर जान बनाई॥
सती बिलोके ब्योम बिमाना। जात चले सुंदर बिधि नाना॥
सुर सुंदरी करहिं कल गाना। सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना॥
सती पूछ सिव कहा बखानी। पिता जग्य सुनि कछु हरषानी॥
जौं महेस मोहि आयसु देहीं। कछु दिन जाइ रहौं मिस एहीं॥
पति परित्याग हृदय दुख भारी। कहै न निज अपराध बिचारी॥
बोली सती मनोह (र) बानी। भय संकोच प्रेम रस सानी॥
दोहा पिता भवन उत्सव परम जौं प्रभु आयसु होइ।
तौ मैं जा (उँ कृ) पा अयन सादर देखन सोइ॥ ८६॥
कहेहु नीक मोरेहु मन भावा। यह अनुचित नहिं नेवत पठावा॥

१ पृ० १०।

[1](दक्ष स)कल निज सुता बुलाईं । हमरे बैर तुम्हैं बिसराईं ॥
ब्रह्म सभा हम सन दुख माना । तिहि ते अजहु कर (अपमा)ना ॥
जो बिनु बोले जाहु भवानी । रहै न सील सनेह न कानी ॥
जदपि मित्र पितु प्रभु गुर गेहा । जाई (अ) बिनु बोले न सँदेहा ॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई । तहाँ गए कल्यान न होई ॥
भाँति अनेक संभु समुझावा । भावी बस न ज्ञान उर आवा ॥
कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बिलाए । नहिं भलि बात हमारे भाए ॥
दोहा कहि देखा हर जतन बहु रहै न दक्ष कुमारि ।
दिए मुख्य गन संग तब बिदा कीन्हि त्रिपुरारि ॥ ८७ ॥
पिता भवन जब गईं भवानी । दक्ष त्रास काहु न सनमानी ॥
सादर भलेहि मिली एक माता । भगिनी मिली बहुत मुसिकाता ॥
दक्ष न कछू पूछि कुसलाता । सतिहि बिलोकि जरेउ सब गाता ॥
सती जाइ देखेउ तब जागा । कतहु न दीख संभु कर भागा ॥
तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेउ । पति अपमान समुझि उर दहेउ ॥
पछिला दुख न हृदय अस ब्यापा । जस यह भयउ महा परितापा ॥
जदपि जग दारुन दुख नाना । सब तें कठिन जाति अपमाना ॥
समुझि सो सतिहि भयो अति क्रोधा । बहु बिधि जननी कीन्ह प्रबोधा ॥
दोहा सिव अपमान न जाइ सहि हृदय न होइ प्रबोध ।
सकल सभहि हठि हटकि तब बोली बचन सक्रोध ॥ ८८ ॥
सुनहु सभासद सकल मुनींद्रा । कही सुनी जिन्ह संकर निंद्रा ॥
सो फलु तुरत लहब सब काहू । भली भाँति पछिताब पिता हू ॥
संत संभु श्रीपति अपवादा । सुनिय जहाँ तहँ असि[2](म)र जादा ॥
काटिय तासु जीभ जो बसाई । श्रवन मूदि न तु चलिय पराई ॥
जगदातमा महेस त्रिपुरारी । जगत जनक सब के हितकारी ॥
पिता मंद मति निंदत तेही । दक्ष सुक्र संभव यह देही ॥
तजिहौं तुरत देह तिहि हेतू । उर धरि चंद्र मौलि बृषकेतू ॥
अस कहि योगानल तनु जारा । भयउ सकल मख हाहाकारा ॥
दोहा सती मरन सुनि संभु गन लगे करन मख खीस ।
जग्य बिध्वंस बिलोकि भृगु रक्षा कीन्हि मुनीश ॥ ८ ॥
समाचार सब संकर पाए । बीर भद्र करि कोप पठाए ॥
जग्य बिध्वंस जाय तिन्ह कीन्हा । सकल सुरन्ह बिधिवत फलु दीन्हा ॥
भै जग बिदित दक्ष गति सोई । जस कछु संभु बिमुख कह होई ॥
यह इतिहास सकल जग जाना । तातें मैं संक्षेप बखाना ॥
सती मरत हरि सन बर मागा । जन्म जन्म सिव पद अनुरागा ॥
तिहि कारन हिम गिरि गृह जाई । जन्मी पारवती तनु पाई ॥

१ पत्ता टूटा।
२ पृष्ठ २१ से।

जब तें उमा सैल गृह जाईं। सकल सिद्धि संपति तहँ छाईं॥
जहँ तहँ मुनिन्ह सुआश्रम कीन्हे। उचित बास हिम भूधर दीन्हे॥
दोहा सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना भाँति।
प्रगटीं सुंदर सैल पर मनि आकर बहु भाँति॥ ६०॥
सरिता सब पुनीत जल बहहीं। खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं॥
सहज बयर सब जी (वन) त्यागा। गिरि पर सकल करहिं अनुरागा॥
सोहै सैल गिरिजा गृह आए। जिमि जन राम भगति (के पाए)॥
नित नूतन मंगल गृह तासू। ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू॥
नारद समाचार सब पाए। कौतु[1](कहिं) गिरि गेह सिधाए॥
सैल राज बड़ आदर कीन्हा। पद पखारि बर आसन दीन्हा॥
नारि सहित मुनि पद सि(र ना)वा। चरन सलिल सब भवन सिंचावा॥
निज सौभाग्य बहुत बिधि बरना। सुता बोलि मेली मुनि चरना॥
दोहा त्रिकालग्य सर्बग्य तुम गति सर्बत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोष गुन मुनिबर हृदय बिचारि॥ ६१॥
कह मुनि बिहसि गूढ़ मृदु बानी। सुता तुम्हारि सकल गुन खानी॥
सुंदर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अंबिका भवानी॥
सब लच्छन संपन्न कुमारी। होइ है संतत पियहि पिआरी॥
सदा अचल एहि कर अहिवाता। एहि तें सुजसु पैहैं पितु माता॥
होइहि पूज्य सकल जग माहीं। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं॥
एहि कर नाम सुमिरि संसारा। तिय चढ़िहहिं पतिब्रत असिधारा॥
सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी। सुनु जे अवगुन दुइ चारी॥
अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना॥
दोहा : जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख॥ ६२॥
सुनि मुनि गिरा सत्य जिय जानी। दुख दंपतिहि उमा हरषानी॥
नारद हू यह भेदु न जाना। दसा एक समुझब बिलगाना॥
सकल सखी गिरिजा गिरि मैना। पुलक सरीर भरे जल नैना॥
होइ न मृषा देव रिषि भाषा। उमा सो बचन हृदय धरि राखा॥
उपजेउ सिव पद कमल सनेहू। मिलन कठिन मन भा संदेहू॥
जानि कुअवसर प्रीति दुराई। सखी उछंग बैठि पुनि जाई॥
झूठि न होइ देव रिषि बानी। सोचहिं दंपति सखी सयानी॥
उर धरि धीर कहै गिरि राऊ। कहहु नाथ का करिय उपाऊ॥
दोहा कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटन हार॥ ६३॥
तदपि एक मैं कहउँ उपाई। होइ करै जौं दैव सहाई॥

१ पुष्ट मता।
२ पृष्ठ २२ से।

अस बर मैं बरनेउ तुम्ह पाहीं । मिलिहि उमहि कछु संसय नाहीं ॥
जे बर के दोष बखाने । ते सब सिव पहँ मैं अनुमाने ॥
जौ बिबाहु संकर सन होई । दोषौ गुन सम कह सबु कोई ॥
जौ अहि सेज सयन हरि करहीं । बुध तिन्ह कहँ कछु दोष न धरहीं ॥
भानु कृसानु सर्ब रस खाहीं । तिन कहँ मंद कहत कोउ नाहीं ॥
सुभ अरु असुभ सलिल सब बहहीं । सुरसरि कोउ अपुनीत न कहहीं ॥
समरथ कहुँ नहिं दोष गुसाईं । रबि पावक सुरसरि की नाईं ॥

दोहा जौ अस हीसिष करहिं नर जड़ बिबेक अभिमान ।
परहिं कलप भरि नरक महुँ जीव कि ईस समान ॥ ६४ ॥

सुरसरि जल कृत बारुनि जाना । कबहु न संत करहिं तेहि पाना ॥
सुरसरि मिले (सोउ) सम जैसे । ॥
संभु सहज समरथ भगवाना । ऐहि बिबाहु सब बिधि कल्याना ॥
[1](दुरा)राध्य पै अहहि महेसू । आसुतोष पुनि किए कलेसू ॥
जौ तपु करै कुमारि तुम्हारी । (भा)बिउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी ॥
जदपि बर अनेक जग माहीं । एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं ॥
बर दायक प्रन तारत भंजन । कृपा सिंधु सेवक मन रंजन ॥
इच्छित फल बिनु सिव अवराधे । लहिए न कोटि जोग जप साधे ॥

दोहा अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहि दीन्ह असीस ।
होइ हि यह कल्यान अब संसय तजहु गिरीस ॥ ६५ ॥

अस कहि ब्रह्म भवन मुनि गएऊ । आगिल चरित सुनहु जस भयऊ ॥
पतिहि एकांत पाइ कह मैना । नाथ न मैं समुझे मुनि बयना ॥
जौ घर बर कुल होइ अनूपा । करिय बिबाहु सुता अनुरूपा ॥
नतु कन्या बर रहउ कुमारी । कंत उमा मम प्रान पियारी ॥
जौ न मिलहि बर गिरिजहि जोगा । गिरिजड़ सहज कहहि सब लोगा ॥
सोइ बिचार पति करेहु बिबाहू । जिहि न होइ पाछे पछिताहू ॥
अस कहि परी चरन धरि सीसा । बोले सहित सनेह गिरीसा ॥
बरु पावक प्रगट ससि माहीं । नारद बचन अन्यथा नाहीं ॥

दोहा : प्रिया[2] सोचु परिहरउ सब सुमिरहु श्री भगवान ।
पारबती निमएउ जिहि सोई करहि कल्यान ॥ ६६ ॥

अब जो तुम्हहि सुता पर नेहू । तो अस जाइ सिखापन देहू ॥
करै सो तप जिहि मिलै महेसू । आन उपाय न मिटहि कलेसू ॥
नारद बचन सगर्भ सहेतू । सुंदर सब गुन निधि बृष केतू ॥
अस बिचारि तुम्ह तजहु असंका । सबहि भाँति संकर अकलंका ॥
सुनि पति बचन हर्ष मन माहीं । गै तुरत उठि गिरिजा पाहीं ॥
उमहि बिलोकि नयन भरि बारी । सहित सनेह गोद बैठारी ॥

---

१ दुराराध्या ।
२ ६ ४ ११ से ।

बारहि बार लेइ उर लाई । गद गद कंठ न कछु कहि जाई ॥
जगत मातु सर्बग्य भवानी । मातु सुखद बोली मृदु बानी ॥
दोहा सुनहु मातु मैं दीख अस सपन सुनाओ तोहि ।
सुन्दर गौर सु बिप्रवर अस उपदेसहु मोहि ॥ ९७ ॥
करहु जाइ तप सैल कुमारी । नारद कहा सो सत्य बिचारी ॥
मात पितहि पुनि यह मत भावा । तप सुख प्रद दुख दोष नसावा ॥
तप बल रचइ प्रपच बिधाता । तप बल बिष्नु सकल जग त्रा(ता) ॥
तप बल संभु करहि संघारा । तप बल सेष धरै महि भारा ॥
तप अधार सब स(ष्टि भ)वानी । करहि जाइ तप अस जिय जानी ॥
सुनत बचन बि[1](समि)त महतारी । सपना सुनाइहि गिरिहि हकारी ॥
मात पितहि बहु बिधि समुझाई । च(ली) उमा तप हित हरषाई ॥
प्रिय परिवार पिता अरु माता । भएउ बिकल मुख आवै न बाता ॥
दोहा बेद सिरा मुनि आइ तब सबहि कहा समुझाइ ।
पारबती महिमा सुनत रहे प्रबोधै पाइ ॥ ९८ ॥
उर धरि उमा प्रान पति चरना । जाइ बिपिन लागी तपु करना ॥
अति सुकुमारि न तन तप जोगू । पति पद सुमिरि तजेउ सब भोगू ॥
नित नव चरन उपज अनुरागा । बिसरी देह तपहि मनु लागा ॥
संबत सहस मूल फल खाए । साग खाइ सत बर्ष गवाए ॥
कछु दिन भोजन बारि बतासा । किए कठिन कछु दिन उपबासा ॥
बेल पाति महि परै सुखाई । तीनि सहस संबत सो खाई ॥
पुनि परि हरेउ सुखाने परना । उमहि नाम तब भएउ अपर्ना ॥
देखि उमहि तप खिन्न सरीरा । ब्रह्म गिरा भई गगन गभीरा ॥
दोहा भएउ मनोरथ सुफल तब सुनु गिरिराज कुमारि ।
परि हरु दुसह कलेस सब अब मिलहि त्रिपुरारि ॥ ९९ ॥
अस तप काहु न कीन्ह भवानी । भए अनेक धीर मुनि ज्ञानी ॥
अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी । सत्य सुगम निगमादि बखानी ॥
आवै पिता बुलावन जब ही । हठ परि हरि घर जाएहु तब ही ॥
मिलहि तुम्हहि जब सप्त रिषीसा । तब जानेहु प्रमान बागीसा ॥
सुनत गिरा बिधि गगन बखानी । पुलक गात गिरिजा हरषानी ॥
उमा चरित सुंद मैं गावा । सुनहु संभु के चरित सुहावा ॥
जब तै सती जाइ तनु त्यागा । तब तै सिव मन भएउ बिरागा ॥
जपहि सदा रघुनायक नामा । जह तह सुनहि राम गुन ग्रामा ॥
दोहा चिदानंद सुख धाम सिव बिगत मोह मद मान ।
बिचरहि महि धरि हृदय हेरि सकल लोक अभिराम ॥ १०० ॥

१ नष्ट पृष्ठ ।
२ पृष्ठ २४ से ।

कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना । कतहुँ राम गुन करहिं बखाना ॥
जदपि अकाम तदपि भगवाना । भगत बिरह दुख दुखित सुजाना ॥
एहि बिधि गए कालु बहु बीती । नित नै होइ राम पद प्रीती ॥
नेम प्रेम संकर कर देखा । अबिचल हृदय भगति कै रेखा ॥
प्रगटे राम कृतग्य कृपाला । रूप सील निधि तेज बिसाला ॥
बहु प्रकार संकरहि स(रा)हा । तुम्ह बिनु अस ब्रत को निरबाहा ॥
बहु बिधि राम सिवहि समुझावा । पारबती कर जन्म (सुना)वा ॥
अति पुनीत गिरि की करनी । बिस्तार सहित कृपानिधि बरनी ॥
दोहा अब बिनती[1] (मम सु)नहु सिव जौं मो पर निज नेहु ।
जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मागे देहु ॥ १ ॥
कह सिव जदपि उ(चि)त अस नाहीं । नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं ॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा । परम धरम यह नाथ हमारा ॥
मातु-पिता गुर प्रभु की बानी । बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी ॥
तुम सब भाँति परम हित कारी । अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी ॥
प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना । भगति बिबेक धर्म जुत रचना ॥
कह प्रभु हर तुम्हार पन रहेऊ । अब उर राखहु हम जो कहेऊ ॥
अंतरधान भए अस भाषी । संकर सोइ मूरति उर राखी ॥
तबहिं सप्त रिषि सिव पहिं आए । बोले प्रभु अति बचन सुहाए ॥
दोहा पारबती पहिं जाइ तुम्ह प्रेम परिच्छा लेहु ।
गिरिहि प्रेरि पठाएहु भवन दूरि करेहु संदेहु ॥२॥
सिव के बचन मुनिन्ह सुनि काना । गौ जहाँ कानन गिरि नाना ॥
रिषिन्ह गौरी देखी तहँ कैसी । मूरतिमंत तपस्या जैसी ॥
बोले मुनि सुनु सैल कुमारी । करहु कवन कारन तपु भारी ॥
केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू । हम सत्य मरम सब कहहू ॥
सुनत रिषिन्ह के बचन भवानी । बोली गूढ़ मनोहर बानी ॥
कहत मरम न अति सकुचाई । हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई ॥
मन हठ परा न सुनै सिखावा । चहत बारि पर भीति उठावा ॥
नारद कहा सत्य मोहि जानी । बिनु पंखन हम चहत उड़ानी ॥
देखहु मुनि अबिबेक हमारा । चाहिय सिवहि सदा भरतारा ॥
दोहा सुनत बचन बिहसे रिषय गिरि संभव तव देह ।
नारद कर उपदेस सुनि कहहु बसेहु किन गेह ॥ ३ ॥
दच्छ सुतन्ह उपदेसेन्हि जाई । तिन्ह पुनि भवन न देखा आई ॥
चित्र केतु कर घर उन घाला । कनक कसिप पर पुनि अस हाला ॥
नारद सिख जे सुनहिं न नारी । अवसि होइ तजि भवन भिखारी ॥

---

[1] अब पुन ।
[2] पृष्ठ १२ से ।

मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आपु सरिस सबही चह कीन्हा॥
तिहि के बचन मानि बिस्वासा। तुम चाहहु पति सहज उदासा॥
निर्गुन निलज्ज कुबेष कपाली। अकुल अगेह दिगंबर ब्याली॥
कहहु कवन सुष अस बर पाए। भली भूलि ठग के बौराए॥
पंच कहे सिव सती बिबाही। पुनि अवडेरि मरा इहि ताही॥
दोहा अब सुष सोवहि सोच नहि भीष मागि भव षाइ।
सहज एकाकिन्ह के भवन कबहुं कि नारि षटाइ॥४॥
अजहु मानहु कहा हमारा। हम तुम्ह कहु बरु नीक बिचारा॥
अति सुंदर सुचि सुषद सुसीला। गावहि बेद जासु जस लीला॥
दूषन रहित सकल गुन रा(सी)। श्रीपति पुर बैकुंठ निवासी॥
अस बर तुम्है मिला उब आनी। सुनत बिहसि कह बचन भ[1](वानी)॥
सत्य कहेउ मुनि सब तनु एहा। हठ न छुटै छूटै बरु देहा॥
कनकौ पुनि पषान ते होई। जारेउ (स)हज न परिहर सोई॥
नारद बचन मैं न परिहरऊ। बसौ भवन उजरौ नहि डरऊ॥
गुर के बचन प्रीति जिन नाही। सपनेउ सुलभ न सुभ मति तेही॥
दोहा महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम।
जाकर मन रम जाहि सन ताहि ताही सो काम॥ ५॥
जौ तुम मिलतेउ प्रथम मुनीसा। सुनतेउ सिष तुम्हारि धरि सीसा॥
अब मैं जन्म संभु सन हारा। को गुन दूषन करै बिचारा॥
जौ तुम्हरे हठ हृदय बिसेषी। रहि न जाइ बिनु किए बरेषी॥
तौ कौतुकिअन्ह आलस नाही। बर कंन्या अनेक जग माही॥
जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरौ संभु न त रहउ कुमारी॥
तजौ न नारद कर उपदेसू। आपु कहै सत बार महेसू॥
मैं पाँइ परी कहै जगदंबा। तुम गृह गवनहु भई बिलंबा॥
देषि प्रेम बोले मुनि ग्यानी। जय जय जय जगदंबिके भवानी॥
दोहा तुम माया भगवान सिव सकल जगत पितु मात।
नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषित गात॥ ६॥
जाइ मुनिन हिमवंतु पठाए। करि बिनती गिरिजा गृह ल्याए॥
बहुरि सप्त रिषि सिव पहि जाई। कथा उमा कै सकल सुनाई॥
भए मगन सिव सुनत सनेहा। हरषि सप्त रिषि गवने गेहा॥
मन करि थिर[2](र) संभु सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना॥
तारक असुर भएउ तिहि काला। भुज प्रताप बल तेज बिसाला॥
तिहि सब लोक लोक पति जीते। भए देव सुष संपति रीते।
अजर अमर सो जीति न जाई। हारे सुर करि बिबिध लराई॥
तब बिरंचि सन जाइ पुकारे। देषे बिधि सब देव दुषारे॥

१ मूल पाठ।
२ १ रर मे

दोहा सब सन कहा बुझाइ बिधि दनुज निधन तब होइ।
संभु सुक्र संभूत सुत एहि जीतइ रन सोइ ॥७॥

मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईस्वर करिहि सहाई॥
सती जो तजी दच्छ मख देहा। जनम जा हिमाचल गेहा॥
तेहिं तपु कीन्ह संभु पति लागी। सिव समाधि बैठे सबु त्यागी॥
जदपि अहै असमंजस भारी। तदपि बात एक सुनहु हमारी॥
पठवहु कामु जाइ सिव पाहीं। करै छोभु संकर मन माहीं॥
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई। करवाउब बिबाहु बरिआई॥
एहि बिधि भलेहिं देवहित होई। मत अति नीक कहइ सबु कोई॥
अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतू। प्रगटेउ बिषम बान झषकेतू॥

दोहा सुरन्ह कही निज बिपति सब सुनि मन कीन्ह बिचार।
(सं)भु बिरोध न कुसल मोहि बिहसि कहेउ अस मार ॥८॥

तदपि करब मैं काजु तुम्हारा। श्रुति (कह) परम धरम उपकारा॥
पर हित लागि तजइ जो देही। संतत संत प्रसंसहिं तेही॥
अस कहि × × । × × × × ॥
(पन्ना पसात) × × (भ्रा) है

दोहा जो नृप त(नय) (ब्रह्म) किमि नारि नारि बिरह मति भोरि।
देखि चरित (महि)मा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि ॥१११॥

जौं (अनीह ब्या)पक बिभु कोउ। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोउ॥
(अग्य) जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू॥
मैं बन दीखि राम प्रभुताई। अति भय बिकल न तुम्हहि सुनाई॥
तदपि मलिन मन बोधु न आवा। सो फलु भली भाँति हम पावा॥
अजहूँ कछु संसउ मन मोरे। करहु कृपा बिनवउँ कर जोरे॥
प्रभु मोहि तब बहु भाँति प्रबोधा। नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा॥
तब कर अस बिमोह अब नाहीं। राम कथा पर रुचि मन माहीं॥
कहहु (पु)नीत राम गुन गाथा। भुजग राज भूषन सुर नाथा॥

दोहा बंदउँ पद धरि धरनि सिरु बि(नय) करउँ कर जो(रि)।
बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि ॥१३४॥

जदपि जोषिता नहिं अधिका(री। दा)सी मन क्रम बचन तुम्हारी॥
गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥
अति आरति पूछउँ सुरराया। रघुपति कथा कहहु करि दाया॥
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी॥
पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा॥
कहहु जथा जानकी बिबाहीं। (रा)जु तजा सो (दूषन) काहीं॥
बन बसि कीन्हे चरित अपा(रा)। कहहु नाथ जिमि रावन मारा॥
धीता जिमि कहो हर बेहू। (× ×)बरंद मुनि होहु हरषेहू॥

रा[1](ज) बैठि कीन्ही बहु लीला । सकल कहौ संकर सुख सीला ॥
दोहा बहुरि कहहु करुना यतन कीन्ह जो अचरजु राम ॥
प्रजा सहित रघुबंस मनि किमि गवने निज धाम ॥११५॥
पुनि प्रभु कहहु सो तत्व बखानी । जेहि बिग्यान मगन मुनि ग्यानी ॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा । पुनि सब बरनहु सहित बिभागा ॥
औरौ राम रहस्य अनेका । कहहु नाथ अति बिमल बिबेका ॥
जो प्रभु मैं पूछा नहि होई । सोउ दयाल राखउ जनि गोई ॥
तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना । आन जीव पावर का जाना ॥
प्रस्न उमा कै सहज सुहाई । छल बिहीन सुनि सिव मन भाई ॥
हर हिय राम चरित सब आए । प्रेम पुलकि लोचन जल छाए ॥
श्री रघुनाथ रूप उर आवा । परमानंद अमित सुखु पावा ॥
दोहा रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह ॥
मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह ॥११६॥
झूठेउ सत्य होइ बिनु जाने । जिमि भुजग बिनु रजु पहिचाने ॥
जेहि जाने जग जाइ हेराई । जागे जथा सपन भ्रम जाई ॥
बंदौ बाल रूप सोई रामू । सिध सुलभ जप तप जिसु नामू ॥
मंगल भवन अमंगल हारी । द्रवौ सो दसरथ अजिर बिहारी ॥
करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी । हरषि सुधा सम गिरा उचारी ॥
धन्य धन्य गिरिराज कुमारी । तुम्ह समान न(हि कोउ) उपकारी ॥
पूछेहु रघुपति कथा प्रसंगा । सक(ल) लोक जग पावनि गंगा ॥
तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी । कीन्हेहु[2] प्रस्न जगत हित लागी ॥
दोहा राम कृपा तें गिरिजे सपनेहु तव मन माहि ॥
सोक मोह संदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहि ॥११७॥
तदपि असंका कीन्हेहु सोई । कहत सुनत सब कर हित होई ॥
जिन्ह हरि कथा सुनी नहि काना । श्रवन रंध्र अहि भवन समाना ॥
नयनन्हि संत दरस नहि देखा । लोचन मोर पंख कर लेखा ॥
ते सिर कटु तुंबरि सम तूला । जे न नमत हरि गुर पद मूला ॥
जिन्ह हरि भगति हृदय नहि आनी । जीवत सव समान ते प्रानी ॥
जो नहि करहि राम गुन गाना । जीह सो दादुर जीह समाना ॥
कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती । सुनि हरि चरित न जो हरषाती ॥
गिरिजा सुनहु राम कै लीला । सुर हित दनुज बिमोहन सीला ॥
दोहा राम कथा सुर धेनु सम सेवत सब सुख दानि ॥
संत सभा सुर लोक सब को न सुनै अस जानि ॥११८॥
राम कथा सुंदर कर तारी । संसय बिहग उड़ावन हारी ॥
राम कथा कलि बिटप कुठारी । सादर सुनु गिरि राज कुमारी ॥
राम नाम गुन चरित सुहाए । जनम करम अगनित श्रुति गाए ॥

---

१ [illegible]   २ [illegible]

दोहा सब सन कहा बुझाइ बिधि दनुज निधन तब होइ ।
संभु सुक्र संभूत सुत एहि सो जीतै रन सोइ ॥७॥
मोर कहा सुनि करहु उपाई । होइहि ईस्वर करिहि सहाई ॥
सती जो तजी दच्छ मख देहा । जनम जा हिमाचल गेहा ॥
तेहिं तपु कीन्ह संभु पति लागी । सिव समाधि बैठे सबु त्यागी ॥
जदपि अहै असमंजस भारी । तदपि बात एक सुनहु हमारी ॥
पठवहु कामु जाइ सिव पाहीं । करै छोभु संकर मन माहीं ॥
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई । करवाउब बिबाहु बरिआई ॥
एहि बिधि भलेहिं देव हित होई । मत अति नीक कहै सबु कोई ॥
अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतू । प्रगटेउ बिषम बान झषकेतू ॥
दोहा सुरन्ह कही निज बिपति सब सुनि मन कीन्ह बिचार ।
(सं)भु बिरोध न कुसल मोहि बिहसि कहेउ अस मार ॥८॥
तदपि करब मैं काजु तुम्हारा । श्रुति (कह) परम धरम उपकारा ॥
पर हित लागि तजइ जो देही । संतत संत प्रसंसहिं तेही ॥
अस कहि × × । × × × × ॥
(पन्ना गायब) × × (म्य) है
दोहा जो नृप त(नय) (ब्रह्म) किमि नारि बिरहँ मति भोरि ।
देखि चरित (महि)मा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि ॥१११॥
जौं (अनीह ब्या)पक बिभु कोउ । कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोउ ॥
(अग्य) जानि रिस उर जनि धरहू । जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू ॥
मैं बन दीखि राम प्रभुताई । अति भय बिकल न तुम्हहि सुनाई ॥
तदपि मलिन मन बोधु न आवा । सो फलु भली भाँति हम पावा ॥
अजहूँ कछु संसउ मन मोरे । करहु कृपा बिनवौं कर जोरे ॥
प्रभु मोहि तब बहु भाँति प्रबोधा । नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा ॥
तब कर अस बिमोह मोहि नाहीं । राम कथा पर रुचि मन माहीं ॥
कहहु (पु)नीत राम गुन गाथा । भुजगराज भूषन सुरनाथा ॥
दोहा बंदौं पद धरि धरनि सिर बि(नय) करौं कर जो(रि) ॥
बरनौ रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि ॥११४॥
जदपि जोषिता नहिं अधिका(री । दा)सी मन क्रम बचन तुम्हारी ॥
गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं । आरत अधिकारी जहँ पावहिं ॥
अति आरति पूछउँ सुरराया । रघुपति कथा कहहु करि दाया ॥
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी । निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी ॥
पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा । बाल चरित पुनि कहहु उदारा ॥
कहहु जथा जानकी बिबाहीं । (रा)जु तजा सो (दूषन) काहीं ॥
बन बसि कीन्हे चरित अपा(रा) । कहहु नाथ जिमि रावन मारा ॥
सीता बिनै कहो गुन गेहू । (× ×)धरहु मुनि होहु रघुबेनू ॥

रा'(म) बैठि कीन्ही बहु लीला । प्रगट कहौ संकर सुभ सीला ॥
दोहा बहुरि कहहु करुना यतन कीन्ह जो अचरजु राम ।
प्रजा सहित रघुबंस मनि किमि गवने निज धाम ॥११५॥
पुनि प्रभु कहहु सो तत्व बखानी । जेहि बिग्यान मगन मुनि ग्यानी ॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा । पुनि सब बरनहु सहित बिभागा ॥
औरौ राम रहस्य अनेका । कहहु नाथ अति बिमल बिबेका ॥
जो प्रभु मै पूछा नहि होई । सोउ दयाल राखेउ जनि गोई ॥
तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना । आन जीव पावर का जाना ॥
प्रस्न उमा कै सहज सुहाई । छल बिहीन सुनि सिव मन भाई ॥
हर हिय राम चरित सब आये । प्रेम पुलकि लोचन जल छाए ॥
श्री रघुनाथ रूप उर आवा । परमानद अमित सुखु पावा ॥
दोहा रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह ॥
मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह ॥११६॥
झूठेउ सत्य होई बिनु जाने । जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने ॥
जिहि जाने जग जाई हेराई । जागे जथा सपन भ्रम जाई ॥
बंदौ बाल रूप सोई रामू । सिधि सुलभ जप तप जिसु नामू ॥
मंगल भवन अमंगल हारी । द्रवौ सो दसरथ अजिर बिहारी ॥
करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी । हरषि सुधा सम गिरा उचारी ॥
धन्य धन्य गिरिराज कुमारी । तुम्ह समान न(हिं कोउ) उपकारी ॥
पूछेहु रघुपति कथा प्रसंगा । सक(ल) लोक जग पावनि गंगा ॥
तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी । कीन्हेहु[2] प्रस्न जगत हित लागी ॥
दोहा राम कृपाते गिरिजे सपनेहु तव मन माहि ॥
सोक मोह संदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहि ॥११७॥
तदपि असंका कीन्हेउ सोई । कहत सुनत सब कर हित होई ॥
जिन्ह हरि कथा सुनी नहि काना । श्रवन रंध्र अहि भवन समाना ॥
नयननि संत दरस नहि देखा । लोचन मोर पंख कर लेखा ॥
ते सिर कटु तुंबरि सम तूला । जे न नमत हरि गुर पद मूला ॥
जिन्ह हरि भगति हृदय नहि आनी । जीवत सव समान ते प्रानी ॥
जो नहि करहि राम गुन गाना । जीह सो दादुर जीह समाना ॥
कुलिस कठोर निठुर सोई छाती । सुनि हरि चरित न जो हरषाती ॥
गिरिजा सुनहु राम कै लीला । सुर हित दनुज बिमोहन सीला ॥
दोहा राम कथा सुर धेनु सम सेवत सब सुखदानि ॥
संत सभा सुर लोक सम को न सुनै अस जानि ॥११८॥
राम कथा सुंदर कर तारी । संसय बिहग उड़ावन हारी ॥
राम कथा कलि बिटप कुठारी । सादर सुनु गिरि राज कुमारी ॥
राम नाम गुन चरित सुहाए । जनम करम अगनित श्रुति गाए ॥

१ नया पृष्ठ २ [illegible]

दोहा सब सन कहा बुझाइ बिधि दनुज निधन तब होइ ।
संभु सुक्र संभूत सुत एहि जीतै रन सोइ ॥७॥

मोर कहा सुनि करहु उपाई । होइहि ईस्वर करिहि सहाई ॥
सती जो तजी दच्छ मख देहा । जनमी जाइ हिमाचल गेहा ॥
तेहि तपु कीन्ह संभु पति लागी । सिव समाधि बैठे सबु त्यागी ॥
जदपि अहै असमंजस भारी । तदपि बात एक सुनहु हमारी ॥
पठवहु काम जाइ सिव पाही । करै छोभ संकर मन माही ॥
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई । करवाउब बिबाहु बरि आई ॥
एहि बिधि भलेहि देव हित होई । मत अति नीक कहै सबु कोई ॥
अस्तुति सुरन कीन्हि अति हेतु । प्रगटेउ बिषम बान झष केतु ॥

दोहा सुरन कही निज बिपति सब सुनि मन कीन्ह बिचार ।
(सं)भु बिरोध न कुसल मोहि बिहसि कहेउ अस मार ॥८॥

तदपि करब मैं काज तुम्हारा । स्रुति (कह) परम धरम उपकारा ॥
पर हित लागि तजहि जो देही । संतत संत प्रसंसत तेही ॥
अस कहि × × । × × × × ॥
(पन्ना अप्राप्त) × × (भ्र) ई

दोहा जो नृप त(नय) (ब्रह्म) किमि नारि बिरह मति भोरि ।
दखि चरित (महि)मा सुनत भ्रमति बुधि अति मोरि ॥११३॥

जो (अनीह व्या)पक बिभु कोउ । कहहु बुझाई नाथ मोहि सोउ ॥
(अग्य) जानि रिस जनि उर धरहू । जेहि बिधि मोह मिटै सोई करहू ॥
मै बन दीखि राम प्रभुताई । अतिसय बिकल न तुम्हे सुनाई ॥
तदपि मलिन मन बोध न आवा । सो फलु भली भाति हम पावा ॥
अजहु कछु संसय मन मोरे । करहु कृपा बिनवौ कर जोरे ॥
प्रभु मोहि तब बहु भाति प्रबोधा । नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा ॥
तब कर अस बिमोह मोहि नाही । राम कथा पर रुचि मन माही ॥
कहहु (पु)नीत राम गुन गाथा । भुजग राज भूषन सुर नाथा ॥

दोहा बंदौ पद धरि धरनि सिर बि(नय) करौ कर जो(रि) ॥
बरनौ रघुपति बिसद जस स्रुति सिद्धांत निचोरि ॥११४॥

जदपि जोषिता नहि अधिका(री । दा)सी मन क्रम बचन तुम्हारी ॥
गूढ़ौ तत्व न साधु दुरावहि । आरत अधिकारी जहं पावहि ॥
अति आरति पूछौ सुर राया । रघुबर कथा कहहु करि दाया ॥
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी । निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी ॥
पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा । बाल चरित पुनि कहहु उदारा ॥
कहहु जथा जानुकी बिबाही । (रा)जु तजा सो (दूषन) काही ॥
बन बसि कीन्ह चरित अपा(रा) । कहहु नाथ जिमि रावन मारा ॥
सीता हियै गहो सुर हेतु । (× ×)बरद मुनि होहु रघुकेतु ॥

रा[1](ज) बैठि कीन्ही बहु लीला। सकल कहहु संकर सुख सीला॥
दोहा बहुरि कहहु करुना यतन कीन्ह जो अचरज राम॥
प्रजा सहित रघुबंस मनि किमि गवने निज धाम॥११५॥
पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी। जेहि बिग्यान मगन मुनि ग्यानी॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। पुनि सब बरनहु सहित बिभागा॥
औरौ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिबेका॥
जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयाल राखउ जनि गोई॥
तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना। आन जीव पावर का जाना॥
प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई॥
हर हिय राम चरित सब आए। प्रेम पुलकि लोचन जल छाए॥
श्री रघुनाथ रूप उर आवा। परमानंद अमित सुख पावा॥
दोहा रघुपति चरित महेस तब हरषित बरन लीन्ह॥
मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह॥११६॥
झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचानें॥
जेहि जानें जग जाइ हेराई। जागें जथा सपन भ्रम जाई॥
बंदौ बाल रूप सोई रामू। सिध सुलभ जप तप जिसु नामू॥
मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवौ सो दसरथ अजिर बिहारी॥
करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी॥
धन्य धन्य गिरिराज कुमारी। तुम्ह समान न(हिं कोउ) उपकारी॥
पूछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सक(ल) लोक जग पावनि गंगा॥
तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हेहु[1] प्रस्न जगत हित लागी॥
दोहा राम कृपा तें गिरिजे सपनेहु तव मन माहिं॥
सोक मोह संदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहिं॥११७॥
तदपि असंका कीन्हेउ सोई। कहत सुनत सब कर हित होई॥
जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहि भवन समाना॥
नयननि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोर पंख कर लेखा॥
ते सिर कटु तुंबरि सम तूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला॥
जिन्ह हरि भगति हृदय नहिं आनी। जीवत सव समान ते प्रानी॥
जो नहिं करहिं राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना॥
कुलिस कठोर निठुर सोई छाती। सुनि हरि चरित न जो हरषाती॥
गिरिजा सुनहु राम की लीला। सुर हित दनुज बिमोहन सीला॥
दोहा राम कथा सुर धेनु सम सेवत सब सुखदानि॥
संत सभा सुर लोक सब को न सुनै अस जानि॥११८॥
राम कथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावन हारी॥
राम कथा कलि बिटप कुठारी। सादर सुनु गिरि राज कुमारी॥
राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए॥

---

२ [illegible]   १ [illegible]

यथा अनंत राम भगवाना । तथा कथा कीरति गुन नाना ॥
तदपि यथा श्रुति जसि मति मोरी । कहिहौं देखि प्रीति अति तोरी ॥
उमा प्रस्न तव सहज सुहाई । सुखद संत संमत मोहि भाई ॥
एक बात नहिं मोहि सुहानी । जदपि मोह बस कहेउ भवानी ॥
तुम्ह जो कहा राम(को)उ आना । जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना ॥
दोहा कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह' पिसाच ॥
पाखंडी हरि पद बिमुख जानहिं झूठ न साच ॥१३९॥
अग्य अकोबिद अंध अभागी । काई बिषय मुकुर मन लागी ॥
लंपट कपटी कुटिल बिसेषी । सपनेहु संत सभा नहिं देखी ॥
कहहिं ते बेद असंमत बानी । जिन्हहि न सूझ लाभ नहिं हानी ॥
मुकुर मलिन अरु नैन बिहीना । राम रूप देखहिं किमि दीना ॥
जिन्ह के अगुन न सगुन बिबेका । जल्पहिं कल्पित बचन अनेका ॥
हरि माया बस जगत भ्रमाहीं । तिन्हहि कहत कछु अघटित नाहीं ॥
बातुल भूत बिबस मतवारे । ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे ॥
जिन्ह किय महा मोह मद पाना । तिन्ह कर कहा करिय नहिं काना ॥
दोहा अस निज हृदय बिचारि तजु संसय भजु राम पद ॥
सुनु गिरि राज कुमारि भ्रम तम रबि कर बचन मम ॥१४०॥
सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा । गावहिं श्रुति पुरान बुध बेदा ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥
कुपथ हरहिं भव संभव खेदा । जानत सब मधुप कहुँ ऐसा ॥
जो गुन रहित सगुन सो कैसे । जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे ॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा । तेहि किमि कहिय बिमोह प्रसंगा ॥
राम सच्चिदानंद दिनेसा । नहिं तहँ मोह निसा लव लेसा ॥
सहज प्रकास रूप भगवाना । नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना ॥
हरष बिषाद ग्यान अग्याना । जीव धर्म अहमिति अभिमाना ॥
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना । '(पर)मानंद परेस पुराना ॥
दोहा पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ ॥
रघुकुल मनि मम स्वामि सोइ कहि सिव नायेउ माथ ॥१४१॥
निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी । प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी ॥
यथा गगन घन पटल निहारी । झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी ॥
चितवत लोचन अंगुलि लाए । प्रगट जुगल ससि तिन्ह के भाए ॥
उमा राम बिषइक अस मोहा । नभ तम धूरि धूम जिमि सोहा ॥
बिषय करन सुर जीव समेता । सकल एक तें एक सचेता ॥
सब कर परम प्रकासक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ॥

---

१ मथा ह[illegible]
(सन्ना प्रसार (समारंभ के प्रसंग)

जगत प्रकास प्रकासिक रामू । मायाधीस ग्यान गुन धामू ॥
जासु सत्य ताते जड़ माया । भास सत्य इव मोह सहाया ॥
दोहा : रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानु कर बारि ॥
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ को(उ टा)रि ॥१४२॥
ऐहि बिधि हरि जग आश्रित रहही । जदपि असत्य देत दुख अहही ॥
जो सपने सिर काटै कोई । बिनु जागे न दूरि दुख होई ॥
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई । गिरिजा सो कृपाल रघुराई ॥
आ(दि) अन्त को(उ) जासु न पावा । मति अनुमानि निगम अस गावा ॥
बिनु पद चलै सुनै बिनु क(ा)ना । कर बिनु कर्म करै बिधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥
तन बिनु (प)रस नयन बिनु देखा । ग्रहै घ्रान बिनु बास असेषा ॥
असि सब भाँति अलौकिक रनी । महिमा जासु जा (इ नहिं ब)रनी॥
दोहा जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि (ध)रहिं मुनि ध्यान ।
सो दसरथ सुत भगत हित कोस[1] (ल पति) भगवान ॥४३॥
कासी मरत जंतु अवलोकी । जासु नाम बल करी बिसोकी ॥
सोई प्रभु मोर चराचर स्वामी । रघुबर सब उर अंतर्यामी ॥
बिबसहु जासु नाम नर कहही । जन्म अनेक संचित अघ दहही ॥
सादर सुमिरनु जे नर करही । भव बारिधि गोपद इव तरही ॥
राम सो परमात्मा भवानी । तहा भ्रम अति अबहित त बानी ॥
अस संसय आनत मन माही । ग्यान बिराग सकल गुन जाही ॥
सुनि सिव के भ्रम भंजन बचना । मिटिगैं सब कुतर्क की रचना ॥
भै रघुपति पद प्रीति प्रतीती । दारुन असंभावना बीती ॥
दोहा पुनि पुनि प्रभु पर कमल गहि जोरि पंकरुह पानि ।
बोली गिरिजा बचन बर मनहु प्रेम रस सानि ॥४४॥
ससि कर सम सुनि गिरा तुम्हारी । मिटा मोह सरदातप भारी ॥
तुम्ह कृपाल संसय सब हरेउ । राम सरूप जानि मोहि परेउ ॥
नाथ कृपा अब गएउ बिषादा । सुखी भइउ प्रभु चरन प्रसादा ॥
अब मोहि आपनु किंकरि जानी । जदपि सहज जड़ नारि अयानी ॥
प्रथम जो मैं[2] पूछा सोइ कहहू । जो मोपर प्रसन्न प्रभु अहहू ॥
राम ब्रह्म चिन्मय अबिनासी । सर्ब रहित सब उपर बासी ॥
नाथ धरेहु नर तन केहि हेतू । मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतू ॥
उमा बचन सुनि परम बिनीता । राम कथा पर प्रीति पुनीता ॥
दोहा हिय हरषे कामारि तब संकर सहज सुजान ।
बहु बिधि उमहि प्रसंसि पुनि बोले कृपानिधान ॥

१। मध पृष्ठ
२. मध पृ

सोरठा सुनु सुभ कथा भवानि राम चरित मानस बिमल ।
कहा भसुंडि बखानि सुना बिहग नायक गरुड़ ॥
सोरठा सो संबाद उदार जेहि बिधि भा आगे कहब ।
सुनहु राम अवतार चरित परम सुन्दर अनघ ॥
सोरठा हरि गुन नाम अपार कथा रूप अगनित अमित ।
मैं निज मति अनुसार कहौ उमा सादर सुनहु ॥१४८॥
सुनु गिरिजा हरि चरित सुहाए । बिपुल बिसद निगमागम गाए ॥
हरि अवतार हेतु जेहि होई । मिथ्या कुमति कहि जाई न सोई ॥
राम अतर्क बुद्धि मन बानी । मत हमार अस सुनहि सयानी ॥
तदपि संत मुनि बेद पुराना । जस कछु कहहि स्वमति अनुमाना ॥
तस मैं सुमुखि सुनावौ तोही । समुझि परइ जस कारन मोही ॥
जब जब होइ धर्म की हानी । बाढ़हि असुर अधम अभिमानी ॥
करहि अनीति जाइ नहि बरनी । सीदहि बिप्र धेनु सुर धरनी ॥
तब तब प्रभु धरि बिबिधि सरीरा । हरहि क[1] (पा नि) धि सज्जन पीरा ॥
दोहा असुर मारि थापहि सुरन्ह राखहि निज श्रुति सेतु ।
जग बिस्तारहि बिसद जस राम जन्म कर हेतु ॥१४९॥
सोइ जस गाइ भगत भव तरही । कृपा सिंधु जन हित तनु धरही ॥
राम जन्म के हेतु अनेका । परम बिचित्र एक तै एका ॥
जन्म एक दुइ कहउ बखानी । सावधान सुनु सुमुखि सयानी ॥
द्वार पाल हरि के प्रिय दोउ । जय अरु बिजय जान सब कोउ ॥
बिप्र श्राप तै दूनौ भाई । तामस असुर देह तिन्ह पाई ॥
कनक कस्यप अरु हाटक लोचन । जगत बिदित सुर पति मद मोचन ॥
बिजई समर बीर बिख्याता । धरि बराह बपु ऐक निपाता ॥
होइ नर हरि दूसर पुनि मारा । जन प्रहलाद सुजसु बिस्तारा ॥
दोहा भए निसाचर जाइ तेइ महाबीर बलवान ॥
कुंभ करन रावन सुभट सुर बिजय जग जान ॥१५०॥
मुकुत न भए हते भगवाना । तीनि जन्म द्विज बचन प्रमाना ॥
एक बार तिन्ह के हित लागी । धरेउ सरीर भगत अनुरागी ॥
कस्यप अदिति तहा पितु माता । दसरथ कौसिल्या बिख्याता ॥
एक कल्प इहि बिधि अवतारा । चरित पवित्र किए संसारा ॥
एक कल्प सुर देखि दुखारे । समर जलंधर सन सब हारे ॥
संभु कीन्ह संग्राम अपारा । दनुज महाबल मरै न मारा ॥
परम सती असुराधिप नारी । तेहि बल ताहि न जित त्रिपुरारी ॥
('छल' से नया पृष्ठ प्रारम्भ)
दोहा [2]छल करि ट(रेउ) ता वृत प्रभु सुर कारज कीन्ह ।
जब तेहि जानेउ मरम तब श्राप कोपि करि दीन्ह ॥१५१॥

---

१ कृपा ६०।   २ नया ६०।

(ता) सु श्राप हरि (कीन्ह) प्रमाना। कौतुक निधि कृपाल भगवाना ॥
तहाँ जलंधर रावन भयेउ। × × *
ऐक जन्म (क) र कारन ऐहा। जेहि लगि राम धरी नर देहा ॥
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनि मुनि बरन्ह कबि न घनेरी ॥
नारद श्राप दीन्ह ऐक बारा। ऐ कल्प तेहि लगि अवतारा ॥
गिरिजा चकित भई सुनि बानी। नारद बिस्नु भगत मुनि ज्ञानी ॥
कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा ॥
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी। मुनि मन मोहि आचरजु भारी ॥
दोहा: बोले बिहसि महेस तब मूढ़ न कोई जेहि ॥
जस रघुपति करहि सो तस तेहि छन होई ॥
सोरठा: कहौ राम गुन गाथ भरद्वाज सादर सुन(हु) ॥
भव भंजन रघुनाथ भजु तुलसी तजु मान मद ॥१२३॥
हिमि गिरि गुहा ऐक अति पावनि। बह समीप सुर सरी सुहावनि ॥
देखि देव ऋषि मन अति भावा। भाव हेत बसहि मनु लावा ॥
निरखि (सैल) सर बिपनि बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा ॥
सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। सह(ज) बिमल मन (लागि) समाधी ॥
मुनि गति देखि सुरेस डेराना। कामहि बोलि कीन्ह सनमाना ॥
सहित सहाय जा (हु मम) हेतू। चलेउ हरषि हिय जल चर केतू ॥
सुना सीर मन महु अति त्रासा। चहत देव ऋषि[1] (मम पुर) बासा ॥
जे कामी लोलप जग माही। कुटिल काग ईव सबहि डेरा ही ॥
दोहा सूख हाड लै भाग (सठ) स्वान निरखि मृग राज ॥
छीनि लेई जनि जानहु तिमि सुरपति हि न लाज ॥१२४॥
तेहि आश्रमहि मदन जब गयेउ। निज माया बसंत निर्मयेउ ॥
कुसुमित बिबिधि बिटप बहु रंगा। कूजहि कोकिल गुंजहि भृंगा ॥
चली सुहावनि त्रिबिधि बयारी। काम कृसानु बढ़ावनि हारी ॥
रंभादिक सुर नारि नबीना। सकल असम सर कला प्रबीना ॥
करहि गान बहु तान त(र)गा। बहु बिधि क्रीड़हि पानि पतंगा ॥
देखि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसि पुनि प्रपंच बिधि नाना ॥
काम कला कछु मुनिहि न ब्यापी। निज भयेउ डरेउ मनोभव पापी ॥
सिव कि चापि सकै कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू ॥
दोहा सहित सहाय सभीत अति मानि हारि मन मैन ॥
गहेसि जाई मुनि चरन तब कहि सठि आरत बैन ॥१२५॥
भयेउ न नारद मन कछु रोषा। कहि प्रिय बचन काम परितोषा ॥
नाइ चरन सिरु आयेसु पाई। चलेउ मदन तब सहित सहाई ॥
मुनि सुसीलता आपनि करनी। सुरपति सभा जाई सब बरनी ॥
सुनि सब के मन बिस्मय आवा। मुनिहि प्रसं(स ह)रिहि सिर नावा ॥

१ यह कहाँनी झूठ नहीं है। २ मघा इन्द्र।

तब नारद गवने सिव पाही। जीत काम अहमिति मन माही॥

× × (पन्ना अप्राप्त) × ×

सेवहि सकल (चराचर) ताही। बरै सील निधि कन्या जा(ही)॥
लछन सब बिचारि उर राखे। कछुक बनाइ भूप सन भाषे॥
सुता सुलछन कहि नृप पाही। नारद चले सोच मन माही॥
करौ जाइ सोई जतनु बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी॥
जप तप कछु न होइ ऐहि कामा। हे बिधि मिलै कवन बिधि बामा॥
दोहा ऐहि अवसर चाहिय परम सोभा रूप बिसाल॥
जो बिलोकि रीझै कुमरि तब मेलै जय माल॥१६०॥
हरि सन मागौ सुंदरताई। होइहि जात गहरु मोहि भाई॥
मोरे हित हरि सम नहि कोई। ऐहि अवसर सहाय सोई होई॥
बहु बिधि बिनय कीन्हि तेहि काला। प्रगटे प्रभु कौतुकी कृपाला॥
प्रभु बिलोकि मुनि नैन जुडाने। होइहि काज हिऐ हरषाने॥
अति आरत कहि कथा सुनाई। करहु कृपा करि होहु सहाई॥
आपन रूप देहु प्रभु मोही। आन भाति नहि पावौ ओही॥
जेहि बिधि नाथ होइहि मोरा। करौ सो बेगि दास मै तोरा॥
निज माया बल देषि बिसाला। हिय हसि बोलो दीन दयाला॥
दोहा: जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार॥
सो हम करब न आन कछु मृषा बचन हमार॥१६१॥
कुपथ माग रुज ब्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु (मु)नि जो(गी)॥
एहि बिधि हित तुम्हार मै ठयेउ। कहि अस अंतर हित प्रभु भयेउ॥
माया बिबस भ'(ए मुनि मूढा)। समुझि नही हरि गिरा निगूढा॥
गवने तुरत तहा मुनि राई। जहा स्वयंबर भूमि बनाई॥
निज निज आसन बठे राजा। बहु बनाव करि सहित समाजा॥
मुनि मन हर्ष रूप अति मोरे। मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरे॥
मुनि हित कारन कृपा निधाना। दीन्ह कुरूप न जाई बषाना॥
सो चरित्र लषि काहु न पावा। नारद जानि सबहि सिर नावा॥
दोहा: रहे तहा दुई रुद्र गन ते जानहि सब भेउ॥
बिप्र बेष देषत फिरहि परम कौतुकी तेउ॥१६१॥
जेहि समाज बैठे मुनि जाई। हिय रूप्प अहमिति अधिकाई॥
तह बैठे यहै संभु गन दोउ। बिप्र बेष गति लषै न कोउ॥
करहि कुटी नारदहि सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई॥
रीझिहि राज कुमरि छबि देषी। इन्हहि बरिहि हरि जानि बिसेषी॥
मुनि(हि मोह) मन हाथ पराये। हसहि संभु गन अति सचु पाऐ॥
जदपि सुनहि मुनि अटपटि बानी। समुझि न परै बुधि भ्रम सानी॥

---

१ नष्ट पृष्ठ।

केहुँ न लषा सो चरित बिसेषी । सो सरूप नृप कन्या देषी ॥
मर्कट बदन भयङ्कर देही । देषत हृदय क्रोध नहिँ तेही ॥
दोहा सषी संग लै कुमरि तब (चली) जनु राज मराल ॥
देषत फिरै महीप सब कर सरोज जय माल ॥१६१॥
जेहि दिसि बैठे (नारद फूली) । सो दिसि तेहि न बिलोकी भूली ॥
पुनि पुनि मुनि उकसहि अकुलाहीं । देषि दसा हर गन मुसुकाहीं ॥
धरि नृप तनु तह गए कृपाला । कुमरि हरषि मेली जयमाला ॥
दुलहिनि लै ग लषि निवासा । नृप समाज सब भएउ निरासा ॥
मुनि अति बिकल मोह मति नाठी । मनि गिरि गई छुटि जनु गाठी ॥
तब हर गन बोले मुसुकाई । निज मुष मुकुर बिलोकहु जाई ॥
अस कहि दोउ भागे भय भारी । बदन दीष मुनि बारि निहारी ॥
बेष बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा । तिन्हहि श्राप दीन्हेउ अति गाढ़ा ॥
दोहा : होहु निसाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ ॥
हँसेहु हमहि सो लेहु फल बहुरि हँसेउ मुनि कोउ ॥१६२॥
पुनि जल दीष रूप निज पावा । तदपि हृदय संतोष न आवा ॥
फरकत अधर कोप मन माही । सपदि चले कमला पति पाही ॥
देहौं श्राप कि मरिहौं जाई । जगत मोरि उपहास कराई ॥
बीचहि पंथ मिले दनुजारी । संग रमा सोई राजकुमारी ॥
बोले मधुर बचन सुर साई । मुनि कहँ चलेउ बिकल की नाई ॥
सुनत बचन उपजा अति क्रोधा । माया बस न रहा मन बोधा ॥
पर संपदा सकहु नहि देषी । तुम्हारे इरषा कपट बिसेषी ॥
मथत सिंधु रुद्र हि बौरायेहु । सुरन्ह प्रेरि बिष पान करायेहु ॥
दोहा असुर सुरा (बि)ष संकरहि आपु रमा मनि चारु ॥
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह सदा कपट ब्यवहार ॥१६६॥
'परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई । भावै मन करी तुम्ह कोई ॥
भलेहु मंद मदहु भल करहू । बिस्मय हरष बिस्मय हरष न हिय कछु धरहू ॥
डहकि डहकि परचेहु सब काहू । अति असंक मन सदा उछाहू ॥
कर्म सुभासुभ तुम्ह हि न बाधा । अब लगि तुम्हें न काहु साधा ॥
भले भवन अब बायन्ह दीन्हा । पावहुगे फल आपन कीन्हा ॥
ब्याकुल किये मोहि यह देही । सो तनु धरहु श्राप मम ऐही ॥
कपि आकृत तुम्ह कीन्ह हमारी । करिहहि कीस सहाई तुम्हारी ॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी । नारि बिरह तुम्ह होब दुषारी ॥
दोहा : श्राप सीस धरि हरषि हिय प्रभु बहु बिनती कीन्हि ॥
निज माया की प्रबलता हरषि कृपा निधि लीन्हि ॥१६७॥
जब हरि माया दूरि निवारी । नहि तहँ रमा न राज कुमारी ॥

१ नया पृष्ठ 'बी' हैंड से प्रारम्भ ।
२ बड़े पृष्ठ से प्रारम्भ ।

मोह बिगत मुनि सबै हरना। कहौ पाहि प्रनतारत हरना॥
मृषा होउ मम स्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीन्ह दयाला॥
मैं दुरबचन कहे बहुतेरे। कह मुनि पाप मिटिहि किमि मेरे॥
जपहु जाई संकर सत नामा। हुय है हृदै तुरत बिश्रामा॥
कोउ नहि सिव समान प्रिय मोरे। असि परतीति तजहु जनि भोरे॥
जिहि पर कृपा न करहि पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥
अस उर धरि महि बिचरहु जाई। अब न तुम्हैं माया निअराई॥
दोहा बहु बिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु तब भये अंतर ध्यान॥
सत्य लोक नार नारद चले करत राम गुन गान॥१६८॥
हर गन मुनिहि जात पथ देषी। बिगत मोह मन हर्ष बिसेषी॥
अति सभीति नारद पहि आये। गहि पद आरत बचन सुहाये॥
हर गन हम न बिप्र मुनि राया। बड़ अपराध कीन्ह फल पाया॥
स्राप अनुग्रह करहु कृपा(ला)। बोले नारद दीन दयाला॥
निसिचर जाइ होउ तुम्ह दोउ। बैभव बिपुल तेज बल होउ॥
भुज बल बिस्व जितब तुम्ह ज(बा)। धरिहहि बिस्नु मनुज तनु तबा॥
समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होईहौ मु(कु)ति न पुनि संसारा॥
चले जुगल मुनि पद सिर नाई। भये निसाचर कुल महु जाई॥
दोहा ऐक कल्प ऐहि हेतु प्रभु लीन्ह मनुज अवतार॥
सुर रंजन सज्जन सुखद हरि भंजन भवभार॥१६९॥
ऐहु बिधि जन्म कर्म हरि केरे। सुंदर सुखद बखाने घनेरे॥
कल्प-कल्प प्रति प्रभु (अव)तरहि। चारु चरित नाना बसु कीही॥
तब तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत संकरहि सुनाई॥
बिबिधि प्रसंग अनूप बखाने। करहि न सुनि अस राम सिहाने॥
हरिहि अनत हरि कथा अनंता। कहहि सुनहि बहु भाँतहि संता॥
रामचन्द्र के चरित सुहाये। कल्प कोटि लगि जाहु न गाये॥
यह प्रसंग (मैं कहा) भवानी। हरि माया मोहुय मुनि ज्ञानी॥
प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी। सेवत सुल[1](भ) सकल संतारी॥
सोरठा सुर नर मुनि कोउ नाहि जेहि न मोह माया प्रबल॥
अस बिचारि मन माहि भजिय महा माया पतिहि॥१७०॥
अपर हेतु सुनु सैल कुमारी। कहौ बिचित्र भय कथा बिचारी॥
जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भये कोसल पुर भूपा॥
जो प्रभु बिपिन फिरत तुम्ह देषा। बंधु सहित सिय सुंदर बेषा॥
जासु चरित अवलोकि भवानी। सती सरीर रहिहु बौरानी॥
अजहु न छाया मिटत तुम्हारी। तासु चरित सुनु भ्र(म) रुज हारी॥
लीला कीन्हि जो तेहि अवतारा। सो सब कहिहौ मति अनुसारा॥

१ [illegible] आरम्भ।
२ [illegible] पृ॰

भरद्वाज सुनु संकर बानी। सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी॥
लगे बहुरि बरनवृष केतू। सो (अवता)र भयेउ जेहि हेतू॥
दोहा सो मैं तुम्ह सन कहउँ सब सुनु मुनीस मन लाई॥
राम कथा कलि मल हरनि मंगल करनि सुहाई॥१७१॥
स्वयं भुव अरु मनु सत रूपा। जिन्ह तें भै नर (सृ)ष्टि अनूपा॥
दंपति धर्म आचरन नीका। अजहुँ गावै श्रुति जिन्ह कै लीका॥
नृप उत्तानपाद सुत तासू। ध्रुव हरि भगत भए सुत जासू॥
लघु सुत नाम प्रियाव्रत जाही। बेद पुरान प्रसंसत ताही॥
देवहूती पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी॥
आदि देव प्रभु दीन दयाला। प्रगटे कपि × × ×॥
(श्री अनाथ हि)त हम पर नेहू। ता प्रसंग तुम्ह पहु कर बहू॥
जो सरूप बस सिव मन माहीं। जेहि कारन मुनि जतनु कराहीं॥
जो भसुंडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा॥
देखहि हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारत मोचन॥
दंपति बचन परम प्रिय लागे। मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे॥
भगत बछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्व बास प्रगटे भगवाना॥
दोहा नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम॥
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥१७६॥
सरद मयंक बदन छबि सींवा। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा॥
अधर अरुन रद सुंदर नासा। बिधु कर निकर बिनिंदित हासा॥
नव अंबुज अंबक छबि नीकी। चितवनि ललित भावती जी की॥
भृकुटि मनोज चाप छबि हारी। तिलक ललाट पटल दुति कारी॥
कुंडल मुकुट मकर सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप समाजा॥
पीत बसन रुचिर बन माला। पदिक हार भूषन मनि जाला॥
केहरि कंध जनेउ संगा। मानो नील गिरी सुर गंगा॥
करि सावक सुंदर भुज दंडा। कटि निषंग कर सर कोदंडा॥
बाहु बिभूषन संवारि तेउ। जिन्हहिं बिलोकि भजे मैन भेउ॥
दोहा तड़ित बिनिंदक पीत पट उदर रेख बर तीनि।
नाभि मनोहर लेत (× ×) जमुन भंवर छबि छीनि॥१७७॥
पद राजीव बरनि नहिं जाहीं। मुनि मन मधुप बसहिं जिन्ह (माहीं)॥
[1]बाम भाग सोहत अनुकूला। आदि सक्ति छबि निधि जग मूला॥
जासु अंस उपजहिं गुन खानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सो[2]॥
छबि समुद्र हरि रूप बिलोकी। एक टक रहे नयन पट रोकी॥
चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मन सतरूपा॥

---

१ यहाँ पृ० से
२ पृ० ७५ से आरम्भ।

हर्ष बिवस तन दसा भुलानी। परेउ दंड इव गहि पद पानी॥
सिर परसे प्रभु निज कर कंजा। तुरत उठाये करुना पुंजा॥
दोहा: बोले कृपा निधान तब अति प्रसन्न मोहि जानि।
मागहु बर जोइ भाव मन महा दानि अनुमानि॥१७८॥
सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी। धरि धीरजु बोले मृदु बानी॥
नाथ दैखि पद कमल तुम्हारे। अब पूजे सब काम हमारे॥
ऐक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जात सो नाहीं॥
तुम्हहि देत अति सुगम गुसाईं। अगम साधि मानस कदराईं॥
जथा दरिद्र बिबुध तरु पाई। बहु संपति मागत सकुचाई॥
तासु प्रभाव न जानत सोई। तथा हृदय मम संसय होई॥
सो तुम्ह जानहु अंतरजामी। पुरवहु नाथ मनोरथ स्वामी॥
सकुच बिहाई मागु नृप मोही। मोरे नहीं अदेय कछु तोही॥
दोहा: दानि सिरोमनि कृपा (नि)धि नाथ कहौं सति भाउ॥
चाहौं तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ॥१७९॥
देखि प्रीति × × × ×। × × × × × ×॥
(पन्ना अज्ञात)
'आगम दैखि नृपति अधिकाई। फिरेउ महाबन परेउ भुलाई॥
दोहा: पेर पीन पुष्टित नृपति राजा बाजि समेत॥
खोजत ब्याकुल सरित सर। जल बिन भयो अचेत॥१८७॥
फिरत बिपिन ऐक आश्रम देखा। तहँ बस नृपति कपट मुनि बेषा॥
जासु देस नृप लीन्ह छुड़ाई। समर सेन तजि गयेउ पराई॥
समय प्रताप भानु कै जानी। आपन अति असमय अनुमानी॥
गयेउ न गृह मन बहुत गलानी। मिला न राजहि नृप अभिमानी॥
रिस उर मारि रंक जिमि राजा। बिपिन बसै तापस कै साजा॥
तासु समीप गवन नृप कीन्हा। यह प्रताप रबि तेहि तब चीन्हा॥
राउ तृषित नहिं सो पहिचाना। दैखि सुबेष महा मुनि जाना॥
उतरि तुरग तें कीन्ह प्रनामा। परम चतुर निज कहेउ न नामा॥
दोहा: भूपति तृषित बिलोकि तेहि सरबर दीन्ह दिखाइ[2]।
मज्जन पान समेत हय कीन्ह नृपति हरषाइ॥१८८॥
गै श्रम सकल सुखी नृप भयेउ। निज आश्रम तापस लै गयेउ।
आसन दीन्ह अस्त रबि जानी। पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी॥
को तुम कस बन फिरहु अकेले। सुंदर जुबा जीव पर हेले॥
चक्रबर्ति के लच्छन तोरे। दैखत दया लागि अति मोरे॥
नाम प्रताप भानु अवनीसा। तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा॥
फिरत अहेरैं' (परेउ) भुलाई। बड़े भाग पद दैखे आई॥

---

१ [illegible]। २ [illegible]।

हम कहुँ दुर्लभ दरसु तुम्हारा। जानत हौं कछु भल होनहारा॥
कह मुनि तात भयेउ अँधियारा। जोजन सत्तरि नगर तुम्हारा॥
दोहा— निसा घोर गंभीर बन पंथ न सुनहु सुजान।
बसहु आजु अस जानि तुम्ह जायेहु होत बिहान॥१५९॥
दोहा— तुलसी जसि भवतब्यता तैसी मिलै सहाइ।
आपु न आवै ताहि पहँ कि ताहि तहाँ लै जाई॥१६०॥
भलेहिं नाथ आयसु धरि सीसा। बाँधि तुरग तरु बैठ महीसा॥
नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही। चरन बंदि निज भाग सराही॥
पुनि बोलेउ नृप गिरा सुहाई। जानि पिता प्रभु करौं ढिठाई॥
मोहि मुनीस सुत सेवक जानी। नाथ नाम निज कहहु बखानी॥
तेहि न जान नृपहि सो जाना। भूप सुहृद सो कपट सयाना॥
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहै निज काजा॥
समुझि राज सुख दुखित अराती। अवाँ अनल इव सुलगै सु छाती॥
सरल बचन नृप के सुनि काना। बयर सम्हारि हृदय हरषाना॥
दोहा— कपट बोरि बानी मृदुल बोलेउ जुगुति समेत।
नाम हमार भिखारि अब निर्धन रहित निकेत॥१६१॥
कह नृप जे बिग्यान निधाना। तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना॥
सदा रहै अपनपौ दुराये। सब बिधि कुसल कुबेष बनाये॥
तेहि तें [1]कहहिं संत स्रुति टेरे। परम अकिंचन प्रिय हरि केरे।
तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा। होत बिरंचि सिवहि संदेहा॥
जोसि सोसि तव चरन नमामी। मोपर कृपा करहु अब स्वामी॥
सहज प्रीति भूपति कै देखी। आपु बिषय बिस्वास बिसेषी॥
सब प्रकार राजहि अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह जनाई॥
सुनु सति भाव कहौं महिपाला। इहाँ बसत बीते बहु काला॥
दोहा : अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ मैं न जनावौं काहु।
लोक मान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु॥१६२॥
सोरठा— तुलसी देखि सुबेष भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुंदर केकिहि पेखु बचन सुधा सम असन अहि॥१६३॥
तातें गुप्त रहौं जग माहीं। हरि तजि आन प्रयोजन नाहीं॥
प्रभु जानत सब बिनहिं जनाए। कहहु कवन सिधि लोक रिझाए॥
तुम सुचि सुमति परम प्रिय मोरे। प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरे॥
अब जौं तात दुरावौं तोही। दारुन दोष घटै अति मोही॥
जिमि जिमि तापस कथइ उदासा। तिमि तिमि नृपहि उपज बिस्वासा॥
देखा स्वबस कर्म मन बानी। तब तापस बोला बग ध्यानी॥
नाम हमार एक तन भाई। सुनि नृप बोलेउ गिरा सुहाई॥
कहहु नाम कर अर्थ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जानी॥

---

१ अन्य प्रति 'कन्हि' से प्रारम्भ।

दोहा आदि सृष्टि उपजी जब'हि तब उतपति भै मोरि।
नाम एक तन हेतु तें देह न धरेउ बहोरि॥१६४॥
जनि आचर्य करहु मन माहीं। सुत तपतें कछु दुर्लभ नाहीं॥
तप बल तें जग सृजै बिधाता। तप बल बिष्णु भए परित्राता॥
तप बल संभु करहिं संघारा। तप तें अगम न कछु संसारा॥
भयेउ नृपति सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहै सो लागा॥
कर्म धर्म इतिहास अनेका। करै निरूपन बिरति बिबेका॥
उद्भव पालन प्रलय कहानी। कहेसि अमित आचर्य बखानी॥
सुनी महीप तापस बस भयऊ। आपन नाम कहन तब लयेउ॥
कह तापस नृप जानौं तोही। कीन्हेहु कपट लाग भल मोही॥
सोरठा सुनु महीस असि नीति जहं तहं नामु न कहहिं नृप।
मोहि तोहि पर प्रीति सोई चतुर बिचारि तब॥१६५॥
नाम तुम्हार प्रताप दिनेसा। सत्य केतु तव पिता नरेसा॥
गुरु प्रसाद जानिय सब राजा। कहिय न आपन जानि अकाजा॥
देखि तात तव सहज सुधाई। प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई॥
उपजि परी ममिता मन मोरे। कहउं कथा निज पूछे तोरे॥
अब प्रसन्न मैं संसय नाहीं। मागु जु भूप भाव मन माहीं॥
सुनि सु बचन भूपति हरषाना। गहि पद बिनै कीन बिधि नाना॥
कृपा सिंधु मुनि दरसन तोरे। चारि पदारथ करतल मोरे॥
प्रभु तथापि प्रसन्न बिलोकी। मांगि अगम बर होउं बिसोकी॥
दोहा जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै नहिं कोई।
एक छत्र रिपु हीन महि राजु कल्प सत होई॥१६६॥
कह तापस नृप ऐसइ होऊ। कारन एक कठिन सुनु सोऊ॥
कालउ तव पद नाइहि सीसा। एक बिप्र कुल छाड़ि महीसा॥
तप बल बिप्र सदा बरिआरा। तिन्ह कर कोप न को रखवारा॥
जो बिप्रन्ह बस करहु नरेसा। तो तुम बस बिधि बिष्णु महेसा॥
चलन ब्रह्म कुल सन बरियाई। सत्य कहौं दोउ भुजा उठाई॥
बिप्र स्राप बिनु सुनु महिपाला। तोर नास नहिं कवनिउ काला॥
हरषेउ राउ बचन सुनि तासू। नाथ न होइ मोर अब नासू॥
तव प्रसाद प्रभु कृपा निधाना। मो कहुं सर्ब काल कल्याना॥
दोहा एवमस्तु कहि कपट मुनि बोला कुटिल बहोरि।
मिलब हमार भुलाब निज कहहु त हमैं न खोरि॥१६७॥
तातें मैं तोहि बरजौं राजा। कहे कथा तव परम अकाजा॥
छठें स्रवन यह सुनत कहानी। नास तुम्हार सत्य मम बानी॥
यह प्रगटे अथवा द्विज स्रापा। नास तोर सुनु भानु प्रतापा॥

---

१ नया पृष्ठ २४वां आरम्भ।
२ पन्ना ५२ से आरम्भ।

आन उपाय निधन तव नाहीं । जौ हरि हर कोपहि मन माहीं ॥
सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा । द्विज गुर कोप कहहु को राखा ॥
राखै गुर जौ कोप[1] बिधाता । गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता ॥
जौ न चलब हम कहे तुम्हारे । होउ नास नहिं सोच हमारे ॥
एकहि डर डरपत मन मोरा । प्रभु महिदेव श्राप अति घोरा ॥
दोहा होहिं बिप्र बस कवन बिधि कहहु कृपा करि सोउ ॥
तुम्ह तजि दीन दयाल निज हितू न देखौं कोउ ॥१९८॥
सुनु नृप बिबिध जतन जग माहीं । कष्ट साधि पुनि होहिं कि नाहीं ॥
अहै एक अति सुगम उपाउ । मम आधीन जुगुति नृप सोउ ॥
तहां परन्तु एक कठिनाई । मोर जान पुनि नगर न जाई ॥
आजु लगे अरु जबते भयेउ । काहू के गृह ग्राम न गयेउ ॥
जौ न जाउ तव होइ अकाजू । बनी आई असमंजस आजू ॥
सुनि महीस बोले मृदु बानी । नाथ निगम असि नीति बखानी ॥
बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं । गिरि निज सिरन्ह सदा तृन धरहीं ॥
जलधि अगाध मौलि बह फेनू । संतत धरनि धरत सिर रेनू ॥
दोहा अस कहि गहे नरेस पद स्वामी होहु कृपाल ॥
मोहि लागि दुख सहिय प्रभु सज्जन दीन दयाल ॥१९९॥
जानि नृपहि आपन आधीना । बोला तापस कपट प्रबीना ॥
सत्य कहौं भूपति सुनु तोही । जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही ॥
अवसि काज करब मैं तोरा । मन क्रम बचन भगत तै मोरा ॥
जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाउ । फलै तबहि जब करिय दुराउ ॥
जौ नरेस मै करब रसोई[2] । तुम्ह परसहु मोहि जान न कोई ॥
अन्न सो जोई भोजन करई । सोइ सोइ तव आयेसु अनुसरई ॥
पुनि तिन्ह के घर जेवै जोउ । तव बस होइ भूप सुनु सोउ ॥
जाइ उपाइ रचहु नृप ऐहू । संवत भरि संकल्प करेहू ॥
दोहा नित नूतन द्विज सहस सत बरेहु सहित परिवार ।
मै तुम्हरे संकल्प लगि दिनहि करब जेवनार ॥२००॥
एहि बिधि भूप कष्ट अति थोरे । होइहैं सब बिप्र बस तोरे ॥
करिहैं बिप्र होम मख सेवा । तेहि प्रसंग सहजहि बस देवा ॥
और एक तोहि कहउँ लखाउ । मै ऐहि बेष न आउब काउ ॥
तुम्हरे उपरोहित कहुँ राया । हरि आनब मै करि निज माया ॥
तप बल करि तेहि आपु समाना । रखिहैं इहां बरष परिमाना ॥
मैं धरि तासु बेष सुनु राजा । सब बिधि तोर सम्हारब काजा ॥
गै निसि बहुत सयन अब कीजै । मोहि तोहि भेंट भूप दिन तीजे ॥

---

१ यहाँ पृष्ठ प्रारम्भ ।
२ यहाँ है पृष्ठ से प्रारम्भ ।

मैं तप बल तोहि दुरग समेता । पहुँचैहौं सोवतहिं निकेता ॥
दोहा मैं ब्राह्मन सोइ बेष धरि पहिचानेहु तब मोहि ॥
जब एकांत बोलाइ सब कथा सुनावौं तोहि ॥२०१॥
सयन कीन नृप आएसु मानी । आसन जाइ बैठ छल ग्यानी ॥
श्रमित भूप निद्रा अति आई । सो किमि सोव सोच अधिकाई ॥
कालकेतु निसिचर तहँ आवा । जेहिं सूकर होइ नृपहि भुलावा ॥
परम मित्र तापस नृप केरा । — — —[1] ॥
तेहि के सत सुत अरु दस भाई । खल अति अजय देव दुखदाई ॥
प्रथमहि भूप समर सब मारे । बिप्र संत सुर देखि दुखारे ॥
तेहिं खल पाछिल बयरु सँभारा । तापस नृप मिलि मंत्र बिचारा ॥
जेहि रिपु छय सोइ रचेन्हि उपाऊ । भावी बस न जान कछु राऊ ॥
दोहा रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु ॥
अजहुँ देत दुख रबि ससिहि सिर अवसेषित राहु ॥२०२॥
तापस नृप तब खलहि निहारी । हरषि मिलेउ उठि भएउ सुखारी ॥
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई । जातुधान बोला सुखपाई ॥
अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा । जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा ॥
परिहरि सोचु रहहु तुम्ह सोई । बिनु औषध बिआधि बिधि खोई ॥
कुल समेत रिपु मूल बहाई । चौथे दिवस मिलब मैं आई ॥
तापस नृपहि बहुत परितोषी । चला महा कपटी अति——— ॥
कीरतिसि नाम नगर सब भारी । नगर बोहारि बसि लोक सुखारी ॥
बनि रावन आवत जाना । किए देव ऋषि सब अभिमाना ॥
अमत नगर सिसु नाना । निज अम तिन्ह दीन्हि अथवाना ॥
कोइ नर तिन्ह पुर लै आए । अमर मारि मद देवन्ह खाए ॥
दीस बाहु धन कंधर जाही । बिधि मह पटनि कहा की जाही ॥
ए आपि भ्य म म मन कहुँ सहुँ बक माधी ॥
रामन देखि बहुत सकुचाना । तब पुछाई दीन्ह ग्यानिधाना ॥
कथा तरंत निसाचर नाहा । सात पंक नहिं कछु मन माहा ॥
तब तुरग पन्नासर धावा । बनि नाम कपि पति जेहि पवा ॥
देखि न जाही भग सर नर सोभा । देहिं मन माह मुनिन्ह कर सोभा ॥
मा ता हा[2] कपीस करै निज धामा । आदर सौ सम्पा सनमाना ॥
जाह ताठ भाव सह रजनीसा । जो देखि जाहु मनि मुख दीसा ॥
तब कपीस बिरुधा मुनिराई । ध्यान के अवसर रिस बिसराई ॥
तब रावनि दीमा धरि सोमा । अब स्वामी कपि सठ मनि सोमा ॥
दोहा नाहिं बिनु समर सुनु ना धरि ध्यान कपीस ॥
संकुमि देखत पावहु न ध्यान करी धज स ॥१८॥

---

1 पृष्ठ २० में प्रारम्भ ।
2 यह अर्द्धाली दूर गई है ।

तब बाली बोला बिहँसाई । बल तुम्हार देखहु हैं भाई ॥
रवि अंजुलि न देउ । जौ लौं ठाढ़ होहु आएहु मोहि जीती ॥
तब निसिचर पति उठेउ रिसाई । दे कपि मुख छाडि कदराई ॥
बाली तब निज मनहिं बिचारा । छिन बल बीस मरे नहीं मारा ॥
दसकंधर बर बाद बिचारी । भयउ तुम्हारि छि भुज भारी ॥
बहुत भाँति बाली समुझावा । कवनिउ भाँति बोध नहिं आवा ॥
तब सकोप हुय उठेउ कपीसा । धरिउ काप चापेउ दससीसा ॥
अंजुलि दीन्हि रबिहि मन बानी । मज्जेउ सात उदधि कर पानी ॥
जपेउ माली संकर मन बानी । तेहि पल संध्या बिधि सिरानी ॥
दोहा भाषा धरहिं कपीस तब काप रहेउ मकेस ॥
एहि बिधि बीते मास षट पावै बहुत कलेस ॥१६॥
बहु प्रबेर क हिं आमा । मति कुभाय ताकहु भयो भामा ॥
कल मलाइ रिस दसननि काटा । कछ न बोध भ्रम पाटा ॥
एक दिवस रवि अंजुलि साजा । काप ते निसरि महा दुखि गाजा ॥
सु पुनि धरि कपी
मित बीर बलधामा ॥
बारिद नाद जेठ सुत तासू । भट महँ प्रथम लीक जग जासू ॥
जेहि सनमुख हाँ सकै न कोई । सुर पुर नितहि परावन होई ॥
दोहा कुलिस अकंपन कुमुख रद धूमकेतु अतिकाय ॥
एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय ॥१७॥
काम रूप जानहिं सब माया । सपनेहु जिनके धरम न दाया ॥
दसमुख बैठि सभा एक बारा । देखि अमित आपन परिवारा ॥
सुत समूह जन परिजन नाती । गनै को पार निसाचर जाती ॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी । बोला बचन क्रोध मद सानी ॥
सुनहु सकल रजनीचर जूथा । हमरे बैरी बिबुध बरूथा ॥
ते सनमुख नहिं करहिं लराई । देखि सबल रिपु जाहिं पराई ॥
तिन्ह कर मरन एक बिधि होई । कहौ बुझाई सुनो सब सोई ॥
द्विज भोजन मख होम सराधा । सबकै जाई करहु तुम्ह बाधा ॥
दोहा छुधा छीन बलहीन सुर सहजहिं मिलिहहिं आई ।
तब मारिहौं कि छाड़िहौं भलीभाँति अपनाई ॥१८॥
मेघनाद कहुँ तब हँकरावा दीन्ही । बन द बढ़ावा ॥
जेहि सुर समर धीर बलवाना । जिन्ह के लरिबे करि अभिमाना ॥
*जीति रन भव सुखापी । उठि सुत पित अनुसासन धापी ॥
एहि बिधि सब ही अग्या दीन्ही । आपुनि चलेउ गदा करि लीन्ही ॥
चलत दसानन डोलति अवनी । गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी ॥
रावन आवत सुनेउ सकोहा । देवन तके मेरु गिरि खोहा ॥
दिग्पालन के लोक सुहाए । सूने सकल दसानन पाए ॥

पुनि पुनि सिंहनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि प्रचारी॥
रन मदमत्त फिरै जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा॥
नारद मिले कहुँहि मुनिराए। तब कहा मुनि देहु बताई॥
सुनत बचन नारद नहिं भावा। स्वेत दीप कहु तुरत पठावा॥
सागर उतरि पार सो भयउ। नारि वृन्द तब ? देखत भयउ॥
तिन्ह सन कहेसि पतिन्ह पहं जाउ। कहेउ कि आव निसाचर नाहू॥
तब मैं दीन्ह चीठि संग्रामा। लै पैहो तुमको निज धामा॥
सुनत बचन ऐह बहुर रिसानी। धाई चरन गहि गगन उड़ानी॥
मद दूरि करि धरि मम भोरा। डारेसि सिन्धु मध्य अति घोरा॥

दोहा गयेउ पताल प्रवेश ह्वै मरै न बिधि प्रसाद॥
सावधान उठि गयेउ पुनि हिय न हरषि बिषाद॥१७॥
× × × रि धाय कोउ न सुभंट॥
मंडलीक मनि रावन राज करै निज मंत्र॥२१॥

इंद्रजीत सन जो कछु कहेउ। सो सबु जनु पहिलेहि करि रहेउ॥
प्रथमहि जिनको आयसु दीना। तिन का चरित सुनो जो कीना॥
देखत भीम रूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी॥
करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया॥
जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥
जहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहीं। नगर गाउ पुर आगि लगावहीं॥
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई॥
नहिं हरि भगति जग्य तप ग्याना। सपनेहु सुनिए न बेद पुराना॥

छंद जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनै दससीसा।
आपुन उठि धावै रहै न पावै धरि सब घालै खीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिय नहिं काना।
तेहि बहु बिधि त्रासै देस निकासै जो कह बेद पुराना॥

सोरठा बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं॥
हिंसा पर अति प्रीति तिनके पापहि कवन न मिति॥१०॥

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट पर धन पर दारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन सन करवावै सेवा॥
कै ये आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सम प्रानी॥
अतिसै देखि धर्म कै हानी। × × × ×
× × × × [1]म सभीत धरा अकुलानी॥
गिरि सर सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि एक बस्य पर द्रोही॥
सकल धर्म देखहि बिपरीता। कहि न सकै रावन भय भीता॥
धेनु रूप धरि हृदय बिचारी। गइ जहाँ सुर मुनि सब झारी॥
निज संताप सुनायसि रोई। काहू ते कछु काज न होई॥

---

१ पृष्ठ १ ।

छन्द सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका।
सँग गो तनु धारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका॥
ब्रह्मा सबु जाना मन अनुमाना मोर कछु न बसाई।
जा करि तै दासी सो अबिनासी हमरो तोर सहाई॥

सोरठा धरनि धरहु मन धीर कह बिरंचि हरि पद सुमिरि॥
जानत जन की पीर प्रभु भंजिहि दारुन बिपति॥१८४॥

बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहँ पाइय प्रभु करिय पुकारा॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पय निधि बस प्रभु सोई॥
जाके हृदें भगति जस प्रीती। प्रभु तहाँ प्रगट सदा यह रीती॥
तेहि समाज गिरिजा मै रहेउ। अवसर पाइ बात एक कहेउ॥
हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होइ मै जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। यी[1] × × × ×॥
ब बिनोद न थोरे। × × × ×
नित नव सुख सुर देखि सिहाहीं। अवध जन्म जा(च)त बिधि (पाहीं)॥
बिस्वामित्र चलन नित चहहीं। राम सुप्रेम बिनय बस रहहीं॥
दिन दिन सय गुन (भू)प(ति भाउ)। देखि सराह महा मुनि राउ॥
मागत बिदा राउ अनुरागे। सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगे॥
नाथ सकल सम्पदा तुम्हारी। मैं सेवक समेत सुत नारी॥
करेहु सदा लरिकन्ह पर छोहू। दरसन देत रहब मुनि मोहू॥
अस कहि राउ सहित सुत रानी। परेउ चरन मुख (आ)व न बानी॥
दीन्हि असीस बिप्र बहु भाती। चले न प्रीति रीति कहि जाती॥
रा(म सप्रे)म संग सब भाई। आऐसु पाइ फिरे पहुचाई॥

दोहा राम रूप भूपति भगति ब्या(हु उ)छाहु अनंद॥
जात सराहत मन मुदि(त) गाधि सुमन कुल चंद॥

बाम देव रघुकुल गुर ग्यानी। बहुरि गाधि सुत कथा बखानी॥
सुनि मुनि सुजसु मनहि मन राउ। बरनत आपन पुन्य प्रभाउ॥
बहुरे लोग रजायसु भयेउ। सुतन्ह समेत नृपति गृह ग(एउ)
जहँ तहँ राम ब्याह सब गावा। सुजसु पुनीत लोक तिहुँ छावा॥
आऐ ब्याहि राम घ। बस(इ) अनन्द सब तब॥
प्रभु बिबाह जस भये उछाहू। सकहि न बरनि[2] (गिरा अहि नाहू)॥
(कबि) कुल पावन जीवन्ह जानी। राम सीय जस मंगल खानी।
[3]× × × । करन पुनी(त हेत निज) बानी॥

छंद निज गिरा पावनि करन कारन राम जस तुलसी कह्यो
रघुबीर च(रि)त अपार बारिधि पार कबि कौने लह्यो

१ यह अर्धाली छूट गई है।
२ पृ० १२४ के मत्स्य।
३ यह अर्धाली छूट गई है।

उपवीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं ।
। × × × × ॥
सोरठा सीय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं ।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु (मंग)लायतन राम जसु ॥
सोरठा बाल चरित हरि भाउ बरने (तुल)सी दास शुभ ।
× × ते सबु पाव परम पुनीत बिचित्र प्रति ॥
दोहा मन पुरी सुधाम मति निर्मल (बु)ध शिव पुरी ।
जहाँ बहु विश्राम सो महिमा बरनिय कहा ॥
दोहा कहे सुने समुझे जे जन सफल हो प्रभु गुन गान ॥
सीता पति रघुकुल तिलक सदा करहिं कल्यान ॥११०॥
इति श्री राम चरित मानसे सकल कलि कलुष विध्वंसने विमल (...
संपादिनी नाम १ सोपान समाप्त संवत् १६४१ शाके १२०८ काशी ...
पुण्य हस्तदास हेतु लिखी रघुनाथदास ने काशीपुरी में
मूल सम्म पृष्ठ जो किसी अन्य प्रति के प्रतीत होते है।

आरण्य काण्ड

१६४३ वि०

(पृष्ठ २ का आरम्भ)

(भ्रमित)भंभ बृम्ह मर आवा । कहा भागि आरत भय पावा ॥
धरि निज रू(प) गयो पितु पाहीं । राम बिमुख राखा तिहि नाहीं ॥
भा निरास उपजी मन त्रासा । जथा चक्रि भये रिषि दुर्वासा ॥
बृह्म धाम सिव पुर सब लोका । फिरा स्रमित ब्याकुल भय सोका ॥
काहू बैठन कहा न ओही । राखि को सक राम कर द्रोही ॥
मातु भात पितु छ मन समाना । सुधा होइ बिष सुनु हरि जाना ॥
मित्र करै सत रिपु कै करनी । ता कहं बिबुध नदी बैतरनी ॥
सब जग ताहि अनल ते ताता । सो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता ॥
दोहा : जिमि जिमि भाजत सक्र सुत ब्याकुल अति दुख दीन ।
तिमि तिमि धावत राम सर पाछें परम प्रबीन ॥१॥

चौपाई

नारद देखेउ बिकल जयंता । लागि दया कोमल चित संता ॥
दुरिहिते कहि हरि प्रभुताई । धावत ही गय कथा सुभाई ॥
पठवा तुरत राम पहं ताही । कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही ॥
आतुर सबहि सपदि गह जाई । मैं मतिमंद जानि नहिं पाई ॥
निज कृति कर्म जनित फल पायो । अब प्रभु पाहि सरनि तकि आयो ॥
सुनि कृपाल अति आरत बानी । एक नयन करि तजेउ भवानी ॥
सोरठा कीन्ह मोह बस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित ।
प्रभु छाड़ो करि छोह को कृपाल रघुबीर सम ॥२॥

चौपाई

रघुपति चित्रकूट बसि नाना । चरित किये श्रुति सुधा समाना ॥
बहुरि राम अस मन अनुमाना । होइहि भीर सबहि मोहि जाना ॥
सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई । सीता सहित चले दोउ भाई ॥
अत्र के आश्रम जब प्रभु गयेऊ । सुनत महा मुनि [illegible] ॥
पुलकित गात अत्र उठि धाये । देखि राम [illegible] ॥
करत दंडवत मुनि उर लाये । प्रेम बारि द्वौ जन [illegible]
देखि राम छबि नैन जुड़ाने । सादर निज [illegible]
करि पूजा कहि बचन सुहाये । दिये मूल [illegible] ।
सोरठा प्रभु आसन आसीन भरि [illegible] ।
मुनिबर परम प्रबीन जोरि पानि [illegible] ॥३॥

छंद नमामि भक्त वत्सलं कृपाल शील कोमलं
भजामि ते पदाम्बुजं अकामना सदा मुदं
नमामि स्याम सुन्दरं भवाम्बु नाथ मंदिरं
प्रफुल्ल कंज लोचनं मदादि दोष मोचनं
प्रलंब बाहु विक्रमं प्रभो प्रमेय वैभवं
निषंग चाप सायकं धरं त्रिलोक नायकं
दिनेश वंश मंडनं महेश चाप खंडनं
मुनीन्द्र संत रंजनं सुरारि वृन्द भंजनं
मनोज वैरि वंदितं अजा × × ×

(पृष्ठ ४)

पति बंचक पर पति रति करही। रौरव नर्क कल्प सत परही॥
छन सुख लागि जन्म सत कोटी। दुख न समुझि तेहि सम को खोटी॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहही। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहही॥
पति प्रतिकूल धर्म मिति जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥
सोरठा : सहज अपावन नारि पति सेवत सुभ गति लहै।
जसु गावत श्रुति चारि अजहु तुलसी हरिहि प्रिय ॥९॥
सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करैं।
तोहि प्रान सम राम कहेउ कथा संसार हित ॥१०॥

चौपाई

सुनि जानकी परम सुख पावा। सादर तासु चरन सिर नावा॥
तब मुनि सन कह कृपा निधाना। आयसु होइ जाउ बन आना॥
संतत मम पर कृपा करेहू। सेवक जानि तजब नहिं नेहू॥
धर्म धुरंधर प्रभु कही बानी। मुनि सप्रेम बोल मृदु बानी॥
जासु कृपा अज सिव सनकादी। कहत सकल परमारथ बादी॥
ते तुम राम अकाम पियारे। दीनबंधु मृदु बचन उचारे॥
अब जानी मैं श्री चतुराई। भजिय तुम्हें सब देव बिहाई॥
जेहि समान अतिसै नहिं कोई। ताकर सील कस न अस होई॥
केहि बिधि कहौं जाहु अब स्वामी। कहहु नाथ तुम अन्तर जामी॥
अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा। लोचन जल बहे पुलक सरीरा॥
छंद तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिये
मन ग्यान गुन गोतीत प्रभु मैं दीख का जप तप किये
जप जोग धर्म समूह ते नर भगति अनुपम पावही
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिन दास तुलसी गावही।
दोहा मुनि रघुपति अति परसपर पुनि पुनि नावहिं सीस।
बिमल भक्ति बर देइ करि बिदा कीन्ह जगदीस ॥११॥

चौपाई

मुनि पद कमल नाइ करि सीसा। चले बनहि सुर नर मुनि ईसा॥

आगें राम लखन पुनि पाछें। सीता मध्य बिराजति आछें॥
सरित गिरि बन औघट घाटा। पति पहिचानि देहिं बर बाटा॥
जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ नभ तहँ तहँ छाया॥
आश्रम एक दीख मग माहीं। देव सदन तेहि पटतरि नाहीं॥
दिव्य बिटप बर बहु बिधि सोहैं। देखत जिनहिं सकल मुनि मोहैं॥
पक्षी तहँ अनेक बहु रंगा। गुंजहिं अलि रव करहिं बिहंगा॥
दोहा भिन्न भिन्न आश्रम बेदिका तेहि तट तुलसी बिराज।
अनुज जानकी सहित तहँ जात भे रघुराज।
जानि सुआश्रम मुदितमन पुनि पहुनाई कीन्ह।
कंद मूल फ × × × ×

(पृष्ठ ८)

× × × । कमल तजहिं जनु भेट तमासा॥
राम सुमुख बिलोकि मुनि ठाढ़े। मानहु चित्र मध्य लिखि काढ़े॥
दोहा तब मुनीस उर धीर धरि गहि पद बारहिं बार।
निज आश्रम तब आनि प्रभु पूजे बिबिधि प्रकार॥२१॥

चौपाई

कह मुनि सुनु प्रभु बिनती मोरी। अस्तुति करौं कौन बिधि तोरी॥
महिमा अमित मोर मति थोरी। रबि समीप खद्योत की जोरी॥
स्याम तामरस दाम सरीरा। जटा मुकुट परिधन मुनि चीरा॥
मोह बिपिन घन दहन कृसानू। संत सरोरुह कानन भानू॥
निसिचर करि बरूथ मृग राजू। नसै सदा भव मोहि पग गाजू॥
अरुन नयन राजीव सुबेसं। सीता नयन चकोर निसेसं॥
हर हिय मानस राज मरालं। नौमि राम उर बाहु बिसालं॥
संसय सर्प ग्रसन उरगादं। समन सुकर्कस तर्क बिषादं॥
भव भंजन रंजन सुर जूथं। त्राहि सदा मम कृपा बरूथं॥
निर्गुन सगुन अनूप सरूपं। ग्यान गिरा गोतीत अनूपं॥
अमल अखिल अनवद्य अपारं। नौमि राम भंजन महि भारं॥
भक्त कल्प पादप आरामं। तर्जन क्रोध लोभ मद कामं॥
अति नागर भव सागर सेतुं। त्रात सदा दिनकर कुल केतुं॥
अतुलित भुज प्रताप बल धामं। कलिमल बिपुल बिभंजन नामं॥
जदपि बिरज ब्यापक अबिनासी। सबके हृदय निरंतर बासी॥
तदपि अनुज श्री सहित खरारी। बसि मानस मम कानन चारी॥
जो जानैं तेहि जानहु स्वामी। सगुन अगुन उर अंतर जामी॥
जब कोसल पति राजिव नयना। करहु सो राम हृदय मम अयना॥
सोरठा माया बस पर जीव रहत सदा मलत मलन।
तिमि नासहु मम प्रिय करुना कर सुन्दर सदन॥२२॥

चौपाई

मन अभिलाष तजै जिनि मोरें । मैं सेवक रघुपति पति मोरें ॥
राम भक्ति तजि चह कल्याना । सो नर अधम अकास समाना ॥
सुनि मुनि बचन राम मन भाये । बहुरि हरषि मुनिबर हिय लाये ॥
परम प्रसन्न जानि मुनि मोही । जो बर मागु देउँ अब तोही ॥
मुनि कह बर कबहु न मैं जाचा । समुझि कि परै झूठ की साचा ॥
तुमहिं नीक लागै रघुराई । सो मोहिं देहु दास सुखदाई ॥
अबिरल भक्ति बिरति बिग्याना । होहु सकल गुन ग्यान निधाना ॥
प्रभु जो दीन्ह सो बर मैं पावा । अब सो देहु जो मो मन भावा ॥
दोहा अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धरि राम ।
मम उर गँगन इंदु इव बसहु सदा निःकाम[1] ॥२३॥

चौपाई

एवमस्तु कहि रमा निवासा । हरषि चले कुंभज रिषि पासा ॥
मुनि प्रनाम करि पुनि करि जोरी । सुनहु नाथ कछु बिनती मोरी ॥
बहुत दिवस मुनि दरसन पाये । भये बहुत दिन आस्रम आये ॥
अब प्रभु संग जाऔं गुर पाही । तुम कहु नाथ निहोरा नाही ॥
चले तात मम तव पद कंजा । देखब मैं बिराग मद भंजा ॥
देखि कृपा निधि मुनि चतुराई । चले संग बिहसे दोउ भाई ॥
पंथ कहत निज भक्ति अनूपा । मुनि आस्रम पहुचे सुर भूपा ॥
आस्रम देखि महा अति सुंदर । सत कुटी मुनि आस्रम सुबर ॥
बन चर जल चर जीव अहीते । बैर न करहिं प्रीति सबहीते ॥
दोहा । पावन तरुबर बिहग मृग कोमल बलिति प्रकार ।
सबहिं सिद्धि मुनि तप करहिं महिमा गुन आगार ॥२४॥

चौपाई

तुरित सुतीछन गुर पह गयेऊ । करि दंडवत कहत अस भयेऊ ॥
नाथ कोसिलाधीस कुमारा । आये मिलन जगत आधारा ॥
राम अनुज समेति बैदेही । निसि दिन नाथ जपत जगु जेही ॥
सुनत अगस्ति तुरित उठि धाये । प्रभुहि बिलोकि नयन जल छाये ॥
मुनि पद कमल परे दोउ भाई । रिषि अति प्रीति लिये उर लाई ॥
सादर कुसल पूछि मुनि ग्यानी । आसन बर बैठारेउ आनी ॥
पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा । मोहिसम भाग्यवंत नहि दूजा ॥
जह लगि रहे अपर मुनि बृंदा । हरषे सब बिलोकि सुख कंदा ॥
दोहा मुनि समूह मैं बैठि प्रभु सन्मुख सबकी ओर ।
सरद इंदु तन चितवत मानहु निकर चकोर ॥२५॥

चौपाई

पाइ सुधन जिमि हरषित मीना । पावसु पाइ सुखी जिमि दीना ॥

१ स० १ अकाम ।

राम निरखि सुख भये हिय माती। चातक जिमि पायो जल स्वाती॥
तब रघुबीर कह्यो मुनि पाहीं। तुम सन प्रभु दुराव कछु नाहीं॥
तुम जानौं जेहि कारन आयो। ताते नाथ न कहि समुझायो॥
अब सो मन्त्र देहु मुनि मोही। जेहि प्रकार मारौं सुर द्रोही॥
द्विज द्रोही न बचै मुनराई। जिमि पंकज बन हिमि रितु आई॥
मुनि मुसिकाने सुनि प्रभु बानी। पूछहु नाथ मोहि कह जानी॥
तुम्हरे भजन प्रभाव अघारी। जानौं महिमा कछुक तुम्हारी॥
सोरठा भृकुटी निरखत नाथ रहत सदा पद कमल रत।
विविध विधाता साथ जासु बसैं निज उदर महँ॥२६॥

चौपाई

अति कराल सब पर जम जाला। मोरे कहौं सुनहु भ्रमजाला॥
ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया॥
जीव चराचर जन्तु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना॥
ते फल भक्षित कठिन कराला। तव डर डरत रहत सो काला॥
ते तुम सकल लोक के साईं। पूछेउ मोहि मनुज की नाईं॥
यह बर माँगहु कृपा निकेता। बसहु हृदय श्री अनुज समेता॥
अबिरल भक्ति बिरति सतसंगा। चरण सरोरुह प्रेम अभंगा॥
जद्यपि ब्रह्म अखंड अनन्ता। अनुभव गम्य भजहिं जेहि सन्ता॥
अस तव रूप बखानौं जानौं। निर्गुन ब्रह्म सगुन रति मानौं॥
सोरठा जो पर माया जाहि रहत तुमहि सन्तत कृपा।
सोइ बड़ाई ताहि नहि कछु घटै गुसाईं तव॥२७॥

चौपाई

है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचबटी तिहि नाऊँ॥
गोदावरी नदी तहँ बहई। जाहि तुम प्रतिष्ठि जग कहई॥
दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिबर कर हरहू॥
बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजै सकल मुनिन्ह पर दाया॥
चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहि पंचबटी नियराई॥
बिटप लता द्रुम प्रभु मन भाये। निरखि राम तेहि भये सुहाये॥
लषन राम सिय चरण निहारी। कानन रुचि भाये अघहारी॥
दोहा गीध राज सों भेंट भई बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी समी(प) प्रभु रहे परन गृह छाइ॥२८॥

चौपाई

जबते राम कीन्ह तहँ बासू। सुखी भये मुनि निपटेउ त्रासू॥
गिरि बन नदी ताल छबि छाये। दिन दिन प्रति अति होंहि सुहाये॥
खग मृग बृन्द अनंदित रहहीं। मधुप मधुर गुंजत छबि लहहीं॥
सो बन बरनि सकइ न अहिराजा। जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा॥

---

१. पद १ अरन्य।

एक बार प्रभु सुख आसीना । लछिमन बचन कहे छल हीना ॥
सुर नर मुनि सचराचर स्वामी । मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं ॥
मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा । सब तजि करौं चरन रज सेवा ॥
कहहु ग्यान बिराग अरु माया । कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया ॥
दोहा ईस्वर जीवहि भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ ॥९॥

चौपाई

थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई । सुनहु तात मति मन चित लाई ॥
मैं अरु मोर तोर तैं माया । जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया ॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाई । सो सब माया जानेहु भाई ॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ । बिद्या अपर अबिद्या दोऊ ॥
एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा । जा बस जीव परा भवकूपा ॥
एक रचइ जग गुन बस जाकें । प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें ॥
ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं । देख ब्रह्म समान सब माहीं ॥
कहिअ तात सो परम बिरागी । तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी ॥
दोहा : माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव ।
बंध मोच्छ प्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव ॥१०॥

चौपाई

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना । ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना ॥
जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई । सो मम भगति भगत सुखदाई ॥
सो सुतंत्र अवलंब न आना । तेहि आधीन ग्यान बिग्याना ॥
भगति तात अनुपम सुखमूला । मिलइ जो संत होइँ अनुकूला ॥
भगति कि साधन कहउँ बखानी । सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी ॥
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती । निज निज कर्म निरत श्रुति रीती ॥
एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा । तब मम धर्म उपज अनुरागा ॥
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं । मम लीला रति अति मन माहीं ॥
संत चरन पंकज अति प्रेमा । मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा ॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा । सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा ॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा । गदगद गिरा नयन बह नीरा ॥
काम आदि मद दंभ न जाकें । तात निरंतर बस मैं ताकें ॥
दोहा बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम ।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम ॥११॥

चौपाई

भगति जोग सुनि अति सुख पावा । लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा ॥
नाथ सकल मत मम संदेहा । भयो ग्यान उपजेउ नव नेहा ॥
प्रभु के बचन सुनि अति सुख पावा । हरषि राम लछिमन उर लावा ॥

१ पृष्ठ ११ द्रष्टव्य।

एहि विधि गये कछुक दिन बीती । कहत विराग ग्यान गुन नीती ॥
सूर्पनखा रावन की बहिनी । दुष्ट हृदय दारुन जिमि अहिनी ॥
पंचवटी सो गई इक बारा । सूर्पनखा लखि जुगल कुमारा ॥
भ्राता पिता पुत्र उरगारी । पुरुष मनोहर नि(र)खत नारी ॥
भई विकल मन सकै न रोकी । जिमि घृत द्रव पति रविहि विलोकी ॥
दोहा पावन निसाचरि कुटिल अति चली करन उपहास ।
सुनु खगेस भावी प्रबल भा चहै निसचर नास ॥१८॥

चौपाई

रुचिर रूप धरि प्रभु पहँ आई । बोली मधुर वचन हरषाई ॥
तुम सम पुरुष न मो सम नारी । यह संजोग विधि रच्यो विचारी ॥
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं । देखेउँ खोजि लोक तिहु नाहीं ॥
ताते अब लगि रहेउ कुमारी । मनु माना कछु तुमहि निहारी ॥
सीतहि चितै कही प्रभु बाता । अहै कुमार मोर लघु भ्राता ॥
गइ लछिमन रिपु भगनी जानी । प्रभुहि चितै बोले मृदु बानी ॥
सुनि सुंदरि मैं उनकर दासा । पराधीन नहिं तोर सुपासा ॥
प्रभु समरथ कौसल पुर राजा । जो कछु करें उन्हें सब छाजा ॥
दोहा केहरि सम नहिं करि सरल बक की नाव समाज ।
प्रभु सेवक मोहि जानहु मानहु वचन प्रमान ॥१९॥

चौपाई

सेवक सुख चह मान भिखारी । विसनिहि धनु सुभगति विभिचारी ॥
लोभी जसु चहै चार गुमानी । नभ दुहि दूध चहें सो प्रानी ॥
पुनि सो राम निकट तब आई । प्रभु लछिमन पहँ फेरि पठाई ॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई । जन सम लाज तोरि प ॥

(पृष्ठ १३)

ई । देखि नहीं गति मुरझाई ॥
जदपि भगनी कीन्ह कुरूपा । मारन जोग न पुरुष अनूपा ॥
नेहु दुरित सो नारि अघाई । जीवत मदन जाहु दोउ भाई ॥
मोर कहा तुम ताहि सुनावहु । तासु वचन सुनि आतुर आवहु ॥
दोहा भये काम बस मूढ़ सब जानत नहिं रघुवीर ।
मनक फूंक की मेघ उड़त सुमिरहु पवन मतिधीर ॥२०॥

चौपाई

दूषन कहा राम सन जाई । सुनत राम बोले मुसुकाई ॥
भानु भयो बड़ काजु हमारा । तुम्हरे प्रभु कीन्हेउ सुविचारा ॥
हम छत्री मृगया बन करहीं । तुमसे खल मृग खोजत फिरहीं ॥
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं । एक बार कालहु सों लरहीं ॥
जदपि मनुज दनुज कुल घालक । मुनि पालक खल सालक बालक ॥
जो न होइ बल तो घर जाहू । समर विमुख मैं हतौं न काहू ॥

रन चढ़ि करिय कपट चतुराई । रिपु पर कृपा परम कदराई ।।
दूतन जाइ तुरित सब कहेऊ । सुनि खर दूषन उर अति दहेऊ ।।

छन्द उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए बिकट भट रजनीचरा ।।
सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परसु भयंकरा ।।
प्रभु कीन्ह धनुष टकोर प्रथमहिं घोर रव व्याप्यो महा ।
भये बधिर व्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा ।।

दोहा सावधान ह्वै धाएउ जानि सबल आराति ।
लागे बरसन राम पहँ अस्त्र सस्त्र बहु भाँति ।।३८।।
तिनके आयुध तिलसम करि काटे रघुबीर ।
तानि सरासन स्रवन लगि पुनि छाँड़े निज तीर ।।३९।।

तोमर छन्द तब चले बान कराल फुंकरत जनु बहु ब्याल ।
कोपे समर श्रीराम चले बिसिख निसित निकाम ।।
अवलोकि खरतर तीर मुरि चले निसिचर बीर ।
एक एक कोउ न सम्हार करि तात मात पुकार ।।
कोउ कहै धर का कीन्ह जो युद्ध हमसों कीन्ह ।
जाके बान पठिहि कराल धस जाइ जामहु काम ।।
भये क्रोध तीनिहु भाइ जो भागि रन तें जाइ ।
तेहि मारिहौं निज पानि फिरे मरन मन महुँ ठानि ।।

दोहा उमा येक प्रभु धनुष बहु पुनि तिनके बहु बान ।
तरा बहुत प्रभु सर भये बिना जोग जप ज्ञान ।।४०।।

छन्द करि युद्ध अनेक प्रकार सन्मुखहिं करहिं प्रहार ।।
रिपु परम कोपे जानि प्रभु धनुष सर संधानि ।।
छांड़े बिपुल नाराच लगे कटन बिकट पिसाच ।।
उर सीस कर भुज चरन जहँ तहँ लगे महि परन ।।
चिक्करत लागत बान धर परत कुधर समान ।
भट कटत तन सत खंड नभ उड़त बहु भुज दंड ।।
बिनु मुंड धावत रुंड कटि भये निसिचर झुंड ।
खग कंक काक सृगाल निसिचर चरे पसु ब्याल ।।

चौपैया छन्द कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खप्पर[1] संचही
बैताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नाचही
रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन के उर भुज सिरा
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धर धर सब्द करहिं भयंकरा
अंतावली गहि उड़हिं गीध पिसाच सिर गहि धावहीं
संग्राम पुर बासी मनहुँ बहु बाल गुड़ी उड़ावहीं
मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहँरत परे
अवलोकि निजदल बिकल भट तिसिरादि खर दूषन फिरे

---

१ पद १४ प्रसंग।

सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि बारही
करि कोप श्री रघुबीर पर अगनित निसाचर डारही
प्रभु निमिष महुँ माया निवारि प्रचारि डारे सायकं
दस दस बिसिख उर माझ मारे सकल निसिचर नायकं
महि परत भट उठि लरत मारत करत माया अति घनी
सुरेस डर चौदहसहस प्रेत बिलोकि इक कौसल धनी ।
सुर मुनि सभै सब देखि माया नाथ अति कौतुक कर्यो
देखहिं परस्पर राम करि संग्राम रिपु दल लरि मर्यो ।

दोहा राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान ।
करि उपाय मारे सकल छन महुँ कृपा निधान ॥४१॥
हर्षित बरषहिं सुमन सुर बाजहिं निकर निसान ।
प्रभु अस्तुति करि सुर चले सोभित बिबिध बिमान ॥४२॥

चौपाई

जब रघुनाथ समर रिपु जीते । सुर नर मुनि सबके भय बीते ॥
तब लछिमन सीतहि लै आये । प्रभु पद कमल हरषि सिर नाये ॥
सीता चितव स्याम मृदु गाता । परम प्रेम लोचन न अघाता ॥
पंचवटी बसि श्री रघुराई । करत चरित सुरमुनि सुखदाई ॥
धूम्र देखि खर दूषन केरा । सूर्पनखा रावन सन टेरा ॥
बोली बचन क्रोध करि भारी । देस कोस पुर सुरति बिसारी ॥
करसि पानि मद तैं दिन राती । सुधि न तोहि सिर पर आराती ॥
राज नीति बिन धन बिनु धर्मा । हरहिं समर्पित बिन सतकर्मा ॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाये । स्रम फल पाठ किये अरु पाये ॥
संगति जती कुमंत्रहि राजा । मदते ग्यान पान ते लाजा ॥
प्रीति प्रिया बिन मद ते गुनी । नासहिं बेगि नीति अस सुनी ॥

सोरठा रिपु रुज पावक पापु प्रभुहि न गनिये छोट करि ।
अस कहि बिबिध बिलापु करन लगी रोदन अमित ॥४३॥

दोहा सभा मध्य ब्याकुल परी बहु प्रकार कहै रोइ ॥
तोहि जियत दसमौलि सुनु मोरि कि अस गति होइ ॥ ४४ ॥

चौपाई

सुनत सभासद उठ अकुलाई । समुझाइसि गहि बाह उठाई ॥
कह लंकेस कहसि निज बाता । कै‍ईं तव नासा कान निपाता ॥
अवधि नृपति दसरथ के जाये । पुरुष सिंह बन खेलन आये ॥
समुझि[1] परे मोहि उनकी करनी । रहित निसाचर करिहैं धरनी ॥
जिनको भुज बल पाइ दसानन । अभय भए बिचरत मुनि कानन ॥
देखत बालक काल समाना । समर धुरन्धर सब जग जाना ॥

---

१ पद १५ प्राप्य ।

अतुलित बल प्रताप दोउ भ्राता । भयो न भवहि (?) मंडल त्राता ।।
सोभा धाम राम तेहि नामा । तिन्ह के संग नारि एक स्यामा ।।
सोरठा : अति सुकुमारि सुनारि अरबरि जोग न अहइ कोऊ ।
मैं मन कीन्ह बिचारि तेहि समानि कोऊ नाहि जग । ४५ ।।

चौपाई

अबहु जाइ देखत तुम जबही । ह्वै हो बिकल तासु बस तबही ।।
जीवन मुकुत लोक बस ताके । दस मुख सुनु सुंदरि अति जाके ।।
रूपराशि बिधि नारि सवारी । रति सत कोटि तासु बलिहारी ।।
तासु अनुज काटे श्रुति नासा । सुनि तव नाम कीन्ह उपहासा ।।
बिन पराध अस हाल हमारी । अपर दनुज किमि बचे सुरारी ।।
खर दूषन सुनि लागि गुहारी । छिन महु सकल कटक उन्ह मारी ।
खर दूषन त्रिसरा कर घाता । सुनि दस मौलि जरें सब गाता ।।
भयो सोच मन नहि बिभामा । बीतहि पल मानहु सत जामा ।।
दोहा सूर्पनखा सुमुझाइ करि बल बोला बहु भांति ।
भवन गयो अति सोच बस नीद परी नहि राति ।। ४६ ।।

चौपाई

सुर नर नाग असुर महि माही । मोरे अनुचर कह कोउ नाही ।।
खर दूषन मो सम बलवंता । तिनहि को मीत बिनु भगवंता ।।
सुररंजन भंजन महि भारा । जौ भगवान कीन्ह अवतारा ।।
तो मै जाइ बैर हठि करऊ । प्रभुसर बदि महाभव तरऊ ।।
जो नर होइ भूप सुत कोऊ । हरिहौं नारि जीति के दोऊ ।।
होइ भजन नहि तामस देहा । मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ येहा ।।
एक मारक चोरि बर चारी । बैगमद अति जिमि उरमारी ।।
चल्यो अकेल जान चढि तहावा । बस मारीच सिंधु तट जहावा ।।
छन्द उरगारि सम अति बेग रथ न जाइ कछु उपमा कही ।
सिर छत्र मोहत स्याम घन जनु चमर स्वेत बिराज ही ।।
इहि भांति नायक नरित दीस अनेक बाजी सोह ही ।
बन बाग उपबन बाटिका सुचि नगर मुनि मन मोहही ।।
दोहा बहु तडाग सुचि बिहंग मृग बोलहि बिबिध प्रकार ।
एहि बिधि आयो सिंधु तट सत योजन बिस्तार ।। ४७ ।।

चौपाई

मृगहर जीव बिबिध बहु जाती । करहि कुलाहल दिन अरु राती ।।
गुंजहि कुंजहि तेहि बन माही । अति सुभाव नहि बरनि सिराही ।।
कनक धाम सुंदर सुखदाई । बैठे सकल जनु तहं भाई ।।
तेहि दिग्भ्रमणता (?) तरु नाचे । जेहि देखत मुनि मन अनुरागे ।।
सुरा ~ । ।।

– ।   म¹ भाई ॥

सब मृग संग मृग करि लेही । मानहु मोहि सिखावनि देही ॥
शस्त्र सो चिंतत पुनि (पन ?) देखिय । भूप सुसेवत बस नहि लेखिय ॥
जदपि नारि राखिय उर माही । जुबती शस्त्र नृपति बस नाही ॥
देखहु तात बसंत सुहाई । प्रिय बिहीन मोहि भय उपजाई ॥

दोहा बिरह बिकल बल हीन मोहि जान्यो निपट अकेल ।
सहित बिपिन मधुकर बिहंग मदन कीन्ह बगमेल ॥ ७४ ॥
देखि गयो भ्राता सहित तासु दूत सुनु भ्रात ।
डेरा दीन्हो मनो तब कटक न भटकहि जात ॥ ७५ ॥

चौपाई

बिटप बिशाल लता अरुझानी । बिबिधि बितान दयो दिसि तानी ॥
कदलि साखा ध्वजा पताका । देखत मोह धीर मनु जाका ॥
बिबिधि भाति फूले तरु नाना । जनु बानैत गहे बर बाना ॥
कहु कहु सुंदर बिटप सुहाये । जनु भट बिलग बिलग बनि छाये ॥
बोलत पोत मनो गज माते । ढेक महूप ऊंट बिसराते ॥
मोर चकोर कीर बर बाजी । पारावत मराल सब ताजी ॥
तीतुर लवा कि पदचर जूथा । बरनि न जाइ मनोज बरूथा ॥
रथ गिरि सिल दुंदुभी झरना । चातक बन्दी गुनगन बरना ॥
मधुकर निकर भेरि सहनाई । त्रिबिधि समीर बसीठी आई ॥
चतुरंगिनी सेन संग लीन्हे । बिचरत मनो चिनौती दीन्हे ॥
लछिमन देखहु काम अनीका । रहे धीर जिनकै जग लीका ॥
याके एक परम बल नारी । तेहि बल काम सुभट अति भारी ॥

दोहा : तात प्रगट अगती निपट काम क्रोध मद लोभ ।
मुनि बिग्यान निधान मन करहि निमिष महु छोभ ॥ ७६ ॥
लोभ कि इच्छा दंभ बल काम कें केवल नारि ।
कपट क्रोध करे बचन मुनिबर कहै बिचारि ॥ ७७ ॥

चौपाई

गुनातीत सचराचर स्वामी । उमा राम उर अन्तरजामी ॥
कामिन्ह कौ दीनता दिखाई । धीरन के उर भक्ति दिढाई ॥
क्रोध मनोज मोह मद माया । छूटै सकल राम की दाया ॥
सो नर इन्द्रजाल नहि भूला । जा पर होहि राम अनुकूला ॥
कहौ उमा मै अनभव अपना । सत्य हरि नाम जगत सब सपना ॥
पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा । पंपा नाम सुभग गंभीरा ॥
सन्त हृदय जस निर्मल बारी । बाधे घाट मनोहर चारी ॥
पीवहि जन्तु बिबिधि बहु नीरा । जनु उदार गृह जाचक भीरा ॥

---

१ पत्र ११ प्रारम्भ।

दोहा पुरइनि सघन सो ओट जल बेगि न पाइय मर्म।
माया प्रछन्न देखिये' जैसें निर्मल धर्म ॥ ७८ ॥
सुखी मीन सब एक रस अति अगाधि जल माहिं।
यथा धर्म सीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं ॥ ७९ ॥

चौपाई

बिकसे कमल बहु नाना रंगा। मधुर मधुर रव गुंजत भृंगा ॥
बोलत जल पछी कल हंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ॥
चक्रबाक खग बक समुदाई। देखत बनें बरनि नहिं जाई ॥
सुंदर खग गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बुलाई ॥
ताल समीप मुनिन्ह गृह छाये। चहु दिसि कानन बिटप सुहाये ॥
चंपक बकुल कदंब तमाला। पाडर बिबिधि पलास रसाला ॥
नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरी सुक सों करें गाना ॥
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहै मनोहर बाऊ ॥
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं ॥

दोहा सफल बिटप सुभ सुमन जुत रहे भूमि नियराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवैं सुसंपति पाइ ॥ ८० ॥

चौपाई

देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जन कीन्ह परम सुख पावा ॥
देखि महा तरु सुन्दर छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया ॥
तहँ पुनि सकल देव मुनि आये। अस्तुति करि निज धाम सिधाये ॥
बैठे राम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला ॥
बिरहवंत भगवंतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेषी ॥
मोर साप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा ॥
ऐसे प्रभुहि बिलोकौं जाई। पुनि न बनें अस अवसर आई ॥
यह बिचार नारद करि बीना। गये जहाँ दिनकर कुल टीका ॥
गावत राम चरित मृदुबानी। सहित प्रेम बहु भाँति बखानी ॥
करत दंडवत लीन्ह उठाई। राख्यौ बहुत बार उर लाई ॥
स्वागत पूछि निकट बैठारे। लछिमन सादर चरन पखारे ॥

दोहा नाना बिधि बिनती करी प्रभु प्रसन्न जिय जानि।
नारद बोले बचन तब जोरि सरोरुह पानि ॥ ८१ ॥

चौपाई

सुनहु परम उदार रघुनायक। सुंदर सुगम अगम बर दायक ॥
देहु एक बर मागहु स्वामी। जद्यपि जानत अंतरजामी ॥
जानत तुम मुनि मोर सुभाऊ। जनसौं कबहु न करौं दुराऊ ॥
कवन बस्तु मोहि अति प्रिय लागी। जो मुनिबर तुम सकहु न मागी ॥

---

१ पृष्ठ ११ देखिये से आरम्भ।

जन कहुं कछु अदेय नहिं मोरे । अस बिस्वास तजिय जिनि भोरें ॥
तब नारद बोले मुसुकाई । अस बर मागत होति ढिठाई ॥
जद्यपि प्रभु तव नाम अनेका । श्रुति कहि अधिक एकते एका ॥
राम सकल नामन ते अधिका । यहु सदा अघ खग गन बधिका ॥
दोहा राका निसि तव भक्त[1] तव राम नाम सुभ सोम ।
अपर नाम उडगन बिमल बसहु दास उर ब्योम ॥८२॥
एवमस्तु मुनि सन कहेउ कृपा सिंधु रघुनाथ ।
तब नारद मन हर्ष अति प्रभु पद नायेउ माथ ॥८३॥

चौपाई

अति प्रसन्न रघुबीरहि जानी । पुनि नारद बोले मृदुबानी ॥
नाथ जबहि प्रेरहु निज माया । मोहेउ मोहि सुनहु रघुराया ॥
तब बिबाहु मैं चाहौं कीन्हा । प्रभु केहि हेतु करन नहि दीन्हा ॥
सुनु मुनि तोहि कहौं सह रोसा । भजहि मोहि तजि सकल भरोसा ॥
करौं सदा तिनकी रखवारी । ज्यौं बालक राखै महतारी ॥
गहै सिसु बच्छ अनल अहि धाई । तह राखै जननी अरगाई ॥
प्रौढ भए तेहि सिसु पर माता । प्रीति न करै पाछिली बाता ॥
मोरे प्रौढ तनै मुनि ग्यानी । बालक सिसु सम दास अमानी[2] ॥
जिनहि मोर बल निज बल नाही । दुहु कह काम क्रोध रिपु आही ॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजही । पातहि ग्यान भजन नहि तजही ॥
पंडित जन मोहि अति प्रिय भाये । जो नहि प्रीति तदपि अनुरागे ॥
दोहा काम क्रोध मोहादि मद प्रबल मोह की धारा ।
तिन महं अति दारुन दुखद माया रूपी नारि ॥८४॥

चौपाई

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता । मोह बिपिन कहं नारि बसंता ॥
जप तप नेम जलाश्रय झारी । हूं ग्रीषम सोषै बर बारी ॥
काम क्रोध मद मत्सर भेका । तिनहि हर्षप्रद मबल (?) एका ॥
दुर्बासना कुमुद समुदाई । तिन कह सदा सरद सुखदाई ॥
धर्म सकल सरसीरुह बृंदा । होइ तिनहि पेदकर चंदा ॥
पुनि ममता जवास बहुताई । पलुहै नारि सिसिर सम पाई ॥
नारि निबिड रजनी अंधियारी । पाप उलूकन कौं सुखकारी ॥
बुधि बल सत्य सील सुभ मीना । बंसी सम तिय कहहि प्रबीना ॥
दोहा : अवगुन मूल कु मूल प्रद प्रमदा सब दुख खानि ।
तातें कीन्ह निवारन मुनिवर अस जिय जानि ॥८५॥

चौपाई

सुनि रघुपति के बचन सुहाये । मुनि तन पुलक नयन जल छाये ॥
कहहु कवन प्रभु कै यह रीती । सेवक पर ममता अति प्रीती ॥

---

१ पृ० १७ प्रारम्भ । २. अमानी

जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी । ज्ञान मान सो पर्म अभागी ।।
पुनि सादर बोले मुनि नारद । सुनहु राम बिज्ञान बिसारद ।।
संतन के लछन रघुबीरा । कहो नाथ भंजन भव भीरा ।।
सुनु मुनि संतन के गुन कहऊँ । जेहि ते मैं उनके बस रहऊँ ।।
षट बिकार जित अनघ अकामा । अचल अकिंचन सुचि सुख धामा ।।
अमित बोध अनीह मित भोगी । सत्य सरिस कबि कोबिद जोगी ।।
सावधान मद मत्सर हीना । धीर भक्ति पथ पर्म प्रबीना ।।
दोहा गुनागार संसार के दुखरत बिगत संदेह ।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिनकें देह न गेह ।।८६।।

चौपाई

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं । पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं ।।
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती । सरल सुभाउ सबन पर प्रीती ।।
जप तप ब्रत दम संजम नेमा । गुर गोबिंद बिप्र पद प्रेमा ।।
श्रद्धा छमा प्रिया मति की दाया । मुदित सु मो पद प्रीति अमाया ।।
बिरति बिबेक ज्ञान बिग्याना । बोध यथारथ बेद पुराना ।।
दंभ मान मद करैं न काऊ । भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ।।
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला । हेत रहित परहित रत सीला ।।
सुनि मुनि साधन के गुन जेते । कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते ।।
छन्द : कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे
अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे
सिर नाइ बारहि बार चरनन ब्रह्मपुर नारद गये
ते धन्य तुलसीदास(१) आस प्रभु भजहिं जे हरि रंग रये ।
दोहा : रावनारि जस पावन गावहिं सुनहिं जे लोग ।
राम भगति दृढ़ पावहीं बिन बिराग जप जोग ।।८७।।
दीप सिखा जुबती जोबन जानिसु होसि पतंग ।
मधु रसना प्रभु नाम ही करहि सदा सतसंग ।।८८।।

इति श्रीरामायने सकल कलि कलुष बिध्वंसने बिमल बैराग्य संपादिनी प
सुजन संवादे राम बन चरित्र बर्ननो नाम तृतिया सोपान आरन्य कांड समाप्त ।।३।।

श्री तुलसीदास गुरु की आग्या सों उनके भ्राता सुत कृष्णदास सोरों क्षे
निवासी हेत लिखितं लछिमनदास काशीजी मध्ये संवत् १६४३ असाढ़ सुदि ४ गु
इति ।।

---

१ पृष्ठ २८ प्रसंग ।

दोहा रत्नावली

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ दोहा रत्नावली लिख्यते ॥

हाय सहज ही हौं कही लह्यो बोध हिरदेस ॥
हौं रतनावलि जँचि गई पिय हिय काच विसेस ॥१॥

१ श्रीगुरु रामानुजाय नमः ॥ श्री गुरुचरण
कमलेभ्यो नमः ॥ अथ दोहा रत्नावली लि० ।१।
दोहा हाय सह्यो बोधि बोध हौं हौं ।१।
२ श्रीगणेशाय नमः अथ रत्नावली विरचित
दोह लिख्यते । जँची गयी पिय हिय ॥१॥

जनमि बदरिका कुल भई हौं पिय कंटक रूप ॥
बिषत दुखित ह्वै चलि गए रतनावलि उर भूप ॥२॥

१ बदरिका हो रूप विषद ह्वै गये ।२।
२ भरी पिय रूप विषद ह्वै उर, भूप ॥२॥

हाय बदरिका बन भई हौं बामा बिषबेलि ॥
रतनावलि हौं नाम की रसहि दयो विष मेलि ॥३॥

१ हौं विष बेलि हौं विष
बदरिका बन बामा ।३।
२ बदरिका बन, मही, बामा
विष रसहि बीस मेलि ॥३॥

सुमहु बचन अमरूत गरल रतन प्रकृत के साथ ॥
जो मो कहँ पति प्रम सँग इस प्रेम की गाथ ॥४॥

१ अमरूचित ज्यौं मोकहँ सँग ।४।

कहि अनुखनी बचन हूँ परिनाम हिये विचारि ॥
जो न होइ परिताप उर रतनावलि अनुहारि ॥५॥

१ हूँ ।५।

रतन दैव बस अमृत बिष बिष अमिरत बनि जात ।
सूधी हू उलटी परै उलटी सूधी बात ॥६॥

१ बस विष विष, बनि ।६।

रतनावलि औरहि कछु चाहिय होइ कछु और ॥
पाँच पैड आगे चलै होनहार सब ठौर ॥७॥

१ औरे कछु, पाँच पैड ।७।

मन चाहत रतनावली विधि बस अनभल होइ ॥
हौं प्रिय प्रेम बढ़्यो चह्यो दयो मूलतें खोइ ॥८॥

१ चाहत हौं ।८।

जानि परै कहुँ रज्जु अहि कहुँ अहि रज्जु अपात ।
रज्जु रज्जु अहि अहि कबहुं राम समय की बात ॥९॥
  १ कहुँ कहुँ कबहुँ ।९।
धिक मोकहुं सो बचन लगि मो पति सह्यो बिराम ॥
भई बियोगिनि निज करनि रहुं उडावति काम ॥१०॥
  १ मोकहुँ रहुँ, उडावति ।१०।
  २ मोकों भइ बियोगिन उडावति ।४।
हौं न नाथ अपराधिनी तऊ छमा करि देउ ॥
चरनन दासी जानि निज बेग मोरि सुधि लेउ ॥११॥
  १ तौउ बेगि ।११।
  २ तौउ छिमा मोर, सुधिय लेउ ।५।
जदपि गए घर सौं निकरि मो मन निकरे नाहिं ।
मन सौं निकसहु ता दिनहि जा दिन प्रान नसाहिं ॥१२॥
  १ गये सौं मनसो निकरो दिनहिं ।१२।
  २ गऐ, निकरी नाई दिनहिं
    पिरान नसाई ।६।
नाथ रहौंगी मौन हौं धारहु पिय जिय तोष ॥
कबहुं न देऊं उराहनों देऊं न कबऊं दोष ॥१३॥
  १ हौं कबहु न देऊँ देऊँ कबहू (न) दोष ।१३।
  २ धारौ पिय जिय कबहु देउँ
    उराहनौ देउँ कबहुँ ।७।
छमा करहु अपराध सब अपराधिनि के आइ ॥
बुरी भली हौं आपकी तजउ न लेउ निभाइ ॥१४॥
  १ अपराधिन के आय निभाय ।१४।
  २ छिमा करौ अपराधिन, बुरी
    तजौ, निभाइ ।८।
कहौ हमारे भाग अस जो पिय दरसन देईं ॥
आइ आँखिनी दीठि सौं एक बार लखि लेईं ॥१५॥
  १ कहौं, देयँ आहि लेयँ ।१५।
  २ पिय, देईं, ऐक लेईं ।१०।
दीनबंधु कर पर पलो दीन बंधु कर छाहिं ॥
तौउ भई हौं दीन धनि पति त्यागी मो बांह ॥१६॥
  १ दीनबन्धु छाँह, हौं बाँह ।१६।
  २ दीन बन्धु कै दीन बंधु के तोउ
    भयी हौं तयागी बाँह ।९।
उबक भयानन सुन सुहम गेह भयो पिय स्याम ।
रम्भावनि धामा भई तुम बिन बन सम गाम ॥१७॥

१ बिन, बस धाम ।१७।
बिन ।।११।।
१ भयो पिय, श्याम गइ बिन बस ।११।
कबहुँ कि उवै भानु रवि कबहुँ कि होइ बिहान ।
कबहुँ कि बिकसै उर कमल रतनावलि सकुचान ।।१८।।
१ कबहुँ रवि कबहुँ कबहु कि बिकसै,
सकुचान ।१८।
सोवत सों पिय जगि भए जगिहु भई हौं सोइ ।
कबहुँ कि अब रतनावलिहि आइ जगावहि मोइ ।।१९।।
१ सोव(त) सों जगि गये हौं,
कबहुँ जगावें ।१९।
राम भगति भूषित भयो पिय हिय निपट निकाम ।
अब किमि भूषित होइ है तहु रतनावलि बाम ।।२०।।
१ होहि है तहु ।२०।
२ पिय, हिय होई, तई बाम ।१५।
तीरथ आदि बराह के तीरथ सुरसरि पार ।
जाही तीरथ आइ पिय भजउ भजत करतार ।।२१।।
१ आप भजहु, जाही तीरथ आय भजहु ।२१।
२ जाही भजो ।१६।
प्रभु बराह पद पूत महि जनम मही पुनि एहि ।
सुरसरि तट महि त्यागि अस भए बाम पिय केहि ।।२२।।
१ पूत महि जन (म) मही गये ।२२।
२ प्रभु पूत महि, ऐहि मही
त्याग भए, पिय ।१७।
जबहि तीरथनु रमि रह्यो राम धर्मधन रूप ।
नहीं नाथ पायो अबै स्यापी त्रिभुवन भूप ।।२३।।
१ नहीं पायो, स्यापो ।२३।
२ सबै रूप विभायो तिरभुवन ।१८।
गुनरतन पिय संग हौं लही रतनावलि सम कोउ ।
तिहि बिछुरत रतनावली रही कोउ अब कोउ ।।२४।।
१ बिछुरत ।२४।
२ पिय हौं बिछुरत अब ।११।
जासु दलहि लहि हरषि हरि हरत भगत भव रोग ।
तासु दास पद दासि ह्वै रतन लहत कत सोग ।।२५।।
१ भव दासि है ।२५।
२ भव ।६८।
जप नामु हिरदै बसत सो पिय मम उर धाम ।

एक बसत दोऊ बसहिं रतन भाव अभिराम ॥२६॥

१ हिरदै दोऊ बसें ।२६।

मोहि दीनो संदेस पिय अनुज नंद के हाथ ।
रतन समुझि जनि पृथक मोहि जो सुमिरति रघुनाथ ॥२७॥

१ मोह दीनों नन्द ।२७।
२ मोह विसम पृथक मोह ।६६।

दुखनु भोगि रतनावली मन महं जनि दुखियाइ ।
पापनु जन्म दुख भोगि तू पुनि निरमल ह्वै जाइ ॥२८॥

१ दुखियाइ, ह्वै जाय ।२८।

ज्यों ज्यों दुख भोगति तसहिं दूरि होत दुख पाप ।
रतनावलि निरमल बनत जिमि सुबरन सहि ताप ॥२९॥

१ ज्यों ज्यों तसहिं, तव निरमल बनत ।२९।
२ तसहिं, तव बनत ।६७।

को जाने रतनावली पिय वियोग दुख जात ।
पिय बिछुरन दुख जानती सीय उर्मिली मात ॥३०॥

१ जानें सीय उर्मेली ।३०।
२ पिय, वियोग दिन जानती
सीय उर्मेली ।६२।

रतनावलि भव सिंधु मधि तिय जीवन की नाव ।
पिय केवट बिनु कौन जग पर किनारे लाव ॥३१॥

१ भव ।३१।
२ तिय पिय ।६३।

हौं न उऋन पिय सों भई सेवा करि इन हाथ ।
अब हौं पावहुं कौन बिधि सब मति दी(ना)नाथ ॥३२॥

१ सेवा दीनानाथ पावहुं ।३२।
२ उरिन पिय सो भई हाथ पावौं
कौन दीनानाथ ।६४।

पति सेवति रतनावली सकुची धरि मन लाज ।
सकुच गई कछु पिय गए सक्यो न सेवा साज ॥३३॥

१ गयें ।३३।

पति पद सेवा सों रहित रतन पादुका सेइ ।
गिरत नाव सों रज्जु तेहि सरित पार करि देइ ॥३४॥

१ सो, तिहि ।३४।

रतनावलि पति राग रचि दै बिराग महं पागि ।
उमा रमा ब्रह्माणिनी नित पतिपद अनुरागि ॥३५॥

१ रंगि में पागि ।३५।

कबहुँ रह्यो नवनीत सो पिय हिय भयो कठोर ।
किमु न द्रवहि हिम उपम सम रतन फिरहु किन मोर ।।३६।।
१ रह्यौं नवनीति, किमि न द्रवहि फिरे ।३६।
कर गहि लाए नाथ तुम बादन बहु बजवाइ ।
पदहु न परसाए तजत रतनावलिहि जगाइ ।।३७।।
१ लाये बजवाय परसाये जगाय ।३७।
मलिया सींची बिबिध बिधि रतन लता करि प्यार ।
गहि बसंत आगम भयो तब लगि पर्‌यो तुषार ।।३८।।
१ बिबिध नहि बसन्त, त(ब)लगि
परयो तुषार ।३८।
नारि सोइ बड़भागिनी जाके पीतम पास ।
लखि लखि चख सीतल करै हीतल लहै हुलास ।।३९।।
१ × ।३९।
२ बड़भागिनी लखि, लहै ।१२।
असन बसन भूषन भवन पिय बिन कछु न सुहाइ ।
भार रूप जीवन भयो छिन छिन जिय अकुलाइ ।।४०।।
१ बसन बिन सुहाय रूप अकुलाय ।४०।
२ बसन भूषन पिय, जिय ।१३।
बैस बारही कर गह्यो सोरहि गवन कराइ ।
सत्ताइस लागत करी नाथ रतन असहाइ ।।४१।।
१ बारही सोरहि गौन कराय,
सत्ताइस असहाय ।४१।

सागर परसं संगी रतन संवत मो दुपदाइ ।
पिय वियोग जननी मरन करन न सूझ्यो काइ ।।४२।।
१ सागर कर रस ससि रतन
(हस्तलिपि में 'ससि' का 'सी' दीर्घ है) ।४२।
पिय वियोग दाया बढ़ी रत(न) काम नसिजाय ।
मिय कर बाहें घाट तन दी मन भयहु सिराय ।।४३।।
१ रतन भयहुँ ।४३।
जनम जनम पिय पद कमल रहै रतन अनुराग ।
पिय बिछुरन होइ न कबहु पावहुँ अचल सुहाग ।।४४।।
१ कबहूँ, पावहुँ ।४४।
२ पिय रहै पिय, क्रमांक पाठी ।२०।
रतन प्रेम डंडी तुला पला जुरे इकसार ।
एक बाट पीड़ा सहै एक गेह संभार ।।४५।।
१ बाट ।४५।

पति पति पति पित मीत पति पति गुर सुर भरतार।
रतनावलि सरबस पतिहि बंधु बंधुप अमसार ॥४६॥
  १ × ।४६।
  २ सुत रतनावली नहि ॥१०॥
पति के सुख सुख मानती पति दुख देखि दुखाति।
रतनावलि धनि द्वैत तजि तिय पिय रूप लखाति ॥४७॥
  १ × ।४७।
  २ रतनावली दुहुँति तिय पिय रूप ।५४।
सब रस रस इक ब्रह्म रस रतन कहत बुध लोय।
पै तिय कहँ पिय प्रेम रस बिंदु सरिस नहिं सोय ॥४८॥
  १ ब्रह्म कहँ नहि ।४८।
तिय जीवन तेमन सरिस तौलौं कछुक रचै न।
पिय सनेह रस रामरस जौ लौं रतन मिलै न ॥४९॥
  १ तौलौं रच जौ लौं ।४९।
पिय साँचो सिंगार तिय सब झूँठे सिंगार।
सब सिंगार रतनावली इक पिय बिनु निस्सार ॥५०॥
  १ साँचो सब बिनु ।५०।
  २ पिय साँचो सिंगार, तिय झूठे, सिंगार,
    सिंगार, निसार ।१४।
नेह सील गुन बित रहित कामी हू पति होइ
रतनावलि भलि नारि हित पूज्य देव सम सोइ ॥५१॥
  १ हूँ, होय सोय ।५१।
  २ पूजिय देव सम होइ ।२१।
अंध पंगु रोगी बधिर सुतहि न त्यागति माइ।
तिमि कुरूप दुरगुनि पतिहि रतन न सती बिहाइ ॥५२॥
  १ माय कुरूप, दुरगुन बिहाय ।५२।
कूर कुटिल रोगी ऋनी दरिद मंद मति नाह।
पाइ न मन मनभाइ तिय सती करति निरबाह ॥५३॥
  १ × ।५३।
  २ कूर रिनी मनुभाइ तिय ।५३।
बन यामिनि यामिय भवति भूरी पामु न पाइ।
रतन सती तिमि दुख गहति सुख हित भप न कमाइ ॥५४॥
  १ बन भजति ।५४।
बिपति कसौटी पै बिमल जासु चरित दुति होइ।
धन्य सराहन जोग तिय रतन सती है सोइ ॥५५॥
  १ होय सोय ।५५।
सती बनत जीवन लगै पगती बनत (न) देर।

बिरच बैर आपै कहा बढ़िबो कठिन सुमेर ॥८६॥
१ बढ़िबो, बमत न बैर ।८६।

बाल बैस ही सों बड़ी बया धरम कुल कानि ।
बड़े भए रतनावली कठिन परैसी बानि ॥८७॥
१ बाल, बड़े, भयें बानि ।८७।

बारे पन सों मातु पितु जैसी डारत बानि ।
सो न छुटावें पुनि छुटति रतन भयेहुं सयानि ॥८८॥
१ बारे, बानि छुटाये छुटत ।८८।

भाव विषय रस भीत भवि भूषन भवन बिचारु ।
पंचरत्न पामस रतन जम्महिं हिय न सिंगारु ॥८९॥
१ गेंधि बिचारु सिंगार ।८९।

मरिकन संग पेसनि हंसनि बठनि रतन इकंत ।
मलिन करत कन्या चरित हरत सील कहें संत ॥९०॥
१ × ।९०।

नयन बचन तिय बसन मिव निरमल नीचे बार ।
करतब रतन बिचार तिमि ऊँचे राखि उबार ॥९१॥
१ करतब ऊँचे ।९१।

हंसन बसन हियकन छिकन पंचरन ऊँचे बैन ।
गुरु जन सनमुख मन न तिय ऊँचे आसन नैन ॥९२॥
१ हँसन, गुरु ।९२।

सदन भेद तन धन रतन सुरति सुभेषज अन्न ।
दान धरम उपकार पर राखि बधू परछन्न ॥९३॥
१ उपकार तिमि राखि बधू ।९३।

भूषन रतन अनेक जग पै न सील सम कोइ ।
सील जासु नैनन बसत सो जग भूषन होइ ॥९४॥
१ बसत ।९४।

सत्य सरलबानी रतन सील लाज ये तीन ।
भूषन सावति थी सती सोभा तासु अधीन ॥९५॥
१ × ।९५।

सुबरन मय रतनावली मन मुकता हारादि ।
एक लाज बिनु नारि कहँ सब भूषन जग बादि ॥९६॥
१ रतनावली, मनि, बिनु सब ।९६।
२ रतनावली ऐक बिनु नारिकौं भूषन ।९६।

ऊँचे कुल जनमैं रतन रूपवती पुनि होइ ।
बरन दया गुन सील बिनु ताहि सराहु न कोइ ॥९७॥
१ ऊँचे रूप बिनु ।९७।

सजन सखी सों जनि कछु कबहुँ जतन व्यौहार।
जतन सों प्रीति प्रतीति तिय रतन होति सब छार ॥६८॥

१ करहुँ कबहुँ ।६८।

रतन हास पर घर गमन सेन देह सिंगार।
तजि उतसवन बिलोकिबी नहिं बियोग भरतार ॥६९॥

१ × ।६९।

रतन झरोखन झाँकिबी तिमि बैठनि दुइवार।
बात बात प्रसपन हँसन तिय दूषन पावार ॥७०॥

१ झाँकिबो बातबात ॥७०॥

मदक पान पर [पर बसन भ्रमन सयमु बिनु काम।
दूषक वास पति दुष्ट संग षट तिय दूषन नाम ॥७१॥

१ × ।७१।

२ भ्रमन सयन भ्रमक दुष्ट तिय दूषन ।७२।

कबहुँ अकेली जनि करहु सम्बहु निकट पयान।
देखि अकेली तिय रतन सपत संवहु ध्यान ॥७२॥

१ कबहुँ करहुँ बाम ।७२।

घर घर घूमनि नारिसों रतनावलि मित जोनि।
इनसों प्रीति न जोरि बहु जनि इह भेद तु जोनि ॥७३॥

१ जोनि बहु ।७३।

२ जोनि बहु मह ।८८।

कोप दुमा व्यभिचार मद मोम चोरि मद पान।
पतन करावन द्वार द्वै रतनावली महान ॥७४॥

१ × ।७४।

२ बिभचार ।८९।

बहु हँसनी बहु बोलनी बतकट बिकट नारि।
बढ़ बोलनि दूतिनि रतन महती दूषन नारि ॥७५॥

१ बहु बढ़ बोलनि दूषनि ।७५।

२ बहु बहु बढ़ बोलनि ।९०।

कबहूँ नारि मतार सों करिय न बैर सनेह।
कोऊ बिधि रतनावली करत कलंकित एह ॥७६॥

१ कबहूँ बैर बोउ ।७६।

२ कबहूँ बैर देहु ।९१।

वनिक चेटुवा निष्पुरुष जनि कबहुँ बतियाद।
रतनावलि जैद दूर परि ठम पन ठगत प्रमाद ॥७७॥

१ कबहूँ चैरमा कबहुँ बद ।७७।

२ चेरमा निपुरुष कबहु रतनावलि

दर निरमाद ॥७८॥

ललचाने जग को रतन कबहु न करि बिसवास ।
बस्तु न ताकी पाद कछु देइ न लेइ निवास ॥७८॥
  १ कबहु ।७८।
करमचारि जन सौं भली जथा काज बतरानि ।
बहु बतानि रतनावली मुनि प्रकास की पानि ॥७९॥
  १ बतरानि, बहु बतानि रतनावली ।७९।
  २ करमचारी बतरानि बहुबतानि
     रतनावली ।१०५।
अनुत जगम मायारचन रतनावली बिसारि ।
माया प्रगिरत कारने सती तजी त्रिपुरारि ॥८०॥
  १ तजी त्रिपुरारि ।८०।
  २ प्रगिरत त्रिपुरारि ।१०८।
साहस सौं रतनावली बनि करि कबहुं नेह ।
सहसा पितु घर गौन करि सती जराई देह ॥८१॥
  १ × ।८१।
  २ कबहुं जराई ।१०९।
अगिनि धून चकमक दिया मिसि मई धरहु समारि ।
रतनावलि जनु का समय काम परहि मझधारि ॥८२॥
  १ सम्हारि धारि ।८२।
  २ सम्हारि, पर धारि ।१०३।
आलस तजि रतनावली जथा समय करि काज ।
अबको करिबौ अबहि करि तबहि पुरै सुख साज ॥८३॥
  १ करिबो अबहि पुरै ।८३।
  २ अबको करिबौ अबहि ।१११।
रतनावलि सबसौं प्रथम जगि उठि करि गृह काज ।
सबनु सुवारहि सोइ तिय करि संभारि गृहसाज ॥८४॥
  १ सबसों सबनु, सुवहि, सम्हारि ।८४।
  २ सबसौं प्रिथम सबनु, सुवाइहि
     सम्हारि ॥११२॥
तू गृह श्री श्री धी रतन तू तिय शक्ति महान ।
तू अबला सबला बनै धरि पर सती बिधान ॥८५॥
  १ तू गृह श्री श्री धी रतन अबला ।८५।
रतन रमा सो सुव सदन बनि सारद धरि ध्यान ।
अगम रतन हित कालिका बनि कर धारि कृपान ॥८६॥
  १ बनि बान बनि ।८६।
सासु ससुर पति पद परसि रतनावलि उठि प्रात ।

सादर सेद सनेह मिल सुनि सादर तेहिं बात ॥८७॥
१ मात ।८७।
सासु ससुर पति पद रतन कुम तिय तीरथ धाम।
सेवहि तिय बम बस सहहि पुनि पति लोक ललाम ॥८८॥
१ सेवइ, सहै ।८८।
मात पिता सासुहु ससुर ननद नाथ कटु बैन।
भैषज सम रत्नावली पचत करत तन चैन ॥८९॥
१ सासू, सम ।८९।
२ सास, बेन ।९६।
जननि जनक भ्राता बही होइ जु मित्र भरतार।
पढ़इ नारि इन चारि सों रतन नारि हित सार ॥९०॥
१ बड़ो पढ़इ।९०।
२ भ्रिता होरी पढ़े चारिसो ॥२५॥
पुत्रक जनक जामात सव ससुर दिवर भउ भ्रात।
इनहूं की एकांत बहु कामिनि सुनि (मनि) बात ॥९१॥
१ भव इनहूँ एकान्त बहु, कामिनि
सुनि मनि बात ।९१।
२ भव मिरात ऐकांत बिन बात ।४१।
रतनावलि पति छाँडि इक जेते नर जग माँहि।
पिता भ्रात सुत सम लखहु बीरथ सम सपु माँहि ॥९२॥
१ छांडि माहि माहि ।९२।
२ छाड़ि माँह, भ्रिरात सपी माह ।७२।
सासु जिठानिहिं जननि सम ननदहिं भगिनि समाम।
रतनावलि निज सुत सरिस देवर करहु प्रमान ॥९३॥
१ सासु जिठानि जननि सम ।९३।
२ जिठानीहि करी प्रिमान ।७३।
सौतिहिं सखि सपि सम ब्यवहरहु रतन भेद करि दूरि।
सासु तनय निज तनय गनि मदहु सुजस सुप पूरि ॥९४॥
१ सौतिहिं सखि सम ब्यवहरो सही ।९४।
गुरु सति बांभन भूत्य जन अथा जोग गुनि वित्त।
रतन इनहिं मादर सदा बरतहु बिनरहु बित्त ॥९५॥
१ गुरु बांभन बित्त इनहिं बरतहु बित्त ।९५।
पति पितु जननी बंधु हितु कुटुम परोसि बिचारि।
जथा जोग मादर करहिं सो कुलवंती नारि ॥९६॥
१ बन्धु, करै ।९६।
२ करै ।९२।
वरि मुराइ रतनावली निज बिय पाट मुपान।

जथा समय जिम वे करहु करमचारि समभाल ॥९७॥

१ × ।९७।

तन मन धन भोजन बसन भोजन भवन पुनीत ॥
जो रापति रतनावली तेहि पावत सुर भीत ॥९८॥

१ × ।९८।

२ जे, तिहि ।७०।

जन जोरति मित ब्यय करति भर की बसतु सुधारि।
सुघ करम आचार कुल पतिरत रतन सुनारि ॥९९॥

१ × ।९९।

२ बसतु संभारि, सुघ ।७१।

जे न साम अनुसार जन मित ब्यय करहिं बिचारि।
ते पाछे पछितात अति रतन रंकता धारि ॥१००॥

१ पाछें ।१००।

तन मन पति सेवा निरत कुमसे पति सचि जोय।
इक पति कहं पुरुष गनै सती सिरोमनि सोय ॥१०१॥

१ तनमन कुमसे कहुपुरष सि(रो)मनि ।१०१।

२ जोइ पुरष गिनै सोइ ।६१।

बारी पितु आधीन रहि जौबन पति आधीन।
बिधु पति सुत आधीन रहि पतित होति स्वाधीन ॥१०२॥

१ बारी ।१०२।

१ बारी, जोबन,,सुधाधीन ।३७।

पितु पति सुत कुल पृथक रहि पाव न तिय कल्यान।
रतनावलि पतिता बनति हरति दोउ कुल मान ॥१०३॥

२ सुतसों असम रहि पावै न तिय कल्यान ।२२।

बिनपारिहु रतनावली सुनहि देति कराय।
मधु कुसंग जिमि नारि को पतिव्रत देत बिमाय ॥१०४॥

१ सुनिहि जिमि नारि को ।१०४।

२ रतनावली सुनहि बरारी, तिमि नारि
को पतिबिरत बिमारी।

धनहु न करि रतनावली कुलटा तिय को सग।
तनक सुधाकर संग सों पलटति रजनी रंग ॥१०५॥

१ धनहुं ।१ ५।

२ छिनत तिय तनक सुधा
पों पलो लपी पलटति ।२७।

भिक तिय सो परपति भजति कहि मिदरत बस लोग।
बिगरत दोऊ लोक तिहि पावति बिधवा जोग ॥१०६॥

१ बिगरत तेहि ।१०६।

सादर सेइ सनेह नित सुनि आदर देहि बात ॥८७॥
१ बात ।८७।

सासु ससुर पति पद रतन कुल तिय तीरथ धाम ।
सेवहिं तिय जप तप लहहिं पुनि पति लोक ललाम ॥८८॥
१ सेवइ, लहै ।८८।

मात पिता सासहु ससुर ननद नाथ लहु बैन ।
भेषज सम रतनावली पचत करत तन चैन ॥८९॥
१ सासु तनु ।८९।
२ सास, बैन ।६६।

जननि जनक भ्राता बली होइ जु निज भरतार ।
पढ़इ नारि इन नारि सों रतन नारि हित सार ॥९०॥
१ बड़ो पठइ ।९०।
२ भिता होही पढ़े नारिसो ॥९१॥

युवक जनक जामात सुत ससुर दिवर लघु भ्रात ।
इनहुं की एकांत बहु कामिनि सुनि (जनि) बात ॥९१॥
१ जन इनहुं एकान्त बहु, कामिनि
सुनि जनि बात ।९१।
२ जन जिराव ऐकांत जिन बात ।४१।

रतनावलि पति छांड़ि इक जेते नर जग माहिं ।
पिता भ्रात सुत सम लखहु दीरघ लघु सम माहिं ॥९२॥
१ छांड़ि माहि माहिं ।९२।
२ छांड़ि मांह, भिराव लघी भाइ ।७१।

सासु जिठानिहिं जननि सम ननदहिं भगिनि समान ।
रतनावलि निज सुत सरिस देवर करहु प्रमान ॥९३॥
१ सासु जिठानि जननि सम ।९३।
२ जिठानीहिं करी भिमान ।७४।

सौतिहिं सखि सखि सम ब्यवहरहु रतन भेद करि दूरि ।
तासु तनय निज तनय गनि लहहु सुजस सुख भूरि ॥९४॥
१ सौतिहिं सखि सम ब्यवहरो लहो ।९४।

गुरु सखि बांधव भृत्य जन जथा जोग गुनि वित्त ।
रतन इनहिं आदर सदा करतहु वितरहु वित्त ॥९५॥
१ गुरु बांधव वित्त इनहिं करतहु वित्त ।९५।

पति पितु जननी बंधु हितु कुटुम परोसि विचारि ।
जथा जोग आदर करहिं सो कुलवंती नारि ॥९६॥
१ बंधु करै ।९६।
२ करै ।९२।

परि पुत्राइ रतनावली निज पिय पाट पुरान ।

यथा समय जिन के करहु करमचारि सनमान ॥९७॥

१ × ।९७।

तन मन धन भावन बसन जोबन भवन पुनीत ॥
जो रापति रतनावली तेहि गावत सुर मीत ॥९८॥

१ × ।९८।

२ जे, तिहि ।७०।

धन जोरति मित व्यय करति घर की वस्तु सुधारि।
सुप करम आचार कुल पतिरत रतन सुनारि ॥९९॥

१ × ।९९।

२ वस्तु संभारि, सुप ।७१।

जे न लाभ अनुसार धन मित व्यय करहिं विचारि।
ते पाछे पछितात अति रतन रकता मारि ॥१००॥

१ पाछें ।१००।

तन मन पति सेवा निरत हुमसे पति सपि जोय।
रुक पति कहुं पुरुप मनै सती सिरोमनि सोय ॥१०१॥

१ तनमन हुमसै कहु पुरप सि(रो)मनि ।१०१।

२ जोइ पुरुष मिनै सोइ ।६१।

बारी पितु आधीन रहि जोवन पति आधीन।
बिनु पति सुत आधीन रहि पतित होति स्वाधीन ॥१०२॥

१ बारी ।१०२।

२ बारी जोवन, सुआधीन ।१७।

पितु पति सुत कुल पृथक रहि पाव न तिय कल्यान।
रतनावलि पतिता बनति हरति दोउ कुल मान ॥१०३॥

२ सुतसों भवन रहि, पावैं न तिय कलियान ।२२।

बिनमाहिहु रतनावली तुमहि देति बराय।
सदू कुसंग जिमि नारि को पतिव्रत देत डिगाय ॥१०४॥

१ तुलिहि तिमि नारि को ।१०४।

२ रतनावली तुमहि बराई तिमि नारि
को पतिव्रित डिगाही।

भनहु न करि रतनावली कुलटा तिय को सग।
तनक सुधाकर संग सों पसटति रजनी रंग ॥१०५॥

१ एनहुं ।१०५।

२ छिनत तिय तनक सुधा
सों सखो सपी पसटति ।२७।

विफ तिय सो परपति भजति कहि निरत अप लोग।
बिमरत दोऊ लोक तिहि पावति बिकवा जोग ॥१०६॥

१ बिमरत तेहि ।१०६।

२ सो तिय निदरति बिसरति दोस तिहि ।२८।

दीन हीन पति त्यागि निज करति सुपति परवीन ।
जो पति नारि कहाय पिक पावति पद मतुलीन ।।१०७।।
१ × ।१०७।
२ तियाजि कहाइ, पावति कुल मतुलीन ।२७।

एकहि जपमाकार तिमि एकहि तिय भरतार ।
बचन सुमन को एकु ही रतन एकु जग सार ।।१०८।।
१ × ।१०८।

जो व्यभिचार बिचार उर रतन बर तिय सोय ।
कोटि कलप बसि नरक पुनि जनमि कुकरी होय ।।१०९।।
१ × ।१ ९।
२ बरे तिय सोही कुकरी होही ।३०।

परम धरम संतति चरित कुल कीरति कुल रीति ।
सबहि बिनासत नारि इक करि पर नरसों प्रीति ।।११०।।
१ सबहि ।११०।
२ नरसो ।३१।

घी को घट है कामिनी पुरुष तपत अंगार ।
रतनावलि घी अगिनि को उचित न संग बिचार ।।१११।।
१ पुरुष अगिन को ।१११।
२ घट है पुरुष ।३४।

जो तिय संतति मोह बस करति अपर नर मोह ।
रतनावलि नरकहि परत ज(न) निदरत सब लोय ।।११२।।
१ बस नरकहि, जगनिदरत ।११२।
२ तिय बस मोहु, नरकै जग मोहु ।६ ।

जो तिय संतति काम उर पतिहि बरहि परवीन ।
ते न लहहि संतति रतन कोटि जनम लगि दीन ।।११३।।
१ × ।११३।

बार बधू सम बढ़ि बसइ नारि रतन बिचार ।
पीहर बीच सती उचित होइ न महिमापार ।।११४।।
१ बारबधू, बसै ।११४।

रतनावलि जिम जानि तिय पतिव्रत सकति महान ।
मृत पतिहू जीवित करयो सावित्री सतिवान ।।११५।।
१ × ।११५।
२ जिय तिय पति व्रित महातु, जिवत
पतिव्र सावितरी सतिवानु ।।२८।।

जाके कर में कर दयो मात पिता वा भ्रात ।
रतनावलि सह वेद बिधि सोइ कह्यो पति पात ।।११६।।

१ करम ।११६।
२ करमै मिटात ।२६।

पति सनमुख हंसमुख रहति कुसल सकल गृह काज ।
रतनावलि पति सुखद तिय करति सुगम सुख साज ॥११७॥

१ हंस ।११७।
२ घर काज तिय ।२३।

जो मन बानी देह सों पियहि नाहि दुख देति ।
रतनावलि सो साधवी धनि सुख जग जस लेति ॥११८॥

१ नाहि ।११८।
२ देहसों पियहिं, नाइ ।२४।

उद्यापन तीरथ बरत जोग जग्य जप दान ।
रतनावलि पति सेव बिन सबहिं अकारथ जान ॥११९॥

१ बिन सबहि ।११९।
२ उदिमापन बिरत जोग जगि,
बिन सबै ।३८।

रतनावलि न दुखाइये करि निज पति अपमान ।
अपमानित पति के भये अपमानित भगवान ॥१२०॥

१ भये ।१२ ।
२ दुखाइऐ, भऐ ।३९।

सात पैग जा संग भरे ता संग कीजै प्रीति ।
सब बिधि ताहि निबाहिये रतन बेद की रीति ॥१२१॥

१ सब ।१२१।
२ भर, निबाहऐ ।४०।

जाने निज तन मन दयो ताहि न दीजै पीठि ।
रतनावलि तापै रखहु सदा प्रेम की डीठि ॥१२२॥

१ प्रीति की डीठि ।१२२।
२ पीठी रखी ।४१।

अनाचार अनमाख रत निज पति रतन लखाहि ।
लहि औसर समुचित बचन रहसि बोधिये ताहि ॥१२३॥

१ लखाइ बोधिये ।१२३।

सत संमति उपबास जप तप मख जोग बिबेक ।
पति सेवा मन बच करम रतनावलि उर एक ॥१२४॥

१ × ।१२४।
२ उपबास जोगु, बिबेकु एती
रतनावली ऐकु ।४८।

पति के जीवत निधन हूं पति अनरुचत काम ।
करति न जो अस बस लहति पावति पति अभिराम ॥१२५॥

१ हूँ अनकथत ।१२५।
२ अनकथत ।२५।
रतनावलि पति सों अनय कह्यो न बरत उपास ।
पति सेवति तिय सकल सुख पावति सुरपुर वास ।।१२६।।
१ × ।१२६।
२ पतिसों तिय ।२६।
बिनु पति पति अपपति सुमिरि साक सूम फल पाइ ।
बिरमचर्ज व्रत धारि तिय जीवन रतन बनाइ ।।१२७।।
१ बिनु, बिरमचरज ।१२७।
२ बिनु, साग बिरमचरज विरत तिय ।४२।
जीवत पति सासन धरै सेवहि ताहि सप्रेम ।
परें सतीव्रत अनुसरहि पतिहित जप तप नेम ।।१२८।।
१ मर्मे अनुसरे ।१२८।
२ धरे, सब ताइ मरे, सतीव्रत अनुसरे ।२२।
धनि तिय सो रतनावली पति संग जाहें देह ।
जोसों पति जीवत जियें मरत मरें पति नेह ।।१२९।।
१ जिये ।१२९।
२ तिय जाहें जोसो जिए, मरे ।२३।
जन सुख जन सुख बंधु सुख सुत सुख सबहिं सराहि ।
पै रतनावलि सकल सुख पिय सुख पटतरि नाहि ।।१३ ।।
१ × ।१३०।
२ सबै सराहि, पै रतनावली
पिय पटतर नाहि ।६७।
मात पिता भ्रातादि सब पे परिमित दातार ।
रतनावलि दातार इक सरबस को भरतार ।।१३१।।
१ सब ।१३१।
२ परीमित ।१०४।
आपनु मम रतनावली पिय मम मई करि लीन ।
सती सिरोमनि होइ बनि बस आसन आसीन ।।१३२।।
१ × ।१३२।
२ आपन पिय मनमें ।६८।
जे तिय पति हित आचरहि रहि पति चित अनुकूल ।
सपहि न सपनेहु पर पुरुष ते तारहि दोउ कूल ।।१३३।।
१ सपनेहुँ पुरुष तारहि ।१३३।
२ तिय, आचरै रह पति चित अनुकूल सपै
सपनेउ पुरुष तारै, इन ।२०।
उदर पाक करपाक तिय रतनावलि दुख दोय ।

सीस सनेह समेत दी सुरभित सुबरन तोय ॥१३४॥

१ × ।१३४।

२ जिमि रतनावली रोही तो होही ।४१।

चतुर बरन कहं बिप्र गुरु अतिथि सबन गुरु जानि ।
रतनावलि जिमि नारि कहँ पति गुरु कह्यो प्रमानि ॥१३५॥

१ चतुरबरन को बिप्रगुरु
गुरु नारि को गुरु ।१३२।

२ बरन को, अतिथी गुरु जान
तिमि नारिका प्रिरमान ।६४।

तीरथ न्हान उपास व्रत सुर सेवा जप दान ।
स्वामि बिमुख रतनावली निसफल सकल प्रमान ॥१३६॥

१ × ।१३६।

२ प्रिरथ प्रिरमान ।६६।

देति मंत्र सुठि मीत सम सैइहिं मातु समान ।
सेवति पति दासी सरिस रतन सु तिय बनि जान ॥१३७॥

१ × ।१३७।

रतन देह पति को भयो तोहि कहा अधिकार ।
पति समुहैं पालै रतन रहि पति चित अनुसार ॥१३८॥

१ पति को भयो ।१३८।

सुर भूसुर ईसुर रतन साखी सजन समाज ।
पतिहि बचन दीने सुमिरि पालि धारि उर लाज ॥१३९॥

१ × ।१३९।

बचन हेत हरिचंद नृप भए स्वपच के दास ।
बचन हेत दसरथ दयो रतन सुतहि बनवास ॥१४०॥

१ भये सुपच बनवास ।१४०।

बचन हेत भीषम कर्‌यो गुरुसों समर महान ।
बचन हेत नृप बलि दयो पदवहि सरबस दान ॥१४१॥

१ कर्‌यो युद्ध ।१४१।

बचन आपनो सत्य करि रतन न अनिरत भाषि ।
अनृत भाषिबो पाप पुनि उठति लोक सों साखि ॥१४२॥

१ भाषि, भाखिबो ॥१४२॥

कन्या दान बिवाह अरु बचन दान ये तीन ।
रतनावलि इक बार ही करत साधु परवीन ॥१४३॥

१ मत ।१४३।

२ मत ।६५।

सुजन बचन सरिता समय रतन बान अरु प्रान ।
मति गहि ये नहिं बाहुरत सुपक पुटी परिमान ॥१४४॥

१ बाम बध आतुरत ।१४४।

पतिहि कुरीति न भवि रतन करि दुरबचन उचारि ।
पतिसों रूठि न रोस करि तिय निज धरम सम्हारि ।।१४५।।

१ रूठि रोष सम्हारि ।१४५।

नर प्रभाव बिनु नारि तिमि जिमि स्वर बिनु हल होत ।
कर्णधार बिनु उदधि जिमि रतनावलि (गति) पोत ।।१४६।।

१ बिनु, बिनु, रतनावलि गति पोत ।१४६।

बिस अपजस पीअत बस रतनावली निहारि ।
जियत मरें अहि मृत जियें बिस तजि अमियहि धारि ।।१४७।।

१ बिष पीअत बिस ।१४७।

२ बिस पीअत नीहारि, जियत
जियत बिस अमिय ।।८१।।

सुजस जासु जीवों जगत सोऊ जीवत सोइ ।
मारेहु मरत न रतन अजस सहज मृत होइ ।।१४८ ।।

१ छोय होय ।१४८।

दुष्ट नारि जिमि मीत सठ उत्तर बसो बास ।
रतनावलि अहिगात घर अंत काल जनु पास ।।१४९।।

१ तिमि बसो (अहि) बास ।१४९।

२ दुष्ट नारि तिमि उत्तर देनो ।६३।

रतनावलि धरमहि रचत ताहि रचावत धर्म ।
धरमहि पालति सो पठति जेहि धरम को मर्म ।।१५०।।

१ धरमहि घरमहि ।१५०।

२ रतनावलि धरमहि रचत धरम,
धरमहि धरम ।८ ।

नैन बैन रसना रतन करन नासिका सोच ।
एकहि पावत प्रबल हूँ स्वबस बिभावत पोच ।।१५१।।

१ गहे बिभावत पोच ।१५१।

रतन करहु उपकार पर चहहु न प्रति उपकार ।
लहहि न बदलो साधु जन बदलो लघु व्यौहार ।।१५२।।

१ बदलो बदलो ।१५२।

परहित जीवन जासु जग रतन सफल है सोइ ।
निज हित कूकर काक कपि जीयहि का फल होइ ।।१५३।।

१ × ।१५३।

रतनावलि छनहूँ जियें परि पर हित पन त्याग ।
सोई जन जीवत मनहु पनि जीवत मृत मान ।।१५४।।

१ छनहूँ आन मनहूँ ।१५४।

२ छिनहूँ छोरी मत ।७१।

जे निज अ पर भेद इमि मधु जन करत विचार ।
चरित उदारन को रतन सकल जगत परिवार ॥१५५॥
अस करनी करि तू रतन सुजन सराहँ तोइ ।
सुभ जीवन अपि मुद लहहिं मरें करें दुख रोइ ॥१५६॥
१ सुभ जीवन लहैं मरे करैं सुधि रोइ ।१५६।
छोड़ सनेही जे रतन करहिं बिपति में नेह ।
सुख संपति लखि जन बहुत बनहिं नेह के गेह ॥१५७॥
१ बनें ।१५७।
बिपति परें जे जन रतन निबहैं प्रीति पुरानि ।
हितू मीत अतिमान्य ते पै न बहुत जिम जानि ॥१५८॥
१ निबहैं ।१५८।
रतनावलि मुख बचन हूं इक सुख (दुख) को मूल ।
सुख सरसावत बचन मधु कटु उपजावत सूल ॥१५९॥
१ हूं इक सुख दुख को मूल ।१५९।
२ बचन ही सुखदुख ।१४।
मधुर बचन जनि देत कोउ बोली मधुरे बैन ।
मधु भोजन हित देत मधु बैन जनम भरि चैन ॥१६०॥
१ बोलो ।१६०।
२ बोली ।१५।
रतनावलि कांटो लग्यो बैदनु दयो निकारि ।
बचन लग्यो निकस्यो न कहुं उन डारो हिय फारि ॥१६१॥
१ निकस्यो कहुँ ।१६१।
२ हिय ।१६।
रतन भाव भरि भूरि जिमि कवि पद भरत समास ।
तिमि बचवहु लघु पद करहिं अरथ गंभीर बिकास ॥१६२॥
परहित जारि धारत न सुभ गुपत रखहिं वे दान ।
पर उपकृति पमिरत रतन करत न निज गुन गान ॥१६३॥
मनहिं डाह दुरजन गुनी भलो न ताकों प्रीति ।
बिसधर मनिधर हू रतन डसत करत जिमि प्रीति ॥१६४॥
१ भलें तासों हित ।१६४।
मन इकलो रहिबो रतन भलो न पर सहवास ।
जिमि तरु दीमक संग लहै आपन रूप बिनास ॥१६५॥
१ तरु रूप ।१६५।
रतन बांझ रहिबो भलो भले न सौउ कपूत ।
बांझ रहै तिय एक दुख पाइ कपूत अपूत ॥१६६॥
१ बांझ भलो बांझ रहै ।१६६।
कुल के एक सपूत सों सकल सपूती नारि ।

१ जाम मत बाहुरत ।१४४।

पतिहि कुदीठि न लखि रतन कहि दुरबचन उचारि ।
पतिसों रूठि न रोस करि तिय निज धरम सँभारि ॥१४५॥

१ रूठि रोष सम्हारि ।१४५।

नर अधार बिनु नारि तिमि जिमि स्वर बिनु हम होत ।
करनधार बिनु उदधि जिमि रतनावलि (गति) पोत ॥१४६॥

१ बिनु, बिनु, रतनावलि गति पोत ।१४६।

बिस अपजस पीऊस जस रतनावली निहारि ।
जियत मरें नहि मृत जियें बिस तजि अमिरत धारि ॥१४७॥

१ बिष पीऊष बिष ।१४७।
२ बिष पीऊष नीहारि, जियत
मृत बिष अमिरत ॥८१॥

सुजस जासु जीवी जगत तीनों जीवत सोइ ।
मारेहु मरत न रतन अजस लहत मृत होइ ॥१४८॥

१ सोय होय ।१४८।

दुष्ट नारि जिमि मीत सठ ऊसर धनो बास ।
रतनावलि अहिवास पर घर काल बनु पास ॥१४९॥

१ तिमि धनो (अहि) बास ।१४९।
२ दुष्ट नारि तिमि उसर बेनो ।६६।

रतनावलि घरमहि रपत ताहि रपावत धर्म ।
घरमहि पावति सो पवति जेहि धरम को मर्म ॥१५०॥

१ घरमहि घरमहि ।१२ ।
२ रतनावलि घरमहि रपत धरम
घरमहि मरम ।८ ।

नैन नैन रसना रतन करन नासिका सोच ।
एकहि मारत पवन सों सबस निपातत पाँच ॥१५१॥

१ सौ निपातत पाँच ।१५१।

रतन करहु उपकार पर चहहु न प्रति उपकार ।
लहहि न बदलो साधु जन बदलो लघु ब्यौहार ॥१५२॥

१ बदलो बदलो ।१५२।

परहित जीवन जासु जग रतन सफल है सोइ ।
निज हित कूकर काक कपि जीवहि का फल होइ ॥१५३॥

१ × ।१५३।

रतनावलि धनहुँ जिये परि पर हित जस ध्यान ।
सोई जन जीवत जनहु मनि जीवत मृत मान ॥१५४॥

१ धनहुँ मान मनहुँ ।१५४।
२ दिनहुँ थोरी मत ।७९।

जे निज जे पर भेद इमि मधु मन करत बिचार ।
चरित उदारन को रतन सकल जगत परिवार ॥१५५॥

जस करनी करि तू रतन सुजन सराहैं तोह ।
सुख जीवन मपि मुद लहहिं मरें करें दुख रोई ॥१५६॥
 १ सुख जीवन लहैं, मरें करें सुधि रोइ ।१५६।

सोइ सनेही जे रतन करहिं बिपति मैं नेह ।
सुख संपति मपि जन बहुत बनहिं मेह के मेह ॥१५७॥
 १ बनें ।१५७।

बिपति परें जे जन रतन निबहैं प्रीति पुरानि ।
हितू मीत सतिभाय ते पै न बहुत तिय जानि ॥१५८॥
 १ निबहैं ।१५८।

रत्नावलि मुख बचन हूं इक सुख (दुख) को मूल ।
सुख सरसावत बचन मधु कटु उपजावत सूल ॥१५९॥
 १ है इक सुख दुख को मूल ।१५९।
 २ बचन ही सुखदुख ।१४।

मधुर बचन बनि बैठ कोउ बोली मधुरे बैन ।
मधु मोजन छिन देत सु बैन जनम भरि चैन ॥१६०॥
 १ बोलो ।१६०।
 २ बोली ।१५।

रतनावलि काँटो लग्यो बैदनु दयो निकारि ।
बचन लग्यो निकस्यो न कहुं उन डारो हिय फारि ॥१६१॥
 १ निकस्यो कहुं ।१६१।
 २. हिय ।१६।

रतन भाव भरि भूरि जिमि कवि पद भरत समास ।
तिमि उचरहु लघु पद करहिं अरथ गंभीर बिकास ॥१६२॥

परहित करि परगत न बुध गुपत रखहिं तें काम ।
पर उपकृति अमिरत रतन कहत न निज गुन गान ॥१६३॥

भलहिं होइ दुरजन गुनी भली न तासों प्रीति ।
बिषधर मनिधर हू रतन डसत करत जिमि भीति ॥१६४॥
 १ भले तासों प्रिय ।१६४।

मन दहलो रहिबो रतन भलो न पन गृहवास ।
जिमि तरु दीमक घुन गहें पावत रूप बिनास ॥१६५॥
 १ तरु रूप ।१६५।

रतन बाँझ रहिबो भलो भले न सौउ कपूत ।
बाँझ रहे तिय एक दुख पाइ कपूत अपूत ॥१६६॥
 १ बाँझ, भलो बाँझ रहे ।१६६।

कुल के एक सपूत सों सकल सपूती नारि ।

१ बाल भव बाहुरत ।१४४।

पतिहि कुरीति न सकि रतन जनि दुरजन उचारि ।
पतिसों रूठि न रोस करि तिय निज धरम संभारि ॥१४५॥

१ रूठि रोष सम्हारि ।१४५।

नर अधार बिनु नारि तिमि जिमि स्वर बिनु हत होत ।
करनधार बिनु उदधि जिमि रतनावलि (नहि) पोत ॥१४६॥

१ बिनु, बिनु, रतनावलि गति पोत ।१४६।

बिस अपजस पीऊस जस रतनावली निहारि ।
बिषत मरें सहि मृत जियें बिस तजि अमिरत धारि ॥१४७॥

१ बिष पीऊष बिष ।१४७।
२ बिष पीऊष नीहारि, बिषत,
म्रित बिष अम्रित ॥८१॥

सुजस जासु जीवौं जगत तीसों जीवत सोइ ।
मारेहु मरत न रतन अजस लहत मृत होइ ॥१४८॥

१ सोय होय ।१४८।

दुष्ट नारि जिमि मीत सठ ऊतर दनो दास ।
रतनावलि अहिबास घर मत काल जनु पास ॥१४९॥

१ तिमि दनो (अहि) बास ।१४९।
२ दुसट नारि तिमि उतर देनो ।६६।

रतनावलि धरमहि रपत ताहि रपावत धर्म ।
धरमहि पालति सो सती जेहि धरम को मर्म ॥१५०॥

१ धरमहि धरमहि ।१५०।
२ रतनावलि धरमहि रपत धरम
धरमहि धरम ।८०।

मैन नैन रसना रतन करम नासिका सोच ।
एकहि मारत पबस हूँ सबल मिषावत पोच ॥१५१॥

१ धे मिषावत पोच ।१५१।

रतन कपहु उपकार पर करहु न प्रति उपकार ।
लहहि न बदलो साधु जन बदलो लघु ब्यौहार ॥१५२॥

१ बदलो बदलो ।१५२।

परहित जीवन जासु जग रतन सफल है सोइ ।
निज हित कूकर काक कपि जीवहि का फल होइ ॥१५३॥

१ × ।१५३।

रतनावलि धनहुँ जियें करि पर हित जस ध्यान ।
सोई जन जीवत गनहु धनि जीवत मृत मान ॥१५४॥

१ दमहुँ मान मनहुँ ।१५४।
२ छिनहूँ सारी मत ।७६।

जे निज जे पर भेद इमि लघु जन करत बिचार ।
चरित उदारन को रतन सकल जगत परिवार ॥१५५॥
अस करनी करि तू रतन सुजन सराहें तोइ ।
तुव जीवन सपि सुख लहहिं मरें करें दुख रोइ ॥१५६॥
 १ तुम जीवन लहै मरें करै सुधि रोइ ।१५६।
सोइ सनेही जे रतन करहिं बिपति मैं नेह ।
सुख संपति मधि जन बहुत बनहिं नेह के गेह ॥१५७॥
 १ बनें ।१५७।
बिपति परे जे जन रतन निबहें प्रीति पुरानि ।
हितू मीत सतिभाय ते पै न बहुत जिय जानि ॥१५८॥
 १ निबहैं ।१५८।
रतनावलि मुख बचन हूं इक सुख (दुख) को मूल ।
सुख सरसावत बचन मधु कटु उपजावत सूल ॥१५९॥
 १ है इक सुख दुख को मूल ।१५९।
 २ बचन ही सुखदुख ।१४।
मधुर बचन कहि देत कोउ बोली मधुरे बैन ।
मधु भोजन छिन देत सु बैन जनम भरि चैन ॥१६०॥
 १ बोलो ।१६०।
 २ बोली ।१५।
रतनावलि काँटो लग्यो बैदनु दयो निकारि ।
बचन लग्यो निकस्यो न कहुं उन डारो हिय फारि ॥१६१॥
 १ निकस्यो कहुं ।१६१।
 २ हिय ।३६।
रतन भाव भरि भूरि जिमि कवि पद भरत समास ।
तिमि उदारहु लघु पद करहिं अरथ गंभीर बिकास ॥१६२॥
परहित करि बरनत न बुध गुपत रखहिं वे बान ।
पर उपकृति सुमिरत रतन करत न निज गुन गान ॥१६३॥
भलहिं होइ दुरजन गुनी भली न तासों प्रीति ।
बिसधर मनिधर हू रतन डसत करत जिमि भीति ॥१६४॥
 १ भलें तासो बिष ।१६४।
भल इकलो रहिबो रतन भलो न खल सहवास ।
जिमि तरु दीमक संग लहै पावन रूप बिनास ॥१६५॥
 १ तरु रूप ।१६५।
रतन बाँझ रहिबो भलो भले न सौ कपूत ।
बाँझ रहै तिय एक दुख पाइ कपूत अकूत ॥१६६॥
 १ बाँझ भलो बाँझ रहै ।१६६।
कुल के एक सपूत सों सकल सपूती नारि ।

रतन एकुही चन्द जिमि करत जगत उजियारि ॥१६७॥

१ सपूती एकही ।१६७।

नासहि नासहु पस रतन जो न औगुनी होइ ।
बिन दिन गुन गुरुता गई साँची सामम होइ ॥१६८॥

१ गुरुता ।१६८।

नासहि सीप सिपाइ पस मपि लपि लोग सिहाय ।
पाखिप दें हरखें रतन नेह करें मुसकाये ॥१६९॥

१ सिहाय मुसकाय ।१६९।

सस्त्र सास्त्र बीना तुरग बचन लुगाई लोग ।
पुरुष बिसेसहि पाइ के बनत सुजोग अजोग ॥१७०॥

१ पुरुष बिसेषहि ।१७०।

२ लुगाई पुरुष बिसेषहि ।९२।

जारजात भूरप दरिद सुत बिना धन पाइ ।
गुन समान मानत गर्वहि रतनावलि बौराइ ॥१७१॥

१ पाय बौराय ।१७१।

२ गर्वहि ।९३।

फूलि फलहि इतराइं जस जस बिरवहि उतराइं ।
साधु फूलि फलि नइ रहहि सबसों नइ बतराइ ॥१७२॥

१ फलहि इतराइ बिरवहि
उतराय रहें सबसों बतराय ।१७२।

२ फलें रहें सबसों ।९४।

एकु एकु आँपरु लिखे पोथी पूरति होइ ।
नेकु करम तिमि नित करहु रतनावलि यति होइ ॥१७३॥

१ आँपरु नेकु करौ ।१७३।

२ आँपर नेकु करें ।९५।

बाम धोम मधु मास पै रतन सुपम पति लीन ।
देत न भोगत तासु धन होत नास मह लीन ॥१७४॥

१ मद नास में लीन ।१७४।

२ मद नास में ।८१।

तरुनाई धन देह बल बहु दोसनु आगार ।
बिनु बिबेक रतनावली पसु सम करत बिचार ॥१७५॥

१ तरुनाई बल दोपनु ।१७५।

२ तरुनाई बस दोपनु, बिन ॥८४॥

पाँच तुरग तन रथ जुरे चपल कुपथ ल जात ।
रतनावलि मन सारथिहि रोकि रुकें उतपात ॥१७६॥

१ रुकें ।१७६।

२ रुकें ।८२।

रतनावलि उपभोग सों होत विषम महँ सांत ।
ज्यों ज्यों हवि होमें अनल त्यों त्यों बढ़त नितांत ।।१७७।।
१ विषय नहिं सान्त नितान्त ।१७७।
२ उपभोग को विसे होमें ।६६।
रतन न पर दूषन लखहि आपनु दोष निवारि ।
तोहि लखहिं निरदोष वे दें निज दोष बिसारि ।।१७८।।
१ दोष लखें निरदोष दोष ।१७८।
२ आपन दोष, लखें निरदोष दोष ।८६।
करहु बुरी जनि काहु को निदरहु काहु न कोइ ।
को जानें रतनावली आपनि का गति होइ ।।१७९।।
१ कोय जाने होय ।१७९।
२ काहु कों कोय होय ।८७।
रतन जनक जल जनम लखन बहु जग जन गन होइ ।
पै जननी जन सों चन्दन होइ बिरल जन कोइ ।।१८०।।
१ × ।१८०।
तन धन जन बल रूप को गरब करौ जनि कोइ ।
को जाने बिधि गति रतन छन महँ कछु कछु होइ ।।१८१।।
१ रूप कोय छनमें होय ।१८१।
उदय भाग रवि मीत बहु छाया बड़ी लखाति ।
अस्त भएँ निज मीत कहँ तनु छाया तजि जाति ।।१८२।।
१ बहु बड़ी भय कहँ ।१८२।
२ बहु बडी भयें ।८२।
सवरन स्वर समु ह मिलत नीरव रूप लखात ।
रतनावलि असवरन है मिलि निज रूप नसात ।।१८३।।
१ रूप रूप रूप ।१८३।
श्रम सों बाढ़त देह बल सुप सम्पति जन कोस ।
बिनु श्रम बाढ़त रोग तन रतन दरिद दुख दोस ।।१८४।।
१ श्रम कोय दोय ।१८४।
जो जाको करतब सहज रतन करि सकै सोइ ।
ता का उबारनु ओट ही हा हा पससों होइ ।।१८५।।
१ सोय उबरत ओठसों होय ।१८५।
ऊपर सों हरि हेत मन गांठि कपट उर माहिं ।
बेर सरिस रतनावली बहु नरनारि लखाहिं ।।१८६।।
१ बेर ।१८६।
२ उपर सो, माई बेर, लखाई ।।७६।।
उर सनेह कोमल अमल ऊपर लगें कठोर ।
नरियर सम रतनावली दीसहि सज्जन थोर ।।१८७।।

२ मरिमर, दीपे, धावन ।७७।

मीतर बाहिर एकसे हितकर मधुर सुहायं ।
रतना(बसि) अस बाप से बन कहुँ कोउ सपायं ॥१८८॥

१ सुहायं रतबसि अस बाप से
कहुँ सपायं ।१८८।

२ बाहीर ऐकसे सुहाई
रतनावसि सपाई ।७८।

यौवन प्रमुता भूरि धन रतनावसि अविचार ।
एकु एकु अनरथ करैं किमु समुदित बहि चार ॥१८९॥

२ यौवन रतनावली ।१० ।

मन बानी अरु करम महुँ सज्जन एक सपायं ।
रतन ओह विपरीत अति दुरजन सोह कहायं ॥१९०॥

१ मन करम में सपायं कहायं ।१९०।

२ मनु करम में सपाई ओही कहाई ।१०९।

जे उपकारी को रतन करत मूढ़ अपकार ॥
ते जग अपजस सहत पुनि मरें नरक अधिकार ॥१९१॥

रतनावसि मह बसि सदा मह सुभाइ बतराइ ।
नारि प्रससा मह रहै नित दूवन अधिकाइ ॥१९२॥

१ प्रसंसा ।१९२।

२ रहै ।११ ।

धन रिपु बस परि कै रपहिं सतिपन सुकुमति भूरि ।
पतिबरता तिन तियनु की रतनावसि पग धूरि ॥१९३॥

२ पतिव्रता ।१०७।

रतनावसि करतब समुझि सेइ पतिहि निपकाम ।
जप तीरथ व्रत तप सकस सहहि बैठि घर बाम ॥१९४॥

१ सहै ।११४।

पति बरतत जेहि बसु नित तेहि बरि रतन संभारि ।
समय समय नित दै नियहि भासत मवहि बिसारि ॥१९५॥

१ पतिबरतन सम्हारि ।११५।

बिरप सतिनु छिन बैठि तिय तेहि अनुमी बरि ध्यान ।
तेहि अनुसारहि बरति तेहि पावि रतन सनमान ॥१९६॥

पुन्य करम हित नित पतिहि रहि करत उछाह ।
ताहि पुन्य निज गुनि रतन पुन्य करत भी नाह ॥१९७॥

१ करत ।११७।

गुन निम मित नित हरि भगत प्र तिय सेवति ताहि ।
तासु भजन तिय गुन भजन रतन न बनहि भ्रमाहि ॥१९८॥

१ सेवित ताइ । तासु भजन भ्रमाइ ।[illegible]

सती धरम धरि धारि नित हरि सों पति श्रुभभाव।
जनम जनम तुव तिय रतन अचल रहहि अहिवात ॥१९९॥

१ धारि रहै अहिवात ।१९९।

जो तिय मन बच काय सों पिय सेवति हुलसाति।
देहि चरननु की धूरि धरि रतनावली सिहाति ॥२००॥

जासु चरित नर अनुसरहि सतवंती हरषाइ।
ता इक नारी रतन पै रतनावलि बलि जाइ ॥२०१॥

१ अनुसरै ।२०१।

२ अनुसरै ।२११।

इति श्री रतनावलिकृत दोहा रत्नावली संपूर्ण ॥ संवत् १८२४॥ भाद्रपद मासे कृष्णपक्षे १० अमावस्याम् सोमवासरे ॥ लिखितम् गोपालदासेन मुंशी माधौदास लिखितम् ॥ शुभम् भवतु ॥

राम ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥ राम ॥

मंगलं भगवान् विष्णुर्मंगलं गरुडध्वजं
मंगलं पुंडरीकाक्ष मंगलायतनो हरि. ॥१॥ शुभम्[1]

१ इति श्री सावत्री रतनावलि की दोहा रतनावली संपूरनम् शुभम् संवत् १८२९ भादौ सुदि १ पत्र लिपितम् गंगाधर ब्रह्मण सोप मारग समीपे वाराह क्षेत्रे श्रीरस्तु शुभमस्तु।

२ इतिश्री रतनावली लघुदोहा संग्रह सपूरनम् ॥ लिपिर्दं रघुनाथ पंडीत सोरोंजी मिति माह सुदी तेरसि १३ सोमवार सवतु १८७८ में ॥ गंगा ॥ हरिशुभम् ॥

जन-श्रुति से संकलित रत्नावली के पद

प्रियतम एक बार गृह आयो।
अनुचित उचित कह्यों हों कबहू ताहि समुझि समझायो ।१।
तब वियोग अकुलात हीय अति धीरज भार बंधायो।
सह्यो न जात पुनहु दुख एतो दरस दया दरसायो ।२।
दिन द्वितीय भाव भव बीते नाहि मोरि सधि लीनी।
सुजन पाछिली प्रीति रावरी सहहु परी किमि भीनी ।३।
कठि गये सो बैन सुमुख पन कहत सुनत सकुचाऊँ
का अब करों कहां अब जाऊँ कितहु ठौर न पाऊँ ।४।
अमित प्रीति परतीति भोग तब पाइ रही हों माई।
सपनेहुँ न कबहुँ हों जानी दसा मोरि अस होई ।५।
भूलि जाउँ हों सबै परेखो बीती ताहि बिसारौं।
नाम सराहौं रतन आपनो जो तब चरन निहारौं ।६।

× × ×

काहे नाथ मोहि बिसराई।
इक पति ही परमोच्छ मोर पति बेद पुराननि गाई[1] ।१।

---

१ (बहू में) धर्मिक जन किन्तु दुरी माधौदास बालक रक्षुना नाथिन हार बतावै।

पतिहि सखा गुरु बंधु देव धन सरबस बेद बखानें।
हौं अजान मैं कहा बनाऊँ जानत आपु सुजानें।२।
नीर छीन सर दीन मीन जिमि देह दशा बिनु देही।
बिनु पिय तिय तिमि जरी जाय बिनु, नेह जथा बिनु नेही।३।
जानि कर्यो अपराध न कबहूँ नाथ आप हू जानें।
भयो तुमसों होय न जानों नारिक भाय बखानें।४।
मांगौं छमा चरन परि परि हौं पदरज निज सिर नाऊँ।
कहा पाऊँ पधारें निजगृह, रूठे नाथ मनाऊँ।५।
जननी जनक तजी जीवन धन अब इक आस तिहारी।
छोड़ त्यागि छिन भये आपु पिय मेरे हृदय बिहारी।६।
कोमल हृदय आपु करुनामय किमि निज नारि बिसारी।
करि करि सुरति बिसूरति निसिदिन दासी रतन तिहारी।७।

× × ×

तुम बिनु सब जग मोहि अंधेरो
निसि दिन जगत चार दिस ऊगत घर घर दीप उजेरो।१।
गुरुजन परिजन सदनहु देखे नगर ग्राम मझियाये
बूझि बूझि हौं पथिकन हारी पिय तुम कहूँ न पाये।२।
आवत मति सनेह उर लाये जात न पग परसाये
आपनि कही न बूझी मोसों सोवति छोड़ि सिधाये।३।
हाट बाट घर बाहिर देखे नगर ग्राम मझियाये
ढूँढि ढूँढि हौं सब बिधि हारी पिय तुम कहूँ न पाये।४।
कबहुँ न मो बिनु पर्यौ चैन पल सो मो सुधि बिसराई
का अपराध भयो गुरु मोसों तासों उर रिसि छाई।५।
आहट लेति बाट नित जोहति आवन आस तिहारी
रत्नावलि मुख चंद दिखावहु आय होय उजियारी।६।

× × ×

प्रियतम नाथ बेगि घर आवो।
तव वियोग दावानल तापित मम उर आय सिरावो।१।
तनक होन दुख कबहुँ मोर तन तुम अति होत दुखारी।
करत बिबिध उपचार हरत दुख रहे सदा सहचारी।२।
कैतिक रैनि दिवस अब बीते हौं दुख पावति भारी।
अब कस निठुर भए निरमोही तुम निज जानि बिसारी।३।
छमहु कोप अघात नाथ सब मोहि आपनी जानी।
तजहु रोष उर करहु दया करि निज पद दासी मानी।४।
जीवन धन तुम सरबस मेरे अब इक आस तिहारी।
मो रतनावलि उभय लोक गति पति तुम ही दुख हारी।५।

रत्नावली चरित

वन्दे गणपति मीशम् ।।
सकल देव पूजित महि हारं मनुज तनुं करि वदनम् ।।
मंगल मूलं गिरिजा तनुज महोदरं सुख सदनम् ।।वन्दे०।।
विविधभूत गण सेवित पाद चाष्ट सिद्धि दातारम् ।।
ऋद्धि बुद्धि नव निधि प्रदायकं विपुल गुण गणागारम् ।।वन्दे०।।
त्रि नयन एक दन्त गति दिव्यं विकट विघ्न विनाशम् ।।
परशु कमल वर मातु वाहनं सिन्दूराभ विकाशम् ।।वन्दे०।।
ओंकाराक्षर रूप सुगमं भक्त भद्र कर्त्तारम् ।।
सत्कपित्थ जम्बूफल मोदक भक्षण मेक मुदारम् ।।वन्दे०।।
मौलि मिलित बद्धांजलि मानुषम् गायन्वस्तव पदम् ।।
भवि पावे मुरलीधर विप्रो मति वैभव मनघम् ।।वन्दे०।।
वन्दे गणपति मीशम् ।।

श्री गणपतये नमः ।। सरस्वत्यै नमः ।।

हरिहर गुरु भक्तः कर्म धर्मानुरक्तः
त्रि भुवन गत कीर्ति कान्ति कन्दर्प मूर्ति ।।
रघुवर गुण गाथा गान पीनो महात्मा
जयति सुकुमारमाराम मनु कवीन्द्रः ।।१।।
रत्नावली वदन चन्द्र चकोर रूप श्री रामचन्द्र पद पंकज चंचरीक
श्री सुवन वंश तिलक स्तुलसी द्विजाग्र्यो वन्द्यो गुणो जयति धीकर तीर्थ तीर्थ
।।२।।

अथ रत्नावली चरित लिख्यते ।।

बन्दौं विकट वराह ईस । बन्दौं सनकादिक मुनीस ।।
सती भारतिहि सीस नाइ । सावित्री सिय सुमन नाइ ।।
अरुन्धती दमयन्ति नारि । अनुसूया पुनि गार्ग्यादि ।।
सती भई जे जगत धाम । तिनहिं सबनु कहँ करि प्रनाम ।।
रत्नावलि की लिखहुँ गाथ । तिहि चरनन महँ नाइ माथ ।।
जासु चरित है अति गंभीर । तदपि लिखहुँ कछु धारि धीर ।।
विदित वेद अघ हरनहारि । पतितनु पावन करन हारि ।।
सुर सरिता के तटन भूप । धन्य धरनि मायस्व रूप ।।
निज सुभाव बस जगत नाह । हरि प्रगट्यो जहँ धरु वराह ।।१।।
ताको पै वाराह खेतु । भई भूमि भव तरन सेतु ।।
तीरथ सूकर खेत नाम । भयो विदित जग मुकति धाम ।।

बहु तीरथ जहँ रहे राजि। सेवत जप तप जात भाजि ॥
पाई मुनि जन जहाँ शान्ति। मेटी निज मन भीति भ्रान्ति ॥
जाहि तीर्थ के जगत माहि। सब तीर्थनु क्रम है जहाँहि ॥
सुरसरि पुनि बाराह खेत। मधुर रूप पुनि क्रमहु देत ॥
जहँ बराह प्रभु सदन एक। सोहत सूर सदनहुँ अनेक ॥
जनमनु हरे बहुत खोरि। पुनि प्रभु पुनि भगवन भये बोरि ॥
जहँ सुरसरि की बहति बारि। जनु बराह पद रहि पखार ॥
विपुल विप्र जहँ करत बास। रहे वेद धरमहिं प्रकास ॥१८॥
बाँचत नित चित सों पुरान। प्रभु की कीरति करत गान ॥
जहँ जोगी जन मठ समाधि। जनी बरस सों हरति व्याधि ॥
सोरंकी भूप सोम बंस। भयो जहाँ श्रुति धरम मत्त ॥
तासु दुर्ग अब सेस नाहि। कछुक चिन्ह ताके लखाहि ॥
सौरंकी भूप के सुनाम। भयो खेत सोरंक धाम ॥
ताके पच्छिम दिसि कछार। बहति पुरातन गंग धार ॥
तासु प्रतीची तीर धाम। कबहुँ रह्यो नयनाभिराम ॥
नाम बदरिका बन प्रसिद्ध। होत मृगादि न जहाँ बिद्ध ॥
विविध गुल्म तरु लता जाल। बर पाकर पीपर रसाल ॥
कदम निम्ब अम्ब पखूरि। सिंसप बबरिन रह्यो पूरि ॥
कूजत तहँ बहु बिहग बिहंग। सुचि स्वतन्त्र बिहरत कुरंग ॥
रह्यो शान्ति को धाम बिसाल। बदरी बन महँ पुन्यरास ॥
जहाँ राजती मुनि कुटीर। बही साम की जहँ समीर ॥
जहाँ बसे ऋषि मुनि बिरक्त। सिद्ध साधु जोगी सुभक्त ॥
सोइ काल बस मुनिन धाम। भयो गृहस्थनु बास ग्राम ॥
जाहि बदरिका ग्राम बाइ। बिबिध जाति जन बसे आइ ॥
बसतु तहाँ बर बिप्र एकु। धारतु निगमागम बिबेकु ॥
दीन बन्धु पाठक सनाम। ईस भक्त बहु गुनग्राम ॥
उपाध्याय की परम वृत्ति। निरत कर्म षट सुकृत कृत्ति ॥
तासु दयावति नाम बाम। पति परता गुन सील धाम ॥
सोजन प्रगटे पुत्र तीन। शिव शंकर शम्भु प्रवीन ॥
तनया रत्नावलि कुलीन। पति पितु कुल हित पुत्र कीन ॥४१॥
जासु रूप पति मनोहारि। जनु बिरंचि बिरची सम्हारि ॥४२॥
जनक जननि की अति दुलारि। परिजन पुरजन सबै प्यारि ॥
बोलति सबसों मधुर बैन। जेहि लखि पावत मुदित चैन ॥
जासु हँसनि चितवनि अनूप। लाभ्यो सील सुध मैन रूप ॥
निर्मोही मति मोहि जात। फिरि मेहिम की कौन बात ॥
गुन ग्राम की कहति बात। बड़ी बात लघु मुख नपात ॥
बालक पन सों गेह काज। सीखि गई सब पाक साज ॥

निज भाखनु सो पढ़त देखि । मापुहु मांपर पढ़त लेखि ॥
प्रपर बुद्धि तेहि जनक जानि । पाटी बुरिका दयो सानि ॥
कछुक दिननु महं भई जोग । कर्राहं सरसुती ताहि जोग ॥
पुनि ब्याकरनहुं पितु पढ़ाइ । दीनो कोसहु तेहि घुकाइ ॥
बालमीकि पुनि पढ़न लागि । भई भारती तासु जागि ॥
पिंगल के कछु पंग जानि । काव्य करन की परी बानि ॥५४॥
लिख गौरी को भरति ध्यान । पूजति बहु बिधि सहित मान ॥५५॥
पितु तनया लखि ब्याह जोग । खोजहिं तिन बर जासु जोग ॥
ढूंढि फिरे सो बहुरि गाम । भई न पूरी मनोकाम ॥
भये दुखित प्रति चित्त माहिं । सुता जोग बर मिलत नाहिं ॥
तबहि मीत इक दई भास । गुरु नृसिंह के बाउ पास ॥
स्मारत बैष्णव सो पुनीत । सकल बेद पागम प्रवीत ॥
चक्र तीर्थ ढिग पाठ लाल । तहीं पढ़ावत बिपुल बाम ॥
तहां रामपुर के समाढ्य । सुकुल बसबर हैं गुनाढ्य ॥
तुलसिदास भव नन्ददास । पढ़त करत बिद्या बिलास ॥
एक पिता महं पौत्र दोउ । चाहहास लघु अपर सोउ ॥
तुलसी घातमाराम पूत । ज्वर हुलासो के प्रसूत ॥
भये दोउ ते अमर लोक । दादी पोसहिं करि सशोक ॥६६॥
बसत जोम मारत समीन । बिप्रबंस कर दिव्य दीप ॥६७॥
कहत रह्यो सो राम राम । रामोला हु तासु नाम ॥
भौर बरल बिद्या निधान । बिबिध सास्त्र पंडित महान ॥
काव्य कला महं सो प्रवीन । सकल दुर्गुनन सों बिहीन ॥
सब बिधि रत्नावली जोग । प्रति सशील तनु रहित रोग ॥
सुनि एतो प्रिय मीत बात । पै नृसिंह गुरु ढिग सिहात ॥
पाठक तिन कहं करि प्रनाम । देख्यो तुलसी सुप ललाम ॥
गुरु मुख परिचय तासु पाय । पात पाम कुम बिबि मिलाय ॥
करि दीनो पुनि बाम दाम । मुदित भये मन महं महान ॥
पोत पत्रिका लगन रीति । करी सबहिं जग बंध नीति ॥७६॥
शुभ दिन पुनि आई बरात । दोउ पच्छ न फूले समात ॥७७॥
कीन यथा बिधि बिधि बिबाहु । दीन बन्धु भरि उर उछाहु ॥
तुलसी कर में गह्‌ बिधान । रत्नावलि को दयो दान ॥
रत्नावलि पद कुमति गहु । तासु बढ्यो पति पदनु नेहु ॥
रत्नावलि भी नारि पाइ । तुलसी पर नृप भयो दाइ ॥
पितामही बहु सुख उठाइ । पोये तुलसी उर समाइ ॥
दंपति सेवा सों सिहाइ । सरग गई वपु दिन बिताइ ॥
मन्दराम घर चन्द्रहास । रहहिं रामपुर मातु पास ॥
दंपति बसि बदरिका धाम । सहज मोद भाटोहु याम ॥

कबहु करत भिक्षा बिनोद । सहत धन्य चातुरि प्रमोद ॥
संध्यावन्दन आदि कर्म । करत उकम मित सुखी धर्म ॥
रचत राम मूरति रस पेहु । उभय संधि पूजत सनेहु ॥८८॥
जात बात श्री राम राम । तुलसी सुख लागहि ललाम ॥
भगतनु बर बांचहि पुरान । तुलसी सहहि सम मीत मान ॥
रत्नावलि सेवहि कर जोरि । मधुर बचन बोलति निहोरि ॥
कबहु न अप्रिय कहति बात । कबहु न सो पति सों रिसात ॥
मीजति नित पति पाय पीठि । नितहि लखावति प्रेम रीति ॥
पति बियोग नहि छिन सुहात । बात कहूँ सुख उचरि जात ॥
करति सोइ जो पतिहि भाइ । पति सेवन मम अति उछाह ॥
कबहु आतुर जो पति रिसाइ । पायँनु परि लेवइ मनाइ ॥
जौलौं पति भोजन न पाइ । तौलौं आपुहु कछु न पाइ ॥
जो मम सोई बचन कर्म । पतिहि दुरावत कछु न मर्म ॥
तारापति नामक सुपुत्र । भयो तासु बुधि बल पवित्र ॥९९॥
भयो दैव गति स्वर्ग धाम । बिसपति रत्नावली बाम ॥१००॥
भयो दुख को अधिक सोक । धरी धीर पति मुख बिलोक ॥
तुलसी हू बहु करत प्यार । रत्नावलि भइ हृदय हार ॥
ताहि न चाहत आँखि ओट । ओट होति हिय सपदि चोट ॥
शिथिल परी प्रभु भजन रीति । बाढ़ी तिय महँ अधिक प्रीति ॥
ब्याह भये दस पंच वर्ष । इक सुत तजि बीते सहर्ष ॥
पठी बोलन एक बार । भ्राता संग हिय हरष धार ॥
पति आयसु गहि सीस नाइ । गई माइ के सदन पाइ ॥
इत तुलसी करिबे नहाइ । पये सुमिरि उर प्रबल चाह ॥
तुलसी व्याकुल दिन बिताइ । आये तिनहि न घर सुहाइ ॥
रत्नावलि मन लखन चाइ । चले ससुर घर भरि उमाह ॥
होनहार बलवान होत । जसि भवितव्य तस ज्ञान होत ॥१११॥
नारि प्रेम मद पगे मोह । असे समय को ज्ञान खोइ ॥११२॥
बीति गइ तब अरध राति । घन घन चपला चमकि जाति ॥
बहति घोर सुरधुनी धार । ताहि तैरि करि गये पार ॥
दीन बन्धु की पीरि बाय । टरि हवे घर के बनाय ॥
तारहि पाये तबहि धाम । तुलसिहि लखि भे चकित स्याम ॥
करि प्रनाम कहि कुशल तात । हौं कहि तुलसी मन लजात ॥
करि आदर समयानुसार । पौढ़ाये करि बहु दुलार ॥
रत्नावलि एकान्त पाइ । पति दर्शन हिय गई पाइ ॥
पति पद परसे करि प्रनाम । बरन आगमन लागि बाम ॥
बूझि किमि आये अबेरि । गरजत घन भारी अँधेरि ॥

कैसे उतरे गंगधार। मेरे जिय अचरज अपार।।
इमि सुनि बोले तुलसि दास। तुमहिं मिलन अति उर उमास।।
तुम बिन परत न मोहिं चैन। भई शान्ति तब लखत नैन।।१४५।।
तव सुप्रेम महं गंगधार। सुमिरि सहज ही भयो पार।।
कहि रत्नावली प्रान नाथ। धन्य भाग को मिल्यो साथ।।
मेरे हित बहु दुख उठाइ। दरस दयो तुम नाथ आइ।।
मो सम को बड़ भागि नारि। मो सम को तिय पति हि प्यारि।।
धीम प्रेम तुम करो पार। नाथ प्रेम के तुम अपार।।
मम सुप्रेम निज हिये धार। उतरे प्रिय सुर सरित पार।।
पग पसार पद प्रेम धार। जासु मनुज भव उदधि पार।।
प्रेम हीन जीवन असार। नाथ प्रेम महिमा अपार।।
सुनि रत्नावलि मधुर बानि। भव विषयनु सों भई ग्लानि।।
भये विरत सब तुलसिदास। कछु दिनु सोवत भे उदास।।
रत्नावलि पति नींद जानि। गइ परसि पद जोरि पानि।।
दैव मिलन को करयो अन्त। कहुं नारि अब कहुं कन्त।।१४६।।
जहां योग तहं है वियोग। परत योग सो सहत सोग।।१४७।।
काल कर्म गति है विचित्र। बनत शत्रु जो रहे मित्र।।
मानु करत नर कछु विचार। कालि होत कछु होनहार।।
राम सैन कहं योगराज। बन गे तजि सो राज साज।।
जो तुलसि हि प्रानन पियारि। सो रत्नावलि पद बिसारि।।
गृह जन सोवत करि प्रमान। चपल कियो तुलसी पयान।।
रैनि गई उदयो प्रभात। तुलसी काहु न कछु लखात।।
ढूंढि फिरे सब ग्राम माहिं। सबनु कही हम लखे नाहिं।।
जहं तहं तुलसी मिलन आस। मिले न तहुं सब भे उदास।।
पति बिनु रत्नावली दीन। विलपति जस बिनु जला मीन।।
बहु दिन त्यागो पान खान। करन लग्यो धरि नाथ ध्यान।।
बीते बहु दिन मास मास। भई न तुलसी मिलन आस।।
तजि दीने सब ही सिंगार। करति एक बारहिं अहार।।१४९।।
उत्तम भोजन बसन त्यागि। मृगगति प्रिय पति विरह लागि।।१५०।।
तुलसि पादुका उर लगाइ। सोवति तृन आसन बिछाइ।।
कबहुं रामपुर बसति जाइ। कबहुं बदरिका रहति आइ।।
तिन चान्द्रायन व्रत धार। पूरन कीने विपुल बार।।
धारे पीयूष व्रत अपार। सती धरम निबह्यो संभार।।
मन बच करमन रही पूत। करयो भजन प्रभु तिन अकूत।।
जासु पति पद दृढ निहारि। भई अनेकन सती नारि।।
देती नारिन सीख नीक। रही दिखावति परम लीक।।
पति वियोग महं साधि योग। त्यागि दये सब जगत भोग।।

चरन सरन रज जासु कोइ । धरत देह रुज रहित होइ ॥
धूसर रह भू बरस पूरि । स्वर्ग पदै जहिं सुजस भूरि ॥
मनि रत्नावलि मात धन्य । जेहि सम मन कहं जगत अन्य ॥
गन कर बसु भू विक्रमीय । सूकर तीरथ कमनीय ॥
माध्वी रत्नावलिहि कहानि । सुगम सुप बस परी जानि ॥
द्विज मुरलीधर चतुरवेद । लिपि प्रगटी जगहित समेद ॥१६३॥

इति श्री रत्नावली चरितं सम्पूर्णम् शुभम् । संवत् १८२९ श्रावण शुक्ला १ प्रतिपदायाम् शुक्र वासरे लिखितम् चतुर्वेद मुरलीधरेण सोरों क्षेत्रे ॥ शुभंभवतु ॥

छप्पय

एक पितामह सदन दोउ जनमें शुचि रासी ।
दोउ एकहि गुरु नृसिंह गुरु सन्तै बासी ।
तुलसिदास नन्ददास भये द्वै मुरली धारे ।
एक भये सियराम एक घनश्याम पुकारे ।
एक बसे सो रामपुर एक श्यामपुर महं रहे ।
एक राम भाषा लिखी एक भागवत पद कहे ॥१॥
एक पिता के पूत दोउ बलराम मुरारी ।
मुरलि चक्र इक धर्यो एक हलमूसल धारी ।
नीलाम्बर तनु एक एक पीताम्बर धारो ।
दोउन चरित उदार रह्यो जग न्यारो न्यारो ।
इमि कर्तव रचि गत प्रकृति भव जन कीन समान जग ।
जननि एक हू गृह मई निज स्वभाव अनुरूप मग ॥२॥
धन जप धादि वराह क्षेत्र तप भूमि सुहावनि ।
बहति जहां सुर सरित दरनि दुरितादि बहावनि ।
बसत विविध सुर सदन भक्त मन जीय जुरावन ।
सकल अमंगल हरन करन मंगल मुनि भावन ।
विप्र वृन्द योगी यती जानत बेद पुरान जहं ।
मुरलीधर अस पावनहु दूजो जग मंह धाम कहं ॥३॥
उभय सदि महं बैठ भारती भक्त उचारत ।
घंटा दुंदुभि दंप झांझ धुनि मोद पसारत ।
भक्त भक्ति मद मत्त तहां प्रभु को यश गावत ।
मृदंग मंजु गंभीर तार झनकार सुहावत ।
जय गंगा धाराह की पावन धुनि फाग करत ।
धीर हरिपदी तीर द्विज मुरलीधर संध्या करत ॥४॥
विपुल सिद्ध मुनि वृन्द सन्त जन वृन्द बसत जहं ।
श्री हरि पदनु प्रसून हरि परी सोभ लसत जहं ।

तासु कूल सोपान सेनि नयनाभिराम जहँ ।
भक्ति ज्ञान वैराग पुंज वाराह धाम तहँ ।
बहु पुन्यन सों पावत दरस देव वाराह महि ।
केविक पुन्यनु फल लह्यो द्विज मुरली बहु जनम महि ॥५॥
नृप बुध बीते ससी लखे मुरली इकयासी ।
बसत सौकरछ धाम कटै बंधन चौरासी ।
दीठि भई अब मंद कुरत सिर कंपत कछुक कर ।
तदपि न मानत जियत चहत मन कविता सुन्दर ।
सो अब कछु बालक बनहि मन बहलावन करि रहे ।
जिमि नर बिनु दसनन चनक पीसि पीसि मुख भरि रहे ॥६॥

कृष्णदास कृत वंशावली[1]

खेत बराह समीप शुचि ग्राम रामपुर एक ।
तहँ पंडित मंडित बसत सुकुल वंश सविवेक ॥१॥
पंडित नारायण सुकुल तासु पुत्र परधान ।
धारयौ सत्य सनाढ्य पद हु तप तेज निधान ॥२॥
शस्त्र शास्त्र विद्या कुशल भे गुरु द्रोण समान ।
ब्रह्म रंध्र निज भेदि जिन पायो पद निर्वान ॥३॥
तेहि सुत सुत ज्ञानी भये भक्त पिता अनुहारि ।
पंडित श्रीधर देवधर सनक सनातन चारि ॥४॥
भये सनातन देव सुत पंडित परमानन्द ।
व्यास सरिस वक्ता समय जासु सच्चिदानन्द ॥५॥
तेहि सुत आत्माराम बुध निगमागम परवीन ।
तासु सुत जीवाराम भे पंडित परम धुरीन ॥६॥
पुत्र आत्माराम के पंडित तुलसीदास ।
तिमि सुत जीवाराम के नन्ददास चंदहास ॥७॥
मथि मथि वेद पुराण सब काव्य शास्त्र इतिहास ।
रामचरित मानस रच्यो पंडित तुलसीदास ॥८॥
नन्दन कुल बल्लभ भये तासु अनुज नँदनन्द ।
करि बल्लभ आचार जिन रच्यो भागवत रास ॥९॥
नन्ददास सुत हौं भयो कृष्णदास मति मन्द ।
चन्द्रहास सुत सुत भई चिरजीवी उदयचन्द ॥१०॥

॥ इति कृष्णदास वंशावली ॥

---

१ १९२६ वि० के बाद 'रत्नावली चरित' 'दोहा' और कृष्णदास कृत 'वंशावली' पत्र ही मिलते हैं। ये और १९०१ में मुरलीधर चतुर्वेदी द्वारा नकल किये गये कृष्णदास कृत 'सूकरक्षेत्र माहात्म्य' श्री [illegible] द्वारा सोरों निवासी पं० श्री गोपाल मिश्र से कासगंज के पंडित [illegible] शर्मा को प्राप्त हुए थे।

गोपीश्वर विनोद

पुष्कर स्तोत्र

रागिनी[1] काफी

देव मुनि तीरथ माहि सुराइ ।
जहँ हिरनाक्ष मारि छिति उधरयो
धरि हरि रूप बराह ।
जहँ सुरसरी बहति मम पावनि
हरति सकल मम दाह ।
मज्जत जहँ विधिते जहँ जो नर
होत रूप मीनाइ ।
गोपिईश पुष्कर तीरथ को
ध्यावत मन भवपाइ ।
तिहि महि होत जातना जमकी
दुर्लभ जहा कदाइ ॥२०६॥५७॥१॥

इति विविध विद्यावती विराजमान मानोन्नत महाराजाधिराज मिथिलाधीश रुद्रसिंह बहादुर देव देवात्मज श्री श्रीमद् गोपीश्वर सिंह विरचितो गोपीश्वर विनोदे प्रकीर्णकन्नाम द्वितीय खण्ड समाप्तश्चायं ग्रंथ ॥[1]

---

१ स्रोत : मैथिली कोश प्रकाशित सं० १९७२ वि०। पृष्ठ १६०-६८

॥ श्री ॥

तुलसी प्रकाश

श्रीमते रामानुजायनम ॥

अथ तुलसी प्रकास लिख्यते ॥

॥ रूपघनाक्षरी ॥

जासु भ्रू बिलास होत जगत बिकास नास
जगत निवास जासु आदि हू न है बिराम ।
आनन अनन्त नैन बाहु पाद रूप जासु
जो है बिनु रूप हीन गुन हू गुनन धाम
जो है सब कारन को कारन करनधार
तारन भौ सागर अपार जग को ललाम ।
प्रनमत अबिनास दास ताही जोगबासि
दसरथ सुपरासि कौसिलासुवन[1] राम । १॥

तोमरछन्द

श्री राम करुना धाम । तुम भक्त पूरन काम ।
तुम हो अनादि अनन्त । ध्यावहिं तुमहिं सुर सन्त ।
जब जब बढ़त भू भार । तब तब धरत अवतार ।
हरि दुष्ट दानव भार । करि देत धर्म पसार ।
प्रभु सर्बभूत निवास । प्रनमत तुमहिं अबिनास ॥ २ ॥

छन्द

बालमीकी आदि कवि तव चरित संस्कृत माहिं ॥
निरमयौ अनुष्टुप सु पठित भौर अनुष्टुप माहिं ॥
जामनी पढ़िबे लगे जन देवबानी त्यागि ॥
निज धर्म हूं बहु तजि रहे बिषय भोगनु पागि ॥
बालमीकी दूसरो भुई एकु तुलसीदास ॥
नर भाष रामायन बिरचि कीन्ह धर्म प्रकास ॥
करि कृपा निज दास तुलसी तुम दियौ प्रगटाय ॥
सिपत हौं नपु तासु चरितै देखि मुनि मन भाय ॥३॥

दोहा

गंगा दच्छिन कूल इक तासी नाम सुथान ॥
सोरकी हर्षित बहं भूमिपाल मतिमान ॥४॥

---

१ सतम ।

गोपीश्वर विनोद

सूकर क्षेत्र

रागिनी[1] काफी

देव मुनि तीरथ माहि सराहु।
जहँ हिरनाक्ष मारि छिति उधरयो
धरि हरि रूप बराहु।
जहँ सुरसरी बहति जग पावनि
हरति सकल अघ दाहु।
मज्जत तहँ विधिवत जहँ जो नर
होत अघ छीनाहु।
गोपीश्वर सूकर तीरथ को
गावत मन उमगाहु।
तिहि नहि होत यातना जमकी
दुर्लभ ब्रह्म ब्याहु ॥२०६॥५७॥१॥

इति विविध विरुदावली विराजमान मानोन्नत महाराजाधिराज मिथिलाधीश रुद्रसिंह बहादुर देव देवात्मज श्री श्रीमद् गोपीश्वर सिंह विरचितो गोपीश्वर विनोदे प्रकीर्णकनाम द्वितीय खण्ड समाप्तश्चायं ग्रंथ ॥[1]

---

१ मुद्रक : मेडिकल हॉल बनारस सं १९७५ वि० । पृष्ठ १९७-९८

॥ श्री ॥

तुलसी प्रकाश

श्रीमते रामानुजायनमः ॥
अथ तुलसी प्रकाश लिख्यते ॥
॥ रूपघनाक्षरी ॥

जासु भ्रू बिलास होत जगत बिकास नास
जगत निवास जासु आदि हू न है बिराम ।
आनन अनन्त अग बाहु पाद रूप जासु
जो है बिनु रूप हीन गुन हू गुनग्राम
जो है जग कारन को कारन करनधार
तारन भी सागर अपार जग को सकाम ।
प्रनमत अबिनास जास ताही औधवासि
दसरथ सुपरासि कौसिलासुबन[1] राम ॥ १॥

तोमरछन्द

श्री राम मन्ना धाम । तुम भक्त पूरन काम ।
तुम ही अनादि अनन्त । ध्यावहि तुमहि सुर सन्त ।
जब जब परत भू भार । तब तब धरत अवतार ।
हरि दुष्ट दानव मार । करि वेद धर्म पसार ।
प्रभु सर्वभूत निवास । प्रनमत तुमहि अबिनास ॥ २ ॥

छन्द

बालमीकी आदि कवि तव चरित संस्कृत माहि ॥
निरमयो अनुष्टुभ सु पवित और अनुष्टुभ माहि ॥
आमनी पढ़िबे लगे जन देवबानी व्यापि ॥
निज धम हूं बहु तजि रहे बिषय भोगनु पागि ॥
बालमीकी दूसरो भुई एकु तुलसीदास ॥
नर भाष रामायन बिरचि कीन्ह धम प्रकास ॥
करि कृपा निज दास तुलसी तम दियो प्रगटाय ॥
लिखत हों कछु तासु चरिते देवि मुनि मन लाय ॥३॥

दोहा

गंगा दक्षिन कूप इक तामी नाम सुथान ॥
सोरोंकी हर्षबढ़ जहं भूमिपाल मतिमान ॥४॥

---

१ ललन ।

तोमरछन्द

प्राची उमापति थान । उत्तर ललित उद्यान ॥
पश्चिम दिशा हरि धाम । बाराह क्षेत्र ललाम ॥
तहं एकु सुरसरि सोत । दक्षिण प्रवाहित होत ॥
तहं बसत भूसुर भूरि । कछु बसत भूसुर सूरि ॥
कछु दास जन सुखकारि । सबु धाम पै मनहारि ॥
रन बांकुर बहु बीर । रथ बाजि वारन भीर ॥
जनि भूमि मेरी येह । आनंद सुरग सम देह ॥
शिवराधव कविराइ । मेरे जनक सुप दाइ ॥५॥

कवित्त

नीर अरु छीर को विवेक नीति धारन हार
हंस जस हू सों विसेष नीति धारी है ॥
विस्व जन मोहि मनि कीरति कलाप केकि
कविजन[1] जनक सो काव्य कलाकारी है ॥
महामति महीपति सभा को सिंगार सार
सुनि जस हिय हार हीन तमहारी है ॥
दुष्ष अविनास भयो ताहो महाभट्ट जस
आसु सीस हाथ धर्यो भीम कर धारी है ॥६॥

दोहा

कौशिक मुनि गोती दुबे तहां विप्र सिर मौर ॥
बसत जमुना नाथ सुत एहि सम जनक न और ॥७॥

मदिरा छन्द

पूत न कोउ भयो उनको दुहिता तुलसी बहु लाल भई ॥
ब्याहन जोग भई जबही बर ढूंढन में चित वृत्ति दई ॥
सूकरखेत समीप तब बर रामपुर हि मधि देषि लयो ॥
आतमराम सुकुल्लहि के कर मे तुलसी कर दान दयो ॥८॥

सोरठा

आतमाराम बर हाथ मातु हीन तुलसी सुता ॥
दई जमुना नाथ सोक हीन सुभ रीति करि ॥९॥
जामातहि हुलसाइ परम भये कछु ब्याह सों ॥
निज सरबस महान तारी तजि सुरपुर गये ॥१०॥
ऊरध देह विधान सकल कराये वेद विधि ॥
तेहि निमित्त बहु दान दये यथा परलोक हित ॥११॥
रही सरसुती गेह जरठ तासु विपदा मथिनि ॥
पोथी धरम सनेह निज तुलसी मति जतन करि ॥१२॥

---

१ कविजन

दोहा

तासों महँ बसि बरस इक पंडित आत्माराम ॥
आइ बसे तुलसी सहित सुभग रामपुर ग्राम ॥१३॥

अहिना छन्द

बांदा रूप फल खानि जहाँ तप धाम है ॥
तहँ सुरसरिता तीर रामपुर ग्राम है ॥
जासु परयो नन्ददास स्यामपुर नाम है ॥
करयो स्याम सर तहाँ नैन अभिराम है ॥
तदनंतर विविध समाज तहाँ उपवन करयो ॥
थापि स्याम बलराम सदन जप बस भरयो ॥
सुकुल सनाढ्य विप्र बंस को वास तहँ ॥
सुकुल सच्चिदानन्द भये महि बंस महँ ॥
पंडित अति बुधिवन्त महात्यागी रहे ॥
आतमराम अरु जीवराम सुत द्वै लहे ॥
तेउ भये अति मान महाविद्या धनी ॥
आइ रही चहुँ ओर कीति घर घर घनी ॥१४॥

सोरठा

सुकुल सच्चिदानन्द जीवाराम विवाह करि ॥
मानि सकल आनन्द आइ बसे सुरपुर सदन ॥१५॥

दोहा

पंडित जीवाराम की चंपा चपला नारि ॥
लरिकाई बस सासु सों करी एक दिन रारि ॥१६॥
परुष वचन तेहि सासु सुनि, सपथ करी तब एक ॥
अब न बसौंगी रामपुर, राम रखावै टेक ॥१७॥
सून परयो राजीग्या मातु पिता को धाम ।
जबहिं आइ सोरम बसी कबहुं न दिन बिसराम ॥१८॥
मातु सरप अन जानि मन बोले आतमाराम ॥
यहाँ रही सुत सों जननि तुम्ह बसो तेहि ग्राम ॥१९॥

अहिना छन्द

सूकरखेत पुनीत मधव सुख कारि है ॥
सोहति सुरसरि जहाँ भगत भय हारि है ॥
जहँ बराह प्रभु दरस सुमंगल हेतु है ॥
न्हान दान जप जहाँ अमित फल देतु है ॥
भाग भीष्म सुत पानि भूमि पुन्यस्थली ॥
सूकरखेतहिं सेव करत पातिहु दली ॥
सोरम दूजो नाम खेत को ख्यात है ॥
पतितनु पावन करन तीर्थ सुखदात है ॥

दोहा

सुकुल आतमाराम बनि तुम जब कियो प्रकास ।
तब घर घरबर मोसि मनि प्रगटे तुलसीदास ॥३८॥

कवित्त

तार्‌यो तैं दुबिन बंस तार्‌यो तैं सुकुल बंस
सासु ससुर तारे तैं तारी महतारी है ।
कहैं अभिलाखराम आपु तरी तार्‌यो बापु,
तार्‌यो पति रामपुर तारी हू तारी है ।
अजहूँ हुलसात सं तुलसी जन तेरो नामु
तुलसी सो जायो पूत जग उपकारी है ।
धन्य मात हुलसी तैं मोच्छ द्वार तारे की
मुमुच्छुन हाथ दई तुलसी सम तारी है ॥३९॥

पद्धरिका छन्द

तेहि माता बिलपे हुई अधीर । कहि ताके दग सों चुवत नीर ।
प्रभु माता करमें करित रोप । कहि मो कहँ तुमसो कम न कोप ।
तिय चम्पा हिरदै अधिक दाह । पछितावै पति ही भयो काह ॥४०॥

दोहा

करम पारलौकिक सकल करि पुत्र जीवाराम ।
रोय कही निज मातु सों चलत रामपुर गाम ॥४१॥
चम्पा हू मांगी छमा बिलपि नयन भरि बारि ।
जननि कही बिलसाइ पुनि अब न सकौंगी टारि ॥४२॥
जाहि भूमि हौं तनु तज्यौ जाही भूमि समाई ।
तीरथ सूकरखेत तजि अब कहूँ अनत न जाउँ ॥४३॥
मेरु रही नित आप सुधि मेरो जब चित माहिं ।
जानकि मोहू सों तमुम तोहि तुलसी प्रिय नाहिं ॥४४॥

तोमर छन्द

नित जाप जीवाराम । पुजवत जननि मन काम ।
तुलसीहिं अंक समाय । लालत अनेक उपाय ।
यों वर्ष बस पट मास । चम्पा गर्भ जलदास ।
तब सुकुल जीवाराम । सुत को धरायो नाम ।
तुलसिहिं गनेस मनाय । पाटी दई पुजवाय ।
पुनि वर्ष द्वै दस मास । जायें भय कल्हास ।
पुनि सुकुल जीवाराम । रोगी भये अति धाम ।
अरु नष्ट धन जन धाय । दारिद परो गृह छाय ।
अरु रोग सों दुख पाय । ये स्वर्ग वर्ग सिधाय ॥४५॥

दोहा

जननी जाया भ्रात सुत तेहि सुत भयो सनाथ।
सेस सनातन बंस की रही पुरातन पाथ ॥४६॥

तोमर छन्द

इमि कर्म गृह बन बास। सबको भयो घबरास।
सूझत न कोऊ बात। तेहि नृप न बरसों बात।
काका भये सुरलोक। तुलसी बढ़यो मन सोक।
दादी। कह्यो सुमुझाय। सुत होय राम सहाय।
कुलदेव तेरे सोय। दी है सबै सुख पोय।
तू राम भजि अविराम। पूर्वे सकल मन काम।
कहु राम नाम सुनाय। धीरज दयो मन माय।
तुलसी बसे मन राम। अविराम टेरत राम।
तब रामबोला नाम। कहि लोग टेरत याम।
बहुविध सुभोजन पात। पय पेट सो रहि जात।
भारत पुरातन चीर। तेहि कोउ परत न पीर।
यात्री जनन सों जाइ। आयन भये अकुलाइ।
निजगाम जन गृह पाय। जाचत कबहु दुखपाइ।
कोउ देत कोउ न देत। पछिताइ मन जनि देत ॥४७॥

दोहा

जाचत जिनके द्वार नित जाइ अतिथि सनमान।
तेहि सुत पौरनि अतिथि बनि राखत आपन प्रान ॥४८॥

छन्द

तहँ विप्रमनि इक बसत पुन्नर श्री नृसिंह सुधामनी।
बहु ग्राम पण्डित राम हनुमत भक्त बर विद्याधनी।
स्मृति सास्त्र धर्म पुरान सिच्छा देत नित बटुकन रहें।
नित पाठ्शाला बैठि सो नित रचि राम कथा कहें ॥४९॥

दोहा

यय उदधि सागर मही बरस सुमपस सूम।
सुभ अषाढ़ सुभ पूनिमा गुरुतिथिहि भइ अनुकूल ॥५०॥
माहि दिवस नरसिंह गुरु सोरम गंगा तीर।
बाल करत इक धनिक तहँ तुलसी भय अधीर ॥५१॥
पापी तुलसी नाहि बपु ठाढ़े दुखित उदास।
पुन्नर बूझी बाल तू कौन तनय कहँ बास ॥५२॥
गुरुन आतमाराम सुत कह्यो जाहि पुर बास।
मात पिता सुर पुर गये एक राम की आस ॥५३॥
समुझि गुरुन तुम बाल मन दुखित भए गुरुराय।
करुना करि कर गहि गए आपन सदन सिधाय ॥५४॥

तुलसिहि गुरु धीरज दयौ कही पढ़ौ नित आय।
अब जनि आवन जात कहुँ तुम हैं राम सहाय ॥५५॥

छंद

अवलंब गुरु कहँ पाय तुलसीदास मन प्रमुदित भए,
नरसिंह गुरु पद परसि सुमरित राम कहँ निज गृह गए,
आपनि पितामहि सों कही जो वारता गुरु सों भई,
पुनि कही राम कृपा करी नित जाउ पढ़ि अनुमति दई ॥५६॥

दोहा

असन वसन तेहि भूमि को, दिय परबन्ध कराय।
यह इक सुरगुरु आमहु पुनि हेत गुरु राम ॥५७॥
गुरु सेवा तुलसी करत पढ़त सविधि नित जाय।
पढ़्यौ प्रथम व्याकरन पुनि कोष काव्य मन लाय ॥५८॥
नन्ददास हू तेहि अनुज पढ़न लगे पुनि आय।
दोउ भ्रात गुरु भगति रत वरमति सील सुभाय ॥५९॥
उपनयनादि विधान सब शुभ गुरु सों करवाये।
वेद पढ़ायौ गुर सहित संध्या सविधि सिखाय ॥६०॥
विमल रामायन भनित दरसन सास्त्र पुरान।
अनुज सहित तुलसी पढ़े पंडित भये महान ॥६१॥
स्वामि हरी हर बसत इक मन्दिर सीताराम।
नाम बाध परवीन अति गावत पद हरिनाम ॥६२॥
तुलसिदास नन्ददास तहँ कछुक समय नित जाय।
गान बाद्य सिच्छा लहत राग रागिनी भाय ॥६३॥
तुलसिदास नन्ददास को पढ़्यौ चहुँ विधि नाम।
दोउ करावत कृषि करम बाचत कथा पुरान ॥६४॥
दारीपति पितु मुत्तसिंह, इक दिन बहु गुनखानि।
हरषे अति तुलसिहि निरखि, तुलसी सुत जिय जानि ॥६५॥
सनमानित करि सी भए, आपनि दारीधाम।
बालमीकि सभि तासु नृप मुदित भये बसवाम ॥६६॥
तुलसिहि दीने बहु बसन धन भाजन गौ अन्न।
मातामह गृह लगि बरी तुलसीदास प्रसन्न ॥६७॥
पावत आत रहैं सदा तुलसी दारी गाम।
तिनहि पादरू सब तहां नृप क्षत्रिय गुन धाम ॥६८॥

रोला छंद

तुलसी संपति भगति सुजस दिन दिन अधिकानो
पौत्र सुजस पा पाइ पितामहि मन सुख मानो ॥
यमुना पश्चिम तीर बदरिका ग्राम निवासी
मुनि बसिष्ठ कुल दीनबंधु पाठक गुन रासी ॥

द्वादस बरसी सुता जोग बर देखन धाए,
श्री नृसिंह गुरु सदन भये तुलसी मन भाए ।।
भरद्वाज मुनि गोत्र सुकुल बर सुघर निहारी
विद्या विनय विवेक जासु मूरति मन हारी ।।
रत्नावलि सम बरहिं पाय सम्बन्ध जुरायो
वेद बान बारीस इन्दु सक बरष सुहायो ।।
कातिक सुदि गुरुबार एकादसि हरि परबोधनि
निसि निसीथ परकास उत्तरा भगत सुखद धनि ।।
तुलसी साजि बरात आय पाठक गृह द्वारे
रत्नावलि कर गह्यो बिप्रगन बेद उचारे ।।
पुर्‌यो सबिधि बिवाह हरष बदरी महिं छाये
निरखि निरखि बर बधू सबै जन मन हरषाये ।।
दीन बन्धु याचादि दयी जामात तोषकर
परखी सकल बरात समुद हरषे श्री गुरुबर ।।
तुलसि जमाता पाय दयावति सासु सिहानी
तनुजा दई पठाइ सुमिरि मन संभु भवानी ।।६९।।

नाराच छन्द

गयो महा अनन्द छाइ आत्माराम देहली
पितामही प्रसन्न देखि पौत्र की बधू भली ।।
लई लगाय हीय सौं सप्रेम पौरि ही लई
बधू भवानी सीस त्यों असीस सासुहू दई ।।७०।।

दोहा

बरष पाँचई ब्याह सौं दुरागमन भो तासु
द्विरागमन पुनि तेहि भयो भवि सिहाति पवसासु ।।७१।।

सवैया

रत्नावलि सो भलि पाय बधू
तुलसी पितु मातु महा सुख पायो ।
नित पाँय पलोटति ओढति सीस
अन्हवावति ताहि सनेह बढायो ।
रुचि होय पकावति व्यंजन सोइ
करे नित सोइ जो ताहि सुहायो ।
अविनास रमा सम गेह रमी
तुलसो गृह स्वर्ग समान बनायो ।।७२।।
रत्नावलि पीय सनेह सनी
अति चाव करे पति की सिवकाई ।
पति कों निज प्रान परेस समान
निहारि सुखी जिय में सुख साई ।

अवलोकि उदास उदास रहैं
तन द्वै इक प्रान प्रमान लखाई।
तुलसी बहु भाग गृही अविनास
सती रतनावलि सी तिय पाई ॥७३॥
नित राम सती सिव पूजति सी
बर मांगति एकुहि भाव जनाई।
निसि रामकथा अविनास सुनैं
कबहुं सोइ मातु पढ़ै मन लाई।
नित काव्य पुरातन कानन मैं
विहरै पति संग करै कविताई।
मन रोष कहूं पति नाविवि सौं
रतनावलि छोह करै हरयाई ॥७४॥

कवित्त

अनसूया अरुन्धती सावित्री सुकन्या सी
सीतासी सतीसी सची सवितासी भासमान।
रूपवती सीलवती सत्यवती सुमुखी सी
सुरसरिसी पावनी सरसुती मूरतिमान।
माधुर रस सानी कोकिल सम बानी जासु
धरनीसी धीर मनि गंभीर सिन्धु समान।
रतनावलि तुलसी की गृहनी गुननि खानि
हारयौ अविनास करत कीरति बखान ॥७५॥

दोहा

इक दिन रतनावलि सहित निसिमहं तुलसीदास।
देखत पितु जननी चरन धरि हिय अमित हुलास ॥७६॥
पितु जननी बोली तबै, पुजई तैं सब आस।
चाहहुं अवध दरसन करन कछु दिन काशी वास ॥७७॥
देखिहि दरसन राम को करिहौ काशी वास।
कीन्ह वचन कहि चाप पुनि पद छुइ तुलसीदास ॥७८॥
सोधि महूरत सुभ दिवस तुलसिदास नन्ददास।
रतनावलि पितु जननि युत चले छाँडि चन्दहास ॥७९॥
चले धीर द्वै नारि नर, मन धरि राम पुकारि।
इम रत पर्वहि मही बरप साम्यो मय सुप कारि ॥८०॥

अवधा दरस

चैत मास सित नवमी सरजू न्हाय
कीन्हे रामसिय दरसन मनमाहि भाय।
करि परिकरमा देखे सब ही धाम
रहे कछुक दिन अतिके प्यारे राम।

अवध पुरी सौं पुनि सब चले प्रयाग
विधि युत न्हाय त्रिवेनी करि अनुराग।
विरमि कछुक दिन आए काशी धाम
विश्वनाथ हर दरसे लह्यो विराम।
पितामही की सुधि आई सब मन आस
नित शिव धाम समर्चहिं सहित हुलास।
ग्राम मवैया बासी हरिसिंह देव
बसत समुद सो काशी करि शिव सेव।
पायो तुलसी परिचै कीन्ह सुमान
कह्यौ सुनावहु मोकहँ संभु पुरान।
अस्वमेध घट सुभ थल सहित विधान
कुसुम पूजित तुलसी कहहिं पुरान।
बढन लगी नित श्रोता जन गन भीर
कथा सुनन कहँ उत्सुक रहहिं अधीर।
भई शिव कथा पूरन सावन मास
बहु धन अस्तुति करवै तुलसीदास ॥८१॥

दोहा

काशी बासी अग्र कुल, धनिक बनिक अभिराम।
पर उपकारी धरम रत राम भगत गुन ग्राम ॥८२॥
मन गुनि तुलसी ज्ञान गुन बुधि विद्या विस्तार।
कथा कथन प्रभु चरन रति पावन करम विचार ॥८३॥
चरन बंदि सविनय कह्यौ लागत भादव मास।
बालमीकि को ग्रंथ कहो सुनवहु मो मन आस ॥८४॥
ताहि वचन द तिन कह्यौ रामायन इक मास।
पूजे बहुविधि अभिवन्दन सुखकर तुलसीदास ॥८५॥

चंचला छन्द

नन्ददास देखि एक संग द्वारिकाहिं जात
हौं हु जाउँ के विचार आरिगे समीप भ्रात।
भ्रात हीय का कह्यौ सुभाव उच्चरो न जाय,
दूसरों न आपनो सो भार होय को सहाय।
नन्ददास हाथ जोरि जोरि जोरि माथ नाय
जान दै कहूँ मिल्यौ अभाग सौं संजोग आय।
जानि इष्ट वासु भाव भातहूँ कह्यौ सु भ्रात
हौं रह्यौं सु पंच मास तू सबेग लौटि आउ।
आइ सौंह सा सबै अनीस सें चले सिहाय
बाहुरे न नन्ददास योगि योगहू विहाय ॥८६॥

दोहा

करि आशीष सराध विधि, शारदीय व्रत पूरि।
कातिक न्हान प्रयाग किय हिम सरजा भरि भूरि ॥८७॥
तुलसी रतनावलि सहित आतमराम सुभातु।
सोचत मिली न नन्द सुधि अगहन बीत्यौ जातु ॥८८॥
तुलसी चाहिन बूझिबत नन्ददास कुसलात।
कोउ न ताहि बताइयतु, नित नित मन पछितात ॥८९॥
पुनि इक ब्रजबासी कही श्री विट्ठल प्रभु नाम।
दीच्छा ताहि गोकुल भजत नन्ददास हरिनाम ॥९०॥
तुलसी लिपि पाती दई, नन्ददास कै बोध।
तुरत आउ हम सब दुखित पाइ तिहार वियोग ॥९१॥
देखत बाट वितीत्यौ अबहि पूस को मास।
नन्ददास पाती मिली माघ बसे निजबास ॥९२॥

सुन्दरी छन्द

आइ भये गृह फागुन मैं जब
कर्यौ हुलस दुख सोग सविधि तब।
फागुन सित तेरसि भृगु शुभ दिन
देह पितामहि त्याग कियो छिन।
पंडित ज्यौं तुलसी पत सरबस,
अन्त क्रिया करि वेद कही जस।
नन्द बिना दृग हात दुखी जन
ताहि सुमिरि पछितात सबै मन।
बीति चल्यौ इमि फागुन माघहु
गोकुल भेजि दयौ चन्द्रहासहु ॥९३॥

पद्धरी छन्द

नन्ददास भये चन्द्रहास आय
पुलकित तन मन भाय भाय।
पुनि कह्यौ पितामहि सुरपवास
सुनि भए दुखित मन नन्ददास।
श्री विट्ठल प्रभु आदेस पाय
लघु भ्राता संग तुर तुर सिधाय।
पाए सूकरखेतहि दुख्यात,
पद गहि भे निज भ्रात मात।
श्री रतनावलि पद परसि आनि
सब गाथा पाछिलि कही बखानि।
हिय हरषित भई कमला निहारि,
पति पद रज सह निज सीस धारि।

सम्बत दसम इकादस द्वादसाह
कीन्ह यथोचित बिधि सह उछाह ॥९४॥

दोहा

बिगत सोक निज निज सदन तुलसी मग्न सर्बंग ।
बंधे परसपर प्रेम रसु, बसत सहित सारंग ॥९५॥
रामरूप तुलसी मगन इष्टाकर हरि मन्त्र ।
निज निज रुचि अनुसार दोउ भजत सच्चिदानन्द ॥९६॥
तुलसी बरनत राम जस नन्द कृष्ण गुनग्राम ।
सुन्द रचत नव नव सरस ध्यान करत अभिराम ।९७॥
दोउ बारह पटकरम बाँचत कथा पुरान ।
दोउ करावत समुद बुधि गहत चहुँ दिसि मान ॥९८॥
बेदसास्त्र सागर परनि सक सित कातिक मास ।
दसमी तिथि बुधवार सुभ पूर्वाभाद्र प्रकास ।९९॥
रत्नावलि जनम्यो तनय तुलसी सदन प्रकास ।
बाजे बहु बिध बाजने छायो अमित हुलास ॥१००॥
तारापति तेहि नाम कहि टेरत सबै सिहात ।
बुधिवन्त दुतिवन्त अति हंस रूप गोरो गात ॥१०१॥
तीनि बरस षट मास को सुरपुर गयो सिधारि ।
दुइ जन कीन बिलाप बहु भरि भरि दृग दुखभारि ॥१०२॥
भारि मोह बिकल परे तुलसिदास गुनखान ।
आतमरूप बिस्मृति भई पायउ थाह न पूर ॥१०३॥

कवित्त

सारस कपोत चक्रवाक सम तुलसी पै
रत्नावलि बियोग एकु छन हू ना सुहात ॥
सुनत रसीले बैन दीरघ सजीले नैन
मंद मुसकान जासु देखि देखि ना अघात ॥
आकृति मधुर रूप गोरो तन प्रेम मैन
नेह काज साज देखि मन फूले ना समात ॥
सीय अनुराग मोद मूले गनि तिय पी की
बिसरी अपान ज्यों गोरस मात न अमाय ॥१०४॥
निधि रस सिधु इंदु बत्सर मिति सावन सनु
आयो अविनासराय अनुमादि कीन्हे गाव ॥
तुलसी मत पाय रत्नावलि लिवाय संग
बदरी पयान करयो धरि पाद रघुनाथ ॥
दूजे दिन तुलसी हू आन काम भवन मेद
बैठि गये रथन पो बाँचन ...

ग्यारही साँझ भए बाढ़ी तिय देखन चाहु
        जाय मरे आधीराति जसि दीने बदरीपाय ॥१०५॥
भादौं अँधियारी घटा कारी कजरारी घिरी
        परत फुहार तऊ तुलसी न मानी हार ॥
नारि नेह मोहे जनु काहू मद भोए से
        चलें अविनासराम पग धरैं ना विचार ॥
राम उरधारि ज्यों वायुसूनु लाँघ्यो सिंधु
        त्योंही उर धारि तिय गंगा जमि भए पार ॥
तुलसी हरषात सो जात जल भीजे गात
        खोलियो किवार जाइ बोले ससुरार द्वार ॥१०६॥
तुलसी सुर जानि रतनावलि आप उठे
        तुरतै कपाट खोलि बोलि घर लाए जाइ ॥
पूछी कुसलात तन गात करी आदर दै
        सूखे पहराय पट सेज पै सुवाए जाइ ॥
जामि के इकंत कंत रतनावलि आई पास
        कहै अविनासराम बैठी ढिग सीस नाइ ॥
बोली कस आधीराति आए तुम प्राननाथ
        गंगा कस उतरे पार हाइ दुख पायो आइ ॥१०७॥
तुलसी सुनि बोले हौं राम कथा पूरी करि
        आयु साँझ आयो तुम बिनु घर भयो भार ॥
जीय अकुलायो अविनास न सुहायो कछु
        देखन तोहि आयो यदपि जोग सो अपार ॥
तुम बिनु एकु छन युग जैसो बीते मोहि
        बियोग में तिहारे घर लागतु है असार ॥
बिनुही अधारी प्रान प्रिय तिहारे प्रेम
        पोत के सहारे करि आयो सुर सिन्धु पार ॥१०८॥

सवैया

जो तन प्रेम करी धरि पार करें हरि प्रेम तरें भव प्रानी ॥
प्रेम प्रताप महा महिमा प्रभु जी अविनास न जाय बखानी ॥
नाथ भई बड़भागिन हौं तुम प्रेम पयोनिधि पाय सिहानी ॥
नैनन आनंद नीर भरे पुलकाय कही रतनावलि बानी ॥१०९॥
बैन सुनै तिय के तुलसी हरि प्रेम कथा मनमाहि समानी ॥
भूपत राम सनेह को पद भयो रतनावलि मानहु पानी ॥
राम बिसारि असार बिचारनु बैठ जबी अविनास न बानी ॥
सोवत भे तुलसी करि मौन सती तिय नैनन नींद अमानी ॥११०॥
जागहि नींद भगी प्रिय जानि पलोटति पायनु बन्दि सयानी ॥
दीप अपाय सनेहहि पाय गई रतनावलि हीय सिहानी ॥

सोइ रही बिधि बाम लिपी अविनास मिटी न ललाट लिखानी।।
रातिहि में तुलसी गृहत्यागि गए कित कौतुक काहु न जानी ।।१११।।
भोरहि होत उठी रतनावलि सोइ भरी पिय सेज न पाई ।।
दीखि परे न कहूं प्रभु खोर सब बगरी नरनारि मझाई ।।
हीय सनाको भयो रतनावलि नैनन नीर नदी उमड़ाई ।।
बात कहे बिनु नाहिं कबौ अविनास कहा मन माहु समाई ।।११२।।

कवित्त

रामपुर सूकरखेत बाट घाट हाट गेह
देखत ढुँढ़ाई नाथ कहूँ दिखि आए हैं ।।
पंथी नर नारि बहु बूझे बहु देखे ग्राम
दूरि दूरि दूत खोज खोजिबे पठाए हैं ।।
कहूँ अविनासराय कहूं ना समाय सखी
खोजि खोजि हारे सब लौटि लौटि आए हैं।।
सिवनाथ संकर सम्भु रतनावलि भ्रात सबै
बैठे निराश ह्वै तुलसी न पाए हैं ।।११३।।
तुलसी पयान जानि मन्ददास चन्द्रहास
पहुँचे उदास मीत आए भ्रात भावा पास ।।
संसुमन धन मोद रोए सब मोए से
नाम निज बिनोद सुमिरत तुलसिदास ।।
वीर धरि धाए दिसि दिसि मगाए खोज
बिबिध बन पठए बिठए हैं जितैक माथ ।।
कितहूँ न पाए पछिताए अविनासराय
ह्वै कै मन निराश लौटि आए बन उदास ।।११४।।
निसि दिन बिलबिलाति छमछमात आसु नैन
हीय दरदरात गात कुम्हिलानो है ।।
दीरघ उसास लेति कबहूं न सांस लेति
बेसुधि ह्वै जाति भयौ प्रान हू अधायो है ।।
कवी अविनास कहै नाथ नाथ स्वामी नाथ
टेरत ही टेरत सुकंठ भरि आयो है ।।
रतनावलि तुलसी के वियोग मह बौरी सी
जानि परै कबहूं विरोध उर आयो है ।।११५।।

दोहा

पति वियोग दुखिनि भई रतनावलि गुनधाम ।
सेवति हरि पति पादुका मौनहि मही सनाम ।।११६।।
बास करयौ रतनावली बन्धौ आज्ञा देहु ।
कबहु धरी भरताय इह आदर सहित सनेह ।।११७।।

गज रवि भुवन सुबीज तिथि, सित माधव भृगुनंद ।
योग सौम्य रतनावली बसी सरेवर चन्द ॥११८॥
नारि सियावन जोहरु नाना विध पद छन्द ।
निज अनुभव सिरजति रही रतनावलि तिय चन्द ॥११९॥
नग रस उदधि मही बरष भाद्र तीज भृगुवारि ।
निशयाम दीपे बने तुलसि विरागहि वारि ॥१२०॥

कवित्त

त्याग्यो परिवार ससुरारि घर द्वार धन
मनहि पछार नारि नारि नेह तोर्‌यो है ॥
जार्‌यो पै नारि बन मीनिमिसों तारन हार
सरवस बिसारि हरि सों नेह जोर्‌यो है ॥
मनही मन टेरें तुलसी अभिराम राम
कहत तोहि भूलि राम हों कुल बोर्‌यो है ॥
जसोहों तैसोहों तिहारो ही अविनाशराय
मोहि अपनाय हों जम सों मुख मोर्‌यो है ॥१२१॥
हीय धरि राम विचरत पुर गाम बन
आए हैं तुलसिदास पावन अवध धाम ॥
दूरहि तें औध देखि नैन भरि आये नीर
पुलकित सरीर ह्वै मनावत सीयराम ॥
सरयू अन्हाय जाय राम धाम धूरि धारि
राम के सदन जाय कीन्ह दंड ज्यों प्रनाम ॥
बोले अविनास प्रभु सरनागत तिहारो हौं
भक्ति वर देउ निज पूजौ मो मनोकाम ॥१२२॥
जहां जहां राम पद अंकित भूमि पाई सु
तहां तहां जाय जाय तुलसी नमाए राम ॥
कोटि कोटि जात हुइ जात पुलकित गात
स्रवत जात आंसु नैन चैन पावें विराम ॥
कहे अविनास पुनि बोले गदगद बानि
जोरि पानि कहै मोरि लेउ सुधि दया धाम ॥
मोहि ना बिसारो उद्धारो अब तिहारो आप
दया करि तिहारो हीय बैठो प्रभु आठो याम ॥१२३॥
करि कै द्वै मास औधवास श्री तुलसिदास
आए अविनास अपनाये तीरथराज ॥
राम विसराम भूमि जानि पानि जोरत जात
पुलकित गात जात आश्रम श्री भरद्वाज ॥
न्हाए त्रिवेनी जाय देखत घनी जोगि
सुरग निसेनी बेनी बनी सो सकति साज ॥

तहाँ मधि राम चित्रकूट वास कीनो पुनि
संकर मनाए जाइ कासी राम भक्ति काज ॥१२४॥
देखे पुनि तीरथ राम तीरथ सबै जाय
नाना गिरि कानन हू बैठि भजे सीय राम ॥
विविध व्रत विधान जप तप महान ध्यान
साधि अभिलास सही बरषा सात जाम ॥
सून्य वसु बद चंद चैत सित पाँचै गुरु
पाए श्री तुलसिदासफेरि श्री अवध धाम ॥
सात मास वास करि पाए फिरि सेस तीरथ
बान बसु बद भूमि आए पुनि कासी धाम ॥१२५॥

दोहा

तुलसिदास कासी पुरी बसे सुरसरी तीर ।
सतसंग हित लागी रहै भगत सन्त जन भीर ॥१२६॥
धरम करम बरनत कबौ, तुलसि परम अचार ।
ईस भगति महिमा कबौ बद पुरान अपार ॥१२७॥
बरनत कबहु सिव कथा राम कथा निज वास ।
भगति ग्यान रस संचरत नित नव तुलसीदास ॥१२८॥
वाराणसि बसि कीन्ह नित बहु बिध ग्रन्थ अपार ।
रामचरित इति मति सरस, तुलसी विविध प्रकार ॥१२९॥
चित्रकूट चलि जात सो, कबहुं अवध प्रयाग ।
बसहि अधिक सो सिवपुरी, करें राम अनुराग ॥१३०॥

कवित्त

कही एक पन्थी नन्ददास हू विराम सही
सतत बसैं ब्रज सो बहु दिन सों गेह त्यागि ॥
पुलके सुनि तुलसी जोन पथि नन्ददास
इमि अनुराग पाय तासु भए प्रेम पागि ॥
कही रमपाय आय अविनास देखौं जबी
छूटि भवबन्धन सों सोऊ भया भूरि भागि ॥
जेठ मास पाख सित सूर तिथि तीज बार
राम नन्द बेद चन्द बतसर पर्व सो लागि ॥१३१॥

दोहा

धारें अमित उछाह उर सुमिरि राम पदपद्म ।
रितु हिमन्त तुलसी चले नन्द मिलन ब्रज देस ॥१३२॥
गुन नग बेद धरा बरस सुकल मास कुजवार ।
तुलसीदास पंचमि सुतिथि पगे मधुपुरी द्वार ॥१३३॥
आनंद देखी मधुपुरी बृजबासीनि सुनि आय ।
नन्ददास अति मुदित भे राम भरत जिमि पाय ॥१३४॥

सुकवि नन्द तेहि पद गहे, कहि सब निज गृह गाथ ॥
बरस बरायो सूर को तुलसि सवायो माथ ॥१३५॥
तुलसि हि संग लै नन्द पे आय गोवर्धन धाम ।
तुलसि ससिधर रूप महं भये अनूप वर राम ॥१३६॥
कछु दिन करि बिसराम पुनि तुलसि सनुज निज संग ।
कृष्ण सुगत बरसत चले गोकुल सहित उमंग ॥१३७॥
तुलसी श्री विट्ठल दरस लहि अभिवादन कीन्ह ।
कहि गोसाईं प्रिय बचन बहुविध आदर दीन्ह ॥१३८॥
भये प्रानकी सहित तहं, विट्ठल सुत रघुनाथ ।
इष्ट नाम मय रूप कहं सम्मुख नवायो माथ ॥१३९॥
तब दिखाए सकल ब्रज श्री हरि लीला धाम ।
तुलसिदास हरषित भए, देखि धाम अभिराम ॥१४०॥
तुलसी कृष्ण पदावली सकल कियो आरंभ ।
अनुज भेंटि काशी चले भवति भवन के थंभ ॥१४१॥
सब संमिल संग संत चले तुलसी काशी धाम ॥
विश्वनाथ के दरस करि, लियो वास बिसराम ॥१४२॥
भजन करत निसि याम नित श्री तुलसी सत संग ॥
बने परम पथ पथिक बहु रंगे राम रस रंग ॥१४३॥
छर नव सवधि मही बरप मकर प्रयाग नहात ।
तुलसी धौमपुरी चले सुमिरत राम सिहात ॥१४४॥
रितु नव बैद धरा अवद राम नवमि मधुमास ।
बार बार मानस रचित किय कमबद्ध प्रकास ॥१४५॥
गमन व्योम उरचन्द सक मसित बैठ सुभ साथ ।
रामचरित भूपु तीज दिन पूर्‌यो तुलसीदास ॥१४६॥

छंद

श्री हरि भजन सेवन करत व्रत सतत नित तुलसी परयो ।
कछु बोध बसि बारानसी पुनि धौम रहि पूरन करयो ।
तेहि सुभग रामचरित्र मानस सरस समुई पथिक पग्यो ।
श्री राम भक्ति पियूष रस मय तासु स्रोता बहि चल्यो ॥१४७॥
पत्रमित विनय पद चरित राम उमा सुमपस पद करे ।
तुलसी सघन काशी पिराग सुकास करि मानस भरे ।
कमि बात कबहु चित्रकूटहिं नित्त राम कथा पढ़ें ।
जहं जहं रहें तुलसी तहां तहं भक्त स्रोता मन बढ़ें ॥१४८॥

दोहा

भेट भव्य मम बान महि, सक श्री तुलसीदास ।
नित नित राम कथा कहत चित्रकूट करि वास ॥१४९॥

तब तहँ आयो साधु इक राजा नाम सुभक्त ।
सदा साधु सेवा निरत राम नाम अनुरक्त ॥१५०॥
जेहि अहीर बर कुल भए नन्दबबा बड़भाग ।
राजबीर तेहि कुल भयो कह्यो नाम गुहस्याम ।१५१॥
ब्रजबासी काशी भगत सुकबि सन्त सुपयाम ।
राजबीर आभीर सोइ, राजा साधु कहाइ ॥१५२॥

सवैया

ऊरध पुंड्र बिसाल सुभाल जटा सुठि स्याम महा छबि छाजै
कंठ लसै तुलसी बर माल सदा कटिवास कोपीन सुसाजै
सामल देह सनेह को गेह धरे जनु देह बिदेह बिराजै
संतनि हाथ बिक्यो अबिनास सो राजा भयो तनु सन्तन काजै ॥१५३॥

दोहा

सुनि सुनि तुलसी सुयश सरस भाषा राम समाज ।
तुलसी स्याम बिराम मणि, भगति मह्यौ बिसराम ।१५४॥
अबिनय तुलसी पद परसि इकदिन राजा भोर ।
छोड्यो मोर कुटी चलो पुजवहु आसा मोर ॥१५५॥
तुलसी सुनि अबिनय गिरा कीन्ह गौन स्वीकार ।
भगत साधु दुइ संग चले सुमिरत जगदाधार ॥१५६॥

कबित्त

पयस्विनी अघसिनी कलिम्बिनी छुरी है जहाँ
तासु पार्श्व कुंज पुंज फूल बाटिका सुहात ॥
कदली मधूक अंब निम्बु जंबु सोहैं तरु
सिंसिपा बदरि तिमि तुलसी छुप अपार ॥
अमित लता बितान पटी तहाँ पर्नकुटी
अपटी अमित धाम मुनिन मन लुभात ॥
तहाँ अबिनास राम पुण्य रासि राजा साधु
करै बास सन्तन पद सेवा करि सिहात ॥१५७॥
आवैं जासु पनकुटी सो न दुख पाव कबौ
आपनी कुटी समान सन्त पावते सुपास ॥
भिक्षा महि लाय पति साधु पाइ जावैं कोउ
नेहसों जिमाव असें आपु बारत सपास ॥
रोगी होइ साधु कोउ तासु उपचार करै
घूमि घूमि भेंट ओटि ल्यावैं अनेक पास ॥
कबहू रिसाय न मनपाय अबिनास राय
सरल सुभाय पाय होत हिय हुलास ॥१५८॥

दोहा

जमुना तीर अरण्य मह, राजापुरी सुहाय।
सनि दिन रवि तिथि जेठ सित तुलसि बिराजे आय ॥१५९॥
लखि पावन एकान्त थल तुलसी मन गो भाय।
भजत राम सिय बसि तहाँ जमुना नीर नहाय ॥१६०॥
राधा सेवत निसि दिवस हरि तुलसिहि मन भाय।
सीय राम माया सुनत तुलसी भुप हरषाय ॥१६१॥
तुलसिदास का दास मुनि माधव भक्त अनन्त।
यही वही भुप एक भुप धनी नारि नर सन्त ॥१६२॥

कवित्त

सुंदर सुजान मतिमान भाग्यवान बाहु
भगत जन पयान तेहि मने मान मानिये ॥
मान परवीन हरिध्यान लवलीन कवि
विषय विकार हीन छीन छिप जानिये ॥
मुंडित सीस मुच्छ औ सेत सत केस बस
पीन देह भूम कटि मोर त्यों बखानिये ॥
कहै अविनास भास तिलक तुलसिदास
सेत कटि अजोबास तासु पहचानिये ॥१६३॥
श्री श्री तुलसिदास दर्सन पदपर्सन सों
होत मति प्रकर्सन मन कर्म घोर काम ॥
छूटत कुविचार त्यों टूटत चित विकार
फूटत पहार पाप ताप अविनासराय ॥
नाना विध जासु मुख सुनत श्री राम नाम
होत अबल पावन मन भक्ति उमगाय ॥
होत जनमान धन्य जासु सतसंग पाय
जासु चरित्र पावन जन सक कौन गाय ॥१६४॥
सारद मयूख है कि बालमीकि नारद है
बसिष्ठ है वरिष्ठ कहौं कि व्यास है महान ॥
कहौं सुकदेव है कि सूत है प्रभूत मति
वक्ता प्रवीन प्रति बैन हूं सुधा समान ॥
आगम पुरान सर्व वेद भेद तत्व ग्यान
महा तप निधान सो धर्म जनु मूर्तिमान ॥
धन्य श्री तुलसिदास भासन जगतभास
अपरे अविनास सो करन चरण ध्यान ॥१६५॥

विजय छन्द

राजन राजपुरी जनमौं तुलसी करता कछु घोर कही है ॥
कालिंदि कूल कुटी कम कीरति नाम सुभद छिपानि कही है ॥

यावत बात सिद्दात सुहात अनेकन भक्तन्ह खाई मही है ॥
श्री तुलसी कवि कीरत हेतु भयी सिरजी अविनास मही है ॥१६६॥

कवित्त

माता बिन राम मोम भक्त लोग माप जहाँ
देव लोग सरवा के सौत बहिबो करें ॥
साधु पर्न मौन मौन साक डारि चादर भूम
साधु गुर मीत लेस पुंज रहिबो करें ॥
देपी अविनास श्री तुलसीदास रिद्धि सिद्धि
कोटि अन्नपूर्णा जहाँ साज सहियो करें ॥
राजा सो साधु साधु सेवक सुभक्त साधु
निरपि साधु सेवा साधु कीरति कहिबो करें ॥१६७॥
जंगल में सुमंगल कीनो श्री तुलसिदास
साधु परताप पाप पुंज जरिबो करें ।
दोहति पयस्विनी रविनन्दिनी तापहारि
मई मई मसकुटी जहाँ परिबो करें ॥
बाप्यो रामदूत धाम भक्त मन पूर्जे काम
भक्त जहाँ राम नाम जाप करिबो करें ।
तुलसी ज्यों व्यास सुमु राजाहू परीछित ज्यों
देखे अविनास हीन भक्ति भरिबो करें ॥१६८॥
राजापुर ग्राम राजा हू कृतारथ कीन
सेवाश्रम दीन पीन कीन कीरति प्रकास ।
भक्त मन मीर जहाँ रही ना उसीर कवी
जमुना के तीर करयो दुखो नैमिष निवास ॥
राम ध्यान ध्यान ध्यान जप तप सार्थे लोग
बेद औ पुरानन को सहरयो बदं उजास ।
मार्पे अविनास देवि देपि ना अघाए नैन
समत अघाए बैन ऐसे श्री तुलसिदास ॥१६९॥

दोहा

तिथि भू सर महि तक बरष असित माघ रविवार ।
पंचमि तिथि अविनास हों भयो तुलसि दरबार ॥१७०॥

अथवा छन्द

साधु भरा सर भू सक फागुन मास ।
सुकुल पच्छ तिथि तृतिया सुक्र प्रकास ॥
हनुमत मन्दिर बैठे राजा साधु ।
भजत राम सिय हनुमत प्रेम अगाधु ॥
पद अवगाहत साधु तजि रघुपति धाम ।
भई भोर की बिरियाँ मति अभिराम ॥

सुनि उठि आए तुरतहि तुलसीदास।
बोले बलि बलि राजा भए उदास॥
कुटी कुटी महं छायो सोक अपार।
निरमोही हू बहावत दृग जल धार॥
सुनि सुनि रोरी मस्त भगन की भीर।
तेहि धुन गावति नैन बहावति नीर॥
आए चहुँदिसि ग्राम निवासी लोग।
करि करि तेहि सुधि सबै मनावत सोग॥
जुरि मिलि भगतन विरच्यो तासु विमान।
ताहि जमुना धरि तट आय मसान॥
तुलसीदास करायो पुनि भंडार।
तब अविनास बिलोकी भीर अपार॥
तुलसी पाहन मूरति तासु गढ़ाय।
हनुमत मंदिर थापी हीय सिहाय॥१७१।

कवित्त (१ री पोथी में)

बानु बरा उरग भूमि वर्ष सित फागुन की
तीज तिथि सुक्रवार भयो नृप राइ भाइ।
पंचनी सुनु के सदन रामध्यान मगन
बैठे जब राजा साधु मोर भावन समाइ॥
रटत राम नाम सो चले रामधाम गए
देखि देखि आचरज कर्यो साधु समुदाय।
देखे जो तुलसिदास अकुलाए भे उदास
धन्य धन्य राजा साधु कह्यौ अविनास राइ॥१७१॥
प्रथमहि चित्रकूट देखे हौं तुलसिदास
देखे पुनि रामकुटी रामसिंह संग जाय।
परिचै मो कीनो मित्र कीनो बहु पूछे मोहि
आदर बहु कीनो सो लीनो हिय लगाय॥
देखि अनुपम्यो मोर हीय प्रेम पाग्यो पुनि
राजासाधु रामधाम जात सुनी देखे धाम।
* नगर नाग उरग ईस ऊर्ध्व सित नौमि कच्छ
तीन फेरि कीय छग' मास अविनास राम॥१७२॥

दोहा

पन्द्रह सौ बाइस सक पावन सावन मास।
अमा सोम दिन पुनि भयो तुलसी उरसंग भास॥१७३॥

---

*१ नंद चंद उरग सोम कातिक प्रथम नौमि।
सोम करि कीन संग भाष अविनासराय॥

मास अठाई संग रह्यो राजा कुटी सुवास ।
ताहि बरष काशी भए, कातिक तुलसीदास ॥१७४॥
फेरि माहि हौं अहि रह्यौ, तुलसी दरसन चाहु ।
तदपि रह्यो मो मन सदा दरसन करन उछाहु ॥१७५॥
राजा साधु सुनाम सों राजापुर निरमाइ ।
तुलसी निज मरजाद करि, काशी भए छिपाइ ॥१७६॥
आवत जात मुमच्छ यहँ अवध करत बिसराम ।
जोग जाग जप व्रत करत भजत विविध विध राम ॥१७७॥
तुलसी पदरज पावनी राजाभूमि ललाम ।
राम भगति बरदायनी तपोभूमि अभिराम ॥१७८॥
होहुँ तुलसि सतसग नहिं धनि धनि भो बड़भाग ।
मन व्रत तीरथ बधि बड़ी बढ्यौ राम अनुराग ॥१७९॥
बसु दृग सर भू बरष सनि पूनम भाद्र मास ।
तीरथ दरसन हित चल्यो त्यागि सिहुड़ा वास ॥१८०॥

कवमालिका छन्द

सिहुड़ा बन सिंह क्षत्रिय सर्वजीत पमार ।
जासु पावन चरित सुन्दर राजसिंह कुमार ॥
धीर बिजयी वीर धरमति सत्यप्रन गुनधाम ।
सर महीसर मत्त कवि मन गुनिन पूरन काम ॥
पावत सबै सन्तोष जन गम आइ जासु दुआर ।
धम कर्म प्रवीन पाखण्डीन परमोदार ॥
अविलास सुवगन हंसनि बोलनि जासु सील सुभाय ।
सुमिरतु रह्यो मन मोर चाहतु जाके पंथ अपार ॥१८१॥

दोहा

भरत खंड पश्चिम दखिन उत्तर हिम गिरि जाग ।
कीन वास तीरथ दरस सुर हरि पद मन लाग ॥१८२॥
बेद नयन सर महि बरष पूनम कातिक मास ।
सितदम गुरु तासी सदन पायो हौं अनिवास ॥१८३॥
काशी आयो पहार को भयो उत्तर एक मोद ।
बरष अठाई कुल रह्यो कियो राम पुनि गोद ॥१८४॥
सर गुन बान धरा बरष सातैं माधव मास ।
असित पच्छ शनिवार दिन हर्षसिंह सुरपुर वास ॥१८५॥
सावत दई हर्षसिंह सुत कालसिंह गुन धाम ।
बल विवेक विद्या विनय परम धाम अभिराम ॥१८६॥
तिन बहु धन धरनी दई, राख्यो करि सनमान ।
तासी तजि जाउ न कहूँ रह्यो भयो भगवान ॥१८७॥

ताही मनुज सरूप गृह भयो कौसिल्यानन्द ।
सुभ सुभ कीर्तहिं करतसिंह सुवन सहित सानन्द ॥१८८॥
धनि धनि राजी धाम वह जहँ धन धार चरित्र ।
भए जासु सुत करन से तुलसी से दौहित्र ॥१८९॥
तुलसी सी दुहिता जहाँ भक्त प्रशंसिनी धन्य ।
वीर जननि दुर्गा भई करन मात तिय गन्य ॥१९०॥
धनि धनि श्री तुलसी भई धनि श्री तुलसीदास ।
जिन जगती तम बिसतर्यो कीरति कलित प्रकास ॥१९१॥
नंददास चंदहास सुत कृष्णदास व्रजचन्द ।
भए बुलावन बार बहु श्री तुलसिहि नंद नंद ॥१९२॥
भई धन्य भारत मही तुलसीदासहिं पाय ।
भगति ग्यान मंदाकिनी जिन जग दई बहाय ॥१९३॥

छन्द

होत न जो तुलसी जग में हिंदुवान की कानिहि को धरतो ।
वेद पुरानन की चरचा करचा अबिनास को आचरतो ॥
मोह मयी मदिरा मद मत्त अचेतन चेतन को करतो ।
मानस रामपियूष पिआइ सो जीवन जीवन को धरतो ॥१९४॥

छन्द

तुलसी सम धर्म धुरीन सुधी
जन होयँ मुमुक्षु गुनी गुरु ग्यानी ।
रत्नावलि सी कुल लाजवती
तिय होयँ सुशील सती पुनपानी ॥
तुलसी सम पूत जनें जननी
हिंदुवान विनीत भजी हरि ध्यानी ॥
अबिनास अकब्बर से अवनीस
रहे जिनकी जय कीर्ति बखानी ॥१९५॥
धनि धन्य भए तुलसी जग में
जस कीरति जासु रहै बिरमाई ।
नृप पालहिं राम समान प्रजा
मिटि जाय दसानन से दुखदाई ॥
सब ही घर होयँ भरत से भ्रात
विमात सुमित्रा समान सुहाई ॥
अबिनास सु केशव से कवि भानु
प्रकाश करैं गुन धाम सुनाई ॥१९६॥

कवित्त

बीती दसमाई वीर मंडित बुंदेलखंड
कालिंजर माहि धरि विदुषा कीनो बास ।

पाए बहु बीर धीर मानी मरदानी जहाँ
साधु श्री गुनग्य के कविमंजन पूजें आस ॥
देवे बहु राजद्वार जाय अविनास राय
पायो बहु दान मान कहुँ भय को प्रकास ।
दीन जोरछेम सो गुनग्य कवि केसव सो
राजा सो उदार साधु देख्यो हौं न सकदास ॥१९७॥
राजा महाराज श्री जहाँगीर भूपतिराज
कासीपति कर्मसिंह सोरंकी सुभयवास ।
पन्द्रह सौ बयालीस बप सक सुखकार
बीज तिथि स्याम पाप बरनौं भव भूप मास ॥
गुरु पास जस माध्यो हैपि राख्यो जसो होहु
बीच अभिलाष्यो लिख्यो चारित तुलसिदास ।
धर्यो छबीलो छिति छेम में छपाकर सो
मासे तम रासि अविनास तुलसी प्रकास ॥१९८॥

दोहा

लिख्यो मतिहि सद्धेर बिधि तुलसी तत्व प्रकास ।
पढ़ें सुनें अविनास जे पावें भगति बिलास ॥१९९॥
धन्य राम पद भूप कमल अलि श्री तुलसीदास ।
जासु रुचिर पावन चरित मति अति मो अविनास ॥२००॥

कलमाला छन्द

जय जग माई जानकी रमन दुरित दारिद हरन ।
करो सदा अविनास हिय बास आस पूरन करन ॥२०१॥

इति श्री अविनासराम कृत तुलसीप्रकाश समाप्तम् ।
संवत् १८५९ जेठ बदि १० अमावस सोमवार ॥
लिखितम् भोपीराम मिसुर ॥ शुभम् ॥

टिप्पणी

पृष्ठ ४९१ की अन्तिम पंक्ति में अन्य प्रति के पृष्ठों का उल्लेख है। ये पृष्ठ ४९२ की बीसवीं पंक्ति में 'जीतेसि नाग नगर' इन शब्दों से प्रारम्भ होकर पृष्ठ ४९२ की बारहवीं पंक्ति के 'देस मास तिथि बिरंचिहु नाहीं । मीं' समाप्त होते हैं। ये पृष्ठ पुष्पिका के पश्चात् मुद्रित होने चाहिए थे।

शर्त वाजिब उल अर्ज़ मौज़ा मझगवाँ उर्फ राजापुर

मुहाल मुतफ़र्रिक़ परगना पैलानी तहसील मऊ क़िस्मत करौली ज़िला बाँदा मस-मूला मिस्ल मवास बंदोबस्त बाबत सन् १८८० ८१ ई० बाबत १२८८ फ़०

चूँकि इस वाजिब उल अर्ज़ को ज़िमींदारान व काश्तकारान व पटवारी ने हमारे सामने तसदीक़ किया लिहाज़ा हुक्म हुआ कि शामिल मिस्ल रहे।

आज मरक़ूम १९ मार्च सन् १८७१ ई० Sd. (Illegible) Seal

बाब अव्वल और मोइयत हक़िक़यत के दस्तूरात

दफ़ा १ मुहाल की मोइयत

मुहाल हाज़ा बशक्ल पट्टीदारी नामुकम्मिल मुनक़सिम ऊपर चार यानी व पाँच पट्टियात और एक पट्टी शामिलात मुहाल के है जिसमें दो मक़बूज़ा हैं।

दफ़ा २ तरीक़ा वसूली व अदाइ मालगुज़ारी सरकार

पट्टियात मुनक़समा में मालकान पट्टी इकबाई व शामलात मुहाल में हर नम्बरदारान काश्तकारान से लगान वसूल करके मालगुज़ारी हस्ब इक़सात ज़ैल दाख़िल ख़ज़ाना सरकारी करते हैं—

ख़रीफ़	०—१०—०	रबी	०—६—०
१५ दिसम्बर	०—१०—०	१५ मई	०—६—०

दफ़ा ३ दस्तूर ख़ास बाबत तक़र्रुर पटवारी

व हालत ख़ाली होने ओहदा तक़र्रुर पटवारी मंज़ूरी साहब कलक्टर बहादुर हस्ब क़ानून मुरव्विजा वक़्त होगा।

× × ×

दफ़ा १० कोई दूसरा रिवाज या इस्तहक़ाक़ जोकि मुहतमिम बंदोबस्त मुन्दर्ज करना मुनासिब समझता हो

अगर कोई शख़्स बग़रज़ रिहायश चाह या तालाब पुख़्ता या बाग़ बनावे तो बिला इजाज़त ज़मींदार व न देने किसी हक़ के आराज़ी ग़ैर मक़बूज़ा में बना सकता है। और इस मुहाल में यह रिवाज है कि काश्तकारान मौरूसी बवक़्त ज़रूरत बवजह शादी या ग़मी व ग़मी अपनी काश्त को रहन करके मुर्तहिन का नाम दर्ज जमाबंदी करा देते हैं और जब पर ज़र्रा अदा करे मुर्तहिन से काश्त मौरूसी वापस लेते हैं। और मुर्तसिला १३१६॥)॥ मुतस्सिला ज़मींदारान व १८८॥।=) मुनक़िस्मा ख़ास बिसावन व मथादीन व रामलाल व प्रयाग साकिनान चेला गोसाईं तुलसीदास कटरा व ख़ज़ाना व बाज़ार व पैदाइश व सिरहाई से हक़ूक़ पाते हैं।

दस्तख़त ब ख़त उर्दू	दस्तख़त ब ख़त उर्दू
फरज़न्द अली मुहर्रिर	मसूदमास मुहर्रिर
सफ़ाई व मुक़ाबला	मुक़ाबला
दस्तख़त ब ख़त उर्दू	दस्तख़त ब ख़त उर्दू
(पढ़े नहीं जाते)	(पढ़े नहीं जाते)

Report on the Examination of manuscript volumes of 'Bal kand, 'Aranyakand' of Tulsikrit Ramayan and Bhaktmal by Shri Seva Das received from Dr Bharadwaj

The manuscript volume of Aranyakand 'Balkand of Tulsikrit Ramayan and Bhaktmal by Shri Seva Das Ji were examined in this Department. These three manuscripts are written with carbon ink from which any dating evidence is not possible. The paper of all these manuscripts has been found to be all rag and is sized with starch All rag, starch sized paper has been in use since ancient times (13/14 century) upto the present period for writing purposes and as such it is not possible to derive any conclusion regarding the date of these manuscripts from the above observation

Colophons on page 124 of manuscript Balkand and page 28 of manuscript Aranyakand have been also examined. The reddish tinge underneath the black writing in the end three lines on page 124 of 'Balkand manuscript does not appear to be from any previous writing Perhaps red colour has been used as a back ground for the colophon in black ink as a decoration. However the end four lines of colophon on page 28 of manuscript Aranya kand appear to be rewritten in blank ink over red writing. Some of the alphabets of the previous writing in red ink could be distinctly seen up to the 1st and 2nd line but from the middle portion of the third line upto the end of f urth line there is no clear indication of overwriting since the red ink appears to have faded in these portions. However light faded impression of digit 4 is visible slightly shifted from the impression of the digit 4 in black ink in the year inscription 1613 (in Hindi numerals)

Perhaps a calligraphic study of these manuscripts may help their dating and the Department of Archaeology may be in a position to help in this matter

K. D Bhargava
Director of Archives
Government of India.

D O.No.P/11/59-J DGA

From Dr B. Ch Chhabra M.A,
M O L Ph D (Lugd.), F.A S
JOINT DIRECTOR GENERAL OF
ARCHAEOLOGY IN INDIA
New Delhi 11 the 22nd September 1959

Dear Dr Bharadwaj,

Please refer to your letter dated the 21st September 1959 I examined the manuscripts in the original of the following which you had brought personally with you

1 The Bala Kanda of the Rama Carita Manasa dated 1643 V.E

2 The Aranya Kanda of the Rama Carita Manasa, dated 1643 V.E.

3 The 'Bhaktamala by seva dasa, dated 1894 V.E

I hereby confirm what I told you about the genuiness of the manuscripts. In each case the colophon and the rest of the text on the last page appears to me to be by one and the same hand. In the case of the third manuscript namely that of the Bhaktamala the top and bottom notes and also the marginal notes on page 164 and the rest of the text also appear to be by one and the same hand

The Devanagari characters used in all the three manuscripts appear to be of the period noted in each case.

The four photographs kindly sent by you are hereby returned.

Yours sincerely
B. Ch Chhabra
Joint Director General
22-9-1959

Dr R. Bharadwaj
14/29 Shakti Nagar
Delhi.
Encls : 4 Photographs.

अध्ययन-सामग्री

(क) हस्तलिखित ग्रन्थ

बालकाण्ड, रामचरित मानस १६४१ वि० तुलसीदास जी के द्वारा अपने भतीजे कृष्णदास को भेंट।

अरण्य काण्ड रामचरित मानस १६४१ तुलसीदासजी के द्वारा अपने भतीजे कृष्णदास को भेंट।

भ्रमरगीत नन्ददास-कृत कृष्णदास के शिष्य बालकृष्ण के द्वारा प्रतिलिपि १६७२ वि०।

सूकर-क्षेत्र माहात्म्य कृष्णदास-कृत मुरलीधर चतुर्वेद की प्रति १८०९ वि०।

रत्नावली चरित मुरलीधर चतुर्वेद-कृत १८२९ वि०।

रत्नावली चरित मुरलीधर चतुर्वेद-कृत लिपिकार रामवल्लभ मिश्र १८६४ वि०।

दोहा रत्नावली, रत्नावली-कृत २०१ दोहों का संग्रह लिपिकार गोपालदास १८२४ वि०।

दोहा रत्नावली रत्नावली-कृत २०१ दोहों का संग्रह लिपिकार गंगाधर १८२९ वि०।

रत्नावली लघु दोहा संग्रह रत्नावली कृत १११ दोहों का संग्रह लिपिकार ईश्वरनाथ पण्डित १८७५ वि०।

रत्नावली लघु दोहा संग्रह रत्नावली-कृत १११ दोहों का संग्रह लिपिकार रामचन्द्र १८७४ वि०।

कृष्णदास वंशावली कृष्णदास-कृत लिपिकार मुरलीधर चतुर्वेद १८२९ वि०।

अष्ट सखामृत प्राणेश कवि-कृत १८६५ वि० की प्रति।

सूकर क्षेत्र माहात्म्य कृष्णदास-कृत लिपिकार शिवसहाय १८७० वि०।

वर्षफल कृष्णदास कृत लिपिकार रघुनाथ १८७२ वि०।

वर्षफल जगन्नाथ मिश्र (आगरा) की प्रति १९२९ चैत सुदी द्वादशी शनिवार।

सेवादास की टीका नाभादास के भक्तमाल पर प्रियादास की भक्तिरस बोधिनी टीका पर टीका सेवादास कृत १८६१ वि०।

ज्ञान दीपक तुलसीदास-कृत लिपिकार मनोहर पांडे लगभग १८८१ वि०।

विष्णुस्वामी चरितामृत हरिहर भट्ट कृत लिपि तिथि अज्ञात।

तुलसीकृत रामायण फारसी लिपि १२११ हि० बहूम रबिउल अव्वल।

(ख) मुद्रित ग्रन्थ और लेख

अथर्व वेद भाष्य १९४१ ई०।

अद्भुत रामायण ।
अध्यात्म रामायण गीता प्रेस गोरखपुर १९५४ ई० ।
अयोध्या माहात्म्य श्री वेंकटेश्वर प्रेस गोरखपुर, ५६ वि० ।
अवस्थी सद्गुरुशरण तुलसी के चार दल, ई० प्रे० १९३५ ई० ।
अवस्थी हरिकृष्ण तुलसी व्यक्तित्व और विचार विद्यामन्दिर लखनऊ, १९५२ ई ।
अविनाशराय तुलसी प्रकाश लक्ष्मी प्रेस कासगंज, प्रथम संस्करण १९५१ ई० द्वितीय संस्करण जनवरी १९५४ ई ।
अहिर्बुध्न्य संहिता अडयार १९१६ ई० ।
आत्रेय डॉ बी० एल द फिलॉसफी ऑव योग वासिष्ठ अडयार, १९३६ ई०, योगवासिष्ठ एण्ड इट्स फिलॉसफी इण्डियन बुक शॉप बनारस ।
आयंगर पी० टी० श्रीनिवास आउट लाइन ऑव इंडियन फिलॉसफी इंडियन बुक शॉप वाराणसी १९०९ ई० ।
आर्केलोजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, जिल्द १ १८७१ ई० ।
इन्द्रदेव नारायण नवरत्न (तुलसी चरित की समालोचना) मर्यादा मई १९१२ ई ।
इम्पीरियल गजेटियर ऑव इण्डिया च प्र० संकिण्ड प्रॉविंशल सिरीज जिल्द २१ कलकत्ता १९०८ ई० ।
ईशाद्यष्टोत्तर शतोपनिषद् निर्णयसागर प्रेस बम्बई, १९१७ ई० ।
उत्तरार्द्ध भक्तमाल प्रकाशक रा० ब० श्री रामरण विजयसिंह खड्ग विलास प्रेस बाँकीपुर १९२७ हरिश्चन्द्राब्द ४१ ।
ऋग्वेद औंध १९४० ई ।
एटकिंस ए जी० द रामायण ऑव तुलसीदास हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस नई दिल्ली १९५५ ई० ।
एटकिंसन एडविन टी० :
१ स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्शन एण्ड हिस्टोरिकल अकाउंट ऑव द नॉर्थ वेस्ट प्रॉविंस ऑव इंडिया जिल्द १ बुन्देलखण्ड इलाहाबाद १८७४ ई०
२ अलीगढ़ १८७५ ।
३ वही जिल्द ४ आगरा डिवीजन १८७६ ई ।
एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका लन्दन जिल्द २२ चतुर्थ संस्करण १९२९ ई० ।
एन्युअल प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑव द सुपरिंटेंडेंट ऑव हिन्दु एण्ड बुद्धिस्ट मोनुमेंट्स नॉर्दर्न सर्किल फ़ॉर दि ईयर एण्डिङ ३१ मार्च १९१९ ई० लाहौर १९२० ई० ।
अंजनीनन्दन शरण मानस पीयूष अयोध्या तृतीय संस्करण २००८ वि० ।
कल्याण गोरखपुर, जिल्द ९ १ १४, १ २० ९ २५, १ ।
कारपेण्टर, जे ई थीइज्म इन मिडिवल इंडिया ।
कार्पेन्टर जे० एन० थियॉलोजी ऑव तुलसीदास द क्रिश्चियन लिटरेचर सुसाइटी फ़ॉर इण्डिया १९१८ ई० ।
ी एच० विल्सन

१ हिस्ट्री ऑफ़ इंग्लिश लिटरेचर द क्रिश्चियनिटी ऑफ़ चेंज, टी० सी० एण्ड ई० सी० जैक लि० लन्दन १९११ ई०।

२ द क्रिश्चियनिटी ऑफ़ चेंज मैकमिलन एण्ड कम्पनी १९१४ ई०।

किंकेड सी० ए० आउटलाइन ऑफ़ इण्डिया (होम लाइब्रेरी क्लब) तुलसीदास।

किशन लाल रामचरितमानस सटीक बम्बई १९५६ वि०।

की एफ० ई० हिन्दी लिटरेचर १९२० ई०।

कुरान, द होली सम्पादक रॉडवल जे० एम० डेन्ट, लन्दन १९११ ई०।

'कुमार' रामकुमार तुलसी का गवेषणात्मक अध्ययन, सरस्वती पुस्तक सदन आगरा २०१२ वि०।

क्रु, एफ० ए०, ई० गेयम एस आउट लाइन ऑफ़ मॉडर्न नॉलेज विक्टर गोलैंज लि०, लन्दन १९३१ ई०।

केशवदास कविप्रिया, सम्पादक लाला भगवानदीन मेडिकल प्रेस वाराणसी वैक्र १९८२ वि०।

केसरी नारायण शुक्ल डॉ० मानस की रूसी भूमिका (ए० पी० बरान्निकोव) अनुवाद विद्यामन्दिर लखनऊ १९५५ ई०।

गर्ग संहिता वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई।

गणेशीलाल लाला श्रीमद् गोस्वामि तुलसीदासजी का जीवन-चरित्र गणेशीलाल लक्ष्मीनारायण मुरादाबाद १९९१ वि०।

गांधी, मोहनदास करमचन्द राम-नाम दि इनफ़ॉलिबिल रेमेडी। भारत टी० हिंदुस्तानी कराची १९४७ ई०।

ग्राउज़ एफ० एस० (१) रामायण ऑफ़ तुलसीदास रामनारायणलाल इलाहाबाद सप्तम संस्करण १९३७ ई० पंचम संस्करण १८९१ ई०।

(२) द प्रोलोग टु द रामायण ऑफ़ तुलसीदास जे० आर० ए० एस० बंगाल जिल्द ४५, १८७६ ई०।

ग्रियर्सन सर जॉर्ज अब्राहम

(१) द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता १८८९ ई०।

(२) तुलसीदास जे० आर० ए० एस० १९०३ ई०।

(३) नोट्स ऑन तुलसीदास इण्डियन एण्टिक्वेरी जिल्द २२ १८९३ ई०।

(४) द मिडीवल वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान विद् स्पेशल रेफ़रेंस टु तुलसीदास, अन्टिव इंटरनेशनल कांग्रेस ऑफ़ ओरियेन्टेलिस्ट्स वियना १८८६ ई०।

गीता श्रीमद्भगवद् गीता प्रेस गोरखपुर १९९१ वि०।

ग्रीव्ज़, एडविन

(१) गोसाईं तुलसीदास का जीवन-चरित्र नागरी प्रचारिणी पत्रिका १९५५ वि०।

(२) ए स्केच ऑव हिन्दी लिट्रेचर क्रिश्चियन लिट्रेचर सोसाइटी १९१८ ई०।
गुप्त डॉ० दीनदयालु
(१) अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, २००४ वि०।
(२) तुलसीदास और नन्ददास के जीवन पर नया प्रकाश हिन्दुस्तानी, अक्तूबर १९३९ ई०।
(३) गोसाईं तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावली हिन्दुस्तानी, जनवरी, १९४०।
(४) महाकवि नन्ददास का जीवन चरित्र हिन्दुस्तानी जनवरी १९४१ ई०।
गुप्त डॉ० माताप्रसाद
(१) तुलसीदास प्रयाग विश्व विद्यालय हिन्दी परिषद् मई १९४२ ई० और सितम्बर १९५३ ई०।
(२) सोरों में प्राप्त गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त से सम्बन्ध रखने वाली सामग्री की बहिरंग परीक्षा सम्मेलन पत्रिका अगस्त-सितम्बर १९४०।
(३) सोरों में प्राप्त गो तुलसीदास के जीवन-वृत्त से सम्बन्ध रखने वाली सामग्री की अंतरंग परीक्षा सम्मेलन पत्रिका फाल्गुन-चैत्र १९९७ वि०।
(४) तुलसी का अध्ययन हिन्दुस्तानी अक्तूबर १९३१ ई०।
(५) रामचरित मानस का पाठ हिन्दुस्तानी अकादमी उ प्र० २० ५ वि०।
(६) तुलसी संदर्भ १९५५ ई०।
(७) श्री रामचरित मानस साहित्य कुटीर प्रयाग १९४९ ई०।
गुप्त डॉ० श्यामलाल
(१) तुलसीदास का जन्मस्थान विशाल भारत दिसम्बर १९४० ई०।
(२) साध्वी रत्नावली नवीन भारत अगस्त ११ सन् १९३८।
(३) श्री रत्नावली के दोहे नवीन भारत अगस्त और अक्तूबर १९३८।
गुलाबराय तुलसीदास का जीवन-वृत्त तुलसीदास एक विश्लेषण पब्लिकेशंस डिवीजन १९२९ ई०।
गौरीश्वर सिंह गोरीश्वर विनोद मडिकल हॉल प्रेस बनारस १९४५ वि०।
गौड़ रामदास
(१) श्री रामचरित मानस की भूमिका।
(२) रामचरितमानस (मूल) हिन्दी पुस्तक एजेंसी कलकत्ता तुलसी संवत् ३०६।
गौड़ होरीलाल शर्मा मूल गोसाईं चरित्र अथवा मूल गोसाईं चरित्र नवीन भारत १९४१ ई०।
चतुर्वेद, महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा गोस्वामीजी के दार्शनिक विचार, तुलसी ग्रन्थावली।
चतुर्वेदी परशुराम
(१) उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, भारती भंडार प्रयाग २००८ वि०।
(२) मानस की राम-कथा किताब महल, प्रयाग १९५३ ई०।
चतुर्वेदी पुरुषोत्तम शर्मा रत्नगंगाधर ना० मा० प्र० सभा।

चरक चरक संहिता निर्णय सागर प्रेस बम्बई १९४१ ई० ।
चौबे बिहारीलाल तुलसी सतसई, संक्षिप्त टीका सहित बेप्टिस्ट मिशन प्रेस कलकत्ता
१८९७ ई ।
चौबे शम्भु नारायण
(१) रामचरितमानस (संशोधित मूल) नागरी प्रचारिणी सभा काशी २०१२ वि० ।
(२) रामचरित मानस के प्राचीन क्षेपक नागरी प्रचारिणी पत्रिका १९९८ वि० ।
(३) मूल रामचरितमानस की संख्या और विषयानुक्रमणी नागरी प्रचारिणी पत्रिका १९९८ वि० ।
(४) मानस पाठ भेद ना० प्र० स० १९९९ वि० ।
जगदगस्वामी पृथ्वीराज रासो काशी नागरी प्रचारिणी सभा ।
जनल आव द रॉयल एशियाटिक सुसायटी ऑव बंगाल १९०१ ई० ।
जानकीदास रामायण मानस प्रचारिका नवलकिशोर प्रेस मार्च १८८५ ई० ।
ज्वालाप्रसाद मिश्र तुलसीकृत रामायण संजीवनी टीका वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई
१९०४ ई० ।
जियालाल त्रिपाठी कलाम्बुधि नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, १८६९ ई० ।
जैन, डॉ० विमलकुमार तुलसीदास और उनका साहित्य साहित्य सदन देहरादून
१९५७ ई० (२०१४ वि०) ।
जोशी और मारवाड़, प्रो० सीताराम जयराम और प्रो० विश्वनाथ संस्कृत साहित्य
का संक्षिप्त इतिहास ।
टंडन डॉ० हरिहरनाथ वार्ता साहित्य का जीवनी-परक अध्ययन भाग १ २ आगरा
विश्वविद्यालय १९५९ ई० ।
ट्रैफिक कमेटिशन रेलवे बोर्ड १९११ ई० ।
टंडन डॉ० प्रेमनारायण : सूर की भाषा हिन्दी साहित्य भण्डार लखनऊ नवम्बर
१९५७ ई० ।
डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑव द युनाइटेड प्रॉविंसेज जिल्द २१ बाँदा १९०९ ई०
डिस्ट्रिक्ट गजेटियर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, एटा १९११ ई०
डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, अलीगढ़ १९ ६ ई० ।
तिवारी प्रेम कृष्ण स्रोतों में प्राप्त गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त से सम्बन्ध
रखने वाली सामग्री की बहिरंग परीक्षाएँ, नवीन भारत १५ जनवरी १९४१ ।
तुलसीकृत रामायण तुलसीकृत रामायण, ज्ञानसागर प्रेस बम्बई, १९१२ ई० ।
तुलसी ग्रन्थावली सम्पादक पं० रामचन्द्र शुक्ल ला० भगवान दीन और श्री
व्रजरत्नदास नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, १९८० वि० ।
तुलसीदास, गोस्वामी
(१) तुलसीकृत रामायण सीताराम मिश्र की लिपि मनाय पंजाबराय चन्द
दृष्या, टोल च-- १९५० वि० ।

(२) विनय पत्रिका गीताप्रेस गोरखपुर १९९१ वि०।
(३) दोहावली गीताप्रेस २००६ वि०।
(४) कवितावली गीताप्रेस २००६ वि०
(५) गीतावली गीताप्रेस, २००४ वि।
(६) कुण्डलिया रामायण सम्पादक श्री सत्यनारायण पांडे इ० प्रे०, १९४१ ई०।
(७) तुलसी सतसई, संपादक श्री बिहारीलाल चौबे एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल कलकत्ता १८९७ ई०।
(८) रामाज्ञा प्रश्नावली (तुलसी ग्रन्थावली)।
(९) पार्वती मंगल (तुलसी ग्रंथावली)।
(१०) जानकी मंगल (तुलसी ग्रन्थावली)।
(११) बरवै रामायण (तुलसी ग्रन्थावली)।
(१२) रामलला नहछू (तुलसी ग्रन्थावली)।
(१३) श्रीकृष्ण गीतावली (तुलसी ग्रन्थावली)।

तुलसी शब्दसागर: सम्पादक डॉ० भोलानाथ तिवारी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९५४ ई०।

तुलसी साहब
(१) घटरामायण बेलवेडियर प्रेस प्रयाग।
(२) रत्नसागर, बेलवेडियर प्रेस प्रयाग तृतीय संस्करण, १९३० ई०।

दयानन्द सरस्वती, स्वामी सत्यार्थप्रकाश वैदिक यंत्रालय अजमेर, १९९१ वि०।

दास बाबा रघुवर तुलसी चरित।

दास भगवद् श्रीमद् रामानन्द दिग्विजय धाम, १९८४ वि०।

दास, डॉ० श्यामसुन्दर
(१) रामचरितमानस इ० प्रे० १९१२ ई०।
(२) रामचरितमानस सटीक १९१५ ई० एवं १९२२ ई०।
(३) रामचरितमानस सटीक १९४१ ई० इ० प्रे०।
(४) साहित्यालोचन इ० प्रे० नवीं आवृत्ति २००६ वि०।
(५) हिन्दी भाषा और साहित्य, इ० प्रे० १९३० ई०।
(६) गोस्वामी तुलसीदास डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के सहयोग से हिन्दुस्तानी एकादमी प्रयाग १९३१ ई०।
(७) गोस्वामी तुलसीदास इ० प्रे०।
(८) गोस्वामी तुलसीदास ना० प्र० पत्रिका जिल्द ७-८ १९२६ २० ई०

द्विवेदी गौरीशंकर
(१) बुन्देल वैभव, बुंदेल वैभव ग्रंथमाला टीकमगढ़ १९९२ वि०।
(२) सुकवि सरोज १९८४ वि०, श्री सनाढ्यादर्श ग्रंथमाला कालपी; द्वितीय भाग १९९० वि०।
(३) महाकवि गो० तुलसीदास की माधुरी, १९८६ वि०।

द्विवेदी रामचंद्र तुलसी साहित्य रत्नाकर, सत्साहित्य प्रकाशक मण्डल नया टोला पटना १९८६ वि० ।
द्विवेदी डॉ० हजारीप्रसाद
(१) हिन्दी साहित्य का आदिकाल १९५२ ई० बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना ३।
(२) हिन्दी साहित्य अतरचन्द कपूर एण्ड सन्स दिल्ली १९५२ ई० ।
(३) हिन्दी साहित्य की भूमिका हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई १९४० ई० ।
दीन जयरामदास ।
(१) मानस रहस्य गीता प्रेस गोरखपुर १९९८ वि० ।
(२) मानस शंका समाधान गीताप्रेस २० ६ वि ।
दीक्षित भगीरथ प्रसाद
(१) गोस्वामी तुलसीदास और उनकी कृति माधुरी १९२८ ई० ।
(२) तुलसीदास और उनके ग्रन्थ अशोक प्रकाशन लखनऊ १९५५ ई० ।
दीक्षित महावीर प्रौढ़ मनोरमा सम्पादक सदाशिवशर्मा जोशी १९२८ ई० ।
दीक्षित डॉ० राजपति तुलसीदास और उनका युग ज्ञानमण्डल वाराणसी २००९ वि० ।
दुबे रामचन्द्र श्री गोस्वामी जी और राजनीति तुलसी ग्रन्थावली ।
दे, नन्दलाल द ज्योग्रफिकल डिक्शनरी ऑफ ऐंशेंट एण्ड मिडिवल इंडिया १८९९ ई० ।
देवीप्रसाद मुंशी जहाँगीर नामा ।
धो सो बावन वैष्णवन की वार्ता रणछोर पुस्तकालय डाकोर १९६० वि ।
धेनुसेवक शोभाराम । मानस मंजूषा श्री तुलसी ग्रन्थमाला कार्यालय नगला दीन (मिसनी) म० प्र तुलसी संवत् ३१८ ।
नगेन्द्र डॉ० तुलसी और भारी तुलसीदास एक विवेचन पब्लिकेशन डिवीजन १९५६ ई ।
नरोत्तमदास सुदामा चरित नागर पुस्तकालय वाराणसी ।
नागरी प्रचारिणी पत्रिका १९५५, १९८४ १९९८ १९९९ २० ८ २ ०६ २०११ वि० ।
नाभादास भक्तमाल नवलकिशोर प्रेस द्वितीय संस्करण १८९५ ।
नारद भक्ति सूत्रम् गीताप्रेस गोरखपुर २००१ वि० ।
पटेल द्वारकादास पुरुषोत्तम दास सम्पादक
(१) प्राचीन वार्ता रहस्य विद्या विभाग कांकरोली १९९८ वि० ।
(२) मण्डदास जी पर नया अन्वेषण प्रेम भारती २००२ वि० ।
प्रसाद' डॉ० बेणी हिस्ट्री ऑफ जहाँगीर इ० प्र १९३० ई० ।
प्रताप और पत्रयोद्धर (म म दुर्गा और वासुदेव शर्मा) सम्पादक रघुनाथपुर १९१६ ई० ।
पाण्डे चन्द्रबली
(१) तुलसी की जीवन भूमि ना० प्र० सभा काशी ।
(२) तुलसीदास शक्ति कार्यालय दारागंज प्रयाग २० ५ वि० ।

(३) साहित्य संदीपनी सरस्वती मंदिर वाराणसी १९५७ ई०।

(४) विचार विमर्श।

(५) तुलसी कौन ? तुलसी की माता अथवा पत्नी साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ७ मार्च १९५४।

पाण्डेय डा० रामनिरंजन रामभक्ति शाखा, नव हिन्द पब्लिकेशंस, हैदराबाद।

प्रियादास भक्तिरस बोधिनी।

पुरोहित हरिनारायण शर्मा व्रजनिधि ग्रन्थावली ना० प्र० सभा १९९० वि०।

पोद्दार, अभिनन्दन ग्रन्थ अखिल भारतीय ब्रजसाहित्य मण्डल मथुरा २०१० वि०।

फर्कुहार जे० एन० एन आउटलाइन आँव द रिलीजस लिट्रेचर आँव इण्डिया १९२० ई०।

फ्रांसिस बुकानन एन एकाउण्ट आँव द डिस्ट्रिक्ट आव पूर्णिया इन १८०९ १० सम्पादक वी० एच० जैकसन १९२८ ई०।

बघेला भीमदेव : बाघुवंश प्रदीप सम्पादक आचार्य देवव्रत शास्त्री भारतीय साहित्य संघ कासगंज १९९९ वि०।

बड़थ्वाल डा० पीताम्बरदत्त हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय श्री परशुराम चतुर्वेदी द्वारा अनूदित अवध पब्लिशिंग हाउस लखनऊ २००७ वि०।

बहुगुना शम्भु प्रसाद नन्ददास ना० प्र० पत्रिका १९९६ वि०।

बृहत् स्तोत्र रत्नावली प्रथम भाग क्षेमराज श्री कृष्णदास बम्बई १९९१ वि०।

बैजनाथ कुर्मी

(१) तुलसी सतसई (श्रीराम सतसई सटीक) पं० रामबिहारी और पं० बंदी दीन द्वारा संशोधित नवलकिशोर प्रेस लखनऊ १८८६ ई०।

(२) रामायण तुलसीकृत नवलकिशोर प्रेस लखनऊ १८९० ई०।

ब्रह्म पुराण (१) वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई। (२) आनन्दाश्रम मुद्रणालय पूना १८९५ ई०।

ब्रह्म सूत्र बादरायणकृत

शंकर भाष्य अनन्त कृष्ण शास्त्री निर्णय सागर प्रेस बम्बई १९१७ ई०।

बाइबिल द होली बिटिश एण्ड फॉरेन सोसाइटी लन्दन १९११ ई०।

भास्कर राम विनायक कवित्त रामायण में गो० तुलसीदास का आत्मपरिचय उत्तर मय सरस्वती संख्या १ भाग १९।

भावन वचनामृत

बुल्के डॉ० फादर कामिल रामकथा हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय १९५० ई०

भगीरथ हरिप्रसाद तुलसीकृत रामायणम् (सटीक) कालबा देवी रोड रामवाड़ी बम्बई १९४२ वि०।

भट्ट केदारनाथ

(१) सोरों का सौभाग्य विशाल भारत १९४० ई० नवम्बर १९४० ई०।

(२) गो० तुलसीदास और सोरों में प्राप्त सामग्री विशाल भारत १९४० ई०।

भट्ट गोविन्द वल्लभ

(१) गो० तुलसीदास का जन्मस्थान राजापुर अथवा सूकरखेत सोरों ? माधुरी १९८६ वि०।
(२) सम्पादक तुलसी स्मृति अंक समाहुम जीवन १९१९ (भद्रदत्त शर्मा और प्रभुदयाल शर्मा के सहयोग से)
(३) श्री सूकर क्षेत्र महात्म भाषा नवीन भारत ५ नवम्बर, १९३८।
(४) गोस्वामी तुलसीदास २२४ बालकेश्वर रोड बम्बई २०१५ वि०।
भट्ट रामेश्वर : तुलसीदास-कृत रामायण निर्णय सागर प्रेस बम्बई १९०२ ई०।
भट्टजी विट्ठलनाथ (१५७२ वि) सम्प्रदाय कल्पद्रुम वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई १९२० वि०।
भटनागर डॉ० रामरतन
(१) तुलसी साहित्य की भूमिका रामनारायणलाल इलाहाबाद १९४९ ई०।
(२) तुलसीदास आलोचनात्मक अध्ययन किताबमहल २००५ वि०।
(३) रहस्यवाद किताब महल इलाहाबाद मार्च १९४८।
भवानीदास गोसाईं चरित डॉ० भगवतीप्रसादसिंह की प्रतिलिपि मण्डूवर १९५६ ई पाण्डु लिपि।
भागवतम्, श्रीमद् गीताप्रेस गोरखपुर २००८ वि०।
भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग व्रजरत्नदास नागरी प्रचारिणी सभा २०१० वि०।
भारद्वाज डॉ० कृष्णदत्त द भक्ति स्कूल ऑव रामानुज सर शंकर लाल चैरिटि ट्रस्ट नयी दिल्ली १९५९ ई०।
गो० तुलसीदास की ब्रजभाषा-साहित्य को देन पोद्दार अभिनंदन २०१० वि०।
भारद्वाज डॉ० रामदत्त
(१) द फ़िलॉसफ़ी ऑव तुलसीदास आगरा विश्वविद्यालय १९५३ ई०।
(२) तुलसीदास का परिवार द मैथमस इनफ़ॉरमेशन एण्ड पब्लिकेशंस बम्बई १९४९ ई०।
(३) तुलसी चर्चा पं० भद्रदत्त के सहयोग से लक्ष्मी प्रेस कासगंज १९४१ ई०।
(४) रत्नावली जीवनी और रचना गंगा ग्रंथागार लखनऊ, १९४१।
(५) गोस्वामी तुलसीदास संक्षिप्त जीवन चरित तुलसी स्मारक समिति कासगंज २००१ वि०।
(६) गोस्वामी तुलसीदासजी की धर्मपत्नी रत्नावली (भूमिका) रत्नावली प्रकाशक रायबहादुर कुंवर कंचनसिंह गोरहा जिला एटा १९९५ वि०।
(७) गो० तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावली विशाल भारत, फरवरी १९३९ ई०।
(८) महाकवि नंददास, विशाल भारत जून १९३१ ई०।
(९) मूल गोसाईं चरित की प्रामाणिकता सुधा लखनऊ अप्रैल १९४० ई।

(१०) कुछ प्राचीन वस्तुएँ (गो॰ तुलसीदास पर प्रचुर प्रकाश) माधुरी, मई १९४० ई॰।
(११) गोस्वामीजी के चित्र और प्रतिमाएँ, सुधा मई १९४० ई॰।
(१२) अपतंश और वर्षफल माधुरी विशेषांक १९४० ई॰।
(१३) रत्नावली एण्ड तुलसीदास इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस लाहौर १९४० ई॰।
(१४) तुलसी चरित की अप्रामाणिकता नवीन भारत १८ दिसम्बर १९४०।
(१५) रत्नावली दोहों के आधार वचन नवीन भारत माघ १९४१ ई॰।
(१६) घट रामायण की अप्रामाणिकता माधुरी फरवरी १९४२ ई॰।
(१७) रत्नावली-तुलसीदास प्राचीन भारत ज्येष्ठ १९९८ वि॰।
(१८) प्रबावली ब्रजभारती १९९९ वि॰।
(१९) गोस्वामी तुलसीदास द डेट ऑव हिज रिमनसियेशन १६०४ वि॰ एण्ड द बर्थ-प्लेस ऑव हिज मदर हुलसी : सोरों इन द डिस्ट्रिक्ट ऑव एटा इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस अलीगढ़ १९४३ ई॰।
(२०) द हिस्टोरिकल इम्पोर्टेंस ऑव सूकरक्षेत्र और सोरों अलियास हस्तिनापुर ? द ओरिजिन ऑव चालुक्याज इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस अलीगढ़ १९४३ ई॰।
(२१) सोरों-सामग्री (प्रत्यालोचना) राजस्थानभारती १९४८ और नवीन भारत १९४९ ई ।
(२२) 'तुलसी प्रकाश' पर विचार विशाल भारत, १९४८ ई॰।
(२३) राजापुर का नामकरण विशाल भारत सितम्बर १९४८ ई॰।
(२४) रामचरित मानस : भाषा और पाठान्तर, भारत साहित्य कासगंज अप्रैल १९५२ ई॰।
(२५) तुलसी जन्मस्थान सम्बन्धी सोरों-सामग्री के अतिरिक्त अन्य साक्ष्य ब्रजभारती २० १ वि॰।
(२६) गोस्वामी तुलसीदास का काव्य सिद्धान्त साप्ताहिक हिन्दुस्तान १ जनवरी १९६०
(२७) भाषारमीकरण क्या और कैसे ? सम्मेलन पत्रिका पौष फाल्गुन शक १८८२
(२८) रामभक्ति शाखा हिन्दी वार्षिकी १९६ दिल्ली।
(२९) तुलसीदास और मनोविश्लेषण साप्ताहिक हिन्दुस्तान २० अगस्त १९६१।

मनुस्मृति निर्णय सागर प्रेस बम्बई, १९४६।
माधुरी (पत्रिका) १९२३ १९३५ १९३६ ई॰।
मानसांक कल्याण गोरखपुर १९९५ वि॰।
मानसहंस श्रीमंत यादवशंकर जामदार अनुवादक डॉ॰ केशव लक्ष्मण माचवे, लोक सेवा प्रेस नागपुर १९८१ वि॰।
माहेश्वरी संतदास रामायण का गूढ़ रहस्य स्वामी बाग आगरा, १९५२ ई॰।
मिश्रबन्धु (गणेश बिहारी श्यामबिहारी, शुकदेवबिहारी)

(१) मिश्रबन्धु विनोद जिल्द १ गंगा पुस्तकमाला लखनऊ, १९८१ वि० द्वितीय संस्करण ।
(२) हिन्दी नवरत्न हिन्दी ग्रंथ प्रसारक मंडली, प्रयाग १९६७ वि० एवं गंगा पुस्तकमाला १९९५ वि० ।

मिश्र, डॉ० बलदेवप्रसाद
(१) तुलसीदर्शन हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग १९९५ वि० ।
(२) मानस में रामकथा द नेपाल हिन्दी परिषद् कलकत्ता १९५२ ई० ।

मिश्र बाबूराम रामचरितमानस सटीक हिन्दी पुस्तक एजेंसी कलकत्ता ।

मिश्र, डा० भगीरथ तुलसी रसायन साहित्य भवन लखनऊ, १९५४ ई० ।

मिश्र, नारायणप्रसाद गो० तुलसीदास कृत रामायण भाषा टीका, भार्गव पुस्तकालय काशी १९३० ई० ।

मिश्र रामस्वरूप श्री तुलसीदास के काल्पनिक जीवन चरित्र पर एक दृष्टि तुलसीस्मृति अंक सनाढ्य जीवन, इटावा १९११ ई० ।

मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद गौतम चन्द्रिका में तुलसीदास का वृत्तान्त ना० प्र० पत्रिका २०१२ वि ।

मिश्र, डा० श्यामविहारी और शुकदेवविहारी
(१) महात्मा तुलसीदासजी माधुरी १९२३ ई० ।
(२) ट्राइएनियल रिपोर्ट ऑन सर्च फार हिन्दी मैनुस्क्रिप्ट्स एपेनडिक्स १ १९२४ ई ।

मीतल प्रभुदयाल अष्टछाप परिचय अग्रवाल प्रेस मथुरा २००४ वि० और २००६ वि० ।

मुखोपाध्याय, जगदीश सम्पादक माइले प्रकबरी १८८८ ई ।

मुनरो विलियम वेनट द गवर्नमेंट्स ऑव युरोप मेकमिलन कं० न्यूयोर्क १९५४ ई० ।

मैकडूगल, डॉ० विलियम चारल द वे ऑव सेलवेशन इन द रामायण ऑव तुलसी दास युनिवर्सिटी ऑव शिकागो इलिनोइस १९२६ ई० ।

मैकडोनल ए० ए०
(१) वैदिक मिथोलोजी स्ट्रेसबर्ग १८९७ ई० ।
(२) ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिट्रेचर लंदन १९२५ ई० ।

मैक्फी ज० एम० द रामायण ऑव तुलसीदास और द बाइबिल ऑव नॉर्दन इण्डिया १९३० ई० टी एण्ड टी० क्लार्क एडिनबरा ।

यजुर्वेद संहिता (शुक्ल) सम्पादक श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, औंध १९८४ वि० ।

याज्ञिक मायाशंकर गो० तुलसीदासजी ना० प्र० पत्रिका १९२७ ई० ।

राधाकृष्णन् डा० सर्वपल्ली
(१) इंडियन फ़िलॉसफ़ी एलिन एण्ड अनविन १९३१ ई० ।
(२) भगवद्गीता एलिन एण्ड अनविन लंदन १९४८ ई० ।

रानाडे डॉ० आर० डी० हिस्ट्री ऑव इंडियन फ़िलॉसफ़ी जिल्द ७ मिस्टिसिज्म ।

रामकिशोर शुक्ल रामचरितमानस नवलकिशोर प्रेस १९२२ ई०, प्रथम संस्करण।

रामकिंकर तुलसी कौन तुलसी की माता अथवा पत्नी ? साप्ताहिक हिन्दुस्तान १८ अप्रेल १९५४ ई०।

रामचरण, महन्त रामायण गो० श्री तुलसीदासजी कृत सटीक प्रथम भाग नवल किशोर प्रेस १८९० ई०।

रामचरितमानस (पाठान्तर सहित) गीताप्रेस गोरखपुर द्वितीय संस्करण २००८ वि०।

रामचरितमानस श्री खेमराज श्री कृष्णदास वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई १९५० वि०।

रामचन्द्र वैद्य शास्त्री

(१) तुलसी समाचार सुधावर्धक प्रेस अलीगढ़ १९०१ ई०।

(२) तुलसी सत्स्वरूप दर्शन अथवा मायाविनाश वही १९५० ई०।

रामप्रसन्न प० (बनारस कालिज वाले) श्री तुलसीकृत रामायण मेडिकल हाल प्रेस बनारस १८९९ ई०।

रामनारायण प्रो० ट्रांसलेशन ऑव द अयोध्यामाहात्म्य इंडियन ऐंटिक्वेरी, १८७५ ई०।

रामनारायण मिश्र रामायण सटीक १९११ ई०।

रामबालक दास रामचरितमानस सटीक सेठ लक्ष्मीचन्द छोटेलाल वैष्णव पुस्तकालय, अयोध्या।

रामभद्र तुलसीदास कृत रामायण सम्पूर्ण क्षेपक सहित (गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत सहित) जगदीश्वर प्रेस बम्बई, १९२१ वि०।

रामायण लाला प्यारेलाल हिन्दू प्रेस १९२८ वि०।

रामायण परिचर्या परिशिष्ट प्रकाश : खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर, १८९८ ई०।

रामायणांक कल्याण १९१० ई०।

राव विनायक : रामायण सटीक यूनियन प्रेस जबलपुर, १९१२ ई०।

रिकमन, जॉन : ए जेनरल सिलेक्शन फ्रॉम द वर्क्स ऑव सिम्पल फॉयड किताबिस्तान इलाहाबाद १९४१ ई ।

रैप्सन, ई० जे० एंशेंट इण्डिया कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस १९११ ई०।

रैफ, जोसेफ हाउ टु साइकोएनेलाइज योर्सेल्फ।

लाल डॉ० श्रीकृष्ण मानस दर्शन आनन्द पुस्तक भवन वाराणसी कैंट, २००९ वि०।

लक्ष्मीदत्त मेरठ निवासी : रामायण आनन्द प्रकाश अर्थात् श्री गोस्वामी तुलसीदास-कृत श्रीमद् रामायण का तिलक सरल भाषा में राम प्रेस, मेरठ १९४४ १९४५ वि०।

वकर बी० एच० : रामायण कालीन स्थान परिचय रामायणांक १९१० ई०।

वर्मा डा० धीरेन्द्र अष्टछाप रामनारायण लाल इलाहाबाद, प्रथम संस्करण।

वर्मा, डा० रामकुमार हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, तृतीय संस्करण, रामनारायण लाल इलाहाबाद १९५४ एवं १९५८ ई०।

वर्मा, डॉ० ब्रजेश्वर सूरदास हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय द्वि० सं० १९५० ई०।
वराह पुराण वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, १९०२ ई०।
ब्रजभाषा सूर कोश लखनऊ विश्वविद्यालय २००७ वि०।
व्रजरत्नदास नन्ददास ग्रंथावली ना० प्र० सभा २००६ वि०।
वाल्मीकि रामायणम् निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९२१ ई०।
वाजपेयी नन्द दुलारे
(१) सूर संदर्भ इंडियन प्रेस इलाहाबाद।
(२) महाकवि सूरदास आत्माराम एण्ड संज दिल्ली १९५२ ई०।
वार्ष्णेय, डॉ० लक्ष्मीसागर
(१) श्री गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत सरस्वती १९४० ई०।
(२) हिन्दी साहित्य का इतिहास मालवीय पुस्तक भवन लखनऊ।
(३) हिन्दुई साहित्य का इतिहास गार्सां द तासी (अनुवाद) हिन्दुस्तानी एकेडेमी १९५३ ई०।
विद्यार्थी रामचन्द्र तुलसीदास और नन्ददास विकास भारत १९५६ ई०।
विद्यालंकार सुदेव नरहरि निरूपण सम्मेलन पत्रिका २००१ २००२ वि०।
विनायक पं० बालकराम : गोस्वामीजी के नामराशि कल्याण अक्टूबर १९३६ ई०।
वियोगी हरि विनय पत्रिका सटीक साहित्य सेवासदन वाराणसी १९८७ वि०।
विल्सन एच० एच० स्केच ऑव द रिलीजस सेक्ट्स ऑव द हिन्दूज नवीन संस्करण रेनहोल्ड रोस्ट द्वारा १८६१ ई०।
विश्वकोष (हिन्दी) कलकत्ता।
वेणीमाधव दास बाबा मूल गोसाईं चरित गीता प्रेस १९९३ वि०।
वैद्य रमनलाल : महाकवि नन्ददास का परिचय ब्रजभारती २००० वि०।
शर्मा, शालिग्रामनारायण सिंह गोस्वामी तुलसीदास के विषय में कुछ निवेदन सरस्वती १ ११।
शर्मा और परीख गो० ब्रजभूषण और द्वारकादास दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता हरिराय प्रणीत शुद्धाद्वैत एकेडमी कांकरोली तीन खण्ड।
शर्मा प्रभुदयाल सम्पादक दोहा रत्नावली इटावा, १९१९ ई०।
शर्मा भद्रदत्त शास्त्री
(१) तुलसी सम्बन्धी प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की खोज हिन्दुस्तानी १९४० ई०।
(२) तुलसी चर्चा डॉ० रामदत्त भारद्वाज के सहयोग से मलमी प्रेस कासगंज मार्च १९४१ ई०।
(३) सूकरखेत का वास्तविक स्थान नवीन भारत ८ दिसम्बर, १९४३।
(४) सोरों की सामग्री विकास भारत १९४८ ई०।
(५) श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने राजापुर की नींव डाली नवीन भारत १९५१।

(४) गोस्वामी जी ने रामपुर बसाया विशाल भारत १९५४ व्रजभारती १९५४ ई० ।
(५) गोस्वामी तुलसीदास के जीवन से सम्बन्धित तिथियाँ विशाल भारत १९५४ ई० ।
(६) सूकरखेत व्रजभारती फाल्गुन २०११ वि० ।
(७) तुलसी जन्मभूमि सूकर खेत (सोरों) श्रीतुलसी समिति सोरों, २०१२ वि० ।

वर्मा डॉ० मुंशीराम (सोम)
(१) सूर सौरभ आचार्य शुक्ल साधना मन्दिर कानपुर, २०१२ वि० ।
(२) भारतीय साधना और सूर साहित्य साधना मन्दिर कानपुर, २०१० वि ।
(३) वल्कि भक्ति तथा हिन्दी कालीन काव्य में उसकी अभिव्यक्ति १९५६ ई० ।

वर्मा डा० हरवंशलाल
(१) सूर काव्य की आलोचना भारत प्रकाशन मंदिर अलीगढ़ ।
(२) सूर समीक्षा हिन्दी निकेतन होशियारपुर २ १२ वि० ।
(३) सूर और उनका साहित्य भारत प्रकाशन मंदिर अलीगढ़ ।

वर्मा रामकिशोर
(१) गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्मस्थान विशाल भारत १९४० ई० ।
(२) शिव सनातन गोस्वामी तुलसीदास के गुरु अथवा पूर्वज सरस्वती १९३१ ।

वर्मा विनय मोहन तुलसीदास के महाराष्ट्रीय शिष्य संतजन जसवंत मा० प्र० पत्रिका २ १३ वि ।

वर्मा पं० सूर्यनारायण रामायण सटीक जे० लाल विश्वकर्मा एण्ड संस मीठापुर पटना १९८८ वि ।

शाण्डिल्य भक्ति सूत्रम्, पाणिनि आफिस इलाहाबाद १९१२ ई० ।

शास्त्री सीताराम संस्कृत साहित्य का इतिहास ।

शास्त्री डा सूर्यकान्त
(१) हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास ।
(२) द इंडेक्स वर्बोरम टु तुलसीदासज रामायण १९३७ ई० ।

शास्त्री हीरानन्द मेमोयर्स ऑव द आर्क्यॉलोजिकल सर्वे ऑव इण्डिया नं० २ द वघल डायनस्टी ऑव रीवा १९२१, वीर भानूदय काव्यम् ।

शास्त्री रामलोचनशरण मानस मीमांसा किताब महल इलाहाबाद १९४१ ई० ।

शिवसिंह सेंगर शिवसिंह सरोज नवलकिशोर प्रेस १९२६ ई० ।

शुक्ल और मिश्र (प्रो० रामबहोरी और डॉ० भगीरथ) हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास हिन्दी भवन १९५६ ई० ।

शुक्ल रामचन्द्र
(१) गोस्वामी तुलसीदास काशी ना० प्र० सभा षष्ठ संस्करण २००५ वि० ।

(२) हिन्दी साहित्य का इतिहास १९४० ई० एवं नवीन संस्करण ना० प्र० सभा काशी २००६ वि०।

(३) गोस्वामी तुलसीदासजी (जीवन खंड सहित) ना० प्र० सभा १९८० वि०।

(४) मयांक (अनुवाद), ना० प्र० सभा १९२२ ई०।

(५) भ्रमरगीत सार, साहित्य सेवा सदन बनारस २००६ वि०।

शुक्ल प्रो० रामबहोरी

(१) तुलसी, हिन्दी भवन इलाहाबाद तृतीय संस्करण १९५२ ई०।

(२) गोस्वामी तुलसीदास का जन्म-स्थान सोरों १९१८ ई०।

श्री रामचरितमानस संशोधक दास पूरन भक्त श्रीवास्तव भार्गव पुस्तकालय काशी १९८६ वि०।

श्री रामजन्म दिग्विजय

श्रीवास्तव डॉ० देवकीनन्दन तुलसीदास की भाषा लखनऊ विश्वविद्यालय २०१४ वि०।

श्रीवास्तव डॉ० बदरी नारायण रामानन्द सम्प्रदाय हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्व विद्यालय १९५७ ई०।

षोडश रामायण :

(१) बंगवासी स्टीम मशीन प्रेस कलकत्ता १९०१ ई०।

(२) खेमराज श्री कृष्णदास बम्बई १९८८ ई०।

स्कंद पुराण : संक्षिप्त हिन्दी संस्करण गीता प्रेस गोरखपुर। तृतीय संस्करण १९५२ ई०।

सम्मेलन पत्रिका १८८२ शक

सहाय गोकुलानन्द :

(१) ट्रूथ अबाउट द लाइफ ऑफ गोस्वामी तुलसीदास सर्चलाइट ११ मई १६ मई २१ मई, १ मई ७ जून ११ जून, २० जून १९५४ ई०।

(२) एस्ट्रोलॉजिकल योगस विद इनकमुर्तिक द लाइफ ऑफ गोस्वामी तुलसीदास सर्चलाइट १६ २५ अक्टूबर १ ८ नवम्बर, १९५१ ई०।

(३) गो० तुलसीदास और उनकी जीवनियाँ अप्रकाशित।

सहाय शिवनन्दन

(१) श्री गोस्वामी तुलसीदास जी का जीवन चरित्र विहारगोर प्रेस १९१६ ई०।

(२) गोस्वामी तुलसीदास की माधुरी अगस्त १९२२ ई०।

सावित्री सिन्हा, डॉ० मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ आत्माराम एण्ड संस दिल्ली १९५१ ई०।

सूरस्वामी, श्री हाथरस वाले सतगुरु श्री तुलसी साहब की बानी और जन्म कथा प्रकाशक मुंशी चरन दास लाहौरी, मनोहर प्रेस अनारकली रोड लाहौर, वर्तमान हाथरस तृतीय बार, फरवरी १९३० ई०।

स्मिथ विंसेंट ए० अकबर द ग्रेट मुग़ल ऑक्सफोर्ड क्लेरेंडन प्रेस, १९१७ ई०।
सिंह भगवती प्रसाद सूकरखेत, सरस्वती, जून १९४३ ई०।
रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय अवध साहित्य मन्दिर बलरामपुर २०१४ वि०।
सिंह श्योहाररोवाम गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना भाग १ ३, ना० प्र० सभा २००५ वि०।
सिंह प्रताप : भक्त कल्पद्रुम नवल किशोर प्रेस १९२६ ई०।
सीताराम, रायबहादुर लाला
(१) तुलसी-कृत रामायण अयोध्याकाण्ड (राजापुर की प्रति) किशोर प्रेस २ १ मुट्ठीगंज इलाहाबाद, १९२१ ई०।
(२) क्या राजापुर का रामचरितमानस तुलसीदास के हाथ का लिखा है ? माधुरी १९२२ ई०।
(३) सिलेक्शंस फ्रॉम हिन्दी लिट्रेचर, १९२१ ई० तृतीय पुस्तक।
(४) रामचरितमानस लोकप्रिय होने का कारण कल्याण १९३० ई०।
(५) सम्पादक नोट्स ऑन तुलसीदास (ग्रियर्सन-कृत) १७ नवम्बर १९२० ई०।
सीताराम मिश्र गो० तुलसीकृत रामायण लखीमपुर खीरी।
सीतारामशरण भगवान् प्रसाद श्री भक्तमाल सटीक भक्तिरस प्रकाश युक्त नवल किशोर प्रेस लखनऊ १९११ ई०।
सुकुल चन्द्रमौलि : मानस दर्पण इण्डियन प्रेस प्रयाग, १९११ ई०।
सूक्तिसुधाकर : गीताप्रेस गोरखपुर।
सूरजमान अग्रवाल : रामचरितमानस रामायण टीका सहित।
सूरदास ठाकुर दास दो सौ बावन वैष्णव वार्ता जगदीश्वर प्रेस बम्बई १९४७ वि०।
सूरसागर : नागरी प्रचारिणी सभा काशी प्रथम संस्करण १९९३ वि ।
सोलंकी नाहरसिंह सम्पादक : श्री सूकरक्षेत्र, (सोरों) माहात्म्य कवि कृष्णदास कृत गोरहा पुरा जिला १९३८ ई०।
हण्टर डब्लू० डब्लू० इम्पीरियल गजेटियर ऑव इण्डिया, जिल्द ११, द्वितीय संस्करण १८८६ ई०।
हरिप्रसाद भगीरथ रामचरित मानस सटीक कालबादेवी रोड मुम्बई १९६० वि० आ०।
हिन्दी शब्द सागर नागरी प्रचारिणी सभा काशी इण्डियन प्रेस १९१६।
हिल डब्लू० डगलस पी० : द होली लेक ऑव द ऐक्ट्स ऑव राम ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९५२ ई०।
हैरिसन फिलिप लोरेंस एनसाइक्लोपीडिया ऑव साइकोलोजी न्यूयार्क १९५१ ई०।
हेस्टिंग्ज, जेम्स एनसाइक्लोपीडिया ऑव रिलिजन एण्ड एथिक्स, टी० एण्ड टी० क्लार्क एडिनबरा १९११ ई०।
विल : रिलिजंस ऑव इण्डिया

त्रिपाठी, रामनरेश

(१) तुलसीदास और उनकी कविता हिन्दी मन्दिर, प्रयाग १९३७ ई० ।
(२) रामचरितमानस (गद्यानुवाद) सटीक सं० १९६२ वि० ।
(३) तुलसी और उनका काव्य राजपाल एण्ड संस दिल्ली १९५३ ई० ।
(४) कविता कौमुदी प्रथम भाग हिन्दी मन्दिर प्रयाग १९८८ वि० । पंचम संस्करण ।

त्रिपाठी विजयानन्द

(१) मानस दीपक का स्पष्टीकरण कल्याण जुलाई १९३० ई० ।
(२) श्री गो० तुलसीदास जी की संक्षिप्त जीवनी श्री रामायणांक कल्याण १९३० ई० ।
(३) श्री रामचरितमानस भाषाटीका भारती भण्डार लीडर प्रेस १९९३ वि० ।

नामानुक्रम

नामानुक्रम

...नु पावन जीवन जानी रामसीय जस मंगल खानी करन पुनी
...सवानी ॥ छंद ॥ निज गिरा पावनि करन कारन राम जसु तुलसी कह्यौ रघुवीर च
रि[illegible] कविकोविदौ [illegible] उपबीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गा
वही सोरठा सीय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं तिन्ह कहुं सदा उछाहु
[illegible] मंगलायतन राम जसु सोरठा [illegible] चरित [illegible] भाउ [illegible] श्री रघु [illegible]
[illegible] जे सब पावन परम पुनीत [illegible] मति सोरठा भइ पुरी सुख धाम [illegible] नि
मिले [illegible] अवधपुरी [illegible] महिमा [illegible] दोहा कहैं सुनैं सनमु
दै जे नर सफल सो प्रभु गुन गान सीतापति रघुकुल तिलक सदा करहि कल्या
न ॥ इति श्री रामचरित्र मानसे सकल कलि कलुष विध्वंसने विमल
ग्य संपादिनी नाम १ सोपान समाप्त संवत् १६ ४० शाके [illegible] १५ [illegible]
[illegible] नन्दन सपुत्र कृष्णदत्त हेत लिखी रघुनाथ दास ने कासीपुरी

[illegible] नाहिं गुहेसि पतंग भेजु [illegible] करसि सदा सतसंग ॥ [illegible] इति श्री
[illegible] सकल [illegible] ध्वसने [illegible] जन [illegible] नाम [illegible]
[illegible] श्री तुलसीदास गुरु की कृपा सो उन
के मत [illegible] सो [illegible] लिखितं [illegible] दास [illegible]
[illegible] इति ॥

रामचरितमानस अरण्य काण्ड १६४१ वि०, पृष्ठ २१९, २२८

दोहा रत्नावली गदाधर की प्रति १८२६ वि पृष्ठ २१६

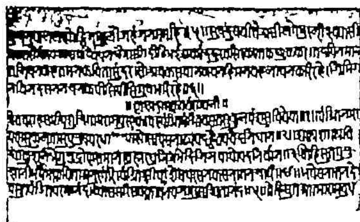
श्री गोसाई जी के सेवक चारि
अष्टछापी तिनकी वार्ता
१६६७ वि पृष्ठ २०१

रत्नावली लघु दोहा संग्रह ईश्वरनाथ की प्रति १८७५ वि० पृ० १८

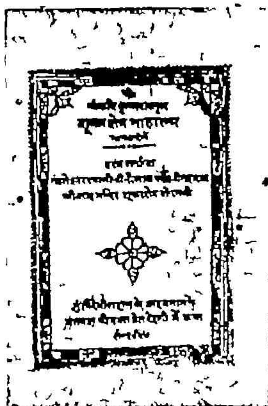
रत्नावली चरित मुरलीधर चतुर्वेद की प्रति १८२८ वि० पृष्ठ २१४



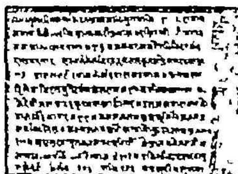
श्री वाराह मन्दिर और घाट, सूकरक्षेत्र सोरो (एटा) पृष्ठ १०२



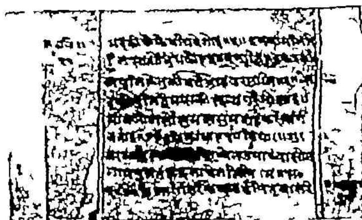
कृष्णदास बंगावली मुरलीधर चतुर्वेद की प्रति १८२६ वि० पृष्ठ २२०



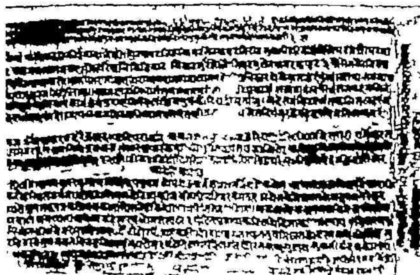
शूकरक्षेत्र माहात्म्य (भाषा) मुद्रित १९२७ वि० पृष्ट २४२



षष्टमगामृत १८९९ वि० पृष्ट १९९



दर्पकन्न खुमान की प्रति १८७२ वि० पृष्ठ २११



भक्तमाल गदाधरदास की टीका १८६४ वि० पृष्ठ २२१



गुरु नरसिंह का विद्यालय जीर्णोद्धार से पूर्व, पृष्ठ १९२



गुरु नरसिंह का विद्यालय जीर्णोद्धार के पश्चात् पृष्ठ १९२



रामपुर के निवासी पृष्ठ १६२



रामपुर (श्यामपुर) की ग्रामदेवी
पृष्ठ १६१



रामपुर क निवासी पृष्ठ १६२



तारी की ग्राम देवी पृष्ठ १२१



तारी का बट और तारी के कुछ
निवासी पृष्ठ १५६
नि

तारी का ताल पृष्ठ १५८





तारी के कुछ निवासी पृष्ठ २५८

श्यामसर पृष्ठ १११





श्यामायन रामपुर पृष्ठ १७१



सीताराम जी का मन्दिर सोरों
पृष्ठ १९२



गुमनी ग्रह पृष्ठ १९२



श्यामायन रामपुर पृष्ठ १९१